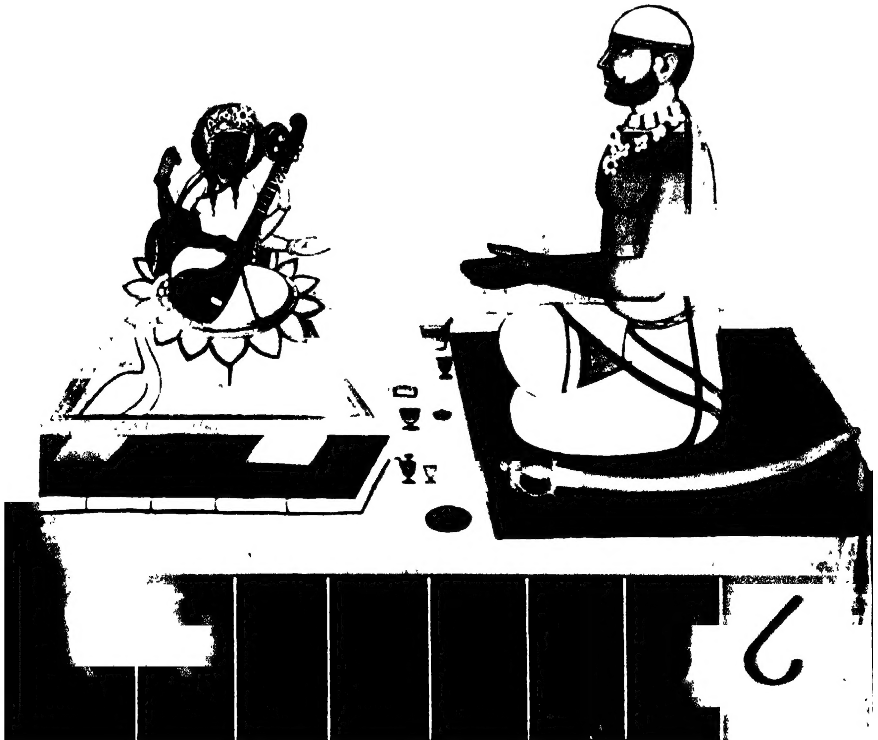
सूर्यमल्ल मीसण द्वारा प्रणीत

वंश भास्कर

संपादक : चन्द्र प्रकाश देवल



वंश भास्कर

(महाचम्पू)

सूर्यमल्ल मीसण द्वारा प्रणीत

वंश भास्कर

(महाचम्पू)

आठवाँ-खंड

(नवम-राशि)

अर्थ प्रबोधनी टीका
एवं संपादन

चन्द्र प्रकाश देवल



साहित्य अकादेमी

वंश भास्कर
(नवम राशि)
अनुक्रमणिका

६. इस समय कई राज्यों के बनने और कई राज्यों के नष्ट होने की सूचना करना।
७. नरुका प्रतापसिंह का छलघात से महावत फिरोजखाँ को मरवाना वहीं खुशहालीराम का झलाय के कुमार बख्तावरसिंह को मरवाना।
८. खुशहालीराम का जयपुर की सेना में दादूपंथियों और मराठों को रख कर मनोहरपुर वालों को दण्डित करना।
९. डीग में जाटों और यवनों की सेना से जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह की माता की सेना का युद्ध होना।
१०. जसवंतसिंह बावला को तनख्वाह के पेटे जयपुर से मालपुरा, टोडा के परगने मिलना।
११. बापू मराठा और बावला का मिल कर जयपुर के तीन परगने दबाना।

३५६ **छठा मयूख** ५८१३

१. मराठों और अंग्रेजों की सहायता से दिल्ली के बादशाह शाहआलम का रुहिल्लों से पत्थरगढ़ लेना।
२. लखनऊ के नवाब का आमिला के स्वामी को जीत कर उसकी कन्या लेना।
३. भरतपुर के जाटों का यवनों से युद्ध होना और रुहिल्लों का डीग पर अधिकार करना।
४. नानकपंथी सिक्खों का पंजाब पर अधिकार करना, वहीं रुहिल्लों का दिल्ली के देवा लूटना।
५. श्रीजित का उत्तरदिशा के तीर्थों की यात्रा कर बून्दी लौटना।

३५७ **सातवाँ मयूख** ५८३८

१. हाड़ा राजा विष्णुसिंह का बीकानेर विवाह करना।
२. श्रीजित का दक्षिणदिशा के तीर्थस्थानों की यात्रा पर जाना।
३. जयपुर के कछवाहा राजा पृथ्वीसिंह के मरने पर उसके छोटे भाई प्रतापसिंह का राजगद्दी पर बैठना।
४. राजा पृथ्वीसिंह के एक सन्देहयुक्त पुत्र मानसिंह का जन्म होना और उसका वृन्दावन में जा रहना।
५. उन्नसवीं सदी में घटनाकाल के अनुसार क्रमशः कथा नहीं लिख पाने की ग्रंथकार की सूचना करना।
६. हाड़ा राजा विष्णुसिंह का करोली जा कर विवाह करना।
७. बीकानेर के राजा गजसिंह का निधन और उसकी जगह सूरतसिंह का नया राजा बनना।
८. रुहिल्ला यवन गुलाम कादिर का दिल्ली को लूटना और

बादशाह शाहआलम की आँखें फोड़ कर उसे अंधा बनाना।

९. दिल्ली के वजीर महादजी सिंधिया के आने की खबर पाकर भागते हुए रुहिल्ला का कैद हो कर मारा जाना।

१०. किशनगढ़ के राजा प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद कल्याणसिंह का गद्दी पर बैठना।

११. जयपुर के कछवाहा राजा प्रतापसिंह का बून्दी विवाह करना।

१२. पोकरण के ठाकुर चांपावत सवाईसिंह का अपने दादा को मारने वाले जोधपुर के राजा विजयसिंह को छलपूर्वक गद्दी से उतारना और उसकी जगह राजा के पोते भीमसिंह को गद्दी पर बिठाना।

१३. फिर से विजयसिंह को गद्दी सोंप कर भँवर गाँव के युद्ध से भागकर भीमसिंह को पोकरण ले जाना।

१४. तुंगा के युद्ध में जयपुर के राजा प्रतापसिंह का जोधपुर की सेना की सहायता से उज्जैन के स्वामी माधवराव सिंधिया को हराना।

१५. अंग्रेजों से हुए युद्ध में टीपू सुल्तान का भागना।

१६. जोधपुर के राजा विजयसिंह का देहान्त होने पर चांपावत सवाईसिंह का भीमसिंह को गद्दी पर बिठाना और भीमसिंह का अपने बांधवों को मारना।

३५८ **आठवाँ मयूख** ५८६८

१. बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह के पुत्र का जन्म और हाड़ा राजा का श्रीजित के विरुद्ध हो कर झाला जालिमसिंह की कन्या से विवाह करना।

२. कालख नगर में जयपुर के सचिव दोला वैश्य का मारा जाता और भावनगर क नवाब का महादजीसिंधिया के पुत्र से करदा के युद्ध में भागना।

३. पेशवा बाजीराव के विरुद्ध होकर अमृतराव का पूना के देश को लूटना और बाजीराव से राज्य छूटना।

४. बून्दी में राजा विष्णुसिंह से उदासीन हो कर श्रीजित का जगदीश की यात्रा पर जाना, पीछे से विष्णुसिंह का श्रीजित को बून्दी लौटने से मना करवाना पर रंगनाथ के दर्शन करने के बहाने श्रीजित का बून्दी आना और अपने पौत्र को तलवार दे कर स्वयं को मारने की कहना, इस पर हाड़ा राजा विष्णुसिंह का लज्जित होना।

५. कोटा के राजा गुमानसिंह का मरना और उसके पुत्र उम्मेदसिंह का झाला जालिमसिंह के वशीभूत होना।

६. लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला के दत्तक पुत्र वजीरअली का अंग्रेजों द्वारा निकाला जाना और शहादतअली का नवाब होना, वहीं वजीरअली का जयपुर के राजा की शरण में आना। जहाँ पीतल की नकली मुहरें ले कर जयपुर के राजा प्रतापसिंह का वजीरअली को अंग्रेजों के अधीन करना।
७. नवाब शहादतअली का अंग्रेजों के विरुद्ध होना।
८. इन्दौर के स्वामी तक्कूजीराव होल्कर के निधन पर उसके पासवानिये पुत्र जसवंतराव होल्कर का पाट बैठना।
९. जौधपुर के राजा भीमसिंह का जालौर के दुर्ग में मानसिंह को घेरना।
१०. उज्जैन के पति महादजी सिंधिया का मरना और दौलतराव का उसका उत्तराधिकारी होकर कई युद्धों में हारना।
११. अंग्रेजों से हुए युद्ध में टीपू सुल्तान का मारा जाना।
१२. लांबा नामक पुर के युद्ध में उज्जैन के सामन्त लखवा ब्राह्मण से लड़ कर राजा प्रतापसिंह का भागना।
१३. बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह का सोपुर विवाह करना।

३५९ **नौवाँ मयूख** ५८९७

१. काबुल के अमीर के बल पर सिक्ख रणजीतसिंह का लाहौर ले कर बढ़ना।
२. जोधपुर के राजा भीमसिंह और जयपुर के राजा प्रतापसिंह का परस्पर एक दूसरे के यहाँ विवाह करना।
३. कोटा के सचिव झाला जालिमसिंह का मेवाड़ के जहाजपुर आदि परगने लेकर कोटा का दबदबा बढ़ाना।
४. लार्ड वेलेज्युजी का पेशवा से बुंदेलखण्ड लेना वहीं सिंधिया होल्कर को पराजय दे कर अन्तरवेद,ओड़िया,आगरा और दिल्ली पर अधिकार करना।
५. बादशाह शाहआलम को पेंशन दे कर अंग्रेजों का पूर्वी समुद्र से लगा कर दिल्ली तक का राज्य अपने अधिकार में लेना।
६. कछवाहा राजा प्रतापसिंह की मृत्यु हो जाने पर जगतसिंह का पाट बैठना।
७. राठौड़ राजा भीमसिंह का देहान्त हो जाने पर जालौर से आ कर मानसिंह का जोधपुर का नया राजा बनना।
८. बून्दी में पूर्व राजा श्रीजित का शरीर त्यागना और हाड़ा राजा विष्णुसिंह का विवाह करना।
९. करोली के राजा माणिक्यपाल की मृत्यु पर हरिपाल का नया राजा बनना।

१०. दिल्ली के अंधे बादशाह शाहआलम का मरना और उसके पुत्र अकबर का उत्तराधिकारी होना।

११. मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णकुमारी को विवाहने जोधपुर के राजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह दोनों का ससैन्य आना और गीधोली नामक गाँव को रणभूमि बनाना।

१२. पोकरण के चांपावत सवाईसिंह का मारवाड़ के कुछ सामंत्तों सहित जयपुर की सेना से मिल जाने का सुनते ही राठौड़ राजा मानसिंह का रणभूमि से भागना।

१३. कछवाहा राजा का धोंकलसिंह को जोधपुर की गद्दी पर बिठाने के हठ से जोधपुर को घेरना।

१४. घबरा कर मानसिंह का नागौर और मारवाड़ का आधा राज्य धोंकलसिंह को देने की पेशकश करना पर सवाईसिंह का उसे अस्वीकार करना।

३६० **दसवाँ मयूख** ५९२९

१. जोधपुर के राजा मानसिंह को आत्मघात विचारने पर सिंघी इन्द्रराज, गंग भंडारी और कुचामन के ठाकुर शिवनाथसिंह का फागी को जा घेरना और जयपुर की सेना को भगाना।

२. सैन्यखर्च से घबरा कर सवाईसिंह चांपावत से बिरस हो कर जगतसिंह का जयपुर लौटना।

३. मेवाड़ में इन दोनों राजाओं के भय से महाराणा भीमसिंह का अपनी पुत्री को जहर दे कर मारना।

४. राठौड़ राजा मानसिंह का मीरखाँ को मित्र बना कर सवाईसिंह चांपावत को छलघात से मरवाना और मारवाड़ के कृत्रिम दावेदार धोंकलसिंह का भागना।

५. हाड़ा राजा विष्णुसिंह का किशनगढ़ में अपना आठवाँ विवाह करना।

६. सिक्ख रणजीतसिंह और अंग्रेजों के मध्य विरोध बढ़ कर सुलह होना।

७. काबुल के वजीर दोस्त मुहम्मद का अमीर सुजाउलमुल्क को भगा कर स्वयं बादशाह होना।

८. अपनी शरण में आये हुए अमीर सुजाउलमुल्क से रणीजीतसिंह का कोहनूर हीरा लेना और अमीर का ईस्ट इंडिया कम्पनी की शरण में [illegible]।

९. दौलतराव सिंधिया का दूणी नगर में युद्ध कर वापस दक्षिण में जाना और ग्वालियर जा कर इधर-उधर के देश दबाना।

रामसिंह-चरित्र

श्री गणेशायनमः

अथ नवम राशि प्रारम्भः

अथ विष्णुसिंह चरित्रम्

शुद्धाऽपभ्रंशभाषा

गीतिः

जयइ गणेसु गयाणणु बाणी हिमकुंदचंद्रिमाधवला।
एइ करावहिं कव्वं ताह असट्टलु थवणु हउं करउं ॥१ ॥[1]

हाथी के मुखवाले गणेश की जय हो! मोगरा, चाँदनी और बर्फ के समान उज्ज्वल कांति को धारण करने वाली सरस्वती की जय हो। ये दोनों देव ही काव्य के कारण हैं अर्थात् जिनकी कृपा से कविता संभव है। इन दोनों के जैसा अवर कोई नहीं, यह मान कर मैं (ग्रंथकार) सूर्यमल्ल मीसण (मिश्रण) सर्वप्रथम इनकी स्तुति करता हूँ।

दोहा

रणसूरा मणउज्जला जणवल्लहु अणमाणु।
अम्हारा णमउं जण गुढक्करि कव्वनिहाणु ॥२ ॥[2]

जिनके समान युद्ध में वीर, मन का उज्ज्वल और जन-जन का दुलारा अन्य कोई नहीं, उनको (अपने पिता को) मैं नमस्कार करता हूँ जो गूढ़ काव्य रचना के खजाने हैं।

गीर्वाणभाषा

अनुष्टुब्युग्मविपुला

तुरीयांयः सदास्पश्यज्जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु।
आत्मारामं स्ववप्तारं चंडीदानं नमाम्यहम् ॥३ ॥

जो सदा अपनी जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में तूर्यावस्था को देखते हैं अर्थात् समाधि की स्थिति में रहते हैं। ऐसे ब्रह्मानन्द स्वरूप चण्डीदान नामक अपने पिता को इस राशि की रचना के आरंभ में प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणी :-(छंद संख्या एक और दो का संस्कृत अनुवाद निम्न प्रकार होगा-सम्पादक)

१. जयति गणेशो गजाननो वाणी हिमकुन्दचन्द्रिका धवला।
एते कारयतः काव्यं तयोरसदृशं स्तवनमह करोमि ॥१ ॥

२. रणशूरा मनस्युज्ज्वला जनवल्लभा अप्रमाणाः।
वयं नमामो ये गूढाकृतिकाव्यनिधानाः ॥२ ॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

अजितसिंह बपु तजत इम, हुव बुंदिय हाकार।
बिजय प्रपंच सु हुव बिफल, आयु नियति अनुसार ।।४।।

जो कछु दिन पुनि जीवतो, पहु तो अवसर पाइ।
कोटादिक छिति निकट की, लेतो स्वभुज लगाइ।। ५।।

सुनृप उदधि सूरत्व को, सत्रुन बर्द्धक सोक।
सुक्रवार बैसाख सित, पुण्णिम गो परलोक।। ६।।

अजितसिंह के पट्ट अब, बिष्णुसिंह बय बाल।
बैठायो श्रीजित बिदित, भावित बिधि भूपाल।। ७।।

सक नभ गुन धृति सुक्र मैं, ससि एकादसि सीर।
बिष्णुसिंह नव पक्ष बय, बुंदी पहु हुव बीर।। ८।।

हे राजा रामसिंह! हाड़ा राजा अजीतसिंह के इस तरह शरीर छोड़ने की खबर से पूरे बून्दी नगर में हाहाकार छा गया। राजा की विजय की योजना तो पूरी नहीं हुई और जो हुआ नियति के अनुसार हुआ अर्थात् वह असमय मर गया। यदि राजा अजीतसिंह थोड़े दिन और जी गया होता तो वह अवसर निकाल कर सचमुच कोटा और उसके समीप की भूमि को जीत लेता। एक सुशासक और पराक्रम का समुद्र वह राजा जो अपने शत्रु पक्ष में शोक बढ़ाने वाला था, वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तदनुसार शुक्रवार के दिन स्वर्गलोक को गया। राजा अजीतसिंह के यों असमय मर जाने के बाद बून्दी की राजगद्दी पर उसके शिशु विष्णुसिंह को तब राजा श्रीजित ने संस्कार विधि से बिठाया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीस के ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि तदनुसार सोमवार के दिन कुमार विष्णुसिंह जो अभी मात्र नौ पखवाड़े की उम्र वाला अर्थात् साढे चार माह की वय वाला था बून्दी का राजा बना।

पंच घटिय मध्यान्ह पर, अधिक जात अभिषेक।
सद्दिय निज कुलरीति सह, बिधिग्रह सुमह बिबेक।। ९।।

प्रथम पुरोहित व्यास गुरु, इन्ह त्रिक किय अभिसेक।
बलि गुरु किय उपदेस बिधि, कुसलानंद हि एक।। १०।।

तिम इन तीनन किय तिलक, श्रीजित स्वकर बहोरि।
माधानी भगवंत पुनि, किन्न तिलक बिधि जोरि ॥ ११ ॥

चारन भट्टन भेट किय, पहिलै हय सिरुपाव।
भेट बहुरि सद्धिय भटन, भनियत सो क्रम भाव॥ १२ ॥

मध्यान्ह पर पाँच घड़ी अधिक व्यतीत होने की बेला में राजा का राजतिलक सम्पन्न हुआ जिसे हाड़ा कुल के रीति-रिवाजों के अनुसार पूरे विधि-विधान से शुभ मुहूर्त में श्रेष्ठ उत्सव के साथ सम्पन्न किया गया। सर्वप्रथम बून्दी के राजपुरोहित ने तिलक लगाया उसके बाद राज-व्यास ने और फिर राजगुरु ने क्रमशः तिलक लगाये। इस अवसर पर राजगुरु कुशलानन्द ने उपदेश भी दिया। तीनों के तिलक लगाने के बाद बालक राजा को श्रीजित ने अपने हाथ से तिलक लगाया फिर माधानी वंश के हाड़ा भगवंतसिंह ने तिलक किया। राज्याभिषेक होते ही बून्दी के चारणों और बंदीजनों ने राजा को पहले घोड़ा और बाद में सिरोपाव भेंट किये। इसके बाद बून्दी के जिन सामन्तों (उमरावों) ने शिशुराजा विष्णुसिंह को नजर(भेंट) की उन्हें क्रम से मैं (ग्रंथकार)बताता हूँ उसे आप सुनें।

घनाक्षरी

घोरे सिरुपाव करे उपदा तबहि तत्थ,
पहिलै पितृव्यक बहादुर ओ सरदार॥
पीछैं सिवसिंह पीछैं संग्रामादिसिंह पीछैं,
माधव पिनाती भगवंत रीति अनुसार॥
इंद्रगढ़ बलवनि जज्जाउर आँतरदा,
खेरा धोवरा के भये नजर बिधेय बार॥
कोटापति हूके द्वै तुरंग सिरुपाव द्वै ही,
आये भये भेट पुनि अैहैं बडो उपहार॥१३॥

सर्वप्रथम राजा विष्णुसिंह के काका बहादुरसिंह और सरदारसिंह ने घोड़े और सिरोपाव भेंट किये। उनके बाद शिवसिह और संग्रामसिंह ने राजा को सारी सामग्री के साथ घोड़े और सिरोपाव भेंट किये। उनके बाद माधानी हाड़ा भगवंतसिंह ने हाड़ा राजा की नजर की। आठवें क्रम में इन्द्रगढ़, नवमें क्रम में बलवनी, दसवें में जज्जाउर (जोजावर), ग्यारहवें क्रम में आंतरदा,

बारहवें क्रम में खेड़ा और आगे धोवरा नगर के स्वामियों ने अपनी-अपनी बारी के अवसर पर राजा को भेंट दी। कोटा के महाराव की ओर से इस अवसर पर भेजे गये टीका उपहार के रूप में दो घोड़े और दो सिरोपाव राजा को भेंट किये गये। बड़े उपहार तो बाद में भेंट होंगे।

दोहा

किय उपदा सचिवादिकन, पुनि दम्म रु सिरुपाव।
अधसौधन इम सद्धि अग, सौधरन आन्यौं साव ॥१४॥

व्याह प्रजा नृप बिष्णु के, भावी सब क्रम भाइ।
कहत इकट्ठे जे जुदे, ठाँठाँ संभव ठाइ ॥१५॥

तँहँ तिय अट्ठ खवासि त्रय, संतति अट्ठ सुहात।
पंच रु सुत इक पुत्रिका, जँहँ ए रानिन जात ॥१६॥

बून्दी के सामंतों की नजर के बाद जब सचिवों की बारी आई तो उन्होंने भी नकद रुपये और सिरोपाव अपने राजा को भेंट किये। इस तरह अभिषेक और नजर के बाद नीचे के महलों से पर्वत पर बने महलों में शिशु (राजा) को ले जाया गया। हे राजा रामसिंह! अब मैं राजा विष्णुसिंह के विवाहों और सन्तानों के बारे में बताता हूँ जो आगे भविष्य में सम्पन्न हुए थे। मैं क्रमशः इकट्ठे ही यहाँ कह देता हूँ अन्यथा ठौर-ठौर पर यहाँ-वहाँ कहना पड़ेगा। राजा विष्णुसिंह के आठ रानियाँ, तीन पासवानें और कुल आठ संतानें थीं। इनमें से रानियों के गर्भ से पाँच पुत्रों और एक पुत्री का जन्म हुआ था।

षट्पाद्

नगरी बीकानैर भूप आनंद अंक भव,
संज्ञा करि गजसिंह धरत तँहँ छत्र धराधव।
सुता तास सिसु सबय पद्मकुमरी स नाम पहु,
व्याह्यो प्रथम बिबाह बितरि, धन पट भूखन बहु।
बालहि भई सु पुनि कालबस, बलि दूजी जह्योंनि बरि।
रानी बिदग्ध आनी रमन कमन करोलिय कित्ति करि ॥१७॥

बीकानेर के पूर्व राजा के गोद आया हुआ आनन्दसिंह जो वर्तमान में गजसिंह के नाम से बीकानेर का छत्र धारण कर राजा है उसकी पुत्री पद्मकुमारी जो राजा विष्णुसिंह की हम उम्र थी के साथ हाड़ा राजा ने अपना प्रथम विवाह सम्पन्न किया। इस विवाह के अवसर पर राजा ने बहुत सारा धन, वस्त्र और

आभूषणों का वितरण किया था और जो बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ था पर दुर्भाग्य से यह राठौड़ रानी बहुत कम उम्र में ही चल बसी तब राजा ने कीर्ति के साथ दूसरी रानी के रूप में चतुर और सुन्दर करोली की यादव राजकुमारी का वरण किया।

रोला

तुर समपाल तनूज पालमानिक्य आदि पहु।
नगर करोलिय नाह ललित ताकी कन्या लहु॥
अमृतकुमरि अभिधान व्याह दूजे नृप व्याहिय।
अतुल त्याग बसु अप्पि अतुल जस रस अवगाहिय॥१८॥

हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने शीघ्र ही करोली के यादव राजा समपाल के पुत्र माणिक्यपाल की सुन्दर कन्या को अपनी सहधर्मिणी बनाया। अमृत कुमारी नामक इस यादव कुमारी का वरण राजा ने अपने दूसरे विवाह के अवसर पर किया और उत्सवपूर्वक इस विवाह के अवसर पर भी राजा ने अपनी कीर्ति का प्रसार करने को बहुत सारा धन और भूमि त्याग में बाँटी।

घनाक्षरी

कोटापति मंत्री झल्ल जालम सुता सु तीजी,
नानता नगर व्याही अजब कुमारि नाम॥
सोपुर नगर गोर भूपति किसोर सुता,
सुरहि कुमारि चोथी रानी बरी अभिराम॥
रानी भटियानी लाडकुमरि मँगाइ डोला,
पंचमी बिबाही बीर भोज सुता बपु बाम॥
डोला आनि कन्या को प्रयागसिंह रानाउत,
सूरजकुमरि सो बिबाही छट्ठे उपयाम॥१९॥

राजा विष्णुसिंह ने अपना तीसरा विवाह कोटा महाराव के सचिव और नानता नगर के स्वामी झाला जालिमसिंह की पुत्री अजबकुमारी के साथ किया। सोपुर के गौड़ राजा किशोरसिंह की सुन्दर कन्या सूर कुमारी को हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने अपनी चौथी रानी बनाया। बून्दी के राजा ने अपना पाँचवाँ विवाह डोला मंगवा कर किया और डोला भाटी भोजसिंह की पुत्री लाडकुमारी का मँगवाया। इसी तरह राजा ने प्रयागसिंह राणावत की पुत्री सूरजकुमारी का

भी डोला मँगवाया और बून्दी में ही उससे छठा विवाह किया।

चूड़ालदोहा

ब्याही सप्तम ब्याह बलि, डगडोलीस गुमान आइ इत।
आश्रय पाइ अधीस को, बिनत ठानि संबंध हेरि हित ॥२० ॥

नंदकुमरि तस नंदिनी, बिधि संजुत सीसोदनीहु बरि ॥
नृप रानी आनि निलय, सप्तमी सु बुंदीहि ब्याह करि ॥२१ ॥

डगडोली के स्वामी गुमानसिंह ने बून्दी आ कर राजा का आश्रय पाया और अपना हित सोच कर अपनी पुत्री की सगाई राजा के साथ की। हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने अपना सातवाँ विवाह सीसोदिया गुमानसिंह की कन्या नन्दकुमारी के साथ पूरे विधि-विधान से सम्पन्न किया और उसे अपनी सातवीं रानी बना कर राजा अपने महलों में लाया।

घनाक्षरी

कष्णगढ द्रंग भूप अष्टम बिबाह बरि,
कीनी बाम अंगज प्रताप नृप की कुमारि ॥

स अमान कुमरि सनाम प्रभु माता सती,
आनी बरि अष्टमी हु रानी रीति अनुसारि ॥

कुच्छि खनि जाकी रत्न दीपक प्रकासि करैं,
आपसे उदार अहो टोटो रूप तम टारि ॥

पात्र के सनेह के दसा के परतंत्रन पै,
भासक सबन भासैं धर्म नीति जस धारि ॥ २२ ॥

किशनगढ़ के राजा के यहाँ हाड़ा राजा ने अपना आठवाँ विवाह रचाया। वहाँ के राठौड़ राजा प्रतापसिंह की पुत्री अमान कुँवरी से विवाह कर राजा विष्णुसिंह ने उसे अपनी आठवीं रानी बनाया। हे राजा रामसिंह! यही सती स्त्री श्रीमान की माता बनी। जिसकी रत्नों की खान रूपी कोख से आप जैसा उदार हृदय कुलदीपक प्रकट हुआ जो दारिद्रय रूपी अंधेरे को मिटाने वाला था। दीपक कि जो पात्र, तेल और बाती इन तीन पर आश्रित रहता है परन्तु यह रामसिंह रूपी दीपक उल्टा धर्म, नीति और यश इन तीन को धारण करने वाला था तब भी सभी को प्रकाश देने वाला था।

अष्टम बिबाह जिहिँ लग्न नृप कीनौं एह,
सोही लग्न साधि तब ब्याह कीनौं मम तात॥
प्रभु की सवित्री प्रभु कविकी सवित्री पुनि,
आई इक काल ऊढा पाइ कित्ति अवदात॥
सुद्धकुल आठ ए बिवाह भये संभर के,
जिनमैं छ तोक सुत पंच सुता इक जात॥
दूजी सुत जेठे इंद्रसिंह रु अनुज द्वैही,
बाल्य ही मैं कुमर मरे ए बिधिके बिघात॥ २३॥

हे राजा रामसिंह! बून्दी के स्वामी विष्णुसिंह ने जिस लग्न में अपना यह आठवाँ विवाह किशनगढ़ में रचाया उन्हीं लग्नों पर मेरे पिता ने भी विवाह किया। हे स्वामी! आपकी माता और आपके कवि (ग्रंथकार सूर्यमल्ल) की माता दोनों विवाहित हो कर एक साथ बून्दी आई और दोनों ने यश अर्जित किया। (संभवत: राजा की बारात में आए हुए चंडीदान मीसण का विवाह किशनगढ़ के गोदियाणा गाँव के किसी बारहठ परिवार में सम्पन्न हुआ होगा-संपादक)। राजा विष्णुसिंह के ऊपर वर्णित आठों विवाह विशुद्ध कुल वाले परिवारों में सम्पन्न हुए जिनसे राजा को छ: सन्तानों की प्राप्ति हुई इनमें से एक कन्या और शेष पाँच पुत्र थे। राजा की दूसरी यादव रानी की कोख से ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रसिंह और उसका छोटा भाई जन्में पर दुर्भाग्यवश राजा के ये दोनों पुत्र बाल्यावस्था में ही रोगग्रस्त हो कर चल बसे।

चूड़ाल दोहा

इंद्रसिंह को जो अनुज, सुचित इह जह्नौनि जन्यौं सुत।
नामहु तास न परि सक्यो, सिसुतम सो हुव देहहीन द्रुत॥२४॥
क्रम तीजो इम नृपति कै, तनय भयो बलदेवसिंह तँह।
जो चोथी रानी जनित, अनसु भयो सिसुभाव मैं हि यह॥२५॥
पटु अष्टम रानी प्रसव, अप्प भयो प्रभु राम बंसइन।
मितिक्रम अत्र चतुर्थमत, दीपित किय जिन नाम रत्ति दिन॥२६॥
पंचम सुत सप्तमि प्रसव, हुव गोपाल सु व्यध्व पथिक हुव।
समुझावन तिहि प्रभु सुनय, धारी तँह प्रतिकुल बन्यौं धुव॥२७॥

कुमार इन्द्रसिंह का छोटा भाई जो यादव रानी के गर्भ से उत्पन्न था का नाम ज्ञात न हो सका क्योंकि वह जन्म लेने के थोड़े समय बाद ही काल कवलित हो गया था और उसका नामकरण भी नहीं हुआ था। राजा विष्णुसिंह के तीसरा पुत्र बलदेवसिंह नामक जन्मा जो राजा की चौथी रानी की कोख से उत्पन्न हुआ पर शैशवावस्था में ही वह प्राणरहित हो गया अर्थात् मर गया। राजा की आठवीं रानी के गर्भ से जो कुमार जन्मा हे स्वामी रामसिंह! वह आप स्वयं जो अपने वंश के स्वामी हैं। कुमारों के क्रम में चौथे स्थान पर जन्में (आप) कुमार ने अपने नाम को रात दिन में एक जैसा उज्ज्वल बनाया। राजा के पाँचवा कुमार जो उसकी सातवीं रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ वह गोपालसिंह गलत मार्ग पर चलने वला पथिक सिद्ध हुआ। उसे हे स्वामी! आपने समय-समय पर नीतिपूर्वक समझाने में कोई कसर न रखी पर वह तो सद्मार्ग के सदा प्रतिकूल ही बना रहा।

आसापूरनि अंबिका, मंदिर ढिग कर्णादि भटन मिलि।
दिट्ठि कैद तब तिहि दयो, खग्गादिक सब छिन्नि नर्म खिलि॥२८॥

तास हवेली भेजि तिहिं, पुनि सूचिय अब लेहू बंस पथ।
कुलपतनी आदर करहु, करहु न गनिका संग निंद्य कथ॥२९॥

दिय प्रबोध प्रभु इम दुलभ, तदपि मूढ प्रतिकुल भाव तकि।
करि मेहऩ छेदन कुमति, छीव रह्यो अपकित्ति सुरा छकि॥३०॥

आशापूर्णा देवी के मन्दिर के पास इस कुमार गौपालसिंह को कर्णसिंह आदि योद्धाओं ने मिल कर पकड़ा और हँसते-हँसते उसकी तलवार आदि शस्त्र छीन कर उसे नजरकैद किया था। आपने तब उसे उसकी हवेली भिजवाया और कहलाया था कि अब आगे से उसे अपने कुल की मर्यादा के अनुरूप मार्ग पर चलना चाहिए। तुम्हें अपनी कुलवधू का संग करते हुए उसका आदर करना चाहिए न कि किसी गणिका का निंदा भरा सान्निध्य ग्रहण करना चाहिए। आपने तो हे स्वामी! उस गोपालसिंह को सदा ही अच्छी राय दी पर वह मूर्ख सदा प्रतिकूल मार्ग का पथिक बना जहाँ उसे अपना लिंग कटवा कर अपकीर्ति का वरण करना पड़ा। वह कुमति कुमार सदा मद्य में छका ही रहा।

दोहा

भई सुता इक भूपकै, तीजी औरस ताम।
सोहु मरी बिधिबस सिसुहि, न परि सक्यो तस नाम॥३१॥

राजा विष्णुसिंह के इन पाँच पुत्रों के अतिरिक्त एक औरस पुत्री भी जन्मी पर वह भी शैशवास्था में चल बसी जिससे उसका नामकरण भी नहीं हो सका।

षट्पत्

सुंदर सोभा सुघरराय -- क्रम सारंग सह,
कमन खवासिन कोहु अवनिपति कै हुव त्रिक यह।
तीजी बिधि करि तत्थ लह्यो सुत बिनयसिंह लहु,
पातुरिगन तिम प्रथित बिबिध पटु हुव नृप के बहु।
जिन माँहि नयनसोभा जनित रूपकुमरि कन्या रुचिर।
संतान अट्ठ ल्हि इन सहित समह तप्यो नृप सबन सिर॥३२॥

हाड़ा राजा के सुन्दर शोभा, सुघड़राय और सारंगराय ये तीन रूपवंत पासवानें थीं। इनमें से तीसरी खवासन के एक विनयसिंह नामक पुत्र जन्मा। इन पासवानों के अतिरिक्त भी राजा की मर्जीदान कई चतुर पातुरियाँ थीं। इनमें से एक नयनशोभा नामक पातुरी के गर्भ से एक रूपकुमारी नामक कन्या का जन्म हुआ। इस प्रकार बून्दी के स्वामी विष्णुसिंह ने उपरोक्त वर्णित आठ सन्तानें पा कर उत्सवपूर्वक सभी के सिर पर राज किया।

काका नृपको कथित बीर अभिधान बहादुर,
तास तनय बलवंत प्रथित थिन थान गोठपुर।
ज्ञान कुमरि अभिधान इक्क परन्यौं भट्यानिय,
अत्थहि डोला आत स्याम तनया जग जानिय।
तस प्रसव तीन प्रकटे सुतहि जे धौंकल फतहमल्ल जँह।
तिन्ह अनुज भोम तीजो तनय आयति होहि प्रमत्त यह॥३३॥

राजा विष्णुसिंह के एक पराक्रमी काका बहादुरसिंह नामक था उसका पुत्र बलवंतसिंह हुआ जो वर्तमान में गोठड़ा नामक पुर का स्वामी है ने भी श्यामसिंह भाटी की रूपवती कन्या ज्ञानकुमारी का डोला मंगवाकर उससे विवाह रचाया। बलवंतसिंह की इस पत्नी के गर्भ से तीन पुत्र जन्में जिनमें से पहला धोंकलसिंह और दूसरा फतहमल्ल (फतहमल) था। इन दोनों से छोटा

भोमसिंह हुआ। हे राजा रामसिंह! बलवंतसिंह के यह तीसरा पुत्र आगे आने वाले समय में जन्मा जो प्रमत्त वीर हुआ।

दोहा

भटियानी सालम सुता, दोलतकुमरि सनाम।
बलवंतानुज एक, ब्याह्यो दलपति बाम॥३४॥

सिंधु भयो सूरत्व को,इक नारीव्रत एह।
रन सहाय खिच्चिन खिरयो,तिल तिल दलपति देह॥३५॥

सेरसिंह याके अनुज,लहि डोला इक नारि।
सुता बरि खुसहाल की,जो आनंदकुमारि॥३६॥

हुव ताकै सुत दुव सहज,जे जय बिजय सनाम।
जामिज बीकानैर के,रट्ठोरन प्रभु राम॥३७॥

अनुज बहादुरसिंह को, सूचित जो सरदार।
द्रंग दुधारी थान तस, दुव हुव कथित कुमार॥३८॥

व्याही ईश्वरिसिंह तँहँ, जेठे सुत चउ नारि।
अजब कबंधज अंगजा, प्रथम गुलाबकुमारि॥३९॥

राजा के काका बहादुरसिंह का दूसरा पुत्र और इस हाड़ा बलवंतसिंह का छोटा भाई जो दलपतसिंह था उसने सालमसिंह भाटी की पुत्री दौलत कुँवरी से विवाह किया। यह दलपतसिंह एक पत्नी का व्रतधारी और पराक्रम का समुद्र था जो खीचियों की सहायता हेतु युद्ध लड़ता हुआ रणभूमि में तिल-तिल कट कर बिखरा था। दलपतसिंह के छोटे भाई शेरसिंह ने भी डोला मँगवा कर विवाह किया। इसके लिए उसने खुशालसिंह की पुत्री आनन्द कुमारी का डोला बून्दी मँगवाया था। शेरसिंह के दो पुत्रों का युग्म जन्मा। साथ जन्में इन दोनों भाइयों के नाम जय और विजय थे अर्थात् जयसिंह, विजयसिंह थे। हे राजा रामसिंह! बीकानेर के राठौड़ राजा का भानजा और बहादुरसिंह का छोटा भाई जो सरदारसिंह कहलाया। दुधारी नगर के जागीरदार इस सरदारसिंह के दो पुत्र थे इनमें से बड़े ईश्वरीसिंह ने अपने चार विवाह रचाये। उनमें से पहला विवाह उसने राठौड़ अजबसिंह की पुत्री गुलाब कुमारी के साथ सम्पन्न किया।

दूजी जादव मेघजा, फतैहकुमरि निज कीन।
तीजी ताही नाम करि, चालुक नाथ कुलीन॥४०॥
इनमैं ईश्वरीसिंह के, जानी भूत प्रजा न।
जान्यौं तनय खवासि जनु, इक लछमन अभिधान॥४१॥
ईश्वर को भ्राता अनुज, देवीसिंह द्वितीय।
जो व्याह्यो इक जादवी, धरि मह सुंदर धीय॥४२॥
बिष्णुकमरि नाम जु बिदित्त, जात प्रजा चउजास।
संभू अरु सिवदान सुत ए, जेठे दुव आस॥४३॥
कन्या गोवर्द्धन कुमरि, क्रम गोविंद कुमारि।
मरी अनूढा ए उभय, अप्पन बिधि अनुसारि॥४४॥
इक खवासि भव अंगजा, इनकी अनुजा आहि।
परिनाई तुम राम प्रभु, द्रंग जोधपुर जाहि॥४५॥
वृद्धि कुमरि अभिधान जो, सो परन्यौं सरदार।
अत्थहि आय खवासि भव, नृप तखतेस कुमार॥४६॥

सरदारसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह ने अपना दूसरा विवाह यादव मेघसिंह की पुत्री फतह कुमारी से किया और तीसरा विवाह चालुक्य नाथसिंह की पुत्री फतह कुमारी (नाथ कुमारी) से किया। तीनों पत्नियों से ईश्वरीसिंह को एक भी सन्तान नहीं जन्मीं। हाँ, उसकी एक पासवान के एक पुत्र अवश्य हुआ जिसका नाम लक्ष्मणसिंह था। सरदारसिंह के दूसरे पुत्र और ईश्वरीसिंह के छोटे भाई देवीसिंह ने उत्सवपूर्वक विवाह रचा कर रूपवती यादव कुमारी से विवाह किया। विष्णु कुमारी नामक इस यादव पत्नी से देवीसिंह के चार सन्तानें हुई जो क्रमशः इस प्रकार थीं। सबसे बड़ी पुत्री गोवर्धन कुमारी और उससे छोटी गोविंद कुमारी दोनों पुत्रियों का विवाह नहीं हुआ उससे पहले ही ये दोनों चल बसी। दो पुत्रों में से बड़ा शंभूसिंह और उससे छोटा शिवदान था। विष्णु कुमारी के अतिरिक्त देवीसिंह के एक खवासन भी थी इसके गर्भ से एक पुत्री जन्मी जो दूसरे सभी भाई-बहनों से छोटी थी और जिसका विवाह हे स्वामी रामसिंह! आपने ही करवाया था जोधपुर जाकर, जिसका नाम वृद्धि कुमारी था, उसका विवाह सरदारसिह के साथ हुआ। उस खवासन ने यहीं

बून्दी आ कर एक पुत्र को जन्म दिया। हे राजा! उस कुमार का नाम तख्तसिंह था।

दोहा

सुभू तैं जेठो सहज, नाम तास ---------- ।
सोहु कुमर दुव बरस रहि, भयो काल के साथ॥४७॥

पंचम संकरसिंह पुनि, सो कनिष्ट सिवदान।
कछुक दिनन के अंत करि, सोहु भयो अवसान॥४८॥

लावक गाँम इलेस की, मुहुकमजा वह नारि।
परनी संभूसिंह प्रथ, मानहु चंद्रकुमारि॥४९॥

सोलंखी रतनेसजा तखतकुमरि अभिधान।
बरि आनी संभू बहुरि, दूजी पुर दुबलान॥५०॥

शंभूसिंह से एक बड़ा भाई पहले जन्मा था उसका नाम ज्ञात न हो सका पर वह मात्र दो वर्ष की उम्र तक ही जीवित रहा। इसी तरह शिवदान से छोटा एक भाई भी था शंकरसिंह नामक पर वह जन्म लेने के थोड़े दिनों बाद ही मर गया। देवीसिंह के पाँच संतानें हुई पर उसमें से मात्र तीन, दो पुत्र और एक पुत्री ही जीवित बचे। शंभूसिंह ने लावा ग्राम के भूपति मुहुकमसिंह की पुत्री चन्द्रकुमारी से विवाह किया। शंभूसिंह ने अपना दूसरा विवाह सोलंकी रतनसिंह की पुत्री तख्तकुँवरी से किया और अपनी इस दुल्हन को दुबलाना ले कर आया।

पुनि व्याही हम्मीर पुर, विष्णुसिंह बपुजात।
आनंदादिकुमारि इम, सुरतानोत सुनात ॥५१॥

भूप भ्रात पुर कापरनि, पति सांमत प्रबीन।
ब्याह जीन बिरचे बिदित, तनय लहे तहँ तीन॥५२॥

पतनी यह परन्यौं प्रथम, रूपनगर राठोरि।
दूजी राजाउत्ति इम, वहहु बरी पटजोरि॥५३॥

पुनि तीजी सिवराजपुर, पति कबंध चंदेल।
दुहिता तस परन्यौं दुलह, मंजु सबय लहि मेल॥५४॥

इसके बाद उसने अपना तीसरा विवाह हम्मीरपुर के भूपति (सुरतान के वंशज) विष्णुसिंह की सुन्दर कन्या आनन्दकुमारी से रचाया। हाड़ा राजा का भाई जो कापरनी का जागीरदार था उस सामन्तसिंह ने तीन विवाह किये और तीन पुत्रों का पिता बना। पहला विवाह सामन्तसिंह ने रूपनगर की राठौड़ राजकुमारी से किया। दूसरे विवाह में उसने राजावत कुमारी को अपनी पत्नी बनाया। तीसरा विवाह सामन्तसिंह ने शिवराजपुर के चन्देला राठौड़ की पुत्री से किया जो उसकी समवयस्क और सुन्दर थी।

तीजी कै जेठो तनय, हुव बलदेव सनाम।
दूजी कै कृष्णा रू बिरूद, तनय भये दुव ताम।।५५।।

ब्याह प्रजा भावी बिदित, सूचे इह क्रम संग।
बर्तमान मैं देहु बलि, अब श्रव श्रवन उमंग।।५६।।

सूचित सक बुंदी सुपहु, बिष्णुसिंह सिसुबेस।
जनक छत्र धरि सीस जो,इम हुव भुव अखिलेस।।५७।।

इत पहिलैं नृप अजित नैं, सीम अमरगढ माँहिं।
अरिसिंहहिं परलोक दिय, बिल्लहटा दिय नाहिं।।५८।।

सामन्तसिंह के अपनी तीसरी पत्नी की कोख से बलदेवसिंह नामक पट्ट कुमार ने जन्म लिया वहीं दूसरी पत्नी के गर्भ से दो पुत्र क्रमशः कृष्णसिंह और विरुदसिंह जन्में। हे राजा रामसिंह! मैंने अब तक राजा सहित अन्य बांधवों के विवाह और सन्तानों का जो विवरण दिया उसे क्रम में मानें यद्यपि इनमें से कुछ भविष्य में सम्पन्न हुए पर उन्हें यहाँ कह दिया है। सूचित वर्ष अठारह सौ तीस तक बून्दी का राजा विष्णुसिंह बाल्यावस्था में था पर अपने पिता का छत्र धारण कर उसे राजा बनना पड़ा। इससे पूर्व बून्दी के हाड़ा राजा अजीतसिंह ने अमरगढ़ नामक गाँव की सीमा में उदयपुर के महाराणा को परलोकगमन दिया पर मेवाड़ का गाँव बिल्लहटा नहीं दिया।

सुत जेठे अरिसिंह के, व्हैअधिपति हम्मीर।
संध्या पँहँ पठये सचिव, बुंदिय दब्बन बीर।।५९।।

ज्योंही बेघम आदि जे, मिले कपटसिसु मध्य।
दक्खिन को भर दैन चहि, बंछे तिन कँहँ बध्य।।६०।।

भीम सलूमरि नाह को, भ्राता अर्जुन नाम।
अपर बनिक ए दुव गये, माहजि कटक मुकाम॥६१॥
संध्या माहजि तिँहिँ समय, पूरब करि बस प्राय।
आवत हो अजमेर इह, इत पिक्खन व्यय आय॥६२॥

महाराणा अरिसिंह के इस तरह अचनाक मारे जाने पर उनका बड़ा बेटा हम्मीरसिंह उनका उत्तराधिकारी बना। उसने तत्काल अपने सचिव सिंधिया महादजी के पास इस आशय से भिजवाये कि वह बून्दी लेने में हमारी सहायता करे। इधर बेगूं का जागीरदार आदि जो कपट शिशु (रत्नसिंह) के साथ हो गए थे उनको मारने का भार भी उदयपुर वाले सिंधिया को देना चाहते थे। इसके लिए नये महाराणा ने सलूंबर के रावत भीमसिंह के छोटे भाई अर्जुनसिंह और अपने बनिये सचिव दोनों को महादजी सिंधिया के पास भेजा। वे सिंधिया की सेना के पड़ाव वाले ठिकाने पर जाने को रवाना हुए। इस समय महादजी पूर्व दिशा के क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने के बाद वापस अजमेर की तरफ वहाँ की व्यवस्था और आय-व्यय देखने के लिए आ रहा था।

तँहँ वकील ए रानके, पहुँचे बिनय प्रसारि।
मोर्‍यो इत कछु दम्म दै, बेघम मंडन रारि॥६३॥
दर कुंचन तब नैंनपुर, आयों माहजि तत्त।
सचिंव मुख्य सुखराम पँहँ, पठये बुंदिय पत्त॥६४॥
बिल्ल्हटा बुंदीस लिय, अनुचित करि अति गर्ब।
मार्‍यो पुनि अरिसिंह कौं, यामैं ओगुन सर्ब॥६५॥
तुरगादिक अरिसिंह को, आयो विभव जितोक।
बिल्ल्हटा जुत देहु अब, उनको है वह ओक॥६६॥

अजमेर में महाराणा के भेजे हुए दोनों वकील महादजी सिंधिया के पास पहुँचे। यहाँ आ कर उन्होंने विनम्रता भरे शब्दों में अपनी समस्या बताई और कुछ धन देकर बेगूं पर चढाई करने के लिए मना लिया तब महादजी सिंधिया अजमेर से दर कूच दर मंजिल चल कर नैणवा पहुँचा। यहाँ से उसने बून्दी के मुख्य सचिव के पास पत्र लिखकर भेजा कि यहाँ जो तुम्हारे राजा ने

बलात् मेवाड़ का गाँव बिल्लहटा (बिलेड़ा) लिया है। यह अनुचित कर्म है। इसके अलावा तुम्हारे राजा ने महाराणा अरिसिंह (अड़सी) को मारा यह एक अपराध भरा कृत्य था फिर ऊपर से अरिसिंह के घोड़े और अन्य सामग्री भी छीन ली इसलिए अब तुम्हें कहा जाता है कि बिल्लहटा गाँव सहित महाराणा के घोड़े और अन्य असबाब वापस लौटाओ। यह गाँव मेवाड़ वालों का है तुम्हारा नहीं।

धाइभ्रात सुखराम तब, नपयट्टु समय निहारि।
बिल्लहटा जुत रान हय, दिन्नौं बिहित बिचारि॥६७॥

कोटापति तनु त्याग किय, इत गुमान लहि खेद।
पट्ट सु पायो तस तनय, उचित रीति उम्मेद॥६८॥

झल्ल जालमसिंह तिँहिं, मुख्य सचिव किँय तत्थ।
राज्यकाज प्रकट रु पिहित, सब सौंपे तस हत्थ॥६९॥

असह रोग उपदंस जुत, पहिलैं इक पननारि।
नटन निपुन कोटानगर, आई लोभ बिचारि ॥७०॥

बून्दी के सचिव सुखराम ने नीतिपूर्वक विचार कर बिल्लहटा गाँव और घोड़े लौटा दिये। इसी बीच कोटा में रोग से ग्रस्त महाराव गुमानसिंह का स्वर्गवास हो गया तब उचित रीति से उनका पाटवी पुत्र उम्मेदसिंह कोटा का नया राजा बना। उम्मेदसिंह ने राजपाट संभालते ही झाला जालिमसिंह को अपना मुख्य सचिव नियुक्त किया और राज्य के प्रकट और गुप्त सारे काम उसे सोंप दिये। इन्हीं दिनों आतसक रोग से ग्रसित एक वैश्या जो नृत्य विधा में निपुण थी अपना लोभ सोचकर कोटा आई।

नृप गुमान अग्गैं नची, भाव हाव सह भास।
बिगर्‌यो मन कोटेस को, न लखैं लोलुप नास॥७१॥

मन्यो नहिँ गनिका सु मत, तदपि बुलाइ निकेत।
लगि कुकर्म उपदंस लहि, इम हुव अब सु अचेत ॥७२॥

नृप गुमान को जो अनुज, सो तँहैं नाम सरूप।
भेज्यो जालम झल्ल भनि, भूप होहु हनि भूप॥७३॥

तब नृप मारयो बंधि तिहिं, नीच गरल उपनाह।
भूरिमायु दमनक भयो, साचिव झल्ल सचाह॥७४॥

इस गणिका ने राजा उम्मेदसिंह के समक्ष अपना नृत्य प्रस्तुत किया और अपनी भाव-भंगिमाओं से राजा को मोहित कर लिया। राजा का भी अत्यन्त काम के वश हो कर मन बिगड़ गया। राजा ने उसे अपने महलों में बुलाया पर इस वैश्या ने राजा के इस आमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया पर राजा नहीं माना उसने जबरन वैश्या को बुलवाया और उसके साथ कुकर्म सम्पन्न किया जिसके कारण राजा को भी आतसक का रोग लग गया। इसके बाद राजा रोगग्रस्त हो कर अचेत सा रहने लगा। तभी राजा गुमानसिंह का छोटा भाई जो स्वरूपसिंह था उसे झाला जालिमसिंह ने यह कहला भेजा कि तुम राजा उम्मेदसिंह को मार कर स्वयं राजा क्यों नहीं बन जाते। तब उस स्वरूपसिंह ने राजा उम्मेदसिंह के जहर मिली मरहम पट्टी बंधवाकर मरवा डाला। यहाँ झाला जालिमसिंह ने पंचतंत्र और हितोपदेश के 'सुहृद्भेद' नामक कथा के सियार पात्र दमनक की भूमिका निभाई (जिसने संजीवक नामक बैल और पिंगलक नामक सिंह की बढ़ती हुई मित्रता को तोड़ दोनों के मध्य विरोध बढ़वाकर पिंगलक से संजीवक को अपने लाभ के लिए मरवाया था- संपादक)।

रानिन पँहँ पठई अरज, इत जालम लिखि एस।
तुमरे देवर नृप हन्यौं, बन्यौं चहत बसुधेस॥७५॥

सुनि रानिन किय सूचना, जसकर्णहि निज जानि।
तकि कछु बिधि धातेय तुम, मारहु तिँहिं खल मानि॥७६॥

सचिव मुख्य जसकर्ण सुनि, इम रानिन आएस।
उपबन माहिं सरूप वह, दुष्ट हन्यौं कहि द्वेस॥७७॥

अब उम्मेद गुमान सुत, कोटापति हुव ताहि।
इक्क दिवस इकंत लै, जालम कहिय सराहि॥७८॥

वहीं जालिमसिंह झाला ने दूसरी तरफ रानियों के पास यह खबर पहुँचाई कि तुम्हारे देवर (स्वरूपसिंह) ने राजा को मरवा दिया और अब वह स्वयं कोटा का राजा बनना चाहता है। यह खबर पा कर रानियों ने जसकरण

नामक एक धायभाई को अपना मान कर यह सूचना भेजी कि जैसे-तैसे कर उस दुष्ट (स्वरूपसिंह) को मार गिराओ! कोटा के मुख्य सचिव जसकरण ने रानियों का आदेश पाते ही बाग में जाकर स्वरूपसिंह को दुष्ट कह कर मार गिराया। पूर्व में राजा गुमानसिंह की मृत्यु के बाद जब उम्मेदसिंह कोटा का राजा बना तब एक दिन एकांत में लेकर उसे झाला जालिमसिंह ने महाराजा की प्रशंसा करते हुए कहा था।

अहो अखिल प्रभु के अनुग, अरु प्रभु प्रानन ईस।
पै अब इक अनुचित प्रबल, सचिव कुपित निज सीस ॥७९॥

मोसो यह जस कर्ण मिलि, बदत गुढ तजि बट्ट।
मारैं नृप उम्मेद कौं, अर्प्पैं अपरहिं पट्ट ॥८०॥

जिहिं सठ काका रावरे, मारे बिदित बकारि।
न गिनैं सो उचितानुचित, तुल्लि रह्यो तरवारि ॥८१॥

बदत यहहि नृप मति बदलि, सजि भट कछुक स्वतंत्र।
कुजस करन त्यौं जसकरन, मारन मंडिय मंत्र ॥८२॥

हे राजा उम्मेदसिंह! राज में सभी आपके सेवक हैं। आप सभी के प्राणों के स्वामी हैं परन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि फिर वह जसकरण (सचिव) आप से कुपित क्यों है? क्योंकि एकबार उस सचिव जसकरण ने स्वामिधर्म की राह छोड़ते हुए मुझसे कहा था कि क्यों न इस उम्मेदसिंह को मार कर हम किसी अन्य को राजा बना दें। उस दुष्ट ने जिस दिन आपके काका को ललकार कर मारा था उसी दिन से वह अपनी तलवार के बल पर उचित और अनुचित कुछ नहीं गिनता। झाला जालिमसिंह ने ऐसी कुटिल राय देकर राजा का दिमाग फिरा दिया और कुछ स्वतंत्र योद्धाओं को सज्जित कर कुयश कमाते हुए जसकरण को मरवाने की सोची।

तकि खिन जालम झल्ल तिम, व्है जसकरन सहाय।
कही तुमहिं मारन कुमति, यह नृप करत उपाय ॥८३॥

यातैं तुम निकसहु अबहि, पुनि हम ओसर पाइ।
नृप को कोप निवारिकैं, लै हैं बिदित बुलाइ ॥८४॥

इम संजीवक बैल यह, निकसायो डर डारि।
भयो झल्ल दमनक भरुज पिंगल नृपहिं निहारि ॥८५॥

माहजि लोभ अधीन इत, सेना अतुल सजाइ।
रान वकीलन के कहैं, लग्गे बेघम जाइ॥८६॥

पर उसी झाला ने अवसर देखकर सचिव का सहायक बनते हुए उसे यह कह दिया कि कुमति राजा तुम्हें मारने के उपाय सोच रहा है इसलिए अच्छा यह रहेगा कि अभी तुम चुपचाप यहाँ से कहीं भाग जाओ फिर जब राजा के कोप का निवारण हो जाएगा तब मैं अवसर पा कर तुम्हें फिर से यहाँ बुलवा लूँगा। इस तरह से पंचतंत्र की कथा के पात्रों की तरह उस संजीवक बैल (सचिब जसकरण) को भय बता कर बाहर निकलवा दिया और राजा को पिंगलक नामक सिंह बनाते हुए स्वयं झाला दमनक गीदड़ हो गया। उधर महादजी सिंधिया ने लोभ के अधीन हो अपनी अतुलनीय सेना सज्जित की और उदयपुर के महाराणा के वकीलों के कथनानुसार बेगूं जा पहुँचा।

सक नभ गुन धृति मित समा, मलिन प्रौष्टपद मास।
बेघम संध्या बिंटिकै, तोपन डारयो त्रास॥८७॥

सुनि यह इत बुंदीस के, बहुत सज्ज करि बीर।
श्रीजित कहि सुखराम सौं, भेजे बेघम भीर॥८८॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीस के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष में सिंधिया महादजी ने बेगूं को घेर लिया और अपनी तोपों के प्रहार से भय फैलाया। जब इसकी खबर बून्दी आई तो श्रीजित (पूर्व राजा उम्मेदसिंह) ने बून्दी के सचिव सुखराम से कहा कि अपने यहाँ से भी बेगूं की सहायता को सज्जित वीर योद्धा भेजे जाएँ।

राजसवतिका

पटु राउत देव करयो पहिलैं निज तात पैं जो उपकार नयो।
जन बुंदी के आप निबाहे जथा दृढ चित्त स्वकीयन कष्ट दयो॥
अपने घर जासौं अहो पट अन्न को भोगह अल्पहि अर्घ भयो।
यह श्रीजित ह्रीहित चित्त इहाँ प्रतिकारी बरूथ उहाँ पठयो॥८९॥

पूर्व में बेगूं के चतुर रावत देवसिंह ने जो अपने राजा पिता बुधसिंह पर उपकार किये थे। उस दृढचित्त देवसिंह ने अपने आदमियों को भले ही कष्ट दिया हो पर उस रावत ने बून्दी के लोगों का अपने यहाँ रख कर अच्छी तरह

निर्वाह किया। ऐसी स्थितियों के चलते उसने अपने घर वालों को अल्पमूल्य के वस्त्र पहनाये और सस्ता अन्न खिलाया पर हमारा पूरा ध्यान रखा। यही कारण रहा कि लज्जापूर्वक उसका हित सोचते हुए श्रीजित ने उपकार का बदला चुकाने के लिए बून्दी की सेना बेगूं भेजी।

दोहा

पाइ मेघ बेघम पतिहु, भट इतके निज भीर।
सजि गढ पुत्र प्रताप सह, बिरच्यो संगर बीर॥९०॥

रन संकट बहुदिन रह्यो, खिरन लगे गढ खंड।
जालम कोटा सचिव जब, दै बिच ओड्यो दंड॥९१॥

दम्म लक्ख खट दैन करि, हीन वित्त तँहँ होइ।
गढ सिंगोली रत्नगढ, दये परगनाँ दोइ ॥९२॥

संध्या कै अब लग सुपै, रहत उभय प्रभु राम।
बली अरिन दब्बे बहुरि, धाम न आये धाम॥९३॥

जब बून्दी की सेना सहायता करने बेगूं पहुँची तो रावत मेघसिंह ने अपने योद्धाओं को सज्जित किया और अपने पुत्र प्रतापसिंह को साथ ले दुर्ग के मोर्चे पर सिंधिया की सेना का मुकाबला करने आ डाटा और युद्ध आरंभ किया। युद्ध का यह संकट बेगूं पर कई दिनों तक रहा। इस बीच उसका दुर्ग भी खंडित होने लगा। ऐसे समय में कोटा का सचिव झाला जालिमसिंह मध्यस्थ बना और उसने सिंधिया को फौजखर्च सहित दण्ड के रुपये देना स्वीकार किया। इस समय छः लाख रुपये देना तय हुआ पर इतने रुपये पास नहीं होने के सबब सिंगोली और रत्नगढ़ के दो परगने सिंधिया को देने पड़े। हे राजा रामसिंह! उन दोनों परगनों पर अद्यावधि सिंधिया का ही अधिकार है। इर परगनों के अतिरिक्त भी बलवान शत्रु सिंधिया ने जो भूमि बेगूं की दबा ली वह वापस बेगूं के अधिकार में न हो सकी।

पुर बेघम इम हीन परि, दै दम सूचित देस।
मेटि बिरोध रु किय मुदित, बुंदिय कित्ति बिसेस॥९४॥

श्रीजित इत बुंदीस के, बीरन सबन बुलाइ।
सूची है उत्तानसय, प्रभु तुमरो बिधि पाइ॥९५॥

सुखरामहिं किय निज सचिव, विष्णुसिंघ तुम ईस।
तिहिं मन्नहु प्रभु तुल्य तुम, सासन निबहहु सीस॥९६॥

बीर भवानीसिंघ बलि, माधानी भगवंत।
दुव तुम याके पास दुव, मगमैं चलहु सुमंत॥९७॥

इस प्रकार कमजोर बेगूं ने दण्ड राशि के भुगतान में अपने परगने दे कर शत्रु सिंधिया से बैर-विरोध समाप्त किया पर इस कार्य में सहायता देने से बून्दी को विशेष कीर्ति मिली। इधर श्रीजित ने बून्दी के राजा के सभी सामंतों को बुलवाया और कहा कि यह हाथ-पाँव ऊँचा रख कर सोने वाला (उत्तानसय) अर्थात् बालक विधाता की दया से तुम्हारा स्वामी है! तभी श्रीजित ने सुखराम को बून्दी का सचिव बनाया यह कहते हुए कि आज से अजीतसिंह का पुत्र तुम्हारा स्वामी है उसे तुम अपना मालिक समझ कर उसके प्रत्येक आदेश का पालन करना। इसी तरह भवानीसिंह और माधानी हाड़ा भगवंतसिंह को आज्ञा दी कि आज से तुम सदा सर्वदा राजा के पास रहोगे और राजा को सन्मार्ग पर चलने में मदद करोगे।

सूनु बहादुरसिंघ सौं, अक्खिन बहुरि उदग्ग।
राज पितृव्यक तुम रहहु, मग मैं याके अग्ग॥९८॥

मिलत न जैसो महतपन, करत राज्य को काम।
तैसो लहि धात्रेय तिम, सचिव बढ्यो सुखराम॥९९॥

अतिहित जालम झल्ल इत, बुंदीपतिहिं बिखान।
माधानी भगवंत कौं, पुनि कोटा लै जान॥१००॥

दुव सामंत रु सचिव दुव, इक मरहट्ट अराल।
कोटा रक्खिय माहजि जु, लैन अब्द कर लाल॥१०१॥

उदग्र श्रीजित ने फिर अपने पुत्र बहादुरसिंह से कहा कि तुम राजा के काका होने के सबब राजा की राह में सदा आगे बने रहोगे। सामान्यतः जितना महत्व राज-काज करने में सचिव को नहीं मिला करता उससे भी अधिक महत्वूपर्ण बन कर वह धायभाई सुखराम बढ़ा। उधर झाला जालिमसिंह ने बून्दी के राजा के प्रति अत्यन्त हित प्रदर्शित करते हुए कहा कि मैं माधानी हाड़ा भगवंतसिंह को वापस कोटा ले जाना चाहता हूँ। इधर महादजी सिंधिया

ने अपने दो सामन्तों और दो सचिवों सहित एक टेढे (बांका) सिपाही लाला नामक मराठा को कोटा में तैनात किया जो सालाना खिराज की वसूली कर सके।

सो पंचम जालम सुहृद, ए पठये कहि एह।
कोटा बुंदिय नृपन कै, संथहु परम सनेह॥१०२॥

नाथ नाम गैंता नगर, ईसजु हिरदाउत्त।
दूजो भटवारेस भट, संभू इँदसल्लुत॥१०३॥

देवकरन भूसुर सचिव, अरु कायत्थ निहाल।
इम पंचम मरहट्ठ यह, सुहृद झल्ल को लाल॥१०४॥

मिले सचिव सुखराम सौं, ए सब बुंदिय आई।
पुनि लग्गे श्रीजित पयन, बिनत सनेह बढाई॥१०५॥

यह लाला नामक मराठा झाला जालिमसिंह का पाँचवा मित्र बन गया तब उसने शेष चारों (दो सामन्त और दो सचिव) को यह कह कर वापस भिजवा दिया कि इतने लोगों की यहाँ अब क्या आवश्यकता है क्योंकि अब कोटा और बून्दी के राजाओं में परस्पर परम स्नेह है। झाला के चार मित्रों में से पहला मित्र हिरदावत शाखा का हाड़ा नाथूसिंह था जो गेंता नामक नगर का जागीरदार था। दूसरा मित्र भटवाड़ा नामक गाँव का सामन्त योद्धा इन्द्रसलोत हाड़ा शंभूसिंह था। तीसरा मित्र ब्राह्मण सचिव देवकर्ण और चौथा निहालचन्द कायस्थ था। अब इन चारों के अतिरिक्त पाँचवा मित्र वह लाला मराठा बन गया। तब पाँचों मित्रों को साथ ले झाला जालिमसिंह बून्दी आया और सुखराम से मिला फिर श्रीजित के चरणों में प्रणाम कर विनम्रता के साथ स्नेह पाने में जुट गया।

करिये इत उत एकता, सूचत हम हित सोधि।
स्वीकृत किय श्रीजित सुन सु, पटु सुखराम प्रबोधि॥१०६॥

भगवंतहिँ पुनि तिन भनिय, कोटा पठवन कज्ज।
सिक्ख देन तिहिँ श्रीजितहु, सामग्री किय सज्ज॥१०७॥

दंती एक तुरंग दुव, सिचय बिभूखन सत्थ।
दैन सिक्ख इत्यादि दै, ताहि बिचारिय तत्थ॥१०८॥

सो कृतघ्न भगवंत सुनि, छन्नैं परिकर सज्जि।
हित दिखान कोटस कौं, गयो परोक्ष हि भज्जि ॥१०९॥

उसने अतिशय विनम्र हो कर श्रीजित से प्रार्थना की कि अब आप दोनों पक्षों का हित सोचते हुए कोटा और बून्दी में एकता करवा दीजिये। इस प्रस्ताव को सुनते ही श्रीजित ने मान लिया और चतुर सुखराम को भी सहमत कर समझा दिया। तब झाला जालिमसिंह ने श्रीजित से निवेदन किया कि अब आप हाड़ा भगवंतसिंह को कोटा भिजवाएँ। श्रीजित ने इस प्रस्ताव को मानते हुए भगवंतसिंह को विदाज्ञा के साथ दी जाने वानी सामग्री एकत्रित की। इस सामग्री में एक हाथी, दो घोड़े, सिरोपाव और एक आभूषण (सिरपेच) श्रीजित ने मँगवाए और मन ही मन भगवंतसिंह को विदा देते वक्त देने की सोची। पर वह अपने पर किये उपकार को भूलने वाला कृतघ्न भगवंतसिंह तो चुपके से अपने परिकरों के साथ कोटा के राजा का हितचिंतक बन कर परोक्ष ही भाग गया अथात् श्रीजित से विदाज्ञा लिये बिना ही भाग गया।

श्रीजित सूचित क्यों कितव, अनुचित किन्नी एह।
इहाँ बिभव जो तस अखिल, गिनि भेजहु तस गेह ॥११०॥

सस्य फलित सीलोर के, कर जुत तबहि प्रकास।
रह्यो बिभव भगवंत को, पठयो सब तिहिं पास॥१११॥

जब श्रीजित को उसके कोटा भाग जाने के समाचार मिले तो उसने कहा कि वह छली भगवंतसिंह इस तरह भाग कर क्यों गया? उसे विदाज्ञा लेकर जाना चाहिए था पर कोई बात नहीं। अब उसका जो वैभव (सामान आदि) यहाँ छूट गया है उसे अच्छी तरह गिन कर कोटा भिजवा दिया जाए। सीलोर गाँव की पकी हुई खेती में से आने वाले कर सहित भगवंतसिंह का सारा सामान श्रीजित ने कोटा उसके पास भिजवा दिया।

घनाक्षरी

आयो जबही तैं सही तैं सु गिनि मुख्य आप,
राख्यो भगवंत पास श्रीजित सुहृद रीति॥
काज निज राज्य के जनाई सब ताकौं करे,
पायो काहु नै न सो पटा दिय निपुन नीति॥

साठ्य करि बुन्दी कोटा एकता करन समैं,
गाई कछु गूढ हाई बुंदी की कुजस गति॥
कोटा कौं दिखाइ निज पच्छ को अहो कुटिल,
भजि भगवंत गयो चोर लौं भजत भीति॥११२॥

यह भगवंतसिंह कोटा से भाग कर जब से बूंदी आया तभी से श्रीजित ने उसे महत्वपूर्ण मानते हुए सदा अपने सीने से लगाये रखा। उसके सारे कार्य अपने काम समझते हुए अर्थात् बूंदी राज के काम समझते हुए करवाये। यही नहीं नीति में निपुण श्रीजित ने उसे अन्य किसी को नहीं दी ऐसी जागीर का पट्टा दिया। पर उस मूर्ख ने बेवकूफी कर जब कोटा-बूंदी के मध्य मित्रतापूर्ण संबध बन रहे थे ऐसे समय में मन में कुछ गूढ बात रख कर बूंदी का कुयश करवा दिया। वह कुटिल भगवंतसिंह कोटा को ही अपना मानते हुए कोटा के पक्ष में सोचता हुआ बूंदी से एक चोर की तरह डर कर चुपचाप भाग गया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ विष्णुसिंहचरित्रे विष्णुसिंह विवाह सन्ततिवर्णन सन्ध्या कथन बिल्लहटा-ग्रामादिराणावैभवप्रत्यर्पणधात्री भातृजसकर्ण घात्यस्वरूपसिंह विषदान-मृताग्रजकोटापतिगुमानसिंहात्मजोम्मेदसिंह पट्टासादन झाल्लजालमसिंह-कोटापतितन्मन्त्रिमध्यदमनकशृंगालसमभेदकरण राणाहम्मीरसिंहकथनकृत बेघमयुद्धसन्ध्याप्रान्तद्वयग्रहणकोटाबुन्दीपरस्परैकता भवनं प्रथमा मयूखः आदितः॥३५१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमीराशि के, विष्णुसिंह के चरित्र में, विष्णुसिंह के विवाह और सन्तान आदि का कथन, सिंधिया के कहने से बीलहटा ग्राम आदि राणा के वैभव को वापस देना, कोटा के पति गुमानसिंह का धायभाई जशकरण द्वारा मारे जाने वाले अपने छोटे भाई सरूपसिंह के जहर से मारा जाकर उसके पुत्र उम्मेदसिंह का पाट बैठना, झाला जालिमसिंह का कोटा के राजा और मंत्री में दमनक नामक (गीदड़) के समान भेद कराना, सिंधिया का राणा हम्मीरसिंह के कथन से बेगूं से युद्ध करके दण्ड में दो परगने लेना और कोटा बून्दी में परस्पर एकता होने का पहला मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इक्यावन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सुनिये इत पहिले समय, कोआ अधिप किसोर।
जेठे दुव सुत टारि जिन्हैं, राज्य न दिय दिय रौर॥ १॥

किय तीजो सुत उचित कहि, राज्य बिभागी राम।
तास अग्रजन संततिन, किय अब बिग्रह काम॥ २॥

हे राजा रामसिंह! अब यहाँ मैं थोड़ा पूर्व समय का हाल कहता हूँ जब कोटा में राजा किशोरसिंह था उसने अपने दो बड़े बेटों को अपने उत्तराधिकार से वंचित किया और उन्हें राज की जगह भय दिया। उसने अपने तीसरे पुत्र रामसिंह को कोटा का राजा बनाया, इससे रामसिंह के बड़े दोनों भाईयों की सन्तानें खफा हो गईं और इस समय(वर्तमान में) भिड़ंत के लिए उद्धत हो उपद्रव मचाने लगीं।

रोला

अब माधानी देवसिंह रविमल्ल ज्येष्ठ सुत।
कुल किसोरसिंघुत्त जुरन रन धारि दर्प्प जुत॥
कोटापति सन पलटि रह्यो आटोनि नगर यह।
तापर जालम तमकि आजि जित्तन किय अग्ग्रह॥ ३॥

मूँसामदत्त स नाम रक्खि इक जोध फिरंगिय।
तीससहँस मित ताहि दम्म मासिक ध्रुव करि दि॥
याकहँ पुर आटोनि भेजि अक्खियअरि भंजहु।
आइ समुख अंकुरहिं गैल ते पर तिम गंजहु॥ ४॥

इन विरोध करने वालों मे मुख्य एक माधानी (माधवसिंहोत) हाड़ा सूर्यमल का ज्येष्ठ पुत्र देवसिंह था। दर्प से भरा वह किशोरसिंह के वंशजों से युद्ध करने के अवसर खोजने लगा। वह कोटा के राजा से विमुख होकर आटोनी नगर में चला आया और यहीं रहने लगा। इस देवसिंह पर कोप कर झाला ने मूसामदत्त नामक एक फिरंगी योद्धा को प्रयुक्त करने की योजना बना कर फिरंगी को तीस हजार रुपये मासिक देना तय किया। झाला ने तब इस फिरंगी को आटोनी नगर भेजा और कहा कि राज के शत्रु (देवसिंह) को मार

कर आओ। जब वह तुम्हारे सम्मुख आ कर खड़ा हो अर्थात् मुकाबले में आए तो उसे मार गिराना।

जाइ फिरंगिय जत्थ तोप जन्त्रन पुर त्रासिय।
सह कुटंब वह देवसिंह निस अद्ध निकासिय॥
सक नभ गुन धृति समय आइ तिम तिहिं उनियारा।
चिंतिय बिबिध प्रपंच दैन जालम उर आरा॥५॥
जालम उर वह जत्थ भयो पत्थर सम भासत।
भेदक आरा आदि कुंठ हुव बिफल प्रकासत॥
धात्रेय सु जसकर्ण प्रथम गय द्रंग जोधपुर।
तिहिं बुलाई इहिं तत्थ अधम बंधिय जुग उद्धुर॥ ६॥
जतन चल्यो नन जत्थ जाइ उभय हि तब जैपुर।
चुंडाउत्तन चाहि रहे तिन्हँ बंस धारक धुर॥
तिन्ह प्रति अक्खिय तत्थ प्रेरि हमकौं हरोल पर।
करहु अप्प निज काम हनहु परपच्छ चुंडहर॥७॥

झाला जालिमसिंह का हुक्म पाते ही वह फिरंगी मूसामदत तोपें ले कर गया और उसने जाते ही आटोनी को घेर लिया। उसने तोपों के गोलों से भय का कहर बरपा कर दिया यह देख कर देवसिंह अपने कुटुम्बियों सहित अर्द्ध रात्रि के समय आटोनी नगर से निकल भागा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीस में देवसिंह उनियारा नामक स्थान पर आ कर तरह-तरह की योजनाएँ बनाने लगा जिनसे वह जालिमसिंह की छाती पर आरी चला सके पर झाला की छाती तो पत्थर से भी अधिक कठोर निकली उस देवसिंह की आरी कुल्हाड़े आदि सारे भोथरे (तीक्ष्णता रहित) हो गए अर्थात् उसकी कहीं दाल नहीं गली। पूर्व में धायभाई जसकरण कोटा से निकल कर जोधपुर गया था जब उसने देवसिंह के विरोधी बनकर निकलने की सुनी तो जसकरण ने उसे भी अपने पास बुला लिया जिससे वे दोनों निर्भय हो कर युगल (जोड़ा) बन सकें। जब इन दोनों का कार्य जोधपुर में नहीं बना तब वे दोनों जोधपुर से जयपुर गये। वहाँ पर भी टिकाव नहीं हो सका तो देवसिंह धुर को धारण करने वाले देवगढ़ के चूंडावत रावत की शरण में जा रहा। देवसिंह ने

चूंडावत से कहा कि आप मुझे हरावल में रख कर अपना काम करें अर्थात् युद्ध होने की दशा में मुझे हरावल पंक्ति सौंप कर आप निश्चिंत हो कर शत्रु संहार करना। मेरी सहायता से आपका कार्य आसान हो जाएगा।

दोहा

चुंडाउत्तन यहहि चहि, पाइ दुवहि निज पच्छ।
चिंत्यो अब कूरम निचय, दलिहैं हम दमदच्छ॥ ८॥

सक ससि गुन धृति इत असित, भोग तीज तिथि भद्द।
रट्ठऊरि श्रीजित रमनि, छोरयो बपु गद छद्द॥ ९॥

तदनंतर बुन्दीस को, सचिव मुख्य सुखराम।
कत्तिय पुण्णिम दिन गयो, पट्टनि केसव धाम॥१०॥

पट्टनि बंट तीजो हुतो, संध्या कै तिहिं काल।
तातैं झल्ल सखाहु तँहँ, हो मरहट्ठ सु लाल॥११॥

उधर देवगढ़ का चूंडावत रावत भी यही चाहता था कि उसे ऐसा कोई व्यक्ति मिले जो उसका मददगार बन सके। दोनों एक दूसरे को पाकर निहाल से हो गए। अब उन्होंने मिल कर योजनाबद्ध तरीके से सोचा कि दंड देने वाले चतुर कछवाहों के समूह को दंडित किया जाए। इधर बूंदी में विक्रम संवत् के वर्ष अट्ठारह सौ इकत्तीस के भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि के दिन श्रीजित (पूर्व हाड़ा राजा उम्मेदसिंह) की राठौड़ वंशीय रानी का रोग ग्रस्त होने से देहावसान हो गया। इसके बाद बूंदी के राजा का मुख्य सचिव धायभाई सुखराम कार्तिक पूर्णिमा के दिन केशवराय पाटण में श्रीहरि के मन्दिर में दर्शन हेतु गया। इस समय केशवराय पाटण की जागीर का तीसरा हिस्सा सिंधिया महादजी के अधिकार में था इसीलिए झाला जालिमसिंह का वह मित्र लाला मराठा भी वहीं था।

सो सम्मुह सुखराम कै, इक्क कोस लग आई।
लैगो पट्टनि समय लहि, परम प्रमोद दिखाई॥१२॥

असित मग्गसिर दोजि, दिन तदनु मिलन हित तत्त।
जालम झल्लहु प्रीति जुत, पुर कोटा सन पत्त॥१३॥

वह मराठा (लाला) स्वागत के लिए एक कोस की दूरी तक चलकर

सुखराम के सामने आया और पूरी आवभगत के साथ सुखराम को पाटण नगर में बाइज्ज़त लेकर आया। उधर मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि के दिन इन दोनों से मिलने को झाला जालिमसिंह कोटा से पाटण आने को रवाना हुआ।

षट्पात्

सुनि सम्मुह सुखराम लाल मरहट्ठ उभय गय,
मिलि पुटभेदन प्रबिसि आइ केसव हरि आलय।
सपथ करन तँहँ सचिव दुव हि लै कर तुलसीदल,
लगे परसपर दैन बदत दोउन इक मन बल।
तजि संक बैरिसल्लोत तँहँ खेरापति भारत कहिय।
तुम भरुज फेरु दमनक तरह जुग बंधहु तजि छद्म जिय॥१४॥

जब लाला मराठा और सुखराम ने झाला के आने के समाचार सुनें तो दोनों उसकी अगवानी करने को चलकर सम्मुख गए। नगरपनाह के पास उनकी झाला जालिमसिंह से भेंट हुई। वे दोनों झाला को यहाँ से प्रीतिपूर्वक साथ लेकर केशवराय के मंदिर में आए। मन्दिर में कोटा और बूंदी दोनों राज्यों के सचिवों ने शपथ उठाने के लिए हाथ में तुलसीपत्र लिये और परस्पर एक दूजे से मन-वचन से एक होने के दावे करने लगे। यह मंजर देखकर खेड़ा नगर के स्वामी वैरिसालोत हाड़ा भारतसिंह से रहा नहीं गया। उसने निशंक झाला को इंगित कर कहा कि तुम तो गीदड़ हो और वह भी दमनक (संदर्भ-पंचतंत्र) की तरह का इसलिए दोनों मिल रहे हो पर मन में किसी प्रकार का छद्म रखकर मत मिलना अन्यथा यह मिलन व्यर्थ होगा।

दोहा

रानिन सौं रु सुरूप सौं, जसकर्ण हु सौं जेम।
मिलि मारे नृप सह निखिल, तुम न मिलहु इह तेम॥१५॥

अक्खिय सुनि जालम अनखि, समुझि करत हम सौंह।
क्यौं फुरकावत तुम कुटिल, भीरुन की गति भौंह॥१६॥

इम अगहन बदि दोजि दिन, दुव सचिवन हित रक्खि।
करे सपथ एकत्व के, दै केसव बिच सक्खि॥१७॥

भारतसिंह ने आगे कहा कि हे झाला! तुम पहले कोटा की रानियों से मिले फिर स्वरूपसिंह से भी मिले। यहीं नहीं उसी तरह जसकरण से मिले और फिर राजा से भी मिले। इस तरह सभी से मिल कर आपस में नाश करवाया पर यहाँ (आज) तो उस तरह मत मिलना। यह सुनकर झाला जालिमसिंह को बुरा लगा पर वह गुस्से को पी कर कहने लगा कि इसीलिए तो हम मिलने से पूर्व भगवान की शपथ उठा रहे हैं पर तुम एक कुटिल कायर की तरह यह देखकर अपनी भौंह क्यों फुरका रहे हो? इस तरह अगहन मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि के दिन दोनों सचिवों ने अपना हित सोच कर एकता की शपथ ली और भगवान को साक्षी मान कर एक दूसरे को वचन दिये।

षट्पात्

गयो तदनु कोटेस सचिव जालम कोटा चढि,
दूजे दिन सुखराम गयो तत्थहि बिनोद बढि।
द्रुत उततैं भूदेव देव मरहट्ठ लाल दुव,
ग्राम दोसपुर अवधि आत सुनि समुह आत हुव।
सक इंदु अग्गि धृति गत समय तिथि चउत्थि अगहन असित।
डेरा दिवाई उपबन निकट हुलसि दिखायउ प्रेम हित॥१८॥

इसके बाद कोटा के राजा का सचिव जालिमसिंह पाटण से रवाना हो कर कोटा गया। अगले दिन धायभाई सुखराम भी नये स्नेह में पगा वहाँ गया। इसी तरह देवा नामक ब्राह्मण और लाला मराठा भी द्रुत गति से कोटा के लिए रवाना हुए। जब कोटा में बूंदी के मुख्य सचिव के आगमन के समाचार गये तो दोसपुर (दोसा नामक गाँव) तक कोटा के लोग अगवानी करने आए। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इकत्तीस के मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन कोटा वालों ने बाग के निकट डेरे लगवा कर उसे ठहराया और प्रीति का प्रदर्शन किया।

दोहा

बहु बर फल मिष्टान्न बहु, सतदुव रूप्पय सत्थ।
मुक्ख्य सचिव की रीति मित, पठये डेरन तत्थ॥१९॥

परिखद गो तिथि पंचमिय, सुखराम सु धात्रेय।
महाराव उम्मेद सौं, मिलन भयो हितमेय॥२०॥

जे आदर के सुभट जँहँ हे, बुंदिय सन संग।
तेहु मिले कोटेस सौं, अपिहित बिहित उमंग॥२१॥

छट्ठी दिन परिखद बहुरि, गयो सचिव सुखराम।
जुद्ध गजन मल्लन जहाँ, पिक्खे कौतुक काम॥२२॥

सुखराम हिं पुनि सिक्ख दिय, सत्तमि दिन कोटेस।
सिरपेच रु सिरुपाव सह, हय दिय खास सुहेस॥२३॥

जालिमसिंह ने बहुत सारे फल, मिठाईयाँ और दो सौ रुपयों की भेंट बूंदी के मुख्य सचिव के रूप में आए सुखराम को भिजवाई। पंचमी तिथि के दिन धायभाई सुखराम महाराव उम्मेदसिंह से मिलने को राजसभा में गया। इस समय मुख्य सचिव के साथ जो बूंदी के सरदार थे वे पूरी उमंग के साथ कोटा के राजा से मिले। छठी तिथि को कोटा की राजसभा में फिर से सुखराम गया। यहाँ आयोजित हाथियों की लड़ाई और पहलवानों की कुश्तियों को बूंदी के सचिव ने देखा। इसके अतिरिक्त भी जो कौतुक के करतब कलाकारों ने दिखाए उन्हें भी देखा। कोटा के महाराव उम्मेदसिंह ने फिर सप्तमी तिथि के दिन धायभाई सुखराम को विदाज्ञा प्रदान की। इस अवसर पर उसे एक सिरपेच (आभूषण विशेष), सिरोपाव और एक शुभ हींसने वाला घोड़ा भी प्रदान किया।

बहुरि झल्ल मरहट्ठ के, आलय क्रम सन आइ।
दोउन तैं सिरुपाव हय, प्रीति रीति मित पाइ॥२४॥

पुनि सुखराम मुकाम किय, नगर नाँनता आनि।
तस संगहि पठयो तिलक, महाराव हित मानि॥२५॥

वहहि लाल मरहट्ठ अरु, पुर गैंतापति नाथ।
लैं टींका सुखरामा सौं, मिले चलन सब साथ॥२६॥

दुव तुरंग सिरुपाव दुव, इक गज भूखन एक।
बुन्दी आइ निवेदी यह, इन किय प्रनति अनेक॥२७॥

नाथहिं लालहिं नाम प्रति, इक इक हय सिरुपाव।
दै बुन्दीयपति सिक्ख दिय,सचिवन कथन स्वभाव॥२८॥

राजा से विदाज्ञा लेकर सुखराम झाला जालिमसिंह के घर गया वहाँ से भी सिरोपाव और घोड़े की भेंट पाई। इसी तरह प्रीतिपूर्वक लाला मराठा के घर से भी सिरोपाव और घोड़े का नजराना ले कर बून्दी का मुख्य सचिव कोटा से रवाना हुआ। उसने रास्ते में नानता नगर में मुकाम किया। कोटा के महाराव ने सुखराम के साथ ही बून्दी के राजा के लिए टीका की सामग्री देकर अपने आदमी रवाना किये। इनमें गैता का स्वामी और लाला मराठा भी थे जो सुखराम के साथ ही बून्दी के लिए रवाना हुए। कोटा के राजा की ओर से टीका में भेजे दो घोड़े, दो सिरोपाव, एक हाथी और एक आभूषण को उन्होंने बून्दी के राजा को आ भेंट दिये। बून्दी के राजा ने वापस नाथूसिंह और लाला मराठा को एक-एक घोड़ा और एक-एक सिरोपाव प्रदान कर कोटा जाने की विदाज्ञा दी। राजा ने यह सब कुछ अपने सचिव की राय से किया।

पादाकुलकम्

याही सक इक गुन धृति अंतर, पर्‍यो भार लखनेऊ ऊपर।
टेक अमोघ रुहिल्लन टोला, दुखित कर्‍यो सु आसिफुद्दोला॥२९॥

तब नबाब समुचित लखि त्रायक, किय अंग्रेज स्वकीय सहायक।
जब नबाब दियं मुख्य जिलाका, इनहिं बनारस नगर इलाका॥३०॥

लखनेऊ पति प्रथम दब्बि लिय, द्रंग कासिका सो अब इम दिय।
पटु कंपनी देस वह पायो, अमल बढत तबतैं इत आयो॥३१॥

इहिं नबाब या ही सक मैं इत, फैजाबाद रहन सौं तजि हित।
पुर लखनेऊ रहन समुझि प्रिय, करि थिति सोहि राजधानी किय॥३२॥

इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ इकत्तीस में जिनका हठ खाली नहीं जाता ऐसे रुहिल्लों के समूह ने नवाब आसिफुद्दोला को तरह-तरह से तंग करते हुए दु:खी किया। उन्होंने लखनऊ पर पूरा दबाव बनाया। ऐसे में नवाब आसिफुद्दोला ने उचित रक्षक जान कर अंग्रेजों को अपने जिले का बनारस नामक नगर दिया। पूर्व में लखनऊ के शासक ने जिस काशी नगर को अपने अधीन किया था वही इलाका अब इसे अंग्रेजों को देना पड़ा। चतुर कंपनी (ईस्ट

इंण्डिया कंपनी) को जब से बनारस का क्षेत्र मिला तभी से उन्होंने अपना अमल जमाना शुरू किया। इसी वर्ष अर्थात् इकत्तीस में नवाब ने जो फैजाबाद में रहता था इस नगर को छोड़ कर लखनऊ में रहना आरंभ किया और लखनऊ को अपनी नई राजधानी बनाया।

दोहा

चरन द्वारकाधीस के, इत परसन चहुवान॥
याही एक अगहन आसित, श्रीजित किय प्रस्थान॥३३॥

दरकुंचन अजमेरु व्है, अरु श्रीपुष्कर न्हाई॥
अग्ग चलत मरुईस के, सचिवन अटके आई॥३४॥

करी अरज रट्ठोर नृप, रक्खत मिलन उमंग॥
सुनि श्रीजित गो जोधपुर, सत्थ अलप लै संग॥३५॥

मरुप आइ सम्मुह मिलि रु, पुर लैगो पधराइ॥
रहि कछु दिन पुनि सिक्ख लहि, पहुँच्यो सत्थहिँ आइ॥३६॥

तदनंतर हंकत सजव, दिय संचोर मिलान॥
धरनीधर दरसन कियउ, पुनि अबिरत प्रस्थान॥३७॥

इधर बून्दी से श्रीजित चहुवान (राजा उम्मेदसिंह) ने द्वारकाधीश के चरण स्पर्श करने की वांछा से द्वारिका यात्रा हेतु अठारह सौ इकत्तीस के मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष में प्रस्थान किया। राजा बून्दी से कूच कर अजमेर होता हुआ पुष्कर पहुँचा यहाँ राजा ने स्नान-दान आदि कर आगे की सुध ली। रास्ते में हाड़ा राजा को मारवाड़ राज्य के सचिव मिले। उन्होंने मिलते ही राजा से कहा कि हे श्रीजित! हमारे स्वामी राठौड़ राजा आपसे मिलने की उमंग मन में पाले हुए हैं इसलिए आप जोधपुर पधारिये! राजा अगवानी करने चल कर सम्मुख आया और स्वागत कर अपने नगर में ले गया। चहुवान राजा जोधपुर कुछ दिन ठहरा फिर राठौड़ राजा से विदाज्ञा लेकर वहीं वापस आया जहाँ वह अपने शेष संगी साथी छोड़ गया था। यहाँ से शीघ्र ही चल कर उसने आगे सांचोर पहुँच कर मुकाम किया। यहाँ राजा ने धरनीधर भगवान के दर्शन किये और आगे चला।

षट्पात्

बाबगाम अभिधान नगर पहुँचिय पुनि श्रीजित,
ताके नृप चहुवान नाम गजसिंघ ठानि हित।
महमानी बिधि मंडि मन्नि सम्मद सुचिमानस,
करे नजर हय दोइ ते न रक्खे वैखानस।
झंझाम होइ दरकुंच तिम आडेस्वर विश्राम लिय।
बलि ईस जजन बरनाँ बिरचि तीकड़ जाइ मिलान दिय॥३८॥

आगे बावगाम नामक नगर में पहुँचा, जहाँ का राजा भी चहुवान था। वहाँ के गजसिंह नामक राजा ने उज्ज्वल मन से हर्ष करते हुए चहुवान राजा श्रीजित की अगवानी की। अपने यहाँ पूरी आवभगत के साथ मेहमान बना कर रखा। यहाँ से आगे प्रस्थान करते समय राजा गजसिंह ने दो उत्तम घोड़े वानप्रस्थी राजा को नजर करने चाहे पर बूंदी के राजा ने भेंट स्वीकार नहीं की। यहाँ से आगे चलते हुए झंझाम नगर से हो कर राजा ने आडेश्वर पहुँच कर विश्राम लिया। यहाँ से आगे महादेव का पूजन करने को बरनां होते हुए राजा ने तीकड़पुर में जा मुकाम किया।

तीकड़ सन करि कुंच बढ्यो प्रातीच्य मग्ग बलि,
नगर मोरवी जात मिल्यो जद्दव सम्मुह चलि।
जाड़ेचा नृप बग्घसिंह रक्खन निस हठ किय,
तदपि रह्यो नहिँ तत्थ जानि मग मिजल अल्प जिय।
कछु दुर बग्घ पहुँचाइ कैँ कति हय आयुध भेट किय।
लै इक्क सक्ति तिन माँहि सौं जाइ टकार मिलान दिय॥३९॥

अगले दिन तीकड़ से रवाना हो कर श्रीजित पश्चिम दिशा में बढा। आगे मोरवी नगर का यादव राजा अगवानी में सम्मुख आया हुआ प्रतीक्षारत मिला। यहाँ के राजा बाघसिंह जाड़ेचा ने श्रीजित से रात्रिविश्राम अपने यहाँ करने का हठ किया पर हाड़ा राजा यह कह कर नहीं ठहरा कि अब मेरी मंजिल निकट ही है। तब राजा बाघसिंह उसे पहुँचाने को साथ-साथ आया। बिछुड़ते समय जाड़ेचा राजा ने एक अच्छी नस्ल का घोड़ा और कुछ आयुध भेंट किये। इनमें से एक बरछी स्वीकार कर हाड़ा राजा ने आगे टकार पहुँच कर मुकाम किया।

चढि टकार सन चलत इक्क जद्दव मग अंतर,
राजकोट पुर नाह बंस जाड़ेच धुरंधर।
नाम कुंभ किय नजर आइ सम्मुह सु न रक्खिय,
तदनु बीरपुर जाइ सिबिर रचन हित अक्खिय।
रहि रत्ति बहुरि हंकिय सजव इक मुकाम मग मध्य करि।
रेवत गिरीस तीरथ रुचिर परसन पत्तो प्रीति धरि॥४०॥

टकार से प्रयाण करते ही रास्ते में राजकोट का यादव राजा हाड़ा राजा के आगमन की खबर सुनकर अगवानी करने चल कर सम्मुख आया। राजकोट के इस जाड़ेचा राजा ने हाड़ा राजा को धुरंधर नामक एक हाथी भेंट किया पर श्रीजित ने इस भेंट को विनम्रता के साथ अस्वीकार कर दिया अर्थात् नहीं रखा। यहाँ से आगे हाड़ा राजा ने वीटपुर पहुँच कर रात्रि विश्राम किया। प्रात: काल में यहाँ से कूच कर एक मुकाम रास्ते में करते हुए राजा ने आगे पर्वतों के राजा रैंवतगिरि पर स्थित सारे सुन्दर तीर्थस्थानों के श्रद्धापूर्वक दर्शन किये।

दोहा

जूनाँगढ़ डेरा बिरचि, अप्प चढ्यो गिरि आइ।
रैवत के सब पुन्यथल, पिक्खे सम्मद पाइ॥४१॥
हनुमत धारा होइ द्रुत, अंबा दरसन कीन।
परसी ओघड़ पादुका, पुनि गिरि चढत प्रबीन॥४२॥
बहुरि दत्त आत्रेय के, कुंड आचमि रु न्हाइ।
परसी ताकी पादुका, अचल शृंग सिर जाइ॥४३॥
पांडव छत्री आइकैं, तँहँ धन गुप्त चढाइ॥
न्हाइ अपस्मृति कुंड पुनि, पत्तो डेरन आइ॥४४॥

जूनागढ़ नामक नगर में शिविर बना कर राजा ने पर्वत पर चढ़ाई आरंभ की और रैंवत पर्वत के सारे पवित्र स्थलों के हर्षपूर्वक दर्शन किये। फिर हाड़ा राजा हनुमंतधारा होते हुए अंबा देवी के दर्शनों को गया। इसके बाद राजा ने ओघड़पादुका का स्पर्श करने को आगे चढ़ाई चढ़ी। आगे आत्रेय

ऋषि के कुंड में स्नान-आचमन सम्पन्न कर राजा ऋषिपादुका को प्रणाम करने पर्वत शिखर तक गया। यहाँ से राजा ने पांडव छत्री पहुँच कर गुप्त धन का चढ़ावा किया और अपस्मृति कुंड में स्नान कर श्रीजित वापस अपने शिविर में लौटा।

जूनाँगढ सन चढि सजव, दरकुंचन चहुवान।
सरिता गोमती जाइ किय, माघ अमा दिन न्हान ।।४५ ।।

श्राद्ध सहित उपवास करि, डेरा तत्थहि रक्खि।
ज्योतिलिंग शिव जजन किय, अप्प जाइ हित अक्खि ।।४६ ।।

सनि वासन जुत माघ सित, तिथि चउत्थि बट तत्थ।
पूजि नागनाथेस पुनि, आयो डेरन अत्थ ।।४७ ।।

तिथि सप्तमि कुज दिन तदनु, रामहड़ा पुर जाई।
दूजे दिन चढि पोत किय, सागर गमन सुभाइ ।।४८ ।।

जूनागढ़ से प्रस्थान कर दर कूच दर मंजिल बढ़ता हुआ श्रीजित गोमती नदी के तट पर आया और यहाँ उसने मार्गशीर्ष माह की अमावस्या का विशेष स्नान सम्पन्न किया। राजा ने उस दिन उपवास रख कर वहाँ श्राद्ध किया और गोमती नदी के तट पर शिविर बना कर रात्रि-विश्राम वहीं किया। यहाँ राजा ने श्रद्धापूर्वक जाकर मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि तदनुसार शनिवार के दिन शिव के ज्योतिर्लिंग का पूजन-अर्चन किया। श्रीजित नागनाथ अर्थात् शिव की अराधना कर वापस अपने डेरे में आया और विश्राम किय। आगे मंगलवार के दिन मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को हाड़ा राजा रामहड़ापुर पहुँचा। इसके अगले दिन श्रीजित ने पानी के जहाज पर सवार हो सागर गमन किया।

मज्जन संखुद्धार करि, जात निसा इक जाम।
द्वारकेस हरि दरस किय, किय तँहँ च्यारि मुकाम ।।४९ ।।

रवि जुत द्वादसि माघ सित, पुनि चढि नाव पधारि।
गोपीपल्वल न्हान हित, पहुँच्यो बिहित बिचारि ।।५० ।।

डेरन दिस ससि दिन मुर्‍यो, घटिय पंच निस जात।
काबाभिध तँहँ बन्य जन, घल्लत हुव मग घात ।।५१ ।।

गहन दुपासन तुंग गिरि, बिच कापथ अति घोर।
श्रीजित सन काबन सरिस, रचिय तत्थ रन रोर।।५२।।

आगे शंखुद्वार नामक तीर्थ पर स्नान कर रात्रि को एक प्रहर व्यतीत होने के समय श्रीजित ने द्वारिका पहुँच कर हरि-दर्शन किये। राजा वहाँ चार दिन ठहरा। मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि तद्नुसार रविवार के दिन नाव पर सवार हो राजा गोपीपल्वल नामक तीर्थ पर स्नान करने गया। यहाँ से वापस डेरे की ओर लौटने को सोमवार को पाँच घड़ी रात गये मुड़ा ही था कि काबा जाति के आदिवासियों ने रास्ते में घात लगाने हेतु राजा को आ घेरा। यह ऐसी जगह थी जहाँ दोनों ओर पर्वत की ऊँची चोटियाँ थीं और बीच के दर्रे का ऊबड़-खाबड़ रास्ता। इसी विकट जगह पर काबाओं ने कुपित हो कर राजा के साथ भयंकर भिड़ंत रची।

षट्पात्

लरि इच्छित कर लैन बिसम मम मंतुकार बनि,
काबन के अधिराज रचिय घमसान नगम्मनि।
अद्रिन चढि दुहुँ ओर तुपक तीर सु झुकि झारत,
हंकिय न गिनत हड्डु कलह सुभटन हलकारत।
गोलिन दुसार फुट्टत तुरग बन बिसत बिल उरग जिम।
चोटन सिपाह घोटन गिरत पारावल लोटन प्रतिम।।५३।।

राजा से युद्ध ठान कर उनके अपराधी बने इन काबाओं के नगम्मनि नामक सरदार ने इच्छित कर लेने हेतु घमासान रचा। उसके लड़ाकू योद्धा पर्वत के शिखर पर चढ़ कर हाड़ा राजा के संग पर तीर और बन्दूकों के प्रहार करने लगे। उन्होंने हाड़ा वीरों को कुछ नहीं गिनते हुए श्रीजित के कारवाँ को आगे नहीं बढ़ने दिया और ललकार कर युद्ध के लिए उकसाया। तलवारों और गोलियों के प्रहारों से राजा के घोड़े कटने लगे। उनके शरीर में काबों के तीर यों घुसने लगे जैसे बिल में सर्प घुसता है। घायल सिपाही घोड़ों से यों भूमि पर गिरने लगे मानों कबूतर लोटन करते हों।

अग्गैं श्रीजित अडर बहुरि सत्रुन रन रुक्किय,
अग्गैं श्रावन श्राम झरन उत्तर घन झुक्किय।

अग्गैं मारुति जांबवान बहुरि सु बिरुदायउ,
अग्गैं बनपति सरभ बहुरि अल अलिय लगायउ।
अग्गैं सुरेस बिक्रम अतुल कर दधीचिकीकस लयो।
इक्कल बराह सिंहन असह बलि कुक्कर गन बिंट्यो ॥५४॥

एक तो पहले ही निडर हाड़ा राजा श्रीजित फिर शत्रुओं ने उसे युद्ध के लिए रोका, यह तो वैसी बात हुई कि एक तो पहले ही श्रावण का महीना फिर ऊपर से उत्तर दिशा के मेघ आ जुड़े। एक तो पहले ही वीर हनुमान फिर ऊपर से जांबवान ने बिरदाया। एक तो पहले ही जंगल का राजा सिंह था ऊपर से बिच्छू ने डंक मारा। एक तो पहले ही अतुलनीय पराक्रम वाला इन्द्र ऊपर से उसने हाथ में वज्र धारण किया अथवा एक तो पहले ही सिंहों कि लिए असह्य एकल वाराह था ऊपर से उसे कुत्तों ने आ घेरा हो। ऐसी स्थिति बन आई।

जदपि क्रोध लोभादि तजे बुंदीपुर संगहि,
सहसा तदपि मिलाइ दयो जुज्झन बिधि जंगहि।
काबन अनुचित कहिय पुण्य जत्ता फल पावहु,
मत्ता दै सब हमहिँ अदल तरु होइ पलावँहु।
इहिँ प्रसभ दुष्ट करि दुव अनिय सैलन चढि दुहुँ ओर सन।
मग द्रोनि चलत श्रीजित मुदित रन दुव दिस लग्गे करन ॥५५॥

यद्यपि इस समय हाड़ा राजा उम्मेदसिंह क्रोध और लोभ को बूंदी के साथ ही छोड़ आया था पर यहाँ अचानक इन काबाओं ने उसे युद्ध में संलग्न कर लिया। काबाओं ने भी अनुचित बात कहीं कि यदि तीर्थ यात्रा का पुण्यफल पाना है तो पहले अपना सारा माल मत्ता (धन) हमें कर के रूप में सोंपो फिर पत्रविहीन गाछ की तरह नंगे हो कर यहाँ से भाग जाओ। इस हठ को पकड़े काबाओं के सरदार ने अपने दो दल दोनों ओर के पर्वतों पर चढ़ा दिये और दोनों पर्वतों के मध्य की घाटी वाले दर्रे से पार होते श्रीजित के संग पर दोनों ओर से हमला बोला।

गिरि दंतक डगमगत टोल टोलन लगि टक्कर,
तुट्टत लघु तरु तंब रुंड डंकत भरि डक्कर।

आनि मिलत कति असिन बहुरि भज्जत चढि पब्बय,
पत्ति लगत तिन्ह पिट्ठ जाइ मारत धारत जय।
उत्तरि दुओर अद्रिन रुहिर द्रवित द्रोनि बट्ट सु बहुत।
पाउस प्रभाव जनु बुट्ठि जल चलि खालन तालन चहत॥५६॥

ऊपर से नीचे की ओर लुढकाये हुए पत्थर पर्वतों पर दाँतों की तरह गढ़े हुए पत्थरों से टकराने लगे और जिनकी चपेट में आकर छोटे-मोटे पेड़ों के ठूंठ टूटने लगे। रुंड डोलने लगे। कई काबा योद्धा पहाड़ नीचे उतर कर आते और हाड़ा राजा के संग के योद्धाओं पर तलवार का प्रहार कर भागते हुए वापस पहाड़ पर चढ़ जाते। ऐसे भागते काबाओं को हाड़ा राजा के पैदल सिपाही पीछा कर मारने लगे। दोनों ओर की पहाड़ की चोटियों से रक्त बह कर नीचे की ओर आने लगा मानों वर्षा ऋतु में वर्षा के बाद पानी पहाड़ी नालों से उतरता हुआ तालाब की ओर जा रहा हो।

अति साहस लखि अरिन नुपक श्रीजित अब झल्लिय,
दै पब्बय पर दिट्ठ घात मालिक सिर घल्लिय।
सेस नगम्मनि आयु तास मित्रन गुटिका हुव,
भट तस ढिग दुव भेदि भक्खि कालिक प्रविसी भुव।
पहुँचे ति हड्डु हैवर पयन रय हत बिमत निरस्त रटि।
मनु मद्य मत्त आये उभय आधेरन इभसन उलटि॥५७॥

जब काबा शत्रुओं का धीरे-धीरे साहस बढ़ता हुआ देखा तो श्रीजित ने भी अपने हाथों में बन्दूक उठाई और पर्वत पर नजर गड़ाते हुए काबाओं के सरदार को ढूंढ कर गोली दागी पर उस सरदार नगम्मनि की आयु शेष होने के कारण गोली ने उससे मित्रवत व्यवहार किया अर्थात् निशाना नहीं लगा। हाँ, उसके बाद के धमाकों में दो काबा योद्धाओं के कलेजे को बेधती हुई गोलियां आगे जमीन में जा धँसी। वे दोनों ऊपर से लुढ़कते हुए हाड़ा राजा के घोड़े के पैरो में आ रहे। 'मारो-मारो' का व्यर्थ प्रलाप करते वे काबा इस तरह गुड़क कर नीचे आये मानो मद्य के नशे में मस्त महावत को हाथी ने उछाल कर नीचे पटका हो।

दोहा

इक्क ओर काबन अधिप, हुतो नगम्मनि तत्थ।
सो श्रीजित सय लखि सफल, भीरु भज्जो सह सत्थ॥५८॥

तास पितृव्यक अपर दिस, सजज हुतो रन सीर।
गोलिन ओलन गव्य वह, बरस्यो घन बिधि बीर॥५९॥

भट चालुक खदिराट तँहँ, निज हय गिरत निहारि।
काबन पति काका हन्यो, रचि दलेल अति रारि॥६०॥

अपने दो साथियों के ढेर हो जाने पर वह काबाओं का सरदार नगम्मनि जो एक पहाड़ के उस ओर था। श्रीजित के हाथों का ऐसा सधा हुआ निशाना देख कर डरते हुए अपने शेष साथियों सहित भाग खड़ा हुआ। इस नगम्मनि का चाचा जो दूसरे पर्वत से मोर्चा संभाले था वह श्रीजित के संग पर ऊपर से गोलियां, तीर और पत्थर बरसाने लगा। पर्वत से होती बड़े-बड़े पत्थरों की बोछार से खैराड़ के चालुक योद्धा का घोड़ा घायल हो कर गिर पड़ा तब दलेलसिंह ने उससे जबर्दस्त टक्कर ली और अन्तत: सरदार के काका को मार गिराया।

षट्पात्

काबनपति काका सु हुतो गिरि सिर दक्खिन दिस,
ताकै चालुक तुपक लगी नव घटिय जात निस।
आइ पर्‍यो सु अचेत उलटि अधभुम्मि अधोमुख,
मनु पट्टी सन मलपि नटी उलटी रय की रुख।
सिर तास कट्टि मारक सुभट कंदुक कौतुक करन लिय।
इम हड्डु माघ सित मदन अह काबन सन रन बिजय किय॥६१॥

नगम्मनि का चाचा दक्षिण दिशा वाले पर्वत के ऊपर से आक्रमण कर रहा था उसे चालुक्य के बन्दूक की एक गोली लगी। तब घड़ी रात गये वह पहाड़ से लुढ़कता हुआ अचेतावस्था में नीचे आ गिरा मानों नटों के खेल में खेल दिखाती कोई नटनी थंभ पर घूमती हुई पटड़ी से ओंधेमुँह वेगपूर्वक भूमि पर आ गिरी हो। इसे मारने वाले श्रेष्ठ वीर चालुक्य ने तब नगम्मनि के

चाचा का अपनी तलवार से सिर काटा डाला मानों उसे खेलने के कौतुक हेतु गेंद की दरकार हो। इस प्रकार मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन हाड़ा राजा श्रीजित ने चुनौती देने वाले काबाओं पर फतह पाई।

गीतिः

काबन पति को काका मरतहि खिल मंद भीरु भज्जि गये।
श्रीजित जस रन राका, पूरन ससि बिस्तरी जय पताका॥६२॥

मृध दस सागस मारे, करि घायल बीस व्याकुल बिडारे।
तिन कुणपन के न्यारे, मस्तक लै संग डेरन पधारे॥६३॥

हुलसि बिरचि रन हितको, अमराभिध सिलहदार श्रीजित को।
इक्क मर्‍यो वह इतको, आहीर उदार समर समुचित को॥६४॥

वाकी लुत्थिहु आनी, स्वतुरग कुसहाल चंद्र सोमानी।
श्रीजितको सो मानी, प्रधान हो कित्ति यौं तिँहिं प्रतानी॥६५॥

काबा सरदार नगम्मनि के काका के इस तरह मारे जाने पर शेष उसके काबा साथी भाग खड़े हुए और श्रीजित ने पूरे चाँद की रात में अपनी विजय पताका फहराई। हाड़ा राजा के संग वालों ने इस युद्ध में अपने दस अपराधी काबों को मार गिराया और बीस काबाओं को घायल कर व्याकुल बनाया। सभी मारे गये काबाओं के कटे सिर साथ लेकर श्रीजित अपने संग सहित शिविर में आया। हुलस कर युद्ध मचाने वाले हाड़ा राजा के पक्ष का अमरा नामक एक अहीर जो राजा का सिलहदार था वह इस भिड़ंत में निःशेष हुआ। उसका शव कुशालचन्द्र सोमानी अपने घोड़े पर लाद कर साथ लाया। वह श्रीजित से मान पाया हुआ सोमानी राजा का प्रधान सचिव था जिसने इस तरह अपनी कीर्ति का प्रसार किया।

तीन मरे इत के हय, चालुक्य दलेल सिवजि इनके द्वै।
तीजो तथा जथा रय, गंगाधर अग्निहोत्रि भूसर को॥६६॥

सत्त सुभट गोलिन सौं, सायक सौं इक्क इक्क असिबर सौं।
ए घायल हुव तिन सौं, श्रीजित लै सब सम्हारि सिविर चल्यो॥६७॥

बीट नगर पति यह सुनि, भूप फतैसिंह कुसल पुच्छन कौं।
दूत पठाइ रु पुनि पुनि, सूची लेजाहु मो भट सहाई॥६८॥

सो नहि मन्नि रु श्रीजित, अक्खिय तुमरे कहाँ कहाँ रहिहैं।
तदनंतर सत्थ सहित, रामहड़ा पुर मुकाम आइ पर्‌यो ॥६९॥

तँहँ बीटपुर नृपति के, भट रामहड़ेस आइ रु इम भनी।
मस्तक तस्कर तति कै, देहु ब तुमरे न कामहै तासौं ॥७०॥

सुनि यह बिन्नति श्रीजित, दुष्टन के छिन्न सीस दस दिन्ने।
रामहड़ा पति सौं हित, करि इम प्रतिपंथ अब क्रम्यो प्राची ॥७१॥

श्रीजित के पक्ष वाले योद्धाओं के तीन घोड़े इस भिड़ंत में मारे गए जिनमें से एक दलेलसिंह चालुक्य का था तो दूसरा शिवसिंह का। इन घोड़ों की तरह तीसरा वेगवान घोड़ा अग्निहोत्रि ब्राह्मण गंगाधर का था। हाड़ा राजा के सात योद्धा गोली लगने से, एक तीर लगने से और एक शत्रु की तलवार के प्रहार से घायल हुआ। इन सभी नौ घायलों को लाकर श्रीजित ने उनकी चिकित्सा अपने शिविर में करवाई। इस भिड़ंत की खबर पा कर बीट नगर के राजा फतहसिंह ने श्रीजित की कुशलक्षेम जानने को अपने दूत भेजे और बार-बार कहलाया कि हे हाड़ा राजा! आप अपनी सुरक्षा के लिए मेरे योद्धा साथ ले जाइये! राजा फतहसिंह के इस प्रस्ताव को श्रीजित ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मैं आपके सैनिक कहाँ-कहाँ ले जाऊँगा? इसके बाद श्रीजित अपने संग सहित वहाँ से चलकर रामहड़ापुर पहुँचा। यहाँ वीटपुर के योद्धाओं ने आ कर हाड़ा राजा से कहा कि उन तस्करों (काबों) के जो कटे हुए सिर आप के संग के पास हैं। वे उनके क्या काम के? इसलिए उन सिरों को आप वापस दिलवा दीजिये। इस प्रकार की प्रार्थना जब श्रीजित के पास आई तो उसने काबाओं के कटे हुए दस सिर वापस दिये। थोड़े दिन रामहड़ा ठहर कर हाड़ा राजा प्रीतिपूर्वक विदाज्ञा ले यहाँ से आगे पूर्व दिशा की ओर बढ़ा।

दोहा

रामहड़ा पुर व्है चल्यो, इम निज आश्रम ओर।
काबन पुनि मग रन करत, रचिय अमंगल रोर ॥७२॥

दुव घायल इत के भये, इक उतको धुर धाइ।
आर चउद्दसि माघसित, रहिय गोमती आइ ॥७३॥

बुध पुण्णिम दूजे दिवस, रक्खिय तत्थ मिलान।
भयउ चंद्र उपराग तँहँ, दये उचित सब दान॥७४॥

वह तत्थहि काबन अधिप, नम्र नगम्मनि आइ।
श्रीजित अग्गैं जोरि सय, पर्‍यो पाय खिन पाइ॥७५॥

तब राजा श्रीजित ने रामहड़ा नगर से नीचे आश्रम अपने का रुख किया पर काबाओं ने एक बार फिर से हाड़ा राजा का रास्ता रोक कर अमंगल का भय रचा। फिर से भिड़ंत हुई जिसमें श्रीजित के संग में से दो योद्धा घायल हुए वहीं काबा पक्ष का एक वीर घायल हो कर गिरा। मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तद्‌नुसार मंगलवार के दिन राजा ने गोमती के तट पर पहुँच कर पड़ाव किया। अगले दिन अर्थात् मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को गोमती में स्नानादि से निवृत हो वहीं विश्राम किया क्योंकि इस पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण था। राजा ने इस अवसर पर भरपूर दान दिया। इसी समय यहाँ पर काबा सरदार नगम्मनि आया। वह आते ही अपने दोनों हाथ जोड़कर श्रीजित के चरणों में आ गिरा।

अक्खी यह कुल पूरुखन, बिरचि अग्ग रन बाद।
अर्जुन से लुट्टे इहाँ, तबतैं यह मरजाद॥७६॥

अब सरनागत रावरे, इह सुनि उचित बिचारि।
सत मुद्रा सिरुपाव सह, दिय श्रीजित हित धारि॥७७॥

नदी गोमती सौं तदनु, बाबा के मठ आइ।
क्रमि दामोदर दरस किय, रान मुकाम रचाइ॥७८॥

श्राद्ध पिंडतारक बिरचि, दान निगम बिधि दत्त।
जह्व नृप जाड़ेच के, नये नगर पुनि पत्त॥७९॥

नगम्मनि ने पूरी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए कहा कि हे राजा ! जब हमारे पुरखों ने महाभारत के अर्जुन को लूटा था तभी से उन्होंने यह मर्यादा बांध रखी है। हम अब आपकी शरण में हैं ऐसा समझें। काबा सरदार से ऐसा सुन कर हाड़ा श्रीजित ने एक सिरोपाव और सौ रुपये तत्काल उसे दिये। इसके बाद गोमती के तट से चल कर राजा बाबा के मठ पहुँचा। यहाँ दामोदर भगवान के दर्शन कर रात में मुकाम किया। अगले दिन पिंडतारक श्राद्ध

वेदोक्त रीति से सम्पन्न कर राजा ने उचित दान दक्षिणा का वितरण किया। आगे वह नवानगर के जाड़ेचा राजा के आमंत्रण पर वहाँ की राजधानी में गया।

पादाकुलकम्

जाम जनन जाड़ेचा जादव, नये नगर जसकर्ण धराधव।
सम्मुह नाइसक्यो सु बालबय, सचिव आइ इक कोस जोरि सय ॥८० ॥

तनि आदर लैगो पुर वह तब, महारूप अभिधान मुसाहब।
रत्ति रहि सु मानी महमानी, मानी बहुरि न आग्रह मानी ॥८१ ॥

जामि तत्थ जसगर्ण जनक की, साधन संजम रीति सनक की।
पुब्ब समय याको हुव सगपन, सहर जोधपुर रामसिंह सन ॥८२ ॥

मूढ बहुरि तिहिँ राज्य गुमायो, पति ओर न यानैं तउ पायो।
निज भ्राता दिन जदपि निहोरिय, तउ न अन्य व्याहन मन मोरिय ॥८३ ॥

तब गतदेस मूढ वह हो तँहँ, पठयो तस डोलहि राम पँहँ।
जुहि इहिँ व्याहि तथा जड़ जान्यौं, पुनि लै व्रत यह धर्म प्रमान्यौं ॥८४ ॥

इस समय नवानगर की राजगद्दी पर जाम का वंशज यादव जाड़ेचा क्षत्रिय यशकर्ण था। अपनी बाल्यावस्था होने के कारण राजा स्वयं अगवानी करने नहीं आया पर राजा का सचिव एक कोस की दूरी तक हाड़ा राजा की पेशवाई को आया। महारूप नामक नया नगर का यह मुसाहिब राजा को पूरे आदर सत्कार के साथ नंगर में ले गया। जहाँ हाड़ा राजा ने एक रात का आथित्य ही स्वीकार किया। अगले दिन नवानगर की ओर से खूब आग्रह किया गया तब भी श्रीजित वहाँ और अधिक नहीं ठहरा। जाड़ेचा राजा यशकर्ण की एक बूआ थी जो सनक ऋषि की तरह योग-साधना करती थी पूर्व में उसकी सगाई जोधपुर के राठौड़ राजा रामसिंह के साथ हुई थी पर उस मूर्ख रामसिंह ने तो अपना राज ही खो दिया और नवानगर की राजकुमारी को पत्नी रूप में वरण करने भी नहीं आया। कुमारी के भाईयों ने कई दिनों तक राठौड़ के विवाह हेतु आगमन की प्रतीक्षा करने के बाद अपनी बहिन को समझाने की कोशिश की कि अन्य कहीं विवाह कर ले पर वह नहीं मानी। तब राज खोने वाला वह मूर्ख रामसिंह जहाँ था वहाँ कुमारी का डोला भेजा गया। राठौड़ रामसिंह ने तब नवानगर की कुमारी से विवाह तो रचा लिया पर उस मूर्ख ने अपना पति कर्म अच्छी तरह नहीं निभाया।

पति अपमान इहाँ मन पावत, सोदर घर इम हमहिं सुहावत।
यह कहि नयेनगर वह आई, पति संगति बहुरि न तिहिं पाई।।८५।।

तिहिं महमानी प्रसभ तनायो, मन्त्री नहिं पै दुख न मनायो।
कच्छी हय जसकर्ण भेट किय, रचत प्रसभ तिनमैं इक रक्खिय।।८६।।

नयेनगर बल्लभकुल नामी, हे नत्थेस नाम गोस्वामी।
करि तिन्ह दरसन भेट जथा क्रम, दूजे दिनहि चढ्यो सु अरिंदम।।८७।।

बदि तपस्य नवमी जिहिं बासर, पहुँच्यो पुर मोरवी धर्म पर।
तास अधिप सूच्यो सु बग्घ तँहँ, करत भयो हठ पुनि भोजन कँहँ।।८८।।

महमानी श्रीजित सु न मन्निय, लंचा मैं चउ काँचपात्र लिय।
दरकुंचन बदि त्रयोदसी दिन, आइ रह्यो झंझाम ब्रतिन इन।।८९।।

अपने पति द्वारा किया जा रहा अपमान कुमारी से बर्दाश्त नहीं हुआ और वह यह कह कर जोधपुर से वापस पीहर चली आई कि इससे तो अपने भाई के घर रहना अच्छा है। इतना कह कर वह नवानगर आ गई और शेष जीवन में उसे पति का संग नहीं मिल पाया। इस कुमारी ने जो राजा की बुआ थी ने भी हाड़ा राजा श्रीजित की आवभगत करने हेतु ठहरने का हठपूर्वक आग्रह किया पर राजा ने आतिथ्य स्वीकार नहीं किया। इस बात का कुमारी ने दुःख नहीं किया। विदा के समय जाड़ेचा राजा यशकर्ण ने हाड़ा राजा को कच्छी नस्ल के घोड़े भेंट करने चाहे पर श्रीजित ने हठपूर्वक मात्र एक घोड़ा स्वीकार किया। नवानगर मे वल्लभ संप्रदाय के तिलकायत नाथजी नामक गोस्वामी बिराज रहे थे हाड़ा राजा श्रीजित ने उनके दर्शन किये और शत्रुओं को दण्ड देने वाला राजा श्रीजित दूसरे दिन यहाँ से रवाना होकर फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि के दिन मोरवी नगर पहुँचा। जब हाड़ा राजा के आगमन की सूचना मोरवी के राजा बाघसिंह को मिली तो वह स्वागत करने आया। उसने हाड़ा राजा को भोजन कर पधारने का आग्रह किया पर श्रीजित ने इस आग्रह को स्वीकार नहीं किया तब राजा बाघसिंह ने भेंट देनी चाही पर श्रीजित ने अच्छे काँच से निर्मित मात्र चार पात्रों की भेंट कबूल की। यहाँ से त्रयोदशी तिथि के दिन रवाना हो कर दर कूच कर मंजिल वह व्रतियों का सूर्य राजा श्रीजित झंझाम नगर पहुँचा और यहीं पड़ाव डाला।

घनाक्षरी

जात बेर याही पुर कीनौं हो मुकाम जब,
चोरन नैं चोर्यो पल्लीवाल बहुरे को बैल॥
श्रीजित करायो सब रीति अब ताको सोध,
जनन जनाई गहि राख्यो तिहिं कूटगैल॥
अैहैं वह अजहु चलाइ मन नामी चोर,
जामिक जमाइ फार फेरहु परिधि फैल॥
दाव रावरे मैं परि जाइ जो असह दुष्ट,
खूंटिजाइ तोतो धनिकन को इतहु खैल॥९०॥

पूर्व में यात्रा पर जाते समय भी हाड़ा राजा ने यही झंझाम में पड़ाव किया था तब स्थानीय चोरों ने राजा के संग में चल रहे पालीवाल बोहरे का एक बैल चुरा लिया था। अब यहाँ पहुँच कर हाड़ा राजा ने उसका अनुसंधान करवाय। तो पता चला कि उस चोर ने पर्वतों के संगम के मार्ग वाले नाले में उस बैल को छिपा रखा है। वह बड़ा कुख्यात चोर है। संभव है आज भी चोरी करने का मन बना कर वह आए। श्रीजित ने अपने शिविर के पहरेदारों को दूर-दूर तक की जगहों पर तैनात कर दिया। लोगों ने कहा कि यदि किसी तरह वह कुख्यात चोर आज आपके दाँव (चंगुल) में फंस गया तो उस दुष्ट के करतबों से होने वाला सभी धनाढ्य लोगों का दुःख मिट जाएगा।

सिविर के जामिक जमाये गूढ श्रीजित नैं,
चित्तहिं चलाइ पैठो राति मैं वहहि चोर॥
चालुक दलेल खदिराट गुटिका चलाइ,
मारि सुहि लीनौं महा चौरन को सिरमोर॥
लीनौं सिर काटि सो दिखायो पुरलोकन कौं,
आइ तिन सूची यह सोही दुष्ट नहिं ओर॥
पीछैं दरकुंच धरनीधर पधारिय पंथ,
व्है संचोर सहर जरूर पहुँचे जालोर॥९१॥

श्रीजित ने अपने पहरेदारों को गूढ़ रूप से इस प्रकार तैनात किया कि

सामने पहरेदार न पा कर वह चोर रात्रि के समय शिविर में आया तभी खैराड़ के चालुक्य दलेलसिंह की बन्दूक गूंजी और वह महाचोर था वहीं ढेर हो गया। राजा के आदेश से दलेलसिंह ने उसका सिर काट लिया जिसे प्रात: काल नगर निवासियों को दिखाया गया। सभी लोगों ने उसे पहिचान कर कहा कि यहीं वह दुष्ट चोर है अन्य कोई नहीं। नगर निवासियों को चोर के भय से निजात दिला कर हाड़ा राजा झंझाम से प्रस्थान कर सांचोर नामक नगर के पास से गुजरता हुआ जालोर पहुँचा।

दूजे दिन लागो मधु मास को आसित आदि,
मानौं इम जालोर हि होला फुल्लडोल मह॥
जालउर तैं चढि द्वितीया दिन धारि जव,
अध्वनीन पल्ली पुर आये अप्रबुद्ध अह॥
भेजे तँहँ पत्र जोधपुर तैं बिजय भूप,
गेही व्है पधारो गेह थानि इहाँ पानिग्रह॥
मानी सो न मानी दरकुंच मधु मेचक की,
एकादसी कीनीं आइ पुष्कर समस्त सह॥९२॥

अगले दिन चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आरंभ हुआ। ऐसा लगता था मानों फूलडोल का उत्सव यहीं जालोर में सम्पन्न होगा। वही हुआ। अगले दिन अर्थात् द्वितीया तिथि के दिन जालौर से रवाना हो वेग के साथ चलता हुआ यात्री (अध्वनीन) राजा पाली नामक पुर में अजाने दिन को पहुँचा। यहाँ जोधपुर के राजा विजयसिंह के भेजे हुए दूत राजा का पत्र लिये प्रतीक्षा में थे। इस पत्र में लिखा था कि हे राजा! आप वानप्रस्थ से गृहस्थी बनने को हमारे यहाँ विवाह सम्पन्न कर अपने घर पधारें पर उस अभिमानी हाड़ा राजा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और यहाँ से चल कर चैत्र माह के कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि को अपने संग सहित पुष्कर पहुँचा।

दरसन न्हान दान तत्थ करि ताही दिन,
मग्ग कछु लंघि मकड़ावली करि मुकाम॥
दंत धृति संबत के चैत सित आदि द्यौंस,
आये इम आपुनें बरोदिया नगर नाम॥

रामनवमी के दिन बुंदी आइ रंच रहि,
धारी रहिबे की ठानि केदारेस ढिग धाम॥
बाग कुंड महल बडे जब बनाइबे कों,
दीनौं आप सासन हजारन खरचि दाम॥९३॥

एकादशी के दिन का पुण्य स्नान पुष्कर सरोवर में सम्पन्न कर हाड़ा राजा ने मन्दिरों में दर्शन किये और दान-पुण्य किया फिर इसी दिन पुष्कर से चल कर थोड़ा आगे माकड़वाली नामक ग्राम में रात्रि विश्राम हेतु पड़ाव डाला। इस तरह हाड़ा राजा उम्मेदसिंह (श्रीजित) विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बत्तीस के चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रथमा तिथि के दिन अपनी यात्रा से लौटते हुए अपने राज की सीमा में अवस्थित बड़ोदिया नामक गाँव में पहुँचा और रात्रि विश्राम किया। यहाँ से चल कर रामनवमी के दिन श्रीजित राजा ने बूंदी नगर में प्रवेश लिया। थोड़े दिन यहाँ ठहर कर श्रीजित ने केदारेश्वर महादेव के पास अवस्थित अपने आश्रम में रहने की ठानी। अन्ततः श्रीजित ने आश्रम में आ कर नये निर्माण करवाने हेतु (जिनमें महल, बाग और कुंड बनवाने की योजना थी) हजारों रुपयों की राशि दे कर निर्माण कार्य आरंभ करने का आदेश किया।

आर्यागीतिः

इहि बिधि पच्छिम वारी, जात्रा करि बानप्रस्थ पन मैं जानैं॥
बसुधातल बिस्तारी, निर्मल निज कित्ति चंद्रिका इक न्यारी॥९४॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में स्थित तीर्थस्थानों की यात्रा पूरी कर उस वानप्रस्थी राजा श्रीजित ने वसुधातल पर अपनी निर्मल कीर्ति की चांदनी का प्रसार किया जो अपने आप में अनूठी थी।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ विष्णुसिंहचरित्रे आटोणकोटाकटक पराजित कोटानिष्कासितकोटा-बन्धुदेवीसिंहधात्रीभ्रातृ जसकर्णसहितजयपुरगमन श्रीजिद्राज्ञीराष्ट्रकूटीतनुत्यजनकोटाबुन्दीमन्त्रयेकमत्यकरण रुहिल्लभीतलखनऊपतिनव्वाब स्वसहायार्थंगरेज काशीपुर प्रदानत्यक्त फैजाबाद लखनऊस्वराजधानी विधानकृतद्वारकाधीशदर्शनश्रीजित (उम्मेदसिंह) बुन्दीप्रत्यागमन द्वितीयो मयूखः आदितः ॥३५२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह के चरित्र में, कोटा के राजवी, देवसिंह का आटोंण में कोटा की सेना से हारकर, कोटा से निकाले हुए जशकर्ण धायभाई सहित जयपुर जाना, श्रीजित की स्त्री (राठौड़ी) का शरीर छोड़ना और कोटा व बून्दी के मंत्रियों का एकता करना, रुहेलों से घबराकर अपने सहायक अंग्रेजों को लखनऊ के नवाब का काशीपुर देना और फैजाबाद को छोड़कर लखनऊ को अपनी राजधानी करना, श्रीजित उम्मेदसिंह का द्वारकाधीश के दर्शन करके वापस बून्दी में आने का दूसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बावन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

जत्रा श्रीजित करन जब, पच्छिम किय प्रस्थान।
तब बुंदी पठयो तिलक, मरुपति बिजय समान॥ १॥

इक मनि भूखन इक्क इभ, दुव हय दुव सिरुपाव।
इम टींका पठयो इहाँ, समता रीति स्वभाव॥ २॥

तिलक निवेद्यो आइ तिन, विष्णुसिंह नृप अग्ग।
दिन्नी हय सिरुपाव दै, उनको सिक्ख उदग्ग॥ ३॥

भूत कथा कछु भाखियत, पहु अब पाइ प्रसंग।
जिम उदंत मेवार हुव, सुनिये तिम हित संग॥ ४॥

हे राजा रामसिंह ! श्रीजित राजा जब तीर्थयात्रा करने को पश्चिम दिशा में गया था तभी जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह ने बूंदी के नये राजा विष्णुसिंह के लिए टीका भिजवाया जिसमें राठौड़ राजा ने एक रत्नजड़ित आभूषण, एक हाथी, दो घोड़े और दो सिरोपाव भेजे। जोधपुर से आए सरदारों ने अपनी समता वाले राजा विष्णुसिंह के समक्ष तिलक दस्तूर की भेंट नजर की। हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने टीका सामग्री स्वीकार कर वापस प्रत्युत्तर में जोधपुर के सरदारों को एक-एक घोड़ा और एक-एक सिरोपाव देकर विदाज्ञा प्रदान की। हे राजा रामसिंह! अब मैं आपसे इससे कुछ समय पूर्व का मेवाड़ संबंधी वृत्तान्त कहूँगा।

राजसवत्तिका

अग्गैं उदैपुर रान संग्राम कै धात्री तनै नगराज मुसाहब।
केसरीसिंह सलूमरि सासक जो भन्यों सो भट मुख्य हुतो जब॥

बिग्रह ताके तथा नगराज कै बोलन मैं बढतो परिगो तब।
मूँछनवारी सिवा कहतो इम राउत कौं नगराज मर्यो अब॥ ५॥

राउत की करि कानि तथापि कह्यो तस मानि कर्यो हित रानतो।
सो मरिबे लग्यो केसरीसिंह पटुत्व न पुत्रन मैं पहिचानतो॥

गो जसवंतहु देवगढेस जहाँ हित पुच्छन संभव जानतो।
केसरीसिंह कह्यो तब ताहि रह्यो अब रानकै तूही प्रधानतो॥ ६॥

पाटव नाँ मम पुत्रन मैं तिन मूढन की अब लाज है तो कर।
सो सुनिकैं बिसवास बढाइ घरीक रह्यो जसवंत चल्यो घर॥

पंथ मैं भाख्यो नहै निज पूत भरोचित यौं अब देत हमैं भर।
संगव्है राउत के चर सो सुनि दोरि कही निज स्वामि सौं सत्वर॥ ७॥

चित्तौड़गढ़ के पूर्व महाराणा संग्रामसिंह के एक धायभाई नगराज नामक मुसाहिब था उस समय महाराणा के शासन में सलूंबर का स्वामी केसरीसिंह प्रमुख सचिव था। इस केसरीसिंह और नगराज के मध्य बोलचाल हो गई और इससे उनमें विरोध बढ़ा क्योंकि नगराज धायभाई सलूंबर के रावत केसरीसिंह को मूंछोंवाला गीदड़ कहता था। वह नगराज मर गया। महाराणा, केसरीसिंह का पूरा अदब करता था तब भी उसे उलाहना दिया कि उस धायभाई ने तो हमारा हमेशा हित ही किया था। इधर केसरीसिंह भी जब मरणासन्न हुआ तो उसके मन की कसक और गहरी हो गई क्योंकि उसके पुत्र जितने होने चाहिए उतने चतुर न थे। इसी समय सलूंबर के रावत केसरीसिंह का सुख पूछने को देवगढ़ का रावत जसवंतसिंह आया। रावत जसवंतसिंह को देख कर केसरीसिंह ने कहा कि अब तो महाराणा के एक आप ही प्रधान बचे हैं। मेरे पुत्र अभी उतने अनुभवी और चतुर नहीं इसलिए हे रावत! मेरे मूर्ख पुत्रों की लज्जा अब तुम्हारे हाथ में हैं! यह सुनकर जसवंतसिंह ने केसरीसिंह को ढांढस बंधाया और चिन्ता न करने की कहते हुए एक घड़ी ठहर कर वह अपने घर देवगढ़ जाने को रवाना हुआ। मार्ग में जाते हुए जसवंतसिंह ने कहीं यह कह दिया कि सलूंबर रावत को अपने पुत्रों की काबिलीयत पर भरोसा नहीं इसलिए वे मुझ पर उनका भार डालते हैं। इस समय सलूंबर के दूत भी जसवंतसिंह के साथ ही थे उन्होंने वापस लौटते ही अपने स्वामी को यह सभी कुछ कह दिया कि देवगढ़ का रावत ऐसा कह रहा था।

प्रानित सेसहो राउत पै सुनि दर्प्पको बैन कह्यो जसवंत सु।
बट्टसो ताकहँ पीछो बुलाइ बद्यो नहिँ तोबस मो सुत धी बसु॥
जेठो कुबेर छमाजुत पै लहुरो सबसौं यह लाल अहो असु।
रावरे लैन बिथा रचिहैं पुनि धीजिहों तो अब छीजिहों ज्यौं पसु॥ ८॥

राउत बैन ए राउत के सुनि आयो निगूढ बिरोध सम्हारिकैं।
राउत अंत अनंतर रान कुबेर गिन्यों तिहिंठाँ सतकारिकैं॥
भो अरिसिंह उहाँ जब भूप कस्यो जसवंत सुमंत्री बिचारि कैं।
केहरि सूनुन सौं यौं कह्यो तुम कट्टहु काल स्वगेह सिधारि कैं॥ ९॥

अभी रावत केसरीसिंह की देह में प्राणशक्ति शेष थी। उसे जसवंतसिंह के ये बोल दर्प से भरे बोल लगे लिहाजा रास्ते से ही देवगढ़ रावत को उसने वापस बुलवाया और कहा कि हे बुद्धिमान रावत! मेरे पुत्र तेरे भरोसे पर नहीं अपनी अक्ल के भरोसे हैं। मेरा पाटवी पुत्र कुबेरसिंह तो स्वभाव से दयावान और क्षमाशील है पर मेरा सबसे छोटा बेटा लालसिंह जो है वह निश्चय ही तुम्हारे प्राण हरने की आश्चर्ययुक्त विधि रचेगा। अब चाहे आप मेरी बात पर भरोसा करें अथवा न करें पर धैर्य रखें और जी को न जलाएँ। रावत केसरीसिंह सलूंबर के ऐसे बोल सुन कर रावत जसवंतसिंह ने अपने मन में निश्चय ही गुप्त बैर ठान लिया। इधर रावत केसरीसिंह का देहान्त हो गया तो कुबेरसिंह को महाराणा ने सलूंबर का नया रावत बनाया। उधर जब उदयपुर का नया महाराणा अरिसिंह बना तो उसने देवगढ़ के जसवंतसिंह को अपने भरोसे का व्यक्ति मानते हुए मुख्य सचिव बनाया और सलूंबर के रावत केसरीसिंह के पुत्रों से कहा कि अब थोड़े समय तक तुम अपने घर चले जाओ और सलूंबर में ही अपना समय गुजारो।

साँझ हवेली सलूमरि की यह सासन राउत रान को आवत।
राति सो काटी दुखी रहिकैं कहिकैं खल सो नृपको बहिकावत॥
लै सब भ्रातन प्रातही लाल महा ठिग ड्योढी गो सोक मचावत।
ऐसैं दई नृपकौं अरजी क्रमिहै हम छुव प्रभु के पय पावत॥१०॥
सद्म के जावनको नहि सोक पै जैहैं अहो प्रभु कौं लखि जीवत।
बज्र से ए सुनि लाल के बैन बढ्यो सबके मन धोका चढ्यो बत॥

सोदर माँहि बुलाये सबै मिलबे लगी सीख तँहैं छल के मत।
स्याल सो मारिच चूरन लेस छुवाइ कैं नैनन रोयो वृथा छत॥११॥

महाराणा अरिसिंह और रावत जसवंतसिंह का यह आदेश सलूंबर की हवेली पर सांझ के समय आया। इस नये आदेश को सुन कर रात को दुख में बिताया और लालसिंह ने सवेरे सभी भाइयों से कहा कि वह दुष्ट देवगढ़ का रावत हमारे विरुद्ध महाराणा को बहका रहा है। इतना कह कर प्रात:काल हीअपने भाइयों को साथ ले कर वह महाठग लालसिंह महाराणा के महलों की ड्योढी पर आया और एक अर्जी लिख भेजी जिसमें लिखा कि हम अपने स्वामी के चरण छू कर निवेदन करते हैं कि हमें अपने घर जाने का दु:ख नहीं है पर इस बात का दु:ख है कि हम आज तो अपने मालिक को जीवित देख कर जा रहे हैं आगे पता नहीं क्या हो? लालसिंह के ऐसे वज्र से कठोर शब्दों को सुनकर सभी के मन में यह दहशत व्याप्त हो गई कि कहीं कुछ धोखा होने वाला है तब सभी बांधवों को महाराणा ने भीतर मिलने बुलवाया और समाचार पूछ कर जब जाने की विदाज्ञा दी उस समय वह गीदड़ (ठग) पीसी मिर्ची का चूर्ण आँखों में लगाकर अकारण ही आँसू बहाने लगा।

पूछैं घनी हिचकी भरि पाप कह्यो अब दास तो जावत गेह कौं।
नैक बिबिक्त मिलैं तो निदान दिखाइ कढैं सुभ व्है प्रभु देह कौं॥

भीत मनोबस सो सुनि भूप निगूढलै पूछे जनावत नेह कौं।
लंबे निसास कह्यो तब लाल महाठिग छोरत अश्रुन मेह कौं॥१२॥

जो प्रभु मंत्री कर्‌यो जसवंत सो बालिस स्वामिसौं द्रोह बिचारत।
पुण्य सौं आप सो पाये प्रभू हम पाये सबै सुख यामैं निहारत॥

पापिनी जीभ तो काटी परैं पर पापी स्वघात पैं हाथ प्रसारत।
नाथ के आनि पितृव्यक नाथ धनी करिहै यौं कढ़े हमैं धारत॥१३॥

सिसकियाँ भरते लालसिंह से जब महाराणा अरिसिंह ने रोने का कारण पूछा तो उस पापी ने छलपूर्वक कहा कि हे स्वामी! आपका यह दास तो अपने घर जा रहा है पर एक निवेदन है कि यदि मुझे थोड़ा एकान्त मिले तो मैं स्वामी को अपने रोने का कारण बता सकता हूँ और यह बता कर जाने में

ही भलाई है। मन भय से ग्रस्त होते हुए भी महाराणा ने अलग लेकर स्नेह जताते हुए लालसिंह से रोने का कारण पूछा तब लंबे निश्वास भरते हुए वह महाठग लालसिंह रोने पर काबू पा कर कहने लगा हे स्वामी! आपने जिस जसवंतसिंह को अपना विश्वास पात्र मानते हुए अपना प्रधानमंत्री बनाया है वह मूर्ख तो अपने मन में स्वामी के प्रति द्रोह पाले हुए है। हमारे पुण्य से हमें आप जैसा स्वामी मिला है हमें तो सभी सुख इसी में मिल गए पर इस काटने योग्य अपनी जीभ से कैसे कहूँ कि वह पापी जसवंतसिंह आपको मारने पर तुला है। वह हे नाथ! आपके काका नाथसिंह को लाकर आपकी ठौर उदयपुर का महाराणा बनायेगा। यहीं कारण है कि वह हम सलूंबर वालों को यहाँ से निकालना चाहता है।

पाग्यो हुतो हम लेख प्रमान को वृष्टि मैं क्लिन्न सुतो बिगर्‌यो गयो।
सत्य करैं हम रावरे सौंह नतो सुरनाँ जो प्रबोध पर्‌यो गयो॥
हेरत हे पुनि पैबो प्रमान इतेबिच काढि ही दैबो अर्‌यो गयो।
प्रखिबो यातैं चह्यो प्रभुको रु कह्यो प्रभुतो अब ख्यात कर्‌यो गयो॥१४॥
यामैं प्रमान लखे ब यहै जसवंतसौं गूढ कहो तुम जाइकैं।
पापी पितृव्यक बग्घपुरेस निपातहु नाथ बिसास बढाइकैं॥
जो तुम यौं न करो जब तो हमरे तुमनाँ यौं गिनैं हम हाइकैं।
एह करै जसवंत तो आप कुपात्रन देहु हमैं निकसाइकैं॥१५॥

हे स्वामी! इस घातक योजना के लिखित प्रमाण भी मेरे पास थे पर क्या करूँ बरसात के पानी से भीगकर वह कागज नष्ट हो गया। मैं सत्यपूर्वक आपके चरणों की शपथ उठा कर कहता हूँ कि मैं कोई खाली-माली सुनी सुनाई बात नहीं कर रहा। मैं फिर से इस बात का नया प्रमाण पाने में जुटा ही था कि इसी बीच हमें यहाँ से निकालने का आदेश हो गया। यही कारण था कि मेरे मन में इच्छा हुई कि जाने से पूर्व अपने स्वामी को जी भर निहारता चलूँ यहीं सोचकर आया। अब जब स्वामी आपने पूछा तो मुझे प्रकट करना पड़ा अर्थात् सभी कुछ आपसे कहना पड़ा। हे स्वामी! प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? अब भी यदि आप प्रमाण चाहते हैं तो आप एक काम करें। उस जसवंतसिंह को बुला कर अभी आप उसे गुप्त रूप से आदेश दें कि यदि तुम्हारी आस्था मुझ में है तो जाओ और तुरन्त बागोर के स्वामी नाथसिंह का

सिर उतार कर ले आओ। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो हम तुम्हें अपना नहीं मानेंगे। हाँ, यदि वह जसवंतसिंह आपका कहा कर ले तो फिर हे स्वामी! आप हम कुपात्रों को यहाँ से अवश्य निकाल देना।

दासन कौं अथवा दै निदेस निहारहु नाथ पितृव्य निपातित।
चामर छत्तन लैबे चल्यो मन जाको अहो अधमाधम सम्मित॥
स्वामी को सासन ही सिर लै हम मारैं पिताहु कौं धार नही हित।
भीम कुबेर तनैहू भन्यौं यह काका कह्यो सुनि जान्यो असंकित॥१६॥

मनस्वी हुतो अरिसिंह तथापि सिट्यो सुहि केहरि नत्तियकी सुनि।
आसु हवेली पठाइ इन्हैं चलचेत न सोच्यो सुनी निहचै चुनि॥
जो निज काका तथा जसवंत परस्पर मित्रहे हेरी सुपै पुनि।
देबगढेस गिन्यों बदल्यो नृप नंदसौं मल्लियनाग जथा मुनि॥१७॥

अन्यथा हे स्वामी! आप हम दासों को हुक्म दे कर देखें। आप देखेंगे कि आपकी आज्ञा होते देर लगेगी पर बागोर के नाथसिंह के मरने में नहीं। जिसका मन चँवर और छत्र लेने को ललचाया वह नीच के अतिरिक्त क्या हो सकता है? अपने स्वामी की आज्ञा के सामने हम अपने पिता का हित भी नहीं देखने वाले हैं। तभी कुबेरसिंह के बेटे भीमसिंह ने बीच में कहा कि हे महाराणा! आप मेरे काका के कहे वचनों पर किसी भी प्रकार की शंका न करें इनके कहे को निंश्चयजानें। महाराणा अरिसिंह यों तो मनस्वी था पर केसरीसिंह सलूंबर के नाती-पुत्रों की बातें सुन कर प्रत्युत्तर विहिन हो गया। उसने सलूंबर वालों को तुरन्त उनकी हवेली वापस भेजा और चलायमानचित्त वाले महाराणा ने सुनी-सुनाई बात को सत्य मान लिया। महाराणा ने यह भी सुन रखा था कि उसके काका नाथसिंह और देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह में गाढ़ी मित्रता है। मन ही मन निष्कर्ष निकालते हुए अरिसिंह ने सोचा कि हो न हो यह देवगढ़ का रावत चाणक्य मुनि की तरह नंद वंश के राजा का खात्मा चाहने वाला है। अर्थात् लालसिंह की कही बात सन्देहास्पद नहीं उसमें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है।

सो जसवंत हुतो मन सुद्धहि चित्तहु स्वामि सों द्रोह न चाहत।
एक सलूमरि पैं अनख्यो बहुत्यौं हित नाथ के साथ निबाहत॥
लाल के जाल मैं यों उरभ्यो सकली अरिसिंह भली न समाहत।
जालम कोटा रच्यो बिधि जो सु उदैपुर भो उलटी अवगाहत॥१८॥

जसवंत बिबिक्त बुलाइ जहाँ अरिसिंह भन्यौं मम काका अहो।
प्रतिकुल रहैं रु चहैं प्रभुता तिनकौं तुम गंजि हनौं कि गहो॥
जसवंत कह्यो प्रभु आप जहाँ कछु द्रोह प्रतीति प्रमान कहो।
नहितो बिपरीत पितृव्य नहै बहिके कहुँ क्यौं गुरुहत्या बहो॥१९॥

यद्यपि जसवंतसिंह चूंडावत शुद्ध मन से स्वामिधर्म का पालन करने वाला था वह मन से किसी भी प्रकार का अपने स्वामी के प्रति द्रोह सोचने वाला नहीं था। वह एक सलूंबर वालों से खफा अवश्य था और नाथसिंह से पूरा स्नेह रखने वाला था पर महाराणा अरिसिंह उस लालसिंह के जाल में ऐसा उलझा कि उसे भली बात भी उल्टी लगने लगी। कोटा में झाला जालिमसिंह ने तो कोटा और बून्दी में अर्थात् बांधवों में एकता की बात सोची वहीं उदयपुर में यह उल्टी बात अर्थात् विरोध पनपाने की बात सोची गई। अरिसिंह ने तुरन्त जसवतंसिंह को एकान्त में बुलाकर कहा कि मेरा काका आश्चर्यजनक ढंग से हमारे प्रतिकूल है और स्वयं मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठना चाहता है। उसे तुम या तो मार डालो अथवा बंदी बना लो। जसवंतसिंह ने तुरन्त कहा हे स्वामी! आप जो कह रहे हैं उस द्रोह का क्या आपके पास कोई प्रमाण है? यदि नहीं तो फिर आप क्यों खामख्वाह अपने काका के विरुद्ध हो रहे हैं और गुरुहत्या जैसा पाप अपने सिर ले रहे हैं।

अरिसिंह कह्यो बिनु मंतुहु एक कह्यो हमरो तुम ज्यौं त्यौं करो।
प्रतिकुल तम्हैं नहि जानि परैं हम जानत यातैं कलेस हरो॥
जसवंत कह्यो हम मित्र जहाँ इम सासन मोहि कौं क्यौं दै अरो।
यह ओरकों सौंपि कैं मेरो उहाँ ध्रुव सूचन जानिकैं कारा धरो॥२०॥
सुनि कैं यह राउत की अरिसिंह स्वपच्छ मैं जानि सलूमरि के।
जसवंत सौं भाख्यो न मानो जहाँ करिहैं न स्वपच्छ मैं केहरि के॥
तनि व्याज बिसास यों सिक्ख दै ताको बलिष्ठ सहायहु मैं बरि के।
बलि वा ठिग कौं ढिग आप बुलाइ कह्यो अरि मारि तथा अरि के॥२१॥

यह सुनकर महाराणा ने कहा, लाख कोई अपराध न हो पर मेरे एक आदेश का तो ज्यों का त्यों पालन करके दिखाओ! तुम्हें नाथसिंह हमारे प्रतिकूल नहीं लगते हों पर मैं जानता हूँ इसलिए इस क्लेश को मिटाओ। यह सुन कर देवगढ़ के रावत ने कहा कि हे महाराणा! हम आपस में मित्र हैं।

फिर आम मुझसे ही इस आदेश की पालना करवाने की क्यों जिद करते हैं ? यह काम आप किसी और को सोंपे और मुझे भी उस पक्ष का गिनते हुए कैद में डाले। देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह से यह सुनकर अरिसिंह ने सोचा कि सलूंबर वाले तो मेरे पक्ष के हैं। तब उसने कहा कि तुम्हारा कहा भी हम नहीं करेंगे अर्थात् तुम्हारे कहे अनुसार हम सलूंबर वालों को यहाँ से नहीं निकालेंगे। तुम्हारी झूठी बात पर भरोसा कर मैं कैसे अपने एक बलिष्ठ सहायक को यों जाने दूं ? इसके बाद महाराणा अरिसिंह ने उस ठग लालसिंह को अपने पास बुलवा कर कहा कि तुम जाओ और मेरे शत्रु के पक्ष वालों को मार कर आओ।

मत आपुनौं जो न चहैं मनसौं सुहि सत्रुको पच्छ समाहनौं है।
बलि बग्घपुरेस के संग बली व्है ढरैं उत कों सुपै ढाहनौं है॥
यह देवगढेसहु छद्मी अमात्य बनी पैं बिगार निबाहनौं है।
तुम मांहि सौं जो फटि सूचैं तिन्हैं दुखदाता सुपै दव दाहनौं है॥२२॥
पहु रान बिसास के यौं चउ नंच दुघाँ पटु लाल के संग दये।
जसवंत सौं छानैं प्रबाधि यों जे पहु बग्घपुराधिप पैं पठये॥
वह धर्म्म बिचच्छन नाथ अहो भय हीन हुतो तँहँ सज्ज भये।
पठई कहि भूपति के पठये इह आये करैं कछु मंत्र अये॥२३॥

तब महाराणा ने सोचा कि जो आपके मत को न चाहे अर्थात् जो आपका मनचाहा न करे उसे शत्रु के पक्ष में समाहित जानना चाहिए फिर बागोर के स्वामी नाथसिंह के साथ जो प्रबल लोग लगे उनका भी नाश करना चाहिए। यह देवगढ़ का रावत जसवंतसिंह जो छल कपट से मेरा अमात्य बना है यह मेरा बन कर मेरा ही नुकसान चाहने वाला है। ओ लालसिंह ! अब यदि तुम सलूंबर वालों में से कोई पक्षद्रोही बन कर नाथसिंह तक यदि यह भेद पहुँचा दे तो उसे भी तुम्हें दुखदायी मान कर नष्ट करना होगा। इतना कह कर महाराणा अरिसिंह ने अपने भरोसे के चार-पाँच योद्धा लालसिंह के साथ किये। ये विश्वासपात्र ऐसे थे जो दोनों दिशाओं अर्थात् नाथसिंह और जसवंतसिंह के पक्ष वालों पर यह भेद प्रकट करने वाले नहीं थे। देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह से छिपा कर चुपके से यह शिक्षा दे कर महाराणा ने उन अपने

आदमियों को बागोर के स्वामी पर हमला करने भेजा। उधर वह धार्मिक वृत्ति वाला नाथसिंह तो सात्विक भक्त भय से विहीन था इसलिए सज्जित न था और अरिसिंह के भेजे व्यक्ति सज्जित हो कर गए। इन्होंने जाते ही कहलाया कि हम महाराणा के भेजे हुए आए हैं और हमें कुछ आवश्यक मंत्रणा करने हेतु नाथसिंह से तुरन्त मिलना है।

वह बग्घपुराधिप नाथ उहाँ क्रम नित्य समैं सिव पूजा करैं।
इहिँ ताही समै ढिग आवन की पठई कहिनौं तो बिलंब परैं॥
इक लाल कौं आवन देहु इहाँ हठ जानि यौं नाथहु भाख्यो हरैं।
सठ जान्यौं मिल्यो यह इष्ट समै बहु मैं हम घातक क्यौं उबरैं॥२४॥
खिन मैं तँहँ जाइ महाखल की बल की मनसुद्ध पैं तेग बही।
सिर चाहत सूर को मानि मनों सिर पैं सिव की रुचि जाइ रही॥
सु महीप उमेद प्रभुत्व समै क्रम प्रस्तुत ठाँ सब बत्त कही।
अब जैपुर राज्य उदंत इहाँ चहि सूचन सो पुनरुक्त चही॥२५॥

इस समय बागोर का स्वामी नाथसिंह शिव (एकलिंगनाथ) की पूजा करने में नित्यप्रति की तरह तल्लीन था। इसी समय लालसिंह और उसके साथियों ने कहलाया कि हमें आपसे आवश्यक बात करनी है और इसमें विलम्ब नहीं हो, इसलिए हमें तुरन्त मिलना है। यह सुनकर धीरे से नाथसिंह ने अपने सेवकों से कहा कि एक लालसिंह को भीतर आने दो। यह सुनते ही लालसिंह ने मन में सोचा कि अच्छा अवसर हाथ आया है इसे व्यर्थ नहीं जाने देना है। क्षणभर में उस महादुष्ट ने जाते ही पूरी ताकत के साथ अपनी तलवार का प्रहार शुद्ध मन वाले (नाथसिंह) पर किया। मानों शिव (महादेव) की रुचि रही हो अर्थात् तुरन्त ही महादेव को अपनी मुंडमाला के लिए वीर नाथसिंह का कटा सिर मिल गया। हे राजा रामसिंह! यह बात मुझे (ग्रंथकार) को हाड़ा राजा उम्मेदसिंह के शासन काल के समय में कहनी थी सो अब कही है। अब मैं आपको जयपुर का वृत्तान्त भी साथ ही साथ यहाँ बताऊँगा इसमें थोड़ी बहुत पुनरुक्ति हो सकती है।

दोहा

काका घातक सोहि करि, लघु, गुरु संगत लाल।
भैंसरोरगढ दै भये, कुहक सु रान कृपाल॥२६॥

जिम चमके जसवंत कौं, निजखिन पाइ निकारि।
भय बिरहित अरिसिंह भो, ध्रुव भीमहिं निज धारि ॥२७॥

भाखी जिम पहिलैं भये, सहित रान संग्राम।
जगत पता अरु राजहरि, ते न बचे बिधि ताम ॥२८॥

पंचम अब लहि पट्ट कौं, भो अरिसिंह भुवाल।
सोपै जानहू प्रभु सुमति, क्रम सम भूतहि काल ॥२९॥

हे राजा रामसिंह! अपने काका नाथसिंह को मारने वाले लालसिंह को तब महाराणा अरिसिंह ने छोटे से बड़ा बनाया अर्थात् वह लालसिंह पहले छोटे उमरावों में था उसे बड़े उमरावों में शामिल किया। उस ठग पर महाराणा ने कृपालु हो कर उसे भैंसरोड़गढ़ का जागीरदार बनाया। यही नहीं महाराणा अरिसिंह ने अपने प्रधान अमात्य बने जसवंतसिंह को जिससे भय था उसे तुरन्त ही निकाल बाहर किया और निर्भय होकर सलूंबर वाले भीमसिंह को अपना खास अमात्य बनाया। हे राजा रामसिंह! मैंने यह जिस समय की बात बताई है इस समय से पूर्व उदयपुर में संग्रामसिंह, जगतसिंह, प्रतापसिंह और राजसिंह महाराणा हो चुके थे और विधि के विधान से संसार में नहीं रहे। अब पाँचवे महाराणा के रूप में अरिसिंह राजगद्दी पा कर उदयपुर के शासक बने क्रमशः इनका काल भी भूतकाल जानों।

राजसवतिका

केहरि को सुत जेठो कुबेर नहो तँहँ भीम सु हो तस नंदन।
ताको पितृव्य छली इम तत्थ महाखल लाल कहायो महामन॥

जैपुर व्याही सुता जसवंत सुही अवलंब बिचारि क्रिया सन।
भति उहाँ पहुँच्यौं भय तैं सुत राघवदास कौं सौंपि धरा धन॥३०॥

सूनु गुपाल पुरोग समेत घनैं भय गो जसवंत सुताघर।
पुत्री समेत उभै सुत पुत्री के आपुनैं जानि प्रधान बन्यों अर।

यौं अरिसिंह सलूमरि सासक भीम प्रधान कर्यो निज दै भर॥
आपुनैं ओर गिन्यों नहि याहित पंच रु राना रचे न परस्पर॥३१॥

हे राजा रामसिंह! उस समय सलूंबर के रावत केसरीसिंह का पुत्र

कुबेरसिंह नहीं हो कर उसका पुत्र भीमसिंह था जिसका काका लालसिंह छल कपट से भरा महादुष्ट होते हुए भी महावीर कहलाया। उधर देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह की पुत्री जयपुर के राजा को ब्याही थी इस उपाय को विचार कर जसवंतसिंह अपने पुत्र राघवदेव को देवगढ़ सोंप कर स्वयं भयभीत सा जयपुर पहुँचा। इससे पूर्व जसवंतसिंह का एक पुत्र भी जयपुर गया हुआ था और उसकी बेटी का घर भी वहाँ था यह सोचकर जसवंतसिंह जयपुर चला गया। अपनी पुत्री कछवाहा राजा माधवसिंह की रानी और अपने दोनों दोहित्र पृथ्वीसिंह तथा प्रतापसिंह के रहते वह शीघ्र ही जयपुर का प्रधान बन गया। और इधर सलूंबर के रावत भीमसिंह को उदयपुर के महाराणा अरिसिंह ने अपना प्रधान अमात्य बनाया लेकिन अन्य उमरावों को अपनत्व नहीं दिया इसी कारण से मेवाड़ के सामन्तों और महाराणा में नहीं बनी।

याहि तैं पीछैं बिरोध उठ्यो सिसु पै प्रकट्यो वह रत्नस नामक।
कुंभिलमेरू निवास कर्यो रु धर्यो बटि अर्द्ध-धराधन धामक॥
व्है गयो नास हजारन को रन दक्खिन तैं दुव बेर बिरामक।
सो तुम पिछे हन्यों अरिसिंह भयो नृप हम्म बढ़े भ्रम भ्रामक॥३२॥
जैपुर हो तब तैं जसवंत समाश्रय पाइ सुता रु सुतासुत।
रानीहु राखि पिताही प्रधान भुजा तस राज्य को भार दयो द्रुत॥
ओ इक बिप्र महावत इक्क उभै भुज ए रु रह्यो सिर राउत।
राज्य को काज सिसुप्रजा रानिय जो करैं सो सब या त्रिक संजुत॥३३॥

आगे चल कर अरिसिंह के खिलाफ विद्रोह हुआ फिर रत्नसिंह नामक छद्म शिशु को प्रकट किया गया और कुंभलगढ़ में ले जा कर उसे ठहराया गया। उदयपुर राज की आधी जमीन और धन इस तरह बँट गया। दो बार विनाश करने वाली सेनाएँ दक्षिण से आई और हजारों आदमी मारे गए। फिर महाराणा अरिसिंह मारे गए और उनकी जगह हम्मीर नया महाराणा हुआ। मेवाड़ में धूर्त उमरावों का बोलबाला बढ़ा। इस समय देवगढ़ का रावत जसवंतसिंह जयपुर में अपनी बेटी और दोहित्रों के आश्रय में था। जयपुर की रानी ने भी अपने पिता (जसवंतसिंह) को प्रधान बना कर राजकाज का भार सोंपा। इस समय जयपुर में इस नये प्रधान जसवंतसिंह के

दो हाथ माने जाने वालों में से एक ब्राह्मण और दूसरा महावत था। जयपुर का सारा राजकाज इस सन्तानों वाली रानी के हाथ में था जिसे वह उन तीनों की सहायता से करती थी।

ए कछवाहन के उर मैं नहिं मावत तीन जुते धुर नायक।
च्यारिन कों इम कैद चहैं दुबिधा बटि द्वै द्वै जथा दुखदायक॥
न्यारे नरेस प्रसू रु नरेस ए भिन्न करैं दृगकैद अभायक।
बिप्र रु मिच्छ छली बलसों धरि कारा करैं निज कज्ज बिधायक॥३४॥

जसवंतसिंह, ब्राह्मण और महावत ये तीनों राज में अग्रणी लोग कछवाहों के हृदय में खटकते थे। कछवाहों ने सोचा कि यदि रानी सहित इस चौकड़ी को आधा-आधा बाँट कर अर्थात् दो को एक जगह और शेष दो को दूसरी जगह कैद कर लिया जाए। जिनमें से राजा पृथ्वीसिंह को उसकी माता सहित नजरकैद अलग जगह पर किया जाए और ब्राह्मण खुशालीराम बोहरा को महावत फिरोजखान के साथ अन्य जगह पर कैद किया जाए। इसके बाद हम अर्थात् कछवाहे विधानपूर्वक राजकाज करें।

दोहा

दिट्ठिकैद बिच ए दु घाँ, रानी अरु नृप रक्खि।
द्विज रु मिच्छ कारा दुव हि, सठ डारँ हिं सब सक्खि॥३५॥
नाँना मंत्री नृपति को, सुत जुत ताहि निकासि।
क्योंन अमल अपनों करैं, तेगन बल खल त्रासि॥३६॥

कछवाहों ने रानी और राजा को दो जगह कैद करने की योजना बनाई इसी तरह बोहरा और फिरोजखान को कैद कर लिया जाए और नाना (जसवंतसिंह) को जो राजा का प्रधान है उसे उसके पुत्र सहित जयपुर से भगा दिया जाये। फिर हम क्यों नहीं अपनी तलवार के बल पर इन दुष्टों को डरा-भगा कर जयपुर पर अपना अमल जमाएँ।

घनाक्षरी

राजाउत नाथाउत थंभ राज्य के जे थिर,
प्रीत बनि अर्थपैं दिखाइ हठवारी प्रीति॥

रानी अरु राजा भिन्न भिन्न दुव ठाम रोही,
नाँनाँ अरु माँमाँ द्वै निकासिबो समुझि नीति ॥
बिप्र रु महावत कों भिन्न ठाँ निगड़बंधि,
आपुनों सम्हारि राज्य टारहिँ अरिन ईति ॥
अैसी सोचि कूरम बिचारैं निज दाव आयो,
जानैं भाव आयो मुख्य रहि हैं सबन जीति ॥३७ ॥

जयपुर राज्य के दो स्तंभ माने जाते थे एक राजावत और दूसरे नाथावत। इन दोनों पक्षों ने आपस में मंत्रणा कर संघठन बनाया। इन्होंने तब राजा और रानी को अलग-अलग नजर कैद करने और राजा के नाना (प्रधान) और मामा को यहाँ से निकालना नीति सम्मत ठहरा कर निकालने की सोची। खुशालीराम बोहरा और फरीदखान को अन्य ठौर पर कैद कर हम अपना राज खुद संभालेंगे। सारे शत्रुओं को राज से निकाल बाहर करेंगे। इस तरह की योजना बना कर कछवाहों ने सोचा कि अब अपना दाँव लगने का अवसर आया है। हम सभी एकता कर विजय प्राप्त करेंगे, ऐसा भाव सभी में जागृत हो गया।

माधव महीप लघुता सों गुरुता मैं लाइ,
आगैं खुसहालीराम सो द्विज खँडेलवार ॥
मंत्री करि मान्यों पुनि रानी सों कह्यो मरत,
याके बस दुर्ग रु खजानाँ नीति अनुसार ॥
दूर करि या कों नहिँ ओर कों उचित दैबो,
यातैं छुतो ताही के अधीन उक्त अधिकार ॥
त्यों फीरोज नाम सु महावत बढायो तानैं,
द्रव्य कर लावन हुतो सो तहसीलदार ॥३८ ॥

पूर्व में कछवाहा राजा माधवसिंह ने खुशालीराम बोहरा को छोटे से बड़ा बनाया। उन्होंने इस खंडेलवाल ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया। यही नहीं राजा ने मरते समय अपनी रानी से कहा कि इस मंत्री के अधिकार में गढ़ और खजाने को रखना। इससे लेकर किसी अन्य को इनके प्रभारी मत

बनाना। यहीं कारण रहा कि खजाना और दुर्ग दोनों परउसका अधिकार बरकरार रहा। इसी की तरह अपने महावत फिरोजखान को भी राजा ने कर वसूलने वाला तहसीलदार बनाया था।

राजसिंह नामक हमीरदेव कूरम के,
बंस मैं हुतो जो लघुपंति बिच बारगीर॥
नासरदा नैर दै बढायो सोहु माधव नैं,
सेनानी बनायो स्वमिधर्म्म के समुझि सीर॥
माधव के मरत उतार्‌यो अधिकार याको,
पीछैं सब ओर लखी प्रसरी प्रजा पैं पीर॥
सेखाउत पीछो लै मनोहरपुर हिँ सजे,
सोहि तब सेनानी बहोरि कीनौं गिनि बीर॥३९॥

हमीरदेव कछवाहा के वंशज राजसिंह को कछवाहा राजा ने नासरदा नामक पुर की जागीर दे कर छोटे जागीरदारों की पंक्ति से (अर्थात् छोटे नोकर को) बड़ा बनाया। कछवाहा राजा ने उसे स्वामिधर्म का पक्का समझ कर अपनी सेना का सेनापति बनाया था पर कछवाहा राजा माधवसिंह के मरते ही उसे सेनापति के पद से हटा दिया गया। इसके बाद सभी ओर प्रजा पर पड़े दु:ख को देख कर जब शेखावत मनोहरपुर वापस लेने को सज्जित हुए तब राजसिंह को वीर-योद्धा ग़िनते हुए फिर से सेनापति बनाया गया।

दोहा

स्वामिधर्मपन दर्प सठ, राखत हो यह राज।
राजकाज बिगरत रह्यो, लोपि वहहु वह लाज॥४०॥
राजाउत वाहि न रुचत, देखि पट्ट दायाद।
वह न रुचत राजाउतन, बहुरा जुत नुत बाद॥४१॥
कीरतिसिंह झलाय को, ईस जु पुब्ब अनेह।
बहुरी द्विज किय हीन बल, बैर बहत अब एह॥४२॥
पै अतिवृद्ध झलायपति, आयु बितावत ऐन।
बखतावर तस सुक तकत, लहि खिन बैर सु लैन॥४३॥

कछवाहा सेनापति इस राजसिंह को अपने स्वामिधर्मपन का बहुत घमण्ड था। वह मूर्ख यही दर्प पाले रहा और राजकाज बिगड़ने लगा फिर भी उसे तनिक भी इसकी लज्जा न आई। यही नहीं यह राजसिंह जयपुर की गद्दी के दायभागी होने के कारण राजावत कछवाहों को मन से पसन्द नहीं करता था। यही कारण था कि राजावत भी इस राजसिंह और खुशालीराम बोहरा के लिए बरते जाते स्तुति वचनों से चिड़ते थे। पूर्व काल में झलाय नगर का जो स्वामी कीर्तिसिंह था उसे भी इस बोहरा खुशालीराम ने अधिकारहीन बनाया था। इस कारण से वह भी मन ही मन बोहरा के प्रति वैरभाव रखता था पर इस समय वह अत्यधिक वृद्ध हो गया इसलिए अपने दिन घर में रह कर ही बिताता था। हाँ, उसका पुत्र बख्तावरसिंह अवश्य उचित अवसर की ताक में था कि मौका मिले तो वैर निकाल कर बोहरा से अपना हिसाब चुकता करे।

घनाक्षरी

बिप्र बहुरा जो खुसहालीराम भाख्यो बुध,
अहित झलाय को हुतो जिहिँ प्रसभ आनि॥
माधव महीपति कों गेरि निज सम्मति मैं,
कीनौं सत्रुसाल तुल्य सुभट बढाइ कानि॥
काका बखतावर को हो यह सता कुमति,
जानैं तिय खीचिनि पैं लाभ सु दुलभ जानि॥
पति के नियोग लै झलाय उपमेयपन,
पाइ राखी राखी खुसहालीराम द्विज पानि॥४४॥

जयपुर के मंत्री ब्राह्मण खुशालीराम बोहरा को जो चतुर कहा गया उसने हठपूर्वक झलाय का अहित किया। इस बोहरा मंत्री ने कछवाहा राजा माधवसिंह को अपनी सम्मति में लेकर अर्थात् उल्टी सीधी राय दे कर झलाय के शत्रुसाल की इज्जत बढ़वा कर उसे झलाय के बराबर का सामन्त बनवा दिया। उसे कुमार बख्तावरसिंह से भी अधिक महत्वपूर्ण बनवा दिया। इस कुमति शत्रुसाल की पत्नी जो खीची जाती की चहुवान थी ने अपने पति का वर्चस्व बढ़ाने के लोभ को दुर्लभ जान कर अपने पति की सहमति ली और इस खुशालीराम बोहरा को राखी बांध कर अपना भाई बनाया।

पिप्पलदा यातैं राजधानी कौं बितरि पुरी,
सत्रुसाल द्विज नैं कर्‌यो इम झलाय साल॥
दाबि बल सौं सो बलसों तिन दाब्यो देस,
कित्तिहरि कीनौं बिधि बिधि सौं तब बिहाल॥
माधव के मरन अनंतर समय मत्त,
जैपुर प्रसारि बखतावर कुहक जाल॥
ठानि बहुरे को पकराइबो स्वमति ठीक,
चिंतैं हनि डारिबो जथातथ अहित चाल॥४५॥

यहीं कारण रहा कि खुशालीराम बोहरा ने शत्रुसाल को पिपलदा की जागीर दिलवा कर उसे झलायपति के समतुल्य बनाया ताकि वह झलायपति के हृदय में कांटा बन कर खटकता रहे। जिस क्षेत्र को अपने बल से झलाय वालों ने दबा कर अपने अधिकार में लिया था उसी क्षेत्र को बलपूर्वक इस शत्रुसाल ने अपने अधिकार में कर लिया। कहने का तात्पर्य यह कि खुशालीराम ने झलाय के स्वामी कीर्तिसिंह को सभी तरह से तंग कर व्याकुल बना डाला। यहीं कारण रहा कि कछवाहा राजा माधवसिंह के मरते ही उचित समय देख कर बख्तावरसिंह ने जयपुर में अपना कपटभरा जाल फैलाया इसके पीछे उसकी मंशा यह थी कि या तो खुशालीराम को कैद कर ले यदि नहीं तो अपना अहित करने वाले बोहरा को हमेशा के लिए गहरी नींद सुला दे।

राजाउत नाथाउत इनकै सदा बिरस,
हो तिम फल्यो सु लखो दिष्ट फल हाइ हाइ॥
ए उभै कहुँक एक ओकहु बनत अन्य,
ऐसें प्रभु राज्य कों नसेबे लगे अनखाइ॥
नाथाउत चोमूँपति पहिले समै अनखि,
जैपुर बिहाइ कर्‌यो जोधपुर बास जाइ॥
चोमूँके ठिकानैं तब नारव प्रताप चहि,
बैठार्‌यो नरुका राजगढ पुर वै बढाइ॥४६॥

यह बोहरा खुशालीराम जो मन से राजावत और नाथावत कछवाहों के सदा विरोध में था इसका फल जयपुर को अपने भाग्य की विपर्यता के रूप

में मिला। ये दोनों कछवाहा जो एक ही घर के थे अर्थात् जिनका जयपुर ही एक घर था वे अब उसे पराया मानकर अपने ही स्वामी के राज्य को कुपित हो कर नसाने लगे। चोमूं का स्वामी और जयपुर का मुख्य सामंत नाथावत तो पहले ही जयपुर छोड़कर चला गया और वह जोधपुर जा बसा। मंत्री बोहरा खुशालीराम ने तब राजगढ़ के नरूका प्रतापसिंह को बढ़ा कर (उन्नति देकर) चोमूं की बैठक पर ला बिठाया।

एक मुख्य बैठक दुठाम भई वादिन तैं,
चोमूँपति पीछैं आइ आपुनैं वहहि चाहि॥
बंछत भयो मन नरुके को बिगार करि,
त्योंहि जयनैर तें निकास्यो भ्रम डारि ताहि॥
तुरगी कितेकन सौं जट्ट के निवसि तानैं,
दिल्ली देखि बूडत समीप के सुहृद दाहि॥
लोलुप नैं द्वैहि घाँ बिचारि राख्यो लड्डु लोभ,
जैपुर सों जानैं त्यों न जैपुर के जानैं जाहि॥४७॥

अब जयपुर की राजसभा में मुख्य बैठक तो एक पर उसके दावेदार दो हो गए। चोमूं के जागीरदार ने वापस आ कर अपनी बैठक चाही। तब राजगढ़ वाले नरूका प्रतापसिंह ने नहीं छोड़ने का मन बनाया और मन ही मन वह जयपुर का बिगाड़ सोचने लगा पर उसे इस बैठक से वंचित कर दिया गया और उसे जयपुर से निकाल बाहर किया गया। वह प्रतापसिंह तब अपने कई सवारों के साथ जयपुर से भरतपुर के जाट शासक के पास जा रहा। उसने यहाँ पास ही दिल्ली को डूबते देखा तो उस लालची नरूका प्रतापसिंह ने नजदीकी मित्रों की जान जला कर अपने दोनों ही हाथों में लड्डू रखने का विचार किया। उसने सोचा कि जयपुर से जाने के बाद संभव है वह जयपुर का सामन्त नहीं कहलाए।

जैसैं झल्ल जालम भो कोटा मैं महाकुहक,
नारव प्रताप तैंसे जैपुर को चिंति नास॥
अंतर मिलाइ कैं झलाय के कुमर आदि,
बाहिर बढाइ मोघ बहुतन कै बिसास॥

भूपति को बिद्यागुरु राजा को बजत भट्ट,
भेद्यो सो सदासिव मुसाहबी करन भास॥
वाही कौं निमित्त राखि बिप्र रु महावत कौं,
कैद करिबे को फंद डार्‌यो पाइ अवकास॥४८॥

कोटा में जिस प्रकार महाछली झाला जालिमसिंह अपने दाँव खेलता था उसी तरह से दाँव रचकर नरूका प्रतापसिंह ने जयपुर का विनाश करने की सोची। उसने खुशालीराम के विरोधी झलाय के कुमार को गुपचुप ढंग से अपने साथ मिला लिया पर बाहर से वह झूठमूठ का विरोध करता हुआ लोगों को भरोसा दिलाता रहा। इस कछवाहा राजा का जो विद्यागुरु था उस भट्ट को भी राजा का खिताब मिला हुआ था। ऐसे राजा सदाशिव भट्ट को जो मुसाहिब था उसको प्रत्यक्ष रख कर अर्थात् यह जतला कर कि सदाशिव भट्ट यह चाहता है उसे कारण बनाते हुए प्रतापसिंह ने खुशालीराम बोहरा और फिरोजखान को कैद करने का उचित अवसर देखकर जाल फैलाया।

बात न रहत बंध तीजे के श्रवन बिसी,
जानि सोहि बिप्र रु महावत हवेली जाइ॥
अंतेउरडोढी जसवंत कौं पिहित आनि,
भूत भावी रानी को सुनायो सब समुझाइ॥
भट अरु राजाउत नारव मिलि रु भये,
रोधव हमारे रहिहैं जे राज्य बिगराइ॥
जैपुर की सीमा मैं न चुंडाउत राखिहैं जे,
पुत्र सौं न तुम कौं मिलैहैं कारा पटकाइ॥४९॥

हे राजा रामसिंह! यह जगत विदित तथ्य है कि तीसरे कान तक बात पहुँचने पर छिपी हुई नहीं रह सकती। खुशालीराम और फिरोजखान दोनों इस बात का पता चलते ही भागकर जसवंतसिंह की हवेली पर आए और सारी बात बताई तब जनाना ड्योढी पर जा कर जसत्रंतसिंह ने अपनी बेटी और कछवाहा राजा माधवसिंह की रानी को क्या हुआ है, और आगे क्या हो सकता है सभी कुछ समझाया कि सदाशिव भट्ट, राजावत कछवाहे और नरूका आपस में मिल गए हैं। ये हमें कैद कर राज की सारी व्यवस्था बिगाड़

डालेंगे। उनका वश चला तो वे चूंडावतों (मुझे और तुम्हारे भाई को) जयपुर की सीमा में नहीं रहने देगें और वे तुम्हें और भानजे (राजा) को अलग-अलग कारावास में रखेंगे ताकि तुम लोग भी आपस में नहीं मिल सको।

सोहि सुनि रानी हठ आनि इन्ह सम्मति सौं ,
नारव प्रताप सीख दैकैं पठयो निकेत॥
राख्यो भट बिद्यागरु ताही के निलय रुद्ध,
संगी तास सचिव कितेक रोके समवेत॥
पंथ ही सौं पीछो मुरि आयो सुनि सो प्रताप,
पैठन दयो न पुर मैं तब अघ उपेत॥
केते देस जैपुर के लूटि अपनाइ केते,
दुष्ट गो निजालय अनेकन कौं दुख देत॥५०॥

अपने पिता की सलाह से रानी ने हठपूर्वक नरूका प्रतापसिंह को जयपुर से विदा कर अपने घर (राजगढ़) भेजा। वहीं सदाशिव भट्ट को उसी के घर में नजर कैद करवा दिया। इसी तरह उसके संगी अर्थात् मित्र सचिवों को भी कैद करवाया। प्रतापसिंह नरूका ने रास्ते में जब यह सुना कि उसके मित्रों को कैद करवा दिया गया है तो वह बीच राह से मुड़ कर वापस आया पर उस पापी को जयपुर की सेना ने नगर में नही आने दिया। तब वह जयपुर के कई क्षेत्रों को लूटता हुआ और कई लोगों को प्रताड़ित करता हुआ अपने घर गया।

जैपुरतैं कटक प्रताप पर भेज्यो जब,
बाहिर तो सासन दिखैबो छल सौं बिचारि॥
अंतर मैं सारे कछवाहन अरुचि आनि,
नारव सौं नेह कैं रची जिन कपट रारि॥
चुंडाउत बिप्र रु महावत बिगारे चहि,
पापिन नै लाख बीस मुद्रा को खरच पारि॥
आपनी पराई कछु न गिनी पकरि आँट,
धूमिडारी धरनि खिजे गज की धक धारि॥५१॥

इसके बाद जयपुर से प्रतापसिंह नरूका पर फौज भेजी गई पर इस सेना में गए कछवाहा सामन्त योद्धा ऊपरी मन से लड़ने का दिखावा करते रहे क्योंकि वे दिल से रानी के शासन के विरुद्ध थे। इस तरह उन्होंने कपट राड़ (युद्ध) की ताकि जसवंतसिंह, खुशालीराम और फिरोजखान का बुरा लगे। पापियों ने अपना पराया नहीं सोचते हुए जयपुर के बीस लाख रुपयों का खर्चा करवा दिया। किया कुछ नहीं, बस खीजे हुए हाथी की तरह हो कर मात्र भूमि को रोंदा।

जैपुर सुभट अैसैं राजगढ़ दुर्ग जाइ,
बासर कितेक लरे मोघहि बिरचि ब्याज॥
प्रत्युत दिखाइ कैं प्रताप को बलिष्टपन,
कूरमन कूरन बिगार्‌यो निज स्वामि काज॥
दीसिबे लगी ब पुर देस के प्रजादिकन,
राखिहै जो तीनों उक्त पहिले सचिव राज॥
नारव के सम्मत बिना तो निबहैं न नैंक,
अैसे उपद्रव में अधीस को बिभव आज॥५२॥

जयपुर के जो कछवाहे सामन्त राजगढ़ पर चढ़ाई करने गए उन्होंने कई दिनों तक इस कपट भिड़ंत को जारी रखा। फिर झूठी लड़ाई लड़ते हुए उन्होंने प्रतापसिंह नरूका को उल्टा बलवान सिद्ध कर दिया। उन कायर कछवाहों ने अपने स्वामी का अहित करते हुए उसका काम बिगाड़ा। अब नगर और देश के प्रजाजनों को स्पष्ट नजर आने लगा कि यदि राजा ऊपर बताये तीनों सचिवों को बनाये रखता है तो नरूका प्रतापसिंह के बिना कुछ भी नहीं हो सकेगा। यदि उसे भरोसे में नहीं लिया गया तो कछवाहा राजा का सारा वैभव ऐसे उपद्रवों की भेंट चढ़ जाएगा।

दोहा

नारव जैपुर आनिबो, करिबो तस अनुकूल।
दुख टरिबो तब देस को, मान्यौं मंगल मूल॥५३॥
सिसु समान हारे समुझि, रानी अरु नरराय।
आकार्‌यो नारव इहाँ, दै दल सबन सहाय॥५४॥

नारव तब प्रतिभू चह्यो, सेखाउत नवलेस।
पुर झलाय को कुमर पुनि, नृप लिपिका दल लेस।।५५।।

तब जैंपुरतैं करि तिमहि, बुल्लयो नारव नीच।
बहुरा पठयो लैन बलि, बहु आदर मग बीच।।५६।।

पर्‌यो बुलानौं सब पटुन, नारव इम जयनैर।
पुनि तदिष्ट करनौं पर्‌यो, बीसरि मंतु रु बैर।।५७।।

तब सभी ने सोचा कि नरूका प्रतापसिंह को जयपुर लाना पड़ेगा। यही नहीं उसे राज के अनुकूल भी बनाना पड़ेगा अन्यथा राज का दुःख टलने वाला नहीं है। यही मंगल होगा राज के लिए कि वह आए और साथ जुड़े। रानी और राजा को बच्चे की तरह हारा हुआ समझ कर सभी सामन्तों ने पत्र लिख कर नरूका प्रतापसिंह को जयपुर आमंत्रित किया। पत्र पाते ही नरूका ने कहा कि मेरे जयपुर में सुरक्षित रहने की जमानत दो! उस पर नवलसिंह शेखावत और झलाय के कुमार को जामिन बना कर राजा के हाथ का लिखा छोटा सा पत्र फिर भिजवाया गया। इस तरह जैसे-तैसे कर नीच नरूका को जयपुर बुलाना पड़ा। यही नहीं जब वह जयपुर आया तो खुशालीराम बोहरा को अगवानी के लिए सामने भेजना पड़ा जो उसे पूरे आदर-सत्कार के साथ जयपुर नगर में लाए। जयपुर के सभी सामन्तों को इस तरह नरूका को जयपुर बुलाना पड़ा और उसका चाहा हुआ सभी कुछ करना पड़ा वह भी उसके स्वामिविरोध के अपराध को क्षमा करते हुए करना पड़ा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवमराशौ विष्णुसिंह चरित्रे सलूमरेशकेशरिसिंहान्तिसमय कुशलप्रश्नप्रयातदेवगढेशज संवतसिंहवाक्कलहवर्द्धनतन्निमित्त कृत कुहक केसरिसिंह पुत्रलालसिंह जसवन्तसिंह मेदपाटनिष्कासन। जसवंतसिंहजयपुरगमनराणारिसिंहा-देशनिहतबग्घोर पतिमहाराजनाथसिंहलालसिंहमहाभटपदग्रहण। स्वपक्षसमानीतस्व पुत्री (जयपुरेशमाधवसिंह राज्ञी) दौहित्र (जयपुरेशपृथ्वीसिंह) जसवन्तसिंहजयपुरस चिवीभवनकूर्मतद्विरोधवर्द्धन। जयपुरामात्यमिथोद्वेषसभैकासन हेतु चोमूँराजगढ विद्वेषराजगढेशनारव-

प्रतापसिंह जयपुर निष्कासन। राजगढ प्रयातजयपुर सैन्यच्छलयुद्धनारव-प्रतापसिंहबलवत्वप्रथनतज्जयपुराव्हानं तृतीयो मयूखः॥ आदितः॥३५३॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह के चरित्र में, सलूमर के पति केसरीसिंह के मरते समय आराम पूछने को गये हुए देवगढ़ के पति जसवंतसिंह में वचनों का विरोध बढ़ना और उसी कारण से केसरीसिंह के पुत्र लालसिंह का ठग विद्या करके जसवंतसिंह को मेवाड़ से निकलवाना, जसवंतसिंह का जयपुर जाना और राणा अरिसिंह की आज्ञा से लालसिंह का बागोर के पति महाराज नाथसिंह को मारकर बड़े उमरावों की पदवी लेना, राउत जसवंतसिंह का अपनी पुत्री (जयपुर के राजा माधवसिंह की रानी) और दोहिते (जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह) को अपने पक्ष में लेकर जयपुर का सचिव होना और कछवाहों से उसका विरोध बढ़ना, जयपुर के सचिवों का परस्पर द्वेष और सभा की एक बैठक हो जाने के कारण चौमूँ और राजगढ़ में द्वेष होना और राजगढ़ के पति नरूके प्रतापसिंह का जयपुर से निकाला जाना, राजगढ़ पर गई हुई जयपुर की सेना के छल युद्ध से नरूके प्रतापसिंह का ताकतवर प्रसिद्ध होकर उसको जयपुर में बुलाने का तीसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तिरपन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इम प्रताप नारव वहै, आयो जैपुर अत्थ।
इष्ट प्रसार्‌यो आपुनौं, तिम बिन्नति लखि तत्थ॥१॥

याकी सम्मति पाइ इन, कैद महावत किन्न।
यातैं साहस दम्म अर, लक्ख सप्त भरि लिन्न॥२॥

हे बहुरा को चहत हित, भट नाथाउत भीर।
अरु यह पटु इम उब्बर्‌यो, नाविक जह द्रह नीर॥ ३॥

कीरतिसिंह कुमार अरु, धूलापति रघुनाथ।
राजाउत दोउन रच्यो, सेस बिरोधन साथ॥४॥

हे राजा रामसिंह! इस प्रकार पूरी ठसक के साथ नरूका प्रतापसिंह जयपुर आया। यहाँ आते ही वह अपनी मनमर्जी करने लगा। इसकी सम्मति

पा कर तब कछवाहा राजा ने मन नहीं होते हुए भी फिरोजखान (महावत) को कैद किया और उससे दण्ड की राशि स्वरूप सात लाख रुपये वसूल किये। अब बारी खुशालीराम बोहरा की थी पर एक तो उसकी मदद पर जयपुर का नाथावत सामन्त था दूसरा वह स्वयं चतुर था इसलिए बच गया जैसे कोई अच्छा नाव चलाने वाला गहरे पानी के विव्हर से बच निकलता है। उधर झलाय के कुमार कीर्तिसिंह और धूला नगर के स्वामी रघुनाथसिंह इन दोनों राजावतों ने बाकी के विरोधियों का साथ दिया।

चुंडाउत जसवंत इक, राउत देवगढेस।
राजगढेस प्रताप इत, आन्यौं जैपुर एस॥ ५॥

दौउन इन करवाइ दिय, मन इन दोउन मेल।
पै फट्टे खप्पर प्रतिम, खलन मिलन मय खेल॥६॥

करि नारव प्रमुखन कथन, कारा तैं खिल काढि।
गेह जाइ बिद्यागुरुहि, लायो नृप इभ चाढि॥७॥

प्रथित प्रताप प्रताप को, बढिगो इम जिहिँ बेर।
कोऊ कछुहु सकैन कहि, जिन सिंह हिँ गज जेर॥८॥

देवगढ़ (मेवाड़) का चूंडावत रावत जसवंतसिंह जो मंत्री था उसने राजगढ़ के नरूका प्रतापसिंह को जयपुर लाने में विशेष भूमिका अदा की। तब कछवाहा राजा ने इन दोनों अर्थात् जसवंतसिंह और प्रतापसिंह में मेल कराया पर फूटे हुए खप्पर के सदृश इन दुष्टों का मिलन भी मायावी खेल जैसा था अर्थात् झूठा था। मन से वे नहीं मिले। फिर कछवाहा राजा ने नरूका प्रतापसिंह आदि के कहने पर अपने विद्यागुरु को कारावास से निकाला। इसके बाद राजा स्वयं सदाशिव भट्ट के घर जाकर अपने गुरु को हाथी पर बिठा कर महलों में लाया। धीरे-धीरे जयपुर के राज में प्रतापसिंह नरूका का प्रताप बढ़ गया। उसे कोई कुछ नहीं कह सकता था। उसने सभी को दबा लिया था जैसे हाथी बूढ़े शेर को दबा लेता है। राज में अब एक उसी की चलने लगी।

घनाक्षरी

पायो पटा जैपुर को नारव प्रताप तासौं,
बहुरि बिसेस पाई नित्य मुद्रा पंचसत॥

किंत्तिसिंह कुमर झलाय के प्रथम काल,
बैर अरिसिंह को मिटाइ दैबो मंडि मत॥
जैपुर ही मंत्र मैं लै चुंडाउत जसवंत,
पत्र बुन्दी पठयो स्वसापति छितीस छत॥
रानाँ रत्नसिंह को बिबाहो कुल कन्या जाम,
जाजपुर दैहैं लिखि प्रत्युत ए व्हैं प्रनत॥९॥

नरूका प्रतापसिंह ने अब कछवाहा राजा से जयपुर में जागीर का पट्टा ले लिया और जागीर के साथ हाथखर्ची के प्रतिदिन के हिसाब से पाँच सौ रुपये भी बंधवा लिये। झलाय के कुमार कीर्तिसिंह ने पूर्व समय में उदयपुर के महाराणा अरिसिंह को मारने का बैर मिटाने की पहल की थी उसने जयपुर में चूंडावत जसवंतसिंह से इस निमित्त मंत्रणा की और उसने अपने बहिनोई बून्दी के राजा अजीतसिंह को पत्र लिख भेजा जिसमें लिखा कि हे हाड़ा राजा! वैर मिटाने की सूरत यही है कि तुम्हें अपने कुल की एक कन्या का विवाह महाराणा रत्नसिंह के साथ सम्पन्न कर देना चाहिए और इस अवसर पर नम्रता का प्रदर्शन करते हुए जहाजपुर का परगना महाराणा को दे देना चाहिए।

सालक को पत्र यह भूपति अजितसिंह,
बंचिकै पुरोहित पठायो दयाराम तस॥
पीछैं नृप छोर्‌यो देह यातैं मुरि मग्राही सौं,
आयो परकूल तैं बनास लंघि बिप्र यह॥
सोहि पुनि श्रीजित पठायो नीति समुझाई,
आयो अब जैपुर सुनायो तत्व प्रीति सह॥
पै अब स्वसा जुत स्वसापति अभाव पाइ,
बदल्यो कुमार बखतावर बिरोध वह॥१०॥

अपने साला कीर्तिसिंह का पत्र जब हाड़ा राजा अजीतसिंह को मिला तो उसने पत्र पढ़ते ही अपने पुरोहित दयाराम को इसो प्रस्ताव के साथ उदयपुर जाने को रवाना किया। लेकिन दुर्भाग्य कि पीछे से राजा अजीतसिंह का देहान्त हो गया। इसकी खबर मिलते ही आधे रास्ते से पुरोहित दयाराम

बनास नदी को पार कर वापस बून्दी आया। इस बात का पता जब श्रीजित (राजा उम्मेदसिंह) को चला तो उसने पुरोहित को अच्छी तरह समझा कर जयपुर भेजा पर अब अपने बहिन-बहिनोई के नहीं रहने की दशा में झलाय का कुमार बखतावरसिंह भी इस प्रस्ताव के विरोध में हो गया।

भूतहूमैं भूत यो विरोध बीज जानौं जब,
भूपति नैं इंदगढ ईस हन्यौं पुत्र जुत॥
ताकी तिय जोधी नैं झलायपति भाइनेज,
लोभ सौं बुलाइ ताहि दैकैं अर्द्ध भूमि द्रुत॥
संध्या कहँ सेस इद्रंगढ की अवनि अर्द्ध,
दैके भेजि ताकौं पहु ठानि जनकू प्रनुत॥
इंद्रगढ ऐसैं भक्ताराम सौं छुराइ एह,
बाप घर गागरनी जाइ बैठी जो बिसुत॥११॥

यों तो इस विरोध का बीज भूतकाल से भी भूतकाल में बोया गया था जब बून्दी के हाड़ा राजा ने इन्द्रगढ़ के स्वामी को उसके पुत्र सहित मारा। तब इन्द्रगढ़ की रानी जोधा ने झलाय के राजा को भानजा होने के नाते बुलवाया और अपना होने के लोभ में उसे इन्द्रगढ़ की आधी भूमि दे दी। इन्द्रगढ़ की शेष आधी भूमि रानी ने तब सिंधिया के हवाले कर दी। यह भूमि विशेष स्तुति के साथ जनकू जी सिंधिया को सौंपी गई थी। इस तरह इन्द्रगढ़ की पूरी जागीर भक्तराम हाड़ा से छुड़ा कर वह निसंतान रानी अपने पिता के घर अर्थात् पीहर गागरनी जा रही।

सवैया

कीरतिसिंह झलाय को ठाकुर,
लै इम आधी स्वमातुल की महि।
सन्ध्या जयासुत जो जनकू तिहिं,
दै तिम आधी बिरोध इतैं बहि।
इंद्रगढाधिप व्है छिति अर्द्ध मै,
आपनौं थानौं जमाइ छली अहि।

हायन च्यारि लौं ऐसैं रह्यो कछु ,
मातुली कौं न रह्यो इहाँ यौं कहि ॥१२॥

तब झलाय के ठाकुर कीर्तिसिंह ने अपने मामा की जागीर का आधा हिस्सा जो उसे दत्त था पर अपना अधिकार कर लिया। जयाजीराव सिंधिया के पुत्र को जो आधा हिस्सा दिया था उसके लिए भी उसने मन ही मन विरोध जताया। इन्द्रगढ़ का स्वामी बन कर अपने आधे हिस्से में कीर्तिसिंह ने तब अपने थाने कायम किये। वह छली सर्प चार वर्ष तक इन्द्रगढ़ पर इस तरह पसर कर रहा मानों वहाँ अपनी मामी का कुछ भी नहीं रहा हो।

जैपुर को भटवारा के खेत,
अनीक भज्यो जब कोटासौं हारिकैं।
बाही प्रचंड उपद्रव माँहिं,
झलाय के झूठे दयेहि निकारिकैं।
बुन्दी को पाइ सहाय बली पद,
भक्त रु राम ए द्वै ढिग पारिकैं॥
नाम कहावत हो निज जो सो,
भयो पुनि नाह सिपाह सम्हारिकैं॥१३॥

जयपुर की सेना जब भटवाड़े की रणभूमि में कोटा से हार कर भागी तब उस प्रचंड उपद्रव में लोगों ने झलाय वाले झूठे दावेदारों को भी इन्द्रगढ़ से निकाल बाहर किया। फिर बून्दी की सेना की सहायता पाकर भक्त और राम एक हुए अर्थात् इन्द्रगढ़ पर फिर से भक्तराम का अधिकार हो पाया। अब तक भक्तराम मात्र नाम से इन्द्रगढ़ का स्वामी कहलाता था पर अब वह सचमुच ही इन्द्रगढ़ का स्वामी बना।

दोहा

सक धृति धृति सम्मित समय, भटवारे सन भज्जि।
माधव नृप को दल मुरयो, रहे अबहु जिहिँ लज्जि॥१४॥
तब झलायपति न्यष्ट तिन्हैं, अरिन गंजि पुनि एस।
भक्तराम बुन्दीस भट, इम हुव इंद्रगढेस॥१५॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठारह में भटवाड़े के युद्ध क्षेत्र से जयपुर के कछवाहा राजा माधवसिंह की सेना भाग खड़ी हुई उसकी लज्जा अब तक उन्हें लज्जित करती है। तब झलाय के स्वामी कीर्तिसिंह द्वारा नियुक्त शत्रुओं को इन्द्रगढ़ से मार भगा कर बून्दी राजा का सामन्त भक्तराम इस तरह इन्द्रगढ़ का स्वामी बना।

घनाक्षरी

तबतैं झलायपति बुन्दी सौं बिरिचि बैर,
कूर रह्यो पुर इत फंद डारिबो करत॥
बुन्दीपुर आपुनी सुता जब बिबाही धूरि,
मुख पैं गिराइ तबतैं भो हितही धरत॥
जामाता सुता द्वै ठहरे न पीछैं दिष्ट जब,
धीछो प्रतिकूल भयो जो खल रुषाजरत॥
इंद्रगढ ईस देवसिंह को पिनाती इहिं,
दंभ सौं प्रकास्यो परलोकहु सौं नाँ डरत॥१६॥

यहीं कारण रहा कि तभी झलाय का स्वामी बून्दी के हाड़ा राजा से बैर पाल कर समय-समय पर दूर रहते हुए भी फंदे डाला करता था। बून्दी के अहित का वह कोई अवसर नहीं चूकता था पर जब से उसने अपनी पुत्री बून्दी ब्याही तब से वह अपने ही मुँह पर धूल डाल कर बून्दी का हित सोचने लगा था। जब भाग्य के दुर्योग से उसका जामाता और पुत्री दोनों जीवित न रहे तब वह झलाय का स्वामी फिर से बून्दी के विरुद्ध हो गया और वह दुष्ट ईर्षा और क्रोध से जलने लगा। इसी कपटी ने तब इन्द्रगढ़ के स्वामी देवसिंह के पोते का होना छलपूर्वक प्रसिद्ध किया। दर्प से भरा वह झूठा ऐसा अधर्म करते समय परलोक के डर से भी नहीं डरा।

पादाकुलकम्

देवसिंह दोलतसिंह दुवहि, बुंदीपति मारे बिरोध बहि।
दोलतसिंह बधू कै मिस करि, पीछैं सुत हुव इहिं साहस परि॥१७॥
इंद्रगढेस देव तिय जन सब, काढे नयननगर तैं जब तब।
जिम यह छद्म बनैं तिम बंचक, राखि किमहु कहुँ पाप प्रपंचक॥१८॥

अब झलाय यह व्याज बनायो, दोलतसिंह तनय भव पायो।
पै हम करते प्रकट तबहि तो, याकह सुनि हनते अरि अहि तो ॥१९॥

जुब्बन बय सत्रह सम भो जब, इंद्रगढेस ख्यात हुव यह अब।
रत्नसिंह प्रकट्यो जिम रानाँ, वह सोलह बिच पाव हि आनाँ ॥२०॥

जब इन्द्रगढ़ का स्वामी देवसिंह और उसका पुत्र दौलतसिंह दोनों बून्दी का विरोध करते हुए मारे गए तब दौलतसिंह की पत्नी के झूठमूठ का पुत्र होना इसी दुस्साहसी के बल पर प्रसिद्ध किया गया। इन्द्रगढ़ के स्वामी देवसिंह के जनाना की सभी स्त्रियों को नैनवा नगर से जब-तब कर उसने निकलवा दिया जिससे यह छद्म बना रह जाए। उन्हें इसी कपटी ने पाप का प्रपंच रच कर छिपाये रखा। फिर उसने यकायक झलाय में यह प्रसिद्ध किया कि दौलतसिंह के पुत्र ने जन्म पाया है। अब तक यह बात हमने अप्रकट रखी थी क्योंकि शत्रु रूपी सर्प से इस बात का खतरा था कि कहीं वह इस नन्हे बालक को डस न ले अर्थात् कहीं मरवा न दे। जब यह बालक सत्रह वर्ष की उम्र का हो गया तब उसे इन्द्रगढ़ के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध किया गया। जिस प्रकार मेवाड़ में रत्नसिंह नामक (फितुरिया) नये महाराणा को प्रकट किया गया। उस समय रत्नसिंह भी सोलह वर्ष की उम्र का था।

तिम एसहु झूठो प्रकटायो, बलि तिहिं कुहक झलाय बुलायो।
भूत हुमैं पुनि भूत प्रमानहु, जथा लेख बत्त सु इम जानहु ॥२१॥

भागनगर दक्खिन पुर भाख्यो, अब हैदराबाद अभिलाख्यो।
जाको पति दिल्ली सचिव जो, सठ गाजुद्दीखान नाम सो ॥२२॥

जिहिं इत नादरसाह बुलायो, पुत्रहु तास नाम सुहि पायो।
अपराधी दिल्ली को सो यह, जट्टन सरन रह्यो कछु दिन जँह ॥२३॥

बेचि बेचि भूखन मनि गन के, किय निर्वाह ठानि कनकन के।
अलीगोहर तब दिल्लीपति, जट्टन पर आन्यौं अमरख अति ॥२४॥

इधर रत्नसिंह की तरह इस बालक को भी झूठा ही प्रकट किया गया और उधर से कपटी ने उसे झलाय आमंत्रित किया। अब तो यह गये समय से भी पहले की बात हो गई कि दक्षिण में भागनगर नामक एक नगर प्रसिद्ध था अब तो उसे हैदराबाद कहा जाता है। यहाँ का स्वामी जो दिल्ली के बादशाह

का वजीर था। यह वही दुष्ट गाजुद्दीखान था जिसने नादिरशाह को यहाँ आक्रमण करने बुलाया था और उसके पुत्र की तरह ही अपना नाम रखा। वह दिल्ली के बादशाह का अपराधी था इसलिए दिल्ली से भाग कर कुछ दिनों तक भरतपुर के जाट शासकों की शरण में रहा था तब इसने अपने रत्नजड़ित आभूषणों को एक-एक कर बेचते हुए अपना गुजारा चलाया था। जब दिल्ली के नये बादशाह आलीगोहर ने कुपित हो भरतपुर के जाटों पर चढ़ाई की तब जाटों ने इस नवाब गाजुद्दीखान को भरतपुर से निकाल दिया।

जब सु नबाब निकास्यो जट्टन, जैपुर आइ रह्यो सह निज जन।
खरच गंठि निज तत्थहु खायो, बहु मनि भूखन निचय बिकायो ॥२५ ॥

जैपुर पर तिम साह खिज्यो जब, ताहि कूरमन सिक्ख दई तब।
वह नबाब दक्खिन तब आयो, पुन्यापति जिहिं स्वभट बनायो ॥२६ ॥

पटा लक्ख त्रय दम्म प्रमानक, दिय बुंदेलखंड बिच थानक।
असन मात्र सोपै लिखवायो, बिनु चाकरी पटा इम पायो ॥२७ ॥

कछु दिन रहि कोटा अति आग्रह,आइ नबाब झलाय टिक्यो वह।
कीरतिसिंह सोहु बहिकायो, बलि तँहँ तब सु फितूर बुलायो ॥२८ ॥

ऐसे में वह गाजुद्दीखान अपने परिकरों सहित जयपुर आ गया। यहाँ वह अपनी संचत पूँजी को खर्च कर तथा अपने बहुमूल्य गहने बेच कर गुजारा करने लगा लेकिन जब इसी बात को लेकर दिल्ली का बादशाह जयपुर पर खफा हुआ तो कछवाहों ने भी उसे जयपुर से विदा कर दिया। तब वह नवाब गाजुद्दीखान दक्षिण में चला गया और यहाँ पुणे के स्वामी पेशवा ने उसे अपना सामन्त बना लिया। उसने इसे तीन लाख की आमदनी वाली बुंदेलखण्ड प्रांत में जागीर प्रदान की। यह जागीर उसे बिना ही किसी प्रकार की चाकरी के रोटीखर्च अर्थात् निर्वाह के लिए लिख कर दी गई। यह नवाब गाजुद्दीखान थोड़े दिनों बाद कोटा के राजा के आग्रह पर कोटा रह कर वहाँ से झलाय आ टिका। यहाँ उसे कीर्तिसिंह ने बहका कर अपने पक्ष में किया और इसी समय कीर्तिसिंह ने इन्द्रगढ़ के उस (नकली) उत्तराधिकारी को झलाय आने को आमंत्रित किया।

संग नबाब बंधु लै बल सह, मंडि झलाय ईस अतिसय मह।
आइ समुह बैठाई ताहि इभ, निज हठ मानि फितूर सत्य निभ ॥२९ ॥

इम झलाय उच्छव जुत आन्यौं, जदपि तास बिस्मय जग जान्यौं।
भ्रष्ट तदपि ताजुत करि भोजन, सज्ज कर्यो भुव लैन प्रसभ सन॥३०॥

कटक नबाब कोहु संगी किय, इंद्रगढेस बंधु बलि बुल्लिय।
रत्नसिंह खातोली पुर पति, कृतक भीर भेजे निज भट कति॥३१॥

अवरहु कति निमहोला आदिक, मिले भीर तस खिलहु प्रमादिक।
जाइ इंद्रगढ के भट परिजन, मिले बहुत छल स्वामी चहि मन॥३२॥

नवाब गाजुद्दीखान को दल सहित साथ लेकर अपने बांधवों के संग झलाय के स्वामी ने तब बहुत बड़े उत्सव का आयोजन किया। इस अवसर पर उसने हाथी पर अपने साथ उस इन्द्रगढ़ के नकली उत्तराधिकारी को बिठाया और हठपूर्वक उस नकली को इन्द्रगढ़ का असली स्वामी प्रसिद्ध किया। कीर्तिसिंह ने इस छली को उत्सवपूर्वक बुलाया तब भी जग को इससे विस्मय हुआ अर्थात् लोगों को विश्वास नहीं हुआ तब इस भ्रष्ट कीर्तिसिंह ने उस युवक को अपने साथ एक ही थाली में भोजन करवाया। इसके बाद उसे हठपूर्वक अपनी जागीर (इन्द्रगढ़) पर अधिकार करने को उकसाया। इसके लिए उसके साथ कीर्तिसिंह ने नवाब गाजुद्दीखान की सेना दी और इन्द्रगढ़ के स्वामी के बांधवों को बुलाया। खातोली के जागीरदार रत्नसिंह ने भी तब उस करतबी की सहायता करने को अपने योद्धा भेजे। खातोली के अतिरिक्त निंबोला आदि के जागीरदार भी इन्द्रगढ़ के इस नकली उत्तराधिकारी के पक्ष में हो गये। यही नहीं इन्द्रगढ़ के कई योद्धा भी अपने परिजनों सहित इस नकली धूर्त को मन ही मन अपना स्वामी मानकर उससे जा मिले।

कृष्ण दलेल पुत्र मुहुकम कुल, पुर करवर को लोभ दै बिपुल।
मतिहत सोहु बुलाइ मिलायो, बढते ग्राम लैन बहिकायो॥३३॥

पहिलैं खल याकोहि पितामह, सालम रह्यो झलाय भतिसह।
राजाउतन प्रीतिकरि रक्ख्यो, उपकार सु चिंतहु मन अक्ख्यो॥३४॥

कृष्ण सु चिंति नैंन नीचे करि, संगी भयो कहुक मत अनुसरि।
पहिलैं देवसिंह माधानी, तजि आटोंनि कढ्यो अभिमानी॥३५॥

आइ सु प्रथम द्रंग उनियारा, दुर्ग ककोर रक्खि सुत दारा।
उनियारा सासक सिरदारहु, बिरचि प्रीति सतकारयो जिहिं बहु ॥३६ ॥

मुहुकमसिंह हाड़ा के वंशज और करउर के स्वामी दलेलसिंह के हतबुद्धि पुत्र कृष्णसिंह को भारी लालच दे कर कीर्तिसिंह ने बुलाया और इन्द्रगढ़ के नकली स्वामी के पक्ष में यह कह कर मिलाया कि काम होने पर यह तुम्हें कई गाँवों की जागीर देगा। पूर्व में इसी कृष्णसिंह का पितामह सालमसिंह भी कई दिन तक डर के मारे झलाय आ कर रहा था और झलाय के राजावतों ने उसे प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ रखा था। अपने पूर्वज पर किये इस उपकार को याद कर कृष्णसिंह की आँख नीची हो गई और वह बिना किसी हुज्जत के नकली उत्तराधिकारी के पक्ष में हो गया। पूर्व में देवसिंह माधानी हाड़ा अपने नगर आटोनी को ठुकरा कर निकल गया था। वह अभिमानी तब आटोनी से उणियारा आ गया और अपने बेटे बहू को काकोर दुर्ग में रख आया। उणियारा के शासक सरदारसिंह ने प्रीतिपूर्वक सत्कार कर देवसिंह को अपने यहाँ रखा।

पीछैं गो यह द्रंग जोधपुर, धात्रेयहिं मिलि धरत भयो घुर।
उदयकर्ण धात्रेय तनै वह, तह सूचित जसकर्ण हुतो तह ॥३७ ॥

ए दुव मिलि जैपुर पुनि आये, तँहँ प्रधान चुंडाउत पाये।
तोलौं जैपुर ठहरि सके दुव, पीछैं नारव कथन प्रबल हुव ॥३८ ॥

भट्ट सदासिव नृप बिद्यागुरु, फैल्यो तास प्रपंच उहाँ उरू।
सम्मति चलन रुक्यो सीसोदन, देख्यो कहुँ ओर न अनुमोदन ॥३९ ॥

देवसिंह जसकर्ण तबहि दुव, हेरि उपाय झलाय आतहुव।
तँहँ फितूर संगी हुव तेहू, रुंटक लोक कुहक खिल केहू ॥४० ॥

देवसिंह माधानी (हाड़ा) उनियारा से बाद में जोधपुर चला गया। वहाँ कोटा का धायभाई पहले से था उससे मिल कर वह उसके साथ हो गया। यह धायभाई जसकरण (यशकर्ण) जैसा कि पहले बताया जा चुका है उदयकरण का पुत्र था। जोधपुर से धायभाई जसकरण और देवसिंह माधानी दोनों जयपुर आए यहाँ उनका मिलाप मंत्री चूंडावत जसवंतसिंह से हो गया। जब तक जसवंतसिंह की चली तब तक वे दोनों जयपुर में टिके रहे पर बाद में जयपुर के राजकाज में नरूका प्रतापसिंह का दखल बढ़ा तो जसवंतसिंह कमजोर हो

गया। यह वह समय था जब कछवाहा राजा के विद्यागुरु सदाशिव भट्ट का दबदबा बहुत बढ़ा हुआ था तब सिसोदिया (जसवंतसिंह) ने देखा कि अब अपने पक्ष का अनुमोदन करने वाला अन्य कोई नहीं तो वह भी विद्यागुरु की सम्मति से चलने लगा। जयपुर की ऐसी बदली हुई परिस्थितियों में देवसिंह माधानी और धायभाई जसकरण तब जयपुर छोड़ कर झलाय नगर में आ गए। यहाँ वे भी उस इन्द्रगढ़ के नकली उत्तराधिकारी के पक्ष में हो गए इस तरह लुंटक लोग बाकी के ठगों के साथ हो गए।

इस दससहँस बंधि बल अप्पन, सज्ज फितूर भयो इत सप्पन।
सुनि बुंदीहु भेजि भट श्रीजित, इंद्रगढेस साव हित किय इत।।४१ ।।

भक्तराम सासक तँहँ अतिभट, भिरत सज्ज इच्छैं रन प्रतिभट।
देवसिंह जसकर्ण चह्यो मन, पहिलैं कोटा देस बिगारन।।४२ ।।

अरु नबाब कोटा जब आयो, पै तब आदर उचित न पायो।
इहिं तिहिं मंडि अनुमोदन, कोटादेस चह्यो तिम तोदन।।४३ ।।

यह सुनि सज्जि महारावहु उत, जालम झल्ल सचिव निज संजुत।
प्रबिस्यो सिविर सजव कढि पुरतैं, यह बुंदिय सुनि हित अंकुरतैं।।४४ ।।

इस तरह झलाय में इन्द्रगढ़ का वह नकली वारिस अपने साथ दस हजार की सेना का बल हो जाने के कारण सर्प बन बैठा। यह खबर जब बून्दी में श्रीजित राजा ने सुनी तो उसने भी अपने योद्धा भेजे और इन्द्रगढ़ के स्वामी का हित किया। यहाँ अभी भक्तराम हाड़ा शासक था जो अपने योद्धाओं सहित युद्ध रचाने की इच्छा पाले हुए था। देवसिंह माधानी और धायभाई जसकरण ने प्रतिशोध लेने के लिए पहले तो कोटा राज्य का नुकसान करने की सोची। उधर जब नवाब गाजुद्दीखान कोटा आया तब उसका कोटा में उचित आदर नहीं हो पाया इस कारण से वह भी कोटा के खिलाफ हो गया और उसने देवसिंह माधानी और जसकरण की राय का अनुमोदन करते हुए कोटा देश को व्यथित करने को कमर कसी। इस बात की भनक लगते ही कोटा का महाराव अपने सचिव झाला जालिमसिंह के साथ अपनी सेना सज्जित कर मुकाबला करने को तत्पर हुआ। महाराव ने अपनी सेना सहित कोटा नगर से निकल कर तुरन्त नवाब के शिविर में प्रवेश किया। यह खबर जब बून्दी आई तो कोटा का हित सोचा गया।

सुखराम जु धात्रेय मुसाहब, सजि गो भीर बाहिनी लै सब।
एक निसाहि पर्यो बिच अंतर, प्रातहि जाइ मिल्यो हित तत्पर।।४५।।

सुखराम सु कोटेस सराह्यो, बुल्ल्यो हद एकत्व निबाह्यो।
सचिव सचिव झल्लु सतकारिय, बलि सत्रुन दिस चढन बिचारिय।।४६।।

उततैं सज्जि फितूरहु आयो, बल नबाब बल मुख्य बनायो।
संग नबाब सचिव जिहिं बल जुत, आयो देसहिं करत उपद्रुत।।४७।।

कोटा दिष्ट बलिष्ट बन्यौं जँहँ, ठहरि सक्यो न नबाब बल सु तँहँ।
------------------------------------- ।।४८।।

कोटा के हित करने की सोचकर बून्दी का प्रधान धायभाई सुखराम अपनी सेना सज्जित कर सहायता के लिए रवाना हुआ। उसके कोटा पहुँचने में मात्र एक रात का अन्तर रहा,वह प्रात:काल में तो कोटा पहुँच ही गया। कोटा के महाराव ने तब सुखराम की सराहना की, यह कहते हुए कि तुमने अच्छी एकता निभाई। कोटा के सचिव झाला जालिमसिंह ने तब बून्दी के सचिव सुखराम का सत्कार करते हुए आगे सम्मिलित सेना के साथ शत्रु पर चढाई करने की योजना बनाई। उधर से इन्द्रगढ़ के नकली वारिस की सेना आई जिसके साथ नवाब गाजुद्दीखान की सेना भी थी। इस समय नवाब की सेना के साथ उसका सचिव था वह कोटा के देश में उपद्रव मचाता आया पर कोटा का भाग्य अच्छा था इस कारण नवाब की सेना वहाँ ठहर नही पाई।

पुन्यापति सन छिति इहिं पाई, लक्खतीन दम्मन ठकुराई।
जो बुंदेलखंड जनपद मैं, होन लगे ब विघ्न तस हद मैं।।४९।।

यह लहि सुद्धि नबाव सचिव वह, सूचित देस गयो निज बल सह।
अमल कर्यो जिहिं जबहि जाइ उत, सिटिगो तबहि देव सुत छल्ल सुत।।५०।।

मंगी धारि बिगारि सबै मुख, रही न तब सु गई फटि रुखरुख।
बल बिनु व्है अल बिनु जिम बिच्छिय, इम नबाब दल बिनु छल इच्छिय।।५१।।

अनालम्ब इम होइ अचानक, भज्यो फितुर चकित मित भानक।
देवसिंह जसकर्ण दुमन दुव, हुलकर तक्कू तंत्र जाइ हुव।।५२।।

पूर्व में नवाब गाजुद्दीखान ने पुणे के स्वामी से जो जागीर पाई थी और जिसके बल पर तीन लाख की जागीर का ठाकुर हुआ था। उसकी उसी

जागीर बुंदेलखण्ड के जनपद में अब विरोध उठ खड़ा हुआ था और जगह-जगह पर उपद्रव होने लगे थे। जब नवाब के सचिव को यहाँ बुंदेलखण्ड में उपद्रव होने की खबर मिली तो विरोध के शमन हेतु वह तत्काल अपनी सेना के साथ अपने जनपद की ओर रवाना हो गया। उसने तुरन्त अपने राज में पहुँचकर विद्रोह को कुचला और बुंदेलखण्ड पर फिर से अपना अधिकार किया। नवाब की सेना चले जाने पर इधर देवसिंह के पुत्र दौलतसिंह का वह नकली पुत्र लज्जित हुआ। उसने इधर-उधर से जो भाड़े के लड़ने वाले (धाड़) जुटाये थे वे सभी जिधर मुँह था उनका, उधर रवाना हो गए अर्थात् बिखर गये। वह नवाब की सेना से विहीन हो कर ऐसा हो गया मानों कोई बिना डंक का बिच्छु हो। अचानक निराधार सा हो जाने पर वह थोड़े बोध वाला अर्थात् मतिहीन इन्द्रगढ़ का नकली उत्तराधिकारी वहाँ से भाग छूटा। तब देवसिंह माधानी और धायभाई जसकरण हताश से अन्य कोई अवलंब न पाकर तिकोजीराव (तक्कू) होल्कर के अधीन हो, वहाँ जा रहे।

नाणक नित्य दुहुन कछु करि दिय, इक ग्रामहु खिच्चिन भू अप्पिय।
जुगहिं रक्खि बनिता सुतादि जँहँ, करतभये मालिक तक्कू कँहँ।।५३।।

जड़मति कृष्ण दलेल जु जायो, पुर सु करोली चकित पलायो।
नृप मानिक्यपाल रक्ख्यो नन, सुमुझि करन बुंदिय धिय सगपन।।५४।।

जैपुर आइ टिक्यो सु कृष्ण जब, वह फितुर खातोली गय अब।
रत्नसिंह खातोली सासक, आइ समुख छल स्वामि उपासक।।५५।।

कुल निज मुख्य मानि वह कृत्रिम, आन्यौं करि उच्छव पुर मैं इम।
भाजन इक्क दुहुन किय भोजन, सिद्ध जनत तदपि न हुव सो जन।।५६।।

तिकोजीराव (तक्कू) होल्कर ने उन्हें एक खीचियों का गाँव जागीर में दे दिया और प्रतिदिन के हिसाब से कुछ हाथ खर्च देना तय कर दिया। तब दोनों ने अपनी स्त्रियों और बहन बेटियों को बुलाकर अपने साथ ही रख लिया और होल्कर मालिक का कहा करने लगे। उधर करोली नगर से दलेलसिंह का मूर्ख पुत्र कृष्णसिंह भी प्रयाण कर गया क्योंकि वहाँ के राजा माणिक्यपाल ने उसे यह सोचकर शरण नहीं दी कि उसे अपनी बेटी की सगाई बून्दी करनी थी और उसे रखने पर इस कार्य में अड़चन आती। तब कृष्णसिंह करोली से जयपुर में आ टिका। उधर वह फितूर (नकली

उत्तराधिकारी) तब खातोली गया। वहाँ के शासक रत्नसिंह ने जो ऐसे नकली स्वामी का उपासक था सम्मुख आ कर उसका स्वागत किया। वह इस कृत्रिम इन्द्रगढ़ के स्वामी को अपने कुल का मुखिया मानते हुए उत्सवपूर्वक पूरी धूमधाम के साथ अपने नगर में लेकर आया। यहाँ एक ही पात्र में (थाली में) दोनों ने साथ-साथ भोजन किया तब भी लोगों ने उस कृत्रिम को असली नहीं माना।

महाराव उम्मेद मुदिन मन, सनमान्यौं सुखराम प्रीति सन।
इक करेनु अरु खास तुरग इक, तिम सिरुपाव इक्क इम दै त्रिक ।।५७ ।।

दिय महमानी तदनु सिक्ख सह, आयो बुंदिय पाइ सुजस यह।
संबत लगत दंत धृति सम्मित, यह उदंत हुव राधा मास इत ।।५८ ।।

महिपति भूप इहाँलग मानहु, जुरत बर्त्तमान अब जानहु।
कुमर झलाय को सु अब यातैं, बुंदी हित न चहैं रु बिघातैं ।।५९ ।।

नृप बुंदीस पुरोहित जो निज, पठयो जैपुर दयाराम द्विज।
सहित मिल्यो सु झलाय कुमर सन, मिलतहि नहि दीस्यो पहिलो मन ।।६० ।।

करि बहिर हित लोकलज्ज करि, अंतर भयो सछद्म नयो अरि।
चुंडाउत जसवंत सौंहु तब, मिल्यो बिप्र सूच्यो आसय सब ।।६१ ।।

उधर कोटा के महाराव उम्मेदसिंह ने अपनी सहायता को आये बून्दी के सचिव सुखराम का प्रीतिपूर्वक सम्मान किया। महाराव ने उसे एक हाथी, एक अच्छी नसल का घोड़ा और सिरोपाव ये तीन चीजें दे कर उसका मान बढ़ाया और उसे अपना राजकीय अतिथि माना। इसके बाद महाराव ने सुखराम को विदाज्ञा दी तब वह अपने दल सहित वापस बून्दी सुयश कमा कर लौटा। यह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बत्तीस के वैशाख माह की घटना है। हे राजा रामसिंह! यहाँ तक का वृत्तान्त तो भूतकाल का था अब मैं इसके आगे वर्तमान का वृत्तान्त जोड़ता हूँ। झलाय का कुमार अब बून्दी का हित नहीं सोचता था बल्कि उल्टे वह ऐसे अवसर की ताक में रहता कि वह बून्दी का कोई अहित कर सके। उधर बून्दी के राजा ने जो जयपुर अपने पुरोहित दयाराम को भेजा था उसने पाया कि अब वह बदला हुआ है, उसका मन पहले जैसा नहीं रह गया है। वह बाहर से तो लोकलाज के अनुरूप

व्यवहार करता पर मन ही मन छद्मपूर्वक शत्रुता पालता था। दयाराम पुरोहित तब जा कर जसवंतसिंह से मिला और उसके सामने पूरी बात रखी।

राउत कह्यो रान रतनेसहिँ, व्याहहु मेटहु बैर बिसेसहिँ।
कह्यो बिप्र बुंदिय नहि कन्या, व्याहहिँ तदपि अंक लहि अन्या॥६२॥

पै तुम भुल्लि सबन भ्रम पार्‌यो, बिदित रानघर चलन बिसार्‌यो।
रानन रीति अबहु सब साहहु, व्याह इक्क अन्यत्र बिबाहहु॥६३॥

कूरम नृप भदीय सुतासुन, जामिन करहु रक्खि बिच हित हुत।
बिजयसिंह बलि मरुप मिलावहु, पंति असन फेला तुम पावहु॥६४॥

अग्ग बचन किय सोहु सुमिरि उर, प्रभु रु पंच लिखि देहु जाजपुर।
अरु रतनेस पच्छपाती अब, सपथ हमहि लिखिदेहु तुमहु सब॥६५॥

सारी बातें सुनकर चूंडावत जसवंतसिंह ने कहा कि आप लोगों को राणा रत्नसिंह का विवाह कर वैर मिटाना चाहिए। इस पर पुरोहित ने कहा कि बून्दी वालों के तो कोई अविवाहित कन्या है नहीं। हाँ, हम किसी कन्या को गोद लेकर विवाह अवश्य कर सकते हैं पर आप भूलकर भ्रम फैलाते हैं आप लोगों ने महाराणा के घर की प्रचलित रीति को भूला दिया है। आपको महाराणा के घर प्रचलित रीति-रिवाजों का पालन करना चाहिए और उसके अनुसार उनका एक विवाह दूसरी जगह करवाना चाहिए। जयपुर का कछवाहा राजा आपकी पुत्री का पुत्र है उसको प्रतिभू (जामिन) रखकर रत्नसिंह का हित करना चाहिए। आपको उसे मारवाड़ के राजा विजयसिंह से मिलाना चाहिए और फिर सभी को एक पंक्ति में बिठा कर भोजन करते समय उसका झूठा खाना चाहिए। यहीं नहीं पूर्व में जो वचन किया गया उसके अनुसार बून्दी के राजा और सामन्त पंचों को लिखकर जहाजपुर का परगना देना चाहिए। जो रत्नसिंह के पक्षधर हैं उनको शपथपूर्वक यह लिख कर देना चाहिए कि सब वचनों के अनुसार सम्पन्न हो जाएगा।

सो इम रतनसिंह हम स्वामी, नरपति राजसिंह सुत नामी।
महिप प्रताप पुत्रसुत मानहु, जिम जगतेस प्रनत्तिय जानहु॥६६॥

सुद्ध जनन दुव पक्ख सुहावहिँ, हम तिन्हँ फेलि तुम लखत पावहिँ।
यामैं होइ किमहु कछु अंतर, हम तुम बिच तो गंगा हरि हर॥६७॥

उतके पंच देहु लिखि तुम यह, राघवदास रावरे सुत सह।
ए खट बत्त प्रथम हम इच्छैं, परिनावहिं रानहिं इन पिच्छैं ॥६८॥

तुम छित्वर चालुक तब धरिधुर, पठयो बुंदिय दैन जाजपुर।
सुमिरन है कि बचन बिसरायो, अब सुहि सत्य करन खिन आयो ॥६९॥

उसके पक्ष वालों को शपथपूर्वक यह भी लिख कर देना होगा कि हमारा स्वामी रत्नसिंह महाराणा राजसिंह का प्रसिद्ध औरस पुत्र है। यह भी लिख कर देना होगा कि हम उसे महाराणा प्रतापसिंह का पौत्र और महाराणा जगतसिंह का प्रनाती (पड़पोता) मानते हैं। यह भी लिख कर देना होगा शपथपूर्वक कि इसके दोनों पक्ष (माता-पिता के कुल) शुद्ध और उत्तम हैं और हम तुम्हारे देखते इसका उच्छिष्ट खाते हैं। यह भी कि यदि हमारे इस तरह के लिखे हुए में कुछ अंतर हो तो हमारे और तुम्हारे मध्य गंगा, विष्णु और महादेव हैं अर्थात् हम इनकी सौगंध उठा कर कहते हैं कि यह सभी कुछ (लिखा हुआ) सत्यासत्य पर आधारित है। यह लिखावट उदयपुर के रत्नसिंह के पक्ष वालों को लिख कर देनी होगी जिसमें आप अपने पुत्र राघवदास सहित सम्मिलित होंगे। यदि उपरोक्त छहों बातें आप पहलें हमें लिख कर देंगे तब हम (बाद में) रत्नसिंह का विवाह करेंगे। आप लोगों ने उस धुरंधर चालुक्य (परमार कृष्णसिंह) को जहाजपुर देने हेतु बून्दी भेजा था आपको वह वचन अब तक याद है कि उसे भुला दिया? कुछ भी हो उस वचन को सत्य कर दिखाने का अब समय आया है।

राउत कह्यो जोधपुर जैपुर, पुनि बुन्दी अरु मुख्य उदैपुर।
सो बुन्दी सूचित तीनन सम, छितिप उदैपुर पच्छ करन छम ॥७०॥

तिन्ह सहाय हमरी सुधरैं सब, ते किम अन्य सहाय चहैं तब।
पुनि जोलौं संसय जन पावैं, निजहु कोन तोलौं परिनावें ॥७१॥

को इनकों ठिल्लैं इत कूरम, कोन कबंध धीर उत धूरम।
जो बलिष्ठ इनके जुग जानहु, तुम हम जुगहु क्यों नतिम मानहु ॥७२॥

इन्ह सहाय साहस इम उज्झहु, बचि तुल्यरु तुल्यहिं क्यों बुज्झहु।
आदिम कथित तजहु त्रय यातैं, बिरचहिं हम अंतिम त्रय बातैं ॥७३॥

यह सुनकर देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह ने कहा कि जोधपुर, जयपुर,

बून्दी और उदयपुर ये मुख्य बड़ी रियासते हैं। इनमें से तीसरी रियासत बून्दी अन्य के बराबर बड़ी नहीं है। उसे उदयपुर का महाराणा पक्ष लेकर बड़ा बनाने में समर्थ है। जसवंतसिंह का यह कथनसुनकर ब्राह्मण दयाराम ने कहा कि यदि उनकी (महाराणा की) सहायता से हमारा सब कुछ सुधर जाता हो तो भला हम फिर किसी अन्य की सहायता पाने को लालायित क्यों हों? पर ये बतायें कि लोग उनके असली होने में ही संशय करेंगे तो फिर आगे भविष्य में हमें (बून्दी वालों को) कौन बेटी देगा? इधर से कछवाहे हमें दूर ठेलेंगे और धुरंधर राठौड़ उधर से। आप जानते हैं कि यह जोड़ी (जयपुर और जोधपुर) कितनी बलिष्ठ है? तब हम (उदयपुर) और तुम (बून्दी) भी जोड़ी बना कर अपने को क्यों नहीं ताकतवर मानें। रावत ने कहा तुम इनकी (जयपुर, जोधपुर) सहायता लेने का हठ छोड़ दो रही समतुल्य होने की बात तो यह तुलना की बात छोड़ दो। तुमने जो छः बातें कहीं अर्थात् शर्तें रखी हैं उनमें से पहली वाली तीन छोड़ दो शेष तीनों बातें हम करने को तैयार हैं।

प्रभु की फेलि पंति बिच पावहिं, लेख जाजपुर दैन लिखावहिं।
सपथ लेख हम पंच समप्पहिं, यह त्रिक सिद्ध दिखावैं अप्पहिं।।७४।।

सूचिय बिप्र तबहि क्है संसय, भेद भेद प्रतिभेद तनै भय।
पै हम सिरहि भार जो पटकहु, इक तुम करहु तो न तेँहँ कट कहु।।७५।।

झल्ल प्रमार कबंध रु संभर, चउ कुल मुख्य भटन मैं नव घर।
रान सदा परिनैं परिनावैं, तुम पक्खी भट तेहु कहावैं।।७६।।

त्यों पुनि इक्क सलूमरि कौं तजि, सब तुम रत्न सहाय रहै सजि।
कति तन सौं धन सौं मनसौं कति, यहहि पक्ख चाहत मत उन्नति।।७७।।

एक हम पंक्ति में बैठकर अपने स्वामी का उच्छिष्ट खा लेंगे, दूसरा हम जहाजपुर देने की लिखावट दे देंगे, तीसरा हम लिखा हुआ पंचों को दे देंगे। हम ये तीनों बातें आपको निश्चय ही करके दिखा देंगे। यह सुनकर दयाराम ने कहा कि फिर भी संशय की बात तो जहाँ की तहाँ रही। भेद-भेद में ही प्रतिभेद का भय होता है। आप जो हमारे सिर पर भार दे रहे हैं इनमें से थोड़ा अपने सिर पर ले लें अर्थात् रत्नसिंह का पहला विवाह आप लोग अपने पक्ष वालों में कर दें तो फिर कोई अड़चन ही नहीं। मेवाड़ के उमरावों में चार कुलों के नौ ठिकाने मुख्य है झालों में देलवाड़ा और गोगूंदा, पंवारों में

बीझोलियाँ, राठौड़ों में बदनोर और घाणेराव इसी तरह चहुवानों में बेदला और कोठारिया। इन घरानों में महाराणा (सिसोदिया) अब तक विवाह करते आए हैं और इन घरानों में अपनी बेटियां भी देते आए है। रत्नसिंह के पक्ष वाले भी उमराव हैं। एक सलूंबर को अलग कर दें तो शेष तो आप सभी लोग रत्नसिंह के पक्ष में हो। चाहे आपमें से कोई धन से साथ है तो कोई तन से साथ दे रहा है और कोई मन से पर आप उनके सारे पक्ष वाले चाहते तो रत्नसिंह की उन्नति ही हो।

तो असगोत्र कहे नव तिनमैं, व्याहहु प्रथम पिसुन जिम विनमैं।
पीछैं करि स्वीकृत त्रय प्रत्यय, भर हम भुजन देहु तोहु न न भय ॥७८॥

इह नृप तुम दोहित्र रु अर्भक, तुमरो कथन तास जननी तक।
तोहुन तिन दोहुन लै बिच तुम, सलिल मध्य रहि जिम सार स सुम ॥७९॥

इक हमराहिं सहाय चहत यह, तदपि हड्डु भुज भर झेलैं तह।
चउ प्रत्यय ए सुनि चुंडाउत, पठये लिखि रु देवगढ जब जुत ॥८०॥

पितापत्र राघव यह पायो, पुनि द्रुत कुंभिलमेरू पठायो।
भिंडरपति मुहुकम्म मुख्य तँह, सगतावत्त हुतो परिकर सह ॥८१॥

दयाराम ने आगे कहा मैंने जो अभी नौ उमराव असगोत्री गिनवाये आप इनमें से किसी एक उमराव के यहाँ रत्नसिंह का पहला विवाह करा दें जिससे चुगली कर संशय पैदा करने वाले अपने आप झुक जाएँगे अर्थात् चुप हो जाएँगे। इसके बाद आपने जो तीन बातों का भरोसा हमें दिया है उनके प्रमाण हमें दे दें फिर आप सारा भार हमारी भुजाओं पर डालें तो हमें भय नहीं होगा। यह जयपुर का कछवाहा राजा तो आपका दोहित्र और बालक है और आपका कहा उसकी माता तक मानती है तब भी क्या उन दोनों को साथ लेकर प्रतिभू की तरह मध्यस्थता करते हुए आप सागर के पानी में कमलवत नहीं रह सकते? अर्थात् आप मध्यस्थता करें और जयपुर को जामनी बना दें। हमें भी एक तो सहायता करने वाला अर्थात् हमारे पक्ष में बोलने वाला चाहिए फिर तो बून्दी के हाड़ा सारा भार अपनी भुजाओं पर ले लेंगे, आप निश्चित रहें। इन चार शर्तों की बात सुन कर चूंडावत जसवंतसिंह ने तुरन्त पत्र लिख कर देवगढ़ भेजा। देवगढ़ में राघवदास को जब अपने पिता का पत्र मिला तो

उसने पत्र शीघ्र ही कुंभलगढ़ भेजा। यहाँ कुंभलगढ़ में रत्नसिंह के पक्ष वालों में कर्ताधर्ता भिण्डर का जागीरदार मुहुकमसिंह शक्तावत था जो अपने सेवकों सहित यहीं था।

दल तिँहिं संगी भटन दिखायो, इम कुछकन प्रतिपत्र लिखायो।
ब्याह जाजपुर दुवहि बिहाये, भ्रमकर फेलि सपथ मनभाये॥८२॥

दुव लिखि ठिगन बिधेय रक्खि दुव, हित बहु लिखि इम छद्द भेजत हुव।
कृष्ण प्रमार जु बेघमवासी, पठयो पुब्वहु दुदिस उपासी॥८३॥

बुल्लि सो हि पठयो तिन बुंदिय, पुनि प्रत्यय हित मुख्य बंधु प्रिय।
सगताउत बिजैपुर सासन, बखतबंधु सिवनाथ मिलत मन॥८४॥

जैत पउत्त रु अचल तनय जो, दयो प्रमार संग गतदय जो।
इतको बिप्र रह्यो जैपुर उत, दुव सूचित आये बुंदिय द्रुत॥८५॥

देवगढ़ के सेवकों ने उसके (रत्नसिंह के) साथियों को पत्र ले जाकर दिखलाया तब इन कपटियों ने उस पत्र का प्रत्युत्तर लिखवाया जिसमें रत्नसिंह के (प्रथम) विवाह और जहाजपुर देने की बात तो गोल कर दी और भ्रमित करने की मंशा से दो शर्तों को निश्चित रूप से स्वीकार करने की बात लिखी एक तो रत्नसिंह असली है। इन ठगों ने भी ये दो बातें मानना पक्का लिखकर प्रत्युत्तर का पत्र भिजवाया। बेगूं का परमार कृष्णसिंह जो उदयपुर और बून्दी दोनों पक्षों का प्रिय था जिसे पूर्व में बून्दी भेजा था। उसे वापस बुलाकर उदयपुर की ओर से बून्दी भेजा पर इस बार बून्दी वालों को पक्का भरोसा हो जाए इसके लिए कृष्णसिंह परमार के साथ विजयपुर के जागीरदार बखतसिंह शक्तावत के भाई शिवनाथ को भी भेजा। जैतसिंह के पोते और अचलसिंह के बेटे निर्दयी वीर शिवनाथ को बेगूं के परमार के साथ बून्दी जाने को रवाना किया। इस समय बून्दी का वकील वह दयाराम ब्राह्मण जयपुर में था और इधर से ये दोनों (परमार और शक्तावत) आने की सूचना दे कर शीघ्र बून्दी पहुँचे।

दोउन सचिवहिँ पत्त दिखायो, सुखराम सु पिक्खत छल पायो।
जो बिबिक्त श्रीजित पुनि जान्यौं, पुनि सम्मत सुभटन पहिचान्यौं॥८६॥

कपट जानि रक्ख्यो समुचित कहि, सगताउत्त इहाँ शिवनाथहि।
कृष्ण प्रमार संग पठयो द्विज, नत्थूनाम बिसासपात्र निज॥८७॥

कछुदिन रक्खि देवगढ तिन कँहँ, पठये कुंभिलमेरु कृतक पँहँ।
भिंडर आदि भटहु तब भोनन, हे रु नहे तँहँ इच्छित हो नन॥८८॥

भूप कृतक भेजे दुव भिंडर, किय मुहुकम्म सोहि मिस छलकर।
तिहिँ निज पक्ख भटन मत लै तँहँ, करि सुहि लिपि पठये दोउन कँहँ॥८९॥

कृष्णसिंह और शिवनाथ ने बून्दी के सचिव को कुंभलगढ़ से साथ लाया हुआ पत्र सोंपा। बुद्धिमान धायभाई सुखराम पत्र देखते ही समझ गया कि हमसे छल किया जा रहा है। यही आशय एकान्त में पत्र को देखकर श्रीजित ने निकाला और जब राजा ने अपने सामन्तों की राय जानी तब भी यह बात सामने आई। तब सचिव सुखराम ने पत्र ले कर रख लिया और कहा कि ठीक है हम देखेंगे और शक्तावत शिवनाथ को यहीं रख कर कृष्णसिंह परमार के साथ बून्दी से नत्थु नामक अपने विश्वासपात्र सेवक को सचिव ने भेजा। इन दोनों को कुछ दिनों तक देवगढ़ में रख कर राघवदास ने उन्हें कुंभलगढ़ कृत्रिम महाराणा रत्नसिंह के पास भेजा। इस समय भिण्डर वाला मुहुकमसिंह शक्तावत वहाँ कुंभलगढ़ में नहीं था वह अपने गाँव गया हुआ था। इस तरह अन्य कई रत्नसिंह के पक्ष वाले उमराव वहाँ नहीं थे। कृत्रिम महाराणा रत्नसिंह ने तब इन दोनों को भिण्डर भेजा वहाँ मुहुकमसिंह ने भी बहाना बनाकर उस छल के छद्म को यथावत रखा। तब मुहुकमसिंह ने वहाँ उपस्थित अपने साथियों से राय ले कर पत्र लिखा। लिखित पत्र दे कर कृष्णसिंह परमार एवं नत्थु को वापस रवाना किया।

प्रथम बिबाहन न इम जाजपुर, कथित करन सुहि जुग अघ अंकुर।
व्याह जाजपुर रक्खि सेस बलि, छलिन पुब्ब जिम पठये पुनि छलि॥९०॥

ए उभयहि बुन्दी जब आये, द्विज प्रमार मतिमुष्ट दिखाये।
श्रीजित प्रति सुखराम मुसाहब, अरज करि रुछल जानि प्रकट अब॥९१॥

पत्र पुरोहित दयाराम प्रति, सुहि जैपुर पठयो छल सम्मति।
अरु सूचिय निश्चय भो अब इम, रान रतन कुबर्जित कृत्रिम॥९२॥

ओर न कोहु सुता जिहिँ अप्पैं, अम अप्पन बंचन थिति थप्पैं।
प्रासन फेलि लिखन सत्य सपधि, अंगीकरत एहि दुवते अथ॥९३॥

इस पत्र में भी उस पाप के अंकुर को यथावत रखा अर्थात् पत्र में

रत्नसिंह के मेवाड़ के उमरावों के घर प्रथम विवाह की बात और जहाजपुर का परगना सौंपने की बात को गोल मोल कर दिया गया और वैसा ही यह दूसरा पत्र भिजवाया जैसा पहले भेजा गया था। कृष्णसिंह और नत्थु दोनों जब पत्र ले कर बून्दी पहुँचे उस समय दोनों ठगाई हुई बुद्धिवाले नजर आये। तब सचिव धायभाई सुखराम ने राजा श्रीजित के समक्ष इस छल के प्रकट हो जाने की बात निवेदन की। इसके बाद इस छल वाले पत्र को जयपुर दयाराम ब्राह्मण के पास भिजवा कर श्रीजित ने कहलाया कि अब यह निश्चय हो गया कि वह महाराणा बना रत्नसिंह कुलहीन और फरेबी है। ऐसे में उसे किसी को भी बेटी नहीं देनी चाहिए। यह सभी कुछ हमें ठगने के लिए किया गया था। वे अभी भी दो बातें मानने को तैयार है एक तो रत्नसिंह का उच्छिष्ट भोजन करना और दूसरा शपथपूर्वक उसके असली होने की बात कहना।

पुनि नटिजाइ जहाँ को प्रत्यय, कै खल करै ओडि कुल अत्यय।
पापकरन अवधि न पापिन कै, अत्यज फेलि त्याग नहि तिनकै ॥९४॥

कूट सपथ बंचक क्यौं न करैं, धी अपरन बंचन सपथ धरैं।
दल बंचत यातैं अब हे द्विज, न करहु तुम सगपन सम्मति निज ॥९५॥

महाकितव मन्त्रहु मेवारन, कितव भाव दृढ हुव बहु कारन।
यातैं स्वीकृत कछुहु न अक्खहु, राउत फंद टारि पय रक्खहु ॥९६॥

जो जैपुर पहिलो हित जानहु, तो इत सौंहु अधिक पुनि तानहु।
इम द्विज प्रति सुखराम कहाई, द्रुत मेवारन सिक्खि दिवाई ॥९७॥

श्रीजित नें आगे कहलाया कि दयाराम तुम विवाह की बात से मना कर देना क्योंकि उनका क्या विश्वास? वे दुष्ट तो किसी के कुल के नाश पर उतारू हैं। पाप करने वाले पाप करने का समय नहीं देखते। उनके लिए तो अन्त्यज का उच्छिष्ट खाना भी त्याज्य नहीं है। फिर झूठी शपथ वे कपटी क्यों नहीं करेंगे, उन्हें तो दूसरों की बुद्धि को ठगने का काम करना है। इसलिए पत्र पढ़ते ही हे दयाराम! तुम इस सगाई हेतु अपनी सम्पति मत देना। इन मेवाड़ वालों को महाठग जानना। उनमें ठगी का भाव कई कारणों के कारण से है इसलिए तुम कोई प्रस्ताव स्वीकृत मत करना और देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह के डाले गये फंदे से अपने पाँवको बचाये रखना। वह जयपुर में बने रहने का अपना हित बचाये रखने को इससे भी अधिक बड़ा जाल तानेगा। इस तरह के श्रीजित के आदेश के समाचार सुखराम ने जयपुर दयाराम ब्राह्मण के पास

कहलाये और मेवाड़ से आये हुए दोनों व्यक्तियों को वापस मेवाड़ जाने की विदाज्ञा दिलवाई।

दोहा

सगताउत शिवनाथ सौं, नगर बिजैपुर नाह।
कृष्णसिंह प्रामार कुल, पहिलैं कथित सिपाह ॥९८ ॥

हित बहिरादर इन दुहुन, रुचिमित कछु दिन रक्खि।
बुंदीसन दिय सिक्ख बलि, उचित जथागम अक्खि ॥९९ ॥

दयाराम बुंदीस द्विज, जैपुर इत खिन जानि।
बुंदी पठवन तिलक बिधि, पुच्छिय उचित प्रमानि ॥१०० ॥

भेजैं अब इम भनत, कछवाहन चिर कीन।
बिच बिच पारे बिध्न बहु, नियति नवीन नवीन ॥१०१ ॥

बून्दी के चतुर सचिव धायभाई सुखराम ने पहले कहे गये विजयपुर के शक्तावत शिवनाथ और परमार कुल के कृष्णसिंह दोनों को ऊपर से आदर भाव का प्रदर्शन करते हुए कुछ दिन तक बूंदी में रखा और फिर आना, ऐसा गोलमोल आश्वासन देकर उन्हें बूंदी से जाने की विदाज्ञा प्रदान करवाई। उधर जयपुर में बूंदी के पुरोहित दयाराम ने इस समय सभी समाचार जान कर कछवाहों से पूछा कि आप जो बूंदी को टीका भेज रहे थे। उसका क्या हुआ? इस पर जयपुर वालों ने यह कह कर कि अब भेजते हैं, अब भेजते हैं, अनावश्यक विलम्ब किया। भाग्य ने भी बीच-बीच में नित्य नये विघ्न उपस्थित किये अर्थात् टीका न भेजा जा सका।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ विष्णुसिंह चरित्रे नारवप्रतापसिंह पट्टातिरिक्त जयपुरराज्य प्रतिदिन पञ्चशतमुद्राग्रहणोन्द्रगढकृत्रिमपतिप्रादुर्भवन दिल्लन्द्रयवनाप्रसत्तिनिष्कासित हैदराबादनव्वाबगाजुद्दीखां भरतपुरजयपुरनिवासप्राप्ति हेतु प्राप्त बुन्देलखण्ड पुरायपत्तन पति सुभटीभवन उक्तनव्वाबसहायसैन्यकृत्रिमदायादेन्द्रगढाक्रमणाकोटाजन पदलुराटन प्राप्तबुन्दीसेनास हायकोटापतिशत्रुसम्मुखागमन श्रुत स्वदेशोपद्रवनव्वाब हेतु कृत्रिमदायादपलायन मेदपाटकृत्रिमराणारत्नसिंह बुन्दीविवाह हेतु मेदपाटसुभटयत्नकरणानत्कैतव प्रादुर्भाव बुन्दीशास्वीकरणां चतुर्थो मयूखः आदितः ॥३५४ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह के चरित्र में, नरूके प्रतापसिंह का पट्टा के अलावा जयपुर के राज्य से पांच सौ रुपये नित्य लेना और इन्द्रगढ के फरेबी पति का प्रकट होना, हैदराबाद के नवाब गाजुद्दीखां का दिल्ली के बादशाह की अप्रसन्नता से निकाला जाकर भरतपुर और जयपुर में नही ठहरने देने के कारण बुन्देलखंड का प्रान्त पाकर पूना के पति का उमराव होना, इस नवाब को सहायक करके फितुरी दावेदार का सेना लेकर इन्द्रगढ पर आना और कोटा का देश लूटना, कोटा के पति का बून्दी की सहायक सेना पाकर शत्रुओं के सम्मुख निकलना और अपने देश में विघ्न सुनकर नवाब के चले जाने के कारण छली दावेदार का भागना, मेवाड़ के कृत्रिम राणा रत्नसिंह का बून्दी सम्बन्ध करने का मेवाड़ के उमरावों का उपाय करना और उनका छल प्रकट हो जाने के कारण बून्दी से अस्वीकार करने का चौथा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चौवन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

उक्त रान हम्मीर इत, भो जु उदैपुर भूप।
वय सैसव सो भय बहैं, रहैं समय अनुरूप॥ १॥

कछु दूरहु पुरतैं निकसि, उपवन मृगया अैन।
सह भोजन मह संक्रमन, क्रीड़ा कछुहु करैन॥ २॥

कृत्रिम रानाँ रत्न करि, सब पलटे सामंत।
तातैं रक्खत त्रास तिन्हँ, हास बिलासहु हंत॥ ३॥

इक्क सलूमरि पुर अधिप, अपर कुरावड़ ईस।
भीम अर्जुन नाम भट, इच्छैं दुव सु अधीस॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! उधर उदयपुर में अरिसिंह के बाद हम्मीरसिंह नया महाराणा बना पर वह अभी शैशवास्था में था इसलिए समय के अनुरूप भयग्रस्त सा रहता। वह न तो अपने नगर से बाहर निकल कर बाग में जाता न पास ही हरिणों की शिकार पर निकलता। यहाँ तक कि वह न किसी के साथ भोजन करता और न ही किसी उत्सव में जाता। न सवारी निकलती तो उसमें शरीक होता। वह खेल आदि किसी में हिस्सा नहीं लेता। कृत्रिम महाराणा

रत्नसिंह के साथ हो जाने से सारे उमराव उससे पलट गये थे इसलिए वह सभी से भयभीत रहता। अफसोस कि उसका हास-विलास सभी कुछ छूट गया। ले दे कर एक सलूंबर का स्वामी और दूसरा कुराबड़ का जागीरदार वे दोनों क्रमशः भीमसिंह और अर्जुनसिंह नामक अवश्य महाराणा के खैरख्वाह स्वामिभक्त थे।

घनाक्षरी

सासक सलूमरि के केहरी मरत कह्यो,
देवगढ नाह जसवंतहिँ बलि बुलाइ॥
मेरे सुत मूढ माने तिनमैं लघुहु लाल,
काढि दैहैं केतो खल तोकहँ कैं जैहैं खाइ॥
कुछकसौं कुहक पिता जो कही सोही करि,
नथहिँ निपाति अरिसिंह उर इष्ट आइ॥
राउत के तनय अचानक यौं राउत कौं,
काढ्यो उत्तमर्ण अधमर्ण ज्यों सब बिकाइ॥ ५॥

सलूंबर के रावत केसरीसिंह के मरणासन्न अवस्था में देवगढ़ के स्वामी जसवन्तसिंह को वापस बुलाकर कहा था कि मेरे पुत्रों को आपने मूढमति माना इनमें से छोटे वाला लालसिंह अवश्य उदयपुर (मेवाड़) से दुष्टों को निकाल बाहर करेगा या उन्हें खा जाएगा अर्थात् मार डालेगा। कपटी (जसवंतसिंह) से जो कपटी (लालसिंह) के लिए (केसरीसिंह ने) कही, वैसा ही कपटी (लालसिंह) ने कर दिखाया। बागोर के स्वामी नाथसिंह का सिर काट कर वह (लालसिंह) महाराणा अरिसिंह का चहेता बन गया। अन्ततः उस रावत (सलूंबर के) के बेटे (लालसिंह) ने अचानक एक दिन रावत (देवगढ़ के जसवंतसिंह) को इस तरह मेवाड़ से निकाल बाहर किया जैसे कोई कर्ज देने वाला बोहरा कर्ज लेने वाले का सब कुछ बिकवा कर गाँव से बाहर निकाल देता है।

देवगढ दुर्ग सो पै ताकै रहतो न तैंहँ,
जेठे जसंवत सुत राघव प्रगल्भ जव॥
देवगढदुर्ग में रह्यो सो लरिबेकौं दच्छ,
सम्मत पिता को पाइ स्वीयभट सज्जि सब॥

तापैं उदैपुर तैं अनीक भीम अर्जुन नैं,
भेज्यो तँहँ केते भनैं तेहु आये भ्रात तब॥
पैन जय पायो चक्र प्रत्युत पलायो मरिबो,
न भट मानैं क्वाँ क्रियाको फल होइ कब॥ ६॥

वह लालसिंह बराबर देवगढ़ के दुर्ग पर ताक लगाये रखता कि कब जसवंतसिंह का बुद्धिमान ज्येष्ठ पुत्र राघवदास वहाँ से बाहर जाये और वह अपना मनजाना कर दिखाये अर्थात् लड़ने में दक्ष उस योद्धा राघवदास ने अपने पिता की सलाह से अपने साथियों सहित सदा सज्जित रह कर देवगढ़ दुर्ग को बचाया। वह राघवदेव सदैव चौकन्ना रहता तब भी उदयपुर से भीमसिंह और अर्जुनसिंह ने देवगढ़ पर चढ़ाई करने सेना भेजी। कुछ लोगों का कहना है कि सेना के साथ ये दोनों भाई भीम और अर्जुन भी आए थे पर उदयपुर की सेना का सत्य जो भी हो उसे सफलता नहीं मिली। उल्टे मेवाड़ की सेना मरने से डरती हुई भाग खड़ी हुई। दूसरा जो योद्धा थे वे भी मन ही मन यह जानकर डरे हुए थे इसका फल पता नहीं क्या निकले ? अर्थात् वे इस बात से डरे हुए थे कि राघवदास वापस हमसे कब बदला निकाले इसकी खबर नहीं।

राजसवत्तिका

सोलह बीरन मैं अरिसिंह के पच्छमो एक सलूमरिको पति।
अर्जुनसिंह कुरावड ईस बतीस न मैं रहयो मुख्य महामति॥
काज बडो इक यानैं कर्यो स्मृतिमैं न फुर्यो सो कथा क्रम संमति।
है कथनीय सो जात कह्यो इम ओरहु ठाँ क्रम तूटी कथाकति॥७॥
बेढयो उदैपुर कौं बल तैं जब माहजि संध्या महाबल जाइकैं।
भो पुरमाँहि महा दुरभिच्छ क्वाँ प्राभृत लीजै कह्यो भय पाइकैं॥
मद्यप सालक माहजि को बिलसैं परनारिन नित्य बुलाइकैं।
साहस बात बिगारिदै सो उत की इत साहस ऊपर आइकैं॥ ८॥

महाराणा अरिसिंह के साथ मेवाड़ के सोलह बड़े उमरावों में से एक सलूंबर का स्वामी ही रहा। दूसरा साथ देने वाला कुराबड़ का जागीदार अर्जुनसिंह था जो महाराणा के छोटे बत्तीस उमरावों में से एक था। हे राजा

रामसिंह! कथा कथन के क्रम में मेरी स्मृति में नहीं आया। एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य अर्जुनसिंह ने संपादित किया था उसे यदि किसी और जगह कहूँगा तो उस स्थल का क्रम गड़बड़ाएगा इसलिए उसे यहीं कहना उचित समझता हूँ। वह वृत्तान्त इस प्रकार है कि जब उदयपुर नगर को महादजी सिंधिया की सेना ने आ घेरा तब नगर में खाद्य सामग्री का बड़ा अकाल छा गया। सभी प्रजाजनों सहित महाराणा के परिकरों ने भी मराठा सेना को फौज खर्च देने का मानस बना लिया। मराठों के भय से दण्ड राशि देने की बात चलने लगी। ऐसे समय में महादजी सिंधिया का शराबी साला जो अत्यंत विलासी था, वह परनारियों को नित्य अपने शिविर में बुलाकर उनके साथ व्यभिचार करने लगा। वह इसीलिएस दोनों पक्षों मे दण्डराशि के लेन देन की चलती बात को हठपूर्वक बिगाड़ देता अर्थात् कोई समझौता नहीं होने देता था।

बाहिर माहजि के बलमैं लहि अर्जुन कोउक मित्र पटालय।
ओरहि आप अजस्त्र उहाँ दम देबो कहैं सु चहैं नहि निर्दय॥
रत्न के पच्छ मैं राचि रह्यो वह सालक संध्या को आगम अत्यय।
एक उपायन को न उपाय भयो जिहिं अग्ग बिसेस छयो भय॥ ९॥

नगर के बाहर महादजी की सेना के शिविर में अर्जुनसिंह कुरावड़ अपने एक मित्र के डेरे में गया। वहाँ सभी लोग निरन्तर दण्ड राशि देने की बात करते पर महादजी के निर्दय साले को यह सहन नहीं होता। वह तो मन ही मन चाहता था कि यह घेरा थोड़े दिन और चले तो उसे अपने विलास के अवसर मिलेंगे। वह दुष्ट तो नकली महाराणा रत्नसिंह के पक्ष में मस्त रहने वाला था। सिंधिया का यह साला जो शास्त्र का नाश करने वाला और दण्ड के आगम की चाहना करने वाला था। इधर उदयपुर में इन मराठों को दण्ड की राशि देने का जुगाड़ नहीं हो पाया इससे सभी ओर नगर में और अधिक भय छा गया।

जानिकैं अर्जुन लंपट जाहि निसागम नारिको बेस बनाइकैं।
पूगिबो सीखि छली पहिलैं जिम लज्जित त्यौं तम मैं तँहँ जाइ कैं॥
ठानि प्रमादी महाठिग नें नखरे सौं निरंतर प्याले पिवाइ कैं।
संहरि ताहि पटालय स्वीय अतित्वर आइ पर्‌यो मिस पाइ कैं॥१०॥

तभी एक दिन अर्जुनसिंह ने महादजी के साले को लंपट समझ कर संध्या के समय स्त्री-वेश धारण किया। वह छली (अर्जुनसिंह) लज्जित स्त्री के समान हावभाव का प्रदर्शन करता हुआ अंधेरे का लाभ उठाते हुए उस लंपट के डेरे के बाहर जा खड़ा हुआ। यहाँ उसने पूरी नजाकत से स्त्रियोचित नखरे दिखाकर उस लंपट शराबी को शराब के प्याले पर प्याले पिलाये। जब वह नशे में धुत हो गया तो उसके डेरे में घुस कर अर्जुनसिंह ने शीघ्र ही उस लंपट को मार डाला और अविलम्ब वह वापस अपने डेरे में आ गया। यहाँ अपने डेरे में आते ही अर्जुनसिंह ने दर्द होने का बहाना बनाया।

लोटि कबूतर लोटन लों सु पिचंड मैं व्याज के सूल प्रसारि कैं।
ज्यों निज प्रान प्रयान जनाइ र ह्यो अति आतुर व्है छल रारि कैं।।
दीनौं स्वकीयन दात्रन सौं जठराख्य तदीय प्रतीकहि जारि कैं।
एक ही दाहन को उपचार बन्यौं दृढ प्रत्यय सत्य उबारि कैं।।११।।

अर्जुनसिंह आते ही डेरे के पलंग पर गिर पड़ा और पैट दर्द का नाटक करते हुए लोटन कबूतर की तरह छटपटाते हुए शय्या पर लोटने लगा। उसने घबराहट के साथ ऐसा अभिनय किया मानों दर्द के मारे उसके प्राण निकलने वाले हों। यह देखकर उसके दोनों सेवक घबरा गए और अन्तत: उन्होंने अपने स्वामी अर्जुनसिंह के पेट पर डाम (गर्म वस्तु से दागना) देने की सोची। उन्होंने एक हँसिया तपाया और लाल सुर्ख होने पर अर्जुनसिंह के पेट को दाग दिया। इस तरह पेट के एक अवयव (हिस्से) को जलाने वाला इलाज ही सत्यता को छिपाने का साधन बना।

आदिम जामिनि जाम गये पहिलैं पहिलैं पटु कृत्य सबै करि।
स्वोदर दाहत स्वीय सखाहु लख्यो बिधिसो बिलख्यो बिधिसौं लरि।।
हारि कैं दाह अनंतर हू जिम अंग थके तिम नैंन पलैं जरि।
राति घटी खट सेस रही तब निंद लही छलसिंधु वहै तरि।।१२।।

रात्रि के प्रथम प्रहर के बीतते-बीतते ही उस चतुर ने यह सारा कार्य सम्पादित करवा दिया। अर्जुनसिंह के पेट को इस तरह दागते हुए उसके मित्र ने भी देखा तब वह विधि (तरीके) से लड़ कर विधि पूर्वक (रोने के अन्दाज में) रोया। कई देर तक पेट के जलने की पीड़ा झेलता रहा पर थोड़ी देर के बाद थका हारा वह आँखे बंद कर सो गया। जब छ: घड़ी रात शेष रही तब वह छल के समुद्र को तैर कर (पार कर) नींद में सो गया।

हा रव भो अरुनोदय होतहि स्वामि को सालक काहू हन्यों कहि।
स्वामिनी अन्न तज्यो सुनिकैं व्रत मारन हार के मारन को बहि॥
माहजि कोपि तहाँ तियतंत्र उठाइ फटा जिम पुच्छ दब्यो अहि।
उच्चरयो जंबुक ज्यों अरिसिंह मराइ मयदंन भोगैं किती महि॥१३॥

प्रात:काल सूर्योदय के होते ही शिविर में हाहाकार मच गया कि किसी अज्ञात हत्यारे ने हमारे स्वामी के साले को मार डाला। इस खबर को सुनते ही महादजी सिंधिया की पत्नी ने अनशन व्रत किया। उसने अन्न जल त्याग कर अपने भाई के हत्यारे को मारने की बात उठाई। तब महादजी सिंधिया ने तियतंत्र से कुपित होकर सर्प की तरह पूंछ दब जाने पर फण फैलाया। उसने क्रोध के स्वर में घोषणा की कि मेवाड़ के गीदड़ रूप अरिसिंह ने सिंह को मरवाया है वह पृथ्वी पर कीर्ति को प्राप्त नहीं होगा।

घनाक्षरी

रेनपच्छी झाला देलवारापति राघोदेव,
आदिक उहाँ हे किते तेहु सो सुनत आइ॥
बोले धूर्त चुंडाउत अजुर्न जुवति बेस,
मारे होइ मोघ तोक लेहु हमरे कटाइ॥
हो हरि खिज्यो रु सिर ठोकर प्रहार पायो,
लेन लागो सपथ उदैपुर को अपनाइ॥
ताके मित्र आइ तँहँ संध्या के सुभट सूची,
होत प्रभु कोप क्यों अनागस पैं हाइ हाइ॥१४॥

इसी समय कृत्रिम महाराणा रत्नसिंह के पक्ष वाला देलवाड़ा का स्वामी झाला राघवदेव जो वहाँ था यह हाहाकार सुनते ही वहाँ स्थल पर आया। उसने आते ही कहा कि यह सब कुछ धूर्त चूंडावत अर्जुनसिंह कुराबड़ का किया-कराया है। उसी ने स्त्री-वेश धारण कर महादजी आपके साले को मारा है यदि यह बात झूठ निकले तो मैं अपना सिर कटा लूंगा। पहले ही सिंधिया महादजी जो एक खीजा हुआ सिंह था ऊपर से यह नई ठोकर का आघात लगा। उसने शपथपूर्वक घोषणा की कि मैं उदयपुर को मिटा कर रहूँगा तभी अर्जुनसिंह चूंडावत के कुछ मित्रों ने आकर सिंधिया के

सामन्तों से कहा कि हाय-हाय! आपके स्वामी सिंधिया क्यों व्यर्थ ही निरपराध लोगों पर क्रोध कर रहे हैं ?

साँझके अंतर ही अर्जुन उदर मूल,
चालन लगे अति असाध्य न रुके बिचारि॥
दानानिक कृत्य अवसान के सब कराइ,
जठर तदीय हम दात्रय सौं राख्यो जारि॥
जाम हु गई न राति ओर सब ठाँ निज ब,
दाहिहु चुके तब मुधा तो लेहु सिरदारि॥
स्वामिनी के सोदर तो सूते समै संभवत,
मद्य छाके कोऊ गो निसीथ पीछैं खल मारि॥१५॥

संध्याकाल से ही अर्जुनसिंह के पेट में पीड़ा हुई। इस पीड़ा के कारण एक बार तो ऐसा लगा कि यह कोई असाध्य रोग है और वह अब नहीं बचेगा। अन्त समय में दिये जाने वाले दान आदि का कार्य भी सम्पन्न करा दिया गया अर्थात् वह मरणासन्न हो गया तब हम सेवकों ने एक हँसिये को तपा कर उसके पेट को दागा। यह सब कार्य हमें एक प्रहर रात्रि के व्यतीत होने से पूर्व ही करना पड़ा अर्थात् यह तो रात्रि के प्रथम प्रहर से प्रातः काल तक अपने डेरे से निकलने की स्थिति में नहीं था। ऐसी स्थिति में अब उस सरदार (देलवाड़ा वाले) को तो अपना मस्तक कटवा ही लेना चाहिए क्योंकि उसकी कही बात झूठी निकली। आपकी मालकिन (सिंधिया की पत्नि) के भाई तो शयन के समय शराब के नशे में गाफिल थे इसलिए हो सकता है उसे किसी दुष्ट ने आधी रात के बाद मारा है (क्योंकि यदि नशे से पूर्व मारा होता तो वह मराठा वीर भी मुकाबले में हाथापाई करता, हल्ला करता और कोई तो हत्यारे को देखता)।

हाका भो जहाँ लौं सब ताके पास हे हमहु,
दास हीके डेरा है पर्‌यो सो कछु सेसदम्म॥
भानबिनु लोटत रह्यो सो सबराति भुव,
भूलिहु न आनौं नाथ हेलन मैं तास भ्रम॥
राम प्रभु अैसें व्है निरागस बचिहु रह्यो,
संहरि सपत्न कों दिखानों उदासीन सम॥

भार उपकार के सों स्वामी कौं नमाइ भयो,
बंचकता बीरता मैं तैसो को पुरोगतम ॥१६॥

प्रात:काल जब हाहाकार मचा उस समय तक हम दोनों अर्जुनसिंह की सेवा में थे अर्थात् उसके पास थे। वह यहाँ पास वाले आपके दास (मेरे) के डेरे में था और पूरी रात जमीन पर पड़ा नीम बेहोशी में तड़पता हुआ करवटें बदलता रहा है इसलिए हे स्वामी! आप भूल कर भी किसी अन्य के भ्रम में उसे अपराधी न मानें! हे राजा रामसिंह! इस तरह वह अर्जुनसिंह निरपराध गिना जाकर बच गया। अपने शत्रु को मार कर उदासीन बने रह कर जिसने उपकार के भाव से अपने स्वामी को झुका दिया। उसके जैसा छल-कपट करने वाला और पराक्रम का प्रदर्शन करने वाला अन्य कौन होगा? अर्थात् वह छल और वीरता में सदा अग्रणी बना रहा।

ईस अरिसिंह सीस अैबे दयो आगस न,
बित्त जो लयो दंड मैं डरि बिसेस॥
अैसी ठानि अर्जुन कुरावड़ के चुंडाउत,
पायो दाह दुख न गुमायो पै प्रभु प्रदेस॥
राघव सु मार्‍यो जसवंत सु बिडार्‍यो रान,
आदर्‍यो सलूमरि कुरावड़ जुगहि एस॥
पीछैं रान मार्‍यो सो अजा नैं यौं उदैपुर मैं,
बर्तमान मैं है अब हम्मीराख्य बसुधेस॥१७॥

उसने अपने स्वामी महाराणा के सिर पर किसी प्रकार का अपराध नहीं आने दिया। दंड की राशि जितनी सिंधिया ने माँगी डरते हुए उतनी ही उदयपुर ने अदा की उस कुराबड़ के चूंडावत अर्जुनसिंह ने यह किया कि अपने शरीर को दागे जाने का दु:ख झेला पर स्वामी को पृथ्वी जाने का दु:ख नहीं होने दिया अर्थात् महाराणा की भूमि नहीं जाने दी। महाराणा अरिसिंह ने भी तब देलवाड़ा के राघवदास को मारा और देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह को मेवाड़ से निकाल दिया। इसके बाद महाराणा ने सलूंबर और कुराबड़ दोनों ठिकानों का आदर किया। बाद में जब महाराणा अरिसिंह को बूंदी के राजा अजीतसिंह ने मार डाला। उसके बाद वर्तमान में उदयपुर में अब हम्मीरसिंह नामक महाराणा विद्यमान है।

द्रंग इत जैपुर कही जो दयाराम द्विज,
बनि न सकी सो जसवंत सौं उचित बात॥
सो तजि उपाय तब भेजिबे तिलक साज,
सूची कूरमन सौं दुहुं घाँ हित दरसात॥
जैपुरमैं दिष्टनैं प्रकोप करि राख्यो जब,
यातैं मौंहिं मौंहिं मचे पंचन मैं उतपात॥
नारव प्रताप से बिराजैं जहाँ बंचक तो,
क्यों न परैं ताही ठाम घर घर घोर घात॥१८॥

उधर जयपुर में बून्दी के पुरोहित दयाराम ने टीका भिजवाने की बात की पर जसवंतसिंह से कुछ भी नहीं हो सका तब उसने कछवाहों को कहलाया कि इसमें तो दोनों पक्षों का हित निहित है पर इन दिनों जयपुर पर नियति का कोप हो रखा था इसलिए उनके पंचो में आपस में विरोध बढ़ा। जहाँ नरूका प्रतापसिंह जैसे कपटी मंत्री पद पर आसीन हों वहाँ घर-घर में कदम-कदम पर घात-प्रतिघात होना स्वाभाविक था।

सबन बिगारिबे कौं राजगढवारो सोहि,
चोर कौं लगावैं गृहस्वामि कौं जगावैं चाहि॥
ऐसी कछु मोहिनी मचाई कुहकेस उहाँ,
जाहि बहिकावैं सो स्वकीय करि मानैं जाहि॥
फोरि बहुरे कौं बखतावर पैं डारैं फंद,
बंधि हित तासौं बहुरे को गहिबो निबाहि॥
रानी कौं रुठाइ नाथाउतन निकारैं नीच,
तिन सौं प्रतारैं चुडाउतन मन मुधाहि॥१९॥

सभी को बिगाड़ने का जिम्मा उस राजगढ़ वाले प्रतापसिंह नरूका ने ले रखा था क्योंकि वह चोर से कहता चोरी कर और गृहस्वामी से कहता जागते रहना। इस तरह की नीति अपनाकर ठगों के ठग नरूका ने अपनी ऐसी मोहनी विद्या चलाई कि वह एक बार जिससे मिलता वह उसी का हो जाता और उसी की बात मानता। बोहरा खुशालीराम को फोड़ कर अर्थात् अपने पक्ष में कर उसने झलाय के कुमार बख्तावरसिंह पर फंदा डाला और

झलाय कुंवर से मित्रता कर बोहरा खुशालीराम को पकड़ने की योजना बनाई। इस तेज बुद्धि ठग ने रानी को नाराज करवा कर नाथावतों को वहाँ से निकलवा दिया और नाथावतों से चूंडावतों (पिता-पुत्र) को मिथ्या ही प्रताड़ना दिलवाई।

मित्र बहुरे सौं जसंवत की मति मुराइ,
ताहि द्वार तासौं नृपमाता की मुराइ मति॥
गूढ लैं निदेस ताको बिप्र गहिबे कौं गढ,
माँहि रहिबे कौं गाढ कूरम बुलाइ कति॥
राजागार द्वार सब ओरके कराइ रुद्ध,
गोपुर जराइ सब पत्तन के गूढगति॥
राजाउत तीन हि जलेबचोक सज्ज राखि,
जंपी कहि ज्यों न जाइ यों रहो प्रबुद्ध अति॥२०॥

खुशालीराम बोहरा जो जसवंतसिंह चूंडावत का मित्र था। उसने चूंडावत को उससे विमुख करवा दिया। यहीं नहीं उसने राजमाता की भी बुद्धि फिरा कर बोहरा के विरुद्ध कर दिया और राजमाता से गुप्त निर्देश ले कर उस ब्राह्मण (खुशालीराम बोहरा) को पकड़ने उसे गढ़ में बुलवाया यह कह कर कि तुम्हें कछवाहे बुला रहे हैं। फिर उसने राजा के महलों के सभी तरफ के द्वार बंद करवा दिये। इसके बाद नगर के सभी प्रवेश-द्वार चुपचाप बंद करवा दिये। तीनों राजावतों को जलेब चौक में सज्जित कर तैनात करते हुए कहा कि पूरे सावधान रहना इधर से कोई निकल न पाये।

जिनमैं प्रबीर धूलाधीस रघुनाथ जानौं,
नंदन दलेल को जो लछमन को अनुज॥
सारसोप ईस दूजो बिक्रमदिनेस सज्ज,
नाँती फतहमल्ल को जो रत्नसिंह को तनुज॥
तीजो बखतावर झलाय को कुमर तत्थ,
मानों त्रय लैंकैं सावधान अपनैं मनुज॥
रुद्ध करि राह कों जलेबचोक मैं ए रहे,
दीसे घोर भूसुर के रोकिबे कौं भूदनुज॥२१॥

इन तीन राजावतों में से एक तो धूला नगर का स्वामी रघुनाथसिंह था जो दलेलसिंह का पुत्र और लक्ष्मणसिंह का छोटा भाई था। दूसरे सारसोप पुर के जागीरदार विक्रमादित्य को सज्जित किया जो फतहमल का पोता और रत्नसिंह का बेटा था। तीसरा उसने झलाय के कुमार बख्तावरसिंह को वहाँ तैनात किया। इन तीनों अपने आदमियों को सावधान रहने की ताकीद के साथ तैनात कर जलेब चौक की ओर जाने वाली राह को अवरुद्ध कर उन्हें जलेब चौक में खड़ा किया। ये तीनों वहाँ खड़े ऐसे लग रहे थे मानों ब्राह्मण (खुशालीराम) को कैद करने के लिए तीन भूमि के दैत्य खड़े हों।

रीति सोही स्वीकरि प्रताप के पढ़ाये रहे,
नाथाउत संसद के अंतर धवल धाम॥
इनमैं पुरोग रत्नसिंह पुर चोमूँ ईस,
दूजो पुर सामोदेस नाम सुरतान नाम॥
भिन्न मत केते भनैं इनकौं तटस्थ इहाँ,
कोऊ चुंडाउत्तन बुलायो सूचि इहिं काम॥
बिद्यागुरु भट्ट कों निमित्त राखि नारव नैं,
रूठि पकरायो यों बहोरा खुसहालीराम॥२२॥

राजावतों की तरह उधर प्रतापसिंह के सिखाये हुए नाथावत राजसभा के भीतर के महलों में तैनात रहे। इनमें अग्रणी चोंमू नगर का स्वामी रत्नसिंह था और उसके साथ दूसरा सामोद का स्वामी प्रसिद्ध क्रोधी सुरतानसिंह था। यही नहीं उस प्रतापसिंह ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि इन नाथावतों को किसी काम से चूंडावतों ने बुला रखा है (जब कि बुलाया स्वयं ने था)। फिर राजा के विद्यागुरु सदाशिव भट्ट को निमित्त बना कर उस नरूका ने रूठ कर अन्ततः खुशालीराम बोहरा को बंदी बनवा दिया।

पीपलदा काका सत्रुसाल कों दयो लै पुब्ब,
चित्त सु बिरोध बखतावर कुमर चाहि॥
मारिबे लग्यो व्हाँ द्विज को सो छलघात मंडि,
दुर्बचन पावक प्रयोग पाती उर दाहि॥
बिक्रमदिनेस तब कुमर निवार्यो बदि,
मंत्री सब जानैं मर्म अबहि न मारो याहि॥

मंत्र कोस दुर्ग इनको यासौं सब पाइ मर्म,
मारिहैं सहज पीछैं कोउक बिधि समाहि॥२३॥

झलाय के कुमार से पीपलदा की जागीर लेकर उसके काका शत्रुसाल को दे दी थी इसलिए कुमार के चित्त में खुशालीराम के प्रति विरोध भरा हुआ था। वह छलघात कर इस ब्राह्मण को मारने ही लगा था पर किसी तरह दुर्वचन रूपी अग्नि से हृदय रूप पाती को जला कर ही रुक गया क्योंकि तब झलाय के कुमार को विक्रमादित्य ने ऐसा करने से यह कह कर रोका था कि यह मंत्री सारे भेद जानता है इसलिए आप अभी उसे न मारें। पहले खजाना, दुर्ग आदि का भेद इससे पा लें बाद में कभी भी इसे आसान सी तरकीब सोच कर ही मार डालेंगे।

माधव महीप जब जाट तैं समर जीत्यो,
जैपुर के जोध परे धूलापति आदि जब॥
राव रु बहादुर उभै पद मिलित राखि,
एह उपटंक पायो बिक्रम तरनि तब॥
बिप्र खुसहालीराम तामैं भो निमित्त बुध,
यातैं बीर विक्रम सो चिंति उपकार अब॥
मृत्युमुख पैठो यौं निकास्यो द्विज मंत्री कुल,
धर्म सुद्ध व्है जो भूलिजाइ उपकार कब॥२४॥

पूर्व कछवाहा राजा माधवसिंह ने जब भरतपुर के जाटों पर विजय पाई थी तब उस भिड़ंत में धूला के जागीरदार जैसे जयपुर के सामन्त योद्धा मारे गये थे तब राव और बहादुर ये दोनों पद मिला कर रावबाहदुर की पदवी विक्रमादित्य ने पाई थी। उसे ऐसी पदवी दिलवाने में खुशालीराम बोहरा निमित्त बना था इसलिए विक्रमादित्य ने अपने पर किये गए इस उपकार को याद कर ही मंत्री को मृत्यु के मुख से बाहर निकाला क्योंकि जो व्यक्ति धर्म की विशुद्ध राह का राही हो वह अपने पर हुए उपकारों को कब भुला पाता है अर्थात् नहीं बिसारता है।

पीछैं राजकाज पूछिबेकी बात बंध करि,
देवगढ बासिन कौं मंतु कछु दै दबाइ॥

भाखी जो रहो तो लहों अपनैं पटा कौ भोग,
आहु न बुलायैं बिनु अंगजा कों अपनाइ॥
रानी को पिता सौं पूछिबोहू करि तस रुद्ध,
भाख्यो पितृद्वार न बुलावहु जनक भाइ॥
सूनु दुव रावरे न राखहु निज समीप,
संसद रहन देहु पंचन मैं पधराइ॥२५॥

इधर नरूका प्रतापसिंह ने मंत्री रूप राजकाज करने में देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह से राय-मशविरा लेना बंद कर दिया और उसका दोष दबाकर कहा कि यहाँ (जयपुर में) रहना है तो अपनी जागीर का हासिल लेकर चुपचाप रहना होगा। आपको बिना बुलाये अपनी पुत्री से मिलना बंद करना होगा। उधर राजमाता का अपने पिता से राय पूछना बंद करवाते हुए नरूका ने कहा कि राजमाता! आप भी घड़ी-घड़ी अपने पिता और भाई को जनाना की खिड़की पर बुलाना बंद करो। आपको अपने दोनों पुत्रों को अपने पास रखना बंद कर उन्हें अधिक से अधिक समय तक राजसभा में सामन्तों के मध्य रखना चाहिए।

अैसो फंद डारिकैं नरूका रहि दूर आप,
राजकाज बाहिर ज़े भेदिक समस्त भट॥
भाख्यो भूप माधव जो मंत्री निज कीनौं मुख्य,
बिप्र खुसहालीराम साधैं काम नीति बट॥
राजाउत बंचकन भेदि कैं पिहित रानी,
मल्लिनाग मंत्र मैं जो हंत पकर्‌यो प्रकट॥
यातैं अंधकार मैं न रहिबो उचित अहो,
नगर तैं निकसि निवारैं द्विज भै निपट॥२६॥

इस तरह का दाँव खेल कर नरूका स्वयं तो अलग रहा पर बाहर का राजकाज देखने वाले सामन्तों मं आपस में फूट डलवा दी। पूर्व में कछवाहा राजा माधवसिंह ने अपने मुँह से जिसे मंत्री बनाया, वह खुशालीराम जो नीति की राह पर चलते हुए सारा राजकाज अब तक करता आया और कर रहा था। इसी बीच कपटी राजावतों ने गुप्त रूप से राजमाता से मिल कर चाणक्य की

कूटनीति का दाँव खेला। अफसोस! कि इससे खुशालीराम डर गया उसने स्वयं को और अधिक अंधकार में नहीं रख कर सोचा कि अब तो जयपुर नगर से निकल जाने में सार है और सचमुच उस ब्राह्मण ने अपने भय का निवारण भी उसी तरह किया अर्थात् निकल गया।

राजाउत नाथाउत चुंडाउत महिँ राखि,
सेसन सिखाइ यौं खुलाइ पुर के अरर॥
बाहिर निकसि स्वीयस्वीय घरतैं बुलाइ,
सेससेस सुभट प्रताप रहि अग्रसर॥
रानीसौं कहायो राजाउत जे चहत राज्य,
तिनको भरोसा न करो ए गिनौं सत्रुतर॥
बिप्र नयपंडित जो रावरो हितहि बंछैं,
ताहि निकसावहु नतो हैं हम पापपर॥२७॥

राजावत, नाथावत और चूंडावत को भीतर रख कर दूसरों से कह कर उसने नगर के प्रवेशद्वारों के कपाट खुलवाये और बाहर निकल कर उसने अपने-अपने लोगों को घरों से बुला कर निकाला। इनके अलावा शेष उपयोगी सामन्तों को बुला कर प्रतापसिंह नरूका ने अग्रणी बन कर राजमाता से कहलाया कि राजावत तुम्हारा राज हड़पना चाहते हैं। आप उनका भरोसा मत करो। वे आपके शत्रु हैं। यही नहीं वह ब्राह्मण मंत्री तो नीति में चतुर है आपका हित चाहने वाला है उसे कारावास से छुड़वाओ, नहीं तो हम सभी पाप के भागी होंगे।

भेज्यो जो बिदग्ध मरहट्ठन समुह भूप,
भेज्यो जोहि मिच्छन के सम्मुह दै भुजमार॥
भेज्यो अंगरेजन के सम्मुह उचित भाखि,
तूहि यह राजपद राखिबे अति उदार॥
राजा भट सचिव प्रजा कौं थिर राखिबे को,
जाकै पन ताहि रोकैं जे जनैं पिहित जार॥
यातैं बुध बिप्र कौं छुराइ करो मंत्री आप,
हाहा नहितो ब प्रतिकुल भासैं होनहार॥२८॥

जिस चतुर मंत्री को पूर्व राजा ने मराठों के समक्ष भेजा था। यही नहीं उसकी भुजाओं पर जयपुर का भार देकर राजा ने म्लेच्छों का सामना करने भी भेजा था। वह अंग्रेजों के सामने भी भेजा गया, राजा द्वारा यह कह कर कि तू ही अब हमारा राजापद रखने वाला है। वह राजा के साथ उसके सामन्तों, सचिवों और प्रजा को स्थिर रखने में सक्षम रहा। उसी ने छिपे हुए (गुप्त) जार से उत्पन्न लोगों को अधिकार लेने से वंचित किया। ऐसे चतुर ब्राह्मण मंत्री को कारावास से निकलवा कर उसे फिर से राज का मंत्री बनाएँ अन्यथा राज की व्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ेगा और सभी ओर हाहाकार मच जाएगा।

फीरोजाभिधान सु महावत बुलाइ फिरि,
मिच्छ राजाउत्तन रखायो राजकाज माँहि॥
बिप्र पकरायो सो बिरोध बिसराइबे कौं,
आप टरि बैठे अब रानीतैं प्रनत आँहिं॥
बंचक कहाइ द्विज कारा तैं निकासिबे की,
नारव प्रताप इत कृत्य मैं रहत नाँहिं॥
लोभिन कौं प्रेरिकैं उपद्रव करन लागो,
जिततित जाके जोध लूटिबे कौं चढि जाँहिं॥२९॥

फिरोजखान नामक महावत को वापस बुलाकर राजावतों ने उस म्लेच्छ को फिर से राजकाज के कामों में संलग्न किया है। ब्राह्मण मंत्री को बंदी बनाया गया उसके विरोध को भुलाने के लिए वे स्वयं अब इस बात से अपने को अलग कर बैठे हैं। अब राजमाता से यही निवेदन है। इस तरह उस ठग ने खुशालीराम को कारा से निकालने की बात कहलाई और कहलाया कि नरूका प्रतापसिंह इस कार्य में नहीं रहेगा। वह तो लालची लोगों को प्रेरित कर उपद्रव मचाने में लगा है इससे उसके योद्धा यहाँ-वहाँ लूट मचाने को उद्यत हो जाएँगे।

बिप्र गहिबे की पहिलैं जो लिखी बचंक नैं,
रानी पास अरजी हुती सो बेग निकराइ॥
एक लिखि पत्र निज नाम को जवन उभै,
पत्र कछु व्याज पुर बाहिर दये पठाइ॥

यौं लिख्यो उदंत तुमही कौं बंचि बंचक नैं,
बिप्र पकरायो लेहु प्रत्यय लिखित पाइ॥
हेरि हित यातैं पुर पैठहु प्रताप हनि,
बिप्रहिँ कढाइ दैहैं इत हम भद्रभाइ॥३०॥

ब्राह्मण खुशालीराम को पकड़वाने का पत्र जो पूर्व में इस कपटी ने लिखा था। उस अर्जी को जो राजमाता के पास थी उसे शीघ्र निकलवा लिया फिर उस यवन (फिरोजखान) ने एक पत्र अपने नाम से लिखा और दोनों पत्र किसी बहाने नगर से बाहर भिजवा दिये। उसने पत्र में पूरा वृतान्त लिखा कि उस ठग ने तुम लोगों को ठग कर ब्राह्मण मंत्री को पकड़वा दिया। अब इस पत्र की लिखावट मिला कर आप लोग भी भरोसा करें। इसे प्रमाण मान कर अपना हित देखते हुए तुम लोग नगर में प्रवेश करो और नरूका प्रतापसिंह को मार डालो। इधर हम कल्याण की रीति से ब्राह्मण मंत्री को कारा से निकलवा देंगे।

सेखाउत खंगारुत्त आदि कछवाह सूर,
बाहिर हुते जे पत्र ते दुव लखि बिचारि॥
सेनानी हमीरदेव बंसी राजसिंह सान,
उत्तेजक सूर सस्त्र पैनैं करे धक धारि॥
बोल्यो करी कहुक प्रताप सो लखहु बीर,
डाकी कढि जैहैं अब राज्य पैं गजब पारि॥
तातैं तुम संग हम अज्जहि अनेह तकि,
मित्रन बिरोधी महाअधम कौं डालैं मारि॥३१॥

शेखावत और खंगारोत आदि कछवाहा योद्धा जो नगर के बाहर थे उन्होंने दोनों पत्रों को देखा और विचार किया। फिर हमीरसिंह के वंशज सेनापति राजसिंह द्वारा प्रेरित किये हुए योद्धाओं ने जब अपने शस्त्र साधकर तीखे कर लिये तो क्रोध से भरे वचनों में कहा कि उस ठग प्रतापसिंह ने जो धूर्तता की है उसे अपनी नजर से देखो। वह भक्षण करने वाला डाकी पापी राज पर गजब ढा कर कहीं नगर से सुरक्षित निकल न जाए इसलिए आज मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा और उचित अवसर देखकर हम उस मित्र विरोधी महापापी को मार डालेंगे।

पत्र सु महावत कौं बाहिर के पंचन मैं,
आतहि बिचार्यो घात नारव पैं क्रुद्ध अति॥
पत्र राजाउत्तन पठाइ इहिं अंतर मैं,
नारव कौं नीचन जनाइ दीनी गूढ गति॥
दूर कछु भेजि यातैं आपुनैं पिहित दूत,
पीछे बुलवाये ख्यात दोरत जे आप प्रति॥
आइ तिन भाखी राजगढ कौं लगे अहित,
राखिहो मही तो इहाँ धरिहै नृपहु रति॥३२॥

महावत फिरोजखान का पत्र जब नगर के बाहर पंचो (मुख्य व्यक्तियों) के मध्य पहुँचा तो उन्होंने कुपित हो कर नरूका पर घात करने की सोची। इसी बीच राजावतों ने पत्र भेज कर प्रतापसिंह नरूका को सारी गूढ योजना बता दी। तब उसने अपने विश्वासपात्र दूतों को गुप्त रूप से दूर-दूर तक भेजा और जो उसके पक्ष के थे उन्हें बुलवाया। उन्होंने आते ही कहा कि हमें तो राजगढ़ का अहित होता लगता है आप यदि हमें भीतर ही रहने दो तो जयपुर का राजा भी आप पर विश्वास करते हुए अपनी प्रीति बनाये रखेगा।

सोहि सुनि लैकै मुख्य मुख्य उपहार संग,
ओर प्रसरे ही राखि डेरन सहित एह॥
कुंचकरि ताही निस चढि कैं प्रताप कढि,
छद्मघात भीत छद्मी गो निज कथित गेह॥
अयुत अनीक को अधीस राजसिंह अरु,
सेखाउत्त खंगारोत्त हे मिलि दृढ सनेह॥
ताक्ते ही तदपि रहे छद्मघातक त्यौं,
पारद लौं कढिगो प्रताप लै सु बिधि लेह॥३३॥

सभी समाचार जान कर प्रतापसिंह ने तब खास-खास बहुमूल्य सामग्री अपने साथ ली और डेरों को उसी तरह तने हुए रहने दिया और वह उसी रात्रि को अवसर देख कर घोड़े पर सवार हो चुपचाप निकला। वह छलघात से डरता सीधा अपने घर अर्थात राजगढ़ चला गया। दस हजार की संख्या वाली सेना का स्वामी (सेनापति) राजसिंह, शेखावत और खंगारोत जहाँ थे वे सभी

एकत्रित से वहीं खड़े रह गए। वे सभी छद्मघात करने वाले की तरह ताकते ही रह गए और विधाता के अच्छे लेख के सहारे वह प्रतापसिंह नरूका मुट्ठी से पारा फिसल कर निकले उस तरह उनके घेरे से निकल कर जीवित ही चला गया।

बाहिर के पंचन प्रताप कढिगो बिचारि,
सर्प हि गुमाइ लेखा कूटिबे कौं सज्ज बनि॥
मार लूट घाँघाँ तिन अधिक मचाई बिप्र,
सचिव निकासिबे कौं जोर की मरोर जनि॥
आये पुर चाहैं तिन्ह राजाउत रोहि अध्व,
पैठन न दै ए प्रतिकुल पच्छभाव भनि॥
व्है तदपि व्याकुल प्रजा सब पुकारी हाइ,
क्यौं न द्विज काढहु रे तुम हम भद्र तनि॥३४॥

नगर के बाहर तैनात सभी तत्पर पंचों ने तब सर्प के निकल जाने पर रेत पर बनी लकीर को पीटने के सबब सज्जित हो कर सभी ओर लूट-पाट मचानी आरंभ कर दी और बोहरा खुशालीराम को कारावास से निकालने हेतु घमण्ड से भरे नगर में आने लगे तब राजावतों ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। वे इन्हें अपना प्रतिपक्षी मानते हुए नगर में आने से रोकने लगे। ऐसी परिस्थितियों में प्रजा पुकार उठी कि अरे! हमारा तुम्हारा अर्थात् सभी का कल्याण इसी में है कि उस ब्राह्मण मंत्री को तुरन्त आजाद कर दो। उसे कारा से निकाल दो!

हाहाकार सुनि सु पिताके मत बाहिर व्है,
हेरि अवकास भगिनी को गूढ लै हुकम॥
सूनु लहुरो जो जसवंत को गुपालसिंह,
लैगो निज आलय सों बिप्रहिं छुराइ छम॥
ताहि सतकार सौं कितेक दिन राखि तत्थ,
ताके गेह पीछैं पहुँचायो जाइ सूरितम॥
बिप्लव निवार्यो तब बाहिर के पंचन पै,
पुरमैं न पैठन दै राजाउत्त सत्रुसम॥३५॥

प्रजा के द्वारा मचाये गए इस हाहाकार को सुन कर अपने पिता के मत से विरोध में जा कर जसवंतसिंह के छोटे पुत्र गोपालसिंह ने अवकाश देख कर अपनी बहिन से इस आशय का हुक्म लिया और वह समर्थ चूंडावत ब्राह्मण सचिव को कारावास से निकलवा कर अपने घर ले आया। यहाँ उसने कई दिनों बोहरा खुशालीराम की पूरी आवभगत करते हुए सम्मान पूर्वक रखा फिर उसने ब्राह्मण सचिव को उसके अपने घर पहुँचा दिया और इस तरह राज्य में होने वाले नये उपद्रव को उसने शान्त कर दिया। पर अभी भी नगर के बाहर के पंचों को राजावत नगर में प्रवेश नहीं करवाने पर आमादा थे क्योंकि वे सभी बाहर वालों को अपना शत्रु समझ रहे थे।

अरर न खोलैं ए झलाय के कुमर आदि,
अैबो चहैं नारव प्रताप को बहुरि अत्र॥
जाइ घर नारव न आयो देस काल जानि,
पापिन नैं जदपि बुलायो दै प्रचुर पत्र॥
बेला तिहिं प्रत्युत प्रताप को प्रताप बढ्यो,
लेख जवनेस के लहे छिति चमर छत्र॥
नालकी नृपत्व त्रिहजारी उपटंक आदि,
अैसैं घर बैठें भयो भूपति अघ अमत्र॥३६॥

झलाय का कुमार और उसके साथ वाले नगरद्वारों के किंवाड़ नहीं खोलने पर अड़ थे वे सभी तो प्रतापसिंह नरूका को वापस यहाँ लाने की बात करते थे अर्थात् वे चाहते रहे कि प्रतापसिंह शीघ्र वापस आ जाए पर वह नरूका तो अपने घर राजगढ़ जा कर बैठ गया और देश काल की परिस्थितियाँ समझ कर वापस ही नहीं आया। यद्यपि इन पापियों ने उसे बुलाने को कई पत्र भेजे। भाग्य के बल से उल्टा इधर प्रतापसिंह नरूका का प्रताप अधिक बढ़ा। बादशाह के लेख (लिखावट) से उसे जागीर, चँवर, छत्र और तोपों की सलामी के साथ राजा का पद मिल गया। यही नहीं उसे तीन हजारी मनसब भी मिल गया। वह पाप का पात्र प्रतापसिंह इस तरह अपने घर बैठे ही राजा बन गया।

पहिले समय कोपि बीकानैर भूप पर,
जोर डारि माँगे साह साहस के दम्म जब॥

रुप्पय कतिक लक्ख दैकैं अवसेस रहे,
तिनमैं प्रमेय दयो बंदी इक बंधु तब॥
देय सेस बहुरि दये न कछु व्याज करि,
कोल टरिबे तैं यो बलिष्ठ रुकिजात कब॥
नाम नहिं जान्यौं पै कबंध जो जवन कर्‌यो,
सो नजीब खान सुत मान्यौं सौंपि गेह सब॥३७॥

पूर्व में बादशाह ने किसी बात पर कुपित हो कर बीकानेर के राजा पर दण्ड कर दियाऔर जोर दे कर उस दण्ड की राशि को वसूलना चाहा। ऐसी परिस्थिति में बीकानेर के राजा ने दण्ड की कुछ राशि का भुगतान कर दिया और शेष राशि की एवज में अपने एक भाई को जामिन (प्रतिभू) दे दिया (अर्थात् शेष राशि दे कर मैं अपने भाई को छुड़ा लूंगा)। देय राशि के शेष रुपयों के लिए राजा बराबर बहाने बनाता रहा पर अवधि निकल जाने पर बलिष्ठ बोहरा भला कब रुकता है। नतीजा यह हुआ कि बीकानेर के राजा के उस अज्ञात भाई (ग्रंथकार को नाम पता न चल सका) को बादशाह ने तब मुसलमान बना दिया और उसे नया नाम नजीबखान दे दिया साथ ही घर (हवेली) दे कर उसे अपने पास दिल्ली में ही रख लिया।

बीकानैर नृपको सनाभि जो तजि स्वबंस,
कष्ट लहि कारा मैं कबंध बजिबो बिहाइ॥
कथित नजीबखान नामक नबाब कर्‌यो,
पुत्र जाकौं अंकथित साह को हुकम पाइ॥
या समय ताको उहाँ चलन बढ्यो अधिक,
अयुत तुरंगन सों बाहिनी कों अधिकाइ॥
जैपुर के जीतिबे कों साह को लै सासन सो,
अज्जपन लज्ज छोरि सज्ज भयो अनखाइ॥३८॥

बीकानेर का सनाभि (अर्थात् सात पीढ़ी के भीतर का भाई) जो अपने वंश के नाम को छोड़ गया। उसने कारावास में रह कर कष्ट सहे और राठौड़ कहलाने वाली अपनी अस्मिता को छोड़ा। इस नजीबखान को बादशाह ने नवाब बनाया। उसका पुत्र शाही हुक्म पा कर और अधिक कामयाब बना।

उसका दबदबा बढ़ा और वह दस हजार घुड़सवारों से बड़ी शाही सेना ले कर बादशाह की आज्ञा के साथ बढ़ा। वह अपना आर्यपन छोड़ कर कुपित हो सज्जित हुआ और जयपुर को जीतने चला।

केते कहैं सो सुत नजीब को नजब नाम,
सूचैं के नजीब सोही नाँ यह जनक नाम॥
दाबे देस दिल्लीके छुराइबे कों सज्जि दल,
प्रस्थित भयो सो देर जैपुर करन काम॥
साह सों लिखाइ दै कह्यो जो अधिकार सब,
नारव नरेस कों बुलाइ तानैं सह साम॥
दिल्ली छिति दाबी जाटसो तिहिँ अधिक दैकैं,
अमल प्रताप को करायो तहाँ अभिराम॥३९॥

कई लोगों का कहना है कि नजीबखान के इस पुत्र का नाम नजबखान था, वहीं कुछ लोगों का मत है कि उस स्वयं का नाम नजीबखान था उसके पिता का नहीं। सत्य कुछ भी हो वह वीर दिल्ली की दबाई हुई भूमि को छुड़ाने के सबब अपनी सेना के साथ सज्जित हो कर जयपुर को जीतने आया। इस निमित्त उसने बादशाह से लिखित में सभी अधिकार ले कर नरूका प्रतापसिंह को मेल्-मिलाप के लिए बुलाया। उसने नरूका राजा प्रतापसिंह को जितनी भूमि भरतपुर वाले जाटों ने दिल्ली की दबाई थी उससे अधिक भूमि प्रदान की और राजा प्रतापसिंह नरूका का उस पर अमल करवाया।

संबत के एकऊन बीसम सतक समै,
कतिक गये रु भये देखो नये राज्य कति॥
पुण्यापुर राघोगढ सोपुर नलपुरा दि,
ऐसैं बडे छोटे घनैं बिगरे प्रमत्त अति॥
लवपुर अलपुर ज्योंही टोंक जावरा रु,
पट्टनि पुरोग यों नये के भये भूमिपति॥
उक्त काल नारव प्रताप इनही मैं एह,
मिच्छन कों बंचिकैं महीप बन्यों छद्मपति॥४०॥

हे राजा रामसिंह! आप देखें कि संवत् उन्नीस सौ के शतक में अर्थात् विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दि में कितने ही राज्य खत्म हो गए और कितने ही नये राज्य स्थापित हो गए। पुणे, राघोगढ़, श्योपुर, नलपुर आदि ऐसे कई बड़े-छोटे राज्य बिगड़ गए। वहीं लाहौर, अलपुर (कदाचित् अलवर), टोंक, जावरा, झालरापाटन जैसे नये राज्य बने और उनके नये राजा स्थापित हुए। इसी काल में नरूका प्रतापसिंह भी उन लोगों में से था जो यवनों को ठग कर छद्यमति से राजा बन बैठा।

अल्प ग्रास याकैं पहिलैं हो मंचहेरी आदि,
तानै देस काल छल बल के सहाय तब॥
जोर लहि छोटे बडे बावन गढन जीति,
स्वीय कीनो दिल्ली सन दक्खिन प्रदेस सब॥
अलपुर राजगढ तिमहि तिजारा आदि,
याके बसबर्ती भये सहर अनेक अब॥
कर्मध्वज मिच्छ वा प्रताप कों सुहद कीनों,
जैपुरकी जीति लैन नजब रुक्यो न जब॥४१॥

जिस के पास पहले जीवन यापन जितनी ही मांचेड़ी की जागीर थी उसी प्रतापसिंह नरूका ने देश काल को समझ कर छल और बल से अपना प्रताप बढ़ाया और छोटे-बड़े बावन दुर्ग अपने अधिकार में कर लिये। दिल्ली से लगे दक्षिण में स्थित अलवर, राजगढ़ और तिजारा के साथ कई नगरों को उसने अपने अधीन बना लिया। यवन बने राठौड़ (नजीबखान) ने इसी प्रतापसिंह नरूका को अपना मित्र बनाया और वह जयपुर को विजित करने के अपने मंसूबे को पूरा करने को नहीं ठहरा अर्थात् बढ़ा।

दाबे कछवाहन जितेक उत दिल्ली देस,
जीति तिन्ह जैपुर भू जीतिबो नियत जानि॥
मित्र बहुरा तैं भेदि सचिव महावत कौं,
मित्र राजाउत्तन नयो जो लयो उर मानि॥
संग तस दैकैं सब बैभव मुसाहब को,
तीन लाख मुद्रा दै उपायन कौं नय तानि॥

पठयो जवन सो प्रतारक जवन पास,
भाख्यो जाइ टारो भय व्है हैं नतो छिति हानि ॥४२॥

जब नजबखान ने कछवाहों द्वारा दिल्ली की दबाई हुई सारी भूमि को फिर से अपने अधिकार में कर लिया अर्थात् उसे फिर से शाही अधिकार में ला दिया तब जयपुर वालों ने सोचा कि अब तो यह वीर इस तरह जयपुर को भी जीत लेगा। ऐसे में उन्होंने बहुरा खुशालीराम की सहायता से महावत सचिव (फीरोजखान) को अपने साथ मिलाया। राजावतों ने भी नये बने इस मित्र को हृदय से लगाया। फिर सभी ने नीतिपूर्वक मिल कर मंत्रणा की और तीन लाख रुपये नजबखान को फौज खर्च के देने तय कर ताड़ना करने वाले यवन (नजबखान) के पास इस यवन (महावत फीरोजखान) को भेजा। सभी ने फीरोजखान से कहा कि उस यवन के पास जा कर भय का निवारण करो अन्यथा जयपुर को भूमि की हानि हो जाएगी।

रानी को निदेसलै सहाय जसवंत राखि,
तब राजाउत्तन महावत यों भेज्यो ताम॥
प्रीतिपत्र भेज्यो संग यौं लिखि प्रताप प्रति,
करिये नरेस को रु मित्रन को यह काम॥
जैबोहु न भावतो महावत के गेह जाको,
सो अब समुह आइ साधिबे कौं छल साम॥
मिलि उरलाइ एक गज पैं महावत सौं,
बाम अध बैठि लैगो मीन ज्यों बड़िस बाम॥४३॥

राजमाता की आज्ञा ले कर जसवंतसिंह को अपना सहायक मानते हुए (तब) राजावतों ने महावत (फीरोजखान) को वहाँ भेजा और उसके साथ उन्होंने एक स्नेह से भरा पत्र लिखकर प्रतापसिंह नरूका को भेजा कि आप अब अपने मित्रों और कछवाहा राजा का यह काम बनवाने में मदद करें। जिसे महावत के घर जाना भी नहीं सुहाता था वही प्रतापसिंह चल कर उसके सम्मुख आया क्योंकि उसे छल-कपट से यह संधि जो करवानी थी। मिलने पर महावत फीरोजखान को गले से लगा कर नरूका उसके साथ एक ही हाथी पर बैठा। यहीं नहीं प्रतापसिंह उसके बाईं और बैठा और उसके आसन

से नीचे वाले आसन पर। इतनी इज्जत से वह महावत को हाथी पर ले कर चला जैसे मछली कांटा को ले जाए।

बस्त्रालय आइ तास आसन अधर बैठि,
पीछैं जाइ संग लै जवन कौं जवन पास॥
आन्यौं उपहार उक्त भेट सु कराइ इभ,
अस्वन समेत रु दिखाइ आगमन आस॥
पीछे आइ भाखी यौं महावत प्रताप प्रति,
दाबे देस जैपुर के छोरहु जिम स्वदास॥
लेहु नित्य मुद्रा सतप्रंदह नृपालय तैं,
व्हैन जिम हे प्रबुद्ध आपुनैं मिलत हास॥४४॥

शिविर में पहुँचने पर डेरे में भी उसे गद्दी पर बिठाया और स्वयं नरूका नीचे बैठा। फिर वह इस यवन (महावत) को उस यवन (नजीबखान) के पास ले कर गया और महावत जो भेंट जयपुर से लाया था वह सारी सामग्री नजीबखान को नजर करवाई। हाथी और घोड़ों ही भेंट दिलवा कर कहा कि अभी तो और भी भेंट की सामग्री ला कर नजर की जाएगी। नजीबखान से मिल कर वापस शिविर में आने पर फीरोजखान ने प्रतापसिंह से कहा कि आपने भी जो जयपुर की भूमि दबा रखी है उसे छोड़ दें तो हम राजा से पन्द्रह सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से आपको दिलवा दें! यदि आप ऐसा कर देंगे तो हमारे मिलने को लोग उपहासपूर्ण नजर से नहीं देखेंगे।

जोरि तँहँ बंचन प्रतापनैं कपट जाल,
घर बिधि ठानि घोर करन बिसासघात॥
लोभी उक्त मानि ताकौं आगरानगर लाइ,
पिहित उपाय कर्‌यो ताहीको पुनि निपात॥
तोप गज बज द्रव्य आदिक बिभव ताको,
दाबि सब राख्यो प्रतिकूलता दृढ दिखात॥
अैसेही प्रकार सेखाउत्तन के देस इत,
ओज फैल्यो तिनको मनोहरनगर आत॥४५॥

यह सुनते ही नरूका प्रतापसिंह ने कपटपूर्वक जाल बुना। महावत को भरोसा दिला कर विश्वासघात करने की सोची। नरूका तब अपनी योजना

मुजब उस लोभी फीरोजखान को ले कर आगरा आया और यहाँ गुप्त रीति से उपाय कर उस महावत को मरवा डाला। यही नहीं नरूका ने तब उसके साथ लवाजमें में आये हुए हाथी, घोड़े, तोपें और खजाने सहित सभी कुछ अपने अधिकार में ले लिया और फिर से प्रतिकूल रुख का प्रदर्शन कर डाला। इसी तरह नरूका ने शेखावतों के ठिकाने हड़प लिये और उसके अधीन कई परगने हो गए। उसने मनोहरपुर के पास तक की भूमि अपने अधिकार में कर अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया।

तिनकों दबावन फबावन सचिवता रु,
राजाउत्त कुमर चबावन व्है जमराज॥
पत्रन मिलाइ निज मोचक सुहि गुपाल,
कीनों खुसहालीराम बहुरा लखहु काज॥
रानीकों मनाइ बखतावर हनन रीति,
टाटी को सो ओट सेखावाटी को बिरचि व्याज॥
बाहिर के बीर भेजिबे कों पुर मैं बुलाइ,
सीखदैन तिनकों सज्यो अब कपट साज॥४६॥

इधर शेखावतों को दबाने और अपने मंत्री पद की शोभा बढ़ाने के लिए खुशालीराम ने यमराज के सदृश हो कर झलाय के कुमार को चबाने की योजना बनाई। पत्र व्यवहार से उसने अपने (बोहरा खुशालीराम को) छुड़ाने वाले गोपालसिंह चूंडावत को अपने पक्ष में किया और उसके बाद बोहरा खुशालीराम ने क्या कार्य किया उसे देखें। उसने राजमाता को मनाया और झलाय के कुमार बख्तावरसिंह को मारने के लिए शेखावाटी के बहाने की आड़ से शिकार खेला फिर उसने कपट से नगर के बाहर वाले सैनिकों को नगर में बुलवाया ताकि शेखावाटी पर भेजने के लिए उन्हें विदाज्ञा दी जा सके।

नाथाउत्त निखिल समज्ज्यासद्म राखे सज्ज,
चक्रपति खंगारोत्त ए थित जलेबचोक॥
कुमर को काका बेग तबहि बुलायो वह,
घातक बिचारि इन्ह पास राख्यो ताही ओक॥

राजद्वार बाहिर बजार मैं सकल सेना,
राखी करि सज्ज कढि जाइ तो रचन रोक॥
सरद की डोढी पंथ राउत्त पठायो सद्म,
लैन बाँधि राखी दुहुँघाँ भरि प्रबल लोक॥४७॥

उसने अपनी योजनानुसार नाथावतों को सभा-भवन में सज्जित कर तैनात किया। वहीं सेनापति (राजसिंह) और खंगारोतों को जलेब चौक में नियुक्त रखा। इसके बाद उसने कुमार (झलाय) के काका को घातक जान कर शीघ्र ही बुलवाया और उसे भी उसी स्थान पर तैनात किया। राजमहलों के बाहरी द्वार से बाहर बाजार में सारी सेना को सज्जित कर खबरदार किया कि वह उधर से नहीं जाने पाये। फिर उसने देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह चूंडावत को सरहद की ड्योढी (जयपुर के महलों की ड्योढी का नाम है) के रास्ते से अपने घर भेजा। आगे रास्ते के दोनों ओर उसने अपने आदमियों को पंक्तिबद्ध कर रखा था।

पुरमैं अवाई यौं मनोहरपुर पुरोग,
पीछे लये थान सेखाउत्तन खिनहिँ पात॥
यातैं सेखावाटी पैं इहाँ के भट ओ अनीक,
आये सीखलैन उहाँ जय करिबे कों जात॥
जास मैं कुमार व्है कुमार नृप की हजूर,
सीखलै बिगत संक आपुनी हवेली आत॥
संसद निकेत हुते तिनकैं बिधेय साधि,
सीमातैं नृजान बैठि निकस्यो अकसमात॥४८॥

नगर में उसने यह प्रचारित किया कि मनोहरपुर आदि स्थानों को अवसर पा कर शेखावतों ने हथिया लिया है इसलिए अपनी भूमि को फिर से अपने अधिकार में लेने के लिए और शेखावतों को हराने के लिए जयपुर की सेना और सामन्त योद्धा भेजे जा रहे हैं। वे प्रस्थान करने से पूर्व विदाज्ञा लेने यहाँ आ रहे हैं। फिर जिस समय झलाय का कुमार बख्तावरसिंह जयपुर के बालक राजा से विदाज्ञा ले कर अपनी हवेली जाने को रवाना हुआ। सभा के भवन में जो उपस्थित थे उनसे उचित रीति से अभिवादन कर वह पालकी में सवार हो अकस्मात वहाँ से चला।

आवत जलेबचोक अंतर कुमर एह,
कटकअधीस राजसिंह यौं दिय कहाइ॥
आपतैं न छानी हम जात अबही पे इहाँ,
रावरो रहस्य कछु इच्छत करहु आइ॥
कुमर कहाइ तुम क्रमहु हवेली होइ,
एतेमै हरोल ओक देख्यो लोक उफनाइ॥
बाहिर बजार कीहु सुद्धि पहुँची व्हाँ सुनौं,
कुसलपिनाती आज कुसल न जान्यों जाइ॥४९॥

झलाय के कुमार की पालकी जब जलेब चौक के पास पहुँची तो वहाँ सेनापति राजसिंह ने कहा कि आपको तो पता है कि हम अभी (मनोहरपुर की ओर) प्रयाण कर रहे हैं पर मैं एकान्त में आपसे मिल कर कुछ आवश्यक बात करना चाहता हूँ। इस पर कुमार ने कहलाया कि सेनापति से कहो कि वह जाते समय मेरी हवेली से होता हुआ जाए जिससे आवश्यक बात वहीं हो जाएगी। यह कहला कर कुमार ने कहारों से पालकी बढ़ाने का कहा पर इतने में सामने के स्थान पर लोगों का हुजूम बढ़ता हुआ नजर आया। इसी समय बाजार में चल रही बात भी उसके कानों तक पहुँची जिसमें चर्चा थी कि आज कुशलसिंह के पोते (कुमार बख्तावरसिंह) का कुशल क्षेम रहना नहीं नजर आ रहा।

बेनीतक आपुनौं मुराइ सो सुनत बेर,
बोल्यो टेरि आवत मैं मंत्रकरिहैं अबहि॥
चोक बिच चोकी सिकता को कोट छाती सम,
लोक बहु ताके द्वार मारन कों सज्ज लहि॥
कोटतैं नृजानहिँ भिराइ यह पैठो कूदि,
ओरन कों छोरि ढिग लीनो राजसिंह अहि॥
पूगे संग पंद्रह तदीय भट ताही पंथ,
कुमर सुनाई कटकेस अब देहु कहि॥५०॥

बिना नीति से अपना नृजान वापस मोड़ना सुनते ही कुमार ने जोर से

कहा मैं आ रहा हूँ यहीं गंत्रणा हो जाएगी। इतने में छाती तक ऊँची धूड़कोट (अन्दर का आहाता) से घिरे चौक के मध्य वाली चौकी से कुमार ने देखा कि आगे द्वार पर कई सज्जित लोग उसे मारने की ताक में हैं। यह देखते ही उसने अपनी पालकी को कोट से सटवाया और कुमार कूद पड़ा और कूदते ही उसने अन्य को छोड़ कर राजसिंह रूपी सर्प को समीप लिया। तब तक कुमार के पक्ष के दस-पन्द्रह वीर इसी रास्ते से वहाँ पहुँचे। पास जा कर कुमार ने सेनापति राजसिंह से पूछा कि कहो, क्या बात है ?

काक सत्रुसाल ढिग देखि पूछ्यो आये कब,
भाख्यो तिहिं याहीबेर आयो द्रुत हे भतीज॥
राजसिंह भाख्यो आप क्यों यह बिगारो राज्य,
बार कब खात हाहा खेत मैं फलित बीज॥
दिवस बिभावरी घटावत चलन देखो,
सीतो रन रावरी खटावत खलन खीज॥
परगनाँ दाबे आठ अयुत प्रमेय धर-,
नीस के निदेस बिन को करैं यों हठ धीज॥५१॥

तभी कुमार की नजर पास ही खड़े अपने काका शत्रुसाल पर पड़ी तो कुमार ने पूछा आप कब आए? इस पर काका ने प्रत्युत्तर दिया कि हे भतीजे! मैं अभी पहुँचा ही हूँ। तभी राजसिंह ने कहा कि हे कुमार! आप इस जयपुर के राज्य का नाश करने पर क्यों तुले हैं? खेत में अंकुरित बीज को खेत की बाड़ कब खाती है। दिन-रात आप इस राज्य को घटाने पर क्यो आमादा है? अर्थात् क्यों बरबाद करते हैं? रही आपकी खीझ तो हे कुमार! वह खीझ तो रणभूमि में शत्रु पर शोभा देती है। आपने राजा की बिना इजाजत राज्य के अस्सी हजार की आमदनी वाले परगने दबा लिये हैं। ऐसा हठ आपको शोभा देता है क्या?

बह्मानादि गाम तीन अयुत को दाब्यो द्रंग,
सोपै भाखि भोजन कौं चाकरी बिनुबिचारि॥
पिप्पलदा संटैं पंच अयुत प्रदेस पुनि,
सासन बिनाँहि दाबे सासनसम सम्हारि॥

कीलि बहुरा कौं दुष्ट नारव कौं मित्र कीनौं ,
मित्र कीनौं जानैं सो महावत सचिव मारि॥
बैभव धनी को दाबि राख्यो स्वीय सम्मति सौं,
को फल लहोगे अहो पापिन मैं बंट पारि॥५२॥

यही नहीं तीस हजार की आमदनी वाले बामणा गाँव को और दबा लिया और आप कहते हैं कि यह तो हमारी पेट भराई है, बिना ही चाकरी भोजन पाने का नियम कैसा? राजसिंह ने आगे और उलाहना देते हुए कहा कि आपने पिप्पलदा की एवज में पचास हजार की आमदनी वाली भूमि हड़प ली और बिना ही राजा की आज्ञा के इस जागीर को सांसण समझ कर भोग रहे हैं। आपने उस भले आदमी खुशालीराम बोहरा को तो कैद में डाला और नरूका (प्रतापसिंह) को अपना मित्र बना रखा है। यह वही दुष्ट है जिसने महावत फीरोजखान से मित्रता कर उसे मार डाला और उसका सारा वैभव छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। इसमें भी आपकी सम्मति थी। ऐसे पापियों के पाप में साझा कर आप भी कौनसा अच्छा फल पा लेगें ?

बैन कटकेस को यहै सुनि कुमर बोल्यो,
अबहि सुधारो आप बिरच्यो हम बिगार॥
काका की कटारी बही पीठि पैं इतेक बिच,
क्रोड़ बखतावर को भेद्यो सहसा दुसार॥
प्रद्रवत प्रानन लै जैपुर चमूँप जब,
तीजे पैंड पूगि ताकैं प्रहत कर्‌यो प्रहार॥
कुमर कटारी राजसिंह हिय भेदि कढी,
प्रमदा कटाक्ष जैसैं छल्लन के उरपार॥५३॥

सेनापति राजसिंह के ऐसे कटु वचन सुन कर कुमार बख्तावरसिंह ने कहा कि अब आप इस राज्य को सुधार लेना। हमने तो अब तक इसका बिगाड़ ही किया है। इस तरह बोलचाल बढ़ी कि तभी काका ने पीठ पीछे से अपनी कटारी मारी उस दो धार वाली ने बख्तावरसिंह की छाती (भुजान्तर) को बेध डाला। यह देखकर जयपुर का सेनापति प्राण बचा कर भागा पर अभी वह तीन कदम ही ले पाया था कि कुमार का मर्मांतक

प्रहार उस पर हुआ और झलाय के कुमार की कटारी राजसिंह के हृदयस्थल के यों पार हो गई जिस तरह किसी स्त्री के कटाक्ष छैलों (रसिकों) के दिल को चीर जाते हैं।

क्रोड़ कटकेस को बिदारि पारि यौं कुमर,
बैठो चढि ऊपर निजासन तिहिँ बनाइ॥
रंगि सुत्रसोनित सौं मूछन कौं भाख्यो राज्य,
जात बिगर्यो जो यौं सुधार्यो भलो अपनाइ॥
ऊरध अधर अैसैं दुहुँन बिहाय असु,
आयतिउदर्क जथा उद्यम जस जनाइ॥
सत्रुसाल पारद लौं सिटकि सिटाइ स्यार,
मारि याकौं ताहीखिन गेह गो सुर मनाइ॥५४॥

सेनापति के भुजान्तर को यों चीर कर भूमि पर गिराने वाला कुमार तत्काल राजसिंह की देह को अपना आसन बना कर उस पर चढ़ बैठा। फिर राजसिंह के रक्त से अपनी मूँछों को लाल-लाल रंगता हुआ बोला कि राज्य जो बिगड़ रहा था उसे आपने इस तरह भला सुधारा। थोड़ी ही देर में ऊपर वाले अर्थात् कुमार के और नीचे वाले अर्थात् राजसिंह दोनों के प्राण पखेरु उड़ गए और आने वाले समय में अपने उद्यम से अपने यश का प्रसार कर वे दोनों निस्तेज हो गए। वह लज्जित शियार शत्रुसाल तब चुपचाप इनको मार कर उसी क्षण पारे की तरह वहाँ से फिसल लिया और मन ही मन देवताओं की कृपा से जान की खैर मनाता हुआ अपने घर भाग आया।

त्यौं भट पचीस इत उत के परे तँहँ,
सपिंड असपिंड सगोत्र असगोत्र संग॥
द्विगुन समीप संख्य घायल भये दुदिस,
आयुबल केते बचे तिन गैं अबस अंग॥
बनि के धनिक राखि नाव धनकाज बोरि,
जियन चहैं ज्यौं मूढ नाविक पकरि मंग॥
बिद्ध बखतावर यौं पहुँचि पलावत कौं,
रंग राजसिंह राख्यो मुँछन कुपित रंग॥५५॥

इस भिड़ंत में दोनों पक्षों के करीब पच्चीस योद्धा मारे गए जिनमें सपिंड, असपिंड, सगोत्र और अगोत्र बांधव थे और इससे दुगुनी संख्या में अर्थात् पचास योद्धा दोनों ओर के घायल हो कर गिरे। अपने घायल शरीरों और बचे हुए अंगों को संभालते हुए वे योद्धा अपनी शेष आयु के बल पर बच रहे जैसे व्यापार करने को नाव रखने वाले धनवान बनिक नाव डुबते समय अपना धन माल छोड़ कर केवट की तरह स्वयं को बचाने हेतु नाव का मस्तक (भंग) पकड़ते हों। बेधे हुए शरीर वाले झलाय के कुमार बख्तावरसिंह ने युद्ध से भागते हुए सेनापति राजसिंह को पकड़ा। वह धन्य है कि उसने कुपित हो कर राजसिंह के रंग को नहीं रखा (अर्थात् नहीं भागा) और उसके रक्त के रंग से अपनी मूँछों को रंगा।

पीछैं खंगारुत्त न उपेत नाथाउत्तन नैं,
चुंडाउत काढे अधिकार अपनौं बिचारि॥
राख्यो मुख्यमंत्री बहुरा सो खुसहालीराम,
धीधन जो जाके पच्छ सोही दच्छ हिय धारि॥
रानी के प्रकोष्ट निज जामिक सुभट राखि,
रैन सुरतान सज्ज सस्त्र अपनैं सम्हारि॥
पित्थल नरेस सह सोदर प्रताप पोत,
माँहिं तैं निकासि माँहिं राखे अन्य मद मारि॥५६॥

पीछे से खंगारोतों और नाथावतों ने मिल कर राज पर अपना अधिक अधिकार सोचते हुए जयपुर से चूंडावतों (रावत जसवंतसिंह और उसके पुत्रों) को निकाल बाहर किया और बोहरा खुशालीराम को मुख्यमंत्री बनाया। जो बुद्धिमान होने के साथ ही उनके पक्ष में था, यही सोच कर इस दक्ष व्यक्ति को यह जिम्मा सोंपा। राजमाता की ड्योढ़ी पर अपने भरोसे के प्रहरी तैनात कर दिये। फिर रत्नसिंह और सुरतानसिंह दोनों शस्त्रों मे सज्जित हो कर गए और महलों से बाल नरेश पृथ्वीराज को छोटे भाई प्रतापसिंह सहित निकाल लाये फिर उन्हें अपनी (निगरानी) नजरों में रखा।

पावै नाहिं मिलन प्रसू सुत परस्पर ज्यौं,
आपुनैं भटन बीच भ्राता राखि यौं उभय॥

करन लगे ए बिप्र सम्मति सौं राजकाज,
राजाउत्त काढे सेस बाजी जिम हीन रय॥
तापें इन नारव प्रताप कौं मिलाइ तब,
द्योसापुर लुट्यो दोरि अनय मैं जानि अय॥
नगर निवाई जो झलाय के भटन जाइ,
जेर निज कीनौं ठानि ग्रामन समेत जय॥५७॥

उन्होंने राजा और उसके भाई दोनों बालकों के पास अपने योद्धाओं को तैनात कर यह निश्चय किया कि राजा और उसकी माँ आपस में मिलने न पायें, फिर वे ब्राह्मण मंत्री बोहरा खुशालीराम की सम्मति से राज-काज करने लगे। उन्होंने राजावतों को भी वहाँ से निकाल बाहर किया जिस तरह वेगहीन घोड़े को तबेले से निकाल दिया जाता है। इस पर राजावतों ने अनीति में ही अपना भाग्योदय सोच कर प्रतापसिंह नरूका को अपने पक्ष में मिलाया और दौसा नगर को लूट लिया। उधर झलाय के योद्धाओं ने जा कर निवाई नगर को गाँवों सहित जीत कर अपने अधिकार में कर लिया।

कीर्त्तिसिंह साहस झलाय को जरठ काय,
कुटिल हुतो जो अंध तैसे महापाप करि॥
सूनु बखतार सो सोयो सूर सज्जा सुनि,
अंधता बढाई अब रोइरोइ बोध अरि॥
बेगहि मर्‍यो सो लोभतैं तिम कुल बिगारि,
ताहूकै पिनाती उनमत्त भयो पापपरि॥
जाहि प्रभु जानौं मर्‍यो आपुनें समय माँहिं,
सासक झलायसो बहादुर भे नै बिसरि॥५८॥

झलाय का शासक जो जरठ (अतिशय वृद्ध) शरीर वाला और अंधा था उस कुटिल और नीति के शत्रु कीर्तिसिंह ने अपने पुत्र बख्तावरसिंह के रणशय्या पर सोने के समाचार सुन कर रो-रो कर अपनी अंधता और बढ़ाई। वह पूर्व जन्म के महापाप के कारण तो अंधा हुआ ही था। इस जन्म में भी लोभवश अपने कुल की रीति को बिगाड़ने वाला हुआ। वह ज्ञान का शत्रु अपने पुत्र के मरने के सदमें में रो-रो कर शीघ्र ही मर गया। उसका उत्तराधिकारी

पोता तब उन्मत्त हो कर पाप करने पर उतारू हुआ। हे राजा रामसिंह! उसे आप अपने जीते जी मरा हुआ समझें क्योंकि झलाय की गद्दी पर बैठने वाला वह बहादुरसिंह नीति को भूलाने वाला मूर्ख था।

पीछैं कतिबर्ष खेड़ हाथ तैं झलायपुर,
आलंबनहीन लह्यो दीनलौं दुख अछेह॥
ईरखा तैं तबहु झलायपुरवारे द्विज,
दनि बहु मारे करिडारे बहु ब्यंग देह॥
केही भ्रष्ट पारे जवनन तैं मुख थुकाइ,
गेरी तिनकी तिय जनंगम जनन गेह॥
मनुज को मारिबो कुतूहल पतित मान्यौं,
ऐसो भयो प्रथित बहादुर कथित एह॥५९॥

बाद में कई वर्षों तक अपनी झलाय की जागीर खो कर वह आधारहीन हो कर रहा। उसने दीन व्यक्ति की तरह बहुत दु:ख झेला पर ईर्षावश उसने झलाय नगर के ब्राह्मणों पर बड़े अत्याचार किये। कई ब्राह्मणों को उसने मारा और कई ब्राह्मणों के नाक काट डाले। कई ब्राह्मणों के मुँह में यवनों से थुकवा कर उनका धर्म भ्रष्ट किया। कई ब्राह्मणों की स्त्रियों को चांडालों के घर भेजा। मनुष्य के मारने को एक खेल समझने वाला ऐसा बहादुर और पतित वह बहादुरसिंह कहलाने वाला प्रसिद्ध हुआ अर्थात् वह बहादुरसिंह ऐसा था जो क्रूरता को ही बहादुरी गिनता था।

भावी सो उंदत बर्तमान अब भाख्योजात,
रूष्ट खुसहालीराम इनकौं बिगारि इम॥
दाबे बखतावर जे दाबे पुनि द्रंग देस,
बिद्यागुरू भट्ट बहुरा ए जुरे एक जिम॥
दोउन के नाम के चलाये व्यवहार दल,
कूरम कितेकन कै न रुची तथा प्रतिम॥
पत्तिन मैं राखे द्वै बरूथ दादूपंथिन के,
सादिन मैं राखे दुव दक्खिन अनीक सिम॥६०॥

यद्यपि यह वृत्तान्त आगे घटित होगा पर यहाँ (वर्तमान में) कहा जा रहा है कि तब रुष्ट बोहरा खुशालीराम ने जयपुर के उन सभी गाँवों और परगनों को जिन्हें बख्तावरसिंह ने दबाया था उन्हें वापस झलाय के अधिकार से निकाल लिया। पूर्व राजा के विद्यागुरु सदाशिव भट्ट और बोहरा खुशालीराम दोनों मिल कर एक हो गए। जयपुर के राज में तब इन्हीं के नाम से पत्र जारी होने लगे। यह बात कछवाहों को नहीं पची। वे उन्हें अपने बराबर नहीं होने देना चाहते थे पर उन दोनों ने राज की पैदल सेना में दो टुकड़ियाँ दादूपंथियों की बना दी और दोनों ने सवारों की सेना को मराठा सेना जैसी सेना बना दी उसके लिए उन्होंने दो मराठों की सेवाएँ ली।

इंगलिया अंबा सातसहँस तुरंगन तैं,
कीनौं निज आश्रित फिरंटन बिजय काज॥
दक्खिनी चालुक्य जसवंतराव नाम दूजो,
बाउल बजत सोपै सप्तिन इते समाज॥
सूचित पदाति सादी तंत्र निज राखि तिन,
काढि राजाउत्तन कौं लरि रु लुपाइ लाज॥
गेरि भय पीछे लै निवाई भगवंतगढ,
जैपुर को अमल जमायो राम नरराज॥६१॥

बोहरा और भट्ट दोनों ने तब आंबाजी इंगलिया को उसके सात हजार घुड़सवारों के साथ अपना आश्रित बनाया अर्थात् उन्हें जयपुर की सेना में रखा। वहीं दक्षिण के ही जसवंतराव चालुक्य को जो अवर नाम से बावला भी कहलाता था को उसके सात हजार की संख्या वाली सवार सेना के साथ रखा। इस तरह अपने भरोसे की सवार और पैदल सेना बनाकर दोनों ने सारे राजावतों को जयपुर से लड़ कर निकाल बाहर किया। नई सेना का भय प्रसार कर हे राजा रामसिंह! उन दोनों (भट्ट और बोहरा) ने निवाई और भगवंतगढ़ पर भी जयपुर का फिर से अमल करवाया अर्थात् उन्हें वापस जीत कर जयपुर के अधीन बनाया।

पित्थलनरेसहिँ चढाइ ए सचिव पीछैं,
विद्यागुरू भट्ट अरु बहुरा बल बनाइ॥

संग भट नाथाउत खंगारोत आदि सजि,
जाल जरि बिंट्यो मनोहरपुर हिँ जु जाइ॥
पहिलैं मनोहरपुराधिप सगतसिंह,
नाथ निज अंगज उपेत छोनि छक छाइ॥
दर्प कछु कीनौं ज्येष्टभाव कहि जैपुर तैं,
माधव महीप समै दायादत्व दरिसाइ॥६२॥

इसके बाद अपने राजा पृथ्वीराज के नेतृत्व में विद्यागुरु सदाशिव भट्ट और बोहरा खुशालीराम ने एक बड़ी सेना सज्जित की। इस सेना के साथ नाथावत और खंगारोत भी सज्जित हुए। इस सेना ने तुरन्त मनोहरपुर को जा घेरा और तोपें दागी। पूर्व में मनोहरपुर के स्वामी शक्तिसिंह (सगतसिंह) और उसके पुत्र नाथसिंह ने मिल कर अपने दर्प का प्रदर्शन करते हुए कुपित हो कर कहा था कि हम जयपुर से पाटवी हैं और कछवाहा राजा माधवसिंह के सामने अपने को हिस्सा माँगने वाले भाई बताया था।

तबही सगतसिंह नाथ ए पिता तनय,
माधवरनरेस काढे दोउन को मदमारि॥
अमरसर रु मनोहरपुर थान उभै,
सीमा सब सहित छुराये छम डर डारि॥
बर्तमान मैं बलि उभै ए आइ पैठे अब,
राजा कों चढाइ लाइ मंत्रिन नैं रचि रारि॥
दै भय पिता सुत वे पीछे निकसाइ दये,
अमल जमायो पीछो आपुनौं जस उबारि॥६३॥

उस समय भी इस अनावश्यक माँग को देख कर राजा माधवसिंह ने शक्तिसिंह और उसके पुत्र नाथसिंह को दर्पहीन कर जयपुर से निकाल दिया था। राजा ने उन्हें धमका कर तब अमरसर, मनोहरपुर दोनों स्थानों को उनकी सीमा सहित छीन लिया था। पर वर्तमान काल में दोनों पिता-पुत्र आ कर वापस मनोहरपुर पर काबिज हो बैठे। अतः राजा पृथ्वीसिंह की अगुवाई में सचिवों ने यह युद्ध रचा और पिता को पुत्र सहित फिर से भगा कर मनोहरपुर पर वापस जयपुर का अमल जमाया।

पित्थल नरेस की सवित्री इत व्याधि पाइ,
जैपुर असाध्य भई ताकी सुद्धि जानतहि ॥
मंत्री द्वेहि तासों द्वै हि पुत्रन मिलैबो मानि,
लाये मोरि भूपतिकों प्रत्यह प्रयान लहि ॥
अंतेउर आपुनों प्रबंध करि द्वैही पुत्र,
माता सों मिलाये कहि आये लाये जीति महि ॥
तीजे दिन तासों तज्यो चुंडाउति काय तिम,
साधारन रीति भयो कृत्य पिछलो सबहि ॥६४ ॥

उधर राजा पृथ्वीसिंह की माता रोगग्रस्त हो गई। जब जयपुर से राजामाता की असाध्य बीमारी की खबर आई तो दोनों मंत्रियों नें सोचा कि ऐसे समय में राजमाता से दोनों बच्चों का मिलवाना लाजमी है। यह सोच कर मनोहरपुर से बालक राजा पृथ्वीसिंह को साथ ले कर दोनों मंत्री रात-दिन चल कर जयपुर आए। यहाँ रनिवास में अपना प्रबंध कर दोनों पुत्रों को ले जा कर उनकी माँ से मिलवाया और कहलाया कि हम मनोहरपुर की भूमि विजित कर लौटे हैं। तीसरे दिन चूंडावत रानी ने शरीर त्याग दिया। उनकी सारी अन्तिम क्रियाएँ साधारण रीति से सम्पन्न करवाई गईं ।

जाट जवनन कै मच्यो यों पुर डिग्घ जुद्ध,
पूगो व्है तटस्थ तँहँ नारव पता नृपहु ॥
जैपुर के तंत्र दक्खिनी जो जसवंतराव,
बाउला सो चालुकहु गो तँह सदर्प बहु ॥
मंत्र करि बिजन पता रु जसवंत मिलि,
करट कनीनिकालौं द्वै घाँ बनिसूचकहु ॥
मायापटु जट्टन तैं पिहित मिलाइ मन,
मिच्छन तैं प्रकट मिले ही रहे मंत्र महु ॥६५ ॥

इधर इन्हीं दिनों डीग में जाटों और यवनों के मध्य तनातनी बढ़ कर युद्ध के हालात बन गए। तब राजा प्रतापसिंह नरूका वहाँ तटस्थ बन कर पहुँचा। इधर जयपुर से दक्षिणी जसवंतराव चालुक्य अथवा बावला भी अपने साथियों सहित दर्प से भरा वहाँ (डीग) पहुँचा। यहाँ एकान्त में जसवंतराव

बावला और प्रतापसिंह नरूका ने आपस में मंत्रणा की और काक पक्षी के नेत्रों की पुतली के समान दोनों दिशाओं के सूचक बन गए। उन्होंने मायापति जाटों से तो गुप्त रूप से मन मिलाया और यवनों से प्रकट में मीठे बोल कर अपनी प्रीति दरसाई।

मंत्री बहुरा नैं तब जाइ तँहँ मिच्छन सौं,
कामाँपुर पीछो लयो मंग्यो बसु भेट करि॥
बचन कलंबन प्रताप को हृदय बेधि,
आयो बिप्र जैपुर यौं लै जस दबात अरि॥
खिजि इत जुज्झत नबाब सु नजबखान,
डिग्घगढ पैठो जाइ भाजि गये जट्ट डरि॥
सूनु लहुरो जो रविमल्ल को नवलसिंह,
जट्टराज सोतो पहिँलैं गो काल ज्वाल जरि॥६६॥

इसी समय जयपुर से मुख्यमंत्री बोहरा खुशालीराम ने डीग जाकर यवनों से वार्तालाप किया और मुँह माँगा धन दे कर कामां नामक नगर म्लेच्छों से वापस लिया। वहीं अपने वचन रूपी बाणों से राजा प्रतापसिंह नरूका का हृदय बेध कर वह ब्राह्मण सचिव शत्रुओं को दबाने का यश अर्जित कर वापस जयपुर लौटा। तभी इधर खीझ कर नवाब नजीबखान डींग के दुर्ग में जा बैठा जिससे डर कर वहाँ के जाट शासक भाग गए। सूरजमल जाट का छोटा पुत्र नवलसिंह जो यहाँ का राजा था वह तो इससे पूर्व ही काल के ज्वाल में जल गया अर्थात् मर चुका था।

पाकपन केसरी तदीय सुत पायो पट्ट,
काका रनजीत कौं न भायो यह नीति क्रम॥
भावीकाल याहीतैं भयो रन भरतपुर,
दूजी बेर दीनों जो छुराइ अंग्रेजन छम॥
पीछो जयनैर इत नारव पता प्रबिसि,
सूमयो पुनि मायावी समस्तन कौं सुद्ध सम॥
बंचक कौं भायो सु दुवायो पटा बिप्रनैं,
पित्थल सौं भाख्यो स्वामि सेवक पता परम॥६७॥

उसके पुत्र केसरीसिंह ने वृद्धावस्था में उत्तराधिकार में गद्दी पाई पर यह बात उसके काका रणजीतसिंह को नागवार गुजरी। वंशानुगत उत्तराधिकार पाने का यह नीति सम्मत रिवाज उसके गले नहीं उतरा। यही कारण रहा कि भविष्य में (आने वाले समय में) भरतपुर का युद्ध हुआ और समर्थ अंग्रेजों ने उनसे भरतपुर छीन लिया। इधर वह प्रतापसिंह नरूका वापस जयपुर आया पर इस बार वह प्रपंची (मायावी) सभी लोगों को शुद्धमना लगा। ब्राह्मण मंत्री ने भी तब कछवाहा राजा से यह कह कर कि यह नरूका आपका परम सेवक है इसे जागीर का पट्टा दीजिये। थोड़ी सी जागीर (जितनी वह बोहरा मंत्री मन से दिलाना चाहता था उतनी)अवश्य दिलवाई।

जा समै पता को भाग्य ऐसो अनुकूल जान्यौं,
ठानैं प्रतिलोम जोजो सोसो अनुलोम ठाइ॥
प्रत्युत प्रमान दिल्ली जैपुर भरतपुर,
भूमि इन तीनन की लै सुहि सुहृद भाई॥
मान्यौं साहि दिल्ली को वकील द्विज मंत्रिन नैं,
जंपी मिच्छ कामाँ पहिलैं ज्यौं जिन पैठिजाइ॥
साक दंत धृति तैं सुपर्ब धृति संबत लों,
ऐसे मचे जैपुर अनेक उपद्रव आइ॥६८॥

पर इस समय प्रतापसिंह नरूका का भाग्य इतना प्रबल था कि वह कोई काम उल्टा भी करता तो उसका परिणाम उसके अनुकूल ही आता। उल्टे इस समय दिल्ली, जयपुर और भरतपुर तीनों जगहों से उसे भूमि प्राप्त हुई और वह सभी का मित्र बना रहा। जयपुर के ब्राह्मण मंत्रियों ने भी उसे दिल्ली में जयपुर की पैरवी करने वाला मित्र समझते हुए कहा कि इसका ध्यान रखना कि कहीं पूर्व की तरह फिर से यवन कामां नगर में जाकर न बैठ जाएँ। विक्रमी संवत् अठारह सौ बत्तीस से लगा कर अठारह सौ तैतीस के आधे वर्ष के बीच की अवधि में इस तरह जयपुर में अनके उपद्रव हुए।

मंत्री दुव बहुरि चढाइ कैं महीपति कों,
दाबी छिति लैन गये साकंभरद्रंग दिस॥

मानबंस खंगारोत कतिक रहे मुररि,
बेढ तिन्हैं बिखम रचाइ रारि धारि रिस॥
कूरम लरे न तहाँ प्रभुके बिजय काज,
नारव मिलाइबे की ईरखा धरैं अनिस॥
यातैं भ्रम राखि मंत्री लै नृप निलय आये,
मान घटिबेकी जानि दोहु ठानि कोहु मिस॥६९॥

अब दोनों ब्राह्मण (भट्ट और बोहरा) मंत्रियों ने फिर से सेना सज्जित की और अपने राजा के नेतृत्व में वे सांभर नगर की ओर अपनी दबाई हुई भूमि को छुड़ाने गए। मानसिंह के वंशज खंगारोत जयपुर से विमुख हो गए और उन्होंने कुपित होकर भीषण युद्ध छेड़ा। इस समय अपने स्वामी की विजय के निमित्त कछवाहा नहीं लड़े क्योंकि उनके मन में प्रतापसिंह नरूका को वापस अपने में मिलाने का ईर्षा-द्वेष भरा हुआ था। यह देख कर मंत्री दबदबे के भ्रम को बनाए रखते हुए अपने राजा को ले कर किसी बहाने से वापस जयपुर लौटे क्योंकि दोनों ब्राह्मण मंत्रियों ने सोचा कि यहाँ ठहर कर लड़ने की जिद की तो मान घटने की संभावना है।

जैपुर को चाकर कह्यो जो जसवंतराव,
बंस मैं चालुक्य मरहट्ठ बाउला बजत॥
बिप्र दम्म लक्खन चढाइ ताके वेतन मैं,
लेखकरि मालपुरा टोडा द्वै दये लजत॥
ग्राम हे भटन कै जे दोउन की सीमगत,
राखि तिनकै ते कह्यो टारि इनकौं रजत॥
सेस सब ग्रामन तैं लेहु कर सासक व्है,
भूपति कौं राखि सिर स्वामिधर्म तैं भजत॥७०॥

पूर्व में मैंने (ग्रंथकार ने) जिस जसवंतराव बावला को जयपुर का चाकर बताया था वह असल में था तो चालुक्य पर प्रसिद्ध में वह मराठा कहलाता था। दोनों ब्राह्मण मंत्रियों ने इस चाकर की तनख्वाह का कर्ज जयपुर पर चढ़ा दिया अर्थात् पूरी नहीं चुकाई इससे उसका कर्ज बढ़ गया। ऐसी स्थिति में लज्जित से उन्होंने बावला को मालपुरा और टोडा दोनों परगने

लिखित करार कर तनख्वाह के पेटे सोंप दिये। इन दोनों परगनों की सीमा पर जयपुर के सीमान्तों के जो गाँव थे उन्हें उन्हीं के अधिकार में रखा अर्थात् उनका हासिल वे ही लोग लें ऐसी व्यवस्था की पर शेष रहे दोनों परगनों के सभी गाँवों का कर वह बावला वसूलेगा ऐसा करार कर दिया पर यह शर्त अवश्य लगा दी कि वह इन परगनों का शासक होकर भी जयपुर के राजा का मातहत रहेगा और कछवाहा राजा को अपना स्वामी समझेगा।

जानी जसवंतराव सासना यहै जदपि,
मानी इम मानी हम दिल्ली दायभागी मानि॥
बापुरे ए करि न सकैं कछु अधिप बजे,
याहीतैं करैं ए ओट आश्रित हमहिं आनि॥
मालपुरा टोडा ऐसे मद सों सम्हारि सठ,
चालुक्कन के जेते हमारे यह पहिचानि॥
अबहु अधीस कीनों मैंहि इनको अधिप,
करिहै मदीय बस ग्रामन के मेरी कानि॥७१॥

लिखित इकरारनामे को जानते हुए भी उस अभिमानी बावला जसवंतराव ने मन ही मन यह माना कि वे तो दिल्ली से भी हिस्सा लेने वाले (मराठा) हैं, ये बेचारे राजा कहलाते हैं पर कुछ कर नहीं सकते इसीलिए हमारी ओट ले कर अर्थात् हमारे जैसों की सहायता से राज चलाते हैं और हमें आश्रित रखते हैं। मन ही मन ऐसे दर्प से भरे बावला ने मालपुरा और टोडा का शासन संभाला और वहाँ जितने भी चालुक्य थे उनसे कहा कि हमारी वीरता को देख कर ही जयपुर के राजा ने हमें यहाँ का स्वामी बनाया है इसलिए मेरे अधीन सभी गाँव वालों को मेरी कांण (मर्यादा) रखनी चाहिए अर्थात् मुझे ही स्वामी मानना चाहिए।

दर्पसह दक्खिनी बिचार मन ऐसे बंधि,
मालपुर टोडा बस जे हे तिन कूरमन॥
निकट बुलाइ कह्यो मैंहि तुमरो तो नृप,
जेहो तुम टोडा मालपुर के निवासिजन॥
बत्त यह सुनत न भाई मन बिप्रन के,
पकरन लागे याहि टारन को एक पन॥

यातैं पुर टोडा सौं प्रमत्त जसवंत आइ,
सम्मद बलित भाख्यो एह हमरो सदन ॥७२॥

जसवंतराव बावला ने दर्प के साथ मन में ऐसा विचार कर उस पर दृढ़ विश्वास कर लिया। उसने मालपुरा और टोडा क्षेत्र के जितने भी कछवाहा थे उन्हें बुला कर कहा कि सुनो! तुम सभी का राजा मैं हूँ। मालपुरा और टोडा के जिन निवासियों को मेरी यह बात सुनने में अच्छी नहीं लगी हो वे मालपुरा और टोडा छोड़ कर अन्यत्र चले जाएँ। जब यह बात जयपुर के ब्राह्मण मंत्रियों ने सुनी तो उन्हें अच्छी नहीं लगी उन्होंने इस बात को टालने का प्रण भी लिया। इससे उस प्रमत्त जसवंतराव ने टोडा से जयपुर आ कर मद सहित यह बात कही कि टोडा तो वैसे भी हमारा घर है।

अैन चालुकन को सदासौं यह टोडा आहि,
अैसी कहि अद्रि पैं बनैबे लग्यो दुर्ग इक ॥
मालपुर टोडा के प्रदेसबासी कूरमन,
अटकि सुनाइ भू हमारी तुम आधुनिक ॥
जैपुरतैं चक्रहु बुलायो जो प्रबल जानि,
करि तब सज्ज भेज्यो संग भट दै कतिक ॥
आयो चक्र यापर बसंत को बिडंबक व्है,
केतु सहकार पीलु पब्बय नकीब पिक ॥७३॥

यही नहीं टोडा तो सदा से चालुक्यों का घर रहा है ऐसा कह कर बावला ने टोडा के पर्वत पर एक गढ़ का निर्माण करवाना आरम्भ किया। इस पर टोडा और मालपुरा के कछवाहों ने आ कर उसे ऐसा करने से रोकते हुए कहा कि यह तो हमारी भूमि है तुम तो आज आये हो अर्थात् ताजा-ताजा आये हो। और तब उन्होंने जयपुर खबर भेज कर सेना बुलवाई। जयपुर से भी मंत्रियों ने बावला को प्रबल जान कर अपने कई सामंतों को साथ दे सेना भेजी। सेना भी ऐसी जो वसन्तु ऋतु का भ्रम देने वाली थी, जिसमें हाथियों की पीठ पर लहराती ध्वजाएँ तो आम के वृक्ष थे, हाथी जो ये पर्वत रूप थे और नकीव कोयलों की तरह थे।

काढ्यो जसवंतराव आतहि प्रघात करि,
बदन बिगारि गयो लुट्टत सरनि ग्राम ॥

बनिक बिरोधी प्रतिमल्लहिँ जिम बिहाई,
कोप बालकन पैं करैं सफल कछु काम॥
ऐसैं प्रतिबसथ झलाइ पुर आदिन के,
इंद्रगढ कोटा के रु सोपुर के धन धाम॥
लूटत गयो सो दुष्ट बुंदेलन देस लग,
तक्कू को भतीज बापू भेद्यो तँहँ जाइ ताम॥७४॥

इस प्रबल सेना ने आते ही विशेषघात कर टोडा से जसवंतराव बावला को निकाल बाहर किया और वह भी यहाँ से मुँह बिगाड़ता हुआ मार्ग में पड़े गाँवों को इस तरह लूटता हुआ गया जिस तरह कोई बनिया अपना मुकाबला करने वाले को छोड़ कर बच्चों के कान उमेठता है अर्थात् बच्चों पर अपनी भड़ाँस निकालता है। बावला मार्ग में पड़े झलाय के गाँवों को, कोटा के, इन्द्रगढ़ के, सोपुर के गाँवों को लूटता हुआ निकल गया। वहाँ जा कर उसने तुकोजीराव होल्कर के भतीजे बापूराव होल्कर को अपने साथ मिलाया।

ताहि संग लैकैं आइ दोउन बहुरि तैसैं,
देस लूटि सोपुर करोली के बढाइ दल॥
दिल्लीकेर चाकर भए ए जाइ पीछैं द्वै हि,
खीजे अब जैपुर पैं बिग्रह बिथारि खल॥
बेद गुन अष्ट इंदु संबत के सुचि बीच,
मिच्छन मिले रु पीछैं जैपुर पैं बंधि बल॥
हिंडोनि रु द्योसा खोहरी के बनैं हाकिम ए,
छीनिलीनैं तीनहि प्रदेस केही गेरि छल॥७५॥

बापूराव होल्कर को साथ ले कर बावला जसवंतराव वापस पलटा। दोनों सोपुर और करोली के गाँवों को लूटते हुए और अपना बल बढ़ाते हुए दिल्ली पहुँचे। वे वहाँ जाकर शाही चाकर बन गए। शाही चाकर बन कर उन्होंने जयपुर से वैर निकालने की सोची और इसके लिए विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौंतीस के आपाढ माह में म्लेच्छों के भारी दल की सहायता पाकर वे हिंडोन, दौसा और खोहरी के हाकिम बन बैठे। उन्होंने छलपूर्वक जयपुर के इन तीन इलाकों को छीन लिया।

तीस धृति संबत तैं हायन सअर्द्ध त्रय,
जैपुरके देस रहे अैसे बहु बिघ्न जब॥
दयाराम याहीतैं पुराहित इतेक दिन,
ताकत खिनहिं काढे जैपुर अतंत्र तब॥
बिद्यागुरूभट्ट बहुरा इन उभै बुधन,
उचित बिचारि आदिरीति व्यवहार अब॥
भूसुर के संगहि पठायो मिथोहित भाखि,
सज्ज करि टींका को बिधेय उपहार सब॥७६॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तीस से लगातार साढ़े तीन वर्षों तक जयपुर पर ऐसे कई विघ्न आए। यह समय जयपुर के लिए संक्रमण काल रहा। बून्दी के वकील दयाराम पुरोहित ने इस अवधि में राजकाज की चिन्ता से बेखबर अस्त-व्यस्त जयपुर में पतीक्षा करते अपने दिन बिताये। थोड़े दिनों बाद जयपुर में थोड़ी शान्ति हुई तब दोनों ब्राह्मण मंत्रियों भट्ट और बोहरा ने बून्दी-जयपुर के मध्य के व्यवहार को उचित बनाने के लिए इसी ब्राह्मण के साथ (दयाराम के हाथ) जयपुर की ओर से टीका की सामग्री दे कर बून्दी के नये राजा हेतु भिजवाई।

बेद गुन सिद्धि ससि संबत के भाद्र बिच,
अैसौं व्यवहारी जंन जेपुर तैं बुंदी आइ॥
एक दंती एक मनि भूखन तुरंग उभै,
लोनैं सिरुपाव उभैं संसद निवेदे लाइ॥
बालक नरेस कौं दिखाइ ए कथित बिप्र,
स्वीकृत कराये रीति सचिव कौं समुझाइ॥
आन्यौं व्यवहार ताकों अर्ब सिरुपाव अर्प्पि,
दीनी सीख जैपुर दुहूँ घाँ प्रीति दरिसाइ॥७७॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौंतीस के भाद्रपद माह में दोनों राज्यों के मध्य के व्यवहार को अधिक दृढ़ बनाने हेतु जयपुर के सेवक बून्दी आए। वे अपने साथ राजा के टीका की सामग्री में एक हाथी, एक रत्नजड़ित आभूषण, दो घोड़े और दो सुन्दर सिरोपाव ले कर आये। उन्होंने बन्दी की

राजसभा में आ कर बालक राजा को टीका की सामग्री भेंट की। दयाराम पुरोहित ने तब राजा को दिखा कर सारी सामग्री सचिव को समझा कर रीतिपूर्वक स्वीकार करवाई। यही नहीं उसने टीका सामग्री लाने वाले भद्रजनों को बून्दी की ओर से एक-एक घोड़ा और सिरोपाव अर्पित करवाए और दोनों पक्षों में प्रीति का प्रदर्शन करते हुए उन्हें जयपुर जाने की विदाज्ञा दिलवाई।

बिष्णुसिंह भूप जब बुंदी के तखत बैठो,
तबतैं पुरोहित गयो हो जयनैर तिम॥
ऐसे बहु बिघ्नन तैं अबलों रह्यो सो उहाँ,
अविच्छिन्न बात यातैं भाखी उतकीहि इम॥
प्रीति को लिखाइ पत्र जैपुर महीपति तैं,
जा द्विज नैं लाइकैं निवेद्यो टीका संग जिम॥
पीछे जुरयो नेह पहिलैं ज्यौं दुहुँ ओर पुनि,
साधक सुबुद्धिन तैं स्वामि हिय होत हिम॥७८॥

बून्दी की राजगद्दी पर जब हाड़ा राजा विष्णुसिंह बैठे तभी से यह पुरोहित दयाराम जयपुर गया हुआ था। जयपुर पर आए विघ्न पर विघ्न के दिनों में वह निरंतर जयपुर में रहा था इसलिए उसने आज दिन तक के सारे हालातों की चर्चा कर परिस्थितियों से अपने राजा को अवगत कराया। इसी पुरोहित दयाराम ने जयपुर के राजा से प्रीति का पत्र लिखवा कर अपने बून्दी के नये हाड़ा राजा हेतु टीका सामग्री लाकर भेंट करवाई। इससे दोनों राज्यों के मध्य पूर्व जैसा परस्पर स्नेह का वातावरण बना। अपने राज्य के हित को सोचने वाले ऐसे बुद्धिमान व्यक्तियों के कार्यों को सुन कर हे राजा रामसिंह! हम सभी का कलेजा ठंडा होता है।

दोहा

दयाराम इम लाइ द्विज, सब टींका को साज।
बुंदी जैपुर दुहुँन बिच, किय पीछो हित काज॥७९॥
अति बिलंब हुव ताहि इम, सूच्यो कारन सोहु।
अब क्रमकरि सुनिये उचित, पहु उदंत पहिलोहु॥८०॥

श्रीजित किय जात्रा सफल, ज्यौं बदरी बन जाइ।
प्रभु को प्रथम बिवाह पुनि, सुनिये कहत सहाइ ॥८१॥

दयाराम पुरोहित ने इस तरह अपने राजा के लिए टीका की सामग्री ला कर बून्दी और जयपुर के बीच परस्पर सौहार्द का वातावरण बनाया। इस कार्य में उसे बहुत विलम्ब हुआ उसके कारण मैंने (ग्रंथकार ने) बता दिये हैं। अब हे राजा रामसिंह! मैं आपको पहले वाले वृत्तान्त को सुनाने पर आता हूँ जिसमें कि श्रीजित का अपनी बद्रिकाश्रम की सफल यात्रा को जाना और आपको अपने स्वामी विष्णुसिंह के प्रथम विवाह का वृत्तान्त सुनाता हूँ, उसे कृपा कर सुनें!

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवमराशौ विष्णुसिंह चरित्रे गृहीतसैन्य भेदपाटसुभट सलूमरेशराउत्तकुरावड़ेशराउत्तदेवगढ गमनस्वपराजयप्रत्यागमन कुरावड़ेशार्जुन सिंहमाधजीसंध्याश्या-कच्छलघातहनन राजगढनारवप्रतापसिंहच्छद्मजयपुरखुशाली रामकारानिपातनखुशालीरामवधप्रवृतझलायेशकुमारबखतावरसिंह तत्पितृव्यशत्रु शल्यवारण जयपुरनिष्कासितदेवगढेशजसवन्तसिंह-नारवप्रतापसिंहभट्टविद्यागुरु कारामोक्षण फीरोजखांनाधोरण द्वाराराज्ञी-मेलितसेखाउतादिज्ञातत्छलघातनारवप्रतापसिंह प्रच्छन्नपलायन आक्रान्तदिल्लीजयपुरभरतपुरप्रान्तच्छलियवनप्राप्तराजपद नारवप्रतापसिंहा लवरराज्यस्थापनतत्समयक्तिपयराज्यध्वंसक्तिपयनवीनराज्यस्थापनसूचन नारवप्रतापसिंहजयपुरागतमन्त्रिहस्तिपक फीराजखांछलघातमारणबहोरा खुशालीराम झलायेशकुमार बखतावरसिंहजयपुरच्छलघातहनन खुशालीरामजयपुरदादूपन्थिमर हट्टन सेनासंग्रहण सेखावाटी-मनोहरपुरेशदमन जयपुरेशपृथ्वीसिंह मातृमरणडीगजट्टयवनरणकरण जसवन्तरावबाउलार्थ जयपुरभृत्यामालपुराटोडाप्रदान श्रुतत दुर्गनिर्माणतन्निष्कासन लुण्टितजयपुरप्रान्तजसवन्तरावबाउलाबापूमरहट्ट-प्रान्तत्रय ग्रहणजयपुरटींकाबुंद्यागमनवर्णनं पञ्चमो मयूखः आदितः ॥३५५॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह

के चरित्र में, मेवाड़ के उमराव सलूमर के रावत व कुरावड़ के रावत का सेना लेकर देवगढ़ जाना और वहाँ से हारकर आना, कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह का महादजी सिंधिया के साले को छलघात से मारना, राजगढ़ के नरूका प्रतापसिंह का जयपुर में ठग विद्या फैला कर बोहरा खुशहालीराम को कैद करना और झलाय के कुमार बखतावरसिंह को खुशहालीराम को मारने से काका शत्रुसाल का रोकना, नरूके प्रतापसिंह का देवगढ़ के राउत जसवंतसिंह को जयपुर से निकलवा कर भट्ट विद्यागुरु को कैद से छुड़ाना, फिरोजखान महावत द्वारा रानी के मिलाए हुए शेखावत आदि से बच कर नरूका प्रतापसिंह का छलघात से राजगढ़ भागना, नरूका प्रतापसिंह का दिल्ली, जयपुर, भरतपुर के परगने दबाकर यवनों से छल कर अलवर का राज्य स्थापन करना और राजा का खिताब पाना, तथा इस समय कई राज्यों के नष्ट होने और कई नये राज्य स्थापन होने की सूचना करना, नरूके राजा प्रतापसिंह का जयपुर से आये हुए मंत्री महावत फीरोजखान को छलघात से मारना और बोहरा खुशहालीराम का जयपुर में झलाय के कुमार बख्तावरसिंह को छलघात से मरवाना, बोहरा खुशहालीराम का जयपुर में दादू पंथियों की और मराठों की सेना को नौकर रखना और शेखावाटी में मनोहरपुर वालों को दण्ड देना, जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह की माता का और डीग में जाटों और यवनों का युद्ध होना, जसवंतसिंह बावला को जयपुर की तरफ से तनख्वाह में मालपुरा और टोडा देना और उसको वहाँ गढ़ बनवाते देखकर निकालना, जसवंतराव बावला और बापू मराठा का जयपुर के राज्य को लूट कर तीन परगने दबाना और जयपुर से बून्दी टीका आने के वर्णन का पाँचवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ पचपन मयूख हुए ।

प्रायो ब्रजदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

तातैं सक चोतीस तक, बदि जैपुर की बात।
अब बत्तीसम इंत मैं, जुही क्रम बरन्यो जात॥ १॥

हे राजा रामसिंह! मैंने विक्रम संवत् अठारह सौ चौंतीस तक के जयपुर के हालात आपके समक्ष बयान किये। अब मैं अठारह सौ बत्तीस के अंत से बून्दी के वृत्तान्त का क्रमशः वर्णन करता हूँ।

घनाक्षरी

उक्त दुव कामन मैं एक करि बिप्र आयो,
तोलों इकतार उतकोहि बरन्यो उदंत अब।।
यातैं कह्यो जात मुरि पिछलो उदंत अब,
अैसौं साक दंत धृति हायन को होत अंत।।
ब्याधि तिहिँ बेर सुखराम कै कछुक बढ्यो,
सो मिट्यो तहाँलो रहि श्रीजित परम संत।।
चैत्र बदि छट्ठी दिन आश्रमतैं आप चढ्यो,
अच्युत बदरिकेस अर्चन कों मतिमंत।। २।।

दो काम थे उनमें से एक तो वह ब्राह्मण दयाराम कर आया जिसका वृत्तान्त मैंने कह दिया। अब पीछे की ओर मुड़ कर व्यतीत वृत्तान्त कहा जाता है। विक्रम संवत् का वर्ष अठारह सौ बत्तीस बीतने पर था कि इस समय बून्दी के सचिव सुखराम की बीमारी थोड़ी बढ़ गई अर्थात् वह अधिक रोगग्रस्त हो गया। वह जब तक पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो गया तब तक परमसंत श्रीजित राजा उममेदसिंह वहीं बून्दी रहे। फिर चैत्र माह के कृष्ण पक्ष की छठी तिथि के दिन राजा अपने आश्रम से रवाना हुआ क्योंकि वह बुद्धिमान राजा बद्रिकाश्रम जा कर भगवान अच्युतानन्द का पूजन आराधन करना चाहता था।

जैपुर नगर जात तुल्यपन रीति जिम,
पित्थल नरेस आइ सम्मुह अवधि पर।।
भोन निज लैगो तहाँ अजिन पैं बैठो भिन्न,
श्रीजित निहारेहू तपस्वीन मैं अग्रसर।।
पच्छिम प्रयान मैं निबाही जैसे जोधपुर,
अैसैं सब रीति इहाँ न्यारी साधि जैनगर।।
कास तास साखापुर बदनपुरे मैं रह्यो,
पीलु हय आदिकन राख्यौं उपदा प्रकर।। ३।।

बून्दी से जयपुर नगर पहुँचने पर बराबर के राजा का सम्मान करने कछवाहा राजा पृथ्वीसिंह, हाड़ा राजा की अगवानी करने सम्मुख चलकर

आया और पूरे स्वागत के साथ हाड़ा राजा को अपने महलों में ले गया। वहाँ श्रीजित अलग से मृगचर्म से बने बिछोने पर बैठे। वे एक तपसिद्ध तपस्वी की तरह लग रहे थे। पूर्व में हाड़ा राजा की पश्चिम दिशा की यात्रा के समय जो महमानी जोधपुर के राजा ने की थी वैसी की वैसी यहाँ जयपुर के राजा ने की। हाडा़ राजा का शिविर नगर के बाहर के गाँव बदनपुरा में लगाया गया। वहाँ कछवाहा राजा ने हाथी और घोड़े रखे जो भेंट देने हेतु थे।

के हीबेर पित्थल प्रताप तैं मिलाप कीनों,
ओज अधिकार रह्यो वृति राजसी रहित॥
आपुनों पुराहित हुतो व्हाँ दयाराम वह,
आयो अरु ज्यों बन्यौं सुनायो हित ओ अहित॥
संबत बिबुध धृति सम्मित लगत समा,
सानुकूल राखि मन सबको कृपासति॥
चैत सित छट्ठी दिन बदनपुरा तैं चढि,
संबसथ कूकस मुकाम बिरच्यो महित॥४॥

कई देर तक राजा पृथ्वीसिंह और उसके भाई प्रतापसिंह के साथ हाड़ा राजा की बैठक चली। इस समय श्रीजित पूरी तरह से राजाओं की वृत्ति से रहित था। हाड़ा राजा का पुरोहित इस समय जयपुर में ही था वह दयाराम मिलने आया और उसने राज के हित-अहित के सभी समाचार कहे। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तैंतीस के आरंभ के समय में सभी पर कृपा बनाये रखने हेतु श्रीजित ने अपना मन सानुकूल रखा। चैत्र शुक्ला छठी के दिन बदनपुरा से रवाना हो कर हाड़ा राजा ने अगला मुकाम कूकस नामक गाँव में किया।

बंस बलभद्र के मैं कूरम जहां बिदित,
अबिदित नाम अचरोल द्रंग अभिधान॥
कीनैं तँहँ श्रीजित मुकाम अरु कूरमकी,
भेट मैं कटारी एक राखी होत हठ भान॥
सुद्धि तँहँ आई यौं रुहिल्लन निकर सज्जि,
मग्ग मैं उपद्रव मचाइ राख्यो मनमान॥

पहिलैं नजीबदोला मंत्री सुत वारे पच्छ,
पत्थरगढहिँ लै तहां ए लरे अतिप्रान॥ ५॥

यहाँ नलभद्र कछवाहा का वंशज जिसका नाम ज्ञात नहीं पर वह अचरोल का स्वामी था। श्रीजित ने आगे उसके यहाँ मुकाम किया और कछवाहा द्वारा भेंट दी गई सामग्री में से हठ पूर्वक हाड़ा राजा ने मात्र एक कटारी स्वीकार की। हाड़ा राजा जब अचरोल नगर में था तब खबर आई कि रुहिल्लों के समूह ने सज्जित हो कर आगे रास्ते में मनमाना उपद्रव मचा रखा है। पूर्व समय में मंत्री नजीबुद्दोला के पुत्र के पक्ष वालों ने बड़ी बहादुरी से लड़ कर पत्थरगढ़ को अपने अधिकार में कर लिया था।

भूतकाल मैं तब रुहिल्लन सौं साह भीत,
पुण्या लखनेऊ कलकत्ता को सहाय पाइ॥
बिरचि प्रघात अतिपात सस्त्र बातन के,
जीत्यो साह आलम नै पत्थरगढ सु जाइ॥
जाबितै खां नामक रुहिल्ल व्है पराजित जो,
उक्त गढ छोरि पर्यो साह के पयन आइ॥
उक्तगढ आमिला बरैली ए रुहिल्लन के,
लीनैं लखनेऊ पति साहसौं मन मुराइ॥६॥

उस समय बादशाह इन अतिप्रान रुहिल्लों से डर गया था पर अब पुणे (मराठों) लखनऊ (यवनों) और कलकत्ता (अग्रेजों) की सहायता पा कर शाही सेना ने वहाँ जा शस्त्रों के समूह से घमासान रचा। प्रहारों पर प्रहार मचा कर बादशाह शाहआलम ने अब पत्थरगढ़ को जीत लिया। जाब्तिखान जो इन रुहिल्लों का सरदार था शाही सेना का सामना न कर सका। वह पराजित हो गढ़ छोड़ कर बादशाह के चरणों में आ गिरा। पूर्व में बादशाह से बदल कर पत्थरगढ़, आमिला और बरैली तीनों परगने लखनऊ के नवाब ने रुहिल्लों से छीन कर अपने अधिकार में रखे थे।

पै जो लखनेऊ पति आमिला जबहि जीत्यो,
कैद तस सासक रुहिल्ल को कुटुंब करि॥

ताकै इक कन्या ही सु बल सौं पकरि तब,
डारि निज गेह परलोक तैं न नैंक डरि॥
कान्या नैं मिलन काल राखि छुरिका कितहु,
धार खर जार कै धकोई बस्तिदेस धरि॥
सोतो हनी तबहि रुहिल्ले की सुता रु सठ,
मास तीन पीछैं सो नबाबहु गयोहि मरि॥७॥

पर जब लखनऊ के नवाब ने आमिला को फतह किया था तब उसने वहाँ के शासक रुहिल्ला को सकुटुंब कैद कर लिया था। इस आमिला के रुहिल्ला शासक के एक रूपवती कन्या थी। इस कन्या को नवाब ने परलोक बिगड़ने की परवाह न करते हुए जबरन अपने हरम में डाल दिया। जब नवाब उससे बलात्कार करने लगा तो उस कन्या ने एक तीक्ष्ण धार वाली छुरी कहीं छिपा रखी थी। उस कन्या ने वह छुरी नवाब के पेड़ू में घुसेड़ दी। तब उस दुष्ट नवाब ने वहीं उस कन्या को मार डाला पर अपने घाव के बिगड़ जाने के कारण वह स्वयं भी तीन माह के बाद मर गया।

राम प्रभु देखो कुलनारिन की कैसी रीति,
जैसी अहो आधुनिक नरन न राखी जात॥
जोबन गिन्यौं न गिन्यों एक पतिभोन जानै,
जीवन गिन्यो न ज्यों बिलसिबो बिभव व्रात॥
माता पिता दै जिहिँ सुहि पति उचित मानि,
ओरन कौं इंद्र लौं बिडारैं सील अधिकात॥
वाह जवनी कौं फैजाबाद लखनेऊ ईस,
गंजि रु गिरायो पै न रंजि रु भिरायो गात॥८॥

हे राजा रामसिंह! पहले अपने कुलधर्म की रक्षा करने वाली स्त्रियाँ कैसी साहस वाली हुआ करती थीं। वे अपनी लाज कैसे रखती थी वैसी लाज रखना तो आधुनिक मनुष्यों के भी वश की बात नहीं। जिस स्त्री ने अपने यौवन को नहीं गिना अर्थात् उसकी मांग की परवाह नहीं की। बस, एक अपने पति का घर जाना। जिस स्त्री ने अपने जीवन की परवाह नहीं की और न ही वैभव भोगने की परवाह की। माता-पिता ने जिसे सोंप दिया बस

उसी पति को अपना सर्वस्व मानने वाली उस स्त्री ने इन्द्र की तरह औरों का शील हरण करने वाले फैजाबाद और लखनऊ के स्वामी को मार गिराया पर प्रसन्न हो कर उसकी देह से अपनी देह नहीं सटाई।

बांधी लखनेऊ राजधानी तजि फजाबाद,
नारीहत कथित नबाबकेर सोहि सुत॥
बैठो वा पिताके पाट पै न तैसो भाग्य बल,
जासौं नई दाबी सो गई भू छूटि कीर्ति जुत॥
दाब्यो पहिलैं जो पुर कासिका प्रमुख देस,
आयो पहिलैं सो अंगरेजन के हाथ उत॥
यातैं पर्‍यो मंद लखनेऊ को प्रताप अब,
लागो पुनि लुंटक रुहिल्लन को दाव द्रुत॥९॥

रुहिल्ला स्त्री द्वारा मार दिये गए इस नवाब के पुत्र ने तब अपनी राजधानी, फैजाबाद से हटा कर लखनऊ को बनाया। अपने पिता की गद्‌दी पर बैठ कर बने इस नये नवाब के भाग्य का सितारा अपने पिता की तरह बुलन्द नहीं था। इसलिए उसकी दबाई हुई भूमि भी उससे छूट गई। इससे उसकी कीर्ति भी गई। पूर्व में उसने जो काशी आदि प्रांत दबाये थे वे भी अब अंग्रेजों के अधिकार में चले गए। इससे लखनऊ का प्रताप मंद पड़ गया और इससे उन लुटेरे रोहिल्लों का दाँव फिर से लग गया।

जीवत हो नोलसिंह जट्टन अधीस जब,
खीजि तब साह मीरबखसी नजीबखान॥
जूझि जिहिँ मुगल स अर्द्ध समा जट्टनतैं,
पट्टन छुराइ लयो आगरा बल प्रधान॥
जट्ट नोलसिंह मर्‍यो भ्राता तब रनजीत,
काका ब्रजेन्द्रादिक बहादुर गहि कृपान॥
नोलसुत केसरी कुमार बय ठानि नृप.
हंकि पुर डिग्घ आये कुंभेर को करि हान॥१०॥

इधर जब जाटों का राजा नवलसिंह जीवित था तब शाही मीर

बख्शी नजीबखान ने उससे जूझ कर जाटों की आधी भूमि पर शाही अधिकार कर लिया था। यहीं नहीं उससे आगरा नगर भी छीन लिया था। इस भिंड़त में नवलसिंह ने जब प्राण गँवाये तब उसके भाई रणजीतसिंह और काका ब्रजेन्द्रसिंह ने हथियार उठा लिये थे। उसी नवलसिंह का पुत्र केसरीसिंह राजा बनते ही डीग नामक नगर में चला आया उसके हाथ से कुम्हेर भी जाता रहा।

कुंभेर हिँ भेज्यो गढ डिग्घ सन पीछै काढि,
पंचन नै जट्ट रनजीत जानि द्रोह पर॥
तब हो रुहिल्ल एक जट्टन के आश्रितहु,
ताको चढ्यो मासिक पर्‌यो सो बहु कोल तर॥
जानि बहिकावत रुहिल्ल नै पलटि जब,
निज बस कीनो जीति डिग्घ तिनको नगर॥
एक तस दुर्ग मैं सक्योन करि सो अमल,
तामैं हुते जट्ट जे रहे ते रुपि धीर धर॥११॥

पूर्व में इस रणजीतसिंह को डीग से निकाल कर कुम्हेर के दुर्ग में पंचों ने जान कर भेजा था क्योंकि रणजीतसिंह विद्रोह करने पर उतारू था। इस समय जाटों के एक रुहिल्ला आश्रित था उसका मासिक वेतन नहीं चुकाया जा सका और समयावधि निकल गई। उसको लोगों ने बहकाया तो उसने पलट कर अपने रुपये वसूल करने को डीग नगर पर अधिकार कर लिया पर वह डीग के दुर्ग पर अपना अमल नहीं जमा सका क्योंकि गढ़ में जो जाट थे वे वीर जम कर मोर्चा लेने को तत्पर हो गए। वे गढ़ छोड़ने को राजी नहीं हुए।

काढ्यो डिग्घ तैं जो रनजीत सोहो कुंभेर हि,
तासौं मिल्यो बाउला जो जसवंतराव तब॥
वा खिन रुहिल्ल पैं अचानक दुहुन आइ,
दीनौं रतिवाह दल गेरि दलपैं गजब॥
दुर्गकेहु जट्टन नैं ताही खिन दाव देखि,
आइ गढ बाहिर चखाये असि बाढ अब॥

भीत दुहुँ घाँतैं छोरि सकल रुहिल्ल भज्यो ॥
संगी भट तीनसैं बचे जे भजे संग सब ॥१२॥

पूर्व में डीग से जिस रणजीतसिंह को निकाला था वह इन दिनों कुम्हेर में था। जसवंतराव बावला आ कर उससे मिला तब दोनों ने मंत्रणा की और दोनों ने जा कर रात्रि को अचानक रुहिल्ला के दल को घेर लिया और रतिवाह किया। यह देख कर डीग के दुर्ग में जो जाट थे वे भी दुर्ग से निकल आये और उन्होंने भी शत्रु रुहिल्ला से दो-दो हाथ किये। इस तरह अपने पर दोनों ओर से हुए अचानक हमले से रुहिल्ला घबरा गया और अन्ततः वह अपने तीन सौ साथियों सहित वहाँ से भाग छूटा।

लीनों जसवंत जो रुहिल्ला को बिभव लूटि,
पंचदस पीलु सप्ति अठ्ठतीस अग्ग सत ॥
सस्त्र बस्त्र भूखन खजानाँ तोपखानाँ सब,
जट्टन जहर जारि सो सही मतानुमत ॥
सो तिन बिडारि दयो बाउला छली समुझि,
आइ तब जैपुर रह्यो वह गरूर गत ॥
मालपुर टोडा ताहि बेतन मैं पीछैं मिले,
बात इतनीसी रही पहिले प्रसंग बत ॥१३॥

ऐसी परिस्थिति में जसवंतराव बावला ने रुहिल्ला के छोड़े गए सारे वैभव को लूट लिया जिसमें पन्द्रह हाथी, अड़तीस घोड़े और सात तोपें थी। यह देख कर जाट जहर पी कर रह गए क्योंकि परस्पर एक दूसरे की सलाह से हमला बोला गया था। जाटों ने उसे सामग्री ले जाने दी पर जसवंतराव को कपटी समझ कर वहाँ से भगा दिया तब वह बावला जसवंतराव दर्पहीन हो कर जयपुर आ रहा। इस को जयपुर से भी वेतन के एवज में मालपुरा और टोडा के परगने मिले थे जिसका वर्णन हमने पहले ही कर दिया है।

सो खिल कही अब रुहिल्लन प्रसंग संग,
इत सिरण जट्ट बढे नानक मत अधीन ॥
आजि तिन जीति लवपुर, मुलतान आदि,
कोटि रिपु कहि पंज आबमैं अमल कीन ॥

जाबितखां जो कह्यो रुहिल्ला तानें अब जाइ,
आनें सिख जट्ट इत लूटन के लोभ लीन॥
दिल्लीके समीपलग पच्छिम दिसा को देस,
निखिल दबाइ लयो तिननैं तब नवीन॥१४॥

इसका पूर्व प्रसंग वहाँ देना बाकी रह गया था उसे यहाँ रुहिल्लों के प्रसंग में कह दिया। इसी समय उधर जाट सिक्ख जो नानक के मत के मानने वाले थे उन्होंने युद्ध में मुलतान और लाहौर को फतह कर लिया और पंजाब पर अपना अमल जमाया। जाबितखान रुहिल्ला (जिसके बारे में पहले कहा गया) ने अब पंजाब जा कर जाट-सिक्खों को लूट के धन का लोभ दिया और उनकी सहायता से आ कर दिल्ली के समीप पश्चिम दिशा वाला देश पूरा दबा लिया।

जट्ट रु रुहिल्ला मार लूटहिँ मचाइ जब,
पंथ प्रसरावत उपद्रव खिनहिँ पाइ॥
क्रेता रुकि बैठे व्यवहारक बनिजकार,
क्रेय लैकैं कोहू जोर रहित सकैं न जाइ॥
श्रीजितनैं सो सब उंदत अचरोल सुन्यों,
ताके पति कुम्महु दयो यह सब जताइ॥
जन अवरोधक लै संग न उचित जैबो,
अनैन मैं चैन न उपद्रवन अधिकाइ॥१५॥

जाटों और रुहिल्लाओं ने लूटमार मचाना शुरू किया तो कोई मार्ग सुरक्षित न रहा। मौका पा कर कहीं भी वे उपद्रव कर देते। सामान बेचने वाले व्यवसायी भी जब तक सैनिक दल साथ न हो, कहीं पर नहीं जा सकते थे और यही हाल खरीद्दार बनियों का था। श्रीजित से जब यह वृत्तान्त अचरोल के स्वामी ने बताया और कहा कि मार्ग सुरक्षित नहीं, ऐसे में आपका जंनाना के साथ जाना भी उचित नहीं। सभी ओर उपद्रवों की बहुतायत हैं।

श्रीजित कह्यो नाँ अवरोधजन मुख्य संग,
लाये कछु दासीजन तित्थन समुझि लाह॥

पीछो अब तिनको पठैबो व्है न लैलै पन,
चिंति जिन्हैं आइ तिन्ह साधिबो धरत चाह॥
उज्झीहै न बरन अंहता तीजे आश्रममैं,
राह रन व्हैहैं सिर देहन कै दुव राह॥
पीछैं पर सत्थ इष्ट साधहु अभय पाइ,
अब तहँ क्षेन गोन करिहै सह उछाह॥१६॥

यह सुन कर हाड़ा राजा श्रीजित ने कहा कि वैसे तो मेरे साथ मुख्य जनाना के लोग नहीं हैं। हाँ, कुछ दासियाँ अवश्य हैं जो तीर्थ स्नान के लोभ से साथ आई हैं। अब उनको यहाँ से वापस बूंदी भेजना भी अच्छा नहीं। नियम यही कहता है कि जो सोच कर साथ आये हैं उन्हें साधना चाहिए अर्थात् उन्हें संग छोड़ने का नहीं कहना चाहिए। अभी हमारा तीसरा आश्रम है अर्थात् मैं वानप्रस्थी हूँ तो क्या हुआ अभी मैंने अपने वर्ण का अर्थात् क्षत्रिय होने का अपना अहंकार कहाँ छोड़ा है। मार्ग में युद्ध होगा तो हो। सिर देने के फिर कौन से दो रास्ते हैं अर्थात् एक ही युद्ध का मार्ग है मरेंगे और मारेंगे। पीछे शेष रह जाने पर अभय हो कर अपने इष्ट की साधना करेंगे और इसलिए हम उत्साहपूर्वक आगे गमन करेंगे।

ऐसैं मधु मासकीह बलच्छ दसमी के अह,
श्रीजित प्रयान कीनौं उक्त अचलोर सन॥
पंथ दरकुंचन मनोहरपुर पधारि,
भामरा प्रयागपुर लंघत भो धीरधन॥
कोटफूतली त्यों साहजिहांपुर दै मुकाम,
राह रहि चोबारा रु रेवाड़ी प्रबीनपन॥
राध बदि चोथी रविबार कौं रह्यो सो बहा-,
दुरगढ जाइ लंघि बीच को बिखम बन॥१७॥

ऐसा कह कर चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि के दिन हाड़ा राजा श्रीजित ने अचरोल से आगे प्रयाण किया। यहाँ से दर कूच दर मंजिल मनोहरपुर से होते हुए भामरा और प्रयागपुर को लांघ कर कोटपूतली से आगे शाहजहाँपुर में पड़ाव डाला। यहाँ से आगे रास्ते में चोबारा, रेवाड़ी ठहरते हुए

आगे बढे। बीच का विषम वन पार कर वैशाख माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि तद्नुसार रविवार के दिन हाड़ा राजा का संघ बहादुरगढ के समीप पहुँचा।

मिलन बहादुरगढेस ताजमुहुम्मद,
एक कोस अवधि नबाब जो समुह आइ।
निष्कपटता सों नम्रता सों त्यौं निहोरन सौं,
पहिलैं प्रसन्न लैगो स्वीय सद्म पधराइ॥
भूति अनुरूप बस्तु बिबिध निवेदे भेट,
श्रीजित न राखे नृप राखैं यह दरिसाइ॥
ताहूनैं कह्यो तब उपद्रव निचित अैन,
दासीजन यातैं इहा राखहु हित दिखाइ॥१८॥

यहाँ हाड़ा राजा के आगमन के समाचार पा कर बहादुरगढ का नवाब ताजमुहम्मद एक कोस की पेशवाई में सामने आया। नवाब ने अपनी नम्रता और निष्कपट मनुहार से पहले राजा को प्रसन्न किया फिर वह उसे ससम्मान अपने घर लेकर आया। अपने ऐश्वर्य के अनुरूप उसने राजा को कई चीजें भेंट की पर श्रीजित ने यह कह कर उन्हें स्वीकार नहीं किया कि यदि हम राजा होते तो रखते, पर हम तो वानप्रस्थी हैं। तब नवाब ने कहा कि आगे रास्ते में बहुत उपद्रवों का माहोल है यदि आप चाहें तो अपने साथ की दासियों को यहाँ छोड़ सकते हैं।

ईस अचरोल को कह्यो जो तिहिँ कूरम सौं,
पहिलैं कही सों त्यौं ह्या नबाब मित्र प्रकटि।
वाला जट्ट के गढ मुकाम पंचमी बिरचि,
अर्कजा लवाई घट्ट छट्ठी रह्यो गम्य अटि।
राध बदि सप्तमी कलिंदेतनयाका राति,
पारजात सहसा तपद्रुत तुसार पटि।
अध्व सौं डिगाई नाव बढिकैं सलिल ओघ।
एक कोस अवधि रुकी जो निट्ठि निट्ठि रटि॥१९॥

पूर्व में अचरोल के स्वामी को जो हाड़ा राजा ने इस बात पर जवाब

दिया था वही जवाब इस मित्र नवाब को भी दिया। राजा पूरे संघ के साथ आगे चला और उसने पंचमी तिथि के दिन यमुना नदी के तट पर लवाई घाट पर जा रहा। वैशाख माह के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को रात्रि समय यमुना को पार करते वक्त आगे धूप से बर्फ पिघलने के कारण अचानक पानी की आवक बढ़ गई इससे नाव ने मार्ग बदला और एक कोस की दूरी तक बहती जा कर बमुश्किल तमाम एक जगह ठहरी।

उच्च थल बालुका को नाव अवरोध अरि,
श्रीजित बिताई रत्ति सकल उहांहि यह॥
प्रात निज संगिन मैं पैलीतीर पूगि रहे,
तद्दिन मुकाम कीनो अष्टमी अनेह तह॥
करत प्रयान चढि प्रातहि नवमि काल,
जलद अकाल कीनी बुष्टि करकान जँह॥
यातैं सड्ढकोस हि लुवारी लौं पहुँचि आप,
ताही ग्राम रहे तब संगिन समाज सह॥२०॥

बाद में रेत के एक ऊँचे टीले से टकरा कर नाव कहीं अटक गई। हाड़ा राजा को शेष पूरी रात्रि वहीं नाव में ही बितानी पड़ी। प्रातःकाल सारे संघ के साथ श्रीजित नदी के उस किनारे पर पहुँचे। उस दिन अर्थात् अष्टमी तिथि को राजा ने वहीं विश्राम किया और अगले दिन नवमी तिथि को वहाँ से आगे प्रयाण किया ही था कि मेघ ने असमय ही ओलावृष्टि कर दी। इससे राजा अधिक दूरी तय नहीं कर सका और उसे डेढ़ कोस आगे लुवारी गाँव में मुकाम करना पड़ा। राजा अपने संघ के साथ इसी गाँव में ठहरा।

दसमी दिवस व्हांतैं जाइ रहे जाबदल,
एकादसी द्योस रहे सामलीसहर आइ॥
हीरासिंह नाम सिखको जँह अमल हुतो,
पंथ मिलि तासौं तँह आदर उचित पाइ॥
ज्वालापुर होइ राध असित चउद्दसि ज्यौं,
इंदुसुत बार गये गंगाद्वार उमगाइ॥

ठानि पंच बासर तिहिँ पुण्य ठाम,
साधे न्हाँन दान श्राद्ध आदिक बिधि सुहाइ ॥२१॥

दसवीं तिथि को अगले दिन राजा अपने संघ के साथ लुवारी से रवाना हुआ और जाबदल नामक पुर में जा रात्रि विश्राम किया। एकादशी तिथि को दौसा ठहरकर श्रीजित सामली नामक शहर में पहुँचे। यह हीरासिंह नामक एक सिक्ख के अधिकार में था उसने रास्ते में मिले हाड़ा राजा की पूरे आदर के साथ आवभगत की। वैशाख कृष्णा चतुदर्शी तद्नुसार बुधवार को ज्वालापुर होते हुए हाड़ा राजा गंगाद्वार (हरिद्वार) पहुँचा। राजा संघ के साथ यहाँ पूरे पाँच दिन तक ठहरा। इस बीच सभी ने यहाँ सभी तरह के स्नान, श्राद्ध और दान कर्म किये।

चंद्र सित राध की चउत्थी दिन व्हाँ तैं चढि,
मग्गबिच तीर्थ भीम ओडारक नाम मानि ॥
साधि तँहँ न्हान दान थान तिहिँसौं समीप,
उचित मुकाम दीनौं करखडी ग्राम आनि ॥
श्रीनगर भूपति प्रमार जो ललितसाहि,
ताको हो अमल तिहिँ ठां वह मुकाम ठानि ॥
कुंच करि व्हाँतै रहे जाइ तिम हृषीकेस,
रथ हय आदि राखे जत्थहि उचित जानि ॥२२॥

वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन यहाँ से रवाना हो कर श्रीजित रास्ते मे पड़े. भीम ओदारक नामक तीर्थ पर पहुँचा। यहाँ भी स्नान-ध्यान और श्राद्ध-दान सम्पन्न कर राजा रात्रि विश्राम के लिए आगे के गाँव करखड़ी गया। यह गाँव असल में श्रीनगर के राजा ललितशाह के अधिकार का था। रात्रि विश्राम के बाद अगले दिन हाड़ा राजा का कारवाँ ऋषिकेश पहुँचा। यहाँ पहुँच कर राजा ने अपने साथ के रथ, घोड़ों आदि को यहीं उचित स्थान जानकर छोड़ा।

व्हाँतैं नरजान बैठि तपोवन तीर्थ होइ,
गंगा न्हान दान करि रहे शिवपुरी ग्राम ॥
व्है डुंगरगाढ ग्राम त्यौं ब्रह्मनकोटी होइ,
कीनैं बद्रियाकीकोह नाम ठाँ निज मुकाम ॥

आयो एक कोस सन संगमैं सलिल उहाँ,
छेटी करि व्हाँतैं जानि सैलन सरनि छाम।
संगी जन यातैं दूरदूर लौं चलाय सब।
श्वेत राध दसमी जहाँ दिन रहत जाम॥२३॥

यहाँ से आगे की यात्रा हेतु राजा पालकी पर सवार हुआ। तपोवन नामक तीर्थ पर पहुँच कर राजा ने गंगा स्नान कर दान आदि दिये फिर आगे चलकर शिवपुरी ग्राम से होता हुआ डूंगरगढ और ब्रध्नकोटी को पार कर राजा ने बद्रिया की कोह नामक स्थान पर रात्रि विश्राम किया। यहाँ एक कोस की दूरी तक पानी होने के कारण राजा को पर्वत के बीच के संकरे रास्ते से निकलना पड़ा। पीछे से संघ वाले भी दूर-दूर से चल कर यहाँ वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि के दिन एक प्रहर दिन रहते पहुँच पाये।

प्रद्योतन बार चढि अद्रि मनभंग पर,
कोस तीन अंतर मुकाम राजाखाल किय।
पंद्रहदिवस राखि तत्थहि मुकाम पुनि,
ज्येष्ठ बदि दसमी जहां तैं चद्र कौं चलिय।
त्रिपथगा धारा एक झूला करि लंघि तिम,
दूर कछु धारा दुव संगम मिलान दिय।
सोही देवआदिक प्रयागनाम तित्थ सुभ।
सेयो दिन तीन रह्यो श्रीजित व्हाँ पुण्य प्रिय॥२४॥

अगले दिन रविवार को राजा के साथ ने मनभंग नामक पहाड़ पर चढ़ने की यात्रा की और तीस कोस आगे राजाखाल नामक स्थान पर जा मुकाम किया। यहाँ श्रीजित ने पूरे पन्द्रह दिन का पड़ाव रखा। ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथि को राजा ने आगे प्रयाण किया। गंगा की एक धारा को एक झूले से (लटकता हुआ पुल)पार कर आगे गया जहाँ थोड़ी दूरी पर गंगा की दो धाराएँ मिलती है इस संगम को देव प्रयाग नामक तीर्थ कहा जाता है। वह पुण्य प्रिय राजा इस तीर्थ स्थान पर तीन दिन ठहरा और स्नान आदि सम्पन्न किये।

नाम दुव धारन भागीरथी अलक्नंदा,
अैसें रहि दोउन के संगम पैं तीन अह॥
मुंडन रु न्हान दान आदिक सबिधि मंडि,
तित्थगुरु केसोराम कीनौं धन पात्र तह॥
पीछैं लंघि सुक्र बदि भूत गुरु बार पर,
उक्त जो अलंकनंदा झूला करि व्हां असह॥
रानीबाग नाम ग्राम बिरचि मुकाम रहे,
श्रीनगर सासक सो जानी बात जान जह॥२५॥

गंगा की इन दोनों धाराओं के अलग-अलग नाम हैं इनमें से एक भागीरथी तो दूसरी अलकनन्दा कहलाती है। इनके संगम पर तीन दिन ठहर कर श्रीजित ने मुण्डन करवाया और स्नान-दान आदि कर्म कर अपने तीर्थगुरु केसोराम को बड़ी दक्षिणा दे कर धनवान बनाया। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी, गुरुवार को अलकनंदा पर बने पुल से हो कर हाड़ा राजा ने आगे रानीबाग नामक गाँव में मुकाम किया। इस बात की खबर श्रीनगर के राजा को चली।

सो नृप ललितसाहि आवत समुख सुनि,
इततैं कहाइ आइहोतो हम मिलि हैं न॥
तानैं तब आपुनों अमात्य जो परमपति,
नित्यानंद सेनानी ए भेजे अभिमुख अैन॥
सेना द्वैहजार उभै इम जु समुख आइ,
श्रीनगर लेगये निहोरन सिविर सन॥
श्रीजित कहाई इम श्रीनगर सासक सों,
तबहि मिलैं जो नृप मानि मिलो हमतैं न॥२६॥

तो वह राजा के सम्मुख जाने को तैयार हुआ। तब हाड़ा राजा ने कहलाया कि यदि सामने आये तो मैं मिलूंगा नहीं। तब राजा ललितशाह ने अपने सेनापति नित्यानन्द और सचिव परमपति को मार्ग में हाड़ा राजा के सम्मुख भेजा। ये दोनों अपनी दो हजार की संख्या वाली सेना के साथ स्वागत को आ उपस्थित हुए और बहुत मान-मनुहार के साथ हाड़ा राजा के कारवाँ को श्रीनगर ले गए। यहाँ श्रीजित ने श्रीनगर के राजा से कहलाया कि यदि

आप मुझ से राजा समझ कर नहीं मिलें तो मैं आपसे मिल सकता हूँ।

अभ्यागम अभ्युत्थान आदि करिबो न कहि,
श्रीनगर भूत पहिलैंतो लई मानि सब॥
श्रीजित पधारत नृजान कों तजत समै,
जत्थहि मिल्यो सो आइ भूपति प्रमार जब॥
संसद मैं जात एक आसन प्रसभ साह्यो,
तदपि न मानि भिन्न बैठो निज पीठ तब ॥
अधिप प्रमार पुनि श्रीजित सिविर आयो,
सोहि तब साधि रु उहाँतैं भयो कुंच अब॥२७॥

सम्मुख आना और खड़े हो कर ताजीम देना आप न करें। श्रीनगर के राजा ने पहले तो यह बात मान ली पर हाड़ा राजा जब वहाँ पहुँचे और पालकी से उतरने लगे तो प्रमार राजा सामने गया। यही नहीं राज सभा में भी श्रीनगर के राजा ललितशाह ने हाड़ा राजा से एक ही गद्दी पर बैठने का हठ किया पर श्रीजित ने राजा की बात नहीं मानी और अपने आसन पर अलग ही बैठा। यही नहीं श्रीनगर का राजा चल कर हाड़ा राजा के शिविर में भी आया और रीतिपूर्वक सारे रिवाज निभाये। अब हाड़ा राजा ने वहाँ से आगे के लिए कूच किया।

सुक्र सुदि दूजी तिथि चाले श्रीनगर सन,
सो अलकंनदा आई बहुरि जवी सलिल॥
ताकौं लंधि झूला करि पार गये स्त्रीजन तो,
ओलीतीर स्वीय संगी पुरुख रहे अखिल॥
तिनकी हरोलवारे झूलापैं चढे तबही,
तूटी इक घाँकी तति नद्धिन बचीन तिल॥
पै ले लई पकरि समीप के नरन संघ,
यातैं जन आरोही कहे जे बचे उक्त किल॥२८॥

ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया तिथि के दिन हाड़ा राजा ने श्रीनगर से प्रयाण किया।आगे रास्ते में तेज बहाव वाली अलकनंदा फिर से मिली। राजा के साथ की स्त्रियाँ तो झूले पर से हो कर पार हो गईं। इस किनारे

सारे पुरुष रह गए। ये सभी जब झूले पर से हो कर नदी पार करने लगे तब आगे की पंक्ति के पहुँचते ही झूले के एक तरफ की चमड़े वाली एक रस्सी टूट गई पर तभी पास खड़े लोगों ने उसे पकड़ लिया और झूले से पार होते लोगों को बचा लिया अन्यथा दुर्घटना हो जाती।

अध्व वह छोरि ओर झूलातैं उदक ओघ,
अन्य पंथ उत्तरि दये मिलान भरदार॥
क्रमहै .मलयकोटी चंद्रपुर गुप्तकासी,
कुंड तस न्हाइ दै रु व्है सिवदरस कार॥
नारायनकोटि रहि पुनि व्है गनेसकोटि,
संग भेजि झलमलपटना मग सुढार॥
त्रियुगीनारायन के दरसन काज तह,
अल्प सत्थ आप जाइ पूजे उक्त उपचार॥२९॥

झूले के टूट जाने पर हाड़ा राजा ने मार्ग बदला और दूसरे झूले से पार उतर कर आगे गया और फिर से अपने साथ वालों से भरदार में मिला। यहाँ से आगे मलयकोटि, चन्द्रपुर, गुप्तकाशी और कुंड पर स्नान कर सभी ने शिवजी के दर्शन किये। आगे नारायणकोटि तीर्थ पर ठहर कर स्नान-दान कर गणेशकोटि होते हुए राजा के कारवाँ ने झलमलपटना तीर्थ की राह ली। यहाँ त्रियुगीनारायण भगवान के दर्शन करने हेतु राजा अपने थोड़े लोगों को साथ ले कर गया। राजा ने वहाँ पहुँच कर पूजा अर्चना की।

बुठ्ठि करकान कीनी जत्थहु जलद बढि,
तातैं रहि तत्थहि त्रिलोक स्वामीके सरन॥
प्रस्थित व्है प्रात झलमलपटना पहुँचि,
लंघे प्रात झुलाकरि अन्य स्त्रोत आवरन॥
मुंडकट नाम पूजि गनपति मग्गमैं रु,
सैल ढिग गोरीकुंड जाइ रहे स्वाचरन॥
ओर संगी श्रीकेदार पूजिकै बहुरि आये,
तोलौं रहे तत्थहि निबाहत सबै नरन॥३०॥

यहाँ पर मेघों ने अचानक छा कर ओलावृष्टि की इसलिए हाड़ा राजा को त्रिलोक स्वामी के मन्दिर में ही ठहरना पड़ा। अगले दिन यहाँ से रवाना हो कर श्रीजित झलमलपटना तीर्थ पहुँचा। रास्ते में मुंडकट गणपति की पूजा अर्चना करते हुए छोटी-मोटी नदियाँ के प्रवाह को झूलों से पार करता हुआ राजा अन्ततः पर्वत के पास पैदल चल कर गौरीकुंड तीर्थ पहुँचा। इस बीच राजा के शेष साथी श्री केदारनाथ महादेव की पूजा कर आए राजा भी सभी के आगमन तक वहाँ ठहरा रहा।

पीछैं बुधवार जुत ज्येष्ठ बदि तेरसि पैं,
मंडे भीमओडारक जाइ अपनैं मुकाम॥

श्रीकेदारगंगा बिच दुजे दिन न्हान साधि,
लंधि स्त्रोत झूला करि अग्गहु क्रिया ललाम॥

ताही दिन श्रीकेदार पहुँचि जथा बिधितैं,
धीरधी प्रनमि पूजे प्रभुकों उचित धाम॥

हो तँहँ बरफ रासि ढिगहि हिमालय को,
ताम मरे जाइ जन सत्रह प्रमिति ताम॥३१॥

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी, बुधवार के दिन राजा ने अपने संघ के साथ भीम ओदारक नामक तीर्थ पर जा मुकाम किया। अगले दिन केदार गंगा में स्नानादि सम्पन्न कर झूले से नदी को पार करता हुआ आगे बढ़ा। इसी दिन केदारनाथ पहुँच कर धैर्य की बुद्धि वाले श्रीजित (उम्मेदसिंह) ने पूरे विधि-विधान से वहाँ पूजा की। यहाँ से आगे चारों ओर हिमालय का बर्फ ही बफ थी अर्थात् हिम से आच्छादित हिमालय था। वहाँ जाने से बर्फ में दब कर सत्रह आदमियों ने अपनी जान गँवाई।

भिन्न भिन्न तामैं जन पंद्रह खपत भये,
बरजत सर्बके न मानी तिन नैंक वात॥

पै इक उदैपर के रानाको सगोत्र पुनि,
दूजो बुदीं सीमगत बंसीपुर को द्विजात॥

जदपि निवारे इन दोउन तदपि जाइ,
पानि निज जोरि तँहँ कीनो सह देह पात॥

जोलौं परे दीठि तोलौं जातहि लखाये जुग,
कैसी बिधि जानैं कोन गरिकैं गिरत गात॥३२॥

इन सत्रह व्यक्तियों में से पन्द्रह अलग-अलग लोग इधर के थे उन्हें उधर जाने से स्थानीय लोगों सहित अपने लोगों ने भी बहुत रोका पर वे नहीं माने। इनमें से एक उदयपुर के महाराणा का सगोत्र था अर्थात् सीसोदिया और दूसरा बूंदी राज की सीमा में बसे गाँव बंसीपुर का ब्राह्मण था। इन दोनों को उधर जाने से लोगों ने रोकना चाहा पर वे दोनों नहीं रुके। वे दोनों अपने हाथ जोड़े आगे बढ़े और साथ-साथ ही अपने प्राण दिये। जहाँ तक नजर जाए वे दोनों जाते ही नजर आये और उन्होंने शरीर छोड़ा। ग्रंथकार सूर्यमल्ल मिश्रण कहता है कि इस बात को कोई नहीं जान सकता कि कौन कहाँ, किस घड़ी और कैसे मरेगा!

दोहा

इम तँहँ श्रीजित ताहि अह, करि अर्चित केदार।
पच्छो करिय मुकाम पुनि, आइ भीम ओडार॥३३॥
गिरि टहरी गढवाल को, श्रीकेदार सु थान।
दिय पच्छो मुरि दाहिनै, चलन अग्ग चहुवान॥३४॥
आइ भीमओडार तैं, पुनि झलमल पटना सु।
अग्रग झूला ऊतरे, अखिल निबाहत आसु॥३५॥
हित मग राजाकोटि व्हैं, धामाँकोटि सु धीर।
कल्यानादिककोटि व्है, संगिन मग क्रम सीर॥३६॥

इस तरह हाड़ा राजा श्रीजित ने उस दिन केदारनाथ की पूजा-अर्चना सम्पन्न की और वहाँ से रवाना हो कर वापस भीम ओदारक तीर्थ पर आ मुकाम किया। चहुवान राजा तब टिहरी, गढवाल राज्य के इस सुन्दर तीर्थ केदार को पीछे छोड़ते हुए यहाँ से दाहिनी ओर मुड़ कर आगे बढ़ा। भीम ओदारक से आगे वापस झलमलपटना होते हुए राजा झूले से पार उतरते हुए आगे चला। रास्ते में राजाकोटि और धामाँकोटि के दर्शन, स्नान आदि करता हुआ अपने कारवाँ सहित कल्याणकोटि तीर्थ पहुँचा।

पुण्य गुप्तकासी परसि, ओखीमठ तिम आइ।
दरस आदि केदार को, बिरचिय जजन बनाइ॥३७॥

उहाँ भोग उपहार के, प्रथित द्रम्म पंचास।
करि अंजलि प्रभु भेट करि, अग्गैं प्रस्थित आस ॥३८॥

हुलकर खंडुनारि हुव, निपुन अहल्या नाम।
तास धर्मसाला तहाँ, कीने जाइ मुकाम ॥३९॥

धव पीछैं वह पुन्य धिय, करतभई सुभ काज।
बिबुधालय ठाँठाँ बिदित, सहित सदाब्रत साज ॥४०॥

यहाँ पुण्यस्थल गुप्तकाशी को स्पर्श करता हुआ ओखीमठ आया। यहाँ पहुँच कर हाड़ा राजा ने आदि केदारनाथ की पूजा अर्चना की। राजा ने यहाँ आदि केदारनाथ के भोग हेतु पचास रुपये हाथ जोड़ कर भेंट किये और आगे चला। इस स्थान पर खाण्डेराव होल्कर की रानी जिसका नाम अहिल्या बाई था ने एक धर्मशाला का निर्माण करवाया था। राजा ने अपना मुकाम इसी धर्मशाला में किया। अपने पति की स्मृति में पवित्र बुद्धिवाली अहिल्या बाई ने यह शुभ कार्य किया कि अपने विविध मन्दिरों में जगह-जगह पर सदाव्रत बाँटने की व्यवस्था की।

व्हाँतैं मग तुंगेस व्है, बिधि क्रम भेट बिधाइ।
ब्रह्मन कोटि व्है बहुरि, अलकंनदिका आइ ॥४१॥

तिहिं झुला करि उत्तरि रु, पित्थलकोटि पधारि।
सनि अष्टमि सित सुक्र की, किय मुकाम सुखकारि ॥४२॥

नवमि गरुड़गंगा नदी, मज्जन करि तिहिं माग।
व्है जोसीमठ जात हुव, प्रबिदित विष्णुप्रयाग ॥४३॥

अलंकनदिका उत्तरे, पुनि झूलाकरि पार।
अग्ग स्त्रोत लंघे उभय, धुव छुरिका असिधार ॥४४॥

यहाँ से आगे रास्ते में तुंगेश (शिखराधीश) तीर्थ पर राजा ने विधि-विधान पूर्वक भेंट चढाई और आगे ब्रघ्नकोटि तीर्थ के दर्शन करता हुआ वापस अलकनंदा नदी के तट पर आ गया। यहाँ पर लगे झूले से नदी पार कर हाड़ा राजा आगे पित्थलकोटि पधारे। ज्येष्ठ माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि तदनुसार शनिवार के दिन यहाँ मुकाम किया। नवमी तिथि के दिन राजा ने आगे गरुड़गंगा नदी में स्नान किया और आगे जोशीमठ

जाते हुए विष्णुप्रयाग नामक तीर्थ पर ठहरे। यहाँ से आगे फिर से अलकनंदा नदी को झूले से पार कर आगे भी छुरिका और असिधार दोनों जलस्रोतों को पार किया।

सित तेरसि गुरु शुक्र व्है, कल्यानादिककोटि।
अलकनंदिका उत्तरे, जँहँ पुनि झुलाजोटि॥४५॥

वाहि दिवस संध्या समय, बिक्खि रु जजि बदरीस।
तँहँ किय पंच मुकाम तब, श्रीप्रभु धारत सीस॥४६॥

आर द्वितीया सुचि असित, पच्छो करि प्रस्थान।
कल्यानादिक कोटि किय, मुरतहु प्रथम मिलान॥४७॥

ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी तदनुसार गुरुवार के दिन कल्याणकोटि होते हुए आगे अलकनन्दा को झूले से पार कर हाड़ा राजा ने उसी दिन संध्या समय में बद्रीनाथ के दर्शन किये और पूजा-अर्चना की। हाड़ा राजा ने बद्रीकाधाम में पाँच दिन का पड़ाव किया। यहाँ से मंगलवार के दिन अर्थात् आषाढ कृष्णा द्वितीया तिथि को वापसी हेतु प्रस्थान किया और कल्याणकोटि तीर्थ पहुँच कर पहला मुकाम किया।

षट्पात्

असित तीज करि अप्प पंडकेश्वर पूजादिक,
मग जोसीमठ बलि गुलाबकोटी सुभ बादिक।
व्है पीपलकोटि हदगरुड़गंगा व्है संगत,
बैरागीकोटि बलि होइ पद्धति अप्रतिहत।
रहि प्रात लंघि भागीरथिय करन प्रयाग हु न्हान करि,
शिवकोटि होइ लंघिय सहज श्रीजित राजा बाग सरि॥४८॥

आषाढ कृष्णा तृतीया के दिन हाड़ा राजा मार्ग में पंडकेश्वर महादेव की पूजा सम्पन्न कर जोशीमठ जाते हुए गुलाबकोटि, पीपलकोटि और गरुड़गंगा होते हुए आगे बढ़ा। मार्ग में बिना रुके बढ़ते हुए वेरागीकोटि नामक तीर्थ पर पहुँच कर मुकाम किया। अगले दिन प्रातःकाल में भागीरथी को पार कर कर्ण-प्रयाग तीर्थ में जा स्नान किया। यहाँ से आगे चल कर श्रीजित शिवकोटि नामक तीर्थ के दर्शन कर सहज ही आगे चल कर राजाबाग पहुँचा।

दोहा

देवीमहड़ा गिरि दुगम, क्रम मग चढि चउ कोस।
सुचि बदि चउदसि श्रीनगर, आयो बहुरि अदोस ।।४९ ।।

मिलि पहिलैं तस महिप सन, आये पुनि पट अैन।
महमानी किन्नी महिप, दुजे दिन सह सैन ।।५० ।।

सित प्रतिपद नृपनिज सदन, बिच आराम बुलाइ।
महमानी पुनि किय मुदित, अह तीजे उमँगाइ ।।५१ ।।

चोथे अह व्हाँतै चढि रु, रानीबाग पधारि।
देवप्रयाग मुकाम दुव, स्नान दान बिधि सारि ।।५२ ।।

यहाँ से आगे देवीमहड़ा नामक पहाड़ की दुर्गम चढ़ाई चढ़ते हुए राजा ने चार कोस की दूरी तय की और आषाढ कृष्णा चतुर्दशी तिथि के दिन हाड़ा राजा वापस श्रीनगर पहुँचा। यहाँ पहुँच कर हाड़ा राजा श्रीनगर के प्रमार राजा ललितशाह से मिल कर अपने डेरे आया। अगले दिन राजा ने सेना सहित अभ्यागत राजा की मेहमानी की अर्थात् आवभगत में जलसा किया। आषाढ की शुक्ला प्रतिपदा तिथि के दिन प्रमार राजा ने हाड़ा राजा को अपने बाग वाले महल में आमंत्रित किया और तीसरे दिन भी प्रसन्न हो कर मेहमानी की। चौथे दिन यहाँ श्रीनगर से प्रस्थान कर हाड़ा राजा रानीबाग पहुँचा। आगे देव प्रयाग में मुकाम कर श्रीजित ने वहाँ विधि-विधान पूर्वक स्नान-दान आदि सम्पन्न किये।

रहिस बहुरि भागीरथि, उत्तरि झोला आप।
राजखाल बिश्राम रचि, पंचमि सित दिन पाप ।।५३ ।।

करि व्हाँतै दरकुंच क्रम, सुचि नवमी सित सत्थ।
हृषीकेश आये हुलसि, त्यक्त मिले सब सत्थ ।।५४ ।।

रच्छक जन हय रथ करभ, जीवत रक्खे जत्थ।
तहाँ पहुँचि लै संग तिन्ह, मंडिय गमन समत्थ ।।५५ ।।

अगले दिन भागीरथी नामक तीर्थ होते हुए झूला से पार उतर कर राजाखाल नामक स्थान पर हाड़ा राजा ने आषाढ शुक्ला पंचमी तिथि तदनुसार शनिवार का विश्राम किया। यहाँ से आगे दर कूच दर मंजिल बढ़ता हुआ नवमी तिथि के दिन राजा ऋषिकेश पहुँचा जहाँ राजा का पीछे छोड़ा हुआ शेष

संघ भी उससे आ मिला। सेवक, रथ, घोड़े, ऊँट सभी यहाँ जीवित मिले अर्थात् अच्छी हालत में मिले। वापस अपना कारवाँ बना कर अपनी सवारियों के साथ राजा ने यहाँ से आगे प्रस्थान किया।

षट्पात्

सुचि दसमी पक्ख सित कुंच श्रीजित व्हाँतैं किय,
गंगालक्करघाँट गैल पटगृह पठ्ठाविय।
गंगाद्वार हि गमन अप्प करि मुरि तँहँ आयउ,
बारसि न्हाइ बिधेय श्राद्ध कनखल सद्धायउ।
कड़खडीय ग्राम बिश्राम करि लक्कर घाँट निवास लहि।
सुचि मास बिसद चउदसि समय गंगा लंघिय नाव गहि॥ ५६॥

अषाढ शुक्ल दशमी के दिन ऋषिकेश से रवाना हो कर राजा ने अपने डेरे गंगा लक्कर घाट के लिए अग्रिम रवाना किये। स्वयं ने हरिद्वार (गंगाद्वार) पहुँच कर द्वादसी तिथि के दिन गंगा में स्नानादि सम्पन्न कर कनखल में जा कर श्राद्ध किया। लौटते हुए भी कड़खड़ी गाँव में थोड़ा विश्राम कर रात्रि विश्राम लक्कर घाट पर किया। चतुर्दशी तिथि के दिन गंगा को पार करने के लिए नाव की सवारी ली।

इक्क पोत उत्तरत उहाँ बारह लग्गे अह,
अधिक उपद्रव इक्खि तजिक पद्धति पहिली तह।
सित सावन सप्तमिय सत्थ गंगा उतारि सब,
आइ ग्राम आहार अप्प मंडिय मुकाम अब।
दरकुंच बिसद एकादसिय आइ गुंडवारी अयन।
उत्तरे स्त्रोत जमुना उचित जथा तरंड निबाहि जन॥५७॥

यहाँ से एक जलपोत को पार जाने में बारह दिनों का समय लगता था पर वहाँ अधिक भीड़ भाड़ का उपद्रव देख कर राजा ने जल मार्ग से जाने का इरादा बदल लिया और श्रावण माह की सप्तमी तिथि के दिन अपने पूरे संघ के संग गंगा के पार उतरे। यहाँ से आहार नामक गाँव में पहुँच कर हाड़ा राजा ने मुकाम किय। यहाँ मे आगे एकादशी के दिन दर कूच दर मंजिल चलते हुए गुंडवारी आ उतरे। आगे यमुना नदी को नाव से पार किया।

करि व्हाँतै दरकुंच होइ कामाँ बिसवा हद,
द्योसा नामक द्रंग पाइ इतिमुख निवास पद।
निबसि निवाई नैर टौंक तिम सोनवाय टिकि,
अष्टमि भद्दव असित चढिय व्हाँतैं न मग्ग चिकि।
सरदारसिंह नारव नगर उनियारापति करि अरज,
पृटु कियउ रत्ति रक्खन प्रसभ गदि स्वगेह पावन गरज।।५८।।

यहाँ से आगे कूच कर कामाँ के पास से गुजर कर बिसवा होते हुए दौसा नामक नगर में आकर रात्रि विराम हेतु पड़ाव डाला। इससे आगे निवाई नगर, टोंक होते हुए आगे सोनवाय में आकर ठहरे। यहाँ से भद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की अष्ठमी तिथि के दिन आगे रास्ते में उनियारा के स्वामी ने आकर निवेदन किया कि हे राजा! आज की रात मेरे यहाँ ठहर कर मेरे घर को पवित्र करें!

घनें हठन दुव घटिय अप्प रहि नगर नगर इम,
उपदा बिच सस्त्र इक तुपक रक्खि रु श्रीजित तिम।
महमानी न करन मनाइ व्हाँतै इत हंकिय,
जात रत्ति इक जाम आइ द्रगपुर रहि अंकिय।
दरकुंच असित नवमी दिवस दुबलानाँ मग करि बिदित,
आयउ स्वकीय आश्रम इहाँ इम श्रीजित अतिपुण्य इत।।५९।।

उनियारा के स्वामी का अतिरिक्त आग्रह और हठ देखकर हाड़ा राजा वहाँ घड़ी भर के लिए मेहमान हुआ और वह भी नगर नामक नगर में ठहरा। उणियारा की ओर से आई भेंट की सामग्री में से हाड़ा राजा श्रीजित ने मात्र एक बन्दूक स्वीकार की और उनियारा के जागीरदार को मेहमानी नहीं करने के लिए मनाते हुए हाड़ा राजा आगे बढ़ा और एक घड़ी रात गये राजा अपने राज्य के नैणवा नगर आ पहुँचा। यहाँ से आगे प्रस्थान कर नवमी तिथि के दिन दुबलाना नामक नगर को रास्ते में छोड़ते हुए आगे वह पुण्यात्मा राजा श्रीजित अपने आश्रम में पहुँचा।

दोहा

या जात्रा बिच जे उदित, गिरि तीरथ पुर ग्राम।
समुझहु ते मग चिन्ह सब, कहुँ कहुँ कथित मुकाम।।६०।।

इम सुर थुति सक आगमन, जत्ता उत्तर जाइ।
बदरीसहिँ जजि भद्द बदि, आश्रम पहुँचिय आइ॥६१॥

हे राजा रामसिंह! श्रीजित की इस यात्रा के वृत्तान्त में जितने पर्वतों, तीर्थों, नगरों और गाँवों का जो मैंने उल्लेख किया है उन्हें आप मार्ग के चिन्ह समझें। ये सभी वे स्थान नहीं हैं जहाँ हाड़ा राजा ने मुकाम किये। जहाँ-जहाँ मुकाम हुए मैंने उन्हें अलग से बता दिया है। इस तरह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तैंतीस के आरंभ में श्रीजित (पूर्व राजा उम्मेदसिंह) उत्तर दिशा की यात्रा पर रवाना हुए और बद्रीनाथ, केदारनाथ की पूजा अर्चना कर भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष में वापस अपने आश्रम लौट आए।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवमराशौ विष्णुसिंह चरित्रे मरहट्टाङ्गरेजसहायदिल्लीन्द्रालमशाहरुहिल्लाक्रान्तप्रस्तरदुर्गादिविजयन विजितामलाधीश लखनऊपतितदङ्गजासंग्रहण नबाबरतकालच्छुरिका-प्रहर्तृरुहिल्लसुताहनन भरत पुरजट्टयवनरणकरण जट्टाहृतडीघपुररुहिल्ल-रात्रिसंगरपलायन जयपुरागतजसवंतराव बाऊलाभृत्यत्वहेतुदर्शननानक-मतानुयायिसिक्खपञ्चनदजनपदग्रहणजट्टरुहिल्लादिल्लीदेश लुण्टन श्रीजिदुत्तरदिक्तीर्थयात्रानन्तरबुन्द्यागमन षष्ठो मयूखः आदितः॥३५६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, मराठों और अंग्रेजों के बल से दिल्ली के बादशाह, शाहआलम का रुहिल्लों से पत्थरगढ आदि विजय करना और लखनऊ के नवाब का आमिला के पति को जीतकर उसकी कन्या को लेना, रतिकाल में उस कन्या का नवाब के छुरी लगाना और नवाब का उस कन्या को मारना, भरतपुर के जाट और यवनों का युद्ध होना और रुहिल्लों का जाट से डीगपुर लेना और रतिवाह के युद्ध में रुहिल्लों का भागना, जसवन्तराव बावला के जयपुर में आकर नौकर रहने का कारण दिखाना और नानकपंथी सिक्खों का पंजाब लेना तथा रुहिल्लों और जाटों का दिल्ली के देश में लूटमार करना, श्रीजित (उम्मेदसिंह) का उत्तर दिशा की तीर्थ यात्रा करके वापस बून्दी में आने का छठा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छप्पन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

श्रीजित प्रस्थित जाहि सक, रुचि बदरीबन राह।
सुर धृति सम्मित ताहि सक, बन्यो प्रथम नृप ब्याह ॥१ ॥

प्रथम कृत्य श्रीजित प्रथित, सबबिधि पुब्ब सधाइ।
चलिय अप्प बदरीस चहि, सबन उचित समुझाइ ॥२ ॥

सुभट भवानीसिंह सह, सचिव मुख्य सुखराम।
पीछैं सन महिपाल को, आरंभिय उपयाम ॥३ ॥

कोटादिक भ्रातन कलित, हुव उपदा ब्यवहार।
सिसु नृप संग बरात सजि, किय प्रयान मह कार ॥४ ॥

सजि पत्ते लै भट सचिव, बीकानैर बरात।
ससिसुत तेरसि सुक्र सित, सद्धिय लग्न सुहात ॥५ ॥

हे राजा रामसिंह! जिस वर्ष (संवत् के) में पूर्व राजा श्रीजित ने तीर्थयात्रा के उद्देश्य से बद्रिकाश्रम जाने की राह पकड़ी उसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ तैंतीस में ही बून्दी के राजा विष्णुसिंह का प्रथम विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीजित ने इस निमित्त राज के अपने कारकूनों को सारी बातें- रीति-रिवाज अच्छी तरह समझा दिये और विवाह से पूर्व ही श्रीजित अपनी यात्रा हेतु प्रस्थान कर गए। उसने सामंन्त भवानीसिंह और राज्य के सचिव सुखराम को अच्छी तरह समझा दिया कि मेरे जाने के बाद पीछे से राजा का विवाह समारोह आरंभ कर देना। कोटा आदि के भाइयों की ओर से इस निमित्त भेंट आदि भी प्राप्त हो गई तब शिशु राजा के साथ बरात सजी और बरात ने उत्सवपूर्वक प्रस्थान किया। इस बरात में बून्दी के सभी सामंत और सचिव थे। बरात बीकानेर जाने के लिए रवाना हुई जहाँ ज्येष्ठ माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि तदनुसार बुधवार को शुभ लग्न साधने थे।

घनाक्षरी

बयमैं चतुर्थ अब्द अंतर कुमार बर,
बीकानैर भूप गजसिंह सुता तुल्य बय॥
नाम पन्नकुमरि बिबाही पट्टरानी नृप,
निपुन कुमार सुरतेस की स्वसा सुनय॥

देय बसु जात दैकें कविन प्रसन्न करि,
सुभट अमात्य नैं लै सुजस तथातिसय॥
ब्याहि यों महामह सौं स्वामी को प्रथम ब्याह,
बाल महिपाल आन्यौं बुंदीपुरी बीत भय॥६॥

सुन्दर चार वर्ष की उम्र वाला दूल्हा अपने समवय वाली बीकानेर के राठौड़ राजा गजसिंह की पुत्री से विवाह करने चला। हाड़ा राजा ने इस पन्नाकुमारी को अपनी पटरानी बनाया जो बीकानेर के कुमार सूरतसिंह की बहन थी। इस अवसर पर इनाम-इकराम में खूब सारा धन व्यय कर कवियों को प्रसन्न किया गया। बून्दी के सामंतों और सचिवों ने अतिशय यश अर्जित कर अपने स्वामी का धूमधाम से उत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न कराया। इस तरह अपने राजा का प्रथम विवाह कर सभी निर्भीक सामन्त बाल राजा को वापस बून्दी लेकर आए।

बेद गुन अट्ठ इंदु संबत लगत बैर,
मधु सित अष्टमी प्रयान सुभता मिलाइ॥
गम्य गिनि रामेश्वर श्रीजित कियउ गोन,
दक्खिन के तीरथ समस्त सेब्य दरिसाइ॥
पट्टनि प्रथम पूजि केसव पयपयोज,
पत्तन बिसाला जाइ ईसको दरस पाइ॥
सिप्रा न्हाइ गम्य भू परिक्रमि बिरचि श्राद्ध,
देय दैकैं द्विजन दयो बहु जस बढाइ॥७॥

इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौंतीस के आरंभ में चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन शुभ मुहूर्त्त देखकर जाने योग्य तीर्थ मान कर रामेश्वर के लिए श्रीजित राजा ने प्रयाण किया। इस यात्रा में राजा ने दक्षिण के सारे तीर्थ स्थानों की पूजा करने का मन्तव्य बनाया और यात्रा पर रवाना होने से पूर्व हाड़ा राजा ने पाटण जाकर सर्वप्रथम केशवराय भगवान के चरण कमलों की अभ्यर्थना की, फिर आगे उज्जैन पहुँच कर महादेव (महाकाल) के दर्शन किये। वहाँ शिप्रा नदी में स्नान कर तीर्थ की परिक्रमा की और श्राद्ध आदि किये। इस अवसर पर ब्राह्मणों को बड़ी दक्षिणा देकर अभूतपूर्व यश कमाया।

राखि डेरा दत्तके अखारे बिच आप रहे,
जात्रा होइ सफल जितेक दिन श्रद्धा जानि॥
बैरागी हजार च्यारि सायुध इतेक बिच,
आत सुनि व्हाँके भीत सन्यासी पुकारे आनि॥
बोले जे सदातन हमारैं उनकै है बैर,
मत्त जे प्रगल्य हम थोरे यह छिद्र मानि॥
आहव रचैं तो आप करहु सहाय आज,
दीनबंधु बिरुद पुरातन जो पहिचानि॥८॥

उज्जैन में हाड़ा राजा ने अपने डेरे दत्त के अखाड़े में लगाये और कुछ दिन यहाँ, यात्रा शान्तिपूर्वक हो जाए इसके लिए श्रद्धापूर्वक पूजन आराधन किया। राजा श्रीजित अभी उज्जैन में ही थे कि एक दिन चार हजार वैरागी साधुओं की सायुध जमात के आने के समाचार आये। इन वैरागी साधुओं के आगमन की खबर पा कर उज्जैन के स्थानीय सन्यासी (पुजारी) भयभीत हो गए और वे राजा श्रीजित के पास सहायता की गुहार ले कर आये। उन्होंने आकर कहा कि हे राजा! हमारे और वैरागियों के मध्य सदा से ही तनातनी चलती आ रही है। हम संख्या में कम हैं और वे प्रगल्भ अवसर देख कर हमसे युद्ध रचें तो हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप हमारी रक्षा करें। इसके लिए आप अपने दीनबंधु के पुराने विरुद का स्मरण करें!

सुनत पुकार सज्ज श्रीजित स्वचक्र सह,
उनकौं अभै दै रहे आपही लरन अग्ग॥
बैरागी यहैं सुनि पराजय निज बिचारि,
मुररि कढे जे बाम दक्खिन पकरि मग्ग॥
फैल्यो जस जाको खंड भारत अमित्त फीत,
लसत हिमालय सौं दक्खिन उदधि लग्ग॥
ऐसी बिधि जाइ पूजे रामेस्वर नाम ईस,
अतुल उदार दैदै बिप्रन बसु उदग्ग॥९॥

उज्जैन के पुजारियों की यह अर्ज सुनते ही हाड़ा राजा श्रीजित ने अपनी सेना को सज्जित किया और उनसे कहा कि निर्भय रहो। मैं स्वयं आगे

रह कर लड़ूँगा। उधर आगन्तुक वैरागी साधुओं की जमात ने जब यह सुना कि हाड़ा राजा स्वयं लड़ेंगे तो उन्होंने सोचा कि तब तो हमारी पराजय निश्चित है। यह सुन कर वे वाम मार्गी यहाँ से वापस मुड़ कर दक्षिण वाले रास्ते से चले गए। इस बात से हाड़ा राजा का यश पूरे भारतखंड में हिमालय से लगा कर दक्षिण में समुद्र तक फैल गया। इस तरह से कीर्तिलब्ध राजा आगे रामेश्वर पहुँचा। यहाँ पहुँच कर हाड़ा राजा श्रीजित ने महादेव की पूजा-अर्चना की और बड़ी दक्षिणा देकर वह और अधिक दर्पवान हुआ।

जात्रा यह कीनी ताको प्रतिदिन अध्वक्रम,
लिखित न जान्यौं यातैं बरन्यौं समास लाइ॥

दक्खिन दिसा के इम तीरथ करि असेस,
आश्रम पैं आये मास तेरह मैं पुण्य पाइ॥

पृथ्वीसिंह भूप इत जैपुर तजत प्रान,
अनुज प्रताप कीनौं भूपति भटन आइ॥

बान गुन अट्ठ इंदु संबत तखत बैठो,
मास राध असित चउत्थि पैं मह मचाइ॥१०॥

हे राजा रामसिंह! श्रीजित की इस दक्षिण यात्रा का पूरा वृत्तान्त लिखित रूप में मेरे सामने नहीं आया इसलिए यात्रा का प्रतिदिन का हाल लिखना संभव नहीं। अतः मैं संक्षेप में इस यात्रा का वर्णन दे रहा हूँ। रामेश्वर के बाद शेष सारे दक्षिण के तीर्थस्थानों की यात्रा पूरी कर श्रीजित तेरह मास की अवधि व्यतीत कर वापस अपने आश्रम में आया। इधर इस समय जयपुर के कछवाहा राजा पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो गई। तब जयपुर की राजगद्दी पर उसका छोटा भाई प्रतापसिंह बैठा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पैंतीस के वैशाख माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन की बात है कि वह प्रतापसिंह उत्सवपूर्वक जयपुर का राजा बना।

भूपति प्रताप यह जैपुर बिदित भयो,
गानमैं रसिक राखि गायक गहिर गान॥

याके नृप होत अवरोधतैं फितूर उठयो,
मान्यों जन्म लीनौं पृथ्वीसिंह कै कुँवर मान॥

साच झूँट ताकी निहचै न भई पै सबन,
आदस्यो न देखत प्रताप को जस उफान॥
बृंदावन यातैं चिरकाल वह मान बस्यो,
प्रभूके प्रताप पेख्यो जात्रा के समय जान॥११॥

जयपुर का यह राजा अपने गायन विद्या के प्रेम के कारण प्रसिद्ध हुआ उसने कई अच्छे गंभीर ज्ञानी गायकों को अपने राज्य में प्रश्रय दिया पर इसके राजा होते ही जयपुर के रनिवास में एक फितूर उठा कि पूर्व राजा पृथ्वीसिंह के कुमार मानसिंह नामक पुत्र ने जन्म लिया है। हे राजा रामसिंह! इसमें सत्य और झूठ का तो पता नहीं अर्थात् असली और कृत्रिम की तो जाँच नहीं पर सभी ने उस कुमार मानसिंह को नहीं स्वीकारा क्योंकि तब राजा प्रतापसिंह का प्रताप पूरे उफान पर था। ऐसी स्थिति में वह कुमार मानसिंह अपनी माता के साथ वृन्दावन जा बसा। हे राजा रामसिंह! आपकी कृपा से यह ग्रंथकार जब यात्रा पर गया था तब मैंने भी उसे वहाँ वृन्दावन में देखा था।

जैपुर तखत बैठो भूपति प्रताप जोलौं,
अब्द प्रति जान्यौं बुधसिंह नृपतैं उदंत॥
बान गुन अट्ठ इंदु संबत अगारी बात,
अब्द प्रति लिखित न जानी या सतक अंत॥
यातैं अब भाखीजात बिच बिच छोरि अब्द,
भेकफाल न्याय जो जनाई कथा भगवंत॥
लेखालय सकल लिखायो प्रभु आपलेख,
जैसै पुब्ब लिखात न आये उक्त परजंत॥१२॥

मैंने (ग्रंथकार ने बून्दी के) हाड़ा राजा बुधसिंह से लगा कर जयपुर के तख्त पर बैठे कछवाहा राजा प्रतापसिंह तक निर्बाध रूप से प्रति वर्ष का वृत्तान्त देने की भरसक चेष्टा की है अर्थात् दिया है पर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पैंतीस से आगे विक्रम की उन्नीसवीं सदी के पूर्ण होने तक अर्थात् वर्ष उन्नीस सौ तक यह प्रतिवर्ष के वृत्तान्त का क्रम नहीं निभ पाएगा इसलिए बीच-बीच में कुछ-कुछ वर्ष का हाल छोड़ कर लिखूँगा। वह भी मेंढ़क की कूद की तरह (भेकफाल न्याय) भगवंतसिंह ने बताई है उसे कहता हूँ।

हे राजा रामसिंह ! दफ्तर में यह पूरा हाल आपने ही लिखवाया है जो पहले के समान निबधि क्रम में नहीं आ पाया है (उसी का आधार लेकर मुझे लिखना है।)

नगर करोली नाह तुरसमपाल तनै,
मानिक्यादिपाल अभिधान हुतो महिपाल॥
ताकै ही तनूजा नाम अमृतकुमारि तास,
बर बर मानि तास बुंदी अधिराज बाल॥
हड्डुन अधीस बय तेरहम हायनमैं,
व्याहन बुलायो गो बरात सजि सो बिसाल॥
संबत नयन बेद बसु भू असित महा,
कलित उछाह साध्यो बारसि को लग्न काल॥१३॥

इधर करोली नगर के स्वामी तुरशमपाल का पुत्र माणिक्यपाल नामक जो अब वहाँ का राजा है। इस राजा के एक गुणवती कन्या अमृत कुमारी थी उसके विवाह हेतु करोली वालों ने बून्दी के बालक राजा को श्रेष्ठ वर मान कर विवाह का प्रस्ताव रखा तब हाड़ाओं का वह स्वामी विष्णुसिंह अपनी आयु के तेरहवें वर्ष में दुल्हा बन कर विशाल बरात के साथ करोली विवाहने गया और विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बयालीस के मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की द्वादसी तिथि के शुभ लग्न में उसने उत्सवपूर्वक विवाह रचाया।

श्रीजित के सम्मत बिबाह यह दूजो व्याह,
आप धन पूरि बसु बिंदुन कविन सैन॥
बुंदी पुटभेदन स्वकीय बिधि काल बिस्यो,
देय सुख निखिल पितामह मुखन दैन॥
सक गुन बेद अट्ठ भू मित समा समय,
राजा गजसिंह मर्यो बीकानैर सिर रैन॥
सूनु तस जैठो गंजि तीसरो सुरतसिंह,
पीछैं भो महीपति बिसारि नय धर्म बैन॥१४॥

श्रीजित की सम्मति से यह दूसरा विवाह कर राजा विष्णुसिंह ने मेघ रूप होकर धन रूपी बूंदों से बरस कर कवियों (चारणों) के घर भर दिये। विवाह कर उस राजा ने जब बून्दी की शहरपनाह में प्रवेश लिया तो उसका आगमन सभी नगरवासियों सहित अपने दादा राजा उम्मेदसिंह के लिए सुखदायी सिद्ध हुआ। उधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तैंतालीस में बीकानेर के राजा रत्नसिंह के पुत्र गजसिंह की मृत्यु हो गई तब उसका तीसरा बेटा सूरतसिंह अपने पाटवी बड़े भाई को मार कर बीकानेर की गद्दी पर बैठा। राजा बनने में उसने धर्म और नीति का व्यवहार नहीं किया अर्थात् अनीति से राजा बन बैठा।

पहिलै इरान को बन्यो स्वबल पातसाह,
नादिर स नाम जान दिल्ली कौं करी कतल॥
ताकौं मारि ताहीके भरोसा के प्रधान भट,
खूब अपनायो राज्य अहमदसाह खल॥
मथुरा कतल मंडि जानैं करि दिल्ली जेर,
मारि मरहट्ठन बिडारे परि हीन बल॥
साह आलीगोहर के जे भट मिले सभय,
ते जवन ताहीके अधीन कीनें छोरि छल॥१४॥

पूर्व में इरान का जो अपने बल से बादशाह बना और जिसका नाम नादिरशाह था जिसने दिल्ली में कत्लेआम मचाया था। उस को उसी के विश्वासपात्र एक वजीर ने मार डाला और वह वजीर अहमदशाह फिर इरान का बादशाह बन बैठा। इस अहमदशाह ने भी मथुरा को कत्लगाह बनाया और दिल्ली को दबाया। जिसने मराठों को मार कर बलहीन बनाया। तब दिल्ली के बादशाह आलीगोहर के कुछ सामन्त डर के मारे उससे जा मिले और उस यवन ने भी तब उन्हें अपने अधीन रख लिया।

सत्रह मतंगज भू संबत प्रथम समैं,
अहमदसाह रनजीति तब दिल्ली आइ।
दिल्लीपति मंत्री लखनेऊ ईस उक्त दूजो,
प्रबल रुहेला जो नजीबुद्दोला नाम पाइ।

दिल्ली काज तंत्र इनकै करिगयो जो देस,
जाबितखाँ पुत्र भो नजीबुद्दोला गेह जाइ।
सुनु जा रुहेला कै भयो गुलामकादिर सो,
दिल्ली लूटिबे कौं आयो या समै छल दुराई ॥१६ ॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्रह में अहमदशाह जब युद्ध जीत कर दिल्ली आया। उस समय दिल्ली का वजीर लखनऊ का नवाब था और एक दूसरा प्रबल रुहिल्ला था जिसका नाम नजीबुद्दोला रख कर अहमदशाह इनके भरोसे दिल्ली का कामकाज छोड़ गया था अर्थात् इन्हें सर्वेसर्वा बना गया था। इस रुहिल्ला नजीबुद्दोला के एक पुत्र गुलामकादिर नामक हुआ। वह गुलामकादिर इस समय छल-कपट से दिल्ली को लूटने आया।

पहिलैं ख बेद धृति संबत अनेह पर,
दिल्ली साहआलम नै दुर्बल व्है पाइ दुख॥
माहजि सनाम ताम संध्या कों सबल मानि,
मंत्री निज कीनो सो पटैल बज्यो लोकमुख॥
वाके बल स्वस्थ बेद बेद धृति साक अब,
सो गुलामकादिर चलायो लैन लूट सुख॥
साह हत लाह ताहि राह मैं न रोकि सक्यो,
रोकि अब दिल्लीद्वार पैठिबे की जानि रुख॥१७॥

पूर्व में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चालीस में दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने स्वयं को कमजोर पाकर और दुखी होकर जब महादजी सिंधिया को प्रबल मानते हुए उसे अपना शाही वजीर नियुक्त किया। जो लोक में पटेल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी वजीर पटेल के बल पर चिन्ता रहित होकर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चवालीस में अब गुलामकादिर रुहिल्ला लूटपाट में सुख पाने लगा। हतोत्साही और निर्बल बादशाह दिल्ली आने के रास्ते में तो उसे रोक नहीं पाया पर अब उसके दिल्ली प्रवेश को सोचकर बादशाह ने दिल्ली नगर के सारे दरवाजे बन्द करवा दिये।

जाकै द्वैहजार जंगी कामके सिपाह जानि,
रोक्यो तस अैबो साह आलम प्रमत्त रहि॥

अलैयार सुलैमान नाजर प्रमुख इहाँ,
बोले करजोरि है रुहेला स्वीय धर्म बहि॥
उज्झि भय भाखत भरोसा के जनन ऐसें,
सो गुलामकादिर बुलायो सह सैन सहि॥
आइ तानैं साह दिय पट्टसौं उतारि अरु,
कुद्धबनि मंगिय खजानां मनि मुख्य कहि '१८॥

बादशाह अपने भरोसे और काम के दो हजार सिपाहियों को उसे रोकने के लिए तैनात कर बादशाह शाहआलम प्रमत्त बना रहा। तब अलीयार, सुलेमान और नाजरखान आदि ने बादशाह से करबद्ध प्रार्थना की कि वह रुहिल्ला गुलामकादिर अपने धर्म पर चल रहा है। हम भय छोड़ कर यह कहना चाहते हैं कि हे बादशाह! जो आपके खास भरोसे के हैं उन्हीं ने इस गुलामकादिर को ससैन्य बुलाया है। ऐसी बातों पर बादशाह ने कोई खास ध्यान नहीं दिया पर वह गुलामकादिर आया और उसने बादशाह को गद्दी से उतार दिया और कुपित होकर शाही खजाने की चाबी मांगी कि उसमें एक खास मणि उपलब्ध है।

कूर पछिताइ साह बापुरे नजर कीनौं,
मनि गन आदि बित्त ब्रातँ जो हो ख्यात मन॥
तदपि न तृप्ति व्है बहोरि खिल मंग्यो तत्थ,
धूजि मुगलेस भाख्यो ऐसो अब तो न धन॥
साह कौं इतीक सुनि मारन लग्यो जो मूढ,
सोतो जिन आन्यो तिन रोक्यो नतिभाव सन॥
तोहू अति कुद्ध हाथ छुरिका निकासि तिहिं,
पूरे खल दीनौं साह आलम कौं अंधपन॥१९॥

पश्चाताप करते बेचारे कायर बादशाह ने तुरन्त ही शाही खजाने से वे मणियाँ मँगाई और धन का समूह जो उसे ज्ञात था, मँगा कर उसे नजर किया। पर इस पर भी उस दुष्ट ने संतुष्ट नहीं होते हुए और मणियाँ तथा रत्न माँगे, तब काँपते हुए बादशाह ने निवेदन किया कि ऐसे कोई रत्न हमारे खजाने में नहीं

हैं। बादशाह के मुँह से ऐसा उत्तर सुन कर वह दुष्ट बादशाह को मारने को उद्यत हुआ तब जिन लोगों ने गुलामकादिर को बुलाया था उन्होंने नम्रता का प्रदर्शन करते हुए उसे ऐसा करने से रोका तब भी अत्यन्त कुपित होकर गुलामकादिर ने जो अपनी छुरी निकाली थी उससे उसने दिल्ली के बादशाह शाहआलम की आँखें निकाल दी अर्थात् उसे अंधा बना दिया।

केते अधिकारी मुगलेस के कतल करि,
ठानि कछु काल दिल्ली आपुनौं अमल ठाम॥
पींछैं मरहट्ठ सेना आइबे की संक पगि,
हाथ जो लग्यो बसु सो लै भज्यो भजि हराम॥
ताको पलटाहु दीनौं दिष्टनै त्वरिततम,
बेर दुव आयो पकर्यो यह बुधन बाम॥
पीछैं कीलित राख्यो घोर कष्ट सूलपंजरमैं,
छेदि छेदि थोरो यौं रुहेला हन्यौं छल छाम॥२०॥

इसके साथ ही मुगलों के कई अधिकारियों को कत्ल कर उसने दिल्ली को कुछ समय तक अपने अधिकार में रखा। थोड़े दिनों बाद जब मराठा सेना के आगमन की चर्चाएं चलीं तो इस खबर को सुनकर वह हरामी जितना भी धन हाथ लगा उसे लेकर भाग गया। उसके इस अत्याचार का बदला भाग्य (नियति) ने तुरन्त दिया कि वह जब दूसरी बार दिल्ली आया तो इस बार चतुर व्यक्तियों द्वारा बंदी बना लिये जाने के बाद अपराधी की तरह आया। यहाँ तब उसे लोहे के काँटेदार पिंजरे में कैद कर रखा गया जिससे वह थोड़ा-थोड़ा नित्यप्रति छिदता रहा। इस तरह छल-कपट में समर्थ रुहिल्ला गुलामकादिर कष्टप्रद अंत को प्राप्त हुआ।

माहजि वजीर इम जाबितखाँ सूनु मारि,
आनि साहआलम ही बैठार्यो तखत अंध॥
तंत्र निज कीनौं सब मुलक परन्तु ताको,
बाहिनी बडी बल बसुधंरा बिरचि बंध॥
साक सर बेद इभ अवनि अनेह इत,
भो पता अनसु भूप कृष्णागढ को कमंध॥

ता सुत कल्यान गुरुमानी पट्ट बैठो तास,
राम प्रभु मातुल जो रावरो सिथिल संध॥२१॥

शाही वजीर महादजी सिंधिया ने इस तरह जाविदखान के बेटे गुलामकादिर को मार कर दिल्ली के तख्त पर वापस अंधे बादशाह आलमशाह को बिठाया और इस तरह पूरे मुल्क को फिर से अपने बादशाह के अधीन किया। फिर पृथ्वी की बड़ी सेना अर्थात् शाही सेना से बंधन किया अर्थात् उसके बल पर मुल्क को अधीन रखा। इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पैंतालीस में किशनगढ़ के राठौड़ राजा प्रतापसिंह का देहान्त हो गया तब उत्तराधिकारी बन कर उसका पुत्र कल्याणसिंह राजगद्दी पर बैठा जो महाअहंकारी था। हे राजा रामसिंह! वही कल्याणसिंह जो आपका मामा था और वचन निभाने में ढीला था।

तर्क बेद अष्ट ससि संबत समय तामैं,
ईस जयनैरको प्रताप नृप बुन्दी आइ॥
श्राम इस सुभ्र बुध पंचमी लगन साधि,
दीपसिंह तनया बिबाह्यो सुखमा दिपाइ॥
नामकरि दुलही बिचित्रकुमरी जो निज,
अनुज तनूजा ब्याही श्रीजित मह अघाइ॥
पत्नी हीन आप यांतैं दीपसिंह पानि करि,
कन्यादान कीनों बिधि गेहतैं खिल बनाइ॥२२॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छियालीस में जयपुर का कछवाहा राजा प्रतापसिंह बून्दी आया और आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के लग्न को साधते हुए विवाह किया। राजा ने हाड़ा दीपसिंह की पुत्री विचित्रकुमारी से विवाह कर अत्यंत शोभा पाई। अपने छोटे भाई की पुत्री का विवाह श्रीजित ने पूरी धूमधाम से उत्सव के साथ करवाया। राजा श्रीजित स्वयं पत्नीविहीन था इसलिए दीपसिंह ने विधि-विधान पूर्वक कन्यादान किया और विवाह के शेष रिवाज भी उसी के द्वारा सम्पन्न हुए।

गढ तैं अवधि लैकैं बून्दीपुर गोपुरलौं,
मनुज न मायें जे जिमाये ते बजार बीच॥

होत जन भोजन चली बहि तरंगिनी व्हाँ,
सर्करासो सो ही करि आज्य जल भक्त कीच॥
अनुज की तनूजा प्रताप कौं बिबाहि ऐसैं,
------------------------ ॥
आची सीख जैपुर अलोरकै भयउ आजि,
सीमापुर संकुलि मचावत मरक मीच॥२३॥

गढ़ से लगा कर बूँदी के नगरद्वार तक आदमी नहीं समाये जहाँ पर प्रजाजन जीम रहे थे वहाँ से मानो नदी बह चली। इस नदी में शक्कर ही रेत थी, घी ही जल था और चावल ही उसका कीचड़ था। छोटे भाई की पुत्री का विवाह श्रीजित राजा उम्मेदसिंह ने कछवाहा राजा प्रतापसिंह के साथ इतनी धूमधाम से सम्पन्न करवाया। बून्दी से दुल्हन सहित विदाज्ञा लेकर आते हुए राजा प्रतापसिंह ने मार्ग में देखा कि उसके राज्य की सीमा पर युद्ध मचा है। यह भिड़ंत जयपुर और अलोर के मध्य हो रही थी जिसमें सीमा पर एकत्र वीर मरी रोग के समान सामने वाले को मार रहे थे।

जाबदूके बंस बर सांवतका बीर जानि,
श्रीजित नैं पहिलैं प्रताप कौं दयो सुभट॥
सीम रनमैं सो अभिधा करि बिनयसिंह,
इहाँ काम आयो पायो अच्छरीन जो प्रकट॥
मुहुकमसिंहउत्त जाके बोल देत मुरि,
मंगल स नाम बीर आयो काम बीरबट॥
जैपुर बिनय राख्यो श्रीजितनैं भाखि जैसो,
पूजि तैसी कूरमपैं बाहमैं रह्यो निपट॥२४॥

पूर्व में हाड़ा राजा श्रीजित ने जाबदू के वंश में सांवतका वीर और बून्दी के सामन्त को राजा प्रतापसिंह को दिया था। वह विनयसिंह राज्य की सीमा पर हुए युद्ध में बहादुरी के साथ लड़ता हुआ अपने नाम को अमर कर कट मरा। वह विनयसिंह सावंतका वीर यहाँ काम आया और उस प्रसिद्ध वीर को अप्सराओं ने वरा। इसी तरह मुहुकमसिंह के बोल सुन कर वह मंगलसिंह नामक वीर भी वीरता प्रदर्शित कर काम आया। श्रीजित ने जितनी

प्रशंसा विनयसिंह की थी उसे सुनकर ही जयपुर ने उसे रखा और वह वीर विनयसिंह भी अन्त समय तक बराबर कछवाहा राजा की प्रशंसा का पात्र बना रहा ।

संबत तुरग बेद बारन अवनि समै,
पोकरनि वारे नैं बिरोध बाँध्यो छल पारि॥
जोधपुर दुर्ग नाती भीम कौं तखत जोरि,
याको तात तात भूप बिजय दयो उतारि॥
कोप बस चंपाउत पहिले कुसलसिंह,
कीनौं बखतेस जोधपुर पै अनयकारि॥
तार्कें अंत पाट बैठो बिजय तनूजा ताको,
मान्यो उपकार भार तापै जैत मदमारि॥२५॥

उधर जोधपुर में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सैंतालीस में पोकरण वाले (पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह) ने छल पूर्वक राज्य का विरोध किया। उसने जोधपुर के गढ़ पर (गादी पर) पोते भीमसिंह को बिठा कर उसके पिता अर्थात् पितामह विजयसिंह को गद्दी से उतार दिया। पूर्व में चांपावत कुशलसिंह ने कुपित हो कर अनीतिपूर्वक बखतसिंह को जोधपुर का राजा बनाया था। इस राजा बखतसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विजयसिंह जोधपुर की राजगद्दी पर बैठा। राजा बनते ही उसने कुशलसिंह चांपावत का उपकार माना पर जैतसिंह का मद मार दिया अर्थात् उसकी तोहीन कर दी।

आउवा अधीस जैत कुसल तनूज अरु,
देवसिंह पोकरनिवारो चंपाउत दोहि॥
केसरी तृतीय ईस आसोप को कुंपाउत,
रासिपति ऊदावत केसरी सनाम सोहि॥
चीनी पहिलैं ए अपनैं मत चलत च्यारि,
राज परिखद मैं इन्हैं नृप बिजय रोहि॥
पकरि पठाइ कारा मारे दुख दैदै पूर,
बरस अनेक बीते जोपै रह्यो बैर जोहि॥२६॥

आऊवा का स्वामी जैतसिंह जो कुशलसिंह चांपावत का पुत्र था उसके साथ दूसरे चांपावत पोकरण के देवसिंह को, तीसरे आसोप के जागीरदार कुंपावत केसरीसिंह को और चौथे रास के स्वामी उदावत केसरीसिंह को, इन चारों को राजा विजयसिंह ने यह देख कर कि ये सभी अपनी मनमर्जी से चलने वाले हैं मेरा अंकुश नहीं मानते, राजसभा में आने से रोक दिया। राजदरबार में नहीं आने देने के साथ ही राजा ने उन्हें बंदी बनवा कर कारावास में डाल दिया। जहाँ वे कई वर्षों तक दुःख झेलते रहे। एक तो इस बात का वैर था जिसके कारण विजयसिंह को गद्दी से उतरना पड़ा।

देवसिंह चंपाउत कहतो असह दर्प,
मो कटार कोसपुट जोधपुर दुर्ग माइ।
सोतो कीलि मार्‍यो भो तनै तस सबलसिंह,
परिगो दगासौं सो पै तुपक प्रहार पाइ।
ताको हुतो तनय सवाईसिंह नाम तस,
जानै धरि बैर अब उक्त समै ढिग जाइ।
आराध्यो बिजय भूप ऊपरकी प्रीति सौं यौं,
भूलि कृत भोरो जैसैं धीजि गयो मन भाइ॥२७॥

पोकरण का देवसिंह चांपावत असह्य दर्प के साथ कहा करता था कि मेरी कटारी की म्यांन में जोधपुर का गढ़ समा सकता है उसको तो कैद कर मारा। उसका पुत्र था सबलसिंह वह भी धोखे से चली तोप के प्रहार से मारा गया। इसका जो पुत्र था उसका नाम सवाईसिंह। इसने अपने पिता और दादा के मारे जाने का वैर मन में धारण किया। फिर इस समय उसने राजा विजयसिंह के पास जा कर धूर्तता भरी चापलूसी से आराधना की इससे जैसे भोले स्वभाव वाला आदमी शीघ्र विश्वास करता है उसी तरह भोले राजा विजयसिंह ने भी भरोसा कर लिया।

कथित गुलाबराय जाटिनी खवासि करि,
रानिन को छोगा करि राखी जो बिजयराज॥
राखी बँधवाइ तापै भगिनी कहत रह्यो,
कुदिल सवाईसिंह निबहन इष्ट काज॥

तेजसिंह नामक खवासिकै हतो तनय,
बिस्फोटक रोग भयो ताकै सो बढत बाज॥
तामैं न्हान आदि काम नियत असेस तजि,
साँचो भ्रात भास्यो भगिनि कौं सो उचित साज॥२८॥

जोधपुर के राठौड़ राजा ने एक गुलाबराय नामक जाट स्त्री को अपनी पासवान बना रखा था। यह गुलाबराय राजा को इतनी प्रिय थी कि वह सब रानियों की सरताज बनी हुई थी। इस गुलाबराय से चांपावत सवाईसिंह ने राखी बंधवा ली और वह खोटे दिल वाला चांपावत अपने इष्ट कार्य की पूर्ति हेतु उसे बहिन कहने लगा। इस पासवान के एक पुत्र तेजसिंह नामक था उसे चेचक का रोग हो गया और शीघ्र ही बहुत बढ़ गया। तब उस सवाईसिंह चांपावत ने कई दिनों तक अर्थात् जब तक तेजसिंह का चेचक रोग ठीक नहीं हो गया तब तक न स्नान किया न बाल कटवाये। ऐसा कर उसने स्वयं को इस बहिन का सच्चा भाई सिद्ध कर दिया।

बिस्फोटक मिटिगो तथापि पटुता न बनी,
चँपाउत भाख्यो भगिनी सौं यह हेतु चहि।
मंडोउर जाइ पूज्य देवन मनाइ रचो,
पूजन बढैं ज्यौं बाल जामिज अरोग रहि।
दंपति पधारि सब भटन समेत द्रुत,
अभय करो यौं तेजसिंह ग्रस्यो रोग अहि।
सो सुनि गुलाबराय स्वामी कौं सब समेत,
मानिमत मंडोउर लैगई बिसास लहि॥२९॥

चेचक का रोग मिट गया पर गुलाबराय से पूरी आत्मीयता नहीं हो पाई यह देख कर चांपावत ने अपनी बहिन से कहा कि मंडोर जा कर देवों की पूजा की जानी चाहिए। आप उनका इष्ट रख कर यदि पूजा करेंगी तो मेरा भानजा तेजसिंह निरोग बना रहेगा। आप और राजा सहित जोधपुर के सभी सामन्त जोड़ों से मंडोवर जायें । वहाँ जा कर सभी प्रार्थना करें कि हे देव! तेजसिंह को रोग रूपी सर्प ने डस लिया है इसलिए आप उसकी रक्षा करें।

सवाईसिंह की ऐसी राय सुनकर गुलाबराय मन में विश्वास करती हुई राजा सहित सभी सामन्तों को जोड़े सहित साथ ले कर मंडोर गई।

आपुनौं दिखाय ऐसैं चंपाउत पैठि उर,
रीझत स्वसा ज्यौं बस कीनी सो गुलाबराय॥
ताकै परतंत्र हो महीपति बिजस तैसैं,
कहती वहै सो करतो मन बचन काय॥
पीछैं जो मर्‍यो सुत तज्यो व्हाँ अन्न दंपति नै,
चंपाउत तबहु लिवायो अन्न हित चाय॥
काहू मिस ऐसैं उक्त संबत नृपहिं काढि,
लैगो पुरबाहिर पूर बाहिर लगाय लाय॥३०॥

इस तरह अपनापन दिखला कर सवाईसिंह ने अपनी बहिन को प्रसन्न किया। उसने गुलाबराय के दिल में अपना स्थान बना लिया। जोधपुर का राठौड़ राजा विजयसिंह तो पूरी तरह से गुलाबराय के वश में था। वह जैसा कहती, जो करने को कहती राजा मन, वचन और काया से वह सभी कुछ करता। थोड़े दिनों बाद गुलाबराय के पुत्र तेजसिंह का निधन हो गया तो इस सदमे से राजा और पासवान दोनों ने अन्न ग्रहण करना छोड़ दिया। ऐसे में अवसर देखकर सवाईसिंह ही आगे आया और उसने आग्रहपूर्वक पति पत्नी का अनशन तुड़वाया। यही सवाईसिंह चांपावत विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चालीस में एक दिन राजा को अपने साथ नगर के बाहर ले गया यह कर कि नगर के बाहर बड़ी जोर की आग लगी है (संभवत् यह आग सवाईसिंह ने ही लगवाई हो)।

स्वीय भट सर्ब राखि पुरमैं सवाईसिंह,
संग व्है अकेलो काढि स्वामी समुपेत सब॥
गोपुर जुराइ पुर पीछो पैठि गढगति.
जेठो नृप नाती भीम कारातैं निकासि जब॥
आप मंत्रीपन कौं करार करि ताकौं आनि,
त्रान सौं सभाके सौध गद्दी बइठारि तब॥

नालीगन उच्छव के सूचक दगाइ नैर,
अखिल दुहाई फेरी भीम की नवीन अब॥३१॥

इस समय चांपावत सवाईसिंह ने अपने भरोसे के योद्धाओं को नगर में ही रखा फिर वह अपने स्वामी के साथ सभी को नगर से बाहर ले गया और स्वयं ने किसी बहाने से वापस नगर में आकर नगर के द्वार बंद करवा दिये। फिर वह सीधा गढ़ में गया और वहाँ राजा के पौत्र भीमसिंह को कारा से निकाल लाया। इसके बाद भीमसिंह से स्वयं को मुख्य सचिव बनाने का वचन ले कर, वह अपनी सुरक्षा में भीमसिंह को ले कर राजसभा के महल में आया। यहाँ आ कर उसने भीमसिंह को जोधपुर की राजगद्दी पर बिठा कर राजा बना दिया। राजा बनने के उपलक्ष में उसने तोपें दगवाईं और पूरे नगर में भीमसिंह के नाम की दुहाई फिरवा दी अर्थात् उसे नया राजा घोषित कर दिया।

भूपति बिजय के सुने ए सुत सात भये,
फतैसिंह जालम रु भोमसिंह नाम फबि॥
त्योंही सरदार सेरसिंह रु गुमान तह,
सांमतादिसिंह नाम सप्तम को छाइ छबि॥
तेजसिंह नामक खवासि के भयो तनय,
होइ सुत जेठे सम जासों रहे सर्ब दबि॥
भूखन बसन सस्त्र बाहन अतुल भासैं,
रोचमान जाको बपु ज्यौं जगमगात रबि॥३२॥

राजा विजयसिंह के सात पुत्र सुने गए इनके नाम इस प्रकार थे फतहसिंह, जालिमसिंह, भोमसिंह, सरदारसिंह, शेरसिंह, गुमानसिंह और सामन्तसिंह। उनकी पासवान के एक पुत्र तेजसिंह नामक हुआ। इस तेजसिंह का सभी ऐसा कायदा रखते थे जैसे वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र अर्थात् पाटवी हो। उसके आभूषण, वस्त्र, शस्त्र और वाहन सभी अतुलनीय होते और इन सब के साथ उसका शरीर कांतिवान हो कर यों जगमगाता जैसे सूर्य हो।

भोम सुत भीम रु गुमान सुत मानसिंह,
सप्तम कै सूनु भयो सूरसिंह नाम सह॥

भूपको बडो सुत कुमारहिं अनसु भयो,
ताके पुत्र मान्यो भीम भोमको तनुज तह॥
बाहिर हो जालम जो जनक प्रसाद बल,
जालपुर मान हो गुलाबराय इष्ट जह॥
ओर सुत नाँती जिते जियत हुते ते आप,
कारा कीलि राखेहे बिचारि घर मैं कलह॥३३॥

राजा के बेटे भोमसिंह का पुत्र था भीमसिंह और गुमानसिंह का पुत्र मानसिंह इसी तरह सबसे छोटे अर्थात् सातवें बेटे सामन्तसिंह का पुत्र था सूरसिंह। राजा का ज्येष्ठ पुत्र फतहसिंह तो कुमारावस्था में ही मर गया था उसके गोद भोमसिंह के पुत्र इस भीमसिंह को रखा। पिता राजा की प्रसन्नता के कारण दूसरा कुमार जालिमसिंह कारा से बाहर था और मानसिंह जालौर में था, जो गुलाबराय की पसन्द था। इनके अलावा सारे बेटों, पौत्रों को राजा विजयसिंह ने कैद कर रखा था यह सोच कर कि यदि ये बाहर आजाद रहेंगे तो घर में ही कलह करेंगे।

कारातैं निकासि ऐसैं भीम कौं नृपति कर्यो,
सो सुनि बिजयसिंह आन्यो उर कष्ट अति॥
रानी सम मानी सो खवासिहु गुलाबराय,
मारि डारी चौरैं भेजि घातक संदभ मति॥
कुटिल सवाई पुरबाहिर बिजय काढ्यो,
गोकुलस्थ गुरुन मिलापहिं कहत कति॥
कैसैं कछु होहु पैं खवासि कौं हनि रु काक,
बाहिर ले बिजय दयो दुख गरूर गति॥३४॥

चांपावत सवाईसिंह ने तब कारावास से भीमसिंह को निकाल कर राजा बना दिया। जब यह खबर राजा विजयसिंह ने सुनी तो उसके दिल में बड़ा कष्ट हुआ। यहीं नहीं राजा ने जिस पासवान गुलाबराय को अपनी रानियों से अधिक प्रिय मान कर चाहा उसे भी इस दंभी सवाईसिंह ने घातक भेजकर सभी के सामने मरवा डाला। इससे अधिक तो यह कि उस कुटिल चांपावत ने मुझे (स्वयं राजा विजयसिंह) भी नगर से बाहर निकाल दिया। यहाँ कुछ

लोगों का मत है कि नहीं राजा विजयसिंह इस समय गोकुल में अपने गुरुओं की संगत में था। सत्य कुछ भी रहा हो पर यह तय है कि पासवान गुलाबराय को मार कर उस काक ने नगर से बाहर कर गरुड़ की तरह अथवा अपने गरूर (दंभ) से दुःख दिया।

सेस भट संगहे बुलाइ तिनकौं बिजय,
रंकपन लैं कह्यो सभामैं इम रोइ रोइ॥
मैं जरठ कोलौं अब रहिहौं जियत मंद,
पंचन को जो मत कहो वह लछन पोइ॥
पोखरिनवारेसों कहाई तब पंचन नैं,
खीज बस क्यों यह कंलक लेहु जस खोइ॥
यौं तिहिं कहाई मो कों भीम कों मिलै अभय,
होहु तुम बीच तो इहां बिजयभूप होइ॥३५॥

तब राजा विजयसिंह ने अपने साथ जो सामन्त नगर के बाहर थे उनको एकत्र कर रंक की तरह रोते हुए कहा कि सभासदो! मेरा बुढापा है, मैं अब और कितने दिन जीवित रहूँगा? अर्थात् थोड़े ही दिन का हूँ! ऐसे में आप पंचों का मत क्या है? उसे कहो! यह सुन कर पंचों ने मंत्रणा की और पोखरन वाले (सवाईसिंह) से कहलाया कि हे चांपावत! खीझ कर अब ये कलंक अपने सिर पर क्यों लेते हो? जब पंचों का यह सन्देश सवाईसिंह को मिला तो उसने कहलाया कि मेरी पहली शर्त यह है कि मुझे और भीमसिंह को अभय दी जाए। दूसरी यह कि आप पंच मध्यस्थ रहोगे। यदि दोनों शर्ते मंजूर हों तो जोधपुर का राजा फिर से विजयसिंह हो सकता है अन्यथा नहीं।

आँट कछु बासर रही यह उभय ओर,
जोरि छल गूढ जो महीपति बिजय जानि॥
सबन के आगैं निज इष्टके करत सौंह,
इनकौं बुलायो मिल्यो चंपाउत दुष्ट आनि॥
बोल्यो पंच करहु करार दस कोस बट्ट,
जूझि पहुँचैबो भीम मो जुत तियत जानि॥

तुम सहधर्म यह बचन निबाहो तोतो,
बिजय कों गादी दै निकासौं भीम हठ बानि ॥३६॥

कुछ दिनों तक दोनों पक्षों में अवरोध बना रहा फिर गूढ़ छल के जोड़-तोड़ के चलते राजा विजयसिंह ने अपनी स्थिति समझते हुए पंचों के समक्ष अपने इष्ट देव की शपथ उठाई कि तुम करो वह मुझे स्वीकार है। तब पंचों ने चांपावत को बुलाया और बुलावे पर वह दुष्ट सवाईसिंह भी आया। उसने आते ही कहा कि यदि पंच यह करार करें कि वे साथ रह कर हमें जोधपुर से दस कोस की दूरी तक सुरक्षित पहुँचाएँगे अर्थात् राह में युद्ध हो तो भिड़ेंगे और मुझे भीमसिंह के साथ वहाँ से जीवित निकालेंगे! यदि तुम सभी सामन्त अपने धर्म से यह वचन निभाओ तो विजयसिंह को राजगद्दी वापस मिल सकती है और भीमसिंह वहाँ से हट सकता है अन्यथा नहीं।

बायस सवाई लै यों पंचन बचन बीच,
जोधपुर आइ भाख्यो भीमसौं जस जनाई॥

एक दुव अब्द भूप रहि है जियत अब,
जाके अंत नियत तुम्हारो पट्ट कित जाइ॥

लीजे रत्न दुलभ खजानाँ खोलि संग सब,
कीजे कछुकाल बास मोघर यौं बहिकाइ॥

भीमहिं उतारि त्यों सवाईसिंह पाप भट,
चाल्यो कोस लूटि पीछो नृपकौं गढ चढाइ॥३७॥

काका सवाईसिंह पंचों से ऐसा करार कर जोधपुर नगर में आया। यहाँ आ कर उसने भीमसिंह से कहा कि अब यह राजा विजयसिंह एक वर्ष और यदि नहीं तो दो वर्ष और जीवित रहेगा। इसके मरने पर तेरी गद्दी तो पक्की है वह कहाँ जाएगी? इसलिए शीघ्र ही खजाना खुलवा कर बहुमूल्य रत्न अपने कब्जे में करो, फिर चल कर कुछ दिनों के लिए मेरे घर मेहमान बन कर रहो। भीमसिंह को इस तरह बहका कर वह सवाईसिंह गढ़ से उतार कर और राजा विजयसिंह को गढ़ में चढा कर जोधपुर से चला।

जात गढ ऊपर छली नृप पकरि जोर,
धकि उर कोप तोप मुच्छन पै पानि धरि॥

जोजो निज मंत्र ही चमूसो पठई जवनक,
जवन गोकुलस्थ जालम ए मुख्य करि॥
भीम रु सवाईसिंह दोउन क तोरि भट,
आनहु कै पकरि अधर्मी अति सीम अरि॥
ऐसी कहि बाहिनी पठावत बचनवारे,
भीमहिं बचावन मिले उतकौं धर्मभरि॥३८॥

इधर राजा विजयसिंह ने गढ़ में आते ही अपने मन के छल को प्रकट कर क्रोधाग्नि में तोप की तरह जलते हुए अपनी मूंछों पर हाथ धरा (ताव दिया) और ज्यो-ज्यो सामंत राजा के साथ थे अथवा राजा की सलाह मानने वाले थे उनकी सेना भेजी। इस सेना में यवन (नवाब हमदानी) गोकुली गोस्वामी और जालिमसिंह को मुख्य बनाया और कहा कि उन अधर्मियों और मेरे प्रबल शत्रुओं भीमसिंह और सवाईसिंह चांपावत के मस्तक काट कर लाओ अथवा पकड़ कर लाओ! अर्थात् जीवित या मुर्दा मेरे सामने हाजिर करो! ऐसा कह कर राजा विजयसिंह ने सेना को रवाना किया तब वे सामन्त जिन्होंने शर्तानुसार दोनों को अभय का वचन दिया था वे अपने धर्म की मर्यादा को विचार कर भीमसिंह आदि को बचाने हेतु मिले।

चूकत करार भूप. बिजय अधर्म चहि,
झेलि अघ सेना पठई सो पहुँची झँवर॥
व्हाकैं जाट चंपाउत देव पकरायो हुतो,
तास नाती बाको कुल संहर्यो असेस तर॥
कोल जिन कीनौ उत व्है तिन मुरन कह्यो,
बिजय अनीक तोहू मुरिबो न मानि बर॥
खूब असि झारत दुओर के सुभट खिरे,
पेख्यो कछु काल सो सवाई भीम पीलुपर॥३९॥

मिल-क़र सभी ने मंत्रणा कर कहा कि राजा विजयसिंह अधर्मपूर्वक अपने किये हुए करार से विचलित हो गए है। वचनभंग का पाप झेल कर राजा ने जो सेना भेजी वह झँवर गाँव में पहुँ ची। पूर्व में इसी गाँव के जाटों ने गले में फन्दा डालकर देवसिंह चांपावत को पकड़ा था। उसके पोते सवाईसिंह

ने उनके शेष कुल को मारा, किसी को भी जीवित नहीं छोड़ा था। जिन्होंने सवाईसिंह के साथ कोल वचन किया था उन सामन्तों ने राजा विजयसिंह की सेना को वापस मुड़ने का कहा पर उस सेना ने मुड़ना अच्छा नहीं माना। यहाँ जमकर तलवारें चलीं। दोनों पक्षों के कई वीर कट कर रणभूमि में बिखरे। इस रणभूमि में लोगों ने थोड़ी देर के लिए भीमसिंह और सवाईसिंह चांपावत दोनों को एक हाथी पर सवार देखा।

जोधपुर राजकी सभा ही होते सून्य जह,
आपुनैं जे जुझे तिनके दृग बचाइ अब॥
पीलुतैं उतरि भीम सजुत पिहित पापी,
जो करभ बैठि लग्यो पोखरनि पंथ जब॥
काके आगैं लरत इतैं इनतैं काहू कह्यो,
ते जे कछु सेस सून्य बारन निहारि तब॥
कुणपन जारि गये ऊबरे निज निकेत,
सेस इतके जे पहुँचे ते नृप पास सब॥४०॥

कल्पना में अपनी आँखों के आगे से जोधपुर की राजसभा के हटते ही अथवा दूसरे अर्थ में जोधपुर के सामन्तों की सेना के आगे अपने पक्ष की सेना को शून्य होते देखा तो अपने आदमियों की नजर बचा कर हाथी से उतर कर गुप्त रूप से वह पापी सवाईसिंह, भीमसिंह सहित ऊँट पर सवार हो पोकरण के रास्ते पर तेज गति से बढ चला। इनके पक्ष वालों में से ही किसी ने पूछा कि आखिर हम किसके आगे लड़ रहे है ? तब जो थोड़े से वीर योद्धा शेष थे उन्होंने मुड़ कर पीछे देखा तो क्या देखते हैं कि हाथी खाली है। उस पर सवार कोई नहीं न तो सवाईसिंह न भीमसिंह। तब इन लड़ने वालों ने भी लड़ना छोड़ा और अपने पक्ष के जो वीर मरे उनके शवों की अन्तिम क्रिया की। इस तरह शेष रहे वीर अपने घर गए। उधर राजा विजयसिंह के पक्ष की सेना में जो शेष जीवित रहे वे सभी अपने राजा के पास लौटे।

साक बसु बेद नाग भू मित समा समय,
जैपुर अंवती के बिरोध बढ्यो क्रोध जगि॥
तुंगापुर खेत आयो ग्राहजि प्रसभ तानि,
लक्ख दुव लै बल अहंबल आयास लगि॥

कूरम सचिव दोला आधेइ राज्य दैन कहि,
पर जो नबाब हमदानी आन्यों प्रीति पगि॥
ऊबर्‌यो अनीक जोधपुर को सहाय आयो,
दोहू ओर घोर अवमर्द मच्यो तोप दगि॥४१॥

इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अड़तालीस में जयपुर और उज्जैन के मध्य विरोध बढ़ा और क्रोध जागा। इससे महादजी सिंधिया हठपूर्वक अपनी सेना के साथ तुंगा नामक गाँव की रणभूमि में आया। श्रमपूर्वक जुटाई गई दो लाख की जंगी सेना के साथ मेरे जैसा कोई नहीं, ऐसे दर्प से भरा सिंधिया पहुँचा। तब इधर से कछवाहा राजा के सचिव दोला ने जयपुर का आधा राज्य देने की पेशकश की पर इसी समय नवाब हमदानी झँवर के युद्ध से बची हुई सेना लेकर सहायता करने आ पहुँचा। फिर क्या था दोनों ओर से घमासान युद्ध छिड़ा और तोपें दागी जाने लगीं।

क्रोधबस जोध गय हय मय नासकाल,
पेखत खरे दुव चमुँ परि गजन पीठि॥
गोला लगि एतेमैं करी तैं हमदानी गिर्‌यो,
आकुलता होत जयनैरके कटक ईंठि॥
भ्रात हमदानी को तदीय गज सज्जभयो,
कूरम कह्यो यौं निज ओर के टकत नीठि॥
दोला यह गोलामम अंग लगतो तो देर,
दैन असु नैकहु न होती यौं परत दीठि॥४२॥

क्रोध से भरे वीर मरने लगे। हाथी, घोड़ों और ऊँटों का नाश होने लगा जिसे अपने-अपने हाथी की पीठ पर राजा प्रतापसिंह और नवाब हमदानी दोनों खड़े हो कर देख रहे थे। जब वे दोनों सेना को देख रहे थे तभी तोप का एक गोला आ कर नवाब हमदानी के हाथी पर गिरा और जयपुर की सेना में अकुलाहट व्याप्त हो गई। तभी हमदानी का भाई उसके अपने हाथी पर लड़ने को सज्जित हुआ। इस समय कछवाहा राजा प्रतापसिंह ने अपने दोला नामक मंत्री से मुखातिब हो कर कहा कि हे दोला! अपनी लड़ती हुई सेना को देख कर इच्छा होती है कि जो गोला हमदानी के लगा यदि वह गोला मेरे लग जाता

तो कितना अच्छा होता कि प्राण गंवाने में देर नहीं लगती अर्थात् निर्लज्जता से भागने की अपेक्षा शीघ्र मर जाना बेहतर था।

भनत इतीक दोला बनिक कह्यो हे भूप,
स्वामीके निदेस बिनु आधोराज्य दैन पहि॥
आन्यौं सो मर्‍यो तो अब रावरो रह्यो अखिल,
भागधेय प्रभुको बलिष्ट भास्यो लक्ष्य लहि॥
भूपति प्रताप कै इतमैं लघुबाधा भइ,
चिंत्यो भुमि उत्तरन छोरिबो मंतग चहि॥
बोल्यो दै दुसाला मंत्री याबिच हरहु बाधा,
नाँतो गज सून्य देखि टिकिहै अनीक नहि॥४३॥

राजा के ऐसा कहते ही मंत्री दोला ने जवाब दिया कि हे राजा! मैंने अपने स्वामी के निर्देश के बिना ही उसे आधा राज्य देने की कही थी। ऐसा कह कर ही मैं उसे लड़ने लाया था। अब उसके मर जाने से पूरा राज्य आपके ही रह गया इस कारण मुझे आपका भाग्य बड़ा बलवान लगता है। यह संवाद हो रहा था इसी समय कछवाहा राजा को लघुशंका की हाजत हुई इससे राजा ने हाथी से नीचे उतरना चाहा। राजा ने तब अपना दुशाला मंत्री को सोंपते हुए कहा कि मैं वापस आऊं उतने समय तक इसे ओढ़ कर बाधा हर, अन्यथा हाथी को खाली देख कर अपनी सेना रणभूमि में अधिक देर टिकेगी नहीं भाग खड़ी होगी।

तैसैं ही करत परदल के प्रबीर तह,
आगैं बढि आवते लखे रजगुन उफान॥
हेति झारि सेना जोधपुर की दस हजार,
समुख भिरी व्हाँ ठानि सत्रुन को अवसान॥
काटि मरहट्ठ करवालन सौं संपराय,
माहजि भजायो कर्‍यो कूरम को जय मान॥
झँवर बचे जो खेत तुंगा के अखिल झरे,
जोधपुर रच्छक रहे सिसु नहि जवान॥४४॥

मंत्री ने वैसा ही किया पर तभी शत्रु के वीर रजोगुण के उफान से भरे रणभूमि में तीव्र गति से आगे बढते नजर आए। तभी जोधपुर से आई सेना के दस हजार वीरों ने अपने शस्त्र चला कर उन्हें रोका और शत्रु को मारने की सोचकर सामने आ कर भिड़ी। उन्होंने इस घमासान भिड़ंत में मराठों को अपनी तलवारों से काट-काट कर महादजी सिंधिया को रणभूमि से भागने पर मजबूर कर दिया और जयपुर का मान बढ़ाते हुए विजय दिलवाई। झँवर की रणभूमि से बच कर जो वीर आए वे सभी तुंगा के इस युद्ध में कट मरे। जोधपुर से रक्षा करने आई सहायक सेना में न बड़ा बचा न छोटा, सभी कट कर गिरे।

जय जो कंबधन के जोर यौं प्रताप पायो,
या ही उक्त संबत मैं दक्खिन प्रदेस इत॥
टीपूसुलतान अंगरेजन के त्रास टरि,
जुद्ध पहिले हीमैं भज्यो सठ कहाइ जित॥
हैदरअली जो महसूर नृप मंत्री हुतो,
हो जनक टीपू को सु स्वामी को बिगारि हित॥
आप बरजोर महसूर को बन्यौं अधिप,
चाल्यो मनमग्ग त्यौं गिनैं न उचिता ऽनुचित॥४५॥

इस तरह राठौड़ों के बल पर कछवाहा राजा प्रतापसिंह ने तुंगा के युद्ध क्षेत्र में विजय पाई। उधर इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ अड़तालीस में दक्षिण प्रांत में अंग्रेजों के भय से टीपू सुल्तान युद्ध से भाग छूटा और कायर मूर्ख कहलाया। हैदरअली जो इस समय मैसूर राज्य का मंत्री था वह टीपू सुल्तान का पिता था जिसने अपने स्वामी का हित बिगाड़ा और स्वयं बलपूर्वक मैसूर का राजा बन बैठा। उसने कुछ भी उचित अनुचित का ख्याल नहीं किया और मन चाहे मार्ग पर ही चलता रहा।

किंवदंती जाने किरस्तान पकरे कहत,
छअयुत प्रान तिनमैं लव चतुर्थ छोरि॥
क्रूर खिल पैंतालीस सँहस करे कतल,
बैरी सम भास्यो जो दया कौं अघसिंधु बोरि॥

ताकै सुत टीपू भो कहायो सुलतान तिम,
जो श्रीरंगपट्टन मैं राजधानी निज जोरि॥
सो सु सक उक्त बहिकायो फरासीसन को,
सत्रु कंपनी को सिट्यो मृध तैं तुरग मोरि॥४६॥

जनश्रुति प्रसिद्ध है कि उसने कई (ईसाइयों)अंग्रेजों को पकड़ा। ऐसा कहा जाता है कि उसने साठ हजार को पकड़ा उसमें से एक चौथाई अर्थात् पन्द्रह हजार को छोड़ दिया शेष सभी को उस क्रूर ने कत्ल कर डाला अर्थात् उसने पैंतालीस हजार क्रिस्तानियों को मारा। वह शत्रु की तरह निकला जिसने पाप के समुद्र में दया को डुबोया। ऐसे व्यक्ति का पुत्र टीपू हुआ जो सुल्तान कहलाया और जिसने श्रीरंगपट्टन नामक पुर को अपनी राजधानी बनाया। वह विक्रमी के अठारह सौ अड़तालीस में फ्रांसिसियों द्वारा बहकाया हुआ ईस्ट इंडिया कम्पनी का शत्रु बन बैठा पर युद्ध की स्थिति में रणभूमि से अपना घोड़ा मोड़कर लज्जित हुआ।

नैर बुंदी त्यौं इत हमीरसिंह नाथाउत,
विष्णुसिंह नृपकी खवासी बैठि एक अह॥
मंत्री बनि स्वामी को पितामह सो मोरि मन,
भाख्यो आप भूपति स्वतंत्र बलि ओज सह॥
ईस कोटा जालम अमात्य कहिबे को आज,
इच्छत बिवाही सुता आपकों मचाइ मह॥
व्है स्वसुर बंदगी बनाइबे उचित होइ,
जासों संधि राखत सितारा दिल्ली आदि जह॥४७॥

इधर बून्दी में राजा विष्णुसिंह की खवासी (हाथी के होदे के पास) में एक दिन हमीरसिंह नाथावत बैठा। वह अपने स्वामी हाड़ा राजा का मर्जीदान बन कर मंत्री बन गया। इसने तब राजा विष्णुसिंह को अपने पितामह से विमुख करवाने के लिए कहा कि हे स्वामी! आप तो स्वयं स्वतंत्र राजा हैं, बलवान हैं, ओजपूर्ण हैं! आप को चाहिए कि आप प्रस्ताव अनुसार कोटा के राजा के अमात्य जालिमसिंह झाला की पुत्री से पूरी धूमधाम और उत्सवपूर्वक विवाह करें। ऐसे श्वसुर से बंदगी पा कर आपको अच्छा लगेगा जिससे सतारा और दिल्ली के शासक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखते हो।

बात यह नृपहिं मनाइ यों करी बिदित,
श्रीजित निवास्यो उक्त सगपन होत सुनि।।
सूचकन सिच्छ बय जाबन उफान बस,
चाह करि व्याह कीनों अंगीकृत लाह चुनि।।
भाख्यो सुनि श्रीजित बडे हमहु आज भये,
गेह हमरे मैं अैबो झाली को अलक्ष्य गुनि।।
मान्यो बरजोर तोहू सगपन सो महिप,
पिसुन कहा न करै लागो प्रभुकान पुनि।।४८।।

नाथावत ने यह बात इस तरह से कही कि राजा के मन में बैठ गई अर्थात् वह तैयार हो गया पर श्रीजित को जब इसका पता चला तो उन्होंने इस सगाई को होने से रोका पर सूचना करने वालों की सिखावट से और यौवनावस्था की उम्र के होने से हाड़ा राजा ने जबरन यह विवाह करना स्वीकार किया। राजा का यह निर्णय सुन कर राजा श्रीजित ने कहा कि हम भी आज बड़े हो गये अर्थात् हमारा रुतबा बढ़ गया जब से यह सुना कि हमारे घर में अलभ्य झाला वंशीय बहू आ रही है। इस पर भी राजा विष्णुसिंह नहीं माना, उसने सगाई स्वीकार की। हे राजा रामसिंह! आप भी बताएँ कि चुगलखोर के कान खाने पर व्यक्ति क्या नहीं करता?

साहसी जो चंपाउत इतकों सवाईसिंह,
आपुने सदन द्रंग पोखरनि भीम आनि।।
दूजे अब्द लैगयो बिवाहन अजल देस,
जैसलसहित मेर भाटिन उचित जानि।।
व्याहि कैं सुन्यों तँहँ महीपति मस्यो बिजय,
ठीक लखि दुल्लह कों खल सल पीठि ठानि।।
जोधपुर लायो अर्धरजनी समय जोही,
पाए जुरे अरर न खोले इन्है पहिचानि।।४९।।

उधर उस हठी चांपावत सवाईसिंह ने भीमसिंह को अपने घर अर्थात् पोकरण नगर में ला कर रखा। अगले वर्ष वह भीमसिंह को ब्याहने भाटियों को उचित मानकर रेगीस्तान में स्थित जैसलमेर ले गया। उसने यहाँ भीमसिंह

का विवाह करवाया तभी जोधपुर से खबर आई कि राजा विजयसिंह का निधन हो गया है। यह सुनते ही उचित अवसर समझते हुए वह सवाईसिंह दूल्हा भीमसिंह को ऊँट पर सवार कर रवाना हुआ, वे आधी रात के समय जोधपुर पहुँचे। जोधपुर के दुर्ग के रक्षकों ने इन दोनों को पहचान लिया इसलिए मुख्य द्वार के बंद किंवाड़ नहीं खोले।

जाइ उपद्वार जब साहसी सवाईसिंह,
बित्त दै अधिक पटा दैबे को करार बहि॥
जामिक तहाँके फोरि बारी खुलवाइ जाइ,
गादी धर्यो भीमहिँ ढुराए चौँर बाँहँ गहि॥
तबहि अचानक बधाई की चलत तोप,
कोलाहल माँच्यो द्रंग जोधपुर त्राहि कहि॥
बाहिर हो जालम रह्यो सो पुर बाहि रही,
मारे संस रुद्ध राजबीजी भीम लेत महि॥५०॥

तब साहसी सवाईसिंह चांपावत ने किले के रक्षको के नायक को कुछ धन दिया और भीमसिंह के राजा बनते ही बड़ी जागीर का पट्टा दिलाने का लालच दिया और वचन देकर पहरेदारों को अपने पक्ष में कर दरवाजा खुलवा लिया। गढ़ में प्रवेश करते ही सवाईसिंह ने बाँह पकड़ कर भीमसिंह को राजगद्दी पर बिठा दिया और स्वयं नये राजा के चँवर ढुलाने लगा। जब किले से अचानक बधाई की तोप दागी गई तो पूरे जोधपुर नगर में कोलाहल मच गया। सभी ओर 'त्राहि-त्राहि' का शोर मच गया। इस समय जालिमसिंह नगर के बाहर था सो वह तो बाहर ही रह कर बच गया शेष सारे राजवंशियों को पकड़ कर भीमसिंह ने इस तरह राज लेते समय मरवा दिया।

दोहा

अंग बेद बसु चंद्र इह, नियमित संबत नाम।
अर्क चतुर्दसि सुचि असित, तज्यो बिजय बपु ताम॥५१॥
तदनंतर रट्ठोर तह, अष्टमि सित आषाढ।
भट चंपाउत भीमकौं, बिजय पट्ट दिय बाढ॥५२॥
बय त्रिसट्ठि हायन बिजय, तज्यो कलेवर तत्र।
बय छबीस सम भीम बलि, छितिप बन्यौं धरि छत्र॥५३॥

पहिलैं सूचिय जोधपुर, नाम अजित नरनाह।
तनय भए बाईस तस, अभय आदि रज राह॥५४॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उनचास के आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन जोधपुर के राजा विजयसिंह ने अपनी देह त्यागी। इसके बाद राठौड़ों से मिल कर आषाढ़ माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन जोधपुर के चांपावत सामंत सवाईसिंह ने भीमसिंह को स्वर्गीय राजा विजयसिंह की गद्दी दी अर्थात् पिता के तख्त पर बिठाया। राजा विजयसिंह ने तिरसठ वर्ष की उम्र में आकर शरीर छोड़ा वहीं छब्बीस वर्ष की आयु में भीमसिंह जोधपुर राज्य का छत्र धर कर राजा बना। पूर्व में बताया गया जोधपुर का राजा अजीतसिंह हुआ उसके कुल बाईस पुत्र हुए जिनमें अभयसिंह आदि रजवट (क्षत्रियत्व) की राह पर चलने वाले हुए।

सुत जोरावर खेमसर, स्वामी अंक समप्पि।
पुत्र देव इत पोखरनि, ईस अंक थिर थप्पि॥५५॥

कछुक दये इम भटनकौं, सुत अंकस्थ सुभाइ।
भजे सेस बखतेस भय, हन्यौं अजित तब हाइ॥५६॥

देव सु इम काकाहु दमि, भूपत बिजय भतीज।
कीलि हन्यौं न गिनैं कुहक, बंधुभाव नृपबीज॥५७॥

खेमसर के ठाकुर जोरावरसिंह ने अपने स्वामी के पोकरण ठाकुर गोद रख कर अपने पुत्र देवसिंह को पोकरण का स्वामी बनाया। इस तरह मारवाड़ में और भी कई सरदारों ने सामन्तों के गोद अपने पुत्रों को रखा पर शेष सभी गोद वाले बखतसिंह के भय से भाग खड़े हुए,जब उसने अपने पिता राजा अजीतसिंह को मारकर अपना भय फैलाया। इसी तरह जोधपुर के राठौड़ राजा विजयसिंह ने भी अपने काका देवसिंह को कैद में डालकर मारा। हे राजा रामसिंह! अजीब बात है कि राजवंश वाले कपटी बंधुभाव को नहीं गिनते अर्थात् सत्ता के मध्य किसी संम्बधी को नहीं आते देते।

प्लवङ्गमम्

सु इम सवाईसिंह पितामह बैर पर,
दुख बिजयहिं अति दै रु कर्‌यो सब राज्य कर॥५८॥

मग्ग खवासि मराइ अजस अघ आदरिय॥
अब श्रीमहिं पुनि आनि कथित सक भूप किय॥५८॥

इस तरह पोकरण के स्वामी चांपावत सवाईसिंह ने अपने अपने पितामह का बैर याद कर जोधुपर के राजा विजयसिंह को अतिशय दुःख दे कर दुःखी किया। यहीं नहीं राज्य की बागडोर स्वयं के हाथ में लेकर चौराहे पर राजा की खवम्सिन गुलाबराय को कत्ल करवा कर उसने अपयश और पा भी अर्जित किया। अब विक्रम के वर्ष अठारह सौ उनचास में उसने भीमसिंह को लाकर दुबारा जोधपुर की गद्दी पर काबिज किया अर्थात् उसे राजा बनाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवमराशौ विष्णुसिंहचरित्रे बुन्दीपतिविष्णुसिंहविक्रमपुरविवहनश्रीजिद्दक्षिणयात्राकरण जयपुरेश-पृथ्वीसिंह परासुतातदनुजप्रतापसिंह सिंहासनासादनपृथ्वीसिंह-संदिग्धसुतमानसिंहवृन्दावन निवसन एकोनविंशतिश तकसंबंधिशक-क्रमकथाऽपरिज्ञानसूचनविष्णुसिंहकरोली विवहन विक्रमपुरपतिगजसिंह-पञ्चत्वतदनुजसुरतसिंहपट्टाक्रमण लुण्टितदिल्ली करुहिल्लयवनगुलाम-कादिरशाहालमान्धीकरणश्रुतदिल्लीशामात्यमाहजिसिंधियागमन कांदिशी-करूहिल्लकारामरण कृष्णागढाधीशप्रतापसिंहकलेवरहानतत्पुत्रकल्याण-सिंहगद्दिकोपविशनजयपुरेशप्रतापसिंहबुन्दीविवाहकरण मरुदेश-सामन्तपोकरणठक्कुरसवाई सिंहस्वपितामहदेवसिंहघातकयोधपुरेश-विजयसिंहराज्यच्युतिसमयतत्पौत्रभीमसिंहपट्ट प्रदापनपुनाराजसिंहासना-रुढविजयसिंहझँवरग्रामयुद्धपलायितभीमसिंहपोकरणग्रामनयनतुंगा-ग्रामयोधपुरेशानीकसहायजयपुराधीशप्रतापसिंहावन्तीपतिमाधजी-सिंधियासमरविजयनाङ्गरेजसमरटीपूसुलतानपलायन योधपुरेशविजयसिंह-मरणचांपाउत्तसवाई सिंहभीमसिंहपट्टोपवेशनभीमसिंहस्वबन्धुमारणं सप्तमो मयूखः आदितः॥३५७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, बून्दी केपति विष्णुसिंह का बीकानेर विवाह करना और श्रीजित का दक्षिण की यात्रा करना, जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह का देहान्त होकर छोटे भाई प्रतापसिह का गद्दी बैठना और पृथ्वीसिंह के सन्देहयुक्त पुत्र मानसिंह का

जन्म होकर उसका वृन्दावन में रहना, उन्नीस सौ के शतक में ग्रंथकार संवत् वार कथा नहीं कह पाने की सूचना करना और विष्णुसिंह का करोली विवाह करना, बीकानेर के राजा गजसिंह का देहान्त होकर छोटे पुत्र सुरतसिंह का पाट बैठना, रुहिल्ला यवन गुलामकादिर का दिल्ली को लूटकर शाहआलम को अंधा करना और दिल्ली के वजीर महादजी सिंधिया का आना सुनकर भागे हुए रुहिल्ला का कैद होकर मारा जाना, किशनगढ के राजा प्रतापसिंह का देहान्त होकर उसके पुत्र कल्याणसिंह का गद्दी पर बैठना और जयपुर के राजा प्रतापसिंह का बून्दी विवाह करना, मारवाड़ के उमराव पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह का, अपने दादा देवसिंह को मारने वाले जोधपुर के राजा विजयसिंह को छल पूर्वक गद्दी से उतारकर उसके पोते भीमसिंह को गद्दी पर बिठाना और फिर विजयसिंह को गद्दी पर बिठाकर झँवर ग्राम के युद्ध से भागकर भीमसिंह को पोकरण ले जाना, तुंगा नामक ग्राम में जयपुर के राजा प्रतापसिंह का जोधपुर की सेना की सहायता से उज्जैन के पति माधवराव सिंधिया को युद्ध में विजय करना और अंग्रेजों के युद्ध से टीपू सूल्तान का भागना, जोधपुर के राजा विजयसिंह का देहान्त होने पर चांपावत सवाईसिंह का भीमसिंह को गद्दी पर बिठाना और भीमसिंह का अपने बांधवों को मारने का सातवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सत्तावन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

चूडालदोहा

इत बुंदिय बय तरुन अब, विष्णुसिंह बसुधेस बिराजत।
गज हय बिद्या सस्त्र गुन, श्रुति पुराण इतिहास काव्यरत॥ १॥

असह बेग बेधत उडत, बाजीन बल बरछीन बराहन।
प्रदर तुपक करि मृगपतिन, सहज हनिहु समुझैं सु सराहन॥ २॥

कवि बुध भट आदर करन, सचिवन संसद मान प्रसारन।
पंच अंग मंत्र ही परखि, बलि प्रगल्भ हित बैर बिचारन॥ ३॥

रामभक्त कपिराज कौं, मन्त्रिय इष्ट सु दिष्ट महीपति॥
धुज्जत जिहिं सब धाटिधर, अरि मेवास अनिष्ट लहैं अति॥ ४॥

नृप सगपन हुव नांनता, कोटामंत्रिय झल्ल कनी सन॥
सो श्रीजित चाह्यो न सुनि, पालत पहु प्रतिमल्ल धनीपन॥ ५॥

हे राजा रामसिंह! इधर बून्दी के राजसिंहासन पर तरुण वय का राजा विष्णुसिंह आसीन था। वह हाथी घोड़ा चलाने में सिद्धहस्त, शस्त्र विद्या में निपुण और वेद, पुराण, इतिहास, काव्य का मर्मज्ञ था। वह असह्य वेग से घोड़े को दौड़ा कर बरछी से सूअर को मारता था। तीर और बन्दूक से सिंह का शिकार कर सभी की सराहना पाता था। कवि, ब्रह्मणों और बंदीजनों का आदर करता और सभा में सचिवों की इज्जत करता। सलाह के (मंत्र के) पंच अंग (कर्मणामारम्भोपाय, पुरुष द्रव्यसम्पत्, देशकाल विभाग, विनिपात प्रकार और कार्य सिद्धि) की परीक्षा करने वाला और अपने हित और वैर पर विचार करने वाला बुद्धिमान था। रामभक्त हनुमान का इष्ट वाला और श्रेष्ठ भाग्यवान राजा था। उसके राज के लूटेरे, चोर डाकू सभी अपना अनिष्ट हो जाएगा यह समझ कर डरते थे। इस राजा की सगाई नानता के स्वामी और कोटा राज्य के सचिव झाला जालिमसिंह की कन्या से हुई जिसे सुनना भी श्रीजित को अच्छा नहीं लगा पर वह राजा विष्णुसिंह अपने दादा से प्रतिकूलता पाले था और स्वयं को सर्वेसर्वा मान कर दादा राजा श्रीजित के कहने में नहीं था।

षट्पात्

सक ख पंच सोम असित सुक्रग सप्तमि अह,
इंद्रसिंह अभिधान तनय जद्दोनि जन्यों तह।
प्रथम कुमर भव पर्ब तास उच्छव अति तानिय,
विष्णुसिंह बुंदीस दये नानाबिध दानिय।
करि जातकर्म आदिक क्रिया लहि अवसर जग जस लयो।
श्रीजित तटस्थ भावहु सुनि सु भावत मह बिरचत भयो॥ ६॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पचास के ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अपनी यादव रानी के गर्भ से राजा के इन्द्रसिंह नामक पुत्र जन्मा। पहले राजकुमार के जन्म पर उसने बड़ा उत्सव किया और इस अवसर पर राजा विष्णुसिंह ने हाथ खोलकर दान किया। राजा ने सद्यजात कुमार के जातकर्म आदि सारी क्रियाएं सम्पन्न करवा कर जगत में यश

कमाया। राजा द्वारा आयोजित इस उत्सव को श्रीजित ने पूरे तटस्थ भाव से देखा कि जो हो रहा है होने दो।

घनाक्षरी

नाथाउत चालुक हमीर पलटायो नृप,
भावी बस सो मत्यो रु मनोहर ताको भ्रात॥
कृष्णसिंह तनय उभैही राज काज करैं,
ए काका भतीज द्रोह श्रिजित पैं उफनात॥
संबत कहे मैं तिनहीनैं सुचि मास सित,
देवगुरु बार दसमी कों लग्न दरसात॥
जालम की तनया बिबाह्यो नृप को लै जाइ,
अजबकुमारि नाम तीजी रानी क्रम आत॥ ७॥

क्योंकि नाथावत हम्मीरसिंह जो राजा विष्णुसिंह के मुँह लगा हुआ था ने राजा को दादा राजा श्रीजित से विमुख कर दिया। दुर्भाग्य के संयोग से उसकी मृत्यु हो गई तब उसका भाई मनोहरसिंह और उसका पुत्र कृष्णसिंह दोनों मिलकर राजकाज देखने लगे। ये दोनों काका-भतीजा भी राजा के मन में श्रीजित के प्रति द्रोह उपजाने वाले थे। उन्होंने विक्रमी के वर्ष अठारह सौ पचास के आषाढ़ शुक्ला दसमी तिथि तदनुसार बृहस्पतिवार के दिन निकले लग्न के मुहूर्त्त पर राजा विष्णुसिंह को ले जा कर झाला जालिमसिंह की पुत्री के साथ शादी रचवा दी और इस तरह वह झाला वंशीय अजब कुमारी क्रम से राजा विष्णुसिंह की तीसरी रानी बनी।

जालम स्वसुर तदनंतर समय जानि,
आप ओर आन्यौं मोरि जामाता धराधनिक॥
हरन मैं नानाबस्तु कीने भेट साधि हित,
मैंगल तुरंग सस्त्र बस्त्र हेम त्यों मनिक॥
मोदसों पठाइ बुंदी निकट महीपति कै,
फैली जन जूह राखे आपुने जथा फनिक॥
उक्त सकही मैं इत कालख नगर आजि,
बीर दोला जैपुर को मंत्री सो मत्यो बनिक॥ ८॥

राजा के नये बने श्वसुर जालिमसिंह ने बाद में अवसर देखकर इस जामाता राजा को अपने पक्ष में कर लिया। उसने अपनी पुत्री के दहेज में नाना प्रकार की सामग्री दी। उसने हाथी, घोड़े, शस्त्र, वस्त्र, स्वर्ण और रत्न जैसी भेंट मोदपूर्वक हाड़ा को भेजी। फिर अपने फैली जनों (तुफैल करने वाले) का समूह राजा के इर्दगिर्द सर्प के समान रखा। इधर इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ पचास में कालख नामक नगर वाले युद्ध में जयपुर का सचिव वीर दोला बनिक मारा गया।

संबत अवनि पंच अट्ठ इक मान समै,
मत्तपन तैं करदला के चोक जंग मचि॥
भागपुर नरेस रु माहजि कुमर भिरे,
लगत प्रहार भागे जवन सभीक लचि॥
कंपनी की सेना सम निपुन कवायद मैं,
रारि तँहँ नारिन की पलटनि दोइ रचि॥
भागपुर लै गई नबाब कौं निबहि भोन,
सन्ध्या के सिपाहन के बेढ तैं बचाइ बचि॥ ९॥

अगले वर्ष अर्थात् अठारह सौ इक्यावन में मदोन्मत्त होकर करदला के चौक में भागपुर के नरेश और महादजी सिंधिया के मध्य युद्ध हुआ। दोनों ओर से घमासान छिड़ा पर तलवारों के निरंतर प्रहारों से भयभीत हो कर यवन सैनिक रणभूमि से भाग खड़े हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना की तरह कवायद में निपुण स्त्रियों की दो पलटनों ने भी (घाघ पलटन) इस युद्ध में हिस्सा लिया। वे सिंधिया के सिपाहियों के निर्मम प्रहारों से बचा कर नवाब को अपने घर अर्थात् भागनगर ले गईं।

लीनौं अंगरेजन मलाका उपद्वीप इत,
बर्मा मास तैं जो लग्यो दक्खिन दिसा बिथरि॥
द्वैही लघु टापू ओर तासौं लगतेहि दाबे,
सिंहपुर नाम रुपि नाँग नाम अग्रसार॥
अच्छे जल पवन बनावत सुखद इहाँ,
कालापानी कहत प्रजा मैं इन्हैं रूढि परि॥

क्रूर अपराधी इनही मैं बसिबेके काज,
कीलिकैं पठावत न अैबे को प्रबंध करि ॥१० ॥

इधर अंग्रेजों ने मलाका (मलाया) उपद्वीप को अपने अधिकार में कर लिया। वर्मा (म्यांमार) और मास से लगा पूरा दक्षिण का प्रदेश उनका हो गया। उन्होंने दोनों छोटे टापुओं और उसके आसपास की भूमि दबा ली। सिंहपुर (सिंगापुर) नाम रखकर जिसका पूर्व नाम नांग था अंग्रेजों ने यहाँ की आबोहवा अच्छी देखकर नगर बसाये जिन्हें लोक में कालापानी की संज्ञा मिली। क्रूर अपराधियों को इन टापुओं पर बसने हेतु अंग्रेज पकड़ कर भेजते थे और ऐसा प्रबन्ध कर रखा था कि वे वहाँ से वापस न लौट सकें।

पुण्यापति पेसवा नाम............ बिप्र,
जाति चितपावन जो अपनैं न सुत जानि ॥
अंक निज लेतभी तनै गिनि अमृतराव,
और सभी पीछैं तास बाजेराय सुत आनि ॥
रीति कहि पीछै टारि पंचन अमृतराव,
बाजेराय बैठार्‌यो पिता के पट्ट मह मानि।
उक्त सक ही मैं कहे ए भये उदंत उभै,
कढि कैं अमृतराव क़ीनौं द्रोह तजि कानि ॥११ ॥

उधर पुणे के स्वामी पेशवा जिसका नाम .... था जिसकी जाति चितपावन ब्राह्मण थी नेअपने आल-औलाद नहीं जान कर अमृतराव को अपना पुत्र मानते हुए गोद लिया पर बाद में उसके औरस पुत्र बाजीराव जन्मा। ऐसी स्थिति में पंचों ने रीति का हवाला देकर और अमृतराव को टाल कर बाजीराव को ही उसके पिता का उत्तराधिकारी बनाया। वर्ष अठारह सौ इक्यावन में ही ये दोनों घटनाएँ घटीं तब अमृतराव कुल मर्यादा छोड़कर बागी हो गया और उसने द्रोह किया।

पुण्या को प्रदेस सब लूट्यो इहिं दुष्ट पीछैं,
बादी खल बिप्र गाइ आदिक हनैं बहुत ॥
पीछैं जिहिं कासी आइ लाखन खरच पारि,
द्विजन की दुस्थता दबाई व्है उदार द्रुत ॥

पाप मैं रु दान मैं दु घाँ जो अतिसीम पायो,
सो इम बिडारि राख्यो इमहिँ तदपि सुत॥
भोग बसु पुण्या बाजेरावहु कुपुत्र भयो,
देसहि गुमाइ दैहैं जो पुनि प्रमाद जुत॥१२॥

बागी बन कर दुष्ट अमृतराव ने तब पुणे के प्रदेश को बूरी तरह से लूटा। उस जिद्दी लुंटक ने कई ब्राह्मणों और गायों को भी प्रचुर मात्रा में मारा। इसके बाद उसने काशी आकर उदारमना हो लाखों रुपये खर्च कर ब्राह्मणों के दारिद्र्य को मिटा डाला। वह एक ऐसा व्यक्ति था जो पाप और दान-पुण्य दोनों क्षेत्रों में सीमा का अतिक्रमण करने वाला हुआ। इस अमृतराव ने तो यों पुणे के राज को बिगाड़ा और पेशवा का स्वयं का बेटा बाजीराव तो भोगविलास और धन उड़ाने में कपूत ही कहलाया। उसने तो प्रमादयुक्त होकर अपना देश ही गँवा दिया।

संबत नयन बान बारन अवनि समा,
बुंदी इत श्रीजित नरेसतैं भये बिमन॥
पेच पिसुनन के उपाय तैं अबस पाइ,
जात्रा जगदीस की करी पुनि सभक्त न॥
आपुनैं परिग्रह समेत जाइ आश्रम तैं,
पूजि उपचारन दै उपदा उदार पन॥
जात अरु आत पहिलैं जे परसे न जानैं,
तीरथ समस्त परसे ते सुद्ध भाव सन॥१३॥

इधर बून्दी में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बावन में श्रीजित हाड़ा राजा विष्णुसिंह से उदास हो गए। चुगलखोरों की कारस्तानियों से राजा के उबरने के सारे उपाय विफल हो गए तब श्रीजित ने भक्तजनों के साथ जगदीश की यात्रा पर जाने का मानस बनाया। अपने सेवकों सहित आश्रम से आकर भगवान की पूजा अर्चना की और उदारतापूर्वक खूब बड़ी भेंट (चढ़ावा) चढ़ाई। वहाँ जाते हुए और वहाँ से आते हुए पूव की यात्राओं में आए तीर्थस्थानों को पहले दर्शन किये हुए जान कर नहीं छोड़ा, उन्होंने तो मन के शुद्ध भावों से सारे तीर्थों के दर्शन किये।

सोलंखिन नागरन दै इत नृपहिं सीछा,
कासी आत श्रीजित कहाई यह रोध करि॥
आवहु न देस अब रहहु उहाँही आप,
भेट सतपंच दम्म प्रतिदिन लेहु भरि॥
एक संग बिक्रम हो थाँनाँपति को अनुज,
धीर दूजो भूरा महासिंह बंसी धर्म धरि॥
सामंत के संगी च्यारि भैरव बिनयसिंह,
सूर खुसहाल ज्ञानसिंह हुते संग सरि॥१४॥

इधर बून्दी में सोलंकियों (नाथावतों) और नागरों ने हाड़ा राजा विष्णुसिंह से तरह-तरह की चुगलियाँ कर सिखाया कि उसने (यात्रा से लौटते हुए श्रीजित को जो काशी पहुँच गया था) यहाँ से कहलाया कि आप वापस बून्दी न आएँ। आप अपने देश न लौटें और वहीं काशी में निवास करें। इसके लिए हम आपको पाँच सौ रुपये नित्य प्रति के हिसाब से भेंट भेज देंगे। इस यात्रा में श्रीजित के साथ एक तो थाना के जागीरदार का छोटा भाई विक्रमसिंह था। दूसरा धीर-वीर महासिंहोत हाड़ा भूरसिंह था। इनके अलावा चार सामन्तके हाड़ा थे भैरवसिंह, विनयसिंह, खुशाल सिंह और ज्ञान सिंह।

संगी दुहिता सुत कबंधज नवलसिंह,
सोमानी प्रधान खुसहालीराम पुत्र सह॥
संकर रु बिनय तृतीय तैसैं शिवदान,
तीन संगी चारन बुलाये तिनकौंहु तह॥
कृष्णराम धात्रेय रु भोप तिम कोटवाल,
श्रीजित के राज्य संग कोटवाली उज्झि वह॥
कायस्थहु केसोराम सालिग्राम वैस्य संगी,
विष्णुदास नाजर हे इत्यादिक सार्थ बह॥१५॥

राजा श्रीजित के यात्री संघ में एक राजा की बेटी का बेटा राठौड़ नवलसिंह भी था। अन्य जो लोग थे उनमें राज्य के प्रधान खुसालीराम सोमानी अपने पुत्र सहित था। राजा ने इस यात्रा में अपने साथ ले जाने को तीन चारण बुलाये थे, वे शंकरदान, विनयदान और शिवदान तीनों भी साथ थे।

इनके अतिरिक्त धायभाई कृष्णराम था, वहीं भोपाल कोतवाल भी था जो राज की कोतवाली के कार्य छोड़ कर श्रीजित के साथ यात्रा पर गया था। अन्य यात्रियों में कायस्थ केशवराम था तो वैश्य शालिग्राम के अलावा नाजर विष्णुदास भी। ये सभी राजा श्रीजित के साथ जगदीश की यात्रा में थे।

स्वीय गुरु कुसल भतीज तथा सुरतान,
जाइ जगदीस द्वै मिले ये पीछे आत जिम॥
कापरनि हठन पठायो सुरतान कह,
आयो कछवाहन के रामपुर ब्याहि इम॥
--------------------------,
---------------------------॥
जानैं तास सामंत रु सगत तनूज जुग,
कापरनि आयो सु तो नायो गुरु मानि किम॥१६॥

श्रीजित के गुरु के साथ श्रीजित के भतीजे कुशलसिंह और सुरतानसिंह दोनों जगदीश की यात्रा पूरी कर वापस बून्दी लौटते हुए मिले तब सुरतानसिंह को श्रीजित ने हठपूर्वक वापस कापरनी जाने को कहा जो अभी रामपुरा के कछवाहों के यहाँ विवाह कर आया ही था। तब श्रीजित के कहने से सामंतसिंह का पुत्र कुशलसिंह और शक्तिसिंह का पुत्र सुरतानसिंह ये दोनों तो कापरनी आ गए पर उनका गुरु वापस नहीं आया। वह तो आता भी कैसे क्योंकि वह तो श्रीजित के संग हो गया।

श्रीगुरु सहित जे हे हाजरि तिनहिं सभा,
श्रीजित बुलाइ भाख्यो जाहु सबही सदन॥
जानि तिम बिन्नति करी तिन करन जोरि,
जातबेर आपुन अयोध्या सुन्यो पाप पन॥
बुंदी के उदंत मैं अनिष्ट जिम पीछैं बन्यौं,
सूनु सरदार जैसैं छोरि बास दुक्ख सन॥
जेठे सुत ईश्वर समेत गयो जैपुर जो,
मुरन की भाखी तब आप सो चही न मन॥१७॥

श्रीगुरु के अतिरिक्त जो श्रीजित की सेवा में हाजिर थे उन सभी की सभा बुला कर श्रीजित ने कहा कि आप सभी लोग अपने-अपने घर जाओ! श्रीजित से ऐसा सुनते ही सभी हाथ जोड़ कर विनती की कि जाते समय हमने अयोध्या में जो पाप का बर्ताव सुना। बून्दी के वृत्तान्त में यह अनिष्ट बाद में हुआ। पुत्र सरदारसिंह जैसे भी दु:ख के कारण बून्दी का निवास छोड़ कर अपने ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरसिंह के साथ जयपुर चले गये। आप ने उन्हें वापस आने को कहा पर यह बात उनके मन में जँची नहीं।

नैर लखनेऊ फैजाबाद के नबाबहु नैं,
आपतैं कहाइ कहो बंदगी बताइ अरि॥
मामक पितामह के रावरे पिता सौं मेल,
हो यौं मिलि जाहु काल्हि मो घर पवित्र करि॥
सोपै प्रभु मानी नौं नाबबकी व्हाँ भेजि सेना,
नाँती समुझायो क्यों न अन्यद्वारा जाल जरि॥
नाथाउत कृष्ण अरु छाऊलाल नागरहि,
भूप पलटायो जोर जालम के पाप भरि॥१८॥

इस समय लखनऊ और फैजाबाद के नवाब ने भी श्रीजित के पास अपने आदमी भेज कर निवेदन करवाया कि आप हमारे योग्य कार्य-सेवा बताएँ। मेरे पितामह और आपके पिता में मित्रता थी इस कारण यदि आप कल मेरे यहाँ से मिल कर पधारो तो मेरा घर भी आपके आगमन से पवित्र हो जाएगा। इस प्रस्ताव को श्रीजित ने नहीं माना और नवाब के आदमियों को वापस भेज दिया। फिर मन ही मन सोचा कि मैंने नाती (पौत्र राजा विष्णुसिंह) को क्यों नहीं समझाया कि वह दूसरों के फेंके जाल में फँसा है। नाथावत कृष्णसिंह और छाऊलाल नागर ने उल्टा सीधा भिड़ा कर राजा विष्णुसिंह को हमसे विमुख कर दिया और वह भी पापी जालमसिंह झाला के संकेत पर।

पीछे न पधारे लखनेऊ न पधारे पुनि,
जाई जगदीस मुरि आत इहाँ सर्बजुत॥
कासी रहिबे ही कौं कहाई अब आप कहो,
आसय कहाहै बनैं पाले जेहि सुत्र उत॥

भाख्यो तहाँ श्रीजित यौं बरजत मोहि भूप,
सर्ब तुम जावहु सम्हारहु स्वनारि सुत॥
रहिहौं इहाँ मैं बानप्रस्थन उचित रीति,
इच्छा उनकी तैं पाइ कासी बसिबो प्रनुत॥१९॥

श्रीजित न तो लखनऊ गये और न यहीं से वापस लौटे। वे तो सीधे जगदीश के स्थान (पुरी) पर जा कर अपने संघ के साथ वापस लौट आए। यहाँ काशी आ कर श्रीजित ने कहा कि अब आप लोग ही कहो कि क्या करें? बून्दी से राजा ने कहलाया है कि मैं काशी ही रहूँ वापस बून्दी न लौटूँ! जिसको मैंने पाल कर बड़ा किया वही आज मुझसे शत्रुवत व्यवहार करने पर उतारू हो कर मुझे लौटने से रोक रहा है। इसलिए आप सभी लोग अपने-अपने घर जाओ और पत्नी बच्चों को संभालो। मैं यहीं रह जाऊंगा फिर वानप्रस्थ आश्रम के नियम भी यही कहते हैं। अब बून्दी वालों की इच्छा के अनुरूप मुझे भी काशी का वास नसीब होगा।

ऐसो सुनि सासन कितेक जन छोरि आये,
श्रीगुरु कह्यो व्हाँ मैं तो रहिहौं संतत संग॥
श्रीजित कह्यो नहि निबाहन कौं स्वापतेय,
मंगि खैहौं मैं द्विज कह्यो गुरु धरि उमंग॥
बिक्रम सुभट कह्यो तिमहिँ न चाहि बसु,
इत्यादिक कतिक रहे ढिग ज्यों निज अंग॥
जालम स्वसुर इत बुंदी राखि स्वीय जन,
भेद बल भूप कों रचायो अपनेंही रंग॥२०॥

श्रीजित की ऐसी आज्ञा सुन कर कई लोग तो साथ छोड़ आए। इतने में श्रीगुरु ने कहा कि हे श्रीजित! मैं तो सतत आपके संग रहूँगा। यह सुन कर श्रीजित ने कहा कि निर्वाह योग्य हमारे पास धन नहीं है। इस पर गुरु ने कहा कि कोई बात नहीं मैं तो ब्राह्मण होने के कारण माँग कर खाने का आदी हूँ। तभी विक्रमसिंह ने कहा कि धन किसे चाहिए? मुझे तो नहीं! ऐसा कह कर कई स्वजन श्रीजित के साथ ही ठहर गए। इधर बून्दी में राजा के श्वसुर जालिमसिंह झाला ने अपने आदमी बून्दी में रख कर राजा को भेद के बल पर अपने ही रंग में रंग डाला।

धाइभ्रात मंत्री सुखराम पै दम धमाइ,
लाख द्रम्म नृप पैं लिवाये जंपि जालमहि॥
जाकरि गनेसघाँटी कोट दरवाजे जुत,
तारागढ तैसैं बडटाँका बर सिल्प बहि॥
कलाधारी हरि को निकेत रु पृथुल कोस,
श्रीजित के सम्मत रचे ए पीछैं मेल रहि॥
पै अब कथित काल झाला नै फरक पारि,
जनहु स्वकीय राखे बुंदी अरु देस चहि॥२१॥

इसी जालिमसिंह ने हाड़ा राजा विष्णुसिंह से कह कर बून्दी के मंत्री धायभाई सुखराम पर दण्ड करवाया और दण्ड की राशि के एक लाख रूपये उससे वसूल करवाए। जिसके हाथों से गणेशघाटी, दरवाजे युक्त शहरपनाह, तारागढ के पास वाले बड़े टांके (जलाशय) जैसे निर्माण सम्पन्न हुए। श्रीहरि का कलात्मक मन्दिर और बड़ा भरापूरा खजाना लाने जैसे कार्य श्रीजित की सम्मत्ति से पीछे लग कर जिसने करवाए पर वर्तमान समय में झाला जालिमसिंह ने राजा और मंत्री सुखराम के मध्य दूरियाँ बढ़ा दीं। उसने इसके लिए अपने बंदे वहाँ बून्दी में और राज में रखे।

तारागढ एक टस्यो झाला के प्रबंधन तैं,
नाथाउत नागर सु पै निज करन सीर॥
तारागढ लै चले नरेस हिं सिखाइ तिम,
बट्टतैं कहाई पहु आतहों लै कति बीर॥
सरवर हुतो दुर्गपति सीसोलेस अरज,
कराइ ताने आप आवहु गुन गहीर॥
जालम के पच्छ को इहाँ न अैहैं कोऊ जन,
श्रीजित को सासन यों है हम धरहु धीर॥२२॥

तारागढ़ दुर्ग एक ऐसी जगह बच गई जिसका प्रबंधन उस झाला जालिमसिंह के हाथ में नहीं आया। इसके लिए नाथावत कृष्णसिंह और छाऊलाल नागर यह सोच कर कि यहाँ भी अपनी चले, एक दिन हाड़ा राजा विष्णुसिंह को सिखला कर तारागढ़ ले गए। उन्होंने रास्ते से ही कहलवाया

कि स्वामी आ रहे हैं और उनके साथ कई वीर हैं। यह सुन कर सीसोला के स्वामी किलेदार सरवरसिंह ने वापस निवदेन करवाया कि गुणों में गंभीर स्वामी पधारें, उनका स्वागत है पर जालिमसिंह के पक्ष का एक भी आदमी दुर्ग में प्रवेश नहीं ले सकेगा क्योंकि श्रीजित का हमें यही आदेश है।

देस के सिपाह तिम छसत छुराइ दये,
क्रम पर राखे तँहँ खारीतट के कबंध॥
मुख्य रनसिंह तिन मैं करि निज सु मान्यों,
दुर्गपति आवन दये न अैसें मदअंध॥
नाथाउत नागर व्हाँ भाखन लगे नृपहिं,
श्रीजित न छोर्यो राज्य आप रहे हत संध॥
जाकी आन सीस रहै स्वामी सो कहायो जात,
रावरें निदेस मैं न जोर की गिनहु गंध॥२३॥

तब इन लोगों ने देश के अर्थात् बून्दी के सभी छः सौ सिपाहियों को वहाँ से निकाल दिया और उनकी जगह पर खारी नदी के किनारे बसने वाले राठौड़ों को नियुक्त किया। इनका मुखिया भी उन्होंने अपने भरोसे के रनसिंह नामक एक राठौड़ को बनाया पर किलेदार ने उन सभी को दुर्ग में प्रवेश नहीं लेने दिया। तब नाथावत और नागर दोनों वहीं राजा विष्णुसिंह से कहने लगे कि देखो राजा! अभी तक श्रीजित ने बून्दी का राज करना छोड़ा नहीं है और आप में अभी राजा पद की प्रतिज्ञा पूरी करने का दम नहीं है! जिसकी आज्ञा का पालन प्रजा और सेवक करें असली राजा तो वही कहलाता है। आपके हुक्म में अभी वह तासीर नहीं है!

स्वामी कों इहाँ इम मुराइ राख्यो सूचकन,
खीज बस यातैं रह्यो पन्नग लों बल खाइ॥
कासीपुर आत इहिँ कारन तैं रोध क्रम,
बरजि कहाइ रहिये तँहँ बिधि बनाइ॥
श्रीजितहु भाखी रहिबे की जब एह सुनि,
छोरि तब आये घनें आयतन मोह छाइ॥

मंगिहों न कछु साधि लैहों दासभाव मैंही,
अैसी बदि बिक्रम रह्यो उहाँ प्रसभ पाइ॥२४॥

इस तरह इन चुगलखोर सूचना देने वालों ने जब राजा को तारागढ़ से वापस महलों के लिए रवाना किया तब वह गुस्से में सांप की तरह बट बल खाने लगा। यही कारण था कि राजा विष्णुसिंह ने यात्रा पूरी कर लौटते श्रीजित को काशी पहुँचने के बाद वहीं काशी में निवास करने का कहलाया। यहीं रहना और बून्दी नहीं आना है ऐसा सुन कर श्रीजित से विक्रमसिंह ने कहा कि बड़े घरों में (महलों में) रहने का मोह तो हमने कभी का छोड़ दिया। अब मैं कुछ माँगूंगा भी नही और दास भाव ग्रहण कर यहीं आपके साथ रहूँगा। यह सब कुछ विक्रमसिंह ने हठपूर्वक कहा।

श्रीगुरु कुसल भट बिक्रम दुवहि संगी,
साँचे मन सों ए रहे स्वामी पास प्रीति सन॥
सेन मैं थोरे से मध्य भावतें रहे सुनत,
ओर बहु छोरि आये मोह जोरि मोरि मन॥
सबकों परखि अैसैं कासी तैं उचित साधि,
आपहु प्रयान कीनो आजम के आयतन॥
मग्ग बिच रोकन् अनेक नृप दूत मिले,
पै तिन्ह रुक्यो न नैक श्रीजित समर्थपन॥२५॥

श्रीगुरु, कुशलसिंह और विक्रमसिंह ये ही लोग सच्चे मन से अपने स्वामी श्रीजित के साथ रहे। बाकी के सारे लोग थोड़ी देर तक श्रीजित की बात सुनते रहे वहीं मन ही मन विष्णुसिंह की भी सोचते रहे अर्थात् उभय रहे। इसलिए शेष सारे लोग अपना मन अपनी गृहस्थी से जोड़ कर मोह पगे राजा श्रीजित को छोड़ अपने-अपने घर आ गए। इस तरह सभी को परखने के बाद काशी से प्रयाण कर श्रीजित आजम के स्थान पर जाने को रवाना हुए। रास्ते में उन्हें रोकने हेतु राजा के कई दूत मिले पर वह समर्थ श्रीजित, पक्के इरादे का धनी रुका नहीं।

माधोपुर आत यों कहाई कछवाह मनि,
जैपुरतैं मनुज भरोसा के पठाइ जह॥

आश्रम पधारहु व्है जैपुर प्रथम आप,
अैहो जो न तो मैं आइ लाइहौं सो पुण्य अह॥
माधवपुरहि जाइ झाला के सचिव मिले,
अरज करी यौं है न मंतु हमरो असह॥
बय अनुसार नाँती रावरे प्रबल बनैं,
मानैं काहू की न जानैं भोगन मैं नित्य मह॥२६॥

सवाई माधोपुर पहुँचने पर जयपुर के कछवाहा राजा ने अपने भरोसे के आदमी भेज कर कहलवाया कि हे श्रीजित! आप अपने आश्रम पधारने से पूर्व जयपुर पधारें अथवा आश्रम जाने के लिए जयपुर से होते हुए पधारें। यदि आप मेरे इस निवेदन पर नहीं आए तो मैं स्वयं आ कर आपको मेरे यहाँ लाऊंगा और वही मेरे लिए पुण्य से भरा दिन होगा। माधवपुर (सवाई माधोपुर) में ही जा कर झाला जालिमसिंह के भेजे हुए दूत मिले और उन्होंने निवेदन किया कि ऐसा भी कौन सा अक्षम्य अपराध हम लोगों से हुआ है? यह तो आपके पौत्र की उम्र का कुसूर है कि वह प्रबल हो कर अब किसी का कहा मानता नहीं और भोग विलास में उत्सव करता रहता है।

मंतु न तुमारो इम श्रीजित तिन्ह मनाइ,
जालम लौं जैहरि कहायो नर्म गालिजुत॥
जैपुर धनी को इत अैबोही नियत जानि,
आपहि पधारे सोधि जामाता अभीष्ट उत॥
समुह प्रताप आइ लैगयो उचित साधि,
पुब्ब जिम बैठो भिन्न अजिन तहाँ प्रनुत॥
जामाता कह्यो यौं निज संग मम सेना जाइ,
देस जुत बुंदी करैं रावरे अधीर द्रुत॥२७॥

तब झाला के भेजे आदमियों को श्रीजित ने व्यंग्य से कहा कि नहीं, इसमें तुम्हारा क्या कुसूर है? फिर मजाक के लहजे में कहा कि जालिमसिंह भी आजकल जयसिंह कहलाने लगा है (जयसिंह कछवाहा ने पूर्व में हाड़ा राजा बुधसिंह से बून्दी ली थी, उसी तरह जालिमसिंह भी अब छीनना चाहता है, यह आशय था कहने का)। जयपुर के स्वामी का यहाँ आना पक्का समझ

कर आप (श्रीजित) भी वहाँ अपने जामाता राजा प्रतापसिंह का अभीष्ट पूरा करने पधारे। जयपुर का कछवाहा राजा प्रतापसिंह श्रीजित के स्वागत में चल कर सम्मुख आया और फिर श्रीजित की मनुहार कर अपने साथ ले कर आया। महलों में जा कर भी श्रीजित पूर्व की तरह इस बार भी गद्दी पर नहीं बैठ कर अपने मृगछाला के बिछोने पर बैठा। वार्तालाप के आरम्भ में ही जामाता (कछवाहा राजा) ने कहा कि अब आप के साथ मैं यहाँ से अपनी सेना भेजता हूँ जो आपके साथ जा कर राजधानी बून्दी सहित पूरा राज आपके अधीन बनाकर लौट आएगी।

श्रीजित कह्यो यूँ आहि नांती लरिका सुपहु,
बात घर की है इहां हैं नहिं कछु बिचार॥
जात अब व्हाँ मो समुझायें तैं समुझि जैहैं,
आप जिन आनों नैक संसय मन उदार॥
अैसैं कहि जैपुर तैं बिरचि प्रयान इत,
आए निज आश्रम पढावत जस प्रसार॥
बुन्दी कहि भेजी प्रभुरंग कै चरन बंदि,
कासी पुनि जैहैं रहिबो चहि सब प्रकार॥२८॥

इस पर श्रीजित ने कहा कि हे राजा! अभी मेरा पोता लड़कपन में है और फिर बात घर की है इसलिए ऐसा करने की सोचना ही व्यर्थ है। मैं जा रहा हूँ उसे समझाऊंगा कदाचित वह समझ जाएगा। हे उदारमन राजा! आप व्यर्थ ही अधिक संशय न करें। इतना कह कर श्रीजित ने जयपुर से प्रयाण किया और अपनी कीर्ति का प्रसार करता हुआ सीधे अपने आश्रम में आया। आश्रम से श्रीजित ने फिर बून्दी कहलवाया कि मैं अपने इष्टदेव श्री रंग जी के चरणों की पूजा करने आया हूँ और शीघ्र ही वापस काशी में अपनी इच्छा से रहने को चला जाऊंगा।

ऊपर की बात अैसैं कासी तैं कहत आए,
आप द्रंग जैपुर व्है आश्रम स्वकीय इत॥
अंतर की नैंक न जनाई बात दोहू ओर,
हित हित केन अहित न जो गिनि अहित॥

सुभट अमात्य गये बून्दी के सबै समुह,
नाथावत कृष्ण कौं निहारि कह्यो आहि कित ॥
मो दृग जरा तैं होत जात अब अैसे मंद,
अैसी सुनि ओरन दिखायो कृष्ण सो बिदित ॥२१ ॥

श्रीजित यह बात तो काशी में थे जब से ही कहते आए थे अब जयपुर नगर से होकर अपने आश्रम में यहाँ पहुँचे। श्रीजित ने अपने मन की बात दोनों पक्षों में कहीं प्रकट नहीं की। जो हित सोचने वाले थे बून्दी का, उन्होंने तो श्रीजित के इस आचरण को बून्दी के हित में देखा और जो अहित सोचने वाले थे, उन्होंने इसे बून्दी के अहित के रूप में देखा। यात्रा से श्रीजित के लौटने की खबर पाते ही बून्दी के अमात्य और सामन्त सभी आश्रम मिलने पहुँचे तब श्रीजित ने नाथावत कृष्णसिंह की ओर देख कर कहा कि किधर है नाथावत ? वृद्धावस्था के कारण मेरी दृष्टि कमजोर हो गई लगती है ! यह सुन कर पास खड़े अन्य लोगों ने श्रीजित को बताया कि यह रहा नाथावत कृष्णसिंह !

कृष्ण को बिबाहिबो समीप हो सो जानि कही,
आयु तनु मैं ब है न व्याह करिबो उचित ॥
पीछैं तुम बुंदी के मुसाहब सु मंत्र पटु,
करिहो बिचारि काज मानिबो स्वबुद्धि मित ॥
सबको कुसल पूछि दै पुनि सबन सीख,
थान निज केदारेस पास बन्यौं तत्र थित ॥
द्यौंस कछु अंतर पितामह रु नप्ता द्वै हि,
जालम को पच्छ जोपै जानत हो मंत्रजित ॥३० ॥

इस समय कृष्णसिंह के विवाह की तिथि करीब आ गई यह जान कर श्रीजित ने कहा कि अभी विवाह योग्य तुम्हारी उम्र नहीं। अतः इस अल्प आयु में विवाह उचित नहीं (आगे कृष्णसिंह को मरवाएंगे इस कारण से उसके विवाह को अनुचित कहा लगता है- सम्पादक) ! फिर तुम मंत्रणा में चतुर बून्दी के मुसाहिब हो, इसलिए अच्छी तरह सोच विचार कर ही अपनी बुद्धि से निर्णय करोगे। इसके बाद श्रीजित ने सभी सामन्तों से कुशल- क्षेम के

समाचार पूछे और सभी को वापस जाने की आज्ञा दी। श्रीजित का स्थान (आश्रम) जो केदारेश्वर महादेव के मन्दिर के पास अवस्थित था वहाँ दादा और पोता कुछ दिन बाद अकेले मिले। श्रीजित मन ही मन जालिमसिंह झाला के पक्ष का जोर कितना मजबूत है, सब जानते थे।

एक दिन श्रीजित श्रीरंग के निलय आय,
आप रहते ज्यों रहे उत्तर त्रिदर ओर॥
दक्खिन त्रिदर दिसा बैठे नरनाह नाँती,
ठानैं बुधउत्तर त्यों दक्खिन भटन ठोर॥
नप्ता को कृपान लै निकासि लखि पानि लयो,
तबतो सिटाइ संकि पलटे सबन तोर॥
तोहू धीर श्रीजित सो दै नृपहिं भाख्यो तूहि,
मोहि हनि ओरन पैं क्यों हनात कुलमोर॥३१॥

एक दिन श्रीजित श्रीरंगनाथ जी के मन्दिर पधारे और यहाँ स्वयं जहाँ रहते थे वहीं अर्थात् उत्तर दिशा कि तिबारे में रहे और दक्षिण दिशा की ओर के तिबारे में बून्दी का राजा और श्रीजित का पोता बैठा। इस समय श्रीजित की तरफ वाले तिबारे में पण्डित बैठे, वहीं राजा की ओर वाले तिबारे में बून्दी के उमराव बैठे। तभी उन्होंने अपने पोते की तलवार निकाल कर उसकी धार देखी। श्रीजित के ऐसा करने पर वहाँ उपस्थित समुदाय सकपका गया। तभी उस तलवार को श्रीजित ने अपने पोते राजा के हाथ में थमाया और कहा कि हे कुल के मुकुट! मुझे दूसरों के हाथों क्यों मरवाता है? ले आज अपने हाथों से मार!

सो सुनि सिटाइ भूप भूमि कौं लखन लग्यो,
पीछो दयो आप सो कृपान लयो कोस करि॥
कछु न कह्यो गो न मिलाइ दीठि जोरि कर,
भीत आत ह्रीत नैंन हेत लेत लेत भरि॥
जंपी पच्छपातिन कुपुत्रहु प्रजा जदपि,
पितर दयालु होत तदपि दया प्रसरि॥
ऊठि तदनंतर निजाश्रम सिधारे आप,
सो पहु खिसानु पछिताइबे के कष्ट परि॥३२॥

यह सुनते ही लज्जित हो कर राजा विष्णुसिंह अपलक नीचे भूमि की ओर देखने लगा और दादा ने जो तलवार दी उसे अपनी म्यान में डाला। राजा न कुछ बोला न दादा से आँख ही मिलाई। हाथ जोड़े लज्जित नयनों को स्नेह के कारण बार-बार आसुंओं से भरते हुए वहाँ से चला गया। तब राजा के पक्ष वालों से दादा राजा श्रीजित ने कहा कि संतान कुपुत्र हो जाए तब भी पित्तरों (पूर्वजों) को दयालु हो कर दया दिखानी चाहिए! इतना कह कर श्रीजित अपनी जगह से उठे ओर अपने आश्रम को चले गए। उधर राजा विष्णुसिंह पश्चाताप के कष्ट से घिर कर लज्जित हुआ।

कढत कितोक काल संसय बिघात करि,
कीनौं बिसवास जानि श्रीजित कौं सानुकूल॥
बीच नृप जानी पिसुनन की कपटबाजी,
मानी मन सुद्धि पहिचानी प्रीति सुख मूल॥
याही हेतु पीछैं कृष्णसिंह रु मनोहर ए,
बाग रंग आदिक बिलास मैं फबत फूल॥
मंत्र मिस भोजनादि साला मैं बुलाइ मारे,
सीढीन पैं आत पर्‌यो मनोहर प्रोत सूल॥३३॥

कुछ समय यों ही व्यतीत हुआ फिर संशय मिटा कर राजा विष्णुसिंह ने श्रीजित को सानुकूल देख कर प्रसन्न किया। इसी बीच राजा विष्णुसिंह को चुगलखोरों की कपट का तकमीना हो गया तब उसने शुद्ध मन से मन ही मन स्वीकारा कि सुख के मूल में हमेशा प्रीति ही होती है। इसके बाद इसी कारण एक दिन कृष्णसिंह और मनोहरसिंह नाथावत जब दोनों रंगविलास बाग में खिलते फूलों को देख रहे थे तब राजा विष्णुसिंह ने उन्हें मंत्रणा करने के बहाने से भोजनशाला में बुलाया और मार डाला। बरछी की नोक से बिंधा हुआ मनोहरसिंह का शरीर तो सीढ़ियों पर आ गिरा।

गयो भजि कोटा भीत छाऊलाल नागर सु,
जोपै कुहकेस मरतो पै तज्यो बिप्र जानि॥
सेसहु भजे कति रहे कति उदास सम,
महिप कह्यो मैं रहयो पितामह पूज्य मानि॥

नैर इत कोटा नाम महिप गुमान मर्यो,
सम्मत त्रि सर अष्ट अवनी प्रमित आनि॥
पायो तास तनय उमेदसिंह ताको पट्ट,
जालम के तंत्रहि रह्यो जो होत हित हानि॥३४॥

ठगों का ठग छाऊलाल नागर बून्दी छोड़ कर कोटा भाग गया। इसे भी मरना था पर ब्राह्मण जान कर राजा ने छोड़ दिया। इसके बाद भागने का सिलसिला आरम्भ हुआ। कुछ ऐसे चुगलखोर भाग छूटे और कुछ उदासीन हो रहे। राजा विष्णुसिंह ने कहा कि मैं अपने पितामह को पूज्य मानता हूँ और आदर करता हूँ! इसी समय कोटा के राजा गुमानसिंह का निधन हो गया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरपन में तब राजा गुमानसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह ने कोटा का राजसिंहासन पाया पर वह भी अपने हित की अनदेखी कर जालिमसिंह की राय के अधीन रहा।

आसफउद्दोला लखनेऊ को नबाब इत,
हो जो अतिसीम दानी पै गुन परख हीन॥
ताकै हो तनै न यातैं एक जवनी को तनैं,
बालक दलिद्रहु लख्यो रुचिर त्यों प्रबीन॥
ताहि सुत मानि अंगरेजन मनाइ तानैं,
कुलहिँ मनाइ वह पट्टधर पुत्र कीन॥
जनक अनंतर वजीरअली नाम जोही,
अवधि नबाब भो करे जिहिँ सब अधीन॥३५॥

उधर लखनऊ का नवाब आसफउद्दोला जो बहुत बड़ा दानी था पर उसे लोगों के गुणों की परख नहीं थी। इसके कोई पुत्र नहीं था इसलिए इसने एक गरीब यवन स्त्री की गोद में सुन्दर और चतुर बालक देखा। उसने इस बालक को अपना पुत्र बताते हुए अंग्रेजों को भी मना लिया। इसके बाद स्वयं के कुल के बांधवों को मना कर उस बालक को अपना उत्तराधिकारी पुत्र बनाया। अपने पिता के मरने पर यही बालक जो वजीरअली नामक था अवध का नवाब बन गया और सभी इसके मातहत हो गए।

जाको नाम जग मैं सहादतअली सुनत,
दाइभागी याको भो पितृव्य सुत बहि दोरि॥

द्रंग कलकत्ता अंग्रेजन कतिक देस,
जैबो लिखि भाख्यो देहु मोकहँ तखत जोरि ॥
तब तो बिकाल यह बिन्नति लगी न ताकी,
हाकिम वजीरअली चाहत सब निहोरि ॥
पै यह नबाब पीछैं मत्त बै तरुन पाइ,
करन अनीति लग्यो साहसी व्है बिधि कोरि ॥३६ ॥

जगत में शहादतअली के नाम से प्रसिद्ध, नये नवाब के काका के बेटे ने, दायभागी होने का दावा पेश किया। फिर कलकत्ता भी कहाँ दूर था वहीं रहने की सोच कर वह अंग्रेजों के पास गया और अर्जी लिख कर पेश की कि इस नवाबी का असली हकदार मैं हूँ। उस समय तो उसकी इस अर्ज पर कोई कार्यवाही नहीं हुई क्योंकि सभी हाकिम वजीरअली के निहोरे करने में लगे थे । वे सभी हाकिम इसी वजीरअली को चाहते थे पर बाद में इस नये नवाब ने तरूण अवस्था पा कर अनीति करना आरम्भ किया और हठपूर्वक सही अथवा गलत अपने फैसले मनवाने लगा।

नीच सुनि पाइ जोहि पुर मैं रुचिर नारि,
हठन बुलाइ सोही बिलसी अभय होइ ॥
पीछैं तो पिताहु की जनी जे अवरोध पाई,
बिलसि सबल तेहु तरुनी जस बिगोइ ॥
द्रंग अवरोध रु कुटुंब बल मंत्री देश,
सबन कुपुत्र समुझायो पै खलत्व खोइ ॥
तानैं नाँहिं मानी व्हाँ बड़े नबाब की तियन,
अंगीक्रत एह न यों रंक लों कहिय रोइ ॥३७ ॥

यही नहीं उद्दण्डता पर उतरा हुआ वह नीच वजीरअली नगर में कोई सुन्दर स्त्री देखता उसे जबरन पकड़ मंगवाता और निर्भय हो कर उसके साथ भोग-विलास करता। बाद में तो उसने हद कर दी। उसने अपने पिता स्वर्गीय नवाब के जनानखाने की बेगमों में जो तरुणावस्था में थी उनको भी अपने विलास के दायरे में रखा। अर्थात् जनाना में जो मिली उसको बलात् भोगा। इस बात के लिए नगर के लोगों, जनाना की स्त्रियों, कुटुम्बियों, मंत्रियों सभी

ने इस कुपुत्र को समझाया पर दुष्टता का प्रदर्शन करते हुए किसी की न सुनी। तब बड़े नवाब की बेगमें इस बात को अंगीकार करने से मना करती हुई रंक की तरह रोईं।

भावी तब तेसो अंगरेजन को चाह्यो भयो,
बेग कलकत्ता जो सहादतअली बुलाइ॥
वासूँ लिखवाइ देस अद्ध ओ द्रविण आदि,
जाहि बइठार्‍यो लखनेऊ के तखत जाइ॥
कामी जो नबाब सब सम्मति सौं दूर कीनौं,
सोपै अधिकारी अंगरेज हिँ तँहँ नसाइ॥
उक्त सक ही मैं सकलत्र सौं बजीर अली,
भाजि आयो जेपुर प्रताप को सरन भाइ॥३८॥

तब अवध का भविष्य जैसा अंग्रेज चाहते थे वैसा ही हो गया। उन्होंने शीघ्र ही कलकत्ता से शहादतअली को बुलवा कर उससे आधे देश (जागीर) और आधे धन की माँग लिखवाई। फिर अंग्रेजों ने उसे ही लखनऊ के तख्त पर बिठाया और कामुक नवाब वजीरअली को सभी की सम्मति से गद्दी से उतार दिया और उसके सारे अधिकार अंग्रेज अधिकारियों ने समाप्त कर दिये। इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ तिरपन में तब वह वजीरअली अपनी पत्नी सहित लखनऊ से भाग कर जयपुर के कछवाहा राजा प्रतापसिंह की शरण में आ रहा।

नृप सौं कह्यो इम सभा बिच मिलि नबाब,
सरन सहाय सुन्यौं बिरुद तुमारे बंस॥
अत्र जो रहौं तो राखि लैहो सौंपि दैहो आप,
द्रव्य की न हानि देहु ज्यौं मिटैं अरिन दंस॥
राम नरनाह यौं जनश्रुति सुनत रहैं,
इष्ट बसु लैकै कह्यो रामबंस अवतंस॥
अर्थ लगिहै सो जो लगाइबे कहत आप,
धाम तुमरो तो रहो को करि सकत ध्वंस॥३९॥

इस नवाब ने जयपुर की राजसभा में उपस्थित हो कर कछवाहा राजा से निवेदन किया कि मैंने सुना है कि आपके वंश का विरुद शरण में आए हुओं की रक्षा करना रहा है। ऐसे में मैं यदि यहाँ रहूँ तो क्या आप मुझे रख लोगे? अथवा शत्रुओं को सोंप दोगे? हाँ, इतना भरोसा दिला सकता हूँ कि मैं आपको अपने कारण से धनहानि नहीं होने दूंगा। हे राजा रामसिंह! यह भी सुना गया अथवा जनश्रुति ऐसी है कि इच्छित धन ले कर रामचन्द्र के वंश के मुकुट (कछवाहा राजा) ने कहा कि धन जितना खर्च होगा उतना आप दोगे ऐसा कह रहे हो तो फिर आप चाहें तो यहाँ रह सकते हैं यह आपका घर है। यहाँ कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

यौं पहु प्रताप राख्यो सरन वजीरअली,
जैपुर को जानि अंगरेजन यह उदंत॥
आइ इष्ट महुर उपायन को लोभ आनि,
मंग्यो जो नबाब कछु ओरहु नियम मंत॥
सूचि यौं नबाब मुहिं चौरैं छोरि सस्त्र सह,
अरिन दिखैहो तोहु दुरित न पैहो अंत॥
सोहु ताकी न सुनि अहो तजि बिरुद स्वीय,
कीलि अंगरेजन कौं सौंप्यो लखनेऊकंत॥४०॥

इस तरह राजा प्रतापसिंह कछवाहा ने वजीरअली को अपनी शरण में रखा। जब अंग्रेजों को जयपुर के इस वृत्तान्त का पता चला तब मोहरें भेंट में मिलेगीं इस लोभ से चलित हो कर अंग्रेज जयपुर आए और उन्होंने अलग नियम बता कर नवाब वजीरअली को सोंपने की माँग की। तब कछवाहा राजा ने नवाब को बुलाया। उस नवाब ने कहा मुझे आप यों चौराहे पर (लावारिस) छोड़ देने के बाद यदि शत्रु को शस्त्र भी दिखाओगे तब भी मुझे सोंप देने का तुम्हें पाप नहीं लगेगा क्या? पर उसकी एक न सुनी, हा हा! कछवाहों ने अपना विरुद छोड़ कर लखनऊ के उस नवाब वजीरअली को बन्दी बना कर अंग्रेजों के हाथों सोंप दिया।

मानि इन कातर प्रतापहिं कनकमुद्रा,
रीति की न दीनी दीनी रीतिकी कनकरंग॥

आश्रम बिसिख अष्ट भू समा सक अनेह,
अधिप प्रताप यौं कलंक सु लगायो अंग॥
पीछैं पछितायो आरकूट की महुर पेखि,
सो लग्यो रहन गूढ लै त्रपा कुजस संग॥
प्रान जोलौं कील्यो बहु सूल लोह पंजर मैं,
तोलौं अंगरेजन वजीरअली अति तंग॥४१॥

वजीरअली ने कायर मान कर कछवाहा राजा प्रतापसिंह को कनक मुद्राएँ (मोहरें) तो नहीं दी उनकी जगह पीतल की मोहरें जिन पर स्वर्ण का जोल चढ़ा था पकड़ाई। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौवन में जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने अपने अंग पर कलंक लगाया। बाद में तो वह भी पीतल की मोहरें पाकर खूब पछताया। इसके बाद तो वह लज्जित-सा छिपा हुआ रहने लगा। उधर अंग्रेजों ने वजीरअली (लखनऊ का नवाब) जब तक जीवित रहा तब तक उसे तंग काँटेदार लोहनिर्मित पिंजरे में बन्दी बनाये रखा।

पट्ट लखनेऊ को सहादतअली हु पाइ,
स्वीय मत माहिं खिल दीनौं सब कौं हि सुख॥
पीछै व्है प्रगल्भ त्रय पाटव अतुल पाइ,
देसतैं मिटैबो चाह्यो कंपनी निदेस दुख॥
जानैं गजउत्तर अगाऊ लिखि केहि जानैं,
मोरे अधिकारी सब लंधन के स्वामि मुख॥
द्रुतहि इहाँ को होतो छम सु इजारदार,
पै न फल पायो कछु दिष्ट के बड़े कलुख॥४२॥

वहीं अवध की नवाब्बी का पट्टा पा कर शहादतअली ने अपने मतानुसार मभी को सुखपूर्वक रखा। फिर उस प्रगल्भ ने अपनी नीति की अतुलनीय चतुराई से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हुकुमत का देश से खात्मा करना चाहा। जिसके प्रमाणस्वरूप उसके लिखे हुए बड़े-बड़े (विस्तार पूर्वक) पत्र कई मिले जिसमें उसने अग्रिम रूप में लिख दिया था कि मेरे अधिकारी सभी लंदन के स्वामी आदि हैं। थोड़े ही दिनों में वह इन व्यापारियों की इजारेदारी

(एकाधिकार) खत्म करने में समर्थ होता पर भाग्य के पाप से वह सफल न हो सका।

उक्त सक ही मैं तक्कू हुलकर ईस इत,
बिग्रह बिहात भो मलार नांती काल बस॥
इंदउर द्रंग जसवंतराव एक दृग,
तनय खवासि को तदीय बैठो पट्ट तस॥
उक्त सक ही मैं भीम जोधपुर ईस इत,
जालपुर सेना भेजि बेढ्यो दुर्ग खोइ जस॥
पंद्रह समा बय मैं मानसिंह तास पति,
पायो नाँ पराजय रचायो खूब रारि रस॥४३॥

इसी वर्ष अर्थात् विक्रमी के अठारह सौ चौवन में काल के वशीभूत हो तुकोजी होल्कर ने अपनी देह त्यागी चूंकि उसका पोता मल्हारराव होल्कर पूर्व में ही काल के गाल में समा चुका था इसलिए इन्दौर की राजगद्दी पर तुकोजी राव की पासवान का पुत्र जसवंतराव होल्कर बैठा जो एक आँख वाला अर्थात् काना था। इसी वर्ष अर्थात् चौवन में जोधपुर के राजा भीमसिंह ने अपनी सेना भेज कर जालौर के दुर्ग को घेरा और अपयश अर्जित किया। पर मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था (आयु) वाला मानसिंह जो जालौर के दुर्ग का स्वामी था, ने अपनी पराजय स्वीकार नहीं की और मुकाबला करते हुए खूब जूझा।

संबत कलंब भूत अष्ट अवनी समय,
तामैं इत बुंदी दूजो जादवी जन्यो तनय॥
बाल वह नाम संसकार बिधिलौं न बच्यो,
इंद्रसिंह अग्रज ज्यौं बालहि न पाइ अय॥
आश्विन के असित त्रयोदसि जनमि इहै,
दूजो हू कुमार न रह्यो ज्यौं रविलौं उदय॥
बुट्ठि धन पहिलैं बधाइ मैं उभय बेर,
प्रसरयो अकाल पीछैं भावी व्है बिसिष्ठ भय॥४४॥

इधर बून्दी में विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पचपन में राजा की यादव रानी ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया। पर यह बालक अपने नामकरण

संस्कार तक भी जीवित नहीं रहा। उसने अपने बड़े भाई इन्द्रसिंह की तरह आने वाले समय के शुभ कर्मों का फल नहीं पा कर आश्विन माह के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि को जन्म तो लिया पर सूर्य की तरह उदय होने वाला यह कुमार दूसरे दिन नहीं बचा। राजा ने दोनों पुत्रों के जन्म की बधाई में धन की खूब वर्षा की पर आने वाले समय में विशिष्ट भयदायक अकाल पड़ गया।

. . . . ,
. . . . ॥
. . . . ,
. . . . ॥
.... ॥४५ ॥

(यहाँ एक छन्द नहीं है अथवा छंद संख्या की त्रुटि है सम्पादक)

उक्त सक ही कै काल संहनन संध्या उज्झि,
माहजि वजीर मर्‍यो उज्जइनी ईस इत॥
राज्य तस पट्ट बैठो दोलतसहितराव,
हुलकर सीरी व्हैहु जित तित जंग जित॥
उक्त सक ही मैं इत दक्खिन प्रथुल देस,
आजि केही हारि अब मंद व्है जो मूढमित॥
अंतकी लराई रुपि टीपू अंगरेजन सौं,
दिष्ट प्रतिकूल भिर्‍यो साहसी इहाँ बिदित॥४६ ॥

इसी वर्ष अठारह सौ पचपन में उज्जैन के राजा और शाही वजीर रहे महादजी सिंधिया ने भी शरीर छोड़ा। महादजी का उत्तराधिकारी हो कर दौलतराव सिंधिया राजगद्दी पर बैठा। जो होल्कर का साथी हो कर यहाँ-वहाँ जंगजीत बना रहता था पर इसी वर्ष पचपन में दक्षिण के बड़े भाग में कई युद्ध हुए पर इनमें हार को प्राप्त कर मूर्खों की तरह (मराठा) मन्द पड़ गए। अन्तिम युद्ध इस समय में टीपू सुल्तान और अंग्रेजों के मध्य हुआ। वह हठीला सुल्तान अपने भाग्य की प्रतिकूलता में लड़ा जो जग विदित है।

सट्ठिखट अग्र मृत घायल भये सुभट,
सेस कंपनी के सूर अच्छत रहे समर॥
ज्यौंही द्वैहजार मृत घायल अखिल जानैं,
भीलुक पलानैं खिल टीपू के अनीक भर॥
ताही रन माँहि मारि टीपू कौं बलिष्ट तब,
जेनरल बिलजली जई इम बढ्यो जबर॥
सो श्रीरंगपट्टन मैं ताको अवरोध सोधि,
लूटि कैं खजानाँ इला लेत भो असेस अर॥४७॥

इस युद्ध में अंग्रेजों के छियासठ योद्धा मरे और कई घायल हुए पर कम्पनी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेज) के शेष योद्धा युद्ध में अक्षत रहे अर्थात् बिना घाव के रहे जबकि टीपू सुल्तान के पक्ष के दो हजार योद्धा मरे अथवा घायल हुए। शेष रहे टीपू के कायर योद्धा रणभूमि से भाग खड़े हुए। इसी युद्ध में टीपू सुल्तान को मार कर वह बलिष्ट जनरल बिलजली (वैलेज्युली) विजयी हुआ। वह जबरदस्त जनरल तब श्रीरंगपट्टन में घुसा और उसके महल में जा कर टीपू का पूरा खजाना ले गया और शीघ्र ही उसकी भूमि पर अधिकार कर लिया।

अंग सर नाग भूमि संबत अनेह इत,
उज्जैन को लखवाद्विज पटैल को भट निदान॥
जेपुर सौं आंट कछु कारन उरझि जात,
आयो देस ढुंढाहर लुट्टत बल अमान॥
जो झेल्यों प्रताप पहु कूरम समुख जाइ,
घोर पुरलंबा के समीप मच्यो घमसान॥
सेना मरहट्ठन तैं अधिक हुतो पै संग,
एक बिनु दोला के सध्यो न सांचो अवधान॥४८॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ छप्पन में उज्जैन के (सिंधिया राज्य) पटेल का एक उमराव जो लखवा नामक ब्राह्मण था वह अपनी किसी रंजिश के कारण जयपुर पर खफा हो गया। वह अपनी जंगी फौज के साथ ढूंढाड़ प्रदेश को लूटता हुआ आया तब कछवाहा राजा प्रतापसिंह उसे रोकने

हेतु सेना के साथ उसके सम्मुख जा कर भिड़ा। लांबा नामक पुर के पास दोनों दलों में घमासान युद्ध छिड़ा। इस समय जयपुर की सेना संख्या में मराठा सेना से बड़ी थी पर एक दोला (मंत्री) के बिना उससे सच्ची सावधानी नहीं साधी गई।

स्वामी राम सुनहु जनश्रुति जनावत ज्यौं,
दक्खिन अनीक लच्यो पहिलैं बिदूर द्रुत॥
पै कछु समय अंत जैपुर के चक्र पर,
भाग्य प्रतिकूल भयो जीत टारि हरि जुत॥
कूरम सभीक व्है अचानक भज्यो कहत,
आइ खरे पीछे खेत पाइ मरहट्ठ उत॥
भूप सु कितेनके निवारतहु ऐसो भज्यो,
जैपुर मैं जात ताम धाम दुर्‌यो धीर धुत॥४९॥

हे राजा रामसिंह! जनश्रुति तो यह बताती है कि दक्षिण की सेना पहले तो बहुत दूर तक पीछे हटती गई अथवा भाग गई पर कुछ समय बाद ही जयपुर की सेना का भाग्य ही प्रतिकूल हो गया जिससे विजय की जगह उसे शीघ्र ही हारना पड़ा। कछवाहा राजा प्रतापसिंह भी भयभीत हो अचानक अपने घोड़े सहित भाग गया। इसके बाद तो मराठा योद्धा वापस खाली जगह को भरते हुए आगे आ खड़े हुए और उन्होंने रणखेत जीत लिया। रणभूमि से भागते हुए राजा को उसके अपने कई सामन्तों ने रोकना चाहा पर वह तो भागता ही गया और धैर्य को छोड़ कर धूर्त अपने घर में जा छिपा।

दोहा

बत्त जनश्रुति इम बदत, आयुअवधि नृप एह।
कबहु न पुनि बाहिर कढ्यो, नय रु धर्म धरि नेह॥५०॥
उक्त जु लखनेऊ अधिप, सौंपि वजीरअली सु।
लखवा सन भजि लज्ज मैं, बूड्यो जदपि बली सु॥५१॥
इम जीवत मृत भो अधिप, पुर जयनैर प्रताप।
रोचि रहित बिमना रह्यो, अपजस बिस्तरि आप॥५२॥

हे राजा रामसिंह! दंतकथा के अनुसार यह सुनते हैं कि वह राजा प्रतापसिंह जीवन पर्यन्त भीतर ही दुबका रहा। वह राजा अपना धर्म और

नीति को याद कर बाहर ही नहीं निकला। पूर्व में तो उसने लखनऊ के नवाब वजीरअली को पकड़ कर अंग्रेजों को सोंपा और अब इस लखवा ब्राह्मण के समक्ष रणभूमि से भागा। इन दोनों कारणों की लज्जा में यद्यपि वह बलवान था फिर भी डूब गया। वह जयपुर का कछवाहा राजा प्रतापसिंह जीवित रहते हुए भी मृतक सा हो गया। वह कांतिहीन हो कर उदास रहने लगा क्योंकि उसके अपयश का प्रसार जो हो गया था।

संबत हय सर अष्ट ससि, इत बुंदिय नरनाह।
पुर सोपुर परन्यौं प्रथित, बिहित चतुर्थ बिबाह ॥५३॥
गिनहु लग्न साध्यो गनित, सुचि सित छट्ठी सोम।
कविन त्याग बसु आढ्य करि, बिथरि कित्ति छिति व्योम ॥५४॥
कन्या भूप किसोरकी, सरहकुमरि सुभ सील।
स्वसा राधिकादास की, सो पहु ऊढ सलील ॥५५॥

इधर बून्दी का राजा विष्णुसिंह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्तावन में अपना चौथा विवाह रचाने को श्योपुर गया। पंचाग के अनुसार उसने आषाढ़ शुक्ला छठी तिथि को सोमवार के दिन निकले लग्नों के मुहूर्त्त पर विवाह किया। उसने इस अवसर पर कवियों (चारणों) को त्याग का धन दे कर धनवान बनाया और इससे अपनी कीर्ति (धरती-आकाश)सभी ओर फैलाई। श्योपुर के राजा किशोरसिंह की शीलवान पुत्री सरह कुमारी से जो राधिकादास की बहिन थी राजा विष्णुसिंह ने लीला पूर्वक विवाह किया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवमराशौ विष्णुसिंहचरित्रे विष्णुसिंहपुत्र जननश्रीजिद्विरुद्धविष्णुसिंहझल्लजालमसिंहकनीपाणिग्रहण कालखनगरसमरजयपुर मन्त्रिदोलावैश्यपरासुभवन करदाग्रामभागनगर-नबाबमाहजीसुतसंग्रामनबाबपलायन पेशवाबाजेरावविरुद्धामृतराव-पुण्यपत्तनप्रान्तलुण्टनकुपुत्रबाजेरावराज्यच्युतिसूचन विष्णुसिंहविरक्त-श्रीजिज्जगदीशयात्रागमनविष्णुसिंहश्रीजिद्बुंद्यागमननिषेधन रङ्गनाथ दर्शनव्याजश्रीजिदबुंदीप्रत्यागमनविष्णुसिंहकरसमर्पितकृपाणश्रीजित्स्ववध-सूचन विष्णुसिंहव्रीडासमासादन कोटापतिगुमानसिंहमरणतत्सुतोम्मेदसिंह झल्लजालमसिंहा यत्तीभवन स्वजनन्यादिव्यभिचारहेत्वंगरेजनिष्कासित-लखनेऊपत्यासिफुद्दोलादत्तक पुत्रवजीरअलीजयपुरशरणग्रहणशहादत-

अलीनबाबपदप्राप्रण स्वर्णद्रम्म प्रत्ययगृहीतरीतिमयद्रम्मजयपुरेश-प्रतापसिंहस्वशरणागतवजीर अल्याख्यांगरेजायत्तीकरणन बाबशहादत-अल्याख्यांगरेजविरोधन इन्दोरेशहुलकरतक्कूमरणतद्दासीपुत्र-जसवन्तरावपट्टासादन योधपुराधीशभीमसिंहजाबालिपुरदुर्गमानसिंह-समावरण अवन्तीपतिमाधजीसिंधियामरणसिंहासनारूढदौलतराव-कतिपययुद्धपराजयनांगरेजरणाटीपूसुलतानहननलांबानगरावन्ती-सामन्तलखवाविप्रयुद्धजयपुरेशप्रतापसिंह पलायन बून्दीपति विष्णुसिंह-सोपूरविवाहकरणवर्णन नवमो मयुखः आदितः ॥३५८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, बून्दी के पति विष्णुसिंह के पुत्र प्रकट होना और श्रीजित से विरुद्ध होकर जालमसिंह झाला की कन्या से विवाह करना, कालख नगर में जयपुर के मंत्री दोला वैश्य का मारा जाना और करदला में भागनगर के नवाब के और महादजी के पुत्र से युद्ध होकर नवाब का भागना, पेशवा बाजीराव से विरुद्ध होकर अमृतराव का पूना का देश लूटना और कुपुत्र बाजीराव से राज्य छूटने की सूचना करना, बून्दी में विष्णुसिंह से उदास होकर श्रीजित का जगदीश की यात्रा जाना और विष्णुसिंह का श्रीजित को वापस बून्दी आने से मना करना, रंगनाथ के दर्शन के बहाने श्रीजित का फिर से बून्दी आना और पोते को खड्ग देकर अपने को मारने की सूचना करने से विष्णुसिंह का श्रीजित से लज्जित होना, कोटा के पति गुमानसिंह का मरना और उनके पुत्र उम्मेदसिंह का झाला जालिमसिंह के वशीभूत होना, लखनऊ के नवाब आसिफुद्दोला के दत्तक पुत्र वजीरअली का, व्यभिचारी होने के कारण अंग्रेजों द्वारा उसका निकाला जाना और सहादत्तअली का नवाब होकर वजीरअली का जयपुर शरण में आना, जयपुर के राजा प्रतापसिंह का धोखे से पीतल की मुहरें लेकर शरणागत वजीरअली को अंग्रेजों के अधीन करना, नवाब सहादत्तअली का अंग्रेजों के विरुद्ध होना, इन्दौर के पति होल्कर तक्कु का मरना और उसके पासवानीये पुत्र जसवन्तराव का पाट बैठना, जोधपुर के राजा भीमसिंह का जालौर के गढ़ में मानसिंह को घेरना, उज्जैन के पति महादजी सिंधिया का मरना और दौलतराव

का उसके पाट बैठकर कई युद्धों में हारना और अंग्रेजों की लड़ाई में टीपू सुल्तान का मारा जाना, लाम्बा नामक पुर में उज्जैन में उमराव लखवा नामक ब्राह्मण से लड़कर राजा प्रतापसिंह का भागना और बून्दी के पति विष्णुसिंह का सोपुर विवाह करने के वर्णन का नवमा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अठ्ठावन मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इत काबल ईरान कै, उरझी प्रथम अनेह।
बन्यौं तबहि रनजित बली, इन लवपुर सिख एह॥ १॥
नानकमत अनुगत नियत, अवसर उचित उपाय।
अप्प सुनहु प्रभु राम यह, नृपति भयो जिहिँ न्याय॥२॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व समय से चली आ रही काबुल और ईरान के मध्य की तनातनी इस समय और बढ़ी यही समय था कि तब लाहौर में रणजीतसिंह नामक सिक्ख ताकतवर हो कर उभरा। गुरु नानक द्वारा चलाए गए मत को मानने वाला वह उचित अवसर पा कर अपने उपायों से कैसे राजा बन गया उसका वृत्तान्त आपसे कहता हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें!

घनाक्षरी

जाति करि जट्ट रनजीत को पितामह जो,
सो चरितसिंह नाम जानौं पहिलै समय॥
जंबू आदि आढ्य पुर लूटे बहुबेर जानैं,
बित्त बहु जोर्‌यो दोर्‌यो धारि धारि मध्य बय॥
ताकै भो तनूज महासिंह अभिधान तैसे,
जिततित दोर्‌यो जोहु धाटि मेल खाटि जय॥
सो रह्यो अधिक काल पत्तन अमृतसर,
ताकै यह वीर रनजीत प्रकट्यो तनय॥३॥

जाट जाति में उत्पन्न (राजा) रणजीतसिंह का पितामह जो

चरितसिंह नाम से पूर्व में हुआ उसने जम्मू जैसे धनाढ्य नगर को कई बार लूटा और इस तरह यहाँ-वहाँ दोड़ कर लूट मचाते हुए वह बहुत पैसे वाला हो गया। उसके एक पुत्र जन्मा जो महासिंह नामक था। यह भी अपने पिता के मार्ग पर चला। उसने भी अपने दल सहित कई जगह से धन और भूमि जीती। यह महासिंह लम्बे समय तक अमृतसर नामक नगर में रहा। इसके आगे पुत्र हुआ वह रणजीतसिंह कहलाया।

बिस्फोटक रोग मैं गयो तस नयन बाम,
पै जिहिँ पिता छत सपूती प्रकटाइ पूर॥
सजातीय जाति चहुँ ओर के सिख समूह,
स्वजनक पीछैं बढ्यो सीमा सो अधिक सूर॥
साह पुर काबल को जबहि जमानसाह,
आयो लंघि अटक दिखायो जै इतहु दूर॥
तानै यों सुनी तँहँ ईरानपति सेना तानि,
जित्तन हिरात आत रित्त न मुरैं जरूर॥४॥

चेचक के रोग से बाल्यकाल में ग्रसित हो कर उसने अपनी एक आँख खोई अर्थात् वह अपनी बाई आँख खो कर काना हो गया। पर इसने अपने पिता की मौजूदगी में ही अपनी सपूती का प्रदर्शन किया। इसने अपने स्वजातिय सिक्ख समूह को संगठित किया और अपने पिता से भी अधिक भूमि विजित कर उसका स्वामी बना। इसके समय में काबुल का बादशाह जमानशाह नामक था वह जब अटक नदी को लांघ कर आर्यावर्त्त पर आक्रमण करने आया। इतनी दूर जा कर जमानशाह के चढ़ाई करने की बात जब ईरान के शाह ने सुनी तो वह भी एक जंगी सेना सज्जित कर इस आशय से चला कि वह खाली हाथ नहीं मुड़ेगा।

सो सुनत पीछो भज्यो सजव जमानसाह,
ताकी रही बूडि के बितस्ता के सलिल तोप॥
पूगि घर तिन रनजीत को दयो यों पत्र,
नालीगन भेजहु निकासि अधिकात ओप॥
तोप आठ भेजी रनजीत नैं कढाइ तब,
ओरहु अनेक साध सासन हित अलोप॥

व्है प्रसन्न यातैं साह काबल दयो हुकम,
लवपुर छीनि लेहु करि रन कालकोप॥५॥

जब ईरान के बादशाह के आने की बात जमानशाह से सुनी तो वह यह सुनते ही वापस भागा। उसकी इस भागदौड़ में उसकी कुछ तोपें वितस्ता (झेलम) नदी में डूब गई। उसने अपने घर अर्थात् काबुल पहुँच कर रणजीतसिंह को पत्र लिखा कि हे रणजीतसिंह! यदि तुम मेरी वितस्ता में डूबी तोपें निकलवा कर भेजोगे तो इससे तुम्हारी शोभा में और वृद्धि होगी। पत्र पाते ही रणजीतसिंह ने वितस्ता से तोपें निकलवा कर जमानशाह को भेजी। यही नहीं रणजीर्तसिंह उसके और भी कई हुक्म बजा लाया। इससे प्रसन्न हो कर काबुल के शाह ने कहलाया कि काल की तरह क्रोध कर लवपुर(लाहौर) पर चढ़ाई कर उसे जीत लो।

साहबादिसिंह चेतसिंह रु महुरसिंह,
देस काल मूढ हुते हाकिम ए लव द्रंग॥
जट्ट रनजीत नैं मिलाय द्वारपाल जिन,
सज्जि यह गो तब कपाट खोले छल संग॥
सो लाहोर लीनों इम पहिले अनेह सिख,
जीत्यो बहु भूपन के दुर्ग देस जय जंग॥
सो अब भुजग पंच बारन अवनि साक,
उद्धत चलायो मुलतान पैं धरि उमंग॥६॥

इस समय लाहौर में साहिबसिंह, चेतसिंह और मुहरसिंह जैसे मूढमति हाकिम थे जो देश काल के अनुरूप कार्यवाही करने में चतुर नहीं थे। तब जाट रणजीतसिंह ने लाहौर दुर्ग के द्वारपाल को धन देकर अपनी ओर मिला लिया इससे जब वह सज्जित हो कर अपनी सेनासहित वहाँ पहुँचा तो उसने कपाट खोल दिये। इस तरह पूर्व समय में उस सिक्ख वीर ने लाहौर पर अपना अधिकार किया। इसके बाद तो उसकी विजय का सिलसिला चल निकला उसने छोटे राजाओं के कई दुर्ग और उनकी भूमि जीती। वही रणजीतसिंह अब विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठावन में उद्धत हो कर अपनी सेना के साथ मुलतान पर रवाना हुआ।

हाकिम मुजफ्फरखाँ नाम मुलतान हुतो,
तानै सुनि आत गढ मैं बल अतुल तानि॥
तोपै करि सज्ज रह्यो अंतर लरन तोर,
बाहिर निकसि भन्यो बाहिर बिनति बानि॥
मंडि महिमानी त्यौं उपायन बिबिध मंजु,
मनिगन आदि दये स्वामी लौं महत मानि॥
तब रनजीत मुलतान कौं दुगम ताकि,
आयो मुरि गेह दया छल मैं प्रकट आनि॥७॥

इस समय मुलतान प्रांत (देश) का हाकिम मुजफ्फरखान था उसने जब सुना कि रणजीतसिंह बड़ी सेना के साथ मुलतान पर चढ़ाई करने आ रहा है तो उसने भी मुकाबला करने को अपनी तोपों को तैयार करवाया पर वह नगर के बाहर आते ही बाहर की वाणी बोलने लग गया अर्थात् उसने अपना रुख बदल लिया। उसने रणजीतसिंह का स्वागत किया और पूरे सम्मान के साथ कई सुन्दर चीजें जिनमें रत्न और जवाहरात थे भेंट कीं। उसे अपने स्वामी के तुल्य महत्व दिया। तब रणजीतसिंह भी मुलतान को जीतना दुर्गम जान कर दया का प्रदर्शन करता हुआ वहाँ से मुड़ कर वापस अपने घर आ गया।

उक्त सकही इत कबंध कछवाह ईस,
पुष्कर मैं भीम रु प्रताप मिले प्रीति पर॥
द्वैही भूप दुलही बिबाहे दुब घाँ की दुव,
जोधपुर जैपुर सगाई सोधि तुल्यतर॥
जेठी सुता आनंदादिकुमरि प्रताप की जो ,
व्याह्यो कछवाही इतैं कर्मध्वज भीम बर॥
भीम अनुजा भगिनी तिम अबुद्ध नामधेया,
भूप परताप परनी यों उभैं पत्त घर॥ ८॥

इसी संवत् अर्थात् अठारह सौ अठावन में जयपुर के कछवाहा राजा और जोधपुर के राठौड़ राजा पुष्कर में मिले। तब प्रतापसिंह कछवाहा और भीमसिंह राठौड़ ने दोनों राज्यों में स्नेह की वृद्धि करने हेतु एक दूसरे के यहाँ

विवाह करने की बात स्वीकार की। जयपुर के राजा प्रतापसिंह की बड़ी पुत्री आनंदकुमारी के साथ जोधपुर के राठौड़ राजा भीमसिंह ने जोधपुर से आ कर विवाह रचाया। इसी प्रकार राठौड़ राजा भीमसिंह की छोटी बहिन जिसका नाम ज्ञात नहीं हो सका से कछवाहा राजा प्रतापसिंह ने जयपुर से जा कर विवाह किया।

नैर इत कोटा झल्ला जालम निपुन नीति,
भूपति उमेद निजतंत्र कीनों मंत्र भरि॥
देसकाल कोबिद बढ्यो सो प्रभुराम देखो,
कीलि राखे हाकिम समै के जिँहिँ दाव करि॥
जानै निज ओर जाहि दिल्ली के सबै जवन,
पेसवा प्रमानै हमै चाहत त्यौं छद्म हरि॥
हुलकर सन्ध्या गिनै जालम हमारो हितू,
अंगरेज मानै झल्ला आपुनौ ध्रुवत्व धरि॥ ९॥

इधर कोटा में इसी समय नीति में निपुण मंत्री झाला जालिमसिंह ने अपने राजा उम्मेदसिंह को अपने वश में किया। हे राजा रामसिंह! आप देखें कि देश काल की जरूरतों को समझने में चतुर उस झाला ने अन्य सारे सचिवों को अपने दाँव चल कर कीलित सा कर लिया। उसने कितनी तरक्की की कि दिल्ली के यवन वजीर भी उसके मित्र हो गए। इसी पकार पेशवा भी उसे कपट रहित अपना आदमी मानता। यहीं नहीं होल्कर और सिंधिया भी झाला जालिमसिंह को अपना हितवर्द्धक मित्र मानते। वहीं अंग्रेज भी झाला को निश्चयपूर्वक अपना आदमी गिनते थे।

नीतिबल जानें देस काल की दसा निरखि,
जैपुर जई जो बिप्र लखवा रहत जानि॥
दुरजनसाल खीची राखि ए अधीन द्वै ही,
मासिक मैं लाखन दै जंगहि उचित मानि॥
बनत बिरोध दुव घाँ कछु निमित्त बस,
पेलि पृतना कौं उदैपुर पैं अनख आनि॥

जाजपुर लीनौं भीम राना तैं कलह जीति,
पच्छिम कितीक करी कोटा के अधिप पानि ॥१०॥

देश और काल की हवा पहचान कर अपनी नीति के बल से उसने (झाला ने) जयपुर को जीतने वाले ब्राह्मण लखवा से जो जयपुर रहता था और उसके साथ दुर्जनसाल खींची भी रहता था इन दोनों से सम्पर्क साधा। इन्हें अपना बना कर तनख्वाह में लाखों रुपये दे कर जंग को उचित ठहरा लिया। दोनों पक्षों में विरोध का कुछ निमित्त बता कर उनकी सहमति से क्रोध कर उदयपुर पर अपनी सेना भेजी और उदयपुर के महाराणा भीमसिंह से युद्ध कर जहाजपुर का परगना छीन लिया। इस तरह उसने कोटा के पश्चिम ओर का कितना ही क्षेत्र कोटा के राजा के हाथवसु (अधिकार) में किया।

मेवारन राख्यो स्वीय स्वामी तैं मुराइ मन,
प्रधन मरे न जानैं नामी इम जाजपुर॥
भिल्लहड़ापुर लौं भई बस कथित भूमि,
धारत दुहाई महाराव की प्रधान धुर॥
इतको अमल रह्यो सोलह समा अवधि,
अबल सिटाइ रह्यो रानाँ कष्ट पाइ उर॥
भाखे सक ही यौं झल्ल जालम के नीति धर,
पेचन तैं कोटा को प्रताप बढिगो प्रचुर॥११॥

इस समय झाला ने भेद की नीति अपनाते हुए मेवाड़ के सामन्तों को सिखला कर महाराणा के विरुद्ध कर दिया। इसी कारण से इस युद्ध में मेवाड़ के सामन्तों का मरना नहीं सुना गया और झाला सचिव ने अपनी चतुराई से जहाजपुर के साथ ही साथ भीलवाड़ा नगर तक की सारी मेवाड़ की भूमि में कोटा के महाराव की दुहाई फिरवाई अर्थात् यह पूरा क्षेत्र कोटा के अधिकार में चला गया। इस भूमि पर कोटा वाले सोलह वर्ष तक निरन्तर काबिज रहे और उदयपुर का लज्जित महाराणा कुछ न कर सका। इस तरह विक्रम के संवत् अठारह सौ अठावन में जालिमसिंह की कूटनीति और दाँव-पेचों के कारण कोटा का प्रताप बढ़ा।

पंडितोपंटकी मरहट्ठ लाल कोटापुर,
काल पटु संध्या को पठायो रह्यो लैन कर॥

मित्र कीनौं ताकौं झल्ल जालम उचित मानि,
दोउन के एकचित्त मिटिगो कितोक डर॥
बिप्र लखवा रु खीची दुरजनसाल बलि,
उक्त लाभ लै तिम छुराइ दये एहु अर॥
प्रभु के कुलादि भट देस के निबल पारि,
प्रबल अनीक परदेसी राखे प्रीति पर॥१२॥

पण्डित नाम के उपटंक वाले एक मराठा लाला (नामक) को, समय को समझने वाले चतुर सिंधिया ने हासिल उगाही हेतु कोटा भेजा। इसे झाला जालिमसिंह ने उचित समझ कर अपना मित्र बना लिया। दोनों एक मन हो गए और इनके चित्त से डर निकल गया। इन्होंने तब लखवा ब्राह्मण और दुर्जनशाल खींची को जयपुर क्षेत्र से कर वसूलना छुड़वा दिया। हे राजा रामसिंह! कैसा समय आया कि आपके कुल के सामन्तों को निर्बल बना कर कोटा का सचिव बड़ी सेना वाले परदेसियों से प्रीति रखने को अग्रसर हुआ।

उक्त सकहीसौं कछु पहिले समय इत,
जेनरल बिलजली मिलाप मैं सुख जनाइ॥
लेख जुत पेसवा तैं मित्रता चहन लागो,
संध्या नैं दयो तब सो बाजेराव बहिकाइ॥
तासूँ प्रतिकूल जसवंतराव भो तबहि,
पेसवा मिल्यो व्हाँ जेनरल सौं भयहिं पाइ॥
दैकैं कंपनी कौं बुंदेलन को अखिल देस,
आपुनौं इलाका तज्यो कोल के नियम आइ॥१३॥

इसी वर्ष अर्थात् विक्रमी के अठारह सौ अठावन से कुछ वर्ष पहले अंग्रेज जनरल वेलेज्युली ने संधि की नीति में अपना सुख देख कर पेशवा के साथ सम्बन्ध बनाए। वह लिखित करार के साथ इस मैत्री को पक्का करना चाहता था तब सिंधिया ने बाजीराव को बहका दिया कि यह मैत्री नहीं होने देनी चाहिए। इससे जसवंतराव उनके खिलाफ हो गया गैर पेशवा अंग्रेजों से डर गया उसने जनरल वेलेज्युली को बुलाया और कम्पनी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) के नाम पूरे बुन्देलखण्ड देश का पट्टा लिख दिया और इस नियम से बंधे पेशवा ने अपना इलाका छोड़ दिया।

बात यह संध्या कौं न भाई यातैं छद्म बस,
नागपुर नृप तैं पटैल तब मेल पारि॥
काठमांडू नृप कौं स्वपच्छ मैं बहोरि करि,
रुचि मैं मनाइ अंगरेजन सौं लैन रारि॥
ज्यौंही लसवारी डीघ दिल्ली मुख जंग जीति,
संध्या कौं हरायो बिलजली नै जु मद मारि॥
---------------------------,
-------------------------॥१४॥

यह बात सिंधिया को बड़ी नागवार गुजरी तब उसने छल-कपट से नागपुर के राजा के साथ मेलजोल बढ़ाया। पटेल (सिंधिया) ने तभी काठमांडू के राजा को भी अपने पक्ष में मिला लिया और उसे इस बात के लिए तैयार कर लिया कि हमें मिल कर अंग्रेजों से युद्ध करना चाहिए। तभी जनरल वेलेज्युली ने लसवारी, डीग, दिल्ली आदि को युद्ध में जीत कर सिंधिया को हराया और इस तरह उस अंग्रेज जनरल ने सिंधिया को मदरहित बना दिया अर्थात् कमजोर कर डाला।

अंक सर नाग भूमि संबत समय अब,
हारि इम दोउनं निरंतर निबल होइ॥
संध्या नैं समस्थलिका देस कंपनी कौं दयो,
घौंसल्या नै ओडीसा दयो घन धन धिजोइ॥
उक्त सक ही मैं अंगरेजन नैं आगरा रु,
दिल्लीपुर द्वै ही लये दक्खिन को खैल खोइ॥
जेनरल उक्त जो असाई रन उक्त जीत्यो,
दुःखित हराये संध्या घौंसल्या तबहि दोइ॥१५॥

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ उनसठ में इस तरह लगातार अंग्रेजों से हारते जाते सिंधिया ने तब समस्थलिका प्रदेश कम्पनी को सोंप दिया और इसी तरह घोंसले ने ओड़िसा का प्रांत कम्पनी के नाम कर दिया। इसी वर्ष उनसठ में अंग्रेजों ने आगरा और दिल्ली दोनों प्रदेशों से दक्षिणियों (मराठों)

का दु:ख मिटा डाला जब असाई के युद्ध में जनरल वेलेज्युली ने सिंधिया और घोंसले की संयुक्त सेना को हरा दिया। दोनों बड़े दु:खी हुए पर क्या करते ? लाचार थे।

पास बिलजली के व्हाँ हुतो दल सहस पंच,
दोउन के पास व्हाँ हुतो हजार तीस दल॥
तोहू बिलजली नैं झारि सतत असह तोप,
बज्र गति गोले गेरि कीनैं सत्रु हीनबल॥
आगरा रु दिल्ली होत कंपनी अधीन इत,
दीनौं मेटि दोउन तैं संध्या को सब दखल॥
कैदी ज्यौं हुतो जु साहआलम सु अंध काढि,
मुद्रा लाख मासिक कराइ दीनौं साग्रकल॥१६॥

इस समय असाई की रणभूमि में अंग्रेज जनरल के पास पाँच हजार की संख्या वाली शस्त्रों से सजी सेना थी वहीं सिंधिया और घोंसले दोनों की सम्मिलित सेना तीस हजार की संख्या वाली थी पर जनरल वेलेज्युली ने अपनी तोपों के निरन्तर प्रहारों से वज्र की तरह गोले दाग कर अपने शत्रुओं को बलहीन बना डाला। युद्ध में विजय होते ही दिल्ली और आगरा पर कम्पनी का अधिकार हो गया और जनरल ने तब दोनों जगह से सिंधिया का दखल हमेशा के लिए मिटा दिया। इस समय दिल्ली का अंधा बादशाह कैदी की तरह था उस शाहआलम को कम्पनी ने एक लाख से थोड़ी अधिक की पेंशन बांध कर दिल्ली से निकाल दिया।

प्राची के समुद्र तैं लगाइ सीमा दिल्लीपुर,
कोस सतससक लौं कंपनी यौं राज्य करि॥
हाकिम पुरातन इहाँ के सब गंजे हंत,
एक जसवंतराव मान्यौं बरजोर अरि॥
जट्ट सिख दूजो रनजीत सो इतो न जब,
बढन लग्यो ही जो मही तिय नवीन बरि॥
जित्वर अजेय अब लंधन सबन जान्यौं,
जे भये अधीन दीन अंतर बिरोध जरि॥१७॥

अब पूर्व दिशा के समुद्र अर्थात् कलकत्ता से लगा कर दिल्ली तक के पूरे क्षेत्र पर जो सात सौ कोस लम्बा था कम्पनी का राज कायम हो गया। इस क्षेत्र के जितने भी पुराने हाकिम थे उन सभी को दबा कर और मार कर कम्पनी ने अपना दबदबा जमा लिया। इस समय एक तो जसवंतराव अंग्रेजों का ताकतवर शत्रु रह गया और दूसरा जाट सिक्ख रणजीतसिंह। वह रणजीतसिंह नई-नई पृथ्वी रूपी स्त्री को वरने लगा ही था कि सभी ने देखा कि अन्य सभी को जीतने वाला और स्वयं अजेय रहने वाला एक लंदन नगर ही रह गया था अतः सभी अन्तर्विरोध की जलन के मारे दीन राजा इस लंदन के अधीन हो गए अर्थात् अंग्रेजों के मातहत बन गए।

संबत ख तर्क बसु भूमि सित सावन मैं,
जैपुर प्रताप मर्‌यो भूत तिथि काल जाम॥
सूनु तब ताको मत्त उद्धत जगतसिंह,
बित्रप नरेस भयो रीति सों सतत बाम॥
जीवत प्रताप मान्यौं मारिबो उचित जाको,
नाँहिं सुत दूजो हो बचायो यौं रहन नाम॥
उक्त सक ही मैं भीम जोधपुर भूप इत,
बाहुल की बिसद चउत्थी तज्यो बपु ताम॥१८॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ साठ के श्रावन माह के शुक्ल पक्ष की भूत तिथि अर्थात् चतुर्दशी के दिन जयपुर का कछवाहा राजा प्रतापसिंह चल बसा। तब उसका उद्धत और मदमत्त पुत्र जगतसिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठा। वह निर्लज्ज जो सभी प्रकार से अपने पिता का निरंतर विरोध करता रहा जयपुर का राजा बना। पूर्व समय में राजा प्रतापसिंह अपने इस पुत्र को मारने लगा था पर लोगों ने यह कह कर उसे बचाया कि राजा! आपके इसके अतिरिक्त कोई अन्य पुत्र नहीं है। यदि इसे मार डाला तो आपका नामलेवा कौन बचेगा? उधर इसी वर्ष अर्थात् साठ ही में जोधपुर का राठौड़ राजा भीमसिंह भी कर्तिक माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन मर गया।

मातंगी करंड पैं दुसाला तब डारि मूढ,
काढी सा सवाईसिंह चंपाउत छद्म करि॥

जात अवरोध तैं दिखाइ त्यों घने जनन,
प्रकट कही यौं कैद यौं कै गयो अत्र परि॥
ऐसो दाव बिरचि पठाये पीछैं दूत इत,
लैबे जहाँ जालपुर घेरा रह्यो मान लरि॥
भीम की चमू के जहाँ हल्ल बहुबेर भये,
झगत अमाप तोप गोले रहे बज्र झरि॥१९॥

इधर जोधपुर में (महाराजा भीमसिंह के कृत्रिम पुत्र धोंकलसिंह की उत्पत्ति का कारण दिखाने के लिए चांपावत सवाईसिंह द्वारा रचे गए फरेब का प्रसंग है) एक चांडाल स्त्री के टोकरे पर दुशाला ओढा कर सवाईसिंह चांपावत ने जब उस चांडाल स्त्री को बहुत सारे मनुष्यों की उपस्थिति में तलहटी के महलों के जनाने से जाती हुई दिखलाई और यह प्रकट किया कि वह यहाँ कैद में थी। ऐसा दाँव खेलने के बाद मानसिंह जो जालौर के घेरे में था उसको लाने के लिए दूत भेजे। जालौर में मानसिंह दुर्ग के घेरे को तोड़ने हेतु लड़ रहा था। जहाँ भीमसिंह की सेना ने कई बार हमले किए और इन हमलों में तोपों से अनगिन गोले वज्र की मानिंद किले पर मारे।

सेनापति सिंघी बनराज आदि व्हाँ सुभट,
कही जोधपुर के ऐसे कमन आये काम॥
त्यों इत कालमैं नष्ट संग्रह सकल ताकि,
धार्यो कढिजैबो मानसिंह सोपै तजि धाम॥
काहू सिद्ध जोगी बन काहू सों मिलत कह्यो,
तीन दिन लंघित हू मान टिकि जैहै ताम॥
जोधपुर पैहै छत्र छादित इहाँ तै जैहै,
निजन बढै है पट्ट लैहै जग व्हैहै नाम॥२०॥

इस घेरे की भिंड़त में जोधपुर की सेना का सेनापति सिंघवी बनराज जैसा सुन्दर वीर काम आया और उसके साथ अन्य योद्धा भी मारे गए। इस समय में भीमसिंह के मरने के बाद राजकुल में सभी को नष्ट हुआ जान कर मानसिंह को किले से निकाला। मानसिंह को एक सिद्ध जोगी वहाँ वन में

मिल गया तो उसने कहा कि तुम तीन दिन का उपवास करके भी यहीं किले में रहना। किले को मत छोड़ना इससे तुम्हें जोधपुर का छत्र मिलेगा। यहाँ से निकलते ही तुम्हारा राज आएगा और जगत में तुम्हारा नाम होगा।

कानफटा लिंगी तहां देवनाथ नाम करि,
दुर्गमाँहिं जातो भीख माँगिबे पिहित द्वार॥
भाखी सिद्ध जो सो जानि मान सौं कहत भयो,
स्वप्न मै कह्यो यौं मोसौं जलंधरनाथ सार॥
ताके बिसवास मान लंघन सहत तीजो,
जालपुर दुर्ग जो रह्यो रुपि भुकति भार॥
तिमहिं जु भीम मरिबे की ध्रुव सुद्धि आई,
लैबे पुनि आये भट मंत्री मुख्य बहु लार॥२१॥

वह कनफटा जोगी देवनाथ नामक था जो जालौर के दुर्ग में खिड़की के छिपे द्वार से भीख लेने जाता था। इस सिद्ध पुरुष ने ही मानसिंह से कहा था कि मुझे आज स्वप्न में जलंधरनाथ के दर्शन हुए। उन्होंने मुझे स्वप्न में कहा कि मानसिंह का राज होगा। इसी सिद्ध जोगी के विश्वास पर मानसिंह तीन दिन तक भूखा रहा पर तब भी उसने दुर्ग को नहीं छोड़ा। वह दुर्ग की रक्षा का भार स्वयं की भुजाओं पर लिये रहा। इसी बीच जोधपुर से राजा भीमसिंह के देहान्त की खबर आई और इसके बाद मारवाड़ के सामन्त, मंत्री और मुख्य-मुख्य लोग उसे लेने आए।

बाहिर के सस्त्रहीन दुर्ग में कति बुलाइ,
मानि नीठि सपथ भरोसा के दिवाइ मान॥
पीछैं छत्र चामर चलाइ जाइ जोधपुर,
बैठो पट्ट छट्ठी मग्ग मेचक सह बिधान॥
जालपुर चाकरी बिपत्ति हु मैं कीनी जिते,
सकत बढाये ते बुलाइ दुक्ख अवसान॥
कानफटा सोपै देवनाथ गुरु मुख्य कीनौं,
थापि तँहैं दीनो महामंदिर बिरचि थान॥२२॥

मानसिंह ने तब जोधपुर से आए लोगों में से कुछ लोगों को शस्त्रहीन

कर दुर्ग के भीतर बुलवाया। यहाँ पर जब उन्होंने शपथपूर्वक मानसिंह को भरोसा दिलाया कि कोई धोखा नहीं होगा। तब छत्र और चँवर के साथ जोधपुर जा कर मानसिंह मृगशिर (मार्गशीर्ष) माह के कृष्ण पक्ष की छठी तिथि के दिन पूरे विधि-विधान के साथ जोधुपर की राजगद्दी पर बैठ कर राजा बना। जालौर दुर्ग के घेरे में रहते कठिन परिस्थितियों में जिन्होंने राजा मानसिंह का साथ दिया था उन सभी को दु:ख के मिटने पर बुला कर सम्मानित किया। उनका मान बढ़ाया। यही नहीं कनफटा जोगी देवनाथ को अपना मुख्य गुरु बनाया और उसके लिए स्थान बना कर अर्थात् महामन्दिर में उसकी गद्दी स्थापित की।

उक्त सकही के मग्ग मेचक चउत्थि इत,
बून्दी नरनाह बिष्णुसिंह कै स्वदिष्ट बस॥
तीजी मंकुवानी रानी उदर प्रसूता तँहैं,
तनुआ भई सो मरी नाम पर्यो न तस॥
इंदु खट बारन भू संबत अनेह इहां,
आमय असाध्य देखी श्रीजित कै अंतदस॥
आश्रम तैं लाये महलन मैं बिहायो अंग,
जानैं मग्ग मेचक चउत्थी पैं उबारि जस॥२३॥

इसी विक्रम संवत् के वर्ष अर्थात् अठारह सौ साठ के मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष को चतुर्थी तिथि के दिन इधर बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह के भाग्य से उसकी तीसरी झाला वंशीय रानी जो गर्भवती थी ने एक कन्या को जन्म दिया पर वह अधिक समय तक जीवित न रह सकी उसका नामकरण भी नहीं हो सका कि वह मर गई। विक्रमी के अठारह सौ इकसठ में असाध्य रोग से ग्रसित श्रीजित को अन्त समय जान कर आश्रम से महलों में लाया गया जहाँ मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन श्रीजित ने अपनी यशस्वी देह त्यागी।

होती बुद्धि सुद्धि तो न आगम महल होतो,
पै निज पितामह अचेत आनैं जाइ पहु॥
द्यौंस दुव अंतर कहे समय छोर्यो देह,
नाती नरनाह बिधि राह दये दान बहु॥

अब्द पहिले तैं दुरभिच्छ हु हुतो असह,
लोक इत आये देस देस के बिसेस लहु॥
तेहु सब भोजे द्वादसाह मैं असन तानि,
भूखे जन लूट्यो सेस दूजे दिन भोजनहु॥२४॥

यदि राजा श्रीजित (उम्मेदसिंह) को बुद्धि और चेत होता (सुध-बुध होती) तो संभव है उसका महलों में आना नहीं होता पर अपने अचेत पितामह को तब राजा विष्णुसिंह आश्रम जा कर महलों में ले आया। जहाँ दो दिन बाद ऊपर बताई तिथि के दिन श्रीजित ने देह त्यागी। इसके पौत्र राजा ने तब विधि-विधान से अन्तिम क्रिया सम्पन्न करवा कर इस अवसर पर खूब दान पुण्य किया। इस समय पिछले वर्ष से ही क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था इस कारण दूर-दूर से लोग एकत्र हुए। इन सभी आये हुए लोगों को श्रीजित के बारहवें का भोजन करवाया गया पर भूखे लोगों ने दूसरे दिन भोजन लूट लिया।

भाखे सकही के मास फागुन बिसद भाग,
सोधित द्वितीया कर्मबाटी लग्न अग्रसर॥
भाटिन नैं डोला आनि बून्दी परिनायो भूप,
कन्या रत्नसिंह की अनन्या सील जोरि कर॥
नाम लाडकुमरि ललाम गुन रूप निज,
पंचमी सु रानी आनी कित्ति के प्रसार पर॥
सालम हरामी की हवेली माँहिं लग्न साधि,
बिलस्यो बिलासन मैं बरनी उपेत बर॥२५॥

इसी कथित वर्ष इकसठ के फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि के शुभ लग्न का मुहूर्त देख कर भाटियों ने अपनी कन्या की (डोला ला कर) हाड़ा राजा विष्णुसिंह से शादी की। रत्नसिंह की पुत्री सुन्दर गुणवती लाडकुमारी को राजा ने पूरी कीर्ति के साथ अपनी पाँचवी रानी बनाया। राजा विष्णुसिंह ने अपना यह विवाह हरामी (स्वामी की विमुखता के कारण यह विशेषण ग्रंथकार ने प्रयुक्त किया है) सालमसिंह की हवेली में लग्न समय पर रचाया और वहीं विलासी राजा अपनी नई दुल्हन के साथ रहा।

उक्त सकही के समै पत्तन करोली इत,
जो मानिक्यपाल भूप छोरत भो देह जब॥
नाम हरिपाल भो तदीय सुत छोटो नृप,
तात के तखत बैठि उचित अनेह तब॥
संबत नयन तर्क नाग भू प्रमित समै,
अंध साहआलम नैं दिल्ली तज्यो देह अब॥
पहिलैं कहायो आलीगुहर स नाम पीछैं,
साह भयैं लागे साहआलम कहन सब॥२६॥

इसी वर्ष इकसठ के समय में करोली का राजा माणिक्यपाल था उसका देहान्त हुआ। तब उसका छोटा पुत्र हरिपाल उसकी जगह पर करोली का नया राजा बना। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बासठ में दिल्ली के अंधे बादशाह शाहआलम का इंतिकाल होगया। पूर्व में इसका नाम आलीगुहर था पर बादशाह बनने के बाद उसे सभी शाहआलम के नाम से पुकारने लगे।

सो आलमगीर दूजे को सुत कथित समै,
बुद्धिदृग सुद्धि अैसैं दिल्ली भयो काल बस॥
तैसें अभिधान करि अकबर दूजो तहाँ,
तात पट्ट बैठो पै गिरिसी फिरी आन तस॥
जोधपुर जैपुर उदैपुर बढ्यो जहर,
राम प्रभु सुनहु रह्यो ज्यौं माँहिं माँहिं सर॥
मार्यो अरिसिंह रान रावरे पितामह नैं,
जिततित छायो त्यौं बढायो बीरभाव जस॥२७॥

नियति के जोर से इस तरह आलमगीर (द्वितीय) का पुत्र वह जो प्रज्ञाचक्षु बादशाह शाहआलम था जब इसके दिल्ली में इंतकाल की खबर आई तब उसका पुत्र अकबर (द्वितीय) नामक तख्त पर बैठा पर इसके बादशाह बनने की आन-दुहाई उतने जोरदार ढंग से नगर में नहीं फिराई गई क्योंकि तब तक दिल्ली की बादशाहत अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। इसी वर्ष जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के आपस में वैरभाव का जहर फैला। हे राजा रामसिंह! आप सुनें, कि यह जहर कैसे भीतर ही भीतर फैलता रहा।

आपके पितामह ने जब उदयपुर के महाराणा अरिसिंह को मारा तब वीरता का भाव और यश दोनों बढ़े।

जेठो अरिसिंह को तनूभव हमीर जब,
बैठो बिधि के बस पिताके पट्ट बाल बय॥
बेगहि मरयो सो रान हायन अलप बचि,
दूजे तस भ्रात भीम पायो राज्य अभ्युदय॥
भीम रान कै भई तनूजा इक ताको भयो,
सगपन जोधद्रंग भीम सों गये समय॥
पुद्गलग बिहायो जोधुपर के अधीस पीछैं,
पट्ट तस पायो मान आपुनें बलिष्ट अय ॥२८॥

महाराणा अरिसिंह के मरने के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हमीरसिंह बालवय में ही विधि के विधान से पिता का राजसिंहासन पा कर उदयपुर का नया महाराणा बना पर थोड़े ही वर्षों तक वह जीवित रहा। ऐसे में हमीरसिंह के दूसरे भाई भीमसिंह ने उदयपुर का समृद्धिवाला राज्य पाया। इस महाराणा भीमसिंह के पुत्री जन्मी। वय प्राप्त होने पर जिसकी सगाई जोधपुर के राजा भीमसिंह से की गई पर थोड़े ही दिनों के बाद राजा भीमसिंह ने रोग ग्रस्त हो कर शरीर त्याग दिया और उसकी जगह पर अपने भाग्य बल से मानसिंह जोधपुर का नया राजा बना।

कन्या की सगाई तब मान सों करन फेर,
जोधपुर भेजे बिसवास के स्वकीय जन॥
माननृप तब तो नट्यो तस महत्व मानि,
जदपि निहोरयो इत उत के किते जनन॥
कन्या की सगाई जयनैर तब रान करी,
पेखि जगतेस कों समान कुल रूच्यपन॥
होतहि सगाई तदंनतर कुपित होइ,
चंपाउत भाख्यो देत कन्या पहिले बचन॥२९॥

ऐसे में उदयपुर से भले आदमियों (राज्य के हाकिम आदि) को फिर से जोधपुर भेजा गया कि अब महाराणा भीमसिंह की पुत्री की सगाई मानसिंह

से कर दी जाए। तब राजा मानसिंह ने उस कन्या की उम्र बड़ी जान कर सगाई से इनकार कर दिया जबकि इस समय उसके स्वजनों ने भी उसे मनाने के प्रयत्न किऐ और उदयपुर से आए लोगों ने भी बहुत आग्रह किया पर जब मानसिंह ने मना कर दिया तो इस कन्या की सगाई तले महाराणा ने जयपुर के राजा जगतसिंह को समान कुल का समझ कर, कर दी। जयपुर सगाई होने की खबर जब जोधपुर पहुँची तो चांपावत (सवाईसिंह) ने कहा कि यह कैसे हो सकता है ? पहले वचन जोधपुर को दिया गया था।

पहिलैं मरत भीम चंडाली करंड पर,
दुष्ट नैं दुसाला डारि काढी अवरोध द्वार॥
राजा मान कौं अब अधीन निज राखिबे कौं,
बिरच्यो सवाईसिंह बायस यह बिचार॥
जानि यह मान लागो रहन स्वतंत्र जिम,
आनि निम जोर तैं प्रधान ताको अधिकार॥
भाख्यो यौं हमारे अधिराज की सगाई भूलि,
कूरम लहैं सो कोन दुलही प्रथम दार॥३०॥

पूर्व में जब जोधपुर के राजा भीमसिंह की मृत्यु हुई तब इस चांपावत सवाईसिंह ने एक चांडाल स्त्री को टोकरे पर दुशाला डलवा कर जनानी ड्योढी से निकाला था अर्थात् उस समय तो कृत्रिम बालक धोंकलसिंह का दाँव खेला था पर अब बदली हुई परिस्थितियों में राजा मानसिंह को अपने वश में लेने के लिए सवाईसिंह ने यह नया शगुफा छोड़ा। राजा मानसिंह इसे जान कर सचिव के वश में नहीं रह कर स्वतंत्र रहने लगा था अर्थात् वह स्वतंत्र निर्णय लेने लगा था पर इस प्रधान चांपावत ने अपने अधिकारां का तोर दिखाते हुए कहा कि हमारे स्वामी के साथ हुई सगाई को भूला कर कछवाहा राजा कैसे विवाह कर सकता है ? जिसके साथ पहले सगाई हुई स्त्री उसी की होती है।

बिरचि प्रबंध यौं लै पंचन प्रपंच बिच,
सूची नृप मानसौं सवाईसिंह काक सम॥
रावरी बधूटी बरिबे कौं कछवाह रंक,
होइ सिर जैहैं मरिजैहैं जब सब हम॥

भूप तुम कैसैं रह्यो बित्रप चकित भाव,
जान कब दैहैं कछवाहकौं कबंध जम॥
आप सिर सारी धारि लीनी तो धरहु ओर,
पट्टप उचित कोऊ धर्म ज्यौं रहै परम॥३१॥

सवाईसिंह चांपावत इस तरह का प्रपंच रच कर पंचों (मुख्य जनों) से मुखातिब हुआ और कौए की तरह चतुर मंत्री ने सभी को यह मसला सुनाया फिर वह राजा से कहने लगा हे राजा मानसिंह! आपकी मंगेतर को वह रंक कछवाहा वरने जा रहा है, ऐसे में हम सभी कट मरेंगे पर यह नहीं होने देंगे। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि आप ने निर्लज्जपन स्वीकार कर यह सब सुन कैसे लिया? आपने कैसे सोच लिया कि यमराज रूपी राठौड़ उन कछवाहों को जाने देंगे? आपने अपने सिर साड़ी ओढ़ ली तो फिर हे स्वामी! वह धर्म भी बता दीजिये जिससे आपके सत्य को हम परम मान लें अर्थात् हम भी साड़ी ओढ़ लें?

बचन प्रतोद ऐसैं दैदै नृप मान बुद्धि,
फेरी फेरु चंपाउत के करि कपट फैल॥
जानि स्वान छोरयो इक बिप्र मख छाग जैसैं,
ऐसें बहुतन के कहे सों एह गहि गैल॥
ऐंचि कर मुच्छ भूप मानहु पलटि अब,
सोहि मत भाख्यो कोन लंघहिं कनकसैल॥
रूच्य पहिले कै जो सुबासिनी बरन रीति,
छीनि हम लैहैं व्याहि गंजि तो अपर छैल॥३२॥

अपने वचनों के चाबुक के ऐसे प्रहारों से उस सवाईसिंह ने राजा मानसिंह की बुद्धि को भी विचलित कर डाला। यह सब उस कपटी गीदड़ के छल का प्रसार था जैसे कुत्ता जान कर उस ब्राह्मण नेअपने बकरे को छोड़ दिया। (हितोपदेश की एक कथा का प्रसंग। जिसमें कथा इसप्रकार है कि एक ब्राह्मण यज्ञ में बलि के अर्थ एक बकरा ले जा रहा था उसे देख कर धूर्तों ने विचार किया कि इस ब्राह्मण से बकरा छुड़ा लेना चाहिए। ऐसी सलाह कर

वे उस ब्राह्मण के रास्ते पर दूर-दूर बैठ गए। जब ब्राह्मण निकला तो पहला ठग बोला अरे, तू ब्राह्मण हो कर यह कुत्ता कंधे पर क्यों लादे जा रहा है ? यह सुन कर ब्राह्मण आगे चला तो थोड़ा आगे जाने पर दूसरे ठग ने भी वहीं दुहराया जो पहले वाले ने कहा था। ब्राह्मण आगे चला तो तीसरे धूर्त ने भी यही पूछा कि कुत्ता कहाँ ले जा रहे हो ? और अंत में चौथे ने भी अपने सामने से गुजरते ब्राह्मण से पूछा, ब्राह्मण हो कर इस तरह कुत्ते को कंधे पर लादना तुम्हें शोभा देता है भला ? चारों के ऐसा कहने पर ब्राह्मण ने सोचा कि हो सकता है सत्य यही हो और लगता है मेरी दृष्टि में भ्रम हो। तब वह ब्राह्मण स्नान, कर उस बकरे को वहीं छोड़ कर अपने घर चला गया और उन चारों धूर्तों ने मिलकर उस बकरे को खा लिया-सम्पादक)। इस तरह कई लोगों के और बार-बार कहने से राजा मानसिंह ने भी उनका रास्ता अपना लिया और अपनी मूंछों पर ताव देते हुए पलट कर अपना मत प्रकट किया कि ऐसा कौन है जो सुमेरू पर्वत का उल्लंघन करे ! पिता के घर बसने वाली कन्या के वरण की यही रीति है कि जो पहले वरे उसकी वधू। यदि उसे अन्य रसिक से ब्याह दिया तो हम उससे अपनी मंगेतर को छीन लेंगे।

पत्र ऐसो इतहु लिखाइ भेज्यो रान प्रति,
कै इत बिबाहहु कै मारहु कनी कुटिल॥
क्यौं तुम बिरोध पार्यो जैपुर सगाई करि,
कूरम नपोते कौं बिनासहिं कबंध किल॥
रंडा रहि जैहैं हनिहो तो कहि भेजी रान,
बारन न माइ हैं पिपीलिका के छुद्र बिल॥
अबहु कनी कौं हमरे मत बरहु एक,
खोलि रन झंडे अरि जीति रहो जोहि खिल॥३३॥

तब राजा मानसिंह ने जोधपुर से इस आशय का एक पत्र उदयपुर के महाराणा को लिख भेजा कि या तो आपको अपनी कन्या जोधपुर के राजा से ब्याहनी होगी या फिर आपको अपनी कुटिल कन्या को मारना पड़ेगा। आपने जयपुर नये सिरे से सगाई कर हमारे मध्य इस विरोध को क्यों जन्म दिया ? क्योंकि कछवाहों के वंशज (अर्थात् जयपुर के राजा जगतसिंह) को तो

राठौड़ निश्चय ही मार गिराएँगे और ऐसे में आपकी कन्या विधवा हो जाएगी। इसलिए आपसे निवदेन है कि चींटी के छोटे बिल में हाथी को घुसाने जैसा असाध्य कार्य मत कीजिये। अन्यथा हमारा मानना तो यह है कि आपको अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करना चाहिए जो युद्ध में अपनी सेना के ध्वज लहराता हुआ अपने शत्रु को मार कर शेष (जीवित) रहे।

अैसी रीति दुदिस लगाइ लाय चंपाउत,
कोऊ कुल बालक कौं भीम को तनूज करि॥
जाको नाम धौंकल प्रसिद्धि मैं अब जनाइ,
पास बिसवास के प्रबीर राखे बीच परि॥
मान महिपाल कौं अधीन अपनैं न मानि,
अट्ठहि मिसल आदि भटन स्वपच्छ भरि॥
जैपुर लौं आप समुझावन के व्याज जाइ,
कूरम मैं मिलिगो स्वमुच्छ कर सौं कतरि॥३४॥

इस प्रकार की आग दोनों ओर के पक्षों में लगा कर चांपावत सवाईसिंह ने अज्ञात कुल के एक बाल को जोधपुर के राजा भीमसिंह का पुत्र प्रसिद्ध करना चाहा। उसने धौंकलसिंह नामक बालक को अपने विश्वासपात्र योद्धाओं की सुरक्षा में रखा क्योंकि उसने राजा मानसिंह को अपने वश में नहीं जाना। इसके लिए चांपावत ने मारवाड़ की आठों ही मिसल के उमरावों (सामन्तों) को अपने पक्ष में किया और इसके बाद समझाने जाने का बहाना बना कर वह जयपुर पहुँचा। पर वह वहाँ तो अपनी स्वयं की मूंछ को खुद ही काट कर जयपुर वालों के पक्ष में जा मिला।

मिलि जगतेस सौं कह्यो इम रहस्य मत,
स्वामी हम सबै चहि धौंकल जो भीम सुत॥
आप चलि ताहि जोधपुर को करहु ईस,
द्रम्म नवलक्ख दैहैं होतहि अभीष्ट द्रुत॥
रावरो उदैपुर बिबाह कोऊ रोकिहैं न,
नाम करि अैसैं सब भूपन मैं होहु नुत॥

मान सठ आपकौं निवारे सो कवन मद,
जाहि गहि आनहु गहाइ दैहैं बित्त जुत॥३५॥

जोधपुर के सचिव सवाईसिंह चांपावत ने तब जयपुर के कछवाहा राजा से एकान्त में मंत्रणा कर कहा कि हे स्वामी! हम सभी जोधुपर के सामन्तों की इच्छा है कि जोधपुर की गद्दी पर राजा भीमसिंह का पुत्र धोंकलसिंह बैठे। इसके लिए आप चल कर अपनी धोंस से उसे गद्दी पर बिठवाओ। इस कार्य के लिए हम आपको नौ लाख रुपयों की राशि नजर करेंगे। यहीं नहीं फिर आपका उदयपुर में होने वाला विवाह भी कोई नहीं रोकेगा। इसलिए आपके समक्ष यह अवसर है कि आप अपने नाम को सभी राजाओं की स्तुति के योग्य बनाएँ। यदि राजा मानसिंह आपको इस कार्य के करने से रोके तो उसमें इतनी हिम्मत कहाँ? मैं जोधपुर जा कर उसे पकड़ लाऊँगा और रुपयों सहित उसे आपके सुपुर्द कर दूंगा।

सुनत इतीक निज बुद्धि के जनन सह,
मत्त बारुनी मैं जगतेस धारि अभिमान॥
भाख्यो लिखि देहु भट अठ्ठहि मिसल आदि,
धौंकल की फेला लेहु टारि देहु व्यवधान॥
कग्गर लिखाइ इम तबहि कबंधन को,
इष्ट धर्म सौंहन सवाईसिंह अघवान॥
सौंप्यो जगतेस कौं करार मैं सबन साखि,
पाघ बिनु व्हैबे पै बिपत्ति दैबे प्रभु प्रान॥३६॥

सवाईसिंह की यह बात सुन कर अपनी छोटी बुद्धि से काम लेने वाले और मद्यपान में मत्त रहने वाले कछवाहा राजा जगतसिंह ने तब अभिमान पूर्वक कहा कि आप लोग जोधपुर के आठों ही मिसल वाले सामन्त मुझे यह लिख कर दो कि हम सभी भीमसिंह के पुत्र धोंकलसिंह को असली समझते हुए उसका झूठा खाने को तैयार हैं और उसमें और हमारे में कोई अन्तर नहीं है। इस पर पापी सवाईसिंह ने धर्म की शपथ के साथ जोधपुर के सारे सामन्तों से ऐसा लिखित करार ला कर सब की साक्षी में कछवाहा राजा जगतसिंह को सोंपते हुए कहा कि हम सभी लोग अपनी पगड़ी के बिना हो जाएंगे (अर्थात्

हमें हमारी जागीर छोड़ना स्वीकार है) पर आप पर विपत्ति के आने पर प्राण दिये बिना नहीं रहेंगे।

पापी इम पत्र इत भेज्यो मान भूप प्रति,
खूब समुझायो पै न मानै कछवाह खल॥
यातैं अब जुद्ध को बिलंब न करहु आप,
करहु चढाइ जीति लैहै प्रभु के सकल॥
कोन कोन ठाम जीते कूरम कबंधन सों,
बाहिर करहु डेरा यातैं बेग बाँधि बल॥
मत्त यह धौंकल बुलाइ मिलि तुल्य मानि,
एक पट्ट बैठत इहाँतो मत है अचल॥३७॥

इधर उस पापी सवाईसिंह ने एक पत्र जोधपुर राजा मानसिंह को लिख भेजा कि यहाँ जयपुर आ कर मैंने कछवाहा राजा को खूब समझाया पर वह जिद्दी मान नहीं रहा। इसलिए आप तो चढ़ाई कीजिये आपकी विजय होगी हम सब जो आपके साथ हैं। फिर आप स्वयं देखें कि कछवाहा हम राठौड़ों से कब-कब और कहाँ जीते हैं? इसलिए आप तो शीघ्र ही नगर से बाहर शिविर बना कर अपनी सेना को सज्जित कीजिये। इधर प्रमत्त कछवाहा राजा जगतसिंह ने धोंकलसिंह को अपने यहाँ बुलाया और उससे समतुल्य (राजा) मान कर मिला। लोगों को यह सन्देश देने के लिए कि हमारा तो एक ही गद्दी पर बैठने का निश्चित मत है।

पूछे नुप मान तँहैं संसद बुलाइ पंच,
चंपाउत पत्रहु दिखायो मत लैन चहि॥
ते सब पिहित मिले धौंकल सिसुहि ताकि,
गाढे हठ लोभी लेख द्विगुन पटान गहि॥
जो लिखी सवाईसिंह सोही करतव्य जंपि,
बाहिर करहु डेरा सूची अतिदर्प बहि॥
माननृप चार रु बिचार दृग द्वैही मींची,
कीनो कह्यो तिनको भरोसा तैं प्रयान कहि॥३८॥

इधर राजा मानसिंह ने जोधपुर में अपनी राजसभा बुला कर चांपावत

सवाईसिंह का पत्र अपने सामन्तों की राय लेने के मकसद से दिखाया। वे सभी तो गुप्त रूप से धोंकलसिंह के पक्ष में मिले हुए थे क्योंकि उस सम्भावित शिशु राजा ने सभी सामन्तों को दुगुनी जागीर देने का लालच जो दे रखा था। इसलिए सभी ने कहा कि सवाईसिंह ने जैसा कहा है वहीं हमारे करने योग्य है अत: नगर के बाहर शिविर लगा कर हमें सेना सज्जित करनी चाहिए। इस समय राजा मानसिंह अपने दोनों नेत्र बंद कर (प्रत्येक राजा की दो आँखें हलकारे और विचार होते हैं) अपने सामन्तों का कहा करने को उद्यत हुआ और अपने सामन्त योद्धाओं के भरोसे सेना के प्रयाण की स्वीकृति दी।

मद्य मदमत्त इत जैपुर अधीस मानी,
जंग उपह्लार सबै कीनैं सज्ज जगतेस॥
तोहू इक बेरतो रुक्यो जो आनि कानि त्रपा,
बुंदी प्रभु विष्णुसिंह बरज्यो जब बिसेस॥
पै जँहँ सवाईसिंह दमनक स्यार पास,
आस मानिबे की तँहँ कैसी लग्यो कान एस॥
डाकदार जैसैं मत्त बारन को देंदै डाक,
अैसे कछवाह काढ्यो बाहिर बिधि असेस॥३९॥

उधर जयपुर के मद्यप और प्रमत्त राजा जगतसिंह ने भी अपने योद्धाओं को हथियारों की भेंट दे कर उन्हें सज्जित होने की आज्ञा दी। तभी बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह के विशेष मना करने पर वह थोड़ा लज्जित तो हुआ पर जहाँ दमनक (हितोपदेश का सियार पात्र) जैसा सियार पास हो तब कछवाहा राजा से किसी का कहा मानने की अपेक्षा करना ही बेमानी थी। जैसे सांटमार लोग मस्त हाथी को क्रोध दिलाने हेतु छोटे घाव लगाते हैं उसी तरह अपने वचनों से निरंतर कोंच कर सवाईसिंह चांपावत ने कछवाहा राजा को भी नगर से युद्ध के लिए बाहर आने को बाध्य कर ही दिया।

लाखन खरचि दम्म राखि दल तीन लाख,
सज्जि पहु बीकानैर आदि बहु मित्र संग॥

भीमसुत धौंकल कौं जोधपुर दैन भाखि,
आप बलि ब्याहन उदैपुर बय उमंग॥
कोटादिक दंडि पै लगावन बिचार करि,
जोधपुर हंक्यो पहिलैं जय करन जंग॥
श्रावक सचिव रायचंद बहुबेर रोक्यो,
तदपि रुक्यो न बढ्यो पंथन करत तंग॥४०॥

लाखों रुपयों का खर्चा करते हुए, कछवाहा राजा तीन लाख की संख्या वाली जंगी सेना के साथ स्वयं अपने मित्र बीकानेर आदि के राजाओं सहित सज्जित हुआ और उसने राजा भीमसिंह के पुत्र धोंकलसिंह के लिए कहा कि मैं इसे जोधपुर का राज्य दिलवा कर रहूँगा। इसके बाद अपने यौवन के मद में चूर राजा ने उदयपुर विवाह करने की उमंग से कोटा आदि राजाओं को दण्डित कर अपने चरणों में झुकाने का विचार किया फिर उसने सेना को उदयपुर की दिशा में बढ़ाया। इस अवसर पर राजा के मंत्री सरावगी वैश्य रायचन्द ने बहुत मना किया पर राजा नहीं रुका वह तो रास्ते में पड़ने वाले सामन्तों को तंग करने की नियत से बढ़ा।

सेना यह राखि लायो अधिक जितीक सज्ज,
ओरन कै नाँ सुनी तितीक तिहिं काल इम॥
पायो पै हरोलिन व्हाँ चंदोलिन पायो पंक,
अध्व के अरण्य तरु तूट भये चोक तिम॥
साक दुव तर्क अष्ट इंदु के शिशिर समै,
जाम हुव ग्राम नाम गिंघोली मुकाम जिम॥
उततैं स्वसंग लै अनीक सब मान आयो,
कपट मैं जानैं जयलोभी रुकि जाय किम॥४१॥

इस बार कछवाहा राजा ने जितनी बड़ी संख्या वाली सेना सज्जित की इतनी बड़ी सेना के बारे में इस समय तक किसी ने सुना भी न था। सेना की विशालता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता था कि सेना के हरावली दस्ते (अग्रभाग) को जहाँ पानी मिला वहीं पिछले हिस्से (चंदावली दस्ते) को कीचड़ ही नसीब हुआ। इस सेना के संचालन से मार्ग में पड़े

अरण्य के पेड़ टूट कर साफ हो गए जैसे कोई चौक बनाया हो। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बासठ की शिशिर ऋतु में इस सेना ने उदयपुर के पास पहुँच कर गिंघोली नामक गाँव में पड़ाव डाला। उधर जोधपुर से अपनी सेना ले कर राजा मानसिंह आया। कपट से भला विजय का लोभी रुके भी तो रुके कैसे?

अध्वबिच आत कृष्णगढ के छली अधिप,
राज्य निज जैबो जानि माया को प्रपंच रचि॥
स्वीय भूमि लैबे करकेरीवै अमरसिंह,
संग पहु कूरम के हो तस सहाय सचि॥
मिथ्या पिसुनत्व जगतेस को मुराइ मन,
मरवायो जो दगा सौं....... पाप ताप तचि॥
जैपुर को आप बनि बैठो सुभचितंक ज्यों,
जोधपुर छोरि जोरि याही तैं प्रसाद जचि॥४२॥

रास्ते में छली राजा किशनगढ़ ने भी माया का प्रपंच रचा जब उसे यह पता चला कि अपना राज जा सकता है क्योंकि इस समय करकेड़ी का जागीरदार अमरसिंह अपनी जमीन लेने के लिए जयपुर के कछवाहा राजा की रक्षा में चला गया था और झूठी-सच्ची चुगलियाँ कर वह राजा जगतसिंह का मन पलटने में लगा था। इसे पाप की अग्नि में तप कर राठौड़ राजा ने दगे से मरवा डाला। फिर वह किशनगढ़ का राजा जयपुर का शुभचिंतक बन बैठा इसके लिए उसने जोधपुर से अपने सम्बन्ध तोड़ कर जयपुर से सम्बन्ध सुधारने में प्रसन्नता महसूस की।

द्वै ही मिले ऐसै ग्राम गिंघोली समीप दल,
जोधपुर जैपुर बनै जे चित्त बरजोर॥
बाजिन उठाइबे की बेर मै कबंध कुल,
आये टरि टरिकैं सबही कछवाह ओर॥
मान यह देखत बिचार्यो कर सों मरन,
नीठिन निवारि सोपै संग के दुसह दोर॥
जोधपुर जाइ लरिबे की थापि टेकी लागे,
मान कौं निकासि कैं भजे लै च्यारि भटमोर॥४३॥

जोधपुर और जयपुर से आई दोनों सेनाओं का मिलाप गिंघोली गाँव में हुआ। दोनों दल अपने आपको मन ही मन ताकतवर समझने लगे पर घोड़ों की लगाम उठाने का वक्त आया अर्थात् युद्ध में घोड़े झोंकने का समय आया तब जोधपुर के राठौड़ सामन्त एक-एक कर चल कर कछवाहा राजा के पक्ष में चले गए। राजा मानसिंह ने जब यह देखा तब उसने अपने ही हाथ से मरने का विचार किया। तब कुछ करीबी (भरोसे वाले) लोगों ने उसे ऐसा करने से रोका और राजा को समझाया कि हम जोधुपर जाकर पूरी तैयारी करेंगे। इस तरह समझा कर गिंघोली से राजा मानसिंह को उसके चार सामन्त निकाल कर ले गये।

ऊदाउत अर्जुन स नाम रायपुर ईस,
नाह त्यौं कुंचामनि को मेरतिया सिवनाथ॥
भद्राजनि लाडनौं के जोधे द्वै कबंधभट,
साथ बखतेस अरु मंगल ए क्रम साथ॥
लछमन मान हुकमेस ए त्रय हि लार,
सोदर कनिष्ट शिवनाथ के प्रधनपाथ॥
काकासुत भ्राता सिवनाथ अरु मंगल के,
संगी सारदूल पता सक्रम गदित गाथ॥४४॥

इनमें रायपुर का ठाकुर अर्जुनसिंह उदावत और कुचामन का जागीरदार मेड़तिया शिवनाथ थे। इनके अतिरिक्त लाडनूं और भाद्राजुन के दो जोधा सामन्त बखतसिंह और मंगलसिंह थे। इन चार मुख्य सामन्तों के अतिरिक्त राजा मानसिंह के साथ कुचामन के ठाकुर शिवनाथ के तीन छोटे भाई क्रमशः लक्ष्मणसिंह, मानसिंह और हुकुमसिंह थे जो युद्ध में अर्जुन की तरह लड़ने वाले वीर योद्धा थे। इनके अलावा शिवनाथ के चाचा का पुत्र शार्दुलसिंह था वहीं मंगलसिंह का चचेरा भाई प्रतापसिंह भी था। हे राजा रामसिंह! मेरे द्वारा इस क्रम से कही गई बात में उपरोक्त वीर योद्धा थे।

ए नव बिदति नव अबिदित नाम ऐसैं,
अष्टादस मान भजे मान कौं लैं असवार॥

भूरि धूरि पूरि ख भई इम तिमिर भीर,
आपुनैं न भासे कर आपकौं लखन लार॥
मानवारे डेरन मैं आवत न मग्ग मिलि,
बाजि कछवाहन के उरझे जव बिहार॥
जाही करि मान को पलायन सबन जान्यौं,
पेठो जगतेस चित्त जाको दर्प गतपार॥४५॥

इन नौ विदित नाम वाले योद्धाओं के अलावा नौ वे योद्धा भी थे जिनके नाम ज्ञात न हो सके। ये अठारहों सवार अपने मध्य राजा मानसिंह को रखकर वहाँ से भागे। उधर रणभूमि अर्थात् गिंघोली गाँव में उड़ कर इतनी धूल आकाश में छा गई कि अन्धेरा सा छा गया। इस अंधेरे में किसी को अपने पक्ष का वीर क्या नजर आता? जब कि आदमी को उसका स्वयं का हाथ साफ दिखाई नहीं दे रहा था। इसके कारण कछवाहों की सेना के घोड़ों को राजा मानसिंह के शिविर में आने का मार्ग नहीं मिला। सारे सवार थे वहीं रुक गए। इसके बाद सभी ने जब राजा मानसिंह के भाग जाने की बात को जाना तो इस खबर को सुन कर जगतसिंह के चित्त में अपार हर्ष ही हर्ष भर गया।

संभर नरेस बरज्यो बलि जगतसिंह,
बुन्दी तैं पठाइ दूत दूजी बेर नीतिबल॥
सो जब मानी चढ्यो कूरम तबहि सज्जि,
द्वै सहँस भेज्यो हड्डु जोधपुर भीर दल॥
भूपालादिसिंह मुख्य धोवरेस संग भट,
बनिक प्रधान त्यौं गनेसराम धी बिमल॥
दोइ तिम तोप संग पलटनि दोइ दै रु,
भेज्यो कपतान नाम भीखम सजैं सकल॥४६॥

बून्दी के चहुवान राजा विष्णुसिंह ने जगतसिंह से ऐसा नहीं करने का कहा और इसके लिए उसने बून्दी से अपने दूत दूसरी बार जयपुर भेजे पर उसने एक न सुनी और सज्जित हो कर युद्ध के लिए बढ़ा। यह देख कर तब बून्दी के हाड़ा राजा ने अपनी सेना के दो हजार सिपाहियों को जोधपुर की सेना के पक्ष में लड़ने भेजा। धोवरा के ठाकुर भूपालसिंह को सेना नायक

बना कर निर्मल बुद्धि वाले मंत्री गणेशराम को साथ भेजा। राजा ने दो पलटनें तोपखाने की भेजी जिनका कप्तान भीष्मसिंह (भीखम) को बना कर रवाना किया।

इन तब सूची आइ मान सौं पलायन मैं,
रावरे निदेस बस हैं हम रचहिं रारि॥
कीजै आप गोन रजपूतन के देखि कर,
जैपुर समुख जंग पहिलैं हमहिं पारि॥
माननृप भाख्यो इहाँ व्यर्थ तुमरो मरन,
जीतिबो रह्यो पै बचिबो न बनै बिष जारि॥
आहु मम संग यातैं देहु न अनर्थ असु,
जोधपुर जाइ रचि हैं रन पर प्रचारि॥४७॥

सहायता करने को बून्दी से गई हुई सेना के नायकों ने जब पलायन करते राजा मानसिंह से पूछा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो हम लोग युद्ध करें। आप देखें, जयपुर की सेना से भिड़ंत की पहल हम किये देते हैं। इस पर राजा मानसिंह ने कहा कि इतनी जंगी सेना से टक्कर लेना हम लोगों के वश की बात नहीं इसलिए तुम्हारा मरना यहाँ व्यर्थ होगा। इनसे जीतना तो कठिन है ही युद्ध छेड़ देने के बाद फिर तुम्हारा बचना भी कठिन होगा। इसलिए यहाँ व्यर्थ ही प्राण गँवाने में क्या तुक है ? इससे अच्छा तो यह रहेगा कि तुम लोग हमारे साथ आओ जिससे हम जोधपुर जा कर वहाँ तैयारी के साथ शत्रु को ललकारेंगे।

जोरिकर ऐसैं तब बुन्दी के भटन जंपी,
आपकौं न निंदैं मिल्यो सत्रुन सौं चक्र इम॥
मुरि हम सज्ज सब भूपहिं दिखाँहि मुख,
कथन तदीय टारि सम्मद बिथारि किम॥
जातैं आप जोधपुर लरहु सबेग जाइ,
जुरि हम ठाढे इहाँ इकघाँ तटस्थ जिम॥
चाहि हमपैं जो बढिहैं तो करिहैं ज्यौं चित्त,
पँहुँचहु आप हम आडे आपगा प्रतिम॥४८॥

तब बून्दी के सेनानायकों ने करबद्ध निवेदन किया कि हे राजा! इसमें आपकी निंदा का क्या सबब? हम आपको बुरा नहीं कह रहे क्योंकि आपकी सेना के योद्धा तो सारे शत्रु सेना में जा मिले! इससे अब हम मुड़ कर सज्जित हुए से बून्दी जा कर अपने राजा को क्या मुँह दिखायेंगे? उनका कहना टाल कर (उन्होंने हमें लड़ने भेजा था) उनके हर्ष का विस्तार कैसे करेंगे? इसके लिए आप जोधपुर जा कर तुरन्त युद्ध आरंभ करें। हम तब तक यहीं तटस्थ की तरह एक तरफ (यहाँ) खड़े हैं। यदि जयपुर की सेना हम पर आक्रमण करेगी तो हम भी मनमाना प्रत्युत्तर देंगे। चलिये, आप यहाँ से बेखौफ होकर जाइए! नदी की तरह हम आपके और उनके बीच आड़ बन कर खड़े हैं अर्थात् हम उन्हें तत्काल आपका पीछा नहीं करने देंगे।

ऐसी कहि एक ओर बून्दी को रह्यो सु बल,
सत्रुनको भार टार्‌यो तोपन के वार सजि॥
मान महिपाल मंड्यो जोधपुर जाइ जंग,
भाख्यो कछवाहन सभीक गयो सत्रु भजि॥
बून्दी इत आयो राखि गौरव अधीस बल,
त्यौं गो जगतेस उत गम्य दुर्ग संक तजि॥
जाल दल तोपन को द्रंग गरदाइ जोर्‌यो,
जंगतैं न रोक्यो चित झोंक्यो बित्त इष्ट जजि॥४९॥

ऐसा निवेदन कर बून्दी से सहायता को गई सेना एक तरफ तटस्थ हो कर रही और अपनी तोपों के दहन से शत्रु के भार को टालती रही। उधर राजा मानसिंह ने जोधपुर पहुँचते ही युद्ध की तैयारी आरंभ की जबकि कछवाहों का कहना था कि शत्रु हम से डर कर भाग गया है। फिर बून्दी का दल अपने राजा का गौरव अक्षुण्ण रख कर वापस बून्दी लौटा। वहीं जयपुर का राजा जगतसिंह तब जाने योग्य गढ़ (जोधपुर) पर निर्भय होकर गया। उसने जाते ही गढ़ को घेर लिया और उसके चारों ओर सिपाहियों एवं तोपों का जाल सा बिछा दिया। कछवाहा राजा ने अपने मन को युद्ध की ओर से नहीं मोड़ा उसने तो अपने इष्ट देव की पूजा-अर्चना कर धन लगाया अर्थात् विजय के दाँव पर धन खर्च किया।

जोधपुर सीम पैठो जबतैं जगतसिंह,
तबतैं चमू के लोक लाये गहि लभ्य तिय॥
तिनके निकेत के बिनम्र लैन आये तब,
दोइ दोइ पैसे लै रु पीछी तिन्हैं सौंपि दिय॥
जोधपुर घेर्यो जगतेस मत्त ऐसैं जाइ,
केते काल पीछैं जीति द्रंगहु स्वतंत्र किय॥
दुर्ग एक मान के अधीस रहिगो दुर्गम,
जैसैं सब देह माँहिं आयु के अधीस जिय॥५०॥

जब जोधपुर की सीमा पर जा कर कछवाहा राजा जगतसिंह तैनात हुआ तब जयपुर की सेना के सिपाही नगर में जा कर जो स्त्री मिली उसे उठा लाये। जब उन स्त्रियों के घर वाले उन्हें छुड़ाने की प्रार्थना ले कर आए तब सेना के लोगों ने दो-दो पैसा वसूल कर (ले कर) उनकी स्त्रियों को वापस लौटाया। पूरे जोधपुर नगर को चारों ओर से प्रमत्त कछवाहा राजा जगतसिंह ने कई दिनों तक घेरे रखा फिर लम्बे समय बाद उसने मात्र नगर को आजाद किया, किले को नहीं। केवल वह एक दुर्गम दुर्ग राजा मानसिंह के अधिकार में रह गया जैसे प्रत्येक मनुष्य की देह में आयु के सहारे जीवन रहता है।

जंत्रबिच इच्छू जिम बिच्छू जिम मंत्र बिच,
रसना रदन बीच ऐसे कष्ट मान रहि॥
देस जुत द्रंग माँहिं अरि को अमल देखि,
कुहक सवाईसिंह पास भेजी एह कहि॥
अर्द्ध देस लेख जुत नागपुर लेहु आप,
बैठारहु धौंकल व्हां मोसौं तुल्य भाव बहि॥
इज्जत हमारी बिगरावहु क्यौं सत्रु आनि,
गेह मैं समुझि लेहु नेह मैं सु लेह गहि॥५१॥

गन्ना पिराने की चर्खी के मध्य जैसे गन्ना रहता है, जैसे मंत्रवादियों (तांत्रिकों) के मंत्र के मध्य कीलित बिच्छु रहता है और जैसे बत्तीस दाँतो के मध्य जीभ घिरी रहती है उसी तरह कष्टों के मध्य राजा मानसिंह घिरा रहा।

कष्टों से घिरे मानसिंह ने जब अपने देश और नगर पर शत्रुओं का अधिकार देखा तब उसने दर्जे लाचार हो कर कपटी सवाईसिंह चांपावत के समक्ष प्रस्ताव भिजवाया कि तुम आधा मारवाड़ का देश और नागौर नगर ले कर यदि चाहो तो धोंकलसिंह को मेरे समतुल्य राजा बना सकते हो। पर इस तरह शत्रु को हमारे घर बुलवा कर हमारी इज्जत तो खराब मत करो! हम घर में बैठ कर आपस में समझ लेंगे एक-दूसरे को लिखित करार भी कर देंगे।

मान को बिनय लेख सोहु न बिनय मान्यो,
चंपाउत मीन बैन स्त्रोत प्रतिकूल चढि॥
दिन बिपरीत यातैं दुष्टहिँ सुगम दिस्यो,
मान गहिलैबो गढलैबो घमसान मढि॥
पच्छी कहि भेजी यौं सवाईसिंह मान प्रति,
करहु न देर जोधपुर तैं ब जाहुकढि॥
सीसपैं अधीस धारि धोंकल करहु सेवा,
पावहु उचित पटा प्रभुके अधीन पढि॥५२॥

राजा मानसिंह के इस विनय मे भरे प्रस्ताव को उस विनय (बिना नीति वाले) चांपावत ने स्वीकार नहीं किया। वह सवाईसिंह तो मछली की तरह पानी के प्रवाह की ओर अर्थात् उल्टा चढ़ा। राजा का भाग्य विपरीत था इसलिए उस दुष्ट को घमासान युद्ध कर राजा मानसिंह को बंदी बना लेना और दुर्ग छीन लेना जैसी बातें आसान लगीं। उस सवाईसिंह चांपावत ने तब प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में कहलाया कि हे राजा! आपका भला इसी मे है कि आप अविलंब दुर्ग छोड़ कर यहाँ से जान बचा कर अन्यत्र भाग जाएँ! क्योंकि मैं अब राजा का पद ग्रहण करनेवाले धोंकलसिंह की सेवा करूँगा और अपने नये स्वामी की आज्ञा में रह कर और अधिक जागीर का पट्टा प्राप्त करूँगा।

दोहा

कहि पठई पच्छी कुहक, चंपाउत इम चैंकि।
कोल सपथ नागोर की, फरद लिखी वह फैंकि॥५३॥
इम परिगो संकट असह, महिप जोधपुर मान।
लुट्यो मुलक सब सीमलग, न मिट्यो द्रोह निदान॥५४॥

उस कपटी चांपावत ने कुपित हो कर ऐसा प्रत्युत्तर कहलाया और उसने राजा मानसिंह द्वारा शपथपूर्वक लिखा हुआ नागौर देने का इकरारनामा फेंक दिया। इस तरह जोधपुर के राजा मानसिंह पर असह्य संकट आ पड़ा क्योंकि सीमा पर्यंत पूरे देश को शत्रु ने आ कर लूट लिया और द्रोह का कारण भी नहीं मिटा अर्थात् देश भी गया और शत्रुता भी नहीं मिटी।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवमराशौ विष्णुसिंहचरित्रे काबुलाधीससाहाय्यसिक्खरणजीतसिंहलवपुरग्रहण योधपुराधीसभीमसिंह जयपुरपतिप्रतापसिंहपरस्परविवाहसंबन्धकरण समात्तजाजपुरा-दिमेदपाटप्रान्त कोटासचिवझल्लजालमसिंहकोटाप्रतापवर्द्धन विजित-पेशवाबुन्देलखण्डपराजित सिंधियाहुलकरगृहीतोड्डीशान्तर्वेदजन-पदस्वायत्तीकृतदिल्ल्यागरापत्तनशाहलमार्थनियती कृतवार्षिकव्वसु-लार्डविल्जल्यासमुद्रस्वराज्यस्थापन जयपुरपतिप्रतापसिंहमरणजगत्सिंह तत्पट्टासादनयोधपुराधीशभीमसिंहदेहपातजालपुरसेनासमावेष्टितमानसिंह-योधपुर पट्टप्रापण परिहृतबून्दीराज्यवानप्रस्थश्रीजित्सुरसद्मसमा-सादनबुन्दीपतिविष्णुसिंह पाणिग्रहणकरोलीनृपमाणिक्यपाल-परासुताकलहरिपालगढ्किोपविशन दिल्लीन्द्रान्ध शाहालमप्रेतत्वपुत्रा-कबरपट्टसमासादन उदयपुराधीशभीमसिंहसुताकरग्रहणहेतु सज्ज-सैन्ययोधपुराधीशमानसिंह जयपुरपतिजगत्सिंह गिंघोलीग्रामर-णाङ्गणसमायोजन पोकरणठक्कुरसवाईसिंहैकमत्यमरुसामन्तजयपुर-सैन्यमिलनरणाङ्गणप्रत्यावृत्तमानसिंहयोधपुरागमन कृत्रिमदायाद-धोंकलसिहार्थप्रतिज्ञातमरुधराधिपत्यजगत्सिंह योधपुरसमावेष्टन कृच्छाक्रान्तमानसिंहकृत्रिमदायादधोंकलसिंहार्थनेममरुराज्यसहित नागपुरदानस्वीकरण पोकरणठक्कुरतदनङ्गीकरणं दशमो मयूखः आदितः ॥३५१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, काबुल के अमीर के बल से लाहोर लेकर सिक्ख रणजीतसिंह का बढना और जोधपुर के राजा भीमसिंह व जयपुर के राजा प्रतापसिंह का परस्पर विवाह करना, कोटा के सचिव झाला जालिमसिंह का मेवाड़ के जहाजपुर आदि प्रान्त लेकर कोटा का प्रताप बढ़ाना, लार्ड विल्जली का

पेशवा से बुन्देलखण्ड लेकर सिंधिया और होल्कर को पराजय देकर अन्तरवेद, ओड़ीसा देश लेकर आगरा और दिल्ली विजय करना और शाहआलम को पेंशन देकर पूर्व समुद्र से दिल्ली तक अपना राज्य जमाना, जयपुर के राजा प्रतापसिंह का देहान्त होकर जगतसिंह का पाट बैठना और जोधपुर के राजा भीमसिह का देहान्त होकर जालोर में सेना से घिरे हुए मानसिंह का जोधपुर के पाट बैठना, बून्दी का राज छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाले श्रीजित उम्मेदसिंह का देहान्त होना और बून्दी के राजा विष्णुसिंह का विवाह करना व करोली के राजा माणिक्यपाल का देहान्त होकर हरिपाल का गद्दी पर बैठना, दिल्ली के अन्धे बादशाह शाहआलम का मरना और उसके पुत्र अकबर का पाट बैठना, उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की पुत्री को विवाहने के हठ से जोधपुर के राजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह का सेना सजकर गींघोली नामक ग्राम के युद्ध क्षेत्र में मिलना, मारवाड़ के उमरावों का, पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह के छल से जयपुर की सेना में मिलजाने के कारण राजा मानसिंह का वहाँ से भागकर जोधपुर जाना और मारवाड़ के झूठे दावेदार धोंकूलसिंह को जोधपुर की गद्दी पर बिठाने की प्रतिज्ञा से जगतसिंह का जोधपुर को घेरना, राजा मानसिंह का घबरा कर नागौर के साथ मारवाड़ का आधा राज्य धोंकलसिंह को देना स्वीकार करना और पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह का इस बात को अस्वीकार करने के वर्णन का दसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उनसठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

पाइ कष्ट अैसो प्रचुर, भूरि परत सिर भार।
मान जबहि चिन्त्यो मरन, कलि करि खोलि किँवार॥ १॥

हे राजा रामसिंह! इतनी प्रचुर मात्रा में विपत्ति झेलने के बाद भी जब राजा मानसिंह के सिर और अधिक कष्टों का भार आ पड़ा तब उसने मन ही मन मरना तय कर दुर्ग के किवाड़ खोलने और भिड़ने का मानस बनाया।

पादाकुलकम्

सचिव दोइ तँहँ कारा संगत, हुते कैद पहिलैं सन मन हत।
इंदराज सिंघी अधिकारिय, भनत द्वितीय गंग भंडारिय॥२॥

इन दिय अरज मानप्रति ऐसैं, प्रभु हम जो जैपुर भुव पैसैं।
तो मुरि गेह भजैं जगतेसहु, इक्खहु पति रति मतिगति एसहु ॥३॥

इम सुनि मान अक्खि पठई इम, कीलित तुम बिस्वास बनै किम।
सूचिय तिन हमठाँ हमरे सुत, दुव करि कैद हमैं भेजहु द्रुत ॥४॥

राजा के दोनों सचिव पहले से ही हताश से कैदखाने में कैद थे। एक इन्द्रराज सिंघी जो मुख्य सचिव था और दूसरा गंगाराम भंडारी। इन दोनों सचिवों ने राजा मानसिंह के पास अर्जी भिजवाई कि हे स्वामी! यदि हम लोग जयपुर की भूमि में जा घुसे तो निश्चय ही कछवाहा राजा जगतसिंह जोधपुर का घेरा छोड़ कर वापस अपने घर (जयपुर) को भागेगा। अपने स्वामी में बुद्धिपूर्वक प्रीति रखने वाले दोनों सचिवों को तब राजा मानसिंह ने प्रत्युत्तर भेजा कि शायद तुम लोग ठीक कह रहे हो पर तुम तो कैदी हो! मैं तुम्हारी बात पर भरोसा कैसे करूं? तब सचिवों ने कहलाया कि हे राजा! हम दोनों की जगह पर हमारे बेटों को कारावास में रख लें पर हमें तो निकाले।

बैतालीयम्

इम गंग रु इंदराज की, अरजीतैं तिनके तनै उभै।
कारा धरि लाज काज की, दै कढि गढतैं उतारि द्वै ॥५॥

इस प्रकार इन्द्रराज सिंघी और गंगाराम भंडारी की अर्जी स्वीकार कर उनके बदले में एक-एक बेटे को क़ारागार में रख कर राजा ने कहा कि मेरे काम की लाज रखना अब तुम्हारे हाथ में है! ऐसा कह कर राजा ने उन दोनों को गढ़ से नीचे उतार दिया।

घनाक्षरी

सिंघी इंदराज अरु गंगराम ए सचिव,
करातैं निकासि तिनकी ठाँ पुत्र कैद करि॥

दुर्ग तैं उतारे मान भूपन कथित द्वै ही,
धारि बिसवास आस भेजे भुजभार धरि॥

आइ तिन अधर मिलायो छलि चंपाउत,
भाजे गिनि कैदी मत्त धीजिगो प्रमोद भरि॥

बाजि दुव तासूँ लै रु आरुहि स्वबुद्धि बल,
द्रंग तैं कढे द्वै तिन सत्रुन समुद्र तरि॥ ६॥

सिंघी और भंडारी दोनों के बेटों को कारावास में रखकर राजा मानसिंह ने गढ़ से मुक्त कर नीचे भेजा। इन दोनों की भुजाओं पर राजा ने जोधपुर का भार दिया इस आशा के साथ कि वे शर्तिया कुछ करेंगे। नीचे आकर इन्होंने कपटी चांपावत से मिलने की सोची। इन दोनों को कैद से भागा हुआ जानकर प्रमत्त सवाईसिंह चांपावत ने भी विश्वास कर लिया। तब वे दोनों सचिव चांपावत से दो घोड़े ले कर जोधपुर नगर के बाहर आये और राहत की सांस ली क्योंकि वे शत्रु रूपी समुद्र को पार कर आये थे।

संग नृप मानकै रह्यो जो कह्यो सिवनाथ,
मेरतिया सोपै बहु गुनन बिदग्ध मति॥
अधिप पठायो छिद्र मैं कढि निलय आयो,
गाढे चित्त सों इन मिलायो बुद्ध मंत्र गति॥
अल्प जीविका के भट अखिल बुलाइ बल,
सहँसन जोरि संग अधिकहु राखि अति॥
छत्रैं सिवनाथ इदंराज लै उपाय छम,
पैठे निस मग्ग अग्ग जैपुर के देस प्रति॥७॥

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि राजा मानसिंह को अपना स्वामी मानकर वह चतुर बुद्धि वाला मेड़तिया राठौड़ शिवनाथ राजा के साथ ही रहा। इसे भी राजा ने चुपके से दुर्ग से निकाला तो वह सीधा अपने घर आया। पूरे मन से अपने स्वामी की सहायता करने की गर्ज से उसने कुचामन के आस-पास के छोटी जागीर वाले ठाकुरों को इकत्र किया और उन्हें समझा कर अपने स्वामी के पक्ष में खड़ा किया। इस तरह उसने हजारों की संख्या वाली छोटी-मोटी सेना बनाई। इन योद्धाओं को साथ लेकर तब समर्थ शिवनाथ और इन्द्रराज सिंघी रात्रि के समय जयपुर की ओर वाले मार्ग पर बढ़े।

सोधि भय पीछैं को प्रमत्तहु जगतसिंह,
मंत्रिन के भाखैं गति दैव की दुगम मानि॥
भेज्यो सिवलाल फोजबखसी स्वकीय भुव,
जैपुर रु देस त्रान करन समर्थ जानि॥

फागीपुर हो जो तब लैकैं रही खिल फोज,
अैसे खिन सोपै मत्त तीज पै उमंग आनि॥
अल्प भट संगी आप जैपुर सदन आयो,
कटक असेस सेस व्हाँही राखि भय कानि॥ ८ ॥

उधर जोधपुर में जब मन्त्री ने जा कर प्रमत्त कछवाहा राजा जगतसिंह से कहा कि भाग्य की दुर्गम गति से ऐसा हुआ है कि जोधपुर की सेना हमारे राज की ओर चढ़ाई करने गई है तब शीघ्र ही राजा ने अपने फौजबख्शी शिवलाल को बुला कर तत्काल जयपुर के लिए रवाना किया। राजा को मन में विश्वास था कि यह जयपुर की रक्षा करने में समर्थ है। वह इस समय फागी नामक पुर में था। वह शेष सेना को भय बनाये रखने हेतु वहीं पर छोड़ कर थोड़े योद्धाओं को अपने साथ ले, सावन की तीज पर जितनी उमंग ससुराल जाने की होती है उतनी उमंग के साथ भागा हुआ जयपुर आया।

बीर सिवनाथ इंदराज त्यौं पिहित बट्ट,
कितहु नहेरि रत्ति फागी एक गम्य कहि॥
पहुँचि निसीथ जयनैर दल सीस पर,
मारि बहु त्याँ बहु बिदारि कीनी सोन महि॥
सेस असु लैलै तजि भाजे उपहार सब,
लूटे इन सोधि सोधि काहू की न संक लहि॥
व्है अब बिदित घेरि जैपुर कौं लैन हंके,
गैल इक काकिनी मैं नारिन कों देत गहि॥ ९ ॥

उधर वीर शिवनाथ मेड़तिया और इन्द्रराज सिंघी ने गुप्त मार्ग से रात्रि में सेना के शिविर में घुस कर रात्रिवाह किया। जयपुर की सेना के कई सिपाहियों को मार कर उन्होंने भूमि को रक्तरंजित बना डाला। शेष सेना के सिपाही अपने प्राण लेकर भागे। शिविर में पीछे छोड़ी गई सारी सामग्री को उन्होंने तब ढूंढ-ढूंढ कर निशंक लूटा। वे यहाँ से आगे जयपुर को घेर कर अपने अधिकार में करने को बढ़े। रास्ते में शिवनाथ के दल ने जयपुर की स्त्रियों को जबरन कैद किया और उनके पतियों के माँगने आने पर एक-एक छदाम वसूल कर उन्हें लौटाया।

अैसैं गरदायो द्रंग जैपुर बलिन आइ,
तूटि पर्‍यो सर्ब ढुंढाहर पैं अतुल त्रास॥
मचिगो पलायन जितैं तित जि जिन मानि,
आलय रहें तैं रही काहू को न असु आस॥
स्वामी इत संगमैं हजारन सिपाहन के,
मासिक चढत सुनैं देतदेत प्रति मास॥
मन प्रतिकूल मीरखान से बहुत मुरे,
हठि हक लैन जगतेस की बिरचि हास॥१०॥

इन ताकतवर योद्धाओं ने शीघ्र ही जयपुर को जा घेरा। अचानक पूरे ढूंढाड़ प्रांत पर अतुलनीय कहर का भय बरपा हो गया। लोगों में भगदड़ मच गई। जिसको जिधर रास्ता मिला वह उधर भागा और जो घरों में रह गए थे उन्हें अपने जीवित रहने की उम्मीद नहीं रही। उधर जोधपुर में इतने दिनों का घेरा रहने पर कछवाहा राजा द्वारा लाए गए भाड़े के सिपाही अपनी तनख्वाह माँगने लगे। कई महीनों से उनकी पगार चढ़ी हुई थी। मीरखान पिंडारी की तरह अन्य सैनिक भी राजा जगतसिंह से अपनी चढ़ी हुई पगार न दे पाने के कारण हँसी उड़ा कर विमुख हो गए।

सुरभि निदाघ बरखा ऋतु खरच सहि,
भूप जगतेस नीठि निर्बह्यो सो दल भार॥
चढत कितेक मास मूढ अकुलायो चित्त,
जानी इत जैपुरकौं भोगिहै दुसह जार॥
मत्त मुरि आइबेको मंत्र जग गूढ मान्यौं,
गोगाउत संभू के खवासि के सुत बिगार॥
ठानि चंपाउतसौं कहाई खुसहाल ठाम,
दम्म खटलक्ख की भई सो देहु सरदार॥११॥

बसन्त, ग्रीष्म और जब पावस ऋतु के चलते इतने दिनों तक सेना का खर्च सहन करते हुए राजा जगतसिंह के समक्ष भी कठिनाई आ उपस्थित हुई। इतने लंबे समय तक रहे घेरे के कारण जगतसिंह पैसा चुकाने में

असमर्थ हो गया। सेना की चढी हुई पगार को नहीं चुका पाने से व्याकुल हुए राजा ने मन मे सोचा कि यह जोधपुर का किला तो न जाने कब फतह जोगा कहीं इस बीच हाथ से जयपुर न निकल जाए। उसे पति की अनुपस्थिति में स्त्री की तरह दुस्सह जाट कहीं न भोगने लगें यह सोच कर और लोग कहीं यह न सोचें कि असफल होने पर राजा वापस जा रहा है। राजा ने यह प्रचारित किया कि गोगावत शंभुसिंह के पासवान के पुत्र ने जो राज्य में बिगाड़ करना आरंभ किया है उसे दबाने हेतु राजा स्वयं जा रहा है। इसी समय खुशालीराम ने सवाईसिंह चांपावत से कहा कि तुम्हारा वांछित पूरा हुआ अर्थात् तुम्हारें धोंकलसिंह का जोधपुर नगर पर अधिकार हो गया इसलिए पूर्व कथित छह लाख रुपयों की राशि शीघ्र अदा करो।

एक दुर्ग छोरि सबठां भो तुमरो अमल,
दम्म उक्त देय यातैं चिंति स्वबचन देहु॥
दुर्ग दै तुम्हैं रु लैहैं सेस जे त्रिलक्ख दम्म,
यौं न करिहो तो लैहैं गहिकैं बिदित एहु॥
अैसे कहिबे पैं दुष्ट चंपाउत टेक आनि,
गर्बसौं कहाई जाहु बापुरें व्है निजगेहु॥
बंधिकैं हमैं जो लैहो जानिहैं तबहि बली,
नारिन के भागन तो लाजे भौंन मग लेहु॥१२॥

मात्र एक दुर्ग को छोड़ कर शेष पूरे देश पर तुम्हारा अमल हमने करवा दिया इसलिए अब अपने मुँह से कहे के मुताबिक तुम्हें छः लाख रुपये देने चाहिए। हाँ, एक काम हम कर सकते हैं कि जब हम तुम्हारा अधिकार जोधपुर के दुर्ग पर करवा देंगे उस दिन आधी राशि लेंगे अर्थात् तुम्हें बंदी बना कर पूरी छः लाख की राशि वसूलेंगे। खुशालीराम के ऐसा कहने पर दुष्ट चांपावत ने तेवर बदल कर वापस कहलाया कि अरे बापुरे! जा अपने घर जा! बड़ा आया बंदी बनाने वाला? जिस दिन तुम ऐसा कर लो उस दिन हम तुम्हें मान जाएंगे। अभी तो अपनी स्त्रियों के सुहाग और भाग्य से बचे हो इसलिए लज्जित हो कर अपने घर का रास्ता लो।

ऐसी कहि साहसी सवाईसिंह चंपाउत,
जैपुर के चक्रसौं रह्यो टरि सटेक जब।
सूची जगतेससौं यौं जोधपुर दुर्ग स्वामी,
धौंकल कौं ठानि धन उक्त काल लेहु अब।
नाँतो इम रीते बहिकाइबेमैं सार नहि,
कोलमैं यहहि मुख्य सेस करिहो सु कब।
लूटी मारवारि नाँतो आप बहु बित्त लीनौं,
सोही गिनि कोलमैं पधाराहु लै स्वीय सब ॥१३॥

ऐसा कह कर साहसी सवाईसिंह चांपावत जयपुर की सेना के साथ से अलग हुआ और गर्व से राजा जगतसिंह से बोला कि जोधपुर के दुर्ग के स्वामी के रूप में धोंकलसिंह का अमल करवा कर छ: लाख तब कल लेना! इस तरह झूठे बहकाने में कोई सार नहीं क्योंकि हमारे और आपके मध्य हुए कोल (वचन) में मुख्य शर्त ही यही थी कि आप धोंकलसिंह को जोधपुर का राजा बनाएंगे। अभी तो आधा कार्य हुआ है शेष दुर्ग पर अधिकार करवाने का काम कब करेंगे? अन्यथा जितना भी धन आपने मारवाड़ प्रांत को लूट कर अर्जित किया है अपने करार के अनुसार उसे ही प्राप्ति फल मानें और अपने लोगों को साथ ले कर यहाँ से पधारें।

उक्त करिहो न तो उदैपुर बिबाह आप,
कैसैं करि लैहो हमरे छत बर कहाइ॥
तंत्र मेरे अबहि प्रचारौं मरुदेस तो तो,
ज्यौं बनी जयातैं त्यौं बनाइ हों घरन जाइ॥
जंपि ऐसैं चंपाउत देसके स्वबस जोरि,
मुर्‌यो करि डेरा भिन्न कूरम मन नमाइ॥
ओरहु जे संगी मीरखान से बलिष्ट ऐसैं,
लागे जगतेस देस लूटन उलटि आइ॥१४॥

यदि आपने ऐसा न किया तो हम भी देखेंगे कि आप उदयपुर जा कर हमारे रहते कैसे अपना विवाह रचाते हैं? आज भी पूरे मारवाड़ का तंत्र मेरे

अधीन है। यदि मैं चाहूँ तो आप में भी वही बिता सकता हूँ जैसी जयाजीराव सिंधिया के साथ (मेड़ता में) बीती (उसे मेड़ता में छलघात से मार डाला था)। इसलिए कुशल आपकी इसी में है कि अपने घर जाओ। ऐसा कह कर चांपावत सवाईसिंह ने लोगों को अपने वश में किया और कछवाहा राजा से विमुख हो कर उसने अपने डेरे अलग लगाए। तब जगतसिंह भी अपना मन मोड़ कर अपने साथ वाले ताकतवर योद्धा मीरखान पिंडारी की सहायता से मारवाड़ के देश को लूटने लगा।

ऐसैं जे इलेस बीकानैर के सुरत आदि,
जैपुर घटत जानि गर्दभ की गाज गति॥
के घर गये तिम रहे मुरि तटस्थ व्है के,
मानी जगतेस अब मानी बल हानि मति॥
चंपाउत बंचक को संभवी कथन चिंति,
प्रेर्‌यो महामात्रन को गै ज्यौं कछवाह पति॥
रायचंद बनिक पुरोगन निहोरैं नीठि,
मान्यौं घर जैबो मूढ अैबे सौं सलज्ज अति॥१५॥

ऐसी परिस्थितियों में बीकानेर का राठौड़ राजा सूरतसिंह जो जयपुर की सेना के साथ लड़ने वालों में था यह देख कर कि जयपुर वाले पक्ष की हुंकार शनेःशनेः यों घटने लगी है जैसे गधा भौंकते समय शुरु में तो बड़े जोर से चीखता है पर उसकी आवाज धीरे-धीरे घटती जाती है तो वह तटस्थसा हो कर अपने घर गया। यही क्रम अन्य साथियों ने भी निभाया तब घमण्डी राजा जगतसिंह को यह अहसास हुआ कि मेरे बल की हानि हुई है, वह क्षीण हो गया है। अचानक उसकी स्मृति में छली चांपावत सवाईसिंह का कथन आया (छलघात से मरवा डालने की बात) वह उस कथन का सत्य होना मान कर स्वयं भी घर जाने के लिए मुड़ा जैसे कि महावत का प्रेरित किया हुआ हाथी मुड़ता है। दूसरे अर्थ में 'महापात्र' शब्द सचिव या मंत्री का भी सूचक है इसलिए यह हुआ कि कछवाहों का स्वामी अपने सचिवों द्वारा समझाया हुआ हाथी की तरह घर जाने को मुड़ा। इस समय उसके एक मंत्री रायचंद ने बमुश्किल तमाम उसे समझाया क्योंकि उस मूढ़ ने अब घर लौटने

को यहाँ चढ़ाई करने आने से भी अधिक लज्जित कर्म समझा।

ऐसैं पटु बीर सिवनाथ इंदराज इत,
दैकैं त्रास जैपुर पैं लूट्यो आढ्य अरि देस॥
यौंही मीरखान से अमानन मुररि आइ,
लागि लूट्यो बहुन न राखिजान्यौं कहुँ लेस॥
चिंति भुव जैबो यौं अचानक प्रमत्त चढि,
पैठो भजि गेह लजि निंदा उग्र सहि पेस॥
आयो ज्यौं हि नाकदै कबंधन को चंपाउत,
त्यौंही कछवाहन को नाक दैगो जगतेस॥१६॥

उधर नीति चतुर वीर शिवनाथ और इन्द्रराज सिंघी ने जयपुर में अपना आतंक फैला कर शत्रु के धनवान देश को लूटा। इसी समय मीरखान पिंडारी जैसे असंतुष्ट योद्धाओं ने भी पलट कर जयपुर के प्रदेश को लूटना आरंभ किया सो लूटने में कोई कमी न रखी। तब जयपुर का प्रमत्त राजा भी अपने चित्त में अचानक घर जाने की सोच कर घोड़े पर सवार हुआ और तेज गति से जयपुर पहुँच लज्जा के मारे अपने घर में जा दुबका। जिस प्रकार राठौड़ों का नाक दे कर (कटा नाक देने से अभिप्राय अति लज्जित होना) चांपावत सवाईसिंह इधर आया था उसी तरह कछवाहों का नाक दे कर (कटा कर) कछवाहा राजा जगतसिंह जयपुर आया।

जोधपुर जैपुर कै उरझी अधिक जानी,
भीमरान भूपति उदैपुर को भीरू इत॥
भीरुन के भाखैं डर आनि उक्त भूपनको,
मारि डारी कन्या वह पापी गरदै अमित॥
साक गुन तर्क नाग भू मित सरद समै,
जैपुर अधीस भजिगो यौं गेह दिष्ट जित॥
तदपि सवाई मरुदेस मैं अमल तानि,
स्वामी करि राख्यो सोहि धौंकल चमू सहित॥१७॥

जयपुर और जोधपुर दोनों पक्षों में यों बढी हुई तनातनी को देख कर उदयपुर का कायर महाराणा भीमसिंह और अधिक डर गया। अपने ही अन्य

कायरों के डराने से इन दोनों राजाओं के संभावित आगमन से डर कर उस भीमसिंह ने अपनी ही बेटी कृष्णकुमारी को जहर दिलवा कर मार डाला। विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरसठ की शरदऋतु के समय जयपुर का राजा जगतसिंह भाग्य का जीता हुआ अपने घर भाग गया तब भी सवाईसिंह चांपावत ने जयपुर की सहायता के बिना ही मारवाड़ में अपना अमल जमाये रखा और धोंकलसिंह को सेना की सहायता से जोधपुर का स्वामी बनाए रखा।

रच्छकन संग द्रंग नागोरहि ताकौं राखि,
देसमैं दुहाई फेरि वा सिसु की आप द्रुत॥
लूटत जो मुलक इतैं उत अटन लागो,
साल्यो मानके उर बलेस सबलेस सुत॥
लभ्य बसु हस्ती हय करभ गवादि लूटे,
जोरदै बिसेस कर देस के असेस जुत।
डारि डारि डाका मारवारिसु निचोरि डारि,
दीपक जरन दीनों आपके अधीन उत॥१८॥

रक्षकों की उपस्थिति में धोंकलसिंह को सवाईसिंह चांपावत ने नागौर में ही रखा और स्वयं ने शिशु राजा की दुहाई पूरे राज में फिरवाई। इसके बाद चांपावत मारवाड़ में घूम-घूम कर यहाँ-वहाँ लूट मचाने लगा। यही कारण था कि राजा मानसिंह के उर में यह सबलसिंह का पुत्र (सवाईसिंह) खटकने लगा। उसने पूरे मुल्क में जहाँ जो मिल गया धन, हाथी, घोड़ा, ऊँट उसे नहीं छोड़ा अर्थात् उसने विशेष कर लगा कर वसूलना आरंभ किया। उसने लूट पर लूट मचा कर मारवाड़ का कचूमर निकाल दिया। शोषण के दोहन से मुल्क को निचोड़ डाला और उन्हीं घरों में दीपक जलने दिया जो उसके अधिकार में थे अथवा सवाईसिंह जिस घर को नहीं चाहता वहाँ अंधकार छा जाता था।

उक्त सक बन्हि तर्क नाग भू प्रमित इतैं,
बुंदी प्रभु विष्णुसिंह छट्ठो कर्यो निज ब्याह॥
रानाउत सीसोदे अमान की सुता रुचिर,
सो खुमान कुमरि नाम बरी तस सराह॥

आयो निज बुंदीनैर डोला दुल्ही को यह,
पायो तिम दुल्लह महापदु नरननाह ॥
सूचित तपस्य स्याम छट्ठी निस लग्न साध्यो,
वाही पच्छ कीनौं ब्याह सप्तम लै कवि वाह ॥१९ ॥

इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरसठ में बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने अपना छठा विवाह किया। सीसोदिया राणावत अमानसिंह की रूपवती कन्या खुमान कुमारी का वरण राजा ने बून्दी में ही किया क्योंकि इस विवाह हेतु कन्या का डोला आया था। फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की छठी तिथि के दिन निकाले गए शुभ लग्नों को साधते हुए उस कन्या ने बून्दी के राजा जैसा दूल्हा पाया। फाल्गुन माह के इसी पखवाड़े में हाड़ा राजा ने अपना सातवाँ विवाह भी किया और इस अवसर पर दिए गए इनाम-इकरामों से कवियों को प्रसन्न किया। उनकी वाहवाही ली।

भावत सनाम बंस सीसोदे उचित भाखि,
नाम नंदकुमरि तनूजा अपनी निपुन ॥
भूपहिं बिबाही इहाँ नैनपुर डोला भेजि,
गदित तपस्य काल एकादसी काल गुन ॥
ऐसे बिधि रानी यह सप्तमी अधिप आनी,
साजि इत चंपाउत बाहिनी जथा सकुन ॥
इच्छु खंड जंततैं कढे जिम बिरस अंग,
ऐसैं मारवारि कीनी---- नौंहि जत्न उन ॥२० ॥

सीसोदिया वंश में जन्में भावतसिंह ने अपनी पुत्री जिसका नाम नन्दकुमारी था को हाड़ा राजा से ब्याहा। राजा विष्णुसिंह ने अपना यह सातवाँ विवाह नैणवा नामक अपने ही नगर में किया। फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन हाड़ा राजा ने विवाह हेतु यहीं डोला मंगवाया था। इस तरह बून्दी के राजा ने एक पखवाड़े में दो विवाह किये और सातवीं रानी अपने घर लाया। उधर मारवाड़ में सवाईसिंह चांपावत ने अपनी सज्जित सेना के दम पर लूट मचाई और गन्ना पिराने की चर्खी के मध्य से निकलते गन्ने की तरह उसने मारवाड़ को चूस कर एकदम विरस बना डाला।

पूरे कष्ट ब्याकुल महीप मान जोधपुर,
देस अर्द्ध दैबे की दृढाई पुनि नम्रपन॥
सौपै नहिंमानी काल कवल सवाईसिंह,
धृष्ट कहि भेजी व्हैहै धौंकल ही भूमिधन॥
लेख निज दैकैं तब धर्म के सपथ लैकैं,
मित्र गूढ कीनों मीरखान कौं मिलाइ मन॥
ताहि अर्द्ध-आसन बिभागी कहि मान्यो तुल्य,
सूची मान चंपाउत मारि लेहु छद्म सन॥२१॥

ऐसे में राजा मानसिंह ने मारवाड़ का आधा राज्य देने के प्रस्ताव को दृढतापूर्वक फिर से सवाईसिंह के सम्मुख भिजवाया। उस काल कवलित (थोड़े समय बाद इसको मारना है इसलिए ग्रंथकार ने उसे 'काल-कवल' लिखा है) सवाईसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उल्टे उसने राजा मानसिंह को कहला भेजा कि मारवाड़ का राजा तो धोंकलसिंह ही रहेगा। इस बीच मानसिंह ने लिखित इकरार दे कर और धर्म की शपथ उठा कर मीरखान पिंडारी को अपना गुप्त मित्र बनाया। इस मीरखान को जोधपुर के राजा ने अपने आधे आसन पर साथ बिठाने योग्य मानते हुए कहा कि तुम धोखे से घात लगा कर चांपावत सवाईसिंह को मार डालो!

द्रव्य बहु दैनों करि इष्ट बिच साखी दै रु,
मिच्छ इम प्रेर्‌यो चंपाउत कौं हनन मान॥
क्यों हमहिं धीजैं सावधानी मैं कितव काक,
खोजहु निमित्त यों पठाई कहि मीरखान॥
सूची इम मान जोधपुर के बजार सह,
देस मम लूटहु बिसास मैं गिनि निदान॥
नारी कहि गारि दै हमारी पै करहु निंदा,
ऐसे फंद सो खल परैगो आयु अवसान॥२२॥

इस कार्य के लिए राजा मानसिंह ने बहुत सारा धन देना तय कर उस म्लेच्छ को प्रेरित किया कि सवाईसिंह को मार डाले। इस पर मीरखान

पिंडारी ने राजा से कहलाया कि वह सवाईसिंह सावचेती में कौए जितना चतुर है भला वह मुझ पर भरोसा कैसे करेगा? आप मुझे ऐसा कोई निमित्त बताएं जिस पर वह भरोसा कर ले तब राजा मानसिंह ने कहलाया कि तुम जोधपुर नगर के सारे बाजारों को लूटना आरंभ करो। मेरे प्रदेश मारवाड़ में लूटपाट शुरू करो। लूट के समय हर जगह एक बात करो कि तुम मुझे कायर आदि कहते हुए गालियों के साथ मेरी भर्त्सना करो। संभव है इस फन्दे में आयु के अन्त में वह दुष्ट अवश्य फँसेगा। (वहीं मैं तुम्हारी हरकतों और कहे हुए पर ध्यान नहीं दूंगा)।

स्वीय सजि सेना मीरखान तब कीनी सोहि,
लूटी मारवारि पैठि खंधावार नैर लग॥
दैदै गारि निंद्यो नृप मान कौं तिमहिं दुष्ट,
जान्यौं सत्य इनकै बिरोध बढ्यो सब जग॥
चंपाउत धीज्यो एह प्रथित प्रमान चिंति,
पत्रन बिसास पार्‌यो पहिलैं मिलाप मग॥
सोपै खान नागोरहि आइ इनके सिविर,
मिलिगो प्रथम मिच्छ आडो दै बिसास अब॥२३॥

भीतर ही भीतर गुप्त रूप से ऐसी संधि कर मीरखान ने अपनी सेना मज्जित की और मारवाड़ प्रदेश को लूटने लगा। वह धीरे-धीरे बढ़ता हुआ राजधानी के नगर जोधपुर तक आ पहुँचा। पहले से तय रणनीति के अनुरूप वह लूटता जाता और राजा मानसिंह को गालियाँ दे दे कर कोसता। ओछे वचन कहता। इस बात से जोधपुर के लोग मीरखान के विरोध में बोलने लगे पर सवाईसिंह खुश होने लगा। मीरखान ने तब सवाईसिंह को पत्र आदि लिखे और एक दिन वह नागौर आकर सवाईसिंह के शिविर में गया। यहाँ वह विश्वास के पर्वत की आड़ में पहली बार मिला अर्थात् पूरी आत्मीयता का प्रदर्शन कर मिला जिस पर चांपावत ने भरोसा कर लिया।

पोखरिन नाह हित राह गो मिलन पीछैं,
जवन मुकाम ग्राम मूँडवा सनाम जब॥
केते इहाँ तुरक कुरान बिच दीनी कहैं,
तारकीन पीर व्हाँ हो ताके करे सौंह तब॥

केते कहैं सौंहैं तिन मानैं पै न सौंहैं करे,
ऐसैं मिलिगो सो आये तास डेरा तेहु अब॥
मंत्रके निमित्त एक तंबू तिन्ह मारन कौं,
पृथक तनाइ राख्यो मिच्छ नैं चहे परब॥२४॥

पोकरण का स्वामी चांपावत सवाईसिंह भी तब स्नेह की बात सोच कर मीरखान से मिलने गया जिसका शिविर इस समय मूँडवा नामक नगर में था। कई लोगों का तो ऐसा मत है कि यहाँ पर मीरखान ने अपने पर भरोसा दिलाने के लिए पवित्र कुरान को दोनों के मध्य रखा। कुछ कहते है कि नहीं उसने तारकीन पीर की शपथ उठाई थी। कुछ का कहना है कि चांपावत सवाईसिंह ने तो मीरखान द्वारा शपथ ली हुई मान ली पर असल में उसने शपथ ली नहीं थी। कुछ भी सत्य रहा हो मीरखान ने उसे मारने के लिए एक तंबू विशेष रूप से तनवा रखा था जिसमें मत्रंणा करने के बहाने जाना था और वह अलग ही था। यह डेरा मीरखान को समय पर उपलब्ध हो यह सोच कर बनवाया था।

तंबू मैं बिछायो सोर सघन बिछोनैं तर,
रस्से काटि डारन कौं बाहिर सुभट राखि॥
तापैं इक ओर बहु तोपन कौं राखी तीरि,
सैन निज सूचन भरोसे पै दगन भाखि॥
बिरचि प्रबंध यौं दगा को आप नम्र बनि,
आयो तिन्ह आत सुनि साम्हैं घात अभिलाखि॥
आवन लगे ए तहाँ मेरतिया चंदाउत,
इनतैं बहादुर टस्यो इक सकुन साखि॥२५॥

उसने इस तंबू की फर्श पर बारूद की पर्तें बिछवाईं, वहीं बाहर अपने सेवक योद्धाओं को तंबू की रस्सियाँ काटने को तैनात किया। शिविर के एक कौने में भरी हुई तोपें रखीं और तोपचियों को समझाया कि मेरा संकेत पाते ही तोप चला दें ! इस तरह छलघात की पूरी तैयारी कर वह मीरखान स्वयं विनम्र बना रहा। जब उसने चांपावत के आगमन की खबर सुनी तो घात करने की अभिलाषा वाला मीरखान सामने चल कर गया पर एक गड़बड़ हो

गई कि तभी मेड़तिया चांदावत भी वहाँ आ गए। इस तरह एक शकुन की साक्षी में वह बहादुर चापांवत बच गया।

बैठारे कुबुद्धि इम सादर सबन आनि,
तंबू उक्त अंतर तथा जन निजहु तारि॥
मंत्र के निमित्त राखे इनके कथित मुख्य,
संग दुव तीनन सौं आप रह्यो छल सारि॥
व्याज करि पीछैं मिच्छ द्वै जुत निकसि बच्यो,
एक बंधु रहिगो सक्यो न सु तिहिं उबारि॥
बाहिर कढत सोर सैन सौं पटकि बन्हि,
मानके अमित्र भूँजि डारे ज्यौं चनक भारि॥२६॥

मीरखान ने तब सभी को आदर सहित ला कर तंबू में बिठाया और तंबू में जितने भी उसके अपने आदमी थे उन्हें बाहर भेजा। मंत्रणा करने के बहाने मुख्य-मुख्य लोगों को ही वहाँ रखा। स्वयं भी दो-तीन आदमियों के साथ वहाँ रह गया। फिर कोई बहाना बना कर अपने दो आदमियों सहित वह यवन बाहर निकल आया और बच गया। उसका एक आदमी तंबू में पीछे छूट गया था उसे नहीं निकाल सका। तंबू से बाहर आते ही मीरखान ने बारूद में अग्नि देने का संकेत दिया और राजा मानसिंह के शत्रुओं को उसने तंबू में यों भून डाला जैसे भाड़ में चने भूने जाते हैं।

सोर के उडत गुन तंबू के कटत संग,
तोप न गुबारन के बार होत भिन्न तर॥
रठ्ठउर कुंपाउत बखसी प्रमुख राम,
नाम जाको सो वहाँ कढ्यो तंबू चीरि बीर नर॥
पैंड दै समुख पारि अहित अनेक पर्यो,
चंडावल नाह चहे सूरन मैं अग्रसर॥
छवा के नरेस कै न होतो संग तोतो छम,
भेदि जातो सोतो रविमंडल लै पुण्य भर॥२७॥

बारूद में विस्फोट होते ही मीरखान के सेवकों ने तंबू की रस्सियाँ काट डालीं। तभी तोपों के वार होने से वहाँ उठे गुबार में सारी चीजें टूट कर

बिखर गई। तभी वीर कुंपावत राठौड़ बख्शीराम अचानक अपनी तलवार से तंबू चीर कर बाहर आया और कदम बढाता हुआ सामने खड़े शत्रुओं से जा भिड़ा। वह कई लोगों को मार कर मरा। चंडावल का वह जागीरदार जो वीरों में अग्रणी वीर था यदि वह उस कृत्रिम राजा (धोंकलसिंह) के साथ न होता तो वह समर्थ अपने पुण्यों के भार से (रविमंडल) सूर्य लोक को भी पार कर जाता (मरने के बाद आत्मा का पुण्यानुसार अलग अलग लोकों में जाने की ओर संकेत है)।

सावन तैं लगत कितीठाँ व्यवहार सक,
अैसैं मिति भेद होत सो मत न है उचित॥
तदपि कितेक गुन तर्क मान मानैं तत्थ,
मानैं किते सबंत को अग्र बेद तर्क मित॥
इनके सिविर जाइ नागपुर लूटि आयो,
अैसैं मीरखान हनि मान के सबै अहित॥
जोधपुर भेजे काटि सीस तिनके जवन,
स्वानन कौं डारि दैन सूची इन्हैं मान इत॥२८॥

हे राजा रामसिंह! कई जगह संवत् को लेकर स्थानीय मान्यताएँ प्रचलन में है जैसे कई जगह नया संवत् श्रावण मास से आरंभ होता है जिसे व्यवहार का संवत् भी कहते हैं। ऐसे संवतों के कारण मिति-तिथि में फर्क आना स्वाभाविक है। अब इसी वर्ष को लें, कई लोगों के मतानुसार विक्रमी का यह अठारह सौ तिरसठवाँ है वहीं कुछ लोग इसे विक्रमी का चौसठवाँ वर्ष मानते हैं। इसी वर्ष में मीरखान ने नागौर जा कर कृत्रिम राजा धोंकलसिंह के शिविरों को लूटा। यही नहीं इस जांबाज खान ने राजा मानसिंह के शत्रुओं को मार कर उनके कटे हुए सिर जोधपुर भेजे जिन्हें देख कर राजा मन ही मन प्रसन्न हुआ पर नफरत के मारे राजा ने उन कटे हुए सिरों को कुत्तों के सामने फंके जाने की आज्ञा दी।

चंपाउत बीर बखतावर बिहित चाहि,
स्वामी कौं मनाइ दाहे मंडोउर भेजि सिर॥
मीरखान मित्त आइ मान सौं सहित मिल्यो,
चाहि समभाव बैठे एकासन भोन चिर॥

धौंकल पलाइगो बच्यो चित जियन धारि,
जाजगढ पीछैं टिक्यो भीरु रन के अजिर॥
मारी भीमरान वह कन्या सो करी कुमति,
याही तैं उदैपुर कहायो चकितेस किर॥२९॥

ऐसे में चांपावत वीर बख्तावरसिंह ने अपने स्वामी मानसिंह को मनाया कि आप ऐसा न करें! उसने तब मीरखान के भेजे कटे हुए सिरों को मंडोवर ले जाकर उनकी दाह क्रिया सम्पन्न करवाई। इसके बाद हितपूर्वक मीरखान अपने मित्र राजा मानसिंह से मिलने आया। राजा ने उसको एक ही आसन पर अपने बराबर बिठा कर सम्मान दिया। उधर नागौर से अपने प्राण बचाने को भागा धोंकलसिंह मारवाड़ से पलायन कर गया। वह कायरों के आंगन में अपने आपको सुरक्षित मान कर जाजगढ़ में जा दुबका। उधर उदयपुर में कुमति महाराणा भीमसिंह ने अपनी पुत्री कृष्णा कुमारी को मरवा कर घृणित काम किया और इसी से वह चकितों (कायरों) का पति कहलाया जो निश्चय ही वह था।

बेद रस नाग भूमि साक इत नैर बुंदी,
अधिराज कीनों---- अष्टम बिबाह बलि॥
मार्गशिर मेचक द्वितीया गुरु लग्न मेल,
कृष्णगढ जाइ साध्यो संभर अभीत कलि॥
कल्यान की भगिनी प्रताप नृप की जो कन्या,
सो अमानकुमरि स नाम छबि मोद छलि॥
चरम बिबाह विष्णुसिंह नरनाह चारु,
दुलही बिबाही दानी दारिद कविन दलि॥३०॥

विक्रम सवंत् के वर्ष अठारह सौ चौंसठ में बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने अपना आठवां विवाह किया। मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि तदनुसार बृहस्पतिवार के दिन इस चहुवान राजा ने कृष्णगढ़ (किशनगढ़) जा कर लग्न की शुभ बेला में तोरण मारा। कल्याणसिंह की बहिन और राजा प्रतापसिंह की पुत्री अमान कुमारी जो अपने नामानुसार विन्रम थी से मोदपूर्वक हाड़ा राजा ने विवाह रचाया। राजा विष्णुसिंह ने अपने

इस अन्तिम और आठवें विवाह के उपलक्ष में चारण कवियों का दारिद्र्य दूर किया।

भो जिम समाढ्य देस हाड़ोती उदित भाग,
कविन के पूरन भये जिम अखिल काम॥
बिप्रन के गेह जिम रत्नाकर नाना बनैं,
जोधन के ख्यात जिम निकसे नियत नाम॥
धर्म्म नीति सफल भये जिम धरनि धन्य,
तत्वबोध भक्ति हु भये जग प्रकट ताम॥
आदर मैं बेद भो सपुत्र होत जाके इम,
रावरी सवित्री एह आइ गेह प्रभुराम॥३१॥

हे राजा रामसिंह! यह वह समय है जब हाड़ौती प्रदेश सभी तरह की समृद्धि को प्राप्त कर शोभायमान हुआ जैसे उसका भाग्योदय हुआ हो। प्रदेश के सभी कवियों की मनोकामनाएं पूरी हुई। कई ब्राह्मणों के घर भी रत्नों की खान की तरह हो गए। वीरों ने अपनी वीरता के कारण अपने नामों की प्रसिद्धि पाई। धर्म की नीति का अनुसरण करने पर यह धरती धन्य हुई क्योंकि इस भू भाग (हाड़ौती) में सभी ओर तत्वबोध और भक्ति का प्रकट में प्रचलन बढ़ा। वेदों का आदर होने लंगा। इस सारी समृद्धि का कारण तो जिसके आप जैसा पुत्र जन्मा हो! हे राजा रामसिंह! ऐसी पुण्यकर्मा स्त्री, आपकी माता इस समय विवाहिता रानी बन कर किशनगढ़ से बून्दी आई।

व्याहे जिहिं लग्न भूप रावरे पिता बिदित,
कवि के पिता हु तिम व्याहे तिहिं लग्न काल॥
यातैं न पधारि सके हरिना स्वकवि अैन,
साधी तउ रीति सों पधारिबे ज्यों छितीपाल॥
उक्त रनजीत जट्ट लाहोराधिराज इत,
भो बलिष्ठ दुस्सह बढ्यो बलि सुबिधि भाल॥
कीनों कंपनी सों तानैं उक्त सक ही मैं कोल,
वार सतलंज के न आवन को सहि साल॥३२॥

हे राजा रामसिंह! पहले दर्शाये जिन शुभ लग्नों की वेला में आपके पिता राजा विष्णुसिंह ने किशनगढ़ जाकर विवाह किया। उन्हीं लग्नों की वेला में आपके कवि (ग्रथंकार सूर्यमल्ल मीसण) के पिता का भी विवाह हुआ। यहीं कारण रहा कि हाड़ा राजा अपने कवि के विवाह में शामिल होने हरणा (कवि का गाँव) नहीं पधार सके पर बून्दी की ओर से वे सभी रस्में निभाई गई जो राजा के स्वयं के पधारने पर सम्पन्न होती। उधर लाहौर का स्वामी जाट सिक्ख रणजीतसिंह धीरे-धीरे भाग्य के बल से और अधिक ताकतवर बना। उसने इसी वर्ष अर्थात् चौंसठ में ईस्ट इंडिया कंपनी से यह करार किया कि वह सतलज नदी के पार के क्षेत्र में नहीं आएगी अर्थात् दखल नहीं देगी।

कंमनी नै ताहि समुझावन वकील क्रमे,
चारलिसिसिकफ स नाम भेज्यो प्रीति चहि ॥
ताके समुझाइबे मैं जट्ट सु न आयो तब,
द्रंग लुधियाना लगे भेजी फोज दर्प दहि ॥
आकटरलोनी करनेल फोजदार उहाँ,
रारि को उपक्रम दिखायो बरजोर रहि ॥
जीतिबो न जान्यौं सर्बथा ही रनजीत जब,
उक्त सीम कोल लिखि दीनौं वै करंड अहि ॥३३ ॥

कंपनी ने यही कोल करने के लिए अपने वकील चार्ल्स शिकॉफ को भेजा और रणजीतसिंह की प्रीति चाही पर चार्ल्स के समझाने पर वह नहीं समझा अर्थात् चार्ल्स के तर्को से वह सहमत नहीं हुआ तब कंपनी बहादुर ने अपनी सेना लुधियाना भेजी। हथियारों से लैस दर्प से भरी इस अंग्रेज सेना का नेतृत्व कर्नल आक्टर लोनी कर रहा था। उसने आते ही अपने बल का प्रदर्शन करने को उपायपूर्वक युद्ध आरंभ किया। जब रणजीतसिंह ने देखा कि यह युद्ध अपने से नहीं जीता जा सकेगा तो पिटारे में बंद सर्प की भांति हो कर उसने नई सीमा का करार लिखित रूप में कंपनी से कर लिया।

सो यातैं सतद्रु स्रोत वार न प्रसरि सक्यो,
छोटे बड़े छितिप बचे यौं इतके बहुत ॥

ते न रहते जो अंगरेज के अमल तंत्र,
जट्ट सबकी भू तो छुराइ लेतो जोर जुत॥
पै यों रहे कंपनी को दुर्लभ सरन पाइ,
आन रही ताकी स्त्रोत सूचित के पार उत॥
खग्ग बल तोहू इनके उन रह्यो खटकि,
सेनाके समत्व सूर सोहू महासिंह सुत॥३४॥

इस कारण से वह रणजीतसिंह सतलज नदी के उस पार तक अपने राज्य की सीमा का प्रसार न कर सका और छोटे बड़े कई राजा और जागीरदार अपनी भूमि बचा कर सुरक्षित हो गए क्योंकि यदि ये छोटे राजा अँग्रेजों के तंत्र के अधीन न होते तो संभवत: वह जाट रणजीतसिंह अपने बल से इनकी भूमि हड़प लेता। पर वे सभी कंपनी बहादुर की दुर्लभ शरण में चले गए। बताई गई नदी (सतलज) के इस पार उसकी आन दुहाई रही पर वह महासिंह का वीर पुत्र रणजीतसिंह अपनी तलवार के बल पर और सेना की बराबरी के कारण अंग्रेजों के दिल में बराबर खटकता रहा।

साक सर अंग अष्ट अवनि अनेह इत,
काबल वजीर दोस्तमुहुम्मद नाम करि॥
खल व्है हरामखोर स्वामी दूर कीनौं साह,
आप बनि बैठो साह-साहा को कहाइ अरि॥
अहमदसाह दुररानी जो कथित उहाँ,
नादर कौं मारि नाह भो जो अति दर्प भरि॥
जीति लीनी दिल्ली करि मथुरा कतल जानैं,
प्राची लग लूट्यो देस अज्जन को बाद परि॥३५॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पैंसठ में काबुल का शाही वजीर जो दोस्त मुहम्मद नामक था ने अपने मालिक से हरामखोरी की और बादशाह को गद्दी से उतार फेंका। वह स्वयं अपने बादशाह की जगह अपने मुल्क का स्वामी बन बैठा और बादशाह का शत्रु कहलाया। अहमदशाह दुर्रानी जो वहाँ का शासक था और नादिरशाह को मार कर पूरे दर्प से भरा बादशाह बना था। जिसने दिल्ली को जीत लिया था और मथुरा में कत्लेआम मचाया था। वही

जिसने आर्यो को कुचल कर पूरी देश के पूरे पूर्वी हिस्से को लूटा था।

रुहेला नजीबुद्दोला दिल्ली को वजीर राखि,
सानुकूल राखे लखनेऊ ईस आदि सब॥
अहमदशाह जो कलीज कर्‌यो पीछे अंध,
जवनन ईस दिल्ली साह राख्यो सोहि जब॥
काबल गयो जो तहाँ तब तैं तदीय कुल,
अधिप रह्यो सो मद्य प्रमदा प्रमाद अब॥
काल को सासक सुजाउलमुल्क नाम काढ्यो,
ताके महमूद नाम सोदर समेत तब॥३६॥

जिसने रुहल्ला नजीबुद्दोला को दिल्ली का शाही वजीर रखा और इस तरह उसने लखनऊ के स्वामी को अपने अनुकूल बनाए रखा। यही नहीं इसने अहमदशाह को दिल्ली का बादशाह बनाये रखा जिसे कलीजखान ने अंधा बना कर उसकी आँखें निकाल दी थी। जब से वह काबुल गया तभी से इसका कुल सर्वोच्च सत्ता में बना रहा और स्वयं वहाँ का अधीश रहा पर इन दिनों वह प्रमादी, मद्यप और स्त्रियों का विलासी हो गया था। वहीं दोस्त मुहम्मद ने ताकत बढ़ा कर स्वयं का नाम सुजाउलमुल्क (वह जिसे पूरा देश सलाम करे,उसकी बंदगी करे) कर लिया। वह अपने भाई महमूद के साथ सर्वोच्च शासक बन बैठा।

ऐसैं उपटंक जाको बारकजई सो एह,
धारत भो छत्र दोस्तमुहुम्मद नामधेय॥
तनय मुहुमदादि अकबर नाम तानैं,
आपुनौं वजीर राख्यो धी बल गिनी अमेय॥
भावी बस बत्त वह काबुल अधिप भाजि,
लवपुर आयो जानि जट्टको सरन लेय॥
हीरा कोहनूर छीनि लीनौं सिख यातैं हंत,
दाम पूछिबे पैं कह्यो मोल जूती इक देय॥३७॥

इस सुजाउलमुल्क का उपटंक 'बारकजई' भी मशहूर हुआ। यही दोस्त मोहम्मद नामक शासक अपने सिर पर छत्र धारे रहा। इसने अपने बेटे मुहम्मद अकबर को अत्यन्त बुद्धिमान गिन कर वजीर बनाया। भाग्य के दुर्योग से इसी ताकतवर काबुल के बादशाह को भाग कर एक दिन लाहौर के शासक जाट सिक्ख रणजीतसिंह की शरण में आना पड़ा। यहाँ इस सिक्ख शासक ने उससे कोहिनूर (विश्व का सबसे बड़ा हीरा जो गोलकुंडा से प्राप्त और दिल्ली के मुगलबादशाहों की सम्पति रहा कई दिनों तक) ले लिया जब उस ने पूछा कि आप क्या कीमत अदा करेगें? तो पलट कर रणजीतसिंह ने कहा था मैं इसके मोल में एक जूता मार सकता हूँ। इससे अधिक क्या? अर्थात् रणजीतसिंह ने कोहेनूर जबरन छीन लिया।

हीरा यह पायो हुतो साहजिहाँ दिल्ली साह,
जोहु लैगो नादिर मुहुम्मद सों बरजोर॥
नादर कौं मारि भो जो अहमदसाह नाह,
ताकै रहयो तबतैं इहाँ लौं भो न प्रभु ओर॥
अहमद नाम दुररानी को पिनाती एह,
लेतभो सरन आइ जट्टको पुरी लाहोर॥
तासौं लेत हीरक पदत्र भाख्यो अर्घ तानै,
दै सु पबिं पीछे लयो कंपनी सरन दोर॥३८॥

पूर्व में मुगल बादशाह शाहजहाँ को यह हीरा (कोहेनूर) मिला था बाद में जिसे नादिरशाह जबरन छीन ले गया था। जब नादिरशाह को मार कर यह अहमदशाह स्वयं बादशाह बना तब से लगा कर अब तक इस कोहेनूर का मालिक वहीं बना रहा। यह हीरा सदा से यवनों के पास ही रहा कोई अन्य इसका स्वामी नहीं बना। अहमद नामक दुर्रानी का पौत्र जब लाहौर में जाट शासक रणजीतसिंह की शरण में आया तब राजा रणजीतसिंह ने कोहेनूर हीरा यह कह कर छीना कि इसके बदले में जूते मिलेगें। इसी हीरे (कोहेनूर) को बाद में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अर्थात् अंग्रेजों ने रणजीतसिंह से ले लिया था।

एक कछु भावी बर्त्तमान मैं वजीर ऐसैं,
सूचे सक मौहिं बन्यों काबुल तखत साह॥

रूसिन सौं जानैं मेल पावन सहाय राख्यो,
राख्यो रनजीतहुसौं मेल बंट दैन राह॥
अंग रस नाग ससि संबत अनेह इत,
संध्या दोलतादिराव स्वीय लै सब सिपाह॥
कारन कछुक पाइ जैपुर दमन क्रम्यों
लालच लग्यो सो लग्यो दूनी द्रंग बसु लाह ॥३९॥

अब यहाँ काबुल का वृत्तान्त चल रहा है इसलिए हे राजा मानसिंह! मैं वर्तमान काल के थोड़ा आगे का हाल भी बता देता हूँ। विक्रम सवंत् के वर्ष अठारह सौ पैंसठ में जो काबुल के तख्त पर बैठ कर वहाँ का बादशाह बना उसने रूसियों से मेलजोल बढाया। वहीं लाहौर के राजा रणजीतसिंह के साथ भी कुछ हिस्सा देकर मेलजोल रखा। इधर विक्रम सवंत् के वर्ष अठारस सौ छियासठ में अपनी सेना के सिपाहियों को ले कर दौलतराव सिंधिया किसी कारण वश जयपुर से खफा हो कर चढाई करने आया। उसके मन में दूणी नामक नगर के धन को लूटने का लालच भी था।

जैपुर के निर्दय महा ठिग बिसेस जन,
उनमैं कितेक हुते गोगाउत के अहित॥
संभूसिंह भूपति प्रताप कै रह्यो सचिव,
सोपै सुमिराइ अर्थ अतुल दिखाइ इत॥
दूनीपुर पैं यौं मोरि संध्या कों लराइ दीनों,
माच्यो ताप तोपन को कल्प के कृसानु मित॥
जैपुर हो संभूसुत दूनीपति चंद्र जब,
सच्च हो प्रधान सिंघी बीर जो लर्‌यो बिदित ॥४०॥

जयपुर के जो विशिष्ट लोग थे उन निर्दय महाठगों में से कई गोगाउत के शत्रु थे। गोगाउत शंभुसिंह जो राजा प्रतापसिंह नरूका का सचिव रहा था। इस बात की याद दिला कर और बहुत सारा धन दे कर उन्होंने दौलतराम सिंधिया को दूणी नामक पुर पर चढाई करने को उकसाया। सिंधिया की तोपों ने आते ही आग उगलनी आरंभ की। सेना ने प्रलय की अग्नि की तरह दूणी में कहर ढाना शुरू किया। इस समय शंभुसिंह का पुत्र और दूणी का

स्वामी तो जयपुर था पर चंद्र (रत्नचन्द्र) नामक सिंघी वीर दूणी में था। इसी मंत्री ने सिंधिया की सेना का मुकाबला करने को कमर कसी।

रत्नचंद्र नाम जिहिं मासन लौं रारि रचि,
टूटन दई न दूनी गोलन को सहि ताप॥
दिन मैं गिरैं जो कोट रत्ति मैं बनाइ दैदै,
थोरे बल तैंहु मारी तोपन के मुख थाप॥
अर्थ दै मिलाइ राख्यो संध्या को स्वसुर अंबा,
बैजाँ नाम नारी संध्या व्याही तास यह बाप॥
फोज याकी इकघाँ चलात रही खाली फैर,
दर्ग मैं रुकी न आत सामग्री इम दुराप॥४१॥

इस रत्नचंद्र नामक दूणी के सचिव ने कई महीनों तक युद्ध में मुकाबला किया। उसने सिंधिया की तोपों के प्रहारों से दूणी को नहीं टूटने दी। दिन में जहाँ से शहरपनाह की दीवार टूटती वह कुशल मंत्री रात्रि के समय उसकी मरम्मत करवा देता। उसने अपनी छोटी सी सेना के बल पर तोपों के मुहानों को रोक दिया अथवा उन्हें व्यर्थ कर दी। उसने पैसा दे कर सिंधिया के श्वसुर अंबाजी (इंगलिया) को अपने पक्ष में बनाये रखा। सिंधिया ने बैजां नामक जिस स्त्री से विवाह किया यह उसका पिता था। इसकी फौज एक दिशा का निशाना ले कर तोपों से खाली धमाके करती रही और इसी कारण दूणी के दुर्ग में निर्बाध बाहर से सामग्री सतत आती रही जिससे दुर्ग टिका रह गया।

सोपै इत जैपुर पुकारयो चंद संभू सुत,
ताको वह कष्ट मेटिबे को भूप जगतेस॥
कीनो खुसहालीराम बहुरा पता नै कैद,
ऐसी ठाँ सहायी जयगढ तैं उतारयो एस॥
आत राजमह्ल रुकाई तोप तानैं अहो,
सिविर मुराई सेना पैठत तस प्रदेस॥
कही लाख मुद्रा लैन माहजि को लेख काढि,
सूची व्यय दंड लैं हमारे देहु अब सेस॥४२॥

सिधिंया की सेना का सामना करते हुए रत्नचंद्र ने तब शंभुसिंह के पुत्र को जयपुर से बुलाया और जयपुर के राजा से सहायता की गुहार की। पूर्व में जब प्रतापसिंह ने खुशालीराम को कैद किया था ऐसे कठिन समय में सहायता देकर राजा जगतसिंह ने उसे कैद से आजाद कर जयगढ़ की पहाड़ी से नीचे उतारा। बोहरा खुशालीराम ने तब महलों में आ कर तोप का चलना रुकवाया और सेना को मोड़ कर वापस उसके शिविर में भेजा। उसने तब दौलतराव सिंधिया को महादजी सिंधिया का लिखा वह पत्र दिखलाया जिसमें सिंधिया ने एक लाख रुपये चुकाने का इकरार कर रखा था। बोहरा ने कहा आप अपनी फौजकशी का खर्च और दण्ड की राशि लें पर हमारा हिसाब कर दें!

सत्य अर्थ बहु राखि पटैल पिता के सिर,
दैनको दिखाये क्वों जितेक दम्म लेख दल॥
दंड व्यय लैकैं जे सक्यो न दै खिलहु दम्म,
बदन बिगारि संध्या चढिगो उपेत बल॥
जैपुर हु जाइ बहुरा सु कैद भो बहुरि,
बरजि पिता गो सो सो कीनी पुत्र धीबिकल॥
जाइ पर्यो संध्या द्रंग ग्वालियर सीमा जब,
चढि न सक्यो सो रह्यो तबतैं तहाँ अचल॥४३॥

यहीं नहीं बोहरा ने पुरा हिसाब सामने रखा। पटेल (सिंधिया) के पिता के सिर पर जितनी कर्ज की राशि मंडी थी वह दिखाई। स्थिति ऐसी बन गई कि दौलतराव से फौजखर्च और दण्ड की राशि ले कर भी पिता का कर्ज न उतर सका। जब हिसाब न हो सका तो अपना सा मुँह ले कर सिंधिया दौलतराव तब सेना सहित वहाँ से कूच कर अपने मुल्क को गया। इसके बाद जयपुर में जा कर वह बोहरा खुशालीराम फिर से कैद हो गया। इस विकल बुद्धि वाले पुत्र राजा जगतसिंह ने वही-वही किया जिसके करने को उसका पिता राजा प्रतापसिंह मना कर गया था। इस राजा ने वहो सब किया। जयपुर से चल कर सिंधिया दौलतराव सीधा ग्वालियर की सीमा में प्रवेश कर गया पर इसके बाद उसे अचल रूप में वहीं रहना पड़ा। भविष्य में वह किसी

और राज्य पर आक्रमण करने यहाँ से नहीं निकल सका।

ऐसैं रहि ग्वालियर संध्या सो अंवती ईस,
दाबत भो देस इत उतके बलिष्ट अति॥
राधिकादिदास काढ्यो सोपुर तैं गोर राजा,
तरुन पचीस सम तोहू मुग्ध कुंठमति॥
ताहि दै बरोदा लाख मुद्रा मित आय ताको,
सोपुर समेत सबै दाब्यो देस गढ गति॥
ऐसैं बढि राघोगढ नरउर देस आदि,
काल कछु भावी माँहिं तानैं लये दाबि कति॥४४॥

वह उज्जैन का स्वामी तब ग्वालियर में ही रह कर अपनी सीमा के आस पास के क्षेत्र को दबा कर अपने राज्य की सीमा का विस्तार करता रहा। उसने ताकतवर गौड़ राजा राधिकादास को हरा कर श्योपुर से निकाल दिया। जो पच्चीस वर्ष का तरुण और भोथरी बुद्धि वाला मूर्ख था। सिंधिया ने तब गौड़ राजा को मात्र एक लाख की आमदनी वाला बरोदा पुर दे कर श्योपुर के दुर्ग सहित पूरे देश को अपने अधिकार में कर लिया। इसी तरह उसने राघोगढ को दबाया और नरवर जैसे देश को आगे आने वाले समय में अपने अधिकार में किया। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-मोटे राज्यों को दबाया।

सुंडापान मत्त इत जैपुर जगतसिंह,
नग्न व्है जो नग्न रमनीन मैं लग्यो रहन॥
लैकैं अंक नारि मारि द्वार परदे पैं लात,
आयो कढि बाहर नसा बस निसा अहन॥
द्वारसेवी जनन धकेल्यो पीछो मीचि दृग,
जुवती सतन बीच निस्त्रप करैं जह न॥
---------------------------,
---------------------------॥४५॥

इधर शराब के नशे में प्रमत्त रहने वाला जयपुर का कछवाहा राजा जगतसिंह नए नए खेल करने लगा। वह नग्न स्त्रियों के मध्य स्वयं भी

नग्नावस्था में रहता। लोक लाज की परवाह न करते हुए वह स्त्री को अपनी अंक में भर लेता फिर अवरोध (पर्दे) को लात से हटा कर नशे की हालत में महल के कमरे से बाहर आ जाता। इस कार्य में वह दिन देखता न रात। द्वारपाल अपनी आँखें बंद कर राजा को ऐसी स्थिति में वापस कमरे में धकेलते। रनिवास की सैंकड़ों स्त्रियों के देखते हुए भी वह निर्ल्लज रतिक्रिया करने से ना नहीं करता अर्थात् शराब पी कर उच्छृंखल हो भोग विलास करने लगा............।

जोधपुर बिग्र व्है उदैपुर सक्यो न जाइ,
पीछो आइ तदपि जई ज्यों पाप दर्पपर॥

पूरे हठ लाखन उपाय मैं खरच पारि,
काम कामअंकुस बढाय द्वै हि चित्रकर॥

सतन सुवाइ भोगैं नारिन बिबिध संग,
आपुनी पराई गुरु लों न गिनी व्है अडर॥

जाकों रतिजंग गनिका रसकपूरि जीति,
खूब बस कीनौं जो खरी ज्यों चंडबेग खर॥४६॥

वह नकटा जोधपुर पर आक्रमण कर अपना विवाह रचाने उदयपुर तो जा न सका पर वापस अपनी राजधानी जयपुर लौट कर विजित की तरह दर्प से भरा ऐसे पाप कर्मो में रत्त हो गया। हठपूर्वक लाखों रुपयों की राशि उसने अपनी काम वासना और लिंग को बढाने के उपायों पर खर्च किए। आश्चर्यजनक ढंग से दोनों चीजों को बढा कर वह सेंकड़ों स्त्रियों को एक साथ नग्नावस्था में सुला कर उन्हें तरह- तरह से भोगने लगा। वह न अपनी गिनता न पराई। न किसी उम्र में बड़ी स्त्री का लिहाज रखता। बस, भोगने से काम रखता। ऐसे निडर भोगी को रतियुद्ध में एक गणिका रसकपूर ने जीता। इस गणिका ने उसे खूब अपने वश में किया जिस प्रकार कोई गधी भंयकर कामवेग वाले गधे को अपने वश में करती है।

याही लंजिका को कृपापात्र बन्यौं बिप्र इक,
नाम सिवनारायन जो दधीचि के जनन॥

बैहासिक जैसैं अंतरंग व्है मिथुन बीच,
मिश्र यह तैसैं बढ्यो दोउन के जोरि मन॥
याही गनिका को भयो भ्राता बीतलज्ज यह,
पानि बंधवाइ राखी पायो प्रभु सालपन॥
सोही कर्यो मंत्री तहाँ भाम सौं पिसुन सूचि,
धीसख गहायो रायचंद लैबे भाटि धन॥४७॥

इस गणिका रसकपूर का कृपा पात्र एक ब्राह्मण बना। शिवनारायण नामक दधीचि के वंश में जन्मा वह ब्राह्मण विदूषक (स्त्री-पुरूष को मिलाने वाला) की भूमिका निबाहने में निष्णात था। वह स्त्री-पुरूष को मिलाने वाला मिश्र, रसकपूर और राजा जगतसिंह का मन मिला कर स्वंय सत्ता में शिखर की और बढ़ने लगा। इस गणिका रसकपूर से अपने हाथ पर राखी बंधवा कर उस निर्ल्लज ने राजा के साले की पदवी पाई। इस तरह नये रिश्ते के बहिनोई (राजा जगतसिंह) के कान में तरह-तरह की चुगलियां कर वह जयपुर का मंत्री बन बैठा। यहीं नहीं उस भड़वे ने धन लेने के लिए बुद्धिमान मंत्री रायचंद्र को कैद करवाया।

उक्त सक मैं यौं रायचंदहि कितेक अह,
कैद राखि पीछैं हनि गेर्यो बिनु दाह करि॥
भूप को सकार मिश्र मारन मैं हेतु भयो,
जारन मैं हेतु न भयो जो मोघ मंतु जरि॥
बहुरा निकारहु न हरदे बिडारहु न,
मारहु न रायचंद यौं कहिगो तात मरि॥
सोसो करी सबही सपूती जगतेस सुत,
प्यारी गनिका सह सकार वारे फंद परि॥४८॥

विक्रम सवत् के वर्ष अठारह सौ छियासठ में मंत्री रायचंद्र को कई दिनों तक कैद में रख कर मार डाला। उसका दाह सस्कार भी नहीं किया गया। राजा का वह तथाकथित साला (सकार अर्थात् राजा की अविवाहित पासवान स्त्री का भाई) शिवनारायण मिश्र झूठा इल्जाम लगा कर उस मंत्री रायचंद्र को मारने का कारण बना। उसकी मृत देह बिना जलाए पड़ी रही

जिसको न जलाने का कोई कारण न था। जयपुर के उस राजा जगतसिंह से उसके पिता राजा प्रतापसिंह ने कहा था कि बेटा! ये तीन काम मत करना। पहला यह की बोहरा खुशालीराम को कैद से मत निकालना, हरदेव को मत छोड़ना और रायचंद को मत मारना। ऐसी तीन बातें कह कर मरने वाले पिता के मरते ही उसके पुत्र ने सपूताई का प्रदर्शन करते हुए तीनों बातें अवश्य कीं और वह भी गणिका रसकपूर और उसके तथाकथित भाई शिवनारायण मिश्र के फंदे में फँस कर की।

कग्गर बसन धारि नारिन सहित करैं,
बारि फाग कोतुक दिगंबर बनैं बहुरि॥
कुल जान धारैं ताहि बहुरि बिसारै कामी,
मोहैं चित्रबंध सुहि सोहैं लंक बंक मुरि॥
द्रंग की सतीन तजि दीनौं अवरोध अैबो,
दूर के पलाई दुख छाई रही केक दुरि॥
हींजरे किसोर बय आदरे सुनत हंत,
जानैं काम अंध व्है बिधाता सोहु बाद जुरि॥४९॥

कागज के महीन वस्त्र पहन कर यह राजा अपनी स्त्रियों को भी ऐसे ही वस्त्र पहना कर फाग के कौतुक की तरह जल क्रीड़ा करता और ऐसा करने में एकदम नंगा हो जाता। कुल धर्म को निबाहने वाली जो उसकी ब्याहता रानियाँ थी उन्हें बिसरा कर वह कामुक राजा जगतसिंह, जो स्त्री अपनी कमर टेढ़ी कर चित्रबंध नामक आसन की मुद्रा में उसे मोहित करती उसे ही वह पसन्द करता था। नगर की पतिव्रता स्त्रियों ने राजा के जनाने में आना छोड़ दिया। कई स्त्रियाँ नगर छोड़ कर भाग गई और कई स्त्रियाँ राजा के व्यभिचार से डरती हुई अपने घरों में दुबक रहीं। हा हा! (कितने अफसोस की बात) कि उसने युवा वय के हिजड़ों का आदर किया। इस तरह इस राजा ने कामांध हो कर विधाता से वैर निकाला।

मिश्र शिवनारायन स्वामी को सकार मंत्री,
काज बिनु लाज सब राज के लग्यो करन॥

सुभट सिपाह गन गहन दुमन सबै,
सचिव त्रपा के गहि बैठे जित जो सरन॥
काढ्यो बहुरा तब रहस्य मैं किते कहत,
धृष्ट बल सत्थ बत्थ ताहू कों लग्यो भरन॥
भाख्यो मैं प्रसन्न तैंहैं भाख्यो द्विज वृद्ध भो मैं,
पुत्रहिं पठैहों बै नवीन निज जो पर न॥५०॥

इस राजा का सकार मंत्री शिवनारायण मिश्र अपने स्वामी के भोग विलास के सामान जुटाने का कार्य पूरी निर्ल्लजता के साथ सम्पन्न करने लगा। इससे सारे सामन्त योद्धा और वीर सिपाही उदासीन रहने लगे। एक सचिव की शरण में निर्ल्लज होकर बैठे ऐसे राजा को भला कौन चाहता ? कई लोगों का कहना है कि इस राजा ने बोहरा खुशालीराम को भी जब कैद से निकाला तब एकान्त में उस धृष्ट राजा ने अपनी ताकत से उसे बाँहों में भर लिया और बुरी नियत से कहा कि अब मैं तुझसे प्रसन्न हूँ! तब ब्राह्मण मंत्री बोहरा ने कहा कि हे राजा! मैं तो अब वृद्ध हो गया इसलिए आपके काम का नहीं,! हाँ, मैं अपने पुत्र को भेजता हूँ जो जवान है! और आपके लिए पराया नहीं अर्थात् आपका अपना है।

ओरन बुलाइ बेग बिप्र कढिगो रु अैसैं,
सचिव रहस्य केक भुकते बच्चे सुनत॥
जो रसकपूरि गनिका ही तस दर्प जीति,
मान मैं रु प्रान मैं अमान प्यारी स्वामि मत॥
साध्यो बाजीकरन अकाल मरिबे कों सठ,
तातैं प्रतिमल्ल मोहि हेला हाव भाव तत॥
जैपुर अधीस जगतेस करि लीनों जिहिं,
बाजीगर बंदर नचावैं जिम तारि तब॥५१॥

इस तरह दूसरे को भेजने का बहाना बना कर वह ब्राह्मण खुशालीराम तो राजा के बाहुपाश से छूट कर निकल भागा पर कई सचिवों का एंसे एकान्त की सजा भुगतना सुनते हैं, वहीं कई सचिवों का बचना भी। जो गणिका रसकपूर थी वह राजा जगतसिंह के दर्प को जीत कर अपनी ताकत

में अतुलनीय हो गई। अपने स्वामी के मत को मानने वाली इस ने सम्मान भी बहुत पाया। सुरति की प्रबल इच्छा और कामुक हावभावों से मोहित कर इस प्रतिमल्ल गणिका (मल्लयुद्ध का एक पक्ष) ने अपने साथी राजा को बाजीकरण (घोड़े की मुद्रा में मैथुन की क्रिया)में साध लिया और वह मुर्ख राजा भी इस तरह अकाल मृत्यु की साधना में लग गया। जयपुर के कछवाहा राजा जगतसिंह को ताड़ना-प्रताड़ना से उस गणिका ने बाजीगर के बन्दर की तरह बना कर अपने वश में कर लिया।

कामीपन हाका अजमेर नृप बीसल को,
जैसो भयो भूपन मैं तैसो इहिं बेर जग॥
ओरन को जान्यों नाहिं एही महाराज उभै,
मत्त इहिं बेर भये जाँनैं छैल छैल मग॥
जोधपुर भीम जगतेस जु ए जैपुर ज्यौं,
एक सील चरित निलज्जता के उच्च अग॥
कैसे भये जैसे परदेसी सुनि रोकैं कान,
देसी कहा दुष्टन नैं भायो इम एक भग॥५२॥

वर्तमान में यह कामुक राजा कामांध होने में अजमेर के राजा बीसलदेव की बराबरी करने लगा। कामुकता की जितनी बातें इस राजा की प्रसिद्ध है उतनी अन्य किसी राजा की नहीं। दुसरे राजाओं का तो नहीं सुना ये जयपुर और जोधपुर के दो महाराजा ही ऐसे हुए जिन्होंने रसिकों का मार्ग पकड़ा। जोधपुर का राजा भीमसिंह और जयपुर का यह जगतसिंह दोनों एक ही स्वभाव, चरित्र वाले हो कर निर्ल्लजता के शिखर पुरुष कहलाए। इनकी करतूतें ऐसीं कि जिन्हें सुन कर परदेशी अपने कान ढांप ले और देसी बस यही कहे कि इन कामुक राजाओं को एक स्त्री जननांग ही पसन्द आता है अन्य कुछ नहीं।

एक काकिनी मैं पीछी दैदै गही नारि इत,
सिंघी इंदराज उक्त दूदाउत सिवनाथ॥
गंगाराम संजुत ए जबहि हजूर गये,
वै कैं जई लै जस दिखाये आछे निज हाथ॥

मान महिपाल जै लगाये उर पूरे मोद,
सबहि बढाये सतकारक बिभव साथ॥
दैन लागो सिंघी कौं मुसाहबी उचित देखि,
नीति सौं नट्यो व्हाँ इंदराज असैं गुनगाथ॥५३॥

उधर जोधपुर से आये सिंघी इन्द्रराज और दूदावत मेड़तिया राठौड़ शिवनाथसिंह ने जयपुर प्रान्त की यह दशा बना दी कि उन्होंने वहाँ की स्त्रियों को बंदी बना कर वापस एक-एक पैसे में उन्हें अपने पतियों को बेचा। (पूर्व वृत्तान्त में जयपुर की सेना ने भी जोधपुर राज की स्त्रियों के साथ ऐसा ही वर्ताव किया था और उन्हें एक-एक आने में बेची थीं)। जब यह दोनों ही वीर जोधपुर के मंत्री गंगाराम के साथ अपने स्वामी राजा मानसिंह के दरबार में गए और वहाँ जा कर कहा कि हे स्वामी! हम विजेता की तरह यश का अर्जन करते हुए अपने शत्रुओं को अच्छे हाथ दिखा कर लौटे हैं! तब राजा मानसिंह ने सभी का सत्कार कर उन्हें वैभव (धन) प्रदान किया। यही नहीं उचित अवसर पा कर राजा ने इस उचित व्यक्ति सिंघी इन्द्रराज के समक्ष अपना मंत्री बनने का प्रस्ताव रखा पर उस गुणग्राही इन्द्रराज ने भीतिपूर्वक पूरी विनम्रता के साथ इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

जोरि कर स्वामी के समक्ष यौं बनिक जंपी,
आय के अधीन बनैं सबठाँ बिधेय व्यय॥
रीति यह इंद्र बिधि ईस हरि लौं जो रही,
नर तो कितेक तहाँ कैसैं बनैं छोरि नय॥
रीझ आदि व्यय मैं प्रमान जो प्रभु न राखे,
मोपै बनिहै क्यों नाथ काम तो प्रबंधमय॥
मान नृप भाख्यो हम तेरे ही दिखाये मग्ग,
अबतैं चलहिं सदा तेरी मति के उदय॥५४॥

उस बनिये इन्द्रराज सिंघी ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर राजा मानसिंह से निवेदन किया कि हे स्वामी! आय के अनुसार व्यय करने की रीति तो इन्द्र, ब्रह्मा, शिव और विष्णु के यहाँ भी रही है बेचारे मनुष्यों की तो औकात ही क्या है? अब नीति को त्याग कर आप जो रीझ में अप्रमाण धन लुटाते हैं

ऐसे में मंत्री बनने पर मेरा प्रबन्ध कार्य कैसे सफल हो? अर्थात् ऐसे में मेरा मंत्री होना संभव नहीं। यह सुन कर राजा मानसिंह ने कहा कि आज से हम तेरे दिखाए मार्ग पर चलेंगे। तेरी बुद्धि के अनुसार ही हम सारा कार्य करेंगे।

कैसैं व्है प्रतीति अरजी यों इंद्रराज करी,
देवनाथ इष्ट गुरु रावरे जे बिच देहु॥
भीर तिनकों मैं राखों व्हैन ज्यों नियम भंग,
व्हैतो हित हेरि अटकैं तिँहिं मिलित एहु॥
सुधरन काज श्रीजलंधर के लै सपथ,
हानि लाभ हमकों गिनों इक दै निज गेहु॥
करन बिहीन रिझ खीज न बिधेय करि,
लाह नरनाह पीछैं राह के पथिक लेहु॥५५॥

इस पर वापस इन्द्रराज सिंघी ने निवेदन किया कि मुझ दास को आपकी प्रतीति कैसे हो? हाँ, आप अपने गुरु देवनाथ को मध्यस्थ बना दें। मैं नियम भंग होने की दशा में अपने रक्षार्थ उन्हें साथ रखना चाहता हूँ पर एक शर्त है कि कहीं वे अपना हित देख कर आपसे न मिल जाएं इसके लिए उन्हें अपने गुरु जलंधरनाथ की शपथ उठानी होगी। आप अपना घर मुझे सोंप कर हानि और लाभ को एक जैसा गिनें। मैं आपको रीझ करते हुए रोकूं तो आप मुझ पर खीझ न करें। इतनी बातें आप को स्वीकार हों तो हे स्वामी! मैं आपके अनुसरण का लालच कर सकता हूँ अर्थात् तब दास आपका मंत्री बनने को तैयार है।

सौराष्ट्री दोहा

जब प्रभुतैं करजोरि, इंदराज किय यह अरज।
नाथ सु तबहि निहोरि, कर्मध्वज तस भीर किय॥५६॥
सूचे सोंहन साथ, हित जिम बनिक प्रतीति हित।
नाम जलंधरनाथ, दोउ न अप्पन बीच दिय॥५७॥
लिपि प्रभुकी लिखवाइ, लिपि नाथहु की संग लहि।
पुनि बिस्वासहि पाइ, काम बनिक लग्गो करन॥५८॥
व्यय तब अधिक बिडारि, सिंघी रक्खिय आय सम।
नाथहिं भीर निहारि, उचित राह आनें अखिल॥५९॥

नृपहिं बनिक जुत नाथ, राह तजत अटकत रहैं।
सब वैभव नय साथ, बढन राज्य लग्गो बिबिध ॥६०॥

जब इन्द्रराज सिंघी ने ऐसी करबद्ध प्रार्थना अपने स्वामी राजा मानसिंह के सामने की तो राठौड़ राजा ने अपने गुरु देवनाथ को उसका रक्षक (सहाय करने वाला) बनाया। जिस तरह से हित के प्रदर्शन में उस बनिये (सिंधी इन्द्रराज) ने शपथ उठाने का कहा था उसी प्रकार अपने गुरु जलंधरनाथ की शपथ देवनाथ ने ली और कहा कि तेरे मेरे मध्य जलंधरनाथ हैं! तब इन्द्रराज सिंघी ने अपने स्वामी राजा मानसिंह से यह लिखवा कर लिया और ऐसी ही लिखावट देवनाथ से ली और तब राजा का विश्वासपात्र बन कर वह मंत्री का सारा कार्य करने लगा। उसने राज के खर्च पर अंकुश लगाया और आय को खर्च के अनुरूप बढाया। उसने देवनाथ की रक्षा में सभी को उचित राह बतलाई। राजा मानसिंह भी तब बनिक इन्द्रराज और गुरु देवनाथ की दिखाई राह से भटकने में अटकने लगा। इस तरह राज्य का विविध वैभव तब नीतिपूर्वक रात दिन उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम् राशौविष्णुसिंह चरित्रे मानसिंहात्मघात विमर्श कारामोचित सिंघीन्द्रराजभाण्डागारि गंगारामकुचामणठक्कुर शिवनाथसिंह सहित जयपुर जनपद गमन फागी नगरजयपुरानीकपलायनजयपुरावरण सेनाव्ययव्याकुलजगत्सिंह चम्पाउत्त सवाईसिंह विरसता हेतु स्वराष्ट्रनाशभीतजगत्सिंह जयपुरदिगभिमुखपलायन राजयुग्मभीतराणाभीमसिंह स्वसुतागरलप्रयोगमारण सवाईसिंह मरुधरा-लुण्टन बून्दीशविष्णुसिंह विवाहद्वयकरणार्द्धगह्विकोपवेशनस्वीकार मित्री कृतमीरखां योधपुरेशमानसिंहसवाईसिंहच्छद्मघातमारण कृत्रिम-दायादधोंकलसिंहकां दिशीकीभवन बून्दीभूपकृष्णगढाष्टमविवाह करण लवपुरपतिसिक्खरणजी तेष्टइंडिया कम्पनीसंधि विधाननिः-सारितकाबुलेशामीरसुजाउलमुल्क मन्त्रि दोस्त मुहुम्मद काबुलाधिपत्य-प्रापण स्वशरणागतकाबुलेशामीर कोहनूराख्यवज्रसिक्खरणजीतसिंह ग्रहणामीरकम्पनीशरण समासादन दूणीपुरकृत समर दौलतरावसिंधिया पुनर्दक्षिणदिग्गमनग्वालियरसमागतेतस्ततोदेशसमाक्रमण मद्यपकामुक-

जयपुरेश जगत्सिंह विवस्त्वरमणीरमणादि गर्हित कर्मनिन्दन सिंघीन्द्रराज विहित जयपुरजन पदोपद्रवहेतुत्यक्तयोधपुरावरण जगतसिंह जयपुर-पलायन मानसिंह सिंघीन्द्रराजप्रधान पदप्रदानादिवर्णनंएकोदशो मयूखः ॥ आदित ॥३६० ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, राजा मानसिंह के आत्मघात विचारने पर सिंघी इंदराज और गंग भंडारी का कैद से निकल कर कुचामन के ठाकुर शिवनाथसिंह सहित फागी नगर में जयपुर की सेना को भगाकर जयपुर को घेरना, सेना के खर्च से घबराये हुए राजा जगतसिंह और पोकरण के चांपावत सवाईसिंह से विरस होकर अपनी भूमि के जाने के भय से जगतसिंह का जयपुर जाना, महाराणा भीमसिंह का दोनों राजाओं के भय से अपनी पुत्री को जहर देकर मारना और सवाईसिंह का मारवाड़ को लूटना, बून्दी के राजा विष्णुसिंह का एक मास में दो विवाह करना और जोधपुर के राजा मानसिह का मीरखां को मित्र बनाकर उसको आधी गद्दी पर बिठाना स्वीकार करके पोकरण के ठाकुर चांपावत सवाईसिंह को छलघात से मरवाना, जोधपुर के कृत्रिम दावेदार धूंकलसिंह का भागना और बून्दी के राजा का कृष्णगढ में आठवाँ विवाह करना, लाहोर के सिक्ख रणजीतसिंह और ईष्ट इण्डिया कम्पनी में विरोध बढकर सुलह होना और काबुल के वजीर दोस्त मुहम्मद का, काबुल के अमीर सुजाउलमुल्क को निकाल कर बादशाह होना, अपने शरण आये हुए काबुल के अमीर से सिक्ख रणजीतसिंह का कोहनूर नामक हीरा लेना और अमीर का कंपनी के शरण जाना, दौलतराव सिंधिया का दूणी नगर में युद्ध करके वापस दक्षिण में जाना और ग्वालियर जाकर इधर उधर के देश दबाना, जयपुर के मद्यपी और कामुक राजा जगतसिंह के नग्न होकर स्त्रियों में रमने आदि निन्दनीय कामों की निन्दा करना और जयपुर के देश में उपद्रव करके जोधपुर के घेरे से जगतसिंह को जयपुर में बुलाने वाले सिंघी इन्द्रराज को राजा मानसिंह का प्रधान बनाने आदि के वर्णन का ग्यारहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ साठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

सौराष्ट्री दोहा

इंदराज अधिकार, पाइ मुसाहब को प्रथित।
सब लखि सार असार, हेर्‌यो हित प्रभुको हरखि ॥ १ ॥

कछुक भूत इहिं काल, संगी नाथ समर्थ नमि।
नियमहिं आनि नृपाल, कोबिद बनिक प्रधान किय ॥२ ॥

जाके मतिगति जोर, नियम जदपि न रुच्यो नृपहिं।
तदंपि लग्यो नय तोर, दिन प्रति चमक्यो अभ्युदय ॥ ३ ॥

हे राजा मानसिंह ! जोधपुर में इन्द्रराज सिंघी को मुसाहिबी के सभी अधिकार प्राप्त हो गए तो उसने अन्य सारी बातों को असार समझ कर एक ही बात में सार समझा कि अपने स्वामी का हित ही सर्वोपरी है। यह घटना वर्तमान काल से थोड़ी पहले की है जब राजा मानसिंह ने अपने गुरु देवनाथ को अभ्यर्थना कर इस चतुर बनिये (इन्द्रराज) को अपने राज का प्रधान मंत्री नियुक्त किया। यद्यपि राजा की नीति-रीति से वह एकदम सहमत नहीं था क्योंकि उसे राजा का अधिक खर्च करना नहीं सुहाता था तब भी इस अमात्य ने नीति का सहारा ले कर दिन-प्रतिदिन जोधपुर राज्य का अभ्युदय किया।

निगम बहिर्गत न्याय; पंच मकारक पथ पथिक।
हत मत तदपि सहाय, कानफटा गुरु मान किय ॥ ४ ॥

दयो मोहि इन दान, प्रान व्यसन खिन जोधपुर।
मतध्रुव इम हुव मान, किंकर कान फटेन की ॥ ५ ॥

इम नाथहिं बिच आनि, सिंधी हुव प्रभुको सचिव।
मानहिं बहुमत मानि, न मुसाहब होतो नतो ॥ ६ ॥

राजा मानसिंह ने वेद मत को नहीं मानने वाले और वाम मार्ग के पथिक उस पाँच ''मकारों'' को अपनाने वाले कनफटे को अपना गुरु बनाया। हीन मत वाले इस गुरु को अपनाने के पीछे राजा की मान्यता थी कि इसी के कहने पर मुझे जोधपुर का राज मिला है। मेरे प्राण संकट में थे उस समय इसी ने मुझे जीवनदान दिया इस पक्के विश्वास के कारण ही कनफटे जोगी का राजा मानसिंह दाय (शिष्य) बना। राजा के इसी नाथ गुरु की मध्यस्थता

में सिंघी इन्द्रराज ने राजा का सचिव बनना स्वीकार किया। राजा मानसिंह ने भी इस बुद्धिमान सचिव की शर्त को स्वीकार करने में ही भलाई समझी अन्यथा यह इन्द्रराज राजा का मुसाहिब नहीं बनता।

घनाक्षरी

जैपुर के जोर तैं भज्यो जब महिप मान,
आपुनौं अनीक देखि बेर पैं बन्यौं अहित॥
पाइ निज देस जगतेसहिँ मुराइ पुनि,
संगी रहे जे भट बढाये सबही सहित॥
उक्त सिवनाथसिंह मेरतिया दूदाउत,
मानि हित चिंतक दै लाख को पटा महित॥
ओग्न तैं अधिक समप्पि द्रम्म सिक्का आदि,
राख्यो सबिसेस ताहि ओरन तुला रहित॥७॥

अपनी सेना के मुकाबले जयपुर का सैन्य बल अधिक देख कर जब उदयपुर (गेणोली) से राजा मानसिंह पलायन करता हुआ भागा। इस समय राठौड़ राजा ने आत्महत्या करने की सोची अथवा कठिन समय देखकर वह स्वयं का शत्रु बना, पर थोड़े ही समय में स्थितियाँ अनुकूल हो गईं। राजा ने अपने देश पर आए सकंट से उबर कर अर्थात् कछवाहा राजा जयसिंह को वापस जयपुर की ओर मोड़ कर राहत की सांस ली। राजा ने तब अपने उन सामन्त योद्धाओं का जो सकंट की घड़ी में निरंतर साथ रहे थे का हित सोच कर उनकी जागीर में वृद्धि की। कुचामन के दूदावत मेड़तिया शिवनाथसिंह को अपना परम हितेषी समझ कर एक लाख की आमदनी वाली जागीर दे कर राजा मानसिंह ने उसे आदरणीय बनाया। अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक रुपये दे कर शिवनाथसिंह को विशेष श्रेणी से नवाजा। उसे दूसरों के बराबर नहीं रखा अर्थात् उसकी आर्थिक-सामाजिक हैसियत बढाई।

सूचे तीन संगी सिवनाथवारे सोदरन,
सहँस पचीस मुद्रा तुल्य दै पटा सबन॥
नींबी मुख्य थान लछमन कौं दयो नृपति,
मान हित दीनौं मान भहलिया तुष्ट मन॥

स्वामी कर्यो थान धनकोली को हुकमसिंह,
सूँप्यो सारदूल ताको पिप्पलाद प्रीति सन॥
द्रम्म पंच अयुत पटा सौं पहिलैं तो दयो,
भावीकाल दैहैं बलि बूडसू पुरी भवन॥८॥

शिवनाथसिंह के तीन भाई जो राजा मानसिंह के साथ रहे उनमें से प्रत्येक को राजा ने पच्चीस हजार की आमदनी वाली जागीर अता की। इनमें से लक्ष्मणसिंह मेड़तिया को राजा ने नींबी गाँव का पट्टा दिया। इसी तरह मानसिंह मेड़तिया को राजा मानसिंह ने प्रसन्न हो कर भादलिया की जागीर दी। तीसरे भाई हुकमसिंह को राजा ने धमकोली नामक पुर का स्वामी बनाया। शिवनाथसिंह के तीनों भाईयों के अतिरिक्त राजा ने प्रीतिपूर्वक शार्दूलसिंह को पीपलाद की जागीर का पट्टा दिया जिसकी आमदनी पचास हजार रुपये थी। हे राजा रामसिंह! आगे भविष्य में इसी शार्दूलसिंह को राजा मानसिंह जोधपुर नगर में बूड़सू की हवेली भी देंगे।

ऊदाउत बंस मैं प्रधान उक्त अर्जुन कौं,
अरुतन आय ग्राम बारह दये उचित॥
भद्राजनि ईस बखतावर जो जोधा भन्यौं,
द्रम्म लाख मानी पट्ट ताकौं दयो हेरि हित॥
जंप्यो लाडनूं पति द्वितीय जोधा मंगल जो,
मान नृप ताहूकै बढाइ पटा लाख मित॥
पंच अरुताऽऽय तास बंधव पता कौं पट्ट,
यो दयो त्रिसत सादी स्वामिता उपेत इत॥ ९॥

राजा मानसिंह ने इस श्रृंखला में उदावतों में प्रधान संगी रहे अर्जुनसिंह को दस हजार की आमदनी वाले बारह गाँवों की जागीर के पट्टे दिए। भाद्राजन के जागीरदार जोधा बख्तावरसिंह का हित सोच कर राजा ने उसे एक लाख की आय वाली जागीर प्रदान की। पूर्व कथित दूसरा जोधा मंगलसिंह जो लाडनूं का जागीरदार था उसकी जागीर के पट्टे में वृद्धि कर उसे एक लाख की आय का पट्टेदार बनाया। उसके भाई प्रतापसिंह जोधा को पचास हजार की जागीर का पट्टा दिया और तीन सौ सवारों वाली सेना का स्वामित्व दिया।

अल्पाजीव हे ए सब एक टारि अर्जुन कौं,
ऊदा कुल पट्टपति सोतो रायपुर ईस॥
आठ मिसलन मैं सिरायत हो आदि हीतैं,
अष्टादस संगी यौं बढाये मान अवनीस॥
तिन मैं कुचामनि भद्राजनि लाडनूंतो,
बढे लाख लाख के पटा की ठानि बखसीस॥
ऊदाउत मूल हीतैं ऐसो सो बढ्यो अधिक,
जानैं जंग जैसे बढे संगी हीन द्विक बीस॥१०॥

उपरोक्त सभी ये आठों राजा मानसिंह का साथ निभाने वाले पूर्व में थोड़ी जीविका वाले थे। इनमें से एक अपवाद स्वरूप अर्जुनसिंह था जो उदयसिंह का वंशज होकर रायपुर का जागीरदार था। वह तो मारवाड़ की आठ मिसलों में से एक मिसल के रूप में पहले से सम्मिलित था अर्थात् वह तो पूर्व से ही मारवाड़ के सम्मानित सामंतों में से एक था। इस तरह राजा मानसिंह ने अपना साथ देने वाले कुल अठारह वीरों को जागीर दे कर उनका सामाजिक मान-सम्मान और दबदबा बढाया। इनमें से कुचामन, भाद्राजन और लाडनूं के ठाकुर तो राजा मानसिंह से बख्शीश पा कर लाख-लाख रुपयों की आमदनी वाली जागीर के स्वामी बने। वहीं उदावत अर्जुनसिंह जो पहले से ही बड़ी जागीर का स्वामी था फिर भी उसकी जागीर में इजाफा किया गया। इस तरह युद्ध में साथ देने वाले राजा के अठारह संगी वीर समादृत हो कर समृद्धि में बड़े बने।

ऐसैं भूत काल मैं बढे ए बंदगी तैं अरु,
इंदराज मंत्री भयो नृप कौं नियम आनि॥
बर्त्तमान मैं अब बुरो यह लगन लग्यो,
मानी मानवारे मन व्यय मैं अटक मानि॥
सौंह लै जलंधर के साखी देवनाथ सह,
तापैं पछिताइ हरैं छल तैं सचिव हानि॥
हाहा काहू कै न ऐसो कपटी अधिप होहु,
पापी लोभ अंधक जो मारै स्वीय पहिचानि॥११॥

लेकिन ये सभी अपनी सेवाओं से पूर्व काल में बढे थे अर्थात् राजा मानसिंह के सिंहासनारूढ होने के समय में बढ़े थे। उसी समय में राजा ने नीति से इन्द्रराज सिंघी को अपना प्रधान नियुक्त किया था पर वर्तमान में वही उपयुक्त वजीर अब अनुपयुक्त लगने लगा क्योंकि इस मंत्री की खर्च के मामलों में दखल मान वाले गुमानी राजा मानसिंह को अखरने लगी थी। गुरु देवनाथ के साथ जिसने जलंधरनाथ की शपथ उठाई थी वही (राजा) अब पछताते हुए छल कपट से सचिव इन्द्रराज को मरवा डालने पर उतारू हुआ। और अन्ततः मार कर शान्त हुआ। ग्रंथकार कहता है कि हे राजा रामसिंह! ईश्वर ना करे कि किसी व्यक्ति को ऐसा कपटी स्वामी मिले! जिस बात को सुनने मात्र से देह का रोम-रोम रोमांचित हो उठे वैसी ही बात राजा मानसिंह ने की कि उसने अपने ही व्यक्ति (सेवक) को पहचानते हुए (गुण समझते हुए भी) भी मार डाला।

संबत तुरंग अंग संजुत भुजंग ससि,
इंदउर ईस जसवंतराव छोरयो अंग॥
जोलौं रह्यो स्वास हुलकर कै नियति जोर,
तोलौं त्रास रह्यो अंगरेजन कै बल तंग॥
हंकि अरि तोपन पैं जानैं बहुबेर हय,
ढंकि छिति दीनी रुंड मुंडन के करि ढंग॥
पृथ्वीराज पीछैं बीर तैसो यह जान्यौं पर्यो,
जाकौं वाह व्याहसो उछाह रह्यो सब जंग॥१२॥

उधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सड़सठ में इन्दौर के शासक जसवंतरात होल्कर ने देह त्यागा। भाग्य के संयोग से जब तक इस होल्कर की सांस रही अर्थात् अन्तिम श्वास तक अंग्रेजों के दिल में दहशत बरकरार रही। इस वीर ने कई बार गोले उगलती तोपों के सम्मुख अपने घोड़े बढा कर रणभूमि को शत्रुओं के कटे धड़ों से आच्छादित कर दिया और कटे मस्तकों के ढेर लगाए। पृथ्वीराज चौहान के बाद कदाचित् यही ऐसा वीर था जिसका वीरता में नाम लिया जाता है जिसका घोड़ा सारे रणखेतों में विवाह के उत्साह जैसे उछाह से भरा सभी ओर विचरण करता रहा।

साहस उपाय बुद्धि बिक्रम रु बिद्या सिद्ध,
एक अध्व अध्वग ए अंगरेज आइ इत॥
होन लागे हाकिम इहाँ को देस काल हेरि,
हरैं हरैं क्रम तैं बढाते निज लाभ हित॥
एक प्रतिभट तैं मुरे न बहुबेर आजि,
मोरे महसूर मकसूदाबाद से अमित॥
जोध कंपनी के जे मुराये बहुबेर जानैं,
बीर एक ऐसो जसवंतराव भो बिदित॥१३॥

साहस, बुद्धि ,पराक्रम ,उपाय, विद्या इन सभी में पारंगत ये अंगेज एक ही मार्ग के चलने वाले पथिक थे जो यहाँ आर्यावर्त्त में आ कर देश काल की नब्ज पहिचान कर यहाँ के हाकिम बनने लगे और धीरे-धीरे अपने लाभ के हित को बढ़ाने वाले बने। इतना होते हुए भी युद्धक्षेत्र में अपने एक प्रतिमल्ल (विपक्षी योद्धा) से वे कई बार युद्ध से विमुख हो कर भागे। जिस योद्धा ने मैसूर और मकसूदाबाद के युद्धों में अंग्रेज योद्धाओं को भागने पर विवश किया। वह प्रसिद्ध योद्धा जसवंतराव होल्कर ही था जो इन दिनों मर गया।

संकट मैं एकसमै बल को बुरज बंधि,
तोप दुव तामैं चटकारिन मित चलात॥
अंगरेज दक्खिन तैं उत्तर लरत आये,
काजहु करत आये पाउस सलिल पात॥
नीठि नीठि लंघि कृत्य कोबिद मिली नदिन,
गंगा पर ह्वैंगये बढे क्रम निबहि गात॥
लरत उहाँ लौं गयो हुलकर पीछैं लागि,
बल को बुरज पै न बिगर्‌यो जिनहि जात॥१४॥

एक बार अपनी सेना की बुर्ज बना कर, चुटकी बजे इतने समय में दो धमाके करने वाली, तोपों के साथ दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर लड़ते हुए अंग्रेज आए। ये अंग्रेज लड़ने में वही काम करते जो पावस ऋतु में वर्षा की झड़ी करती है अर्थात् जिस तरह पावस सभी ओर पानी ही पानी कर देती है उसी प्रकार इनकी सेना जहाँ जाती वहाँ-वहाँ अपना आधिपत्य जमा लेती।

अपने लड़ने के कार्य में चतुर अंग्रेज मार्ग में पड़ी नदियों को कठिनाईपूर्वक लांघ कर भी आगे बढते जाते थे। इन्हें लड़ते हुए होल्कर ने गंगा के पार भेज दिया था फिर भी होल्कर उसका पीछा करता रहा। संकट की ऐसी घड़ी में भी उस वीर होल्कर की पराक्रमी सेना बुर्ज की तरह दृढ बनी रही। इसकी सेना का अंग्रेज भी कुछ नहीं बिगाड़ सके।

असे अंगरेज अतिसीम बुध बीर अहो,
अैसैं एक काल दुर्ग भरतपुराख्य अरि॥
बाहिर तैं बेढिकैं कर्‌यो रन कछुक काल,
टेक बल लेक नै अनेकंन मैं एक टरि॥
माँहि के प्रघात जट्टराज रनजीत मारे,
काढे जसवंतराव बाहिर के पात करि॥
हारि न मुरे जे मुरे तबतो कछुक हेतु,
लैकैं दयो जट्टन को पीछैं उक्त दुर्ग लरि॥१५॥

बुद्धि और वीरता में अतिसीम अर्थात् बड़ी सीमा वाले अंग्रेजों ने एक बार भरतपुर दुर्ग को जा घेरा। उन्होंने बाहर से घेरे हुए दुर्ग पर आक्रमण किया और युद्ध जारी रखा। अंग्रेजों के सेनानायक जनरल लेक ने हठपूर्वक अपने पूरे बल को लगाए रखा। इस समय दुर्ग के भीतर से तो जाट राजा रणजीतसिंह ने मुकाबले में प्रहार किए और बाहर से जसवंतराव होल्कर ने अपने प्रहार आंरभ किए। कुछ समय बाद दोनों ने मिल कर अंग्रेजों की सेना को मुड़ने पर मजबूर कर दिया। यह अलग बात है कि अंग्रेज सेनाएँ हार कर नहीं अपितु अपने ही अन्य कारणों से मुड़ी पर यह बात तय है कि जसवंतराव ने अंग्रेजों से लड़ कर भरतपुर दुर्ग को ले कर जाट शासक को वापस दिया।

अैसे बज्रफेट जैसे अंगरेज आहव मैं,
हुलकरराज जे भजाये बहुबेर हनि॥
एक बेर आवत दरे को करि रुद्ध द्वार,
माँहिं अंगरेजन लै कोटा के प्रधान नमि॥
चम्मलि उतारि काढी सुख सौं कथित चमूं,
तातैं रंच रुद्ध जसवंत पीछै प्रीति तनि॥

मांहिं नतिसौं लै धरि रोधन जु कारा मांहि,
बज्र कोप झेल्यो झाल्ल जालम नैं नम्र बनि ॥१६॥

ऐसे वज्रफेट अर्थात् वज्र की तरह आक्रामक अंग्रेजों को रणभूमि से होल्करराज जसवंतराव ने कई बार भागने पर मजबूर किया। एक बार कोटा राज्य के पर्वतों के मध्य के दर्रे को अवरुद्ध कर, (ताकि पीछे आने वाले को मार्ग और अवसर न मिले ऐसे में) अंग्रेजों को कोटा में अपनी सुरक्षा के घेरे में ले कर वहाँ के प्रधान ने विन्रम हो कर आराम के साथ चम्बल नदी को पार करवा कर आगे निकाला। इस पर कुपित हो होल्कर ने पीछे से नीतिपूर्वक उसे रोका और फिर उसे बँदी बना कर कारावास में डाल दिया। इस तरह होल्कर ने प्रधान झाला जालिमसिंह को अँग्रेजों के प्रति विनम्र बनने की सजा दी। उसे जसवंतराव का वज्र कोप झेलना पड़ा।

ऐसो नीति पाटव दिखायो जिम रीझैं एह,
हो तबहु पाउस पै हेरी नाँहिं वित्त हति॥
दलही पटन ढाँक्यो भीजे करवाइ दूर,
तंबू जे नवीन पीन तिनकी तनाइ तति॥
दैकैं उपदा मैं इष्ट जो रह्यो जितेक दिन,
मंडि महिमानी दीखि अपुनैंसे तास मति॥
रोकै मूढ रोधक तो ऐसी कहि राजी राखि,
काढ्यो जसवंतराव ऐसे खेलि दाव कति॥१७॥

इतने पर भी वह चतुर इतना था कि उसने अपनी प्रसन्नता प्रदर्शित की, खीझ नहीं। वर्षा ऋतु होने के कारण भी उसने अपने वित्त की हानि को नहीं देखा अर्थात् खर्च की परवाह नहीं की। उसने अपनी सेना को वस्त्रों से ढक कर भीगने से बचाया। उसने बड़े-बड़े तंबुओं की पंक्तियां तनवा दीं और इसके लिए उसने कोटा को मनवांछित भेंट दी। इस पर भी वह जितने दिन वहाँ टिंका रहा तब तक बाहर वालों के समक्ष यह प्रदर्शित करता रहा कि मेहमाननवाजी की जा रही है अर्थात् इन कोटा वालों ने मुझे स्वागत-सत्कार हेतु रोक रखा है। जसवंतराव होल्कर ने उस मुर्ख प्रधान झाला जालमसिंह को इस पूरी अवधि तक कारावास में कैद रखा (वह ठहरा भी यही करने को था) पर लोगों के समक्ष यह प्रकट नहीं किया कि मैं सजा देने

को ठहरा हूँ। यह तो आवभगत हो रही है मेरी इसलिए ठहरा हूँ। इस तरह के कई दाँव खेलने वाले उस नीति-चतुर जसवंतराव होल्कर ने तब जालमसिंह को सजा भुगतवा कर छोड़ा।

एक बेर ऐसेही पस्यो जो पुर बुंदी आइ,
गोपुर जराए नपृनें क्यों कछु हेतु गहि॥
रंचहु न भेजि महिमानी की न ठानी रीति,
सोहु हित हानी मानी मानी रह्यो तोहु सहि॥
श्रीजित को केदारेस आश्रम निवास सुनि,
स्वल्प पत्ति संगी चल्यो तिनसौं मिलाप चहि॥
जो लै बाह्यपंथ गिनतीके जन दरवाजा,
ऊपर तैं झारी एक तुपक तहाँ तैं रहि॥१८॥

इसी प्रकार वह एक बार अपने दल -दल सहित बून्दी आया और नगर के बाहर पड़ाव डाला। इसी समय हाड़ा राजा ने किसी कारणवश नगर के सभी द्वार बंद करवा दिए। यही नहीं हाड़ा राजा न सामने आया और न प्रथानुसार मेहमानी भेजी अर्थात् अपने महल में पधारने की मनुहार की। तब भी उस स्वाभिमानी जसवंतराव होल्कर ने यह सभी कुछ चुपचाप सहन कर लिया क्योंकि कुछ भी करने से दोनों पक्षों के हितों पर कुठाराघात होता। इसी समय उसने सुना कि श्रीजित (पूर्व राजा उम्मेदसिंह) तो केदारेश्वर के पास वाले अपने आश्रम में निवास कर रहे हैं तब वह अपने कुछ साथियों को साथ ले श्रीजित से मिलने को रवाना हुआ। इस समय वह अपने कुछ लोगों के साथ नगर के बाहर के मार्ग से होकर गया। इधर पीछे से किसी ने दरवाजे के ऊपर से एक तोप चला दी।

जाकौं हो न सासन पै गोपुर जटित जानि,
एक मूढ ऊरुज सो आगस कस्यो असह॥
पीछो आइ तबहि निदेस दीनौं सेना प्रति,
लेहु बढ बुंदी लूटि आज के प्रवृत अह॥
परिखा कितिक जा पदत्रन तैं देहु पूरि,
ताको क्रुद्धता को होत सासन इतोक वह॥

बाहिर की बुंदी साखापुरन समेत बेग,
जबहि लुटीसी दीसी साखी हीन साख जह ॥१९॥

इस तोप को चलाने की आज्ञा राजा अथवा सेनापति की नहीं थी पर दरवाजे बन्द जान कर एक मुर्ख वैश्य ने यह असह्य अपराध कर ही डाला। होल्कर ने वापस आकर गुस्से से अपनी सेना को आज्ञा दी कि आज इस बून्दी के दुर्ग और नगर को लूट लो। गढ़ के चारों ओर खुदी हुई परिखा क्या गहरी है ? अपने जूते डाल कर इसे पाट लो! अपने स्वामी होल्कर का कुपित हो कर इतना कहना ही था कि उसकी सेना ने शहरपनाह के बाहरी शहर अर्थात् पुरानी बूंदी और उपनगर शाखापुर सहित पूरे क्षेत्र को लूट कर उसकी ऐसी दशा बना दी जैसी किसी शाखाविहीन वृक्ष की होती है अर्थात् उसे एकदम उजाड़ डाला।

पत्तन के कोट पैं रु दुर्ग पैं प्रसारि पंति,
तीरि दीनी तोपन कौं मोरि मोरि सिस्त मुख॥
लैलै तूल भार बहु खातिका भरन लगे,
राह कौं धरन लगे निश्रेनिन चाह रुख॥
निजन निहारैं निठि बुंदी के बचावन कौं,
श्रीजित के आतहि सो साम्हैं आइ पाइ सुख॥
तंबू पधराइ उपालंभन को ओघ तानैं,
........अनखाइ दीनौं तदपि मिटाइ दुख॥२०॥

उसने अपनी सेना की पंक्तियां शहरपनाह पर और दुर्ग पर प्रसार दी। यही नहीं भरी हुई तोपों को तीली दिखा कर निशाना ताकने को उनकी नालों को इधर-उधर किया। सेना के लोग रूई के बोरे डाल कर दुर्ग को परिखा को पाटने लगे और नीसरनियाँ लगा-लगा कर शहरपनाह को पाटने हेतु रास्ते बनाने लगे। ऐसी संकट की घड़ी को देख कर बूंदी को बचाने हेतु होल्कर के अपने प्रिय लोग आए और उन्होंने बमुश्किल तमाम बूँदी को बरबाद होने से रोका। जब श्रीजित स्वयं आए तो होल्कर चल कर उनके सम्मुख गया और उन्हें पूरे अदब के साथ ले कर अपने शिविर में आया। यहाँ होल्कर ने श्रीजित को कई प्रकार के उलाहने दिए कि यह हमारे साथ क्या बर्ताव किया

जा रहा है ? उसने अपने गुस्से का इजहार करते हुए शिकायत की पर बूंदी पर छाए हुए संकट के दुःख को अवश्य टाल दिया।

नाँती जिन दिनन प्रतीप हो पितामह सों,
तीव्र बल आयो इहाँ हुलकरराज तब॥
याही तैं बिलंबि पीछैं श्रीजित सहाय आयो,
जान्यौं सह सचिव महीप को प्रमाद जब॥
लुंटक पिटात बरजात के सरनि लखे,
उक्त बिधि द्वैही मिलि बैठे स्वस्व थान अब॥
सूचे उपालंभ जसवंत के असेस सुनि,
पीछो दयो उत्तर यों श्रीजित लहे परब॥२१॥

यही नहीं जिन दिनों बूँदी के श्रीजित का पोता हाड़ा राजा विष्णुसिंह अपने दादा के खिलाफ हो गया था तो यह खबर पाते ही जसवंतराव होल्कर अपने दल के साथ शीघ्र ही बूंदी आया। वह श्रीजित की सहायता में जब यहाँ आया और उसने देखा कि सचिव और राजा दोनों का प्रमाद बढ गया है। उसने मार्ग में ताकतवर लूटेरों का उत्पात देखा तो वह समझ गया कि उधर राजा बरजोर हो कर बैठा है और इधर ये बरजोर बने बैठे हैं। तब होल्कर ने श्रीजित को बूंदी की इस स्थिति को लेकर उपालंभ कहलाए। सारे उलाहने सुनने के बाद श्रीजिंत ने थोड़े समय बाद वापस प्रत्युत्तर कहलवाया।

मातुल मलार कुल तू भयो कुपुत्र मूढ,
बुंदीपति मूढ भयो मो कुल कुपुत्र बत॥
अंग अपने कौं अहो काटन लग्यो तू आप,
मंडन लग्यो त्यों भूप इतको प्रतीप मत॥
दोउन को सत्रु झारि तुपक भज्यो जो दुष्ट,
ताहि खोजि लावन कौं भेजे जन जूह तत॥
अखिल कुटुंब मेरो आत मरिबे को इहाँ,
मारि तिनको उबारि निज तैं निज मुरत॥२२॥

श्रीजित ने अपने उत्तर में कहला भेजा मेरे लिए ये खेद की बात है कि मेरे मामा मल्हारराव के कुल में तो हे जसवंतराव! तू कपूत हुआ (राजा उम्मेदसिंह के पिता राजा बुधसिंह की कछवाहा रानी ने मल्हारराव होल्कर के हाथ में राखी बांधी थी। इस कारण से श्रीजित मल्हारराव को मामा कहता था) और मेरे कुल में यह बूंदी का राजा (विष्णुसिंह) कपूत हुआ कि तू तो अपने ही शरीर के अंग को काटने चला है और इधर बूंदी का राजा मेरे मत के विरुद्ध चलने लगा है। तुम दोनों का शत्रु वह दुष्ट जो तोप चला कर भाग गया उसे ढूंढ कर पकड़ लाने को मैंने अपने आदमी भेज रखे हैं वे उसे पकड़ कर लाते ही होंगे इतने में यह क्या कि भिड़ंत की तैयारी हो गई ? अभी मेरे कुटुम्ब के सारे लोग यहाँ मरने को आते। ऐसे में हे जसवतंराव! तू क्या उनको मार कर और अपनों से ही अपनों को बचा कर चला जाता?

श्रीजित के बैन ऐसे हुलकरराज सुनि,
नीचे करि नैन दये लुंटक सब निवारि॥
आश्रम पधारे इम तूटो हित जोरि आप,
धीरपन पीछैं नृप आइ मिल्यो हित धारि॥
स्वागत बलिष्ट को बन्यो जिम सबहि साध्यो,
बाबा सौं बहोरि मिलि मंत्रिन को मद मारि॥
पीछैं चढि गो जो पर्बतन पैं करत पंथ,
सूचे सक सोपै जसवंत मर्यो जयकारि॥२३॥

श्रीजित के ऐसे वचन सुनते ही जसवंतराव होल्कर ने अपने नयन झुका लिये और अपने आदमी जो लूटपाट कर रहे थे उन्हें रोका। और वह स्वयं फिर दोनों पक्षों के हितों की रक्षार्थ श्रीजित के आश्रम में गया। इसके बाद तो हाड़ा राजा विष्णुसिंह भी अपना हित सोच कर होल्कर से मिलने आया और अपने से ताकतवर राजा का जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा ही किया। इसके बाद बाबा (श्रीजित) से वापस दूसरी बार मिलने गया और इस तरह जसवंतराव होल्कर बूंदी के सचिव का दर्प चूर कर पर्वतों में राह बनाता हुआ वापस रवाना हुआ। वही जयकारी होल्कर जसवतंराव इसी (सूचित) विक्रम संवत् में दुनिया से कूच कर गया।

भूत बत्त भाखी अत्र ताकी बर्तमान अब,
बैठो तास आसहु मलारहि स नाम बलि॥
नाम कहिबे को सो बडे सो बल धाम नहि,
इंदउर पुष्प पैं भो तोहूसो प्रसक्त अलि॥
हाकिमपनों तो जसवंत ही की गैल गयो,
छैल गयो छोनि को वहै ही विप्रलंभ छलि॥
कंटक कढ्यो जो अंगरेजन नै मानि कीनों,
उच्छव अपार कोऊ रोधक न जानि कलि॥२४॥

हे राजा रामसिंह! उपरोक्त वृत्तान्त तो मैंने भूतकाल का किया अब मैं वर्तमान काल के वृत्तान्त पर आता हूँ। वह जो मल्हारराव होल्कर का उत्तराधिकारी बना पर वह बड़े आदमी का राज्य पा कर कहने मात्र को बड़ा नहीं बना। वह तो सचमुच बल का धाम था और इन्दौर रूपी पुष्प पर आसक्त भ्रमर था। हुकूमत करने का कार्य अर्थात् अच्छी हाकिमी तो उस दिवगंत जसवंतराव होल्कर के साथ गई। वह भूमि का रसिक गया और भूमि को वियोग दे गया। अपनी राह का काँटा गया यह मान कर अंग्रेजों ने अपार खुशियाँ महसूस की। उन्हें जसवंतराव की अनुपस्थिति में युद्ध में रोकने वाला अब अन्य कोई नहीं, यह सोच कर उत्सव मनाया।

एक बलही सो जई कलि मैं सुनत आये,
जाकै सुन्यौं धीबल न ताकै सुन्यौं बीर जस॥
आयो कलि देखो प्रभुराम अपनी ही ओर,
ओरन कै आये कृत त्रेता बिधि कर्म बस॥
देस काल बुद्धि बिद्या पाइ कैं नवीन दृढ,
रमनी मही को लैन लागे अंगरेज रस॥
ऐन भद्र इननैं बिचारि गहि लीनो एक,
टेक सौं टरैं न तासौं अध्वनीन नित्य तस॥२५॥

अब तक यह सुनते आये थे कि कलयुग में मात्र एक बल के सहारे विजय निश्चित होगी और यह भी कि जिसके पास बुद्धि का बल होता है उसको वीरता का यश नसीब नहीं होता। हे राजा रामसिंह! भग्य की विडम्बना

देखिये कि यह कलयुग तो हमारी ओर अग्रसर है और दूसरो के लिए (अंग्रेजों से तत्पर्य है) यही युग सत्ययुग सा बनता चला जा रहा है। विधाता की कृपा से त्रेतायुग की तरह अनुकुल देश-काल तथा बुद्धि और विद्या पा कर नई तरह से यह अंग्रेज लोग अब भूमि रूपी रमणी का रस लेने लगे हैं। अच्छी तरह विचार मन्थन कर इन अंग्रेजों ने शुभदायक मार्ग को पकड़ लिया है और इस मार्ग के पथिकों से कल्याण कभी अलग नहीं होता। फिर हठ पूर्वक यह अंग्रेज इस मार्ग को छोड़ते भी तो नहीं।

उक्त सक ही के मास बाहुल असुभ्र इत,
दीपमालिका की आदि तेरसि निसा दुसह॥

भूप बिष्णुसिंह को पितृव्यज कनिष्ठ भ्रात,
मोरि मन स्वामी सौं हरामीपन मानि मह॥

ईस गोठपत्तन को नाम बलवंत अहो,
द्रोह बस बूड़िबे कौं पाप के अगाध द्रह॥

निश्रेनी लगाइ सहसा ही पैठि नैनपुर,
दाबि कैं दगा सौं बनि बैठो जो अधीस जह॥२६॥

इधर बून्दी में विक्रम संवत् के इसी वर्ष अठारह सौ सड़सठ के कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष में दीपमालिका से पूर्व में पडने वाली त्रयोदशी तिथि की रात्रि में राजा विष्णुसिंह के काका के पुत्र (उनके दुस्सह छोटे भाई) ने अपने स्वामी से विमुख हो कर स्वामी विद्रोह को महत्वपूर्ण माना। गोउड़ा नामक नगर का जागीरदार बलवन्तसिंह द्रोह स्वरूप पाप के अथाह सागर में डूबने को रात के समय नीसरनिया लगा कर अचानक ही नैनवा नामक नगर में दाखिल हुआ और नगर को दबा कर वहाँ का स्वामी बन बैठा।

श्रीजित के जीवत रहे जे कहे तीन सुत,
अग्रज अजितसिंह तिनमैं लह्यो तखत॥

दूजे स्वामिधर्मी वीर अंगज बहादुर को,
गोठद्रंग दीनो जाको मान उक्त आदि गत॥

दीनौं सुत तीजे सरदार हित दुर्ग्ग पुर,
कापरनि दीप कौं जो लक्ख को पटा कहत॥

ओसर पैं दाय भेद हेतु कहिआये आदि,
तत्र कहि आये उक्त तीनन प्रजा हु तत॥२७॥

श्रीजित के जीवित रहते उनके जो तीन पुत्र कहे गए इनमें से सबसे बड़े अजीतसिंह ने बून्दी का तख्त पाया। श्रीजित ने अपने दूसरे स्वामिभक्त वीर पुत्र बहादुरसिंह को गोठड़ा की जागीर दी जिसकी आमदनी का प्रमाण पहले दिया जा चुका है दूसरे अर्थ में वह इस प्रसंग के कथन से पूर्व ही मर गया। श्रीजित ने अपने तीसरे पुत्र सरदारसिंह को दुर्गपुरा, की जागीर दी। इसी तरह श्रीजित(उम्मेदसिंह) ने अपने छोटे भाई दीपसिंह को एक लाख रुपये की आमदनी वाले कापरनी नामक गाँव का पट्टा दिया। उपयुक्त प्रसंगानुसार मैनें (ग्रंथकार ने) पूर्व में ही सारे दायभाग का वर्णन कर दिया और उसी स्थान पर इन तीनों की संतानों का विवरण भी दे दिया।

तीन सुत तिनमैं बहादुर के आयुबली,
जेठो बलवंत मध्य दलपति नाम जुत॥
सेरसिंह तीजो तिम द्वै ही इत आयुसगी,
ईश्वरी रु देबी आदि सिंह सरदार सुत॥
ताही कै खवासि के पहार रु स्वरूप तनै,
उक्त दायभागी.......दीप के तनूज उत॥
अत्र आयुवारे सुरतान रु सगतसिंह॥२८॥

श्रीजित के तीनों पुत्रों में से दूसरे पुत्र बहादुरसिंह के आयुबली बड़ा पुत्र बलवंतसिंह जन्मा। इससे छोटा दलपतसिंह और सबसे छोटा तीसरा शेरसिंह हुआ। इसी प्रकार श्रीजित के तीसरे पुत्र सरदार सिंह के ईश्वरीसिंह और देवीसिंह नामक दो आयुष्मान पुत्र जन्मे वहीं सरदारसिंह की पासवान की कोख से पहाड़सिंह और स्वरूपसिंह दो पुत्र हुए। राजा श्रीजित से दाय भाग लेने वाले अर्थात् उसके छोटे भाई दीपसिंह के भी दो पुत्र हुए। पहला सुरतानसिंह और दूसरा शक्तिसिंह।

इनमैं बहादुर तनूज बलवंत उग्र,
बीर खल सील पसु सिंह की तुला बहत॥
केही भूत भावी जिहिं सत्रुन समर करे,
मंडिल रु बिंझोली से दुर्ग लैन के महत॥

बिगरे उपाय जे तो निश्रेनी लगत देर,
नगर नरूकन तैं लैही लयो पै लहत॥
तामैं बेग आइ पैठो भीम को कटक तातैं,
आयो कढि पीछो लूटि वैभव जो अग्रहत॥२९॥

इन सभी में बहादुरसिंह का पुत्र बलवंतसिंह उग्र स्वभाव वाला था। वह दुष्ट स्वभाव में पशु के समान था तो पराक्रम में सिंह की बराबरी करने वाला था। इसने भूतकाल और आगे आने वाले समय में मांडल और बिंझोली के दुर्ग अपने अधिकार में करने को कई युद्ध लड़े और रणभूमि में कई शत्रुओं को मारा। इसी तरह जब वह नगर नामक नगर को हथियाने गया तब वहाँ नीसरनियाँ लगाने में देरी हुई और इसी बीच भीमसिंह नरूका का दल आ गया। यह नगर उसने (बलवंतसिंह ने) नरूकों से छीन लिया होता पर देरी के कारण गड़बड़ हो गई और उसे भागना पड़ा तब भी वह अप्रतिहत वेग से वहाँ से धन-वैभव लूट कर ही भागा।

कलह अनेक ऐसे भूत अरु भावी करे,
केही रन जित्ति कित्ति बीरता करी बिदित्त॥
एक धर्म्म ही कौं पीठि दैबे तैं दुरित ओडि,
हेत अपकित्ति हु लै हेरयो एक लोभ हित॥
बाम अध्व पथिक मपंचक निरत बुद्धि,
ईस सौं बदलि सूचे बर्त्तमान सो ब इत॥
पैठि कैं दगा सौं घर ही के दुर्ग्ग नैनपुर,
आसु अपनायो जोध अंतर के ठानि जित॥३०॥

इस बलवंतसिंह ने पूर्व में और बाद में कई जगह युद्ध किये। इन युद्धों में से कई में उसने विजय प्राप्त कर वीरता का यश प्राप्त किया पर अफसोस कि उसने धर्म को पीठ दिखा कर पाप झेलने हेतु लोभ में अपना हित देखा। वह वाम मार्ग का पथिक (वाममार्गी) पाँच मकार में अपनी बुद्धि को नियुक्त करने वाला बलवंतसिंह अपने स्वामी के विरुद्ध हो कर वर्तमान वर्ष अर्थात् अठारह सौ सड़सठ में घर के ही दुर्ग नैनवा में दगे से जा घुसा। इस तरह उसने अपनी ही जागीर को लेकर अंतस में इस वीरता भरे कार्य के सम्पन्न करने का गर्व भरा और स्वयं को विजित महसूस किया।

सो सुनि सकोप बिष्णुसिंह नरनाह सज्ज,
चिंत्यो आप चढ़न निवारयो सो भटन न्याय ॥
बोले हम आगैं बलवंत को कितोक बल,
छीनि गढ लैहैं अरि कैहै कैद हत छाय ॥
धोवरेस भूपाल रु बिक्रम सु खीना धनी,
अग्रज तदीया बिरुदेस................आय ॥
नाथाउत चालुक सता तिम पगारौं नाह,
चंद्र कोरमाँ को पति कूरम चरित चाय ॥३१ ॥

इस घुसपेठ के समाचार जब हाड़ा राजा विष्णुसिंह को मिले तो उसने कुपित हो कर सेना को सज्जित होने के आदेश दिये और स्वयं ने आक्रमण करने की सोची। इस पर बून्दी के सामन्तों ने यह कहते हुए अपने स्वामी को चढाई करने जाने से रोका कि हे स्वामी ! हमारे सामने उस बलवंतसिंह की क्या बिसात ? आप चिंता न करें हम अभी जाँएगे और उससे दुर्ग छीन कर उस शत्रु को कैद कर आश्रयहीन बना डालेंगे। यह सब धोवरा के स्वामी भोपालसिंह, खीना गाँव के जागीरदार विक्रमसिंह और उसके बड़े भाई बिरदसिंह ने आ कर राजा से कहा। वहीं चालुक्य शक्तिसिंह और कोरमां के जागीरदार चन्द्रसिंह कछवाहा ने भी आ कर राजा से अपने चरित्र के अनुकूल यही कहा।

इत्यादिक सामंतन नीठिन निवारे ईस,
काल देस धर्म्म नय अय को जनाइ जय ॥
यौंहि सचिवन मैं प्रधेस प्रभु त्यौंही आइ,
मंत्री तुलाराम द्विज नागर सु नीतिमय ॥
नंदराम भट्ट रु प्रधानहु गनेस निज,
सेनापति चंद कृष्णाधात्रेय हु जोरि सय ॥
सज्ज करि सेना कौं पठात भये नैनपुर,
नामी नरनाह सो बिराजत रह्यो निलय ॥३२ ॥

बून्दी के उपरोक्त सामन्तों ने तब अपने राजा को बड़ी कठिनाई से नैनवा पर चढ़ाई करने जाने से रोका और कहा कि हे राजा! देश और काल में

सदा ही से धर्म, नीति और शुभ भाग्य के सहारे विजय मिलती है! आप चिन्ता न करें! इसी प्रकार बून्दी के प्रधान सचिव नागर ब्राह्मण तुलाराम ने भी अपने स्वामी को धीरज बंधाया फिर अन्य मंत्री नंदराम भट्ट और गणेशराम आए। तभी सेनापति धायभाई कृष्णचन्द्र ने आ कर हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हम लोग सज्जित सेना के साथ अभी नैनवा के लिए रवाना हो रहे हैं। सब के रोकने पर नरश्रेष्ठ राजा तब अपने घर ही रहा अर्थात् बून्दी में ही रहा, सेना के साथ नहीं गया।

पैठत दगा सौं बलवंत इत नैनपुर,
गुज्जर गुमान दुर्गपति जो रन गरूर॥
जंप्यो अनिरूद्ध नृपकै भो देव धावर जो,
साखापुर देवपुर सासक अतुल सुर॥
हाकल प्रभेद यह ताके कुल जात हुतो,
तीर तुपकन के प्रहारन मैं गुनपूर॥
मंडे बीर गोलिन की माला बटपत्र माँहि,
दैदै पत्रबाह पत्रबाह खंडैं दूरदूर॥३३॥

जब बलवंतसिंह धोखे से जा कर नैनवा नगर में घुसा उस समय वहाँ किल्लेदार के रूप में गुज्जर गुमान था। पूर्व में हाड़ा राजा अनिरूद्धसिंह के समय में देवा नामक धायभाई कहा गया जो नगर के पास वाले देवपुर का शासक और अतुलनीय वीर था। देवा की तरह गूजरों की हाकल नामक गोत्र में ही जन्मा हुआ था यह गुमान जो स्वयं तीर और गोली के प्रहार करने में अत्यन्त निपुण था। वह निशानेबाजी में इतना सिद्धहस्त था कि वट वृक्ष के एक पत्ते पर गोलियों से छेद कर छेदों की पूरी माला बना देता था और तीरंदाज तो ऐसा था कि वह अपने चलाए प्रत्येक तीर से एक उड़ते हुए पक्षी को बेध कर दूर जा गिराता था।

अंग बय जोर कमनैतन को मोर यह,
स्वामिधर्म साधक बिबाधक बिपच्छ बल॥
जाके असुभाव छत कोऊ परिपंथक जो,
छीनिहु सकैं न पैठि छन्नहु प्रसारि छल॥

पै यह गुमान धाइभाई दुर्ग पैठन मैं,
खोलि बसु ताही के बिसासवारे मोरि खल॥
डर तैं अडर एह तिनपैं हनाइ डारयो,
पार उर गोली भेदि जावत लग्यो न पल॥३४॥

उम्र के तकाजे से अपने अंगों में जोर रखने वाला वह गुमान योद्धओं का मुकुट था। शत्रुओं को मिटाने वाले इस परम स्वामिभक्त की देह में प्राण के रहते कोई शत्रु चुपके से अपने बल का प्रसार कर भी उससे दुर्ग छीनने की सोच नहीं सकता था अर्थात् उसके जीते जी दुर्ग छीनना असंभव कृत्य था पर बलवंतसिंह ने पहले ही उसी के विश्वासपात्र साथी को विपुल धन देकर अपने साथ मिलाया फिर उसके हाथों निडर वीर गुर्जर को छलघात से मरवा डाला। गुमान के ही साथी ने डरते डरते गोली मारी जो उसके सीने को चीरती हुई निकल गयी और वह था वहीं ढेर हो गया।

ऐसैं बिसवासवारे मौंहि के अधर्मिन नैं,
गोली दै गढेस मारयो गुज्जर वह गुमान॥
किल्ला के सिपाह भेदि केक हनि केक काढि,
थापि अपने गढ अधीन कीनौं थान थानँ॥
सामंत के संकर स नाम भुजनैरी स्वामि,
स्वामी को लजाइ लोन छामी होन अवसान॥
दुर्जन लै दुर्जन कौं पैठो जिम बुंदी दुर्ग,
पैठो बलवंत कौं लै नैनवा यह प्रधान॥३५॥

नैनवा दुर्ग में तैनात गुमान गुर्जर के ही एक विश्वासपात्र अधर्मी साथी की गोली से किलापति को मरवा कर ही बलवंतसिंह भीतर घुस पाया था। किलापति गुर्जर गुमान के जीवित नहीं रहने की दशा में बलवंतसिंह ने किले में तैनात कुछ सिपाहियों को गोलियों से छलनी किया, कुछ को घायल किया और शेष को दुर्ग से खदेड़ बाहर किया। इस तरह बलवंतसिंह ने नैनवा के दुर्ग को अपने अधिकार में लिया। इस समय बलवंतसिंह के साथ सामंतका हाड़ाओं का वंशज शंकरसिंह नामक हाड़ा था जो भुजनेर का स्वामी था जिसने अपने स्वामी (हाड़ा राजा) के साथ नमक हरामी की और अन्त में

दुर्बल हो कर मरा। यही प्रधान बलवंतसिंह के साथियों को साथ ले नैनवा के दुर्ग में जा घुसा जैसे पूर्व में बून्दी दुर्ग में दुर्जनसिंह अपने दुर्जन साथियों को साथ ले कर घुसा था।

बुंदी भट मुख्यन मैं मुहुकमसिंह बंसी,
नैनपुर रच्छक हो दूजो फतैसिंह नाम॥
इत्यादिक और सुनि मरन गुमान सोर,
आये मुख ढंकि व्है पलायन रन अकाम॥
बुंदी के बरूथ इततैं बाढि गढ सु बेढ्यो,
तत्थ अर्द्ध बाहुल तैं भो रन तुमुल ताम॥
बीज सुहि पाइ हाइ देस काल दिष्ट बस,
राज्य यह बुंदी तत्र दुर्गत भो प्रभुराम॥३६॥

नैनवा दुर्ग में उस समय बून्दी के मुख्य सामन्त मुहुकमसिंहोत हाड़ाओं का वंशज फतहसिंह हाड़ा रक्षक की तरह तैनात था पर जब उसने किलापति गुमान धायभाई के साथ कुछ औरों के मरने का हल्ला सुना तो वह अपना मुँह ढक कर अर्थात् कायरों की तरह घूंघट निकाल कर बिना ही लड़े वहाँ से पलयान कर गया। कार्तिक माह के आधे गुजर जाने के समय बून्दी से चल कर आई सेना ने नैनवा में आ कर गढ़ को घेरा और भयंकर भिड़ंत आरंभ हुई। देश और काल के अनुकूल होने और भाग्य की प्रबलता से नैनवा फिर से बून्दी के अधिकार में आ पाया। हे राजा रामसिंह! पर बून्दी के अधीन होने वाला यह क्षेत्र दरिद्री हो गया अर्थात् बून्दी के अधिकार में आने वाले नैनवा की बड़ी दुर्गति हुई।

जाके रन नाथाउत चालुक सता से जोध,
महासिंह बंसी बंधु छग्गन मगन से॥
के अरि बिदारि रारि झारि असि आये काम,
नट्ठे केक कातर जु लघुत्व मैं नगन से॥
श्रीजित के जेठो इंदुकुमरि खवासि सुता,
सूनु तस हत्थी आदि घायल सगन से॥

आयुबल ऊबरे मरे के लघु हीसौं इहाँ,
भाजि केक भीरु भये भीकरि भगन से॥३७॥

इस युद्ध में नाथावत चालुक्य शत्रुसाल जैसा योद्धा काम आया। वहीं महासिंहहोत हाड़ाओं के वंशज (बांधव) हाड़ा छगनसिंह और मगनसिंह जैसे अपनी तलवार के प्रहारों से कई शत्रुओं को मार कर वीरगति को प्राप्त हुए। नैनवा की रणभूमि को छोड़ कर बलवंतसिंह के कई कायर साथी नगण (नगण में सभी वर्ण लघु होते हैं) की तरह लघुत्व धारण कर भाग छूटे। श्रीजित की पासवान इंदुकुमारी की कोख से जन्मा बड़ा पुत्र हाथीसिंह सगण की तरह (सगण में अन्त गुरु होता है) प्रारंभ में छोटे और अंत में बड़े घाव खा कर घायल हुआ। वहीं कुछ अपने आयुष्यबल से बचे रह गए तो कई लघु बल वाले मारे गए और शेष सारे भगण की तरह (भगण में आदि गुरु और अन्त में लघु होता है) युद्ध के प्रारंभ में तो बड़े वीर नजर आए पर अन्त में लघु के समान कायर हो कर भाग गये।

कृष्णगढ आदि के संबंधिन ताही काल,
जोध कछु भेजे भीर बुंदी यह बिघ्न जानि॥

आहव रह्यो जो कछु ऊनचउ मास अंत,
खरचि खजानौं परे होत न रजत खानि॥

भूखन अमत्र आदि बेतन मैं जात भूरि,
पूर बसु कष्ट पर्यो देत न रुकत पानि॥

कष्ट ऐसो जदपि सह्यो पै बलवंत कँहैं,
तदपि निकासि दीनौं बुंदीभूप बल तानि॥३८॥

किशनगढ़ आदि राजा के कई सम्बंधी राजाओं ने बून्दी की इस आपदा में मदद करने को अपने योद्धा भेजे। नैनवा के दुर्ग पर यह लड़ाई पूरे पोने चार माह तक चली। सारा खर्च राज्य के खजाने पर पड़ा। वहाँ कोई चांदी की खान तो थी नहीं इसलिए आभूषण सहित महंगी चीजें फौज के वेतन में जाने लगी। धन का पूर्ण कष्ट झेला पर देते हुए राजा के हाथ थमे नहीं। हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने धन का कष्ट सहा पर बलवंतसिंह का नैनवा में रहना नहीं सहा। अन्ततः बल बढ़ा कर राजा ने उसे नैनवा से निकाल कर ही दम लिया।

त्रास दै निकास्यो बलवंत नैनवा तैं तासौं,
अहन कितेन आदि मेचक तपस्य मास॥
द्रंग बुंदी चोथी गोरि रानी कै द्वितीय दिन,
तीजो सु तनूज बलदेवसिंह नाम तास॥
जैठे द्वै हि कुमर बचे न इम ताके जन्म,
बुद्धि धन दुर्गत दसाहु मैं जस बिकास॥
कित्ति प्रसराइ आप जिततित नाम कीनौं,
धाम कीनौं धवल खजानौं खोलि खिल खास॥३९॥

भय का प्रसार कर नैनवा से बलवंतसिंह को निकाला तब तक फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष के कुछ दिन गुजर गए थे। फाल्गुन माह के इसी कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को बून्दी नगर में राजा की चौथी गौड़ वंशीय रानी ने अपने गर्भ से तीसरे पुत्र बलदेवसिंह को जन्म दिया। चूंकि पूर्व में इस रानी की कोख से जन्में दो कुमार जीवित नहीं बचे थे इसलिए राजा ने आर्थिक तंगी की दशा में भी अपने यश के प्रसार हेतु तीसरे पुत्र के जन्म के उपलक्ष में खुले हाथों से पैसा खर्च किया और अपने धाम की उज्जवल कीर्ति का प्रसार करने में शेष रहा खजाना भी खोल कर लुटा दिया।

कुमर तृतीय एह जनम्यो तदनु कढ्यो,
अल्प हि दिनन अंत भीत होइ भ्रात यह॥
बुंदी को निसान फहरानौं नैननैर बलि,
बिजय पताका के बिसेस बिधि लै निबह॥
जोर अंगरेजन को फैल्यो प्रतिघस्त्र जहाँ,
द्रोही दल दक्खिन के होत मग्न लोभ द्रह॥
केतु कंपनी को अपनैं ढिग बढत आयो,
एक अैन पथिक प्रमाद हीन रत्ति अह॥४०॥

राजा के इस तीसरे कुमार के जन्म से कुछ दिन बाद ही राजा का वह भाई बलवंतसिंह डर कर नैनवा से निकल भागा। इससे नैनवा के दुर्ग पर फिर से बून्दी का अधिकार हुआ और प्रतीक रूप में फिर से दुर्ग पर बून्दी

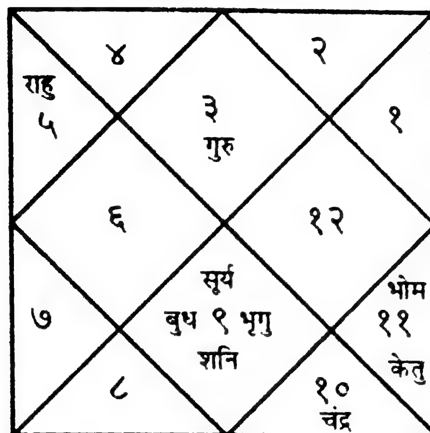
का ध्वज लहराया जो विजय-पताका स्वरूप था। इन दिनों सभी और दिन-प्रतिदिन अंग्रेजों की ताकत बढ़ने लगी। दक्षिण के द्रोही दल अपने लोभ में मग्न हो गए परिणाम स्वरूप 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का झण्डा फहराता हुआ उत्तर भारत की ओर बढ़ने लगा। प्रमाद सहित रात दिन एक ध्येय ले कर एक ही मार्ग (विजय) के पथिक अंग्रेज इधर बढ़ने लगे।

भ्रात बलवंत नैनपुर तैं निकसि भीत,
मालिक अधीन भयो जोरि हाथ नम्र मन॥
तबहि दयालु विष्णुसिंह नरनाह ताहि,
सासि न मिल्यो पै ग्रामच्यारि दये नीति सन॥
दूजे अब्द तासौं सब देस के सुदिष्ट दिन,
अंतिम प्रिया कै अर्भ प्राची गर्भ ज्यों तपन॥
भूप भोज रतन सता के पुण्य संभव भो,
भूमि तबही तैं भासी सोभामय संहनन॥४१॥

राजा का भाई बलवंतसिंह नैनवा से निकल कर डरता हुआ करबद्ध हो अपने स्वामी की शरण में आया। अपनी अधीनता स्वीकार करने पर दयालु राजा विष्णुसिंह, अपने इस शत्रु बांधव से तलवार ले कर नहीं मिला बल्कि नीति का विचार कर उल्टे उसे चार गाँवों की जागीर प्रदान की। इसके अगले ही वर्ष पूरे राज्य का भाग्य प्रबल था कि हाड़ा राजा की आठवीं (अन्तिम) रानी के गर्भ से हाड़ा राजा भोजदेव, रत्नसिंह और शत्रुसाल के पुण्य से पूर्व दिशा में सूर्य उदय हो वैसे ही बालक (रामसिंह) का अभ्युदय हुआ तभी से वह भूमि (अपने बदन से) शोभायमान सी नजर आने लगी।

सो भुजंग अंग रु मतंग ससि संबत के,
बिसद सहस्य मास उत्तम के बुधबार॥
तीज तिथि घटिका छबीस पल आकृति त्यौं,
एकबिंसी तारारद छप्पन क्रम उदार॥
योगध्रुव तेरह ओ अट्ठतीस तैतिल त्यौं,
उत्कृति द्विनेत्र इष्ट पंच द्वै छपंच पार॥

लवचउ जात धनु रविके मिथुन लग्न,
ताही काल राम प्रभु रावरो भो अवतार॥४२॥



॥ राजा रामसिंह की जन्म कुंडली॥

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ अड़सठ के पौष माह के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि तदनुसार बुधवार के दिन छब्बीस घड़ी बाईस पल और ईक्कीसवां (उत्तराषाढा) नक्षत्र था। जब बत्तीस घड़ी छप्पन पल में धुव्र नामक योग था। तेरह घड़ी, अड़तीस पल तैतिल कर्ण में छब्बीस घड़ी बाईस पल, इष्ट घड़ी पच्चीस और छप्पन, धन राशि के सूर्य के चार अंश जा कर मिथुन लग्न के समय में हे राजा रामसिंह! आपका भूमि पर अवतरण हुआ अर्थात् जन्म हुआ।

भास्यो तनु भाव मैं वृहस्पति मिथुन भोगी,
तीजे भोन सिंह को बिधुंतुद प्रविष्ट तह॥
रवि कवि मंद बुध सप्तम मैं धन्वी रहे,
अष्टम मैं इंदु मकर स्थित प्रकासि मह॥
आर अरु आहिक ए कुंभ के नवम अैन,
अैसो ग्रह जोग आत उक्त मास उक्त अह॥
रानी अष्टमी सों आप जनम अधिप राम,
सबके सुदिष्ट इष्ट विद्या नीति धर्म सह॥४३॥

आपके जन्म लग्न में मिथुन राशि का वृहस्पति, तीसरे भवन में सिंह का राहु, सातवें भवन में धन राशि में सूर्य, शुक्र, शनि, और बुध, आठवें भवन में मकर राशि का चन्द्रमा अवास्थित हो कर उत्सव का प्रकाश करता है। वहीं आपकी जन्म कुंडली में मंगल और केतु नवम स्थान में कुम्भ राशि के हैं। ऐसे ग्रह योग के आने के उक्त माह और उक्त दिन को हाड़ा राजा विष्णुसिंह की आठवीं रानी के गर्भ से राजा रामसिंह आपका जन्म हुआ जो सभी लोगों के शुभ भाग्य से विद्या, नीति और धर्म वाले हैं।

स्वामी बिष्णुसिंह महिपाल के सदन प्रभु,
बाल के प्रसव जन जाल के मिले मुदित॥
आयो समै थानाँ कलिकाल के उठाबन को,
रोध रिपु ढाल के व्है, साल के रह्यो रुदित॥
गाल केबजात चंद्रभाल के निहाल गति,
माल के मिलाप तंगहाल के तज्यो तुदित॥
बुंदीपुर सूचे काल थाल के बजत बाल,
बाल के बिकासी अंक भाल के भये उदित॥४४॥

राजा विष्णुसिंह के घर इस बालक के जन्म अवसर पर मुदित मन से लोगों के समूह एकत्र हुए क्योंकि यह समय कलिकाल के थानों के उठने का समय था। शत्रुओं की ध्वजा फहरने से राकने वाला और उन्हें आगे बढ़ने से रोकने को ढ़ाल बनने वाला, उनके हृदय में कांटे की तरह खटकने वाला और उन्हें रुलाने वाला जो जन्मा था। गाल बजाने से (यहाँ बढ़-चढ़ कर स्तुति करने के अर्थ में यह मुहावरा प्रयुक्त हुआ लगता है) जैसे शिव निहाल कर देते हैं। धन माल के मिलने पर दारिद्र्य दुखी हो कर भाग जाता है, इसी तरह बून्दी नगर में राजकुमार के जन्म की सूचना के थाल क्या बजे मानों राज्य के सभी बालकों के विकास के लेख उनकी तकदीर में लिखने हेतु सभी का भाग्योदय हुआ।

सारघ सुवर्ण मुख दै मुख कही सरनि,
साधि जातकर्म्म बंस बिप्रन जिमाइ सब॥
रत्नाकर रीझ केदये तिन्ह बिबिध दान,
कविहु निहाल कीनैं अंहति उफान अब॥

धर्म तैं असेस गायकन के निलय भरे,
पुर मैं बधाई बटी चहुघाँ चहे परब॥
भावी सुखमूल होत सौंन अनुकूल भये,
बातक बघूल तूल पातक पहार तब॥४५॥

शीघ्र ही सद्यजात बालक के मुख में शहद और स्वर्ण दे कर वेदों में कहे गए मुख्य मार्ग को साधते हुए सारे जातकर्म सम्पन्न किये गए और इस अवसर पर सभी ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। रीझ के समुद्र राजा ने तब प्रसन्न होकर विविध प्रकार के दान दिये। राजा ने इस अवसर पर दान के उफान से कवियों (चारणों) को कृत कृत्य किया। स्वर्ण से सारे कलावंतों (गायकों) के घर भर दिये। इस इच्छानुकूल समय पर नगर में सभी ओर घर-घर में बधाई बांटी गई। भविष्य में आने वाले सुख के अनुकूल शकुन हुए और पापों के पर्वत बघुले के पवन में रूई की तरह उड़े।

धर्म धुर धोरी बेद रथ के धुरंदर जे,
आदि मनु आदि गये कृत मैं बहत बाम॥
त्रेता मैं निबाह्यो राम आदिक नृपन तैसैं,
द्वापर मैं कंकादिन लीनो भर जो ललाम॥
आज कलि मैं तो हरि बिक्रम प्रमुख अहो,
धारि धारि जो धुर गये तजि उचित धाम॥
सोहि धुर जानि करतार नैं बहुरि सूनौं,
रूप रावरेतैं अवतार लीनौं प्रभु राम॥४६॥

वेद रूपी रथ के धुर को धर्मपूर्वक खींचने वाले आदिकाल में अर्थात् सतयुग में मनु आदि बाईं ओर जुते हुए जाने गए। वहीं त्रेतायुग में यही काम राजा रामचन्द्र जैसों ने निभाया। द्वापर युग में युधिष्टिर जैसे लोगों ने धर्म के धुर का सुन्दर भार अपने कंधों पर वहन किया। फिर कलियुग में धर्म के धुर का भार खींचने वाले भर्तृहरि और विक्रमादित्य आदि गिने गए। ये सभी धर्मरथ के धुर का भार खींच कर अपने-अपने धाम को सिधाये। इसी धर्म के धुर को आज फिर से सूना देख कर हे राजा रामसिंह! कर्तार स्वयं ने आपके रूप में अवतार लिया लगता है।

दोहा

हड्डवती अय उदित हुव, इम प्रभु जन्म अनेह।
भर्मादिक बितरन भये, गेहगेह मह गेह ॥४६॥

सक नव खट बसु चंद्र सम, मन जिन अमल उमाहि।
अँगरेजन बानिज्य इत, सब मेट्यो नय साहि ॥४७॥

जिहिं सक सप्तम जेनरल, आयो अप्पन देस।
अटक्यो प्रभुपन मन्नि इहिं, अब बानिज्य असेस ॥४९॥

चविहैं पुनि प्रभु के चरित, जेनरलहु सब जोरि।
नेपालन मंड्यो अमल, बढ़ि इत तबहि बहोरि ॥५०॥

हड़ौती प्रदेश में आने वाले समय के शुभ कर्मफल उदित हुए कि आज स्वामी (रामसिंह) आपके जन्म समय में बून्दी के घर-घर ने और इस ग्रन्थकर्ता (सूर्यमल्ल) के घर ने स्वर्ण आदि का दान पाया। इधर विक्रम संवत् के वर्ष आठारह सौ उनसठ में अंग्रेजों ने आर्यावर्त की भूमि को अपने अधिकार में लेने का मन बना कर अब 'ईस्ट इंडिया कंपनी' की सोदागरी का नाटक छोड़ा अथवा यह नई नीति अपनाई। इसी विक्रमी संवत् के वर्ष उनसठ में अंग्रेजों का सातवाँ जनरल अपने देश में आया और जिस ने मन ही मन स्वयं को इस देश का स्वामी मान कर वाणिज्य का कार्य त्यागा। आगे हम (ग्रन्थकर्ता) स्वामी रामसिंह के चरित्र में सारे अंग्रेज जनरलों का सम्पूर्ण हाल बयान करेंगे। अभी तो आगे बढ़ कर इन अंग्रेजों ने पहल करते हुए नेपाल देश पर अपना आधिपत्य जमाया है।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौविष्णुसिंह चरित्रे योधपुरेशमानसिंह विपत्समय सेवारत सेवकोचित जीविकाप्रदान इन्दोरेशहुलकर जसवन्तरावबलवत्त्व दर्शनतद्देहान्त समय सूचन कामुक मल्लाररावतत्पट्टासादन स्वपितृव्यजबलवन्तासिह शत्रुभाव नयनपुराक्रमण सोढानेकापद्विष्णुसिंहतन्निष्कासन बून्दीरावराड् रामसिंह प्रादुभर्वन त्यक्तवणिग्भावेष्ट इंडिया कम्पनी भारत वर्षनृपत्वसूचन मद्वादशो मयूखः आदितः ॥३६१॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, जोधपुर के राजा मानसिंह का आपातकाल में अपनी सेवा करने वाले सेवकों को जीविका देकर बढ़ाना, इन्दौर के होल्कर जसवंतराव का बलवान होना बताकर उस के देहान्त की सूचना करना और उसके पाट पर भोगो में आसक्त मल्हारराव का बैठना, बून्दी के राजा के काका के बेटे भाई बलवन्तसिंह का अपने स्वामी का हरामी होकर नैणवापुर लेना और अनेक आपत्तियें उठाकर विष्णुसिंह का उसको निकालना, बून्दी के रावराजा रामसिंह का जन्म और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारीपन छोड़कर हिन्दुस्तान के पति होने की सूचना का बारहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इकसठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सक नभ हय बसु ससि समय, इत नेपालिन आइ।
नगरकोट लग अमल निज, किन्नो बल अधिकाइ॥ १॥

तनया दै रनजीत तब, सिख करि स्वीय सहाय।
नगरकोट तब तास नृप, रक्ख्यो सह बलराय॥२॥

प्रतिबल इम नेपाल के, बढत उहाँ लग जानि।
जयकरि सप्तम जेनरल, प्रद्रुत किय अमि पानि॥ ३॥

तिनके रक्ख्यो पुब्ब तट, काली सरिता केर।
पच्छिम तट लग कंपनी, जित्ते सब करि जेर॥ ४॥

संसारादिकचंद सो, नगरकोट नरनाह।
जो इम सिख रनजीत को, स्वसुर बन्यो अ-सिपाह॥ ५॥

हे राजा रामसिंह! विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सत्तर में नेपालियों ने अपनी ताकत के बल पर नगरकोट तक के क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। तब नगरकोट के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह सिक्ख राजा रणजीतसिंह से सम्पन्न कर उसे अपना रक्षक बनाया और इसी के बल के सहारे अपना नगरकोट बचाये रखा। इधर नेपाल के बल को इधर बढता देख कर अंग्रेजों

के सप्तम जनरल (हेस्टिंग) ने तलवार उठाई और उन्हें हरा कर वापस खदेड़ा। नेपालियों को तब अंग्रेजों ने काली नदी के पूर्व तट तक ही सीमित रखा और काली नदी के पश्चिम तट से इधर का क्षेत्र अंग्रेजों ने अपने अधिकार में किया क्योंकि नगरकोट का राजा संसारचन्द्र जो रणजीतसिंह का श्वसुर बना वह बिना सेना वाला था अथवा अल्प बल वाला था।

इत लखनेऊ याहि सक, अलीसहादत अंत।
तस लघु सुत बैठो तखत, पहँचि थान परजंत॥ ६॥

आगामीर स नाम इक, हो तस हुक्का भृत्य।
करि दृढ मन ताके कहैं, किय दोउन यह कृत्य॥७॥

अंगरेजन रक्खे उहाँ, राजद्वार सब रुद्ध॥
चढिग जए तउ कोट चढि, पहुँचे अवधि प्रबुद्ध॥८॥

तरजि साहब हि तेग गहि, आगा मंत्र अधीन।
हैदर अंत अधीस हुव, दिपत गाजियुद्दीन॥ ९॥

उक्त सकहि प्रभु सुनहु इत, जौधनैर जयनैर।
परनि उभै नृप परसपर, बनैं सुहद तजि बैर॥१०॥

इधर विक्रम संवत के वर्ष अठारह सौ सत्तर में लखनऊ नवाब शहादत अली का देहान्त हो गया तब उसकी जगह उसका छोटा बेटा तख्तासीन हुआ। इस नये नवाब का एक हुक्का मित्र मीर आगा नामक था। इसकी राय से दोनों सहमत हुए फिर अपना मन दृढ़ कर उन दोनों ने मिल कर यह कृत्य किया। अंग्रेजों ने सारे राजद्वार (राज्य में घुसने के द्वार) बंद कर रखे थे पर ये दोनों कोट पर चढ़ कर जीते और अवध तक पहुँच गए। मीर आगा की मंत्रणा स्वरूप अंग्रेज साहिब की तर्जना करते हुए इन दोनों ने अपने दल के साथ तलवार उठाई और अन्ततः अंग्रेजों से लड़कर हैदर वहाँ का शसक बना जो गाजीउद्दीन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हे राजा रामसिंह! इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ सत्तर में जोधपुर के राजा और जयपुर के राजा दोनों परस्पर एक दूसरे के यहाँ विवाह रचा कर एक दूजे के सुहृद बने। उन्होंने अपने मध्य का वैर भाव छोड़ दिया।

ए निज निज सीमा अवधि, द्वै संक्रमि कुलदीप।
रूपनगर मान सु रह्यो, मरवा जगत महीप॥११॥

सुरहि कुमरि तँहँ निज सुता, व्याहि मान बसुधेस।
अप्प स्वसुर व्है आदर्यो, जामाता जगतेस॥१२॥

निज भगिनी जगतेस नृप्प, चंद्रकुमरि हित चाहि।
मरवा बुल्लि सु मानकौं, बिहित काल दिय ब्याहि॥१३॥

पति रट्ठोरन मान पहु, भयो स्वसुर अरु भाम।
जमाता सालक जगत, कूरम हुव हित काम॥१४॥

अह अष्टमि भद्दव असित, व्याह्यो मान बहोरि।
नवमी दिन कछवाह नृप, जगतसिंह पट जोरि॥१५॥

दोनों राजा अपने अपने राज्य के सीमावर्ती गाँवों में आए। इनमें से जयपुर का राजा जगतसिंह तो जोधपुर की सीमा के समीप मरवा नामक गाँव में शिविर लगा कर ठहरा। वहीं जोधपुर के राजा मानसिंह ने आकर रूपनगढ़ में तंबू गाड़े। यहाँ जोधपुर के राजा मानसिंह ने अपनी पुत्री सुरहिकुमारी का विवाह जगतसिंह के साथ करवाया। इस तरह श्वसुर बन कर राठौड़ राजा ने कछवाहा राजा को अपना दामाद बना कर आदर दिया। उधर राजा जगतसिंह ने अपनी बहिन चन्द्रकुमारी का विवाह जोधपुर के राजा मानसिंह के साथ मरवा नामक गाँव में बुला कर सम्पन्न किया। इस तरह जोधपुर का राठौड़ राजा जयपुर के राजा का श्वसुर और बहिनोई बना तो कछवाहा राजा जगतसिंह जोधपुर के राजा का दामाद और साला बना। भाद्रपद माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन राजा मानसिंह ने शादी की वहीं नवमी तिथि के दिन राठौड़ कुमारी से गठजोड़ा जोड़ कर कछवाहा राजा ने विवाह रचाया।

मान सिविर कूरम गयो, धित एकासन थान।
तँहँ बेठार्यो तुल्य गिनि, मीरखान गहि मान॥१६॥

तदनंतर आतहि तहाँ, कृष्णगढ प कल्यान।
बैठार्यो जगतेस गहि, एकासन अति मान॥१७॥

इक्क तखत बैठे चउ हि, ए दुव सम्मुह अत्थ।
न रुच्यों पै कूरम नृपहि, जवन तुल्यपन जत्थ॥१८॥

पत्तो कूरम सिविर पुनि, मीरखान जुत मान।
तखत न रक्ख्यो कुम्म तँहँ, बैठे इतर बिधान॥१९॥

सक उक्त हि बून्दीस कै, पंचम सुत गोपाल।
सप्तम रानी कै भयो, इस सित तेरसि काल॥२०॥

जातक्रियादिक रीति जह, सब सद्धिय नरनाह।
दान बधाई बहुल दिय, रोचक उच्छव राह॥२१॥

विवाह के बाद राजा मानसिंह के शिविर में जब कछवाहा राजा गया तो जोधपुर के राजा ने उसे एक ही आसन पर बिठाया। वहीं उसे मीरखान को भी बराबर का मान कर उसी गद्दी पर बिठा दिया। इसी समय वहाँ किशनगढ़ का राजा कल्याणसिंह आ निकला तो कछवाहा राजा ने उसका हाथ पकड़ कर उसी आसन पर बिठा दिया। इस तरह एक ही गद्दी के आसन पर चारों जन बैठे जिनमें मीरखान और कल्याणसिंह सामने बैठे लेकिन कछवाहा राजा को एक यवन को बराबर में बिठाना अच्छा नहीं लगा। अगले दिन राजा मानसिंह जब मीरखान को साथ ले कर कछवाहा राजा जगतसिंह के शिविर में आया तो उसने बैठने की व्यवस्था ही बदल दी। जयपुर के राजा ने वहाँ तख्त ही नहीं रखा जिससे वह यवन बराबर बैठ सके। इधर बून्दी में विक्रमी संवत् के इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ सत्तर में हाड़ा राजा विष्णुसिंह के पाँचवे पुत्र गोपाल सिंह ने जन्म लिया। अश्विन माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को राजा की सातवीं रानी के गर्भ से यह कुमार जन्मा। राजा ने तब इस सद्यजात कुमार की जातक्रिया सम्पन्न करवाई और इस अवसर पर उत्सवपूर्वक बधाई और दान में बहुत सारा धन खर्च किया।

पादाकुलकम्

इत जैपुर ससि हय बसु इक सक, छलि जगतेस भूप उद्धत छक।
रसक पूर गनिका अति मानी, रानिन मुख्य करी जो रानी॥२२॥

ताहि महारानी पद दीनौं, अधराजनि उपटंकहु कीनौं।
किते कहत याही सक अंतर, पच्छिम बढे गोरखे बल पर॥२३॥

तिनकौं जीति कंपनी के दल, काली नदी उतारे हत बल।
उक्त सकहि लरि इत अंग्रेजन, लंका द्वीप अमल किय अप्पन॥२४॥

बिक्रम राजसिंह अभिधा को, त्रासित करि काढ्यो नृप ताको।
तह कोलंब राजधानी पुर, धरयो स्वीय हाकिम थंभन धुर॥२५॥

उधर विक्रमी संवत के वर्ष अठारह सौ इकहत्तर में जयपुर के छली और दर्प से भरे राजा जगतसिंह ने गणिका रसकपूर को अत्यधिक सम्मान देते हुए उसे अपनी सभी रानियों में मुख्य रानी का दर्जा दे दिया। रसकपूर को महारानी का खिताब देकर उसे सारी रानियों की स्वामिनी बना डाला। कुछ लोगों का कथन है कि इसी वर्ष अर्थात् इकहत्तर में पश्चिम में गोरखे बढ़ आए तब ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने उन्हें हरा कर काली नदी के उस पार तक खदेड़ दिया। इसी वर्ष में अंग्रेजों ने लड़ कर लंका द्वीप पर अपना अधिकार जमाया। विक्रमराजसिंह नामक वहाँ के राजा को हरा कर वहाँ से भगा दिया और कोलंबो नामक नगर जो वहाँ की राजधानी थी उसमें अपने अंग्रेज हाकिम नियुक्त किए।

इत संबत दुव मुनि अष्टादस, बनि नृप मान जोधपुर परबस।
इंदराज जिम राज्य अवेरयो, हित नय आय उचित व्यय हेरयो॥२६॥

सो प्रबंध नृप कौं न सुहायो, अक्खिय इम मरनहि मम आयो।
इंदराज सत्रुन तब अक्खिय, सिंघी हम हनिहैं प्रभु सक्खिय॥२७॥

भुप कहयो यौंतो नहिं भावहिं, मीरखान प्रति सूचि मरावहिं।
तब किय मीरखान प्रति सूचन, जंपिय जवन कहहु नृप मो सन॥२८॥

कै लिखि देहु हनैं तब तो हम, सुतो नृपहिं न रुची बंचक सम।
देवनाथ गुरु करि संकोचित, सपथ करे पहिलैं तिम सोचित॥२९॥

इधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बहत्तर में जोधपुर का राजा मानसिंह पराये लोगों के वश में हो गया। वहाँ के मंत्री इन्द्रराज सिंघी ने जोधपुर के राज्य को अपनी देखरेख और नीति के अनुसार आय-व्यय का उचित अनुपात रखते हुए तरक्की दी पर उसका यह नया प्रबन्ध राजा मानसिंह को रास नहीं आया। इधर खर्चे पर अंकुश लगाने और उधर राजा का स्वभाव खूब दान करने का होने के कारण नया प्रबन्ध रास आने वाला भी नहीं था। यह देख कर राजा ने कहा मेरा हाथ रुकने का अर्थ है मेरी मृत्यु आ गई। तनातनी की इस स्थिति का फायदा उठाते हुए इन्द्रराज सिंघी से जलन

रखने वालों ने राजा से कहा आप मरने की क्यों सोचते हैं हम उस सिंघी को मार देते हैं। राजा को उनका यह प्रस्ताव जँचा नहीं उसने कहा कि मैं मीरखान से कह कर इसे मरवा दूँगा। तब मीरखान के पास यह सूचना भेजी गई इस पर यवन ने प्रत्युत्तर दिया कि अपने राजा से कहो कि वह स्वयं मुझसे यह करने को कहे। यदि नहीं तो मुझे इस कार्य के करने का लिखित में दे दे पर लिख कर देना उस कपटी राजा को जँचा नहीं क्योकि पूर्व में सिंघी ने मंत्रीपद लेने से पहले ही राजा के गुरु देवनाथ को जालंधरनाथ की शपथ दिलवाई थी। राजा उस शपथ की बात का स्मरण कर सोच में पड़ गया।

छत्रसिंह निज कुमर भेजि तँहँ, मारन सचिव कहाई ता पँहँ।
मिच्छ सु सुनत लैन मासिक मिस, दुर्ग मॉहिं पठये भट नृप दिस ।।३० ।।

रोकि द्वार कीनौं तिन कलकल, छितिप सचिव पठ्यो तब तिंहि छल।
रोक्यो गुरु नृप तउ हठ रंगहि, सिंघी जात नाथ लिय संगहि ।।३१ ।।

मोतीहमहल मॉहिं तिन मिच्छन, जातहि दुव हि अमंतु हनैं जन।
बचे मिच्छ अंतर नृप मत बल, चिर करि जियत गये अपनैं दल ।।३२ ।।

धर्म सपथ इम लोपि धराधव, भाखि अलीक बिगार्‌यो निज भव।
छन्न रह्यो न मान कृत यह छल, चल्यो प्रकट जिततित व्है चंचल ।।३३ ।।

तब राजा ने बीच का रास्ता निकाला और अपने कुमार छत्रसिंह को मीरखान के पास भेजा और कहलाया कि तुम आ कर मेरे मंत्री इंद्रराज को मार डालो। यवन ने यह सुनते ही तनख्वाह लेने के बहाने राजा के पास दुर्ग में अपने मारक योद्धा भेजे। उन्होंने दुर्ग में जाते ही दरवाजा बंद कर भीतर झूठ-मूठ का कोलाहल मचाया जिसे सुनकर राजा ने तुरन्त दरियाफ्त करने को अपने सचिव इन्द्रराज को भेजा। सिंघी अपने साथ राजा के गुरु देवनाथ को भी लेकर जाने लगा तब राजा ने हठपूर्वक अपने गुरु को वहीं रोक लिया। मोतीमहल में इन्द्रराज सिंघी के प्रवेश लेते ही मीरखान के भेजे उन वीरों ने उसे निरपराध मार डाला। वे यवन दुर्ग में ही रह गए पर राजा की सहमति से कार्य करने वाले वे थोड़े समय तक वहीं दुबके रहे फिर थोड़े समय बाद किले से जीवित ही निकल कर वे अपने दल में चले गए। इस तरह राजा मानसिंह ने धर्मपूर्वक ली हुई अपनी ही शपथ को लोपा और झूठ बोल कर

अपना जन्म बिगाड़ा। लेकिन राजा मानसिंह का यह छल अधिक देर तक गुप्त न रह सका वह सभी के समक्ष हो गया।

दै बिस्वास सपथ मारे दुव, हाहाकार जोधपुर इम हुव।
ओर मग्ग भास्यो न नृपहिं अब, तक्कि कपट उनमत्त बन्यौं तब ।।३४।।

इक्क कोन रहिबो निज आदरि, कुहक बेस तैसोहि लयो करि।
जानि यहहि पंचन निहचै जिय, कुमर छत्रसिंह सु तब नृप किय ।।३५।।

किय कतिकन पुहवीस परिच्छा, दीसी तदपि गहिलपन दिच्छा।
सर्पहु तँहँ छोरे कति सूचत, गहि लिय तेहु डर्‍यो नहिँ छलगत ।।३६।।

अधिक बिपन्न रह्यो नृप ऐसैं, परिजन मुख कोउ न तँहँ पैसैं।
जो प्रभुकी सस्सू तस रानी, सेवत रही सोहि भटियानी ।।३७।।

इन्द्रराज सिंघी की हत्या से जोधपुर नगर में हाहाकर मच गया कि राजा और गुरु दोनों ने शपथपूर्वक विश्वास दिला कर उसे मारा है। इस संदर्भ में जब राजा को अपने बचाव का और कोई मार्ग नहीं सूझा तो उस कपटी राजा ने अपने पागल हो जाने का नाटक किया। उसने महल के एक कोने के एकान्त में चुपचाप रहना शुरू किया और अपना भेष भी उन्मादियों जैसा बना लिया। राज्य के मुख्य पंचों को जब इस बात का विश्वास हो गया कि राजा पागल हो गया है तो उन्होंने कुमार छत्रसिंह को जोधपुर का नया राजा बना दिया। इससे पूर्व कई लोगों ने राजा के रोग की परीक्षा की पर सभी को राजा के कृत्यों में बावलापन ही नजर आया। कुछ लोगों ने परीक्षा करने को कमरे में सर्प छोड़ा पर कपटी राजा तनिक भी डरा नहीं और उसने सर्प को पकड़ लिया। ऐसा विपदाग्रस्त होकर राजा कई दिनों तक रहा उसके अपने पास के मनुष्य भी (परिजन) भी उसके पास नहीं जाते थे। हे राजा रामसिंह! जो आपकी सास है वही भाटी वंशवाली रानी एकमात्र अपने पति की सेवा में निरत रही।

पै तानैहु न आसय पायो, दृढ छल ऐसो बेस दुरायो।
सुभट प्रताप बूड़सू सासक, यह हो जदपि अधीस उपासक ।।३८।।

जानैं तदपि तथा जड़ जानिय, खेटक खग्ग उठाइ रु आनिय।
दुव हि करे पुनि कुमर निवेदन, भट सब मिले रह्यो इम भेद न ।।

कतिकन परनारिन रस कहि कहि, चपल कुमर मोर्यो उत चहि चहि।
उपदसादि रोग प्रकटे इम, कामुक चिर बैभव बिलसैं किम ।।४०।।

भनैं सकहि प्रभु के कवि भूवर, पायो भव असितादि उज्ज पर।
कवि जनकहु श्रद्धोचित मह किय, दान द्विजादि बुधन समुचित दिय ।।४१।।

उस कपटी राजा मानसिंह ने अपने पागल होने का ऐसा नाटक किया कि उस रानी (भटियानी) को भी पता नहीं चला। बूड़सू का जागीरदार और जोधपुर का सामन्त प्रतापसिंह जो राजा मानसिंह के खास खैरख्वाहों में से एक था उसे भी इस बात की भनक नहीं लगी कि उसका स्वामी स्वस्थ है। वह भी उसे बावला समझ कर एक दिन उसकी ढाल-तलवार उठा लाया। दोनों चीजें ला कर उसने कुमार छत्रसिंह को दी। सभी सामन्तों को पता चल गया और अब राजा की बीमारी भेद की बात नहीं रह गई। इसी समय कुछ लोगों ने कुमार को पराई स्त्रियों के संसर्ग में रस की बात बता कर चपल कुमार के चित्त को इस ओर मोड़ा। यौवनावस्था और ऊपर से निरंकुशता इससे कुमार के शरीर पर थोड़े ही दिनों में रतिरोग (आतशक) के लक्षण प्रकट होने लगे। सच ही कहा गया है कि कामुक व्यक्ति वेभव का सुख अधिक नहीं भोग सकता। हे राजा रामसिंह! इसी विक्रमी वर्ष अर्थात् अठारह सौ बहत्तर में आपके कवि (ग्रंथकार सूर्यमल्ल) ने कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष की प्रथमा तिथि के दिन जन्म लिया। इस अवसर पर कवि के पिता (चंडीदान) ने अपनी श्रद्धा के अनुसार उचित उत्सव किया और ब्राह्मणों पंडितों को समुचित दान दिया।

इत बुंदिय सक गुन हय बसु इक, असित सहस्य मास तिथि आदिक।
सरसरंग नामक खवासि सुव, बिनयसिंह बुंदीस कुमर हुव ।।४२।।

इहिं सक इत पुण्यापुर अंतर, बाजेराय पेसवा भूवर।
अंग्रेजन को अमल उठावन, इच्छा करि भू सब अपनावन ।।४३।।

तत्थ रजींडन्‌टी डेरन तक, अनल लगायो प्रेरि अचानक।
समर रच्यो कंपनी सिपाहन, इत उत बहुत झरे उच्छाहन ।।४४।।

दोलतरावहु बैर दिखावन, पठयो दल नेपाल मेलपन।
पत्र किमहु ते इन पकराये, अंग्रेजन गोचर तब आये ।।४५।।

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ तिहत्तर के पौष माह के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह की सरसरंग नामक पासवान की कोख से विनयसिंह नामक कुमार ने जन्म लिया। इसी वर्ष अर्थात् विक्रमी के तिहत्तर में पुणे के भूपति पेशवा बाजीराव ने अंग्रेजों का अधिकार हटा कर उस क्षेत्र की भूमि को अपने अधिकार में करने की सोची और इसके लिए अपने विश्वस्त व्यक्तियों को प्रेरित कर अंग्रेज रेजिडेन्ट के शिविर में अचानक भीषण आग लगवा दी। इससे खफा हो कर अंग्रेज कम्पनी के सिपाहियों ने जोरदार युद्ध रचा जिसमें इधर और उधर दोनों पक्षों के कई योद्धा मारे गए। इसके बाद दौलतराव ने अंग्रेजों से वैर निभाने के लिए अपना एक दल नेपाल की सहायता करने भेज दिया। इस बात की भनक अंग्रेजों को लग गई। उनके गुप्तचरों ने गुप्त पत्र पकड़ लिए और सारी योजना प्रकट हो गइ।

आश्रम हय बसु ससि सक अंतर, सब दिस जित्ति कंपनी संगर।
लिय अजमेर गंजि मरहट्ठन, पायउ तजि लाहोर जईपन।।४६।।

खानकपूर रु मीरखान दुव, हुलकर भट तासौं बदलत हुव।
तिनमैं मीरखान इहिं अंतर, सजि तोपन जैपुर किय संगर।।४७।।

ताको छिन्नि तोपखाना तब, अंग्रेजन तस मद मेट्यो अब।
पुनि इतउत लुंटक जे पाये, ते सब ओरहि वृति लगाये।।४८।।

संध्याकेहु मेटि मद साहस, निखिल करे रजवारे निज बस।
लॉर्ड मारक्विस हेस्टिंगज जँहँ, क्रम सप्तम जेनरल हुतो तँहँ।।४९।।

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ चौहत्तर में तो ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना ने सभी ओर के युद्ध जीत लिये। अंग्रेजों ने मराठों को हरा कर अजमेर अपने अधिकार में कर लिया और इसी तरह लाहौर पर भी उनका अमल हो गया। इसी समय कपूरखान और मीरखान दोनों जो होल्कर के सामन्त थे अपने स्वामी से बदल गए। होल्कर के विरोध में हो कर मीरखान ने तुरन्त अपने तोप खाने की सहायता से जयपुर आ कर युद्ध आरम्भ किया। अंग्रेजों ने तब आ कर मीरखान से उसकी तोपें छीन ली और उसके दर्प को

चूर-चूर कर दिया। यही नहीं इस समय जो और भी लूटेरे थे उन सभी पर अंग्रेजों ने अंकुश लगा दिये और उन्हें दूसरे कार्यों में प्रवृत किया। इसी तरह अंग्रेजों ने तब सिंधिया के दर्प और साहस को ठिकाने लगा दिया और सारे रजवाड़ों को अपना मातहत बना दिया। उन दिनों कम्पनी का सातवां जनरल लार्ड मार क्विस हेस्टिंग्स (लार्ड हेस्टिंग्स) था जो रण विद्या में काफी चतुर था।

तिहिं पठयो रजवारन अंतर, टाड नाम पहिलो अंजट बर।
कोटा तिहिं झल्ल सु सासित किय, जाजपुरहु रानहिं दिवाइ दिय।।५०।।
पहिलैं सक अट्ठावन अंतर, भीम रान रनतैं भजाइ अर।
भिल्लहड़ा लग जित्तिलई भुव,तबतैं जाजपुर सु इतको हुव।।५१।।
सोलह अब्द अमल कोटा किय, अब जालम रानहिं पच्छोदिय।
कोटा के धन करि पहिले क्रम, ईटुंदा बंधिय गढ उत्तम।।५२।।
तँहँ भट विष्णुसिंह सगताउत, जालम रक्ख्यो निचित चक्र जुत।
मारे जिहिं सहँसन रन मैनैं, पारे कुंठ रहे नहिं पैनै।।५३।।

लार्ड हेस्टिंग्स ने तब राजपूताने के रजवाड़ों पर पहला श्रेष्ठ एजेंट जेम्स कर्नल टॉड को बना कर भेजा। इसने यहाँ आते ही झाला जालिमसिंह पर दण्ड किया और अंपने निर्देशों से उदयपुर के महाराणा को जहाजपुर का परगना वापस दिलवाया। पूर्व में विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ अठावन में उदयपुर के महाराणा भीमसिंह को रणभूमि से भगा कर मेवाड़ की भूमि भीलवाड़ा नगर तक की जीत ली थी। तब से जहाजपुर का परगना इनका हो गया था। पूरे सोलह वर्ष तक जहाजपुर के परगने पर कोटा का अमल रहा उसे अब जालिमसिंह ने महाराणा को लौटाया। पहले कोटा ने इसे अपना धन मानते हुए ईंटुंदा नामक गाँव में एक गढ़ का निर्माण करवाया था और इस दुर्ग की रखवाली हेतु विष्णुसिंह शक्तावत को अपने दल सहित जालिमसिंह ने नियुक्त किया था। इस विष्णुसिंह ने इस क्षेत्र पर अपना अमल बरकरार रखने को हजारों मीणों को युद्ध में मार कर वे जो पैने थे उन मीणों को भोथरा बनाया।

इम तागढ जुत जाजपुर सु अब,रान तंत्र हुव सहित साज सब।
उक्त सकहि चितपावन द्विज इत, बाजेराय पेसवा भय जित ।।५४ ।।

पुण्या तजि अंग्रेजन पय परि, थी अब ब्रह्मावर्त्त रहन धरि।
पाइ द्रम्म बसु लक्ख अब्द प्रति, रह्यो बिठूर फेलि भोजन रति ।।४५ ।।

जिहिँ चाकर हुलकर संध्या सम, पिंसन लहि सु रह्यो इम अप्रम।
हारि महीदपुरहि हुलकर बल, इनके बस हुव द्रुण कि बिना अल ।।५६ ।।

महिप नागपुर को तजि निज महि, गो भजि सरन जोधपुर भय गहि।
मान नृपहिँ कुछ प्रबल न मान्यौं, पै अंग्रेजन नय पहिचान्यौं ।।५७ ।।

अब उस गढ़ सहित पूरे जहाजपुर परगने पर महाराणा का अधिकार हो गया। इसी वर्ष अर्थात् विक्रमी के चौहत्तर में चितपावन ब्राह्मण बाजीराव पेशवा भयभीत हो कर पुणे को छोड़कर अंग्रेजों के चरणों में आ गिरा। उसने अब ब्रह्मावर्त्त देश में रहने का विचार किया और प्रतिवर्ष अंग्रेजों से आठ लाख रुपये के हिसाब से लेना तय कर उच्छिष्ट भोजन में प्रीति लगा वह बिठूर में आ रहा। जिसके सिंधिया और होल्कर जैसे ताकतवर चाकर थे वह अब अंग्रेजों से पेंशन लेकर उत्कर्षतारहित हो रहा। इधर महीदपुर के युद्ध में हार कर होल्कर अपने बल को त्याग कर अंग्रेजों के वश में हो रहा। उसकी स्थिति ठीक उस बिच्छु की तरह हो गई जो अपना डंक गवाँ बैठा हो। इसी तरह नागपुर का राजा भी अपनी भूमि का त्याग कर अंग्रेजों के डर के मारे जोधपुर के राजा की शरण में आ रहा। वह भी जोधपुर के राजा मानसिंह को प्रबल मान कर नहीं आया था पर वह अंग्रेजों के विस्तार की नीति को भांप गया था।

वाको मुलक बहुत लहि अप्पन, थिर कछुमैं तस कुल किय थप्पन।
सक उक्त हि नवमी पोस असित, इन जैपुर जगतैस मर्‍यो इत ।।५८ ।।

गनिका उक्त आदि तरुनी तह, दुव चालीस जरी नृप बसु सह।
उक्त सकहि लाहोर ईस इत, सिख रनजीत अरिन करि सासित ।।५९ ।।

नाम मुजफ्फरखान महामति, प्रवन हनि सु मुलतान दुर्गपति।
ताके पुत्रहु मारि घनैं तब, अमल कर्‍यो मुलतान दुर्ग अब ।।६० ।।

ताकौं मिल्यो प्रचुर धन तामैं, सिख इम बढ्यो अधिक सुखमामैं।
सो कसमीर हारि इक संगर, दूजो रन तरिहै पुनि दुस्तर॥६१॥

उसके मुल्क का बड़ा हिस्सा अपने अधिकार में कर अंग्रेजों ने रखा और थोड़े से हिस्से में राजा के कुल के लोगों को स्थापित रखा। इसी वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् के अठारह सौ चौहत्तर के पौष माह के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि के दिन जयपुर का कछवाहा राजा जगतसिंह चल बसा। रसकपूर गणिका आदि बयालीस स्त्रियां जल मरीं। इसी वर्ष में लाहोर के राजा रणजीतसिंह ने अपने शत्रुओं को दण्डित किया। उसने मुल्तान देश के दुर्गपति बुद्धिमान मुजफ्फर खान को युद्ध में हरा दिया। मुजफ्फर खान के कई पुत्रों को मार कर राजा रणजीतसिंह ने मुलतान के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस दुर्ग में सिक्ख राजा के बहुत सारा धन हाथ आया इससे वह अपनी शोभा में वृद्धि कर और अधिक शोभायमान हुआ। वह कश्मीर के एक युद्ध में हार चुका था पर अब आगे दूसरे भीषण संग्राम में उसकी जीत होगी।

जगतसिंह जैपुर नृप कै सुत, उज्झत बपु न हुतो बिधि अद्भुत।
मोहन नाम सचिव तब नाजर, नरउर द्रंग पठाइ चतुर चर॥६२॥

नरउर नृप को भ्रात मनोरथ, तस सुत मान बुलाइ नीति पथ।
जैपुर पट्ट धर्‌यो सु मान जब, रानिन कै जान्यौं न गर्भ तब॥६३॥

पहिलैं जालम बिबिध जत्न किय, बुंदीसहिँ निज सुता व्याहि दिय।
सो जब मरी तबहि सौं जो सठ, हुव बैरी बुंदी को अतिहठ॥६४॥

जिहिँ बस रह्यो जाजपुर जोलौं , तिहिँ लुट्टी बुंदी भुव तोलौं।
द्रंग सथूर बरोदा आदिक, बुंदीपुर ढिग लौं प्रतिबादिक॥६५॥

कटक भेजि सब लट्टिलयो कर, पुरबिच अमल रह्यो नृप को पर।
अप्प मुदित तदपि न भय आन्यौं, जालम सदा जथा नृत जान्यौं॥६६॥

जयपुर के राजा जगतसिंह ने जब अपना शरीर त्याग उस समय तक उसके कोई पुत्र नहीं था इसलिए मोहन नामक नाजर ने तब अपने दूत नरवर नगर में भेजे और वहाँ से नरवर के राजा के भाई के पुत्र मानसिंह को नीतिपूर्वक बुलवाया। उसके आने पर मानसिंह को जयपुर की राजगद्दी पर

बिठाया गया क्योंकि इस समय तक राजा जगतसिंह की रानियों में से किसी को गर्भ रहा नहीं सुना था। पूर्व में झाला जालिमसिंह ने अथक प्रयत्न कर बून्दी के राजा को अपनी बेटी ब्याही थी पर जब से उसकी बेटी मरी तभी से वह दुष्ट फिर से हठपूर्वक बून्दी का शत्रु बन गया। जब तक जहाजपुर का परगना उसके अधिकार में रहा अर्थात् सोलह वर्षों तक उसने बून्दी की भूमि को लूटा था। सथूर, बरोदा आदि नगरों सहित बून्दी नगर तक के गाँवों का कर (हासिल) उस विरोधी ने सेना भेज कर वसूल किया पर एक बून्दी नगर पर अवश्य हाड़ा राजा विष्णुसिंह का अमल बरकरार रहा। हाड़ा राजा तब भी भयभीत नहीं हो कर मुदित बना रहा। उसने जालिमसिंह को वह जितना झूठा था उतना झूठा ही समझा।

उक्त सकहि झल्ल वह जालम, लखि सु अंगरेजन को आलम।
बुंदी सन पहिलैं बंचक बढि, अंगरेज साधे छल नय पढि ॥६७॥

अधिक मुल्ल दै बहुत उपायन, पिहित लुभाइ मिलाइ धूर्त पन।
जन अजान मानैं छल जैसैं, अँगरेजन अपनैं करि अैसैं ॥६८॥

बुंदी के भट बधुं सदासौं, इंद्रगढा दि फोर उपदा सौं।
कोटा बस ए कुहक लिखाये, सब अंजट मुख तिमहि सिखाये ॥६९॥

इंद्रगढ रु खातोली ए दुव, लुब्भि इंद्रसल्लोत भिन्न हुव।
बलविन द्रंग बैरिसल्लोत सु, आंतरदा मुहुकमसिंहोत सु ॥७०॥

करबाट सु पिप्पलदा जुग जुत, ए तीन हि फोरे हरदाउत।
बंधु सु भट जालम प्रतिबादिक, दै इच्छित फोरे इत्यादिक ॥७१॥

उक्त वर्ष अठारह सौ चौहत्तर में उस कपटी झाला जालिमसिंह ने अंग्रेजों का वातावरण देख कर बून्दी से भी पहले जा कर अंग्रेजों को छल की राह से जा साधा। उसने बहुत सारे बहुमूल्य उपहार दे कर अंग्रेजों को गुप्त रूप से अपना बना लिया। उस धूर्त ने इस तरह अंग्रेजों से अपने सम्बन्ध बनाये कि उन्हें देख कर लोगों को लगे कि अंग्रेज तो उसके साथ हैं। उसने बून्दी के जो सदा से उमराव रहे ऐसे इन्द्रगढ़ के जागीरदार को भेंट देकर राजा से विमुख कर दिया। उस कपटी ने इन्द्रगढ़ आदि को कोटा का मातहत दिखाया। इसके लिए उसने वहाँ के जागीरदारों को सिखाया कि एजेन्ट के समक्ष आप

लोग यही लिखवाना। इस तरह लोभ में आकर बून्दी के दो उमराव जो इन्द्रगढ़ और खातोली के जागीरदार इन्द्रसलोत हाड़ा थे वे बून्दी से अलग हो गए। इनके अलावा कपटी झाला ने लोभ दिखा कर बलवनी के वैरिसालोत हाड़ा सामन्त और आंतरदा के मुहुकमसिंहोत हाड़ा सामन्त के साथ करवाट, पिप्पलदा के हरदावत हाड़ा सामन्त इन तीनों को भी बून्दी से विमुख कर दिया।

बुंदी तैं न मिल्यो महत्व जिम, सबको बहुत बढायो तिम तिम।
गहि कुलोभ अैसो बंधव गन, परबस भये निबहि गनिकापन ।।७२ ।।

आवत जात बैठत रु उठ्ठत, जनम मरन सेवन मुख संगत।
समुख जान मुख रीति बढावन, कोटा रहत नित्य धन पावन ।।७३ ।।

अधिक पटाहु सबन हित अप्पन, सब पहिलैं सब देय समप्पन।
इत्यादिक अधिकार अप्पि इम, जालम स्वबस करे सब जिम तिम ।।७४ ।।

कोटा बस तिनसोहु कहाइ रु, जिम अंग्रेज प्रबोधे जाइ रु ।
जालम छल पीछैं यह जान्यौं, पछि तैबोहि अंजट प्रमान्यौं ।।७५ ।।

उपरोक्त सामन्तों को जितना महत्व बून्दी से नहीं मिलता था उससे अधिक महत्व दिलाने का लालच देकर झाला ने उन्हें तोड़ लिया। कुलोभवश हो कर हाड़ा राजा के इन बांधवों ने भी गणिकायन (वैश्यावृति) का प्रदर्शन किया और परवश हो गए। आते, जाते, उठते, बैठते, जन्म, मरण व और पेशवाई में सम्मुख जाने के कायदे बढवा कर वे कोटा के साथ रहने पर नित्य धन पाएँगे। यही नहीं सभी की जागीर के पट्टे में इजाफा होगा। इस तरह उनके कई लालच झाला ने पहले ही पूरे कर दिये और सभी को कोटा का मातहत बना दिया। पहले उसने इन सभी सामन्तों से ऐसा कहलवाया कि वे कोटा के मातहत हैं और फिर झाला ने जा कर अंग्रेजों को समझा दिया कि मामला क्या है और ये सामन्त क्या चाहते है ? यह अलग बात है कि बाद में तो अंग्रेजों ने भी जालिमसिंह द्वारा किये गये छल को पहचान लिया और एजेंट को पछताना पड़ा।

पै इक बचन अैन इनके पर, यातैं पलटि सके नहिं अवसर।
इनको हितहु झल्ल सद्धयो अति, हुलकर रोकि बचाई संहति ।।७६ ।।

बहु उपकार ठानि यह या बिधि, निहचै इनहि झल्ल भास्यो निधि।
इम तदीय छल मैं ए आये, पुनि पुनि जाति जदपि पछिताये ॥७७॥

उत रहि तदपि पिक्खि नय अंसहिं, बलि दिय बंटि भूहु तस बंसहिं।
इम नत सिर जालम उपकारन, अंग्रेजहु प्रबिसे रजवारन ॥७८॥

उक्त सकहि बुंदी तब आये, बुंदी पहु सब मान बढाये।
तुलाराम मंत्री द्विज नागर, प्रभु सम्मति लहिकैं नय तत्पर ॥७९॥

चूंकि अंग्रेजों में वचन निभाने का अद्भुत गुण था और वे अवसर पा कर पलटने वालों में से नहीं थे । फिर झाला जालिमसिंह ने अंग्रेजों का बहुत हित साधा था। इस झाला ने ही होल्कर की सेना को रोक कर अंग्रेजों के समूह के प्राण बचाये थे। ऐसे सारे उपकारों का स्मरण कर अंग्रेजों ने झाला को ही अपनी निधि समझा। यही समझ कर वे इस झाला की छल कपट में आ गए बाद में तो वे भी बहुत पछताए। यद्यपि मन से अंग्रेज झाला के पक्ष में थे फिर भी नीति के अंश को देख कर अंग्रेजों ने इधर के लोगों को भी भूमि बाँटी। इस तरह झाला के उपकारों के आगे नतमस्तक से अंग्रेजों ने रजवाड़ों के इस प्रदेश राजपुताने में प्रवेश लिया। विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ चौहत्तर में ही अंग्रेज बून्दी आये तब हाड़ा राजा ने उनका बड़ा सम्मान किया। बून्दी के सचिव नागर ब्राह्मण तुलाराम ने अवश्य अपने स्वामी की स्वीकृति ले कर नीति में तत्पर इस मंत्री ने अंग्रेजों को उलाहने दिये।

उपालंभ दीनौं अंग्रेजन, जो सुनि रहे ठगे जिम जे जन।
सूचित सक पंचमी माघ सित, अंगेजन सु करार लिख्यो इत ॥८०॥

भाख्यो हम ठिग झल्ल भ्रमाये, पुनि अब हेतु सत्य सब पाये।
बुंदी नृप हमरे हित बंछक, तिहिं झल्ल सु गोपित किय हम तक ॥८१॥

मोदित साहब टाड महामन, सह लिपि काल कियउ बुंदी सन।
नत करजोरि मन्त्रि महमानी, बहुदिन रहि नृप कित्ति बखानी ॥८२॥

सर हय अट्ठ इक्क पुनि संबत, इत रनजीतसिंह सिख उद्धत।
पुर लाहोर अधिप साहस परि, करि रन जय कसमीर लयो लरि ॥८३॥

मंत्री तुलाराम ने जब अंग्रेजों को उपालंभ दिये तो वे सभी कुछ सुन

कर ठगे से रह गये फिर अठारह सौ चौहत्तर के माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन बून्दी और अंग्रेजों के मध्य इकरारनामा लिखा गया। इस अवसर पर अंग्रेज हाकिम ने कहा कि हमें झाला जालिमसिंह ने भ्रमित किया लेकिन अब हम उन सारी बातों का कारण जान गए हैं। हम जानते हैं कि बून्दी के हाड़ा राजा हमारा हित सोचने वाले हैं, इस बात को उस झाला ने हमसे छिपाये रखा। महामना कर्नल टाड ने ऐसा कह कर लिखित कोलनामें पर हस्ताक्षर किये और विनम्रता के साथ बून्दी की मेहमानी स्वीकार की। टॉड यहाँ कई दिन ठहरा और उसने राजा की कीर्ति का बखान किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ पचहत्तर में लाहौर के सिक्ख राजा रणजीतसिंह ने उद्धत हो कर अपनी सेना के साथ हठपूर्वक लड़ कर कश्मीर को ले लिया।

बहुरि जुज्झि पेसोर कियउ बस, तँहँ कति मरे भजे रच्छक तस।
इह सेना काबल पुनि आई, लग्गि प्रसभ करि घोर लराई ॥८४॥

तब पेसोर छुराइ लयो तिन, खिज्जि पुनि सु लैहैं यह लहि खिन।
उक्त सकहि जैपुर पत्तन इत, संगत राध मास पच्छ ति सित ॥८५॥

नृप रानी भटियानी औरस, तनय भयो जयसिंह नाम तस।
मास च्यारि अरु दिवस सप्त मित, रह्यो मान गद्दी पर रोचित ॥८६॥

लखि यह साहब अलटरलोनी, हेरन तब होनी अनहोनी।
दिल्ली सन जैपुर आयो द्रुत, सत्य किमहु करि कथित भयो सुत ॥८७॥

इसके बाद रणजीतसिंह ने जूझ कर पेशावर को भी अपने अधिकार में लिया। इस भिड़ंत में कहते हैं कि वहाँ कई रक्षक मारे गए और कई भाग छूटे। वहाँ से उसकी सेना काबुल पर आई और यहाँ भी हठपूर्वक घोर घमासान किया पर यहाँ उसके हाथ से पेशावर वापस निकल गया और उसने खीझ कर प्रण किया कि मैं इसे ले कर रहूँगा। उधर जयपुर में इसी वर्ष अर्थात् अठारह सौ पचहत्तर के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन राजा जगतसिंह की भाटीवंशीय रानी (भटियानी) ने अपनी कोख से जयसिंह नामक राजा के औरस पुत्र को जन्म दिया। इससे जयपुर की गद्दी पर मानसिंह चार माह सात दिन की अवधि तक ही रह सका। जब कुमार जयसिंह

के जन्म की खबर फैली तो अंग्रेज हाकिम आल्टर लोनी को लगा कि अब अनहोनी होगी। वह यह सुन कर दिल्ली से सीधा जयपुर आया इस बात का पता लगाने को कि यह सत्य बात है कि नहीं ? और यह कुमार हुआ कैसे ?

रुप्पय पंच नित्य जीवन करि, मान सु दूर कर्‌यो मद संहरि।
द्रंग फेरि जयसिंह दुहाई, सुनृप कर्‌यो यह सबन सुहाई ॥८८॥

लखि सामोद नाह नाथाउत, राउल बैरीसाल बुद्धि जुत।
साहब ताहि मुसाहब कीनौं, निज संगहि नाजर वह लीनौं ॥८९॥

गो पच्छो इम अलटरलोनी, छोनिप सिसु हुव जैपुर छोनी।
तर्क तुरग बसु ससि सक अंतर, इत कोटा उम्मेद धरा बर ॥९०॥

बिधि अनुगत अब देह बिहायो, दुसह सोक तस झल्ल दिखायो।
जीवन लह्यो भूप इहिं जोलौं, तखत रह्यो प्रतिमा जिम तोलौं ॥९१॥

कुमार के जन्म की बात सत्य निकली तो मानसिंह को गद्दी से उतार दिया गया और राज के खजाने से उसकी पाँच रुपया प्रतिदिन के हिसाब से आजीवन खर्च की राशि स्वीकृत कर दी गई। नगर में तब नये राजा जयसिंह के नाम की दुहाई फिराई गई और सभी सामन्तों ने उसे नया राजा बना कर राजा स्वीकार किया। इस समय सामोद के नाथावत जागीरदार बुद्धिमान रावल बैरीसाल को अंग्रेज हाकिम ने जयपुर का मुसाहिब नियुक्त किया और राजकाज के लिए नाजर को उसके साथ किया। इसके बाद अंग्रेज हाकिम आल्टर लोनी वापस दिल्ली गया और इधर जयपुर की भूमि का स्वामी वह बालक जयसिंह हुआ। इधर कोटा में विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ छिहत्तर में राजा उम्मेदसिंह ने नियति के अधीन हो अपना शरीर त्यागा। इस अवसर पर झाला जालिमसिंह ने अतिशय शोक का प्रदर्शन किया। यह राजा जब तक जीवित रहा तब तक कोटा के सिंहासन पर प्रतिमा बन कर बैठा रहा।

खाद्यहु झल्ल दयो सुहि खायो, पहिर्‌यो बसन ईंहिं जु पहिरायो।
रक्खन सस्त्र दयो सुहि रक्ख्यो, उत्तर कछु न कबहु तिहिं अक्ख्यो ॥

ऐसो नृप उम्मेद मर्‌यो अब, तीन तनूज हुते ताकै तब।
जे किसोर बलि बिष्णुसिंह जिम, तीजो पृथ्वीसिंह सूनु तिम ॥९३॥

जुब्बन बय ए त्रय हि हुते जँहँ, तखत तदीय किसोर धर्‌यो तँहँ।
पहिलैं झल्ल जाजपुर दै करि, सुत दुव सहित रान भीमहिँ बरि ॥९४॥

व्याही त्रि कनी बुल्लि प्रबल पन, तँहँ मुख्य जु बयमैं सु चिरंतन।
नृप उम्मेद सुता रानहि दिय, क्रम पुनि व्याह रान कुमरन किय ॥९५॥

कोटा के इस राजा उम्मेदसिंह को जो कुछ उसके मंत्री झाला जालिमसिंह ने खाने को दिया वह खाया और जो पहनने को दिया वही पहना। जो शस्त्र उसने हाथ में रखने को दिये उन्हें ही धारण किया और कभी किसी किस्म की कोई शिकायत नहीं की। ऐसा राजा उम्मेदसिंह जब मरा उस समय उसके तीन पुत्र जीवित थे। पहला किशोरसिंह दूसरा विष्णुसिंह और तीसरा पृथ्वीसिंह। इस समय ये तीनों जवान थे। किशोरसिंह को अपने पिता का उत्तराधिकारी बना कर गद्दी पर बिठाया गया। पूर्व में कोटा के मंत्री झाला जालिमसिंह ने (टॉड के कहने से) जब उदयपुर के महाराणा को जहाजपुर का परगना लौटाया तब उसने महाराणा भीमसिंह और उसके दो परिजनों का विवाह कोटा में सम्पन्न करवाया। तीन कन्याओं में से उम्र में सबसे बड़ी जो राजा उम्मेदसिंह की पुत्री थी उसे महाराणा भीमसिंह से ब्याहा। उससे उम्र में छोटी कन्या उदयपुर के राजकुमार से ब्याही।

अधिप मध्य सुत विष्णु सुता इम, रान कुमर अमरेस बरी तिम।
नाम जवान रान को लघुसुत, परिनायो सु इंद्रगढ जसजुत ॥९६॥

इंद्रगढेस नाम सिवदान सु, तत्थ एह व्याह्यो भगिनी तसु।
बलकरि बुल्लिरान कुमरन सह, जालम झल्ल बिबाहे इम जह ॥९७॥

बपु पीछैं कोटेस बिहायो, पुत्र किसोर पट्ट तस पायो।
महाराव होतहि यह मानी, करत भयो जग कुजस कहानी ॥९८॥

जिहिँ कछु साध्य असाध्य न जान्यो, पटु जिम रहन स्वतंत्र प्रमान्यो।
जवनी इक जालम खवासि किय, जठर तास सुत इक्क जन्म लिय ॥९९॥

राजा उम्मेदसिंह के मंझले कुमार विष्णुसिंह की पुत्री का उदयपुर के राजकुमार अमरसिंह के साथ विवाह सम्पन्न करवाया। महाराणा का छोटा बेटा जिसका नाम जवानसिंह था उसका विवाह इन्द्रगढ़ के जागीरदार शिवदान की बहिन से करवाया। ये सारे विवाह झाला जालिमसिंह ने बलपूर्वक महाराणा के कुमारों को बुला कर करवाये। इसके बाद राजा उम्मेदसिंह चल बसा और उसकी जगह किशोरसिंह कोटा का नया राजा बना। इस अभिमानी किशोरसिंह ने कोटा का महाराजा बनते ही मनमानी करना आरंभ किया और संसार में अपना कुयश फैलाया। वह साध्य और असाध्य कुछ भी नहीं गिनता। वह एक चतुर आदमी की तरह स्वतंत्र रहने लगा। मंत्री झाला जालिमसिंह के एक यवन स्त्री पासवान थी जिसके गर्भ से एक पुत्र जन्मा था।

हुव गोवर्द्धनदास नाम तस, सो बदलाइ किसोर कर्‌यो बस।
मुख्य सचिव तिँहिँ करन मनायो, इनमैं मुरि गोवर्द्धन आयो ॥१००॥

त्रय भ्रात रु यह झल्ल चउ हि तब, स्वबस करन चाहन लग्गे सब।
पै जालम बल जाल अपूरब, कछु नय बिनु इन्ह तंत्र होइ कब ॥१०१॥

सैफअली अभिधान अजीठन, पलटायो सु अप्पि बलपति पन।
जालम हनहिँ पुत्र माधव जुत, दृढमत कै पकरहिँ बल करि द्रुत ॥१०२॥

पिहित मंत्र कित्रौं यह पंचन, मिच्छ झल्ल सोदर त्रय इकमन।
सोदर मध्यम बिष्णुसिंह सुनि, प्रकट रह्यो इनके सम्मत पुनि ॥१०३॥

चित्त मुरि सु जालम कौं चाहत, बैठन पट्ट स्वबुद्धि निबाहत।

इस पुत्र का नाम गोवर्धनदास था उसे प्रधान मंत्री बनाने का लालच दिया इससे वह राजा के पक्ष में हो गया। तब राजा किशोरसिंह अपने दोनों भाई और एक यह झाला (गोवर्धनदास) चारों मिल कर राज्य का सारा प्रबन्ध अपने हाथ में ले कर सभी को अपने वश में करने लगे। पर जालिमसिंह के बल का जाल भी अपूर्व था जो अनीति के बिना कब टूटने वाला था। तब राजा ने कोटा के सेनापति बनाने का लालच दे कर सैफअली को झाला से विमुख कर अपने पक्ष में किया, और कहा कि तुम झाला जालिमसिंह को उसके पुत्र माधवसिंह सहित मार डालो अथवा शीघ्र ही बंदी बनालो। इसके लिए सैफअली, गोवर्धनदास झाला, राजा और उसके दोनों भाई इन पांचों ने

मिल कर गुप्त मंत्रणा की पर इस समय राजा का मंझला भाई विष्णुसिंह उनके सामने तो उनके साथ सहमति दिखाता रहा पर वह इसमें पलट मन ही मन जालिमसिंह को चाहता रहा क्योंकि उसके मन में कोटा की गद्दी पर बैठने की तमन्ना थी जिसे जालिमसिंह पूरी कर सकता था।

सैफअली अक्खिय सब सासन, देहु लखहु बुद्धि रु बल दासन ।।१०४ ।।

नृप किसोर अक्खिय अबही नन, पुनि बिचारि सद्धहिँ स्वतंत्रपन।
संबत मुनि हय अट्ठ इंदु सम, करि बिलंब पहिलैं न रच्यो क्रम ।।१०५ ।।

पुनि कहि सैफअली नृप प्रेर्‍यो, अति भर पै सु झिल्योन अवेर्‍यो।
जालम हो पुरढिग बाहिर जब, तिम माधव कोटा अंतर तब ।।१०६ ।।

द्वार जारन सासन नृप देतहि, लघु कढि निजन हाजरी लेतहि।
अरर जरत कछुबिधि मिस आग्रह, भ्रात मध्य भजिगो जालम जह ।।१०७ ।।

तभी सैफअली ने राजा से मुखातिब हो कर कहा कि अब आप आज्ञा दें और देखें कि हम आपके दास उसे अपनी बुद्धी और बल के सहारे कैसे पूरी करते हैं? पर इस समय राजा किशोरसिंह ने कुछ भी नहीं कहा और कहा कि मैं बाद में सोच कर बताऊँगा कि क्या करना है। हे राजा रामसिंह! विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ सतहत्तर में थोड़ा विलम्ब कर पूर्व कथित कार्य नहीं हुआ तो सैफअली ने फिर से राजा को प्रेरित किया पर राजा से यह अत्यधिक भारी काम ठीक से उठाया न गया, न सधा। अभी जालिमसिंह कोटा से बाहर था और उसका पुत्र माधवसिंह नगर में ही था। ऐसे में राजा ने आज्ञा दी कि नगर के सभी प्रवेश द्वारों के किवाड़ बंद कर दिये जाएँ। इस समय अपने लोगों की हाजरी लेते हुए सेनापति ने कपाट बंद करने का हुक्म सिपाहियों को दिया पर कपाट बंद करते समय कुछ बहाना बना कर राजा का मंझला भाई विष्णुसिंह द्वार से निकल कर वहाँ से भाग गया जहाँ अभी जालिमसिंह था।

जुज्झन द्वार हवेली के जुरि, माधव सज्ज रुप्यो पुर मैं मुरि।
गोपुर जुरन सुद्धि सुनि संकित, आयो सजव जरठ जालम इत ।।१०८ ।।

मिलि मग विष्णुसिंह मुजरा किय, लखि तिँहिं बस जालम स्वसंग लिय।
सूरजपोरि आइ इम अक्खिय, खुल्लहु द्वार रोध किहिँ रक्खिय ।।१०९ ।।

इन अक्खिय प्रभु को आदेस न, अहो अरर खुल्लन खिन एस न।
तबहि कुठारन अरर तुराये, इम झल्ल रु तस भट पुर आये ॥११० ॥

इक्ख्यो स्वसुत हवेली आवत, माधव सकुसल जंग मचावत।
तब जालम तजि सोक ससाहस, गहि कर मुच्छ घोर पकरी गस ॥१११ ॥

ऐसे में झाला माधवसिंह अपनी हवेली के द्वार बंद कर नगर में जूझने को सज्जित हुआ। शहर प्रवेश के द्वार बंद करने की खबर पाते ही वह बूढा झाला जालिमसिंह शीघ्र ही कोटा पहुँचा। उसे रास्ते में आता हुआ विष्णुसिंह मिल गया। अभिवादन कर विष्णुसिंह को भी जालिमसिंह ने अपने साथ लिया और सीधा कोटा की सूरजपोल के बाहर पहुँच कर बोला कि दरवाजा खोलो! बंद क्यों कर रखा है? इस पर भीतर के सेवकों ने कहा कि कपाट बन्द करने की आज्ञा राजा ने दी है इसलिए यह समय उनको खोलने का नहीं अर्थात् दरवाजा अभी नहीं खुल सकता। तब झाला जालिमसिंह ने अपने आदमियों से कह कर कुल्हाड़े चलवा कर दरवाजे तुड़वा डाले और वह अपने आदमियों सहित नगर में आया। भीतर अपनी हवेली की ओर जाते समय जालिमसिंह ने देखा कि उसका पुत्र माधवसिंह पूरी कुशलता के साथ भिड़ रहा है। तब जालिमसिंह ने भी अपने स्वामी के मरने पर शोक छोड़ कर अपनी मूँछ पर ताव दिया और मन ही मन अदावत की आँट पाली।

बडी तोप दुव तँहँ बुंदी की, लैगो भीम हुती तबही की।
प्रथित धूरिधानी बहु पूजी, दुस्सह करकबिज्जुली दूजी ॥११२ ॥

इनके गोलंदाज बुल्लि अर, कह्यो प्रहार करहु महलन पर।
इत सुनतहि जालम पुर आयो, पगि भय सैफअली सु पलायो ॥११३ ॥

तस संगहि नट्ठे संगी तस, बल रंचक रहिगो नृप के बस।
जब किसोर नृप अल्प भटन जुत, दुरयो जाइ महलन अंदर द्रुत ॥११४ ॥

पृथ्वीसिंह अनुज नृप पासहि, सस्त्रन को न दुहुन अभ्यासहि।
गन प्रासाद गिरत लखि गोलन, झुल्ला जिम हल्लत गढ झोलन ॥११५ ॥

पूर्व में महाराव भीमसिंह बून्दी से दो बड़ी तोपें उठा लाए थे तभी से वे दोनों तोपें यहीं थीं। इनमें से एक प्रसिद्ध 'धूरधानी' नामक थी और दूसरी

'करक बिज्जुली'। इन दोनों तोपों के गोलंदाजों को बुला कर जालिमसिंह ने आदेश दिया कि इनसे महलों पर प्रहार किये जाएँ। इधर सैफअली ने जब सुना कि झाला जालिमसिंह नगर में आ पहुँचा है तो वह भयभीत होकर भाग गया। उसके साथ उसके संगवाले भी भाग खड़े हुए, पीछे राजा के पास थोड़ी सेना बची। जब राजा किशोरसिंह अपने थोड़े रक्षकों के साथ रह गया तो वह शीघ्र ही महल में जाकर दुबक गया। इस समय उसका छोटा भाई पृथ्वीसिंह साथ था पर दोनों को शस्त्र चलाने का थोड़ा भी अभ्यास न था। तोपों के गोलों से महल के हिस्से खंडित हो कर गिरने लगे और गढ़ यों हिलने लगा जैसे वह झूला हो।

तजि अवरोध सस्त्र धन तत्थहि, सके न लै गज हय कछु सत्थहि।
धन कछु इक सिविका अंतर धरि, तरि चम्मलि लै इक्क मिली तरि ॥११६॥

पयचर निकसि भज्यो सानुज पहु, बलि मग मैं जिहिं छोरि गये बहु।
इम व्याकुल नृप बुंदी आवत, पै प्रबहन कछु मग्ग न पावत ॥११७॥

रामलाल लछमीपुर सासक, सुन्यो हड्डु बुंदीस उपासक।
सोहु हुतो न तदपि तस तिय सुनि, पठई तिहिं निज उभय हयी पुनि ॥११८॥

दोउन पैं चढि तब सोदर दुव, व्है स्वस्थ रु इम अग्ग बढत हुव।
सोदर पृथ्वीसिंह केर सुत, जो कोटा सासक अब छल जुत ॥११९॥

ऐसी स्थिति में अपना जनाना, शस्त्र और धन वहीं छोड़ कर वे अपने साथ हाथी, घोड़ा आदि कुछ भी नहीं ले सके। राजा और उसका भाई एक पालकी में कुछ धन रख कर वहाँ से भागे। आगे जो मिली उसी नाव से चम्बल नदी को पार कर आगे बढ़े। राजा अपने छोटे भाई के साथ चम्बल के तट से पैदल ही रवाना हुआ रास्तें में कई मिले पर उन्हें छोड़ते हुए वे भागते बढ़े। इस तरह व्याकुल हो कर राजा बून्दी आने को चला पर उसे रास्ते में कोई सवारी नसीब न हुई। रास्तें में पड़ने वाले एक गाँव लछमीपुर जो ठाकुर रामलाल का था वह अपने स्वामी बूंदी के हाड़ा राजा का स्वामिभक्त था पर इस समय वह भी घर पर नहीं था। जब उसकी पत्नी ने सुना कि कोटा का राजा यों पैदल जा रहा है तो उसने दो घोड़ियाँ भेजीं। इन दोनों घोड़ियों पर

सवार हो दोनों भाइयों ने राहत की सांस ली और बून्दी की तरफ बढ़े। हे राजा रामसिंह! राजा के सहोदर पृथ्वीसिंह का पुत्र जो अब कोटा का शासक है उस समय बाल्यावस्था में था।

सिसु बय एहु हुतो तिन्ह संगहि, अनुचर खंध बह्यो जिन्ह अंगहि।
इम दुव कोस अवधि पर आवत, समुह जाइ बुंदीस सुहावत ॥१२०॥

अति आदर भ्रातहि ग्रह आनिय, मंडिय बिबिध उचित महमानिय।
अक्खिय तिम तुमरो घर एसहु, देखि समय जित्तहिँ निज देसहु ॥१२१॥

इहाँ रहहु तोलौं निज आलय, जानहु धर्म जहाँ सु तहाँ जय।
अप्पन लै निज मत अंग्रेजन, टारहिँ झल्ल त्वचा जिम तेजन ॥१२२॥

कै मारहिँ कै करहिँ सु कीलित, कतिक बत्त खल झल्ल कुसीलित।
कहुँ गोपाल धनी को गोधन, अपनावत न सुने रचि रोधन ॥१२३॥

जो बालक था उसे एक सेवक ने अपने कंधे पर बिठाया और इस तरह दो कोस की दूरी तय कर आगे पहुँचे जहाँ सामने आ कर बून्दी के राजा ने स्वागत किया। पूरे आदर और स्नेहपूर्वक अपने बांधवों को साथ ले कर राजा बून्दी आया। यहाँ हाड़ा राजा ने कोटा महाराव और उसके छोटे भाई की शाही आवभगत की और कहा कि यह तुम्हारा घर है जब तक कोटा वापस जाना नसीब नहीं होता तुम लोग यहाँ निसंकोच रह सकते हो। यहाँ घर मान कर निवास करो और चिंता मत करो क्योंकि जहाँ धर्म है वहीं विजय है अर्थात् तुम धर्म पर हो इसलिए तुम्हारी विजय होगी। हम लोग अंग्रेजों से मिल कर उस जालिमसिंह को कोटा से यों निकालेंगे जैसे बाँस की छाल निकाली जाती है। हम उसे बंदी बनाएंगे या मार डालेंगे। उस कुशील दुष्ट झाला की ओकात ही क्या है ? जगत में गायें. चराने वाले ग्वाले की थोड़े ही कहलाती हैं। अर्थात् कोई ग्वाला उन्हें रोक कर अपनी नहीं बना सकता। गायें तो सदा उसके स्वामी की रहेंगी।

धरा स्वकर कर्षुक नहिँ धारत, स्वामी जब तब ताहि सम्हारत।
कोटा इम अपनौं जैहैं कित, सहबल कांस संग हम समुचित ॥१२४॥

पै कछु देस काल क्रम पिक्खहु, साहहु धीरज त्वरा न सिक्खहु।
विष्णुसिंह भूपति इम बहु बिधि, समुझायो कोटेस स्व सन्निधि ॥१२५॥

महाराव तदपि न यह मन्निय, क्रम सत्वर दिल्ली प्रयान किय।
इक अंग्रेज मिल्यो तँहँ इन मैं, जालम पच्छ ओर सब जिनमैं ॥१२६ ॥

ए जिम निकसि भजे पलट्टत अय, गोवर्द्धन झल्लहु तिम भजि गय।
इत जालम अंग्रेज उपासक, सबल रह्यो कोटाधर सासक ॥१२८ ॥

कोई कृषक कब खेतों का हासिल स्वयँ ले सकता है उसे तो जब तब खेतों का स्वामी ही लेता है। कोटा अपना है वह इस तरह जाएगा कहाँ। हम समुचित सेना और खजाने की सहायता से उसे अपनाएँगे पर थोड़े समय तक देश और काल की गति को देखो! धैर्य धरो, जल्दी मत मचाओ! बून्दी के हाड़ा राजा विष्णुसिंह ने कोटा के स्वामी को ढाढ़स बंधाते हुए अपने पास ले कर समझाया। लेकिन ये बातें कोटा के महाराव किशोरसिंह के गले नहीं उतरी वह तो सीधा दिल्ली जाने को रवाना हुआ। वहाँ उसे मात्र एक अंग्रेज ऐसा मिला जो झाला जालिमसिंह के पक्ष का नहीं था बाकी सारे के सारे उसी के पक्षधर थे। उधर कोटा से जब राजा किशोरसिंह और उसका भाई निकल भागे तो भाग्य पलटने पर वह गोवर्धनदास झाला भी वहाँ से भाग गया। पीछे कोटा पर अंग्रेजों के उपासक झाला जालिमसिंह का एकछत्र अधिकार हो गया।

दोहा

इत नव हायन बय उदित, राजकुमर मनि राम।
सिंह सिसु किं हत्थिन हनन, करैं उचित बय काम ॥१२९ ॥

गुटिका चापहि पुब्ब गहि, अंकुरि तस अभ्यास।
प्रात नित्य करि तदनु पटु, बिरचहिँ बेध्य बिनास ॥१३० ॥

इधर बून्दी में नौ वर्ष की अवस्था वाला राजकुमार रामसिंह, सिंह शावकों और छोटे हाथियों का शिकार करने लगा। शैशवावस्था से ही वह धनुष और गुटिका (गिलोल) हाथ में उठा कर अभ्यास करने लगा। वह चतुर बालक नित्यप्रति प्रात:काल उठते ही शस्त्र विद्या सीखने की लगन में निशाना साधने का अभ्यास करता।

घनाक्षरी

नित्य करि लै निज बयस्यन कुमर राम,
सानुज सुरीति खुरली मैं खेल ख्यात करि॥

कोहल मतीर रु दसांगुल कपित्थ बिल्ब,
क्रम तैं कितेही स्थूल बेध्यन के पात करि॥
मंडूरक मृत्तिका मिलाये गुरु गोल गाढे,
खातकरि जात ज्यौं बंदूकन सौं बात करि॥
तारी दै तरा के जंत्र स्वस्तिक कौं फेरि देत,
गेरि देत गुंजन गिलोलन की घात करि॥१३०॥

अपने समवयस्क बालकों को साथ ले कर वह राजकुमार अपने छोटे भाई के साथ शस्त्राभ्यास में कद्दू, तरबूज, खरबूजे, बेल (बिल्व फल) और कपित्थ जैसे फल सामने रख कर अपना निशाना साध एक-एक कर उन्हें बेध गिराता। लोहे के चूरे (कीट) और मिट्टी से गोल-गोल बनाये हुए कंकरों को गिलोल से फेंक कर सामने बड़े-बड़े खड्डे बना देता मानों बंदूक की गोली चला कर लक्ष्य में छेद बनाया हो। वह ताली बजा कर स्वास्तिक (यंत्र विशेष) यंत्र को फिरा देता और अपनी गिलोल से कंकरी चला कर चिरमी को उड़ा देता।

दोहा

कंदुक अब्भ उछारिकैं, मर्म गिलोलन मारि।
अनाधार रक्खत उहाँ, इच्छित लेत उतारि॥१३१॥

राजकुमार रामसिंह गैंद उपर फेंक कर निरन्तर अपने गिलोल से फेंके कंकरों की मार से उसे नीचे नहीं गिरने देता। गैंद को बिना किसी आधार के हवा में टिकाए रखता और इच्छा होने पर ही नीचे गिराता।

मनोहरम्

छोरिकैं गिलोल तदनंतर सरासन लै,
मित्रन अखारो मंडि छोह छिति छैती मैं॥
आलीढ प्रत्यालीढ बैसाख रु मंडल त्यौं,
साधि समपाद थान रीति हित व्हैती मैं॥
सब्दवेध आदिक समस्त बिधि साधन कैं,
पूरन प्रगल्भ प्रभा पारथ कौं पैती मैं॥

कातर कपोल कोपे फीलन कौं फेरि देत,
गेरि देत गुंजन कलंब कमनैती मैं ॥१३२॥

जब गिलोल चलाने में राजकुमार रामसिंह निष्णात हो गया तब अपनी वय वृद्धि के अनुरूप उसने धनुष को साधने हेतु उठाया। अपने समवयस्क मित्रों के साथ अखाड़ा रच कर उत्साह से भूमी पर आलीढ़ नामक पेंतरा साधता (जिसमें दाहिना पैर आगे बढा कर वाम पैर को समेटना होता है) फिर प्रत्यालीढ पेंतरा साधता (जो आलीढ से उल्टा होता है)। इस प्रकार 'वैशाख' और 'मंडल' को साध कर 'समपाद' नामक पेंतरे के साथ बाण चलाता। इस तरह वह राजकुमार धनुष विद्या के पांचों पेंतरे बरत कर सरसंधान करता। आगे शब्दभेदी बाण चलाने के अभ्यास में नीरत होता। धीरे धीरे अपनी प्रगल्भता के साथ अभ्यास से वह पदन्यास में अर्जुन के समान प्रभावान धनुर्धर हो गया इससे वह कपोलों से कायर अर्थात् कुपित हाथियों को अपने बाण चला कर वापस मोड़ने लगा और तीर से सूक्ष्म वेध जैसे कि चिरमी को उडा कर कमनेत बनने की दिशा में बढने लगा।

पादाकुलकम्

इत नृप विष्णुसिंह बुंदी इन, दिष्टतंत्र सुचि पुण्णम रवि दिन।
छोरयो बपु तँहँ उचित रीति छत, बिदित आयु दिष्टानुसार बत ॥१३३॥

इधर बून्दी का हाड़ा राजा विष्णुसिंह नियति के अधीन हो विक्रमी संवत् के अठारह सौ अठहत्तर के चौथे माह की पूर्णिमा तिथि तदनुसार रविवार के दिन उचित रीति से अपना शरीर त्याग गया। अफसोस कि आदमी को उम्र भी भाग्यानुसार प्राप्त होती है।

दोहा

सक नव दुव बसु इक्क सम, असित सहस्य अनेह।
तिथि तेरसि तँहँ अवतरयो, उद्धव लहि पहु एह ॥१३४॥

व्योम त्रि बसु ससि सुक्रबदि, तिथि एकादसि तत्थ।
राज्यासन पायो रूचिर, संभर सिसुहि समत्थ ॥१३५॥

बासर दुव बर्जित स्वबय, पावत मिति नव पच्छ।
बिष्णुसिंह पायो बिदित, अजित पट्ट इम अच्छ ॥१३६॥

कुलभव अट्ठ बिबाह किय, इनमैं बय अनुसार।
पंच तनय इक पुत्रिका, पाये अधिप उदार॥१३७॥

तीन खवासिन मैं तनय, इक्क बिनय लहि आप।
बसु हय सक इम छोरि बपु, पायो लोक दुराप॥१३८॥

विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ उन्तीस के पौष माह के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन यह राजा विष्णुसिंह जन्म पा कर उत्पन्न हुआ था और अठारह सौ तीस के ज्येष्ठ माह के कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि के दिन बून्दी का राजसिंहासन पा कर शैशवावस्था में ही राजा बना। दो दिन कम साढ़े चार माह की अवस्था में ही यह कुमार विष्णुसिंह अपने पिता अजीतसिंह का उत्तराधिकारी हो राजगद्दी को प्राप्त हुआ। इस राजा ने उचित वय प्राप्ति के बाद कुल आठ विवाह किये और पाँच पुत्रों सहित एक पुत्री का पिता बना। इन औरस संतानों के अतिरिक्त अपनी तीन पासवानों से एक बिना नीतिवाल पुत्र पा कर राजा विक्रमी के वर्ष अठहत्तर में देह त्याग कर दुर्लभ लोक को गया।

नाम नयनसोभा निपुन, मंजु पातुरिन माँहिं।
कथित काल नृप तनु तजत, इहाँ गर्भ तस आँहिं॥१३९॥

पंचमास पीछें प्रसव, तनया प्रकटी तास।
रूपकुमरि जा रावरी, भगिनी प्रभु गुन भास॥१४०॥

पोस असित तिथि प्रतिपदा, कनी सु भावीकाल।
पैहै अब उद्भव प्रथित, प्रभु जँहँ अप्प नृपाल॥१४१॥

ए क्रमकरि खट अरु उभय, प्रजा अट्ठ नृप पाइ।
गदित काल परलोक गत, जग जस अतुल जगाइ॥१४२॥

कथित समय में जब राजा का देहान्त हुआ उस समय राजा को नयन शोभा नामक एक सुन्दर पतुरिया गर्भवती थी। पाँच माह बाद उसने प्रसव में एक कन्या को जन्म दिया। हे राजा रामसिंह! यह वही कन्या रूप कुमारी है जो अब आपकी बहिन कहलाती है। आने वाले पौष माह की प्रतिपदा तिथि के दिन यह कन्या जन्म लेगी और हे स्वामी! जब तक आप राजा हो चुके होंगे। इस तरह हाड़ा राजा विष्णुसिंह के छह और दो कुल आठ संताने हुई।

ऊपर वर्णित समय में राजा इस जगत में अपने यश का प्रसार कर परलोक वासी हुआ।

गीतिः

छत्र महल सौं लगतहि उत्तर दिस अक्षबाट अभिधानी।
बज्रांग इष्ट थिति चहि, निको प्रासाद निर्मयो नृपनै॥१४३॥

याही बिधि अभिरामक, पच्छिम दिस अर्द्ध कोस निज पुरतैं।
विष्णुबिलास स नामक, उपबन प्रत्यग्र निर्मयो औसैं॥१४४॥

प्रभु रावरी प्रसू इम, पुरतैं दक्खिन समीप बहु व्यय सौं।
जग सुखदा निज घर जिम, चतुरायत धर्मसालिका बिरची॥१४५॥

निज पति इष्ट प्रमानत, ता बिच बज्रांग मूर्ति पधराई।
इच्छित भोजन आनत, अब जन जाके सदाव्रत उमहे॥१४६॥

सुदर घट्ट बनायो, सुंदरसोभा खवासि संभर की,।
हरि मंदिर जुत ठायो, प्रासादगन जह ताल तट पुर मैं॥१४७॥

हे राजा रामसिंह! अब मैं (ग्रन्थकार) उन निर्माणों को बताता हूँ जो राजा विष्णुसिंह के समय में करवाये गए। छत्रमहल के पास ही उत्तर दिशा की ओर अक्षवाट नामक महल (मंदिर) है उसे राजा ने अपने इष्टदेव हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठा कर्ने को बनवाया। इसी तरह नगर से पशिचम दिशा में आधा कोस की दूरी पर जो सुन्दर विष्णु विलास नामक बाग है इसे राजा ने नए सिरे से बनवाया था। इसी तरह हे स्वामी! आपकी माता राठौड़ वंशीय रानी ने नगर के दक्षिण में बहुत सारा पैसा व्यय कर, जगत को घर जैसा सुख देने वाली चौकोर धर्मशालिका (छोटी धर्मशाला) का निर्माण करवाया। अपने पति का इष्ट जान कर इस धर्मशाला के आंगन में हनुमान की मूर्ति प्रतिष्ठित की और इस अवसर पर सभी ब्राह्मणों को इच्छाभोजन करवाया। अभी भी वहाँ आयोजित सदाव्रत के समय लोग जाते हैं। सुन्दरशोभा नामक चहुवान राजा की पासवान ने गाँव में तालाब बनवाया और इस तालाब के किनारे एक सुन्दर घाट का निर्माण करवाया जिस पर एक हरि मन्दिर और छोटा सा महल भी बनवाया।

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ विष्णुसिंह चरित्रे नगर कोटा वधिनयपालागमनांगरेजतत्पुनर्नि:सारण अंगरेज-लखनऊयोधन जयपुरजोधपुर सुहृदा वसबंन्धकरण ईष्टइंडियाकम्पनी-गोरखाविजय नलंकाद्वीपसमासादन सचिवेन्द्रराजवधदोषाच्छादनमान-सिंहोन्मादत्वप्रकटनयुवराजच्छत्रसिंहमरण ग्रन्थकतृसूर्यमल्लजननसर्वतो-विजय्यंगरेजाजमेराक्रमण अंगरेज प्रथमाजण्ट कर्नलटाडराजपुत्रस्थानागमन झल्लजालमसिंहदण्डन पूर्वराणाभीमसिंहार्थजाजपूरादिप्रान्तप्रापण अंगरेज गृहीतव्ययपुण्यापति बाजेरावपेसवाविठूरनिवसन नागपुरेश योधपूरा-धीशशरण गमनतद्वंश्यार्थेषज्जीविकाप्रदापन नि:संतान जयपुराधीश-जगत्सिंह मरणनरउरागतमानसिंहपट्टाक्रमणविरोधी भूत झल्लजालमसिंह बून्दीतेश्लुण्टनपुर्वकरग्रहण छलकारितांगरेजसंधिपत्र झल्लजालमसिंह बून्दीसामन्तेन्द्रगढखातोल्यादि कोटा राज्य संमेलन पश्चादबुन्द्यंगरेज-संधिपत्रभवन रणजीतसिंह विजित पेशोर प्रान्तकाबुल सेनागमन तत्प्रत्यादान जयपुरेश जगत्सिंहराज्ञीभटियाणीजठरजयसिंह जनन हेतुदत्त प्रत्यहपञ्चमुद्रमानसिंह निष्कासनानन्तरजयपुरप्रान्त जयसिंहाज्ञाप्रवर्तन कोटा नृपोम्मेदसिंह मरणकिशोरसिंह तत्पट्टासादन कोटासचिव-झल्लजालमसिंह विरोध हेतु किशोरसिंहपलायन बून्दीपति विष्णुसिंह पञ्चत्वगमनतदने हरचितस्थाननिर्माणसूचनं त्रयोदशो मयूख: आदित: ३६२ समाप्तमिंद विष्णुसिंहचरित्रम्

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के, विष्णुसिंह चरित्र में, नेपालियों का नगरकोट तक बढ़ना और अंग्रेजों का उनको पीछे हटाना, अंग्रेजों का लखनऊ में युद्ध होना और जयपुर जोधपुर के राजाओं का मित्र होकर परस्पर सम्बन्ध करना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गोरखों को जीतना और लंका नामक द्वीप को विजय करना, जोधपुर के राजा मानसिंह का अपने सचिव इन्द्रराज को मरवाकर उस दोष को दबाने के लिये फरेब करके बावलापन प्रसिद्ध करना और मानसिंह के पुत्र छत्रसिंह का राजा होकर मरना, इस ग्रन्थ के कर्ता सूर्यमल्ल का जन्म होना और अंग्रेजों का सब ओर विजयी होकर अजमेर लेना, अंग्रेजों के प्रथम एजेंट कर्नल टॉड का राजपूताने

में आना और झाला जालिमसिंह को दण्ड देकर जहाजपुर आदि परगने उदयपुर के महाराणा भीमसिंह को दिलाना, पूना के पति बाजीराव पेशवा का अंग्रेजों से पैंशन लेकर बिठुर में रहना और नागपुर के राजा का जोधपुर में शरण आकर उसके कुल को कुछ जीविका मिलना, जयपुर के राजा जगतसिंह का बिना सन्तान मरने के कारण नरउर से आकर मानसिंह का पाट बैठना और जालमसिंह झाला का विरोधी होकर बून्दी के देश को लूटकर हासिल लेना, जालिमसिंह झाला का अंग्रेजों के साथ अहदनामा करवा कर बून्दी के इन्द्रगढ, खातोली आदि को कोटा के राज्य में पिलाना, फिर अंग्रेजों का बून्दी के साथ अहदनामा होना और रणजीतसिंह के विजय किये हुए पेसोर को काबुल की सेना का वापस लेना, जयपुर में रानी भटियाणी के उदर से राजा जगतसिंह के औरस पुत्र जयसिंह का जन्म होने के कारण मानसिंह को पाँच रुपये राज की पैंशन देकर निकाले बाद जयपुर में जयसिंह की दुहाई फिरना, कोटा के राजा उम्मेदसिंह का देहान्त होकर किशोरसिंह का पाट बैठना और कोटा के सचिव झाला जालिमसिंह से महाराव किशोरसिंह का विरोध बढकर कोटा से किशोरसिंह का भागना, बून्दी के राजा विष्णुसिंह का देहान्त होना और उनके समय में बने हुए मकानों की सूचना करने का तेरहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बासठ मयूख हुए।

रामसिंह चरित्रम्

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

श्री मम राज सरस्वती, बखसहु बुद्धि सु बित्त।
कहियत राम चरित्र अब, जो इहिं ग्रन्थ निमित्त॥१॥

एकादश दिन करि अखिल, करटादिक बिधि काज।
पुनि अवसर लहि राम प्रभु, अप्प भये अधिराज॥२॥

द्विज पुर के अरु देस के, भोजे तदिन असेस।
दान बिबिध बहुतन दये, गोगन पुरट प्रदेस॥३॥

सजातीय कबिकुल सकल, जिम पुर अखिल जिमाइ।
ललित कित्ति मुख मुख लई, भूप सबन मनभाइ॥४॥

हे मेरी स्वामिनी देवी सरस्वती! आप मुझे बुद्धि रूपी श्रेष्ठ धन प्रदान करें जिससे मैं (सूर्यमल्ल मिश्रण) अब रामसिंह के चरित्र का वर्णन कर सकूँ जो इस ग्रंथ (वंशभास्कर) के निमार्ण के निमित्त बने है। दिवंगत राजा विष्णुसिंह की मृत्यु के ग्यारह दिन बाद एकदशा आदि सभी श्राद्ध सम्पन्न कर मिले अवसर में हे स्वामी! आप बून्दी के राजा बने। एकादशा के दिन बून्दी नगर और देश के सारे ब्राह्मणों को भोजन करवा कर आपने उन्हें स्वर्ण और जागीर प्रदान कर गोदान किया। नगर के कविकुल (चारण) के अलावा आपने सजातीय (क्षत्रिय) लोगों को भोजन करवा कर हे राजा! आपने जन-जन के मुँह से अपनी ललित कीर्ति के मन भावन बोल सुने।

नव अब्द रु खट मास मित, इहिँ बय समय अधीन।
बिधि अप्पहि दिन बारहम, कुल हड्डुन इन कीन॥ ५॥

संबत गज हय अट्ठ ससि, स्रावन बारसि स्याम।
गुरु मृगसिर व्याघात गत, तैतिल करन सु ताम॥ ६॥

समरकंद जहँ संहर्‌यो, नारायण नरराज।
भूपति तँहँ अभिसिक्त भो, कथित सद्धि बिधि काज॥ ७॥

आसापूरनि अंबिका, पीतांबर हरि पाय।
पूजन करि प्रनम्यों सु पहु, समुचित मन्त्रि सहाय॥ ८॥

राजा विष्णुसिंह के मृत्यु-उपरांत बारहवें दिन आपकी उम्र जब साढे नौ वर्ष थी विधि पूर्वक आपको हाड़ाओं का स्वामी बनाया गया। विक्रमी संवत् के वर्ष अठहत्तर के श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की बारहवीं तिथि तदनुसार गुरुवार के दिन जब मृगशिरा नक्षत्र, और व्याघात नामक योग की समाप्ति पर तैतिल करण था। इस मुहूर्त में जहाँ हाड़ा राजा नारायणदास ने समरकंद को मारा था उस स्थान पर (बून्दी में राजतिलक प्रायः इसी स्थान पर करने की प्रथा है) हे राजा रामसिंह! आपका राज्याभिषेक हुआ। पूरे विधि-विधान से सम्पन्न इस कार्य के पूरा होने पर राजा अपनी कुलदेवी आशापूर्णा और पीतांबर प्रभु के चरणों में सिर झुकाने को गया जहाँ पहले पूजन-अर्चन किया गया उसके बाद राजा ने अपने इष्ट देवों से सदा अनुकूल रहने की प्रार्थना की।

पुनि पधारि महलन प्रथित, रचि अर्चित श्रीरंग।
पट्ट पंच सिख सीस धरि , बैठो पट्ट अंभग॥ ९ ॥

गुरु बुध कवि भट सचिव गन, अतुल सभा सब आइ।
------------------------------ ॥१० ॥

------------------------------ ।
------------------------------ ॥१४ ॥

------------------------------ ।
------------------------------ ॥१२ ॥

पुनि अंजट आइउ इहाँ, साहब टाड स नाम।
सभा बहुरि दूजी सुपहु, रची उचित अभिराम॥१३ ॥

श्रावन बिसद चउत्थि सिर, पंचमि आगम पाइ।
सद्ध्यो पुनि दसतूर सब, सूचित क्रम दरिसाइ॥१४ ॥

यहाँ से राजा महलों में आया जहाँ श्रीरंग की पूजा कर उसने अपने मस्तक पर पाँच शिखाओं वाला शिरपेच धारण किया फिर किसी से भंग नहीं हो सकने वाला अभंग वीर महाराव राजा रामसिंह पाट (राजसिंहासन) बैठा। इसके बाद राजसभा में पण्डितों .(ब्राह्मणों), चारणों, गुरुजनों, सचिवों, भाटों ने आ कर राज को बधाई दी। .... । इसके बाद अँग्रेज हाकिम (एजेंट) जेम्स कर्नल टॉड साहिब के आगमन के अवसर पर दूसरी बार सुन्दर सभा जुड़ी। श्रावण मास के शुल्क पक्ष की चतुर्थी तिथि की समाप्ति पर पंचमी तिथि के आगमन समय अंग्रेज अफसर ने कहे गए क्रम से राजा के दस्तूर किया।

टाड अंजटहु गज तुरंग, भूखन सस्त्र दुकूल।
उपदा किय अधिराज कै, मुदित नम्र हित मूल॥१५ ॥

उत्तासन सद्ध्यो उचित, रीति सहित नति रक्खि।
कह्यो कहहु हमपर हुकम, सब अनुगत नय सक्खि॥१६ ॥

महिमानी आदरि बहुरि, करि प्रभु हुकम बिकंट।
तदनन्तर लै सिक्ख गो, साहब टाड अजंट॥१७ ॥

अवसर क्रम भावी इहाँ, व्याह प्रजादि बखान।
भ्रातन जुत प्रभु को भनत, समुझहु सभ्य सुजान॥१८॥

एजेंट टॉड ने मुदित मन से सर्वप्रथम हाथी, फिर घोड़ा, आभुषण, शस्त्र और वस्त्र के नजराने किये ताकि दोनों पक्षों का हित बरकरार रहे। भेंट दे कर टॉड नीतिपूर्वक राजसभा में रीति के अनुसार राजा के बाईं ओर बैठा फिर उसने कहा कि हे राजा! हमारे लिए क्या हुक्म है कहे, हम उसे नीति के अनुरूप बजा लाएँगे। इस तरह प्रतीक रूप में राजा रामसिंह के हुक्म को निष्कटंक (निर्बाध) सिद्ध कर टॉड ने राजकीय मेहमान होना स्वीकार किया। थोड़े समय तक अंग्रेज एजेंट ने शाही आवभगत का लुत्फ लिया फिर राजा से विदाज्ञा निवेदन कर वापस अपने स्थान पर गया। हे राजा रामसिंह! मैं अब उचित प्रसंग पा कर समय के क्रम से भाइयों सहित राजा रामसिंह के भविष्य में सम्पन्न होने वाले विवाहों और संतानों आदि का वर्णन करता हूँ उसे श्रेष्ठ बुद्धि वाले सभासद सुनें।

षट्पात्

भे उपयम चउ अधिप प्रथम तिनमाहिँ जोधपुर ,
मान सुता रट्ठोरि परनि आनी रानी धुर।
नाम सुरूपकुमारि प्रसव जाके सु पुत्र मनि,
कुमर भीम प्रभु केर जई जनम्यो पाटव खनि।
दूजे बिबाह पूर झुंझनाँ सेखाउति व्याही सु बर।
अभिधा गुलाबकुमरि सु उचित स्यामसिंह तनया सुघर॥१९॥

राजा रामसिंह के कुल चार विवाह हुए । इनमें से प्रथम विवाह राजा ने जोधपुर के राठौड़ राजा मानसिंह की पुत्री स्वरूप कुमारी के साथ किया और उसे रानी बना कर अपने घर बून्दी लाया जिसकी कोख से पुत्रों में मणि स्वरूप कुमार भीमसिंह का जन्म हुआ जो चतुराई की खान था अर्थात् अत्यंत बुद्धिमान था। राजा ने दूसरा विवाह झुंझनाँ (झुंझनु) के शेखावत श्यामसिंह की सुघड़ कन्या गुलाब कुमारी के साथ सम्पन्न किया।

दोहा

गया पधारे अप्प जब, पुर नागोद पधारि।
तीजो उपयम किन्न तँह, दारिद कविन बिदारि॥२०॥

बिदित सूता बलभद्र की, गुन गन अतुल गहीर।
चंन्द्रभानु कुमरि सु चतुर, व्याही रानिय बीर॥२१॥

प्रतिहारी कुलकरि प्रथित, जाके औरस जात।
रंगनाथ सुत रावरै, दूजो जस अवदात॥२२॥

ए त्रय रानी अरु लहे, मूनु उभय कुल सुद्ध।
चउ खवासि तिनकी चतुर, संतति सुनहु प्रबुद्ध॥२३॥

पटु सुरूपलतिका प्रथम, तामै हुव सुत तीन।
अर्जुन अबिदित नाम अरु गोवर्द्धन गुरु पीन॥२४॥

आप जब गया तीर्थ की यात्रा पर पधारे तब नागोद नामक पुर में जा कर आपने अपना तीसरा विवाह सम्पन्न किया और इस विवाहोपलक्ष में खूब दान दे कर कवियों (चारणों) का द्रारिद्र्य भगाया। प्रतिहार बलभद्र की प्रसिद्ध गुणवती और गंभीर स्वभाव वाली चन्द्रभानुकुमारी से विवाह कर हे चतुर और वीर राजा! आपने उसे अपनी तीसरी रानी बनाया। प्रसिद्ध प्रतिहार कुल की इस रानी ने अपनी कोख से आपके दूसरे पुत्र रंगनाथ को जन्म दिया जो अपने यश का प्रसार करने वाला हुआ। आपके उपरोक्त तीन रानियाँ थीं जिनसे आपको शुद्ध कुल वाले दो पुत्रों की प्राप्ति हुई। अब मैं आपकी चार पासवानों से जन्मी संतति का वर्णन करता हूँ। पहली चतुर पासवान जो सरूपलतिका नामक थी से आपको तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई जिनमें से एक का नाम अर्जुनसिंह, दूसरे का नाम ज्ञात नहीं, तीसरे का नाम गोवर्द्धनसिंह था जो अपने गुणों से समृद्ध था।

सदानंद दूजी सुघर, जाकै जुग सुत ख्यात।
नारायन जेठो कुमर, जगन्नाथ अनुजात॥२५॥

सरसंरग तीजी प्रसव, स्वीय नियति अनुसारि।
कन्या इक सुपठित भई, नाम सुभद्रकुमारि॥२६॥

आनंदादिकबेलि इम, चोथि चतुर खवासि।
कन्या इक बल्लभकुमरि, भई तास गुन भासि॥२७॥

सुत इम पंच रु दुव सुता, प्रजा खवासिन सत्त।
प्रथम तृतीय रु पंचम सु, त्रय सुत सायुस तत्त॥२८॥

बाल बयहि बल्लभ कुमारि, धीदा व्यसु बिधि धारि।
बिद्यमान तनया बडी, सूरि सुभद्रकुमारि ॥२९॥

सदानंद नामक दूसरी सुघड़ पासवान जिसके दो पुत्र हुए ऐसा प्रसिद्ध है। उनमें से ज्येष्ठ नारायणसिंह और उससे छोटा दूसरा जगन्नाथसिंह नामक था। सरसरंग नामक तीसरी पासवान के उसके अपने भाग्यनुसार एक पुत्री जन्मी जिसका नाम सुभद्राकुमारी था। आनंदबेल नामक चौथी चतुर पासवान के गर्भ से भी वल्लभकुमारी नामक एक कन्या का जन्म हुआ जो गुणवान थी। इस प्रकार कुल पाँच पुत्र और दो पुत्रियाँ ये सात संताने आपकी चारों पासवानों से जन्मी। इनमें से क्रमशः पहली, तीसरी और पाँचवी सन्तान पुत्र थे जो आयुष्यवान हुए आपकी बल्लभकुमारी नामक पुत्री का बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया जबकि उससे उम्र में बड़ी पुत्री सुभद्राकुमारी अभी भी विद्यमान है।

षट्पात्

प्रभु अनुजनु गोपाल रट्ठऊरन गागरनी,
चन्द्रकुमरि रघुनाथ सुता अप्रज इक परनी।
अरु खवासि भव अनुज बिनय ब्याह्यो उनियारा,
जालमजा आनंदकुमरि सुहु प्रसव असारा।
अरु रूपकुमरि बिनयानुजा बीकानैर नरेस सुत।
जीवन हिं रक्खि आश्रित इहाँ परिनाई प्रभु प्रीति जुत॥३०॥

हे स्वामी! आपके छोटे भाई गोपालसिंह ने गागरनी के राठौड़ रघुनाथसिंह की पुत्री चन्द्रकुमारी से विवाह किया। उसने एक ही विवाह किया। आपके पिता की पासवान से जन्मे आपके छोटे भाई विनयसिंह ने उणियारा के जालमसिंह की पुत्री आनन्द कुमारी से शादी की जो प्रसव में असार थी अर्थात् बिना संतानवाली थी। इस विनयसिंह की छोटी बहिन रूपकुमारी का विवाह बीकानेर के राजकुमार जीवनसिंह से हुआ। इस जीवनसिंह को हाड़ा राजा ने अपना आश्रित बना कर यहीं बून्दी ही रखा।

काका सुत धोंकल कुमार फतमल्ल उक्त दुव,
बीकापुर नृप अनुज अजब तनया व्याहत हुव।
चन्द्रकुमरि आंनदकुमरि क्रम सन अभिधा करि,

जैपुर बिरचि बिवाह बिंद सोदर आये बरि।
रहि अचिर परे पट्टनिसमर जे जुग जनक पितृव्य जुत।
अल्पायु बीज इनकेहु इम सके जनमि सुता न सुत॥३१॥

हे स्वामी! आपके काका के पुत्र दो चचेरे भाई धोंकलसिंह और फतहमल्ल दोनों ने बीकानेर के राजा के छोटे भाई अजबसिंह की बेटियों से विवाह किया। इनमें से बड़ी बेटी चन्द्रकुमारी नामक थी तो छोटी वाली आनन्दकुमारी। ये दोनों दूल्हे जो सगे भाई थे जयपुर जा कर अपना विवाह कर आए जो थोड़े ही दिनों बाद में हुए पाटण के युद्ध में अपने पिता और चाचा सहित मारे गए। चूंकि ये विवाह के थोड़े ही दिनों बाद और अल्पायु में ही काम आए इसलिए इन दोनों के कोई पुत्र अथवा पुत्री नहीं जन्मी अर्थात् वे दोनों निसन्तान मरे।

भोमसिंह इन्ह अनुज अप्प ब्याह्यो रचि उच्छव,
नगर ऊमरी नाम भनित सीसोद बंस भव।
भीम सुता महताबकुमरि ख्यापित अभिधाकरि,
पुत्री दुव इक पुत्र प्रकट हुव तास गर्भ परि।
तँह अजबकुमरि जेठी सुता कृष्णाकुमरि दूजी कथित।
सुत बिस्वनाथ इनसों अनुज बिनु निकेत जो अब व्यथित॥३२॥

इन दोनों का छोटा भाई भोमसिंह था जिसका विवाह हे राजा! आप स्वयं ने उत्सवपूर्वक किया जो ऊमरी नामक पुर के सीसोदिया वंश के शासक भीमसिंह की पुत्री महताब कुमारी के साथ हुआ था। इसके दो पुत्रियाँ और एक पुत्र जन्में। इनमें से ज्येष्ठ सुता अजबकुमारी और दूसरी कृष्णकुमारी कही गई। दोनों बहिनों से छोटा एक भाई विश्वनाथ जन्मा जो वर्तमान में बिना किसी ठौर-ठिकाने (जागीर) के व्यथित है।

दोहा

भोम तनुज खवासि भव, बलदेव सु मृत बाल।
इक खवासि भव अंगजा, नवनंदा इहिं काल॥३३॥
सेर तनय जयसिंह सो, प्रभु ब्याह्यो हित खुल्लि।
तनया देवीसिंह की, डोला बुंदिय बुल्लि॥३४॥

कुल भटियानी नाम करि, कहियत बदनकुमारी।
सिसु इक मृत व्हैं तस सुता, न सके नामहु पारि ॥३५॥
राजाउति ब्याह्यो बिजय, राजकुमरि अभिधान।
ग्राम खजूरी धाम भव, उदय सुता मतिमान ॥३६॥
इक्क सुता याकै भई न पर्‌यो तासहु नाम।
अल्प आयु लहि पंच अह, जो परलोक जगाम ॥३७॥

भोमसिंह की एक पासवान के गर्भ से भी बलदेव नामक पुत्र हुआ था जो बचपन में ही मर गया और पासवान की कोख से एक पुत्री ने भी जन्म लिया। वह नवनंदा नामक अभी भी विद्यमान है। हे स्वामी! आपने शेरसिंह के पुत्र जयसिंह का विवाह भी पूरी धूमधाम से किया। इसके लिए आपने भाटी वंश के देवीसिंह की पुत्री बदनकुमारी नामक भटियानी का डोला यहीं बून्दी मंगवाया था। इस बदनकुमारी की कोख से एक पुत्री जन्मी पर मृत, इसलिए इसका नाम भी नहीं रखा जा सका। जयसिंह के भाई विजयसिंह ने खजूरी गाँव के राजावत जागीरदार उदयसिंह की पुत्री राज कुमारी से विवाह किया। इसके भी एक पुत्री जन्मी जो मात्र पाँच दिन जीवित रही। इतनी अल्प आयु में मरने के कारण उसका नामकरण संस्कार भी सम्पन्न नहीं हो सका था।

चूडाल दोहा

संभू देवीसिंह सुत, दुर्गापुर पति व्याह तीन किय।
इक नारव मुहुकम सुता, चद्रकुमरि पुर लाव व्याहि लिय ॥३८॥
तखतकुमरि दूजी बधू, चालुक रत्नसुता सु लई बरि।
कूरम सुरतानोत कुल, लघु आनंदकुमारि प्रीति धरि ॥३९॥
संतति संभूसिंह कै, पंच तहाँ सुत च्यारि सुता इक।
इक प्रथमा इक अंतिमा, तनया जूत दूजी हु जन्य त्रिक ॥४०॥
इन पंच मै इक अनुज, बच्यो नाम ओंकार आयुबल।
इतर गये तजि तजि असुन, तनया तनय बिहाइ छोनि तल ॥४१॥

देवीसिंह का पुत्र शंभुसिंह जो दुर्गापुर का जागीरदार था ने अपने तीन विवाह रचाये। पहला विवाह लावपुर के नरुका मुहुकमसिंह की पुत्री चन्द्रकुमारी

के साथ किया। दूसरा विवाह चालुक्य रत्नसिंह की बेटी तखतकुमारी से किया। तीसरा विवाह शंभुसिंह ने थोड़ें दिनों बाद ही सुरतानोत कछवाहा कुल की कन्या आनन्दकुमारी के साथ किया। तीनों पत्नियों से कुल मिला कर शंभुसिंह के पाँच संतानें हुई। जिनमें चार पुत्र और एक पुत्री थी। इन संतानों में से एक पहली पत्नी से और एक अन्तिम तीसरी पत्नी से शेष तीन दूसरी पत्नी से उत्पन्न हुई पर दुर्भाग्य से इन पाँचों सन्तानों में सबसे छोटा जो पुत्र था एक वहीं ओंकारसिंह आयुष्यबल के कारण जीवित रहा शेष चारों पुत्र-पुत्रियाँ इस संसार को छोड़ गई।

उपयम त्रय संभू अनुज, क्रम सूचित सिवदानसिंह किय।
जेठी राजाउत्ति तहँ, नाम सु चंद्रकुमारि बरी प्रिय।।४२।।

बरी जवाहिरकुमरि बलि, ताही कुल दूजी हु दिष्ट बस।
जेठी मुव सुव इक्क जनि, तात सुनहु सिवराज नाम तस।।४३।।

छत्रसिंह तनुजा चतुर, रट्ठऊरि तीजी हु बरी बर।
ग्राम कचोले करि गमन, ब्रजकुमरी सिरदारसिंह हर।।४४।।

ब्याह उभय सांमत सुत, परन्यों इत बलदेव कापरनि।
सुत चतुष्क अरु दुव सुता, जो सप्रज हुव तोक इतै जनि।।४५।।

शंभुसिंह के छोटे भाई शिवदानसिंह ने भी तीन विवाह किए। उसने अपना पहला विवाह राजावत वंशीय चन्द्रकुमारी से किया। इसी कुल की दूसरी कन्या जवाहर कुमारी से शिवदानसिंह ने विवाह कर उसे अपनी दूसरी पत्नी बनाया। शिवदानसिंह की पहली पत्नी एक बच्चे को जन्म दे कर जिसका नाम शिवराज था भगवान को प्यारी हो गई तब उसने सरदारसिंह के पौत्र राठौड़ छत्रसिंह की चतुर कन्या से अपना तीसरा विवाह रचाया। शिवदानसिंह ने कचोले नगर में जाकर ब्रजकुमारी से विवाह रचा कर उसे अपनी तीसरी पत्नी बनाया। इधर सामंतसिंह के पुत्र और कापरनी के स्वामी बलदेवसिंह ने दो विवाह किए। उसकी दोनों पत्नियों ने चार पुत्रों और दो पुत्रियों को जन्म दिया।

जैठी पतनी जादवी, जो आंनदकुमारि नाम करि।
सर मथुरापुर जाइ सो, लई मनोहरसिंह सुता बरि।।४६।।

रठ्ठऊरि दूजी बधू, जो महताबकुमारि बरी बर।
कमन सुता भूपाल की, इन्द्र फतैगढ जाइ दीप हर।।४७।।

त्रय जेठी सुत सुतन मै, हलधर तिम हरदेव नाम हुव।
अनुज सु बैरीसाल अरु, दूजी कै सुत इक्क सुता दुव।।४८।।

सुत दुर्जनसल्ल रु सुता, राजकुमरि खुसहालकुमरि जँहँ।
द्रंग सल्हानाँ दिय बडी, कुल कंबध तखतेस बिंद कहँ।।४९।।

बलदेवसिंह ने अपना पहला विवाह सरमथुरा नामक पुर में जा कर रचाया और यादव मनोहरसिंह की पुत्री आनन्दकुमारी को अपनी ज्येष्ठ पत्नी बनाया। राठौड़ वंशीय महताब कुमारी नामक भूपालसिंह की सुन्दर कन्या से फतहगढ जाकर दीपसिंह के इस वशंज ने दूसरा विवाह किया। बलदेव को अपनी ज्येष्ठ पत्नी की कोख से तीन संतानें पुत्र रूप में प्राप्त हुईं उनके नाम क्रमश: हलधर, हरदेव और बैरीसाल थे। वहीं दूसरी पत्नी की कोख से एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्र का नाम दुर्जनशाल और पुत्री का नाम खुशहालकुमारी रखा गया। कुमारी खुशहालकुमारी का विवाह सैलाना नगर के राठौड़ राजा तखतसिंह से हुआ।

कृष्ण बिरुद बलदेव के, अनुजन इक ब्याह करे इम।
प्रथित जाइ सिवराजपुर, तकि कबंध चंदेल बंस तिम।।५०।।

क्रमकरि नाम बंधून के, उमरावकुमरि कंचनकुमरि दुव।
इनमैं इक कै अंगजा, स्यामकुमरि बिरुदेस गेह हुव।।५१।।

इम अनुजन जुत रावरे, व्याह प्रजा क्रम संग बखानित।
सब संतति उपयम सुनहु, अवसर अब प्रभु राम प्रमानित।।५२।।

बलदेवसिंह के दोनों छोटे भाइयों यथा कृष्णसिंह और बिरुदसिंह ने अपना एक-एक विवाह इस प्रकार रचाया कि उन्होंने शिवराजपुर जाकर प्रसिद्ध राठौड़ और चंदेल वंश की क्रमश: उमरावकुमारी और कंचनकुमारी से शादी की। इन दोनों भाइयों में से एक छोटे भाई विरुदसिंह के एक पुत्री श्यामकुमारी जन्मी। हे राजा रामसिंह! मैं (ग्रंथकार) यहाँ आपके छोटे भाइयों के विवाहों और उनकी सन्ततियों का क्रमश: वर्णन करता हूँ। यह आपके चरित्र का प्रसंग है इसीलिए यह वर्णन यहाँ प्रासंगिक है। आप सुनें।

षट्पात्

जगतसिंह नृप जबहि प्रचुर रानिन परन्यौं पहु,
भट्टी जैपुर सुभट बनैं दै तब कन्या बहु।
जहँ राउल कुल देवराज कुल जात जथाक्रम,
बुंदी पठयो बिजय सुता डोला इक सत्तम।
अरु मेघसिंह पठयो अपर दुव डोला आये बिदित।
पट्टप कुमार भीम सु प्रगुन परिनाये प्रभु हेरि हित॥५३॥

जयपुर के कछवाहा राजा जगतसिंह के बहुत सारी रानियाँ थी। उसने बहुत सारे विवाह रचाये। बहुविवाह में रुचि होने से अपनी बेटियाँ राजा को दे कर भाटी जयपुर के उमराव बन बैठे। रावल देवराज (जैसलमेर) के कुल में जन्में इन भाटियों में से एक विजयसिंह ने अपनी सुन्दर पुत्री का डोला बून्दी भेजा इसी तरह दूसरा डोला अपनी पुत्री का भाटी मेघसिंह ने भी भेजा। हाड़ा राजा ने तब अपने पाटवी कुमार भीमसिंह से उन दोनों भाटी कन्याओं का विवाह करवा दिया।

कन्या जीवनकुमरि बिजय तनया पहिंलैं बरि,
ब्याही बलि बर बरनि मेघतनया ऋद्धिकुमरी।
कथित गुलाबकुमरि कमन तीजी कुमरानिय,
बंसबहाला ब्याहि उचित अति जस घर आनिय।
रघुनाथसिंह तदनुज कुमर मित जीवित पास समय॥
नागोद द्रंग मातुल निलय, बपु उज्झिय दस अब्द वय॥५४॥

इनमें से कुमार भीमसिंह ने भाटी विजयसिंह की पुत्री जीवनकुमारी का वरण पहले किया और फिर श्रेष्ठ कुमार ने मेघसिंह की पुत्री ऋद्धिकुमारी से विवाह रचाया। कुमार भीमसिंह ने अपना तीसरा विवाह बांसवाड़ा जा कर गुलाब कुमारी से किया। यह विवाह राजा ने पूरी धूमधाम के साथ सम्पन्न कर यश अर्जित किया। राजकुमार भीमसिंह का छोटा भाई रघुनाथसिंह अल्प आयु वाला हुआ। वह अपने मामा के घर नागोदपुर में मात्र दस वर्ष की उम्र में ही पावस ऋतु के समय में मर गया था।

चूडाल दोहा

जाठरि धारि सुरूपलता जिहिं जामि सकार की जच्चा बजी जनि।
अर्जुन जेठो कुमार वहै परन्यो पहिलै मह झालरापट्टनि॥

सो मदनाधिप झल्ल सुता महिला बडी खूबकुमारी बधू मनि।
आयो निजोचित ब्याहि यहाँ हित सौं कविलोकन दारिद कों हनि ।।५५ ।।

राजा रामसिंह के शकार साला, (जो अविवाहिता स्त्री का भाई हो) की बहिन अर्थात् राजा रामसिंह की पासवान सरूपलता जिसे जन्म दे कर प्रसूता कहलाई इस जेष्ठ कुमार अर्जुनसिंह ने अपना पहला विवाह झालारापाटन जा कर किया। उसने मदनसिंह झाला की पुत्री खूबकुमारी से विवाह कर उसे अपनी पहली पत्नी बनाया। अजुर्नसिंह के इस निजोचित (उसके लिए उचित) विवाह में राजा ने खूब धन खर्च किया और दान दे कर कवियों का दारिद्र्य दूर किया।

घनाक्षरी

पीछैं जाइ तीन हि कुमार व्याहे जोधपुर,
अर्जुन द्वितीय बरी सूरजकुमारि इत्त।।
त्यों कल्यानकुमरि बिवाह्यो जगन्नाथ तहाँ,
एतो द्वै हि भूप तखतेस की सुना उचित।।
सेवकीपुरेस नृप मान को खवासि सुत,
नाम सिवनाथ ताकी नंदनी हुलास हित।।
नामकरि राज सु कुमार कुमरानी निज,
मध्यम कुमार व्याह्यो गोवर्धन साम्य मित्त ।।५६ ।।

हे राजा रामसिंह! इसके बाद (पासवान से उत्पन्न) आपके तीनों कुमारों ने जोधपुर जा कर विवाह रचाए। सबसे पहले अजुर्नसिंह ने सूरजकुमारी के साथ विवाह कर उसे अपनी दूसरी पत्नी बनाया। फिर कल्यानकुमारी से कुमार जगन्नाथ ने विवाह रचाया। ये दोनों राजा तखतसिंह की उचित पुत्रियाँ थी अर्थात् पासवानों से नहीं जन्मीं थी। जोधपुर के राजा मानसिंह की पासवान का पुत्र शिवनाथ जो सेवकीपुरा का जागीरदार था की पुत्री हुलास कुमारी से दूसरे कुमार गोवधर्नसिंह ने विवाह रचाकर उसे अपनी कुँवरानी बनाया। यह विवाह संबंधों में बराबरी के प्रमाण वाला था।

जोधपुर भूप मानसिंह कै खवासि जात,
पुत्र लालसिंह नाम द्रंग हरसोर पति।।

सूनु ताको सुद्धकुलजा भव प्रतापसिंह,
बिहित बरात सौं बुलाइ बुंदी मंजु मति॥
व्याकरन आदि बहु विद्या मैं प्रबीन बुद्धि,
सो सुभद्रकुमरि खवासि सुता रम्य रति ॥
दुल्लही बनाइ लग्नकाल तिहिँ दुल्लहको,
आप प्रभु कूकुद बिबाह दै सुदाय अति॥५७॥

जोधपुर के राजा मानसिंह की पासवान से उत्पन्न पुत्र लालसिंह था जो हरसोर नामक गाँव का ठाकुर था। इसका एक पुत्र जो शुद्ध कुल की पत्नी से उत्पन्न था उस प्रताप नामक राठौड़ को हाड़ा राजा ने बरात सहित बूँदी आमंत्रित किया। सुन्दर बुद्धिवाली सुभद्राकुमारी नामक जो पासवान की पुत्री थी। इस व्याकरण सहित काव्य में भी प्रवीन मति रखने वाली कुमारी को दुल्हन बनाकर शुभ लग्नों के मुहूर्त में राजा ने प्रतापसिंह के साथ ब्याहा। हे राजा रामसिंह! विवाह में आभूषणों सहित कन्यादान करने वाले आपने उसे श्रेष्ठ दहेज दे कर ससुराल को विदा किया।

राम प्रभु रावरे पितृव्यसूनु गोठपुर,
भोमसिंह स्वामी के निवारें प्रतिकूल भनि ॥
राव फतमल्ल उनियारा के अधीस अर्थ,
जेठी सुता अजबकुमारी ब्याही मोद जनि॥
न गई नरूकन कै कन्या इतकी कबहु,
बहुत कहाई आप तदपि स्वतन्त्र बनि॥
ब्याह यह कीनौं दिष्ट तास फल दीनौं बेग,
आलय बिहीन फिरै खीन अहि ज्यों अमनि॥५८ ॥

हे राजा रामसिंह! आपके चचेरे भाई गोठड़ा के ठाकुर भोमसिंह ने आपके मना करने के बावजूद आपकी इच्छा के प्रतिकूल जाकर उणियारा के जागीरदार राव फतहमल के साथ अपनी बड़ी लड़की अजबकुमारी का विवाह मन में मोद करते हुए उत्सवपूर्वक सम्पन्न किया। आपने बहुत बार कहलाया कि आज से पहले बूँदी के हाड़ाओं की कोई कन्या नरूका क्षत्रियों के घर नहीं ब्याही गई है। तुम्हें भी परम्परा का पालन करते हुए ऐसा नहीं

करना चाहिए पर इस स्वतंत्रमति भोमसिंह ने आपकी राय को नही मानते हुए विवाह किया। तभी उसके भाग्य ने उसे तत्काल फल दे दिया कि वह अब घरविहीन हो मणिरहित सर्प की तरह इधर-उधर डोलता है।

चूडाल दोहा

व्याह इक्क बलदेव सुत, हलधर कापरनीस बिवाहिय।
मेरतिया रइयां अधिप, देवसुता......... कुमरि तिय॥५९॥

तस औरस प्रकटे तनय, राजसिंह अरु बीरसिंह दुब।
जो हलधर इनको जनक, होत तरुन बय आसु अनसु हुव॥६०॥

उक्त उभय हलधर अनुज, गलथूनी कछवाह कनी दुव।
.....कुमरि....कुमरि, सह क्रम ब्याहि गृहस्थ हड्डु हुव॥६१॥

राजसिंह पुर कापरनि, सासक सिसु उपयाम इक्क किय।
कछवाहन के रामपुर, ...कुमरि स नाम सबय तिय॥६२॥

इम सबही भावी इहाँ, सब बंधुन प्रभु के बिवाह सुत।
सब संतानन ब्याह बलि, जंपिय अवसर रीति जथा जुत॥६३॥

कापरनी के जागीरदार बलदेवसिंह हाड़ा के पुत्र हलधर ने अपना पहला विवाह मारवाड़ के रियां गाँव के ठाकूर मेड़तिया राठौड़ देवसिंह की पुत्री............ कुमारी के साथ किया। हलधर के दो औरस पुत्र जन्में पहला राजसिंह और दूसरा वीरसिंह। इन दोनों का पिता हलधर तरुणावस्था में ही मर गया। इसके दोनों छोटे भाईयों ने गलथूनी के कछवाहा ठाकुर की दो पुत्रियों से एक ही लग्न पर विवाह रचाया और गृहस्थ बने। कापरनी के शासक बलदेवसिंह के पुत्र राजसिंह ने बाल्यावस्था में एक विवाह किया। यह विवाह उसने रामपुर के कछवाहा स्वामी की समवयस्क पुत्री........... नामक से किया। हे राजा रामसिंह! मैं आगे भविष्य में सम्पन्न होने वाले आपके भाइयों के पुत्रों के विवाह और उनकी सन्तानों का विवरण यथा प्रसंग इसी प्रकार कहूँगा।

दोहा

कारन पाइ प्रसंग कहुँ, भुत कथा क्रम भूप।
बर्तमान अब वर्णियत, अप्प चरित अनुरूप॥६४॥

अब मैं यहाँ प्रसंग का कारण पा कर हे स्वामी! आपकी भूत काल की पूरी कथा को वर्तमान में (यहाँ) आपके चरित्र के वर्णन में कहता हूँ।

पादाकुलकम्

धाइ पनाँ प्रभु अप्प धवाये, इम कौमार लंघि इत आये।
अवसर पर क्रीड़न क्रम आयो, बलि पौगंड अनेह बितायो॥६५॥

दसम अब्द अंतर दिनदुल्लह, स्वामी हुव धरि धर्म नीति सह।
तबहि कालकीडा सब त्यागी, राजन रीति गही अनुरागी॥६६॥

सद्धि सुकवि बुध भटन समागम, आदरि हित समुझे सब आगम।
श्रीगुरु आसांनद समग्या, बरनैं आदि नृपन बरिब्रज्या॥६७॥

पुनि कवि जनक चंड खिनपावत, सन्निधि रहि पद्धति समुझावत।
सह दुर्जनसल्लादिं वयस्यन,महिप बिधेय सुनै सु धरैं मन॥६८॥

हे स्वामी! आपको शैशवावस्था में पन्ना नामक धाय ने अपना दूध पिलाया था। उस अवस्था को पार कर कुमारावस्था में प्रवेश कर क्रीड़ा के साथ आपने अपना पौगंड काल बिताया। (पाँच से दस वर्ष की अवस्था पौगंड कहलाती है) जब आपकी उम्र दस वर्ष की हुई तब प्रतिदिन दूल्हे के समान सजधज कर रहने वाले की तरह रहते हुए आपने धर्म और नीति की राह पकड़ी और इस समय आपने क्रीड़ा आदि छोड़ कर गंभीर हो राजाओं की रीति का अनुसरण आरंभ किया। निरंतर पण्डितों, कवियों और बुद्धिजीवियों के साथ समागम करते हुए सारे शास्त्रों का अध्ययन किया। आपकी सभा में आपके गुरु आशानंद ने तब प्राचीन राजाओं के आचरण का वर्णन आरंभ किया ताकि आप उन्हें जान सकें। गुरु के अतिरिक्त कवि (ग्रंथकार) के पिता चंडीदान मीसण आपके समीप रहते हुए अवसर मिलते ही राज की पद्धति समझाने का कार्य करने लगे। इसे अपने समवयस्क दुर्जनशाल के साथ मन लगा कर राजा सुनने-समझने का उपक्रम करने लगा और धारण करने योग्य बातों को मन में धारण करने लगा।

दोहा

बिधि सह लिन्नौं ताहि बय, बेद बिहित उपवीत।
सावित्री जप निज समय, सद्दै पट्टुन प्रतीत॥६९॥

सौभाग्य से राजा विधि-विधान से वह करने लगा जो उम्र के अनुसार करने योग्य कार्य थे। वेद के कथनानुसार राजा ने जनेऊ पहनी और गायत्री मंत्र का जाप भी यथा समय उस चतुर राजा (आप) ने साधा।

षट्पात

पाइ दसम सम पट्ट सुपहु पटु राम सम्हारिय,
श्रुति निषेध बिधि समुझि हेय आदेय निहारिय।
व्याकृति शिक्षा वृत कल्प ज्योतिष निरुक्त क्रम,
बदन नक्र पय बाहु नयन श्रुति निज छ अंग छम।
श्रुति चउ ऋगादि बिद्यादसक मीमांसा पुनि तर्क मत,
स्मृति अरु पुरान चउदह सुपहु श्रवन किन्न बिद्या ततहु ॥७०॥

जब राजा रामसिंह ने दस वर्ष की अवस्था ली तब दसवें वर्ष में बून्दी की राजगद्दी पा कर वेदों में कहे गए निषेधों और विधि-विधान को अच्छी तरह समझ कर राजा ने त्यागने योग्य को त्यागा और ग्रहण करने योग्य कर्तव्यों को जाना। व्याकरण, शिक्षा, छन्द, कल्प, (श्रोतसूत्र) ज्योतिष और निरुक्त जो यथा क्रम से वेद के मुख, नासिका, पैर, हाथ, नेत्र और कर्ण ये छः अंग कहलाते है का श्रवण राजा ने किया। वेद के इन छह अंगो (वेदांग) के साथ चारों वेद और मीमांसा, तर्कशास्त्र, स्मृति तथा पुराण इन कुल चौदह विद्याओं का ज्ञान लेने को राजा रामसिंह ने उसी अवस्था (दस वर्ष) में ध्यानपूर्वक सब सुना।

दोहा

रचहिँ नित्य संसद रसिक, बुंधजन दुलभहु बुल्हि।
नाहिँ लखैं व्यय ओर नृप, तत्व लखन दृढ तुल्हि॥७१॥
पहु तद्वय पुच्छिय पटुन, अज्जावत्त अगार।
कति हित मग्ग कुमग्ग कति, कति अद्वग [1]अनुकार॥७२॥

वह संसद रसिक राजा नित्यप्रति राजसभा का आयोजन कर उसमें दुलर्भ पंडितों को आमंत्रित करता और तत्व ग्रहण करने की दृढ मान्यता को

टिप्पणी : १. दोहा स. ७२ के चौथे और अन्तिम चरण में 'अद्वग' शब्द आया है जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता कदाचित यहाँ शब्द 'अध्वग' रहा हो जो पथिक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और लिपिकर्ता की भूल मे ऐसा हो गया लगता है-सम्पादक

प्राथमिकता प्रदान कर खर्च की ओर नहीं देखता। राजा रामसिंह ने उसी उम्र में विद्धजनों से पूछा कि आर्यावर्त्त के हित में अर्थात् देश हित के मार्ग कितने है और कुमार्ग (देश अहित के मार्ग) कितने है? और देश के हित सोचने वाले यात्री को किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

षट्पात्

सुरिन अक्खिय सुनहु सिसुहि पृच्छक पहु सादर,
श्रुति मत कहियत सरनि ताहि उज्झन कुसरनि तर।
मन्नहु श्रुति सु त्रिमग्ग चरम ,खट भेद बिचारहु,
अधिकारी जन उचित धीन नानागति धारहु।
समुझहु त्रिमग्ग पहिलैं श्रुतिहु जहँ कृति पुब्ब सु अति जड़न ।
मध्य न उपास्ति दूजो महिप अद्वय तीजो उत्तमन ॥७३॥

राजा की जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में पंडितों ने कहा कि हे पूछने वाले बालक राजा! आदर सहित सुनो! वेद का मत मार्ग कहा जाता है उसका छोड़ना (अत्यन्त) कुमार्ग कहलाता है आप वेद के तीन मार्ग जानों जिनमें अन्तिम मार्ग के छः भेद कहे गए हैं। अधिकारी लोकों की बुद्धि के अनुसार इसके नाना प्रकार हुए हैं। आप पहले वेद के तीन मार्ग समझो। पहला मार्ग कर्ममार्ग (कर्मकाण्ड) कहलाता है जो एकदम अज्ञानियों के लिए है। हे राजा! दूसरा उपासना मार्ग है जो मध्य लोकों (जिनको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ और कर्मो में आसक्त हों) के लिए है और तीसरा मार्ग अद्वैत मार्ग है जो उत्तम लोकों के लिए है।

दोहा

तीजो मग्गहु छबिधि तँहँ, पहिलो त्रिक प्राकार।
उत्तर उत्तर त्रिक अपर, सुभ फल मति अनुसार॥७४॥
जैन बौद्ध है कुपथ जिम, लोकायत गिनि लेहु।
बौद्ध तहाँ चउ भेद बलि, इम नास्तिक छ हि एहु॥७५॥ *
सौत्रांतिक बैभाषिक रु, योगाचार हु आहि।
चउम माध्यमिक च्यारि ही, सौगत सून्य समाहि॥७६॥

त्रि प्रथम श्रुति कहिय तहँ, सहसँअसी श्रुति मान।
कर्म धर्म हेतुक करन, पहिलो यह सोपान॥७७॥

निजमति बोध रु भक्ति जुग , पाय हेंतु प्रकटैन।
तिन अध्वग अंधन तरन, यह दिखात श्रुति अैन॥७८॥

हे राजा! तीसरा मार्ग ज्ञान मार्ग भी कहलाता है जो छह प्रकार का कहा

टिप्पणी :- जैनमत का कुछ विवेचन हमने इस ग्रन्थ की चतुर्थराशि में बीसलदेव के चरित्र में लिखा है उसके उपरान्त प्रकरणवश कुछ यहाँ पर लिखा जाता है कि, कर्मफल को देने वाले और जगत का नित्यमूल कारण जो ईश्वर है उसका स्वीकार यह (जैन) मत नहीं करता। जैन प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण मानते हैं, वे आगम सर्वज्ञ के शब्द है। मनुष्य ही उत्तम ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक् चरित्र से आवरण का नाश कर सर्वज्ञ बन सकता है ''जिनका जैनी सर्वज्ञ पुरुष मानते हैं ये चौबीस तो अवसर्पिणी (भूतकाल) मे हो गये, चौबीस वर्तमानकाल में हुए और चौबीस उत्सर्पिणी (भविष्य काल) में होवेंगे और वर्तमान काल में पहले ऋषभदेव तेईसवें पार्श्वनाथ और चौबीसवें महावीर हुए जिन का जैनियों मे पूजन होता है'' जीव मात्र पर दया करने को वे मुख्य धर्म समझते हैं, इस मत में जीव और अजीव ये दो मुख्य तत्व माने जाते हैं, ये दोनों अनादि और अनन्त हैं, कितने एक पदार्थ की व्यवस्था नौ प्रकार की करते हैं अर्थात् जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। इनके भी कई अवांतर भेद मानते हैं, जैनों की प्रसिद्धप्रक्रिया ''सप्तभंगीनय'' है। यथा-''स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिचनास्ति, स्यादवक्तव्य., स्यादस्तिचावक्तव्य., स्यान्नास्तिचावक्तव्य , स्यादस्तिनास्तिचावक्तव्य ॥'' इन सात भंगियों का स्वीकार करने से वे स्याद्वादी कहलाते हैं। इनका विशेष वर्णन 'सर्वदर्शनसंग्रह' में देखो। जो जैन संसार का त्याग करते हैं वे 'यति' और जो गृहस्थाश्रम में रहते हैं वे 'श्रावक' कहलाते हैं। जैनों में दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो मुख्य वर्ग हैं, इनके लक्षण और भेद विस्तार के भय से यहाँ नहीं लिख सकते।

गया है। जिनमें पहले तीन प्रकार न्याय, पूर्वमीमांसा, और वैशेषिक नामक हैं (ये तीनों मार्ग द्वैतवादी हैं अर्थात् जीव और ब्रह्म को भिन्न मानने वाले हैं) शेष तीन मार्ग सांख्य,योग और उत्तरमीमांसा (वेदान्त) कहलाते हैं। ये तीनों उत्तर मार्ग (बाद वाले) बुद्धि के अनुसार उत्तरोतर शुभ फलदायक हैं। वेद को नहीं मानने वाले कुमार्ग छह हैं जिनमें से एक जैन, दूसरा बौद्ध (जो चार प्रकार का है) और तीसरा चार्वाक (अर्थात् छठा क्योंकि एक जैन मत+चार बौद्ध मत +एक चार्वाक मत इस तरह कुल छह कुमार्ग हुए) का मार्ग है। ये छहों नास्तिक कहलाते हैं। बौद्ध धर्म को चार मतों वाला कहा गया है उसके चारों मत इस प्रकार माने जाते है। पहला सौतान्तिक दूसरा वैभाषिक, तीसरा योगाचार और चौथा माध्यमिक। बोद्ध के चारों मत शून्य भेद में समाहित होते है। अब मैं वेद के उपरोक्त तीन मार्गो को कहता हूँ इनमें से पहला कर्मकाण्ड है जिसमें कर्म और धर्म करने के निमित्त अस्सी हजार श्रुतियाँ है। कर्म और धर्म करने की यह पहली सीढ़ी है। पाप के कारण जिनकी अपनी बुद्धि में ज्ञान और भक्ति प्रकट नहीं होते ऐसे दुनियादार अंधे पथिकों को भवसागर तिरने के लिए वेद यह मार्ग दिखलाता है।

कर्म उचित करतहि करत, इहिं मग अध्वग आइ॥
गम्य सुद्धमति व्है गहत, बहु भव मिजल बिताइ॥७९॥

जे संसृति सन बिरत जन, स्वसुखहिं जानि सकै न॥
पथ तिन्ह मध्य उपासना, प्रतिगति इमहु पकै न॥८०॥
यह अक्खत सोलहसंहस, श्रुति द्वितीय सोपान॥
जन्म मरन औषध यह हु, प्रभुदासत्व प्रधान॥८१॥
च्यारिसहँस खिल श्रुति चवहिं, ब्रह्म जीव इक बोध॥
आरोहन तीजो यहै, रंचन जहँ थिति रोध॥८२॥

बौद्धमत का दिग्दर्शन

इस मत के आदि प्रवर्तक कपिलवस्तु के गौतम कुल के शाक्य राजा शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ हैं। इस मत में प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण माने गये हैं। चार भावना से पुरुषार्थ की प्राप्ति मानी जाती है। यथा "सब क्षणिक है, सब दुःख है, सब स्वलक्षण है (एक जैसा दूसरा नहीं) सब शून्य है, भावमात्र सत् भी नहीं है, असत् भी नहीं है, सदसत् नहीं है ऐसा भी नहीं है, वह अनिर्वचनीय और निस्वभाव है, एक ही गुरु के एक ही उपदेश पर चार शिष्यों ने चार प्रकार के सिद्धान्त बांधे, यथा सौत्रान्तिक तो बाह्य वस्तु को केवल शून्य नहीं मानते परन्तु उसको अनुमेय मानते हैं, वैभाषिक, बाह्यपदार्थ को प्रत्यक्ष मानते हैं और सविकल्प ज्ञान को अप्रमाण और निर्विकल्प ज्ञान को प्रमाण मानते हैं। योगाचार, अज्ञात के ज्ञान की प्राप्ति के लिये पूछने को 'योग' और गुरु के कथित अर्थ के अंगीकार को "आचार" कहते हैं, चारों भावना को निर्वाण का हेतु मानते हैं और बाह्य पदार्थ को शून्य मानते हैं परन्तु भीतर अर्थ बुद्धि का स्वीकार करते हैं। माध्यमिक, एक ही पदार्थ में भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न कल्पना होने से पदार्थ मात्र को केवल शून्य रूप मानकर सर्व शून्यत्व का अंगीकार करते हैं। बौद्धों में यहाँ चार भेद हैं। जिनके सिद्धान्त ऊपर लिखे अनुसार हैं। इनका अधिक विवेचन स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं हो सकता।"

चार्वाक मत की संक्षेप सूचना

इस मत का आदि प्रवर्तक बृहस्पति कहा जाता है, इसमें ज्ञान साधन के लिये केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाता है, अनुमान और शब्द प्रमाण को नहीं मानते, अतः ईश्वर और परलोक प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध न होने के कारण वे इन दोनों को नहीं मानते हैं, सृष्टि को स्वभाव से मानकर इसका कोई कर्ता नहीं मानते, आत्मा को देह से अभिन्न मानकर देह के सुख को ही पुरुषार्थ मानते हैं और मरने को ही मोक्ष मानते हैं, इसी मत का दूसरा नाम लोकायत है (लोक में फैला हुआ), अर्थात् इसमें अर्थ और काम की प्राप्ति ही पुरुषार्थ है और इन दोनों की कामना लोक में स्वतः और सर्वत्र देखी जाती है। इनके सिद्धान्त के कुछ श्लोक संसार में प्रसिद्ध हैं उनमें से तीन श्लोक पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ दिये जाते हैं।

श्लोक

त्रयो वेदस्य कर्तारो भांडधूर्त निशाचराः। जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥१॥
यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥२॥
पतिहीना तु या नारी पत्नीहीनश्च यः पुमान्। उभाभ्यां रण्डशण्डाभ्यां न दोषो मनुरब्रवीत्॥३॥ सम्पादक

हे राजा रामसिंह! उचित कर्मो को करते हुए संसारी इस यज्ञ मार्ग के पथिक बन कर कई जन्मों की मंजिलों को पार करते हुए निर्मल बुद्धि हो गम्य (अर्थात् पहुँचने योग्य) मुक्ति के स्थान पर पहुँचते हैं। जो मनुष्य संसार से तो विरक्त होते हैं पर आत्मसुख के ज्ञान (आत्मज्ञान) को नहीं जान सकते उनके लिए वेद मध्य का मार्ग उपासना (भक्ति) का बताते हैं परन्तु इस मार्ग के पथिक को एक ही जन्म में मुक्ति निश्चय हो ही जाए यह पक्का नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें द्वैत भाव बना रहता है। इस दूसरी सीढ़ी (मार्ग) को सोलह हजार श्रुतियाँ कहती हैं। इसमें ईश्वर का दास्य भाव प्रधान होने से यही जन्म-मरण की औषधि है। शेष चार हजार श्रुतियां ब्रह्म और जीव के एक होने का ज्ञान कहती हैं यह तीसरी सीढ़ी (मार्ग) है जिसमें मोक्षप्राप्ति अवश्य होती है। रंच मात्र भी कोई रुकावट नही होती।

पहिली सीढी कर्म पर, स्मृति पुरान सब सार्थ।
बामादिक भ्रामक बहुरि, पथ जिहिं निंद्य अपार्थ॥८३॥
भक्ति अनन्या भाखियत, सुभ दूजो सोपान।
पंच रात्र मुख ताहि पर, तांत्रिक ग्रंथ बितान॥८४॥
साधत यहहु उपासना, प्रभु व्है भक्ति प्रसन्न।
रचत भक्त उर बोध रवि, आकृत सब करि अन्न॥८५॥
तत्व बोध बिनु मुक्ति तिय, भोगी इतर भिरैंन।
सतत पुकारत बेदसिर, बारबार यह बैन॥८६॥
इहिं तीजे आरोह पर, श्रुतिसिर प्रमिति असेस।
व्याससूत्र तिनपर बहुरि, योग सांख्य त्रिक एस॥८७॥

ऊपर वर्णित कर्मकाण्ड रूपी पहली सीढ़ी पर स्मृति और पुराण हैं, वे तो सार्थक हैं पर जो वाम (कौल) मार्ग आदि भ्रम उत्पन्न करने वाले मार्ग हैं, वे निन्दनीय और अर्थशून्य माने जाते हैं। जिसमें अनन्या भक्ति (जिसमें भक्त को संसार में अन्य पदार्थ उसके समतुल्य नहीं लगता) हो वह दूसरी श्रेष्ठ सीढ़ी है जिस पर 'नारदपंचरात्र' आदि तांत्रिक ग्रंथों का विस्तार है। इस दूसरी सीढ़ी वाली भक्ति से यदि उपासना को साधा जाए तो ईश्वर प्रसन्न हो कर, आकृतिवान सभी प्रदार्थों का भक्षण (नष्ट) कर, भक्त के हृदय में ज्ञान का सूर्य उदय करते हैं। तत्व ज्ञान के बिना भोगी, मुक्ति रूपी स्त्री से नहीं भिड़ सकता इस बात की ताईद वेदों के सार रूप उपनिषद बारबार (निरंतर) करते हैं। इस तीसरी पीढ़ी पर प्रमाण वाले सारे 'उपनिषद' विद्यमान हैं। इन के अतिरिक्त 'व्यास सूत्र' (वेदान्त सूत्र) योग और सांख्य भी विद्यमान है अर्थात् तीसरी सीढ़ी पर वेदान्त उपनिषद योग और सांख्य तीनों हैं।

इतिश्री वंशभास्करे माहचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ बून्दीन्द्ररामसिंह चरित्रे रावराजारामसिंह पट्टोपवेशन ससोदररावराजाबिवाह सन्तानवर्णन रामसिंह श्रेष्ठशिक्षा श्रवण पण्डितसकाशधर्मवर्त्म प्रश्नवर्णनं प्रथमा.....मयूखः आदितः त्रिषष्ट्यधुत्तरत्रिशततमो मयूखः॥३६३॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि बून्दी के भूपति रामसिंह चरित्र में, रावराजा रामसिंह का बून्दी की गद्दी पर बैठना, भाइयों

सहित रावराजा के विवाह और संतानों का वर्णन, रामसिंह का श्रेष्ठ शिक्षा को सुनना और पण्डितों से धर्म मार्गो के पूछने का प्रथम मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तिरसठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रितभाषा

दोहा

उत्तरमीमांसा इहाँ, प्रथम उक्त सोपान।
यह हि मुक्ति फल याहि तैं, मुख्य बेद सिर मान॥ १॥

बाक्य तत्वमसि मुख बदत, जीव ब्रह्म इक जत्थ।
सत अनंत चित बोध सुख, सत्य अंसग समत्थ॥ २॥

सब प्राकृत कल्पित असत, जिम गुन माहिँ भुजंग।
केवल यह मन कल्पना, इक खिल आप अंभग॥ ३॥

हे राजा रामसिंह! पूर्व वर्णित तीसरी सीढ़ी पर उत्तरमीमांसा (वेदान्त) प्रथम है इसी से मुक्ति रूपी फल की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि उपनिषेदों से भी इसको मुख्य कहा गया है। जहाँ 'तत्वमसि' जैसे वाक्य जीव और जिस ब्रह्म की एकता कहते है इस ब्रह्म का स्वरूप सत्, अनन्त, चित, ज्ञान, आनन्द, सत्य, असंग और समर्थ वाला है। शेष प्रकृति सम्बन्धी सारे पदार्थ (संसार) कल्पित हैं और अस्थिर (असत्) हैं जैसे रस्सी के आकार में सर्पाकार होना कल्पित है वैसे ही यह जगत हमारे मन की कल्पना है। मात्र एक ईश्वर ही अखण्ड है।

षट्पात्

ब्रह्म स्वसुख प्रतिबिंब सहित जो प्रकृति त्रिगुन सम,
अधिष्टान जुत यह हि ईस कहियत अमुधोद्यम।
सत्व बिमल माया सु तत्थ यह बिंब ईस तिम,
मलिन अविद्या माँहिँ जीव तस बस अनेक जिम।
माया उपाधि ईस्वर अबस जीव अविद्योपाधि बस।
कारन सरीर ताकौं कहत अभिमंता तँहँ प्राज्ञ अस॥ ४॥

सुख रूप में ब्रह्म के प्रतिबिंब सहित जो तीन गुणों की (त्रिगुणात्मक, सत्व, तम, रज) साम्यावस्था है इसी को प्रकृति कहा जाता है। और इसका

अधिष्ठाता होने से ब्रह्म की संज्ञा ईश्वर (श्रेष्ठ स्वामी) है। जैसे इस माया में उस विशुद्ध आत्मा का बिंब ईश्वर कहलाता है उसी तरह अविद्या में अशुद्ध आत्मा जीव कहलाता है और इस अविद्या के वश में होने से वह अनेक होता है। माया की उपाधि से ईश्वर स्वतंत्र है और जीव अविद्या की उपाधि के कारण परतंत्र है। इसी को कारण स्वरूप कहा जाता है अर्थात् अविद्या में जीव की प्रथम बंधनावस्था को ही कारण शरीर कहते हैं तथा जीव जब इस कारण शरीर में अभिमान युक्त होता है तब उसे प्राज्ञ कहते हैं।

गीर्वाणभाषा

गुरूपजातिः

प्राज्ञस्य भोगाय तदीश्वरेच्छया तमः प्रधान प्रकृतेः समुत्थितम्।
ख वायु तेजों बु भुवः समाख्या शब्दादिकं प्राकृत भूतपंचकम्॥५॥

उक्त ईश्वर की इच्छा से प्राज्ञ शरीराभिमानी चेतन (जीव) के भोग (सुख-दुख) के अनुभव के लिए तम गुण प्रधान प्रकृति से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी नामक तत्व और उनके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँच गुण उत्पन्न हुए।

आर्या

पञ्चानां भूतानां सत्वांशैः पञ्च बुद्धिकरणानि।
श्रोत्रत्वग् दृग् रसन घ्राण समाख्यानि जातानि॥६॥
तैः सर्वैः सत्वांशैरन्तः करणं द्विधे ति वृत्तिभिदा।
तत्र विमर्शात्म मनो निश्चयवृत्यात्मिका बुद्धिः ॥७॥
भूतानां च रजोंशेः क्रमेण पञ्चैव कर्मकरणानि।
वाक पाणि पाद पायू पस्थ समाख्यानि जातानि॥८॥
पञ्चभिरेव रजोंशैरेतैः प्राण स पञ्च धा वृत्त्या।
प्राणापान समानोदान व्यानाः समाख्याभिः॥९॥

इन पाँचों तत्वों के सतोगुण अंश से क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाक नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। उन्हीं सतोगुण अंश से अंतःकरण हुआ जो वृत्ति भेद से दो प्रकार का है जिनमें विचारात्मक स्थिति वाला मन और निश्चयात्मक स्थिति वाली बुद्धि है। उक्त पंच महाभूतों के रजोगुण के

अंशों से क्रमशः वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हुई, इन्हीं रजोगुण के पाँच अंशों से प्राण उत्पन्न हुआ जो वृत्ति भेद से प्राण, अप्रान, समान, उदान, व्यान इन नामों से पाँच प्रकार का है।

धीन्द्रियपञ्चक कृतिखशरैः प्राणपञ्चकेश्च तथा।
मनसा धिया शरीरंसूक्ष्मंसप्तदशभि र्लिङ्गम्॥१०॥

प्राज्ञस्तु तदभिमानात्तैजस सञ्ज्ञामियात्स हि व्यष्टिः।
स हिरण्यगर्भ सञ्ज्ञामेतीश्वर एष तु समष्टिः॥११॥

येऽ विद्यावैविचत्र्याद्व्यष्ट्यव्यास्ते तु तैजसा नाना।
सर्वैषां तादात्म्यादीश्वर एकः समष्ट्याख्यः॥१२॥

व्यष्ट्यभिधानां भुक्त्यै सभोग्य भोगायतन मनुष्टातुम्।
पञ्चीकृतमीशेन प्रत्येकं पञ्चकं खादि॥१३॥

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि, इन सत्रह से सूक्ष्म शरीर बना जिसका दूसरा नाम लिंग शरीर है। उस सूक्ष्म शरीर के अंहकार से प्राज्ञा की तैजस संज्ञा हुई जो व्यष्टि रूप समष्टि का अंश अर्थात् एक देशव्यापी है और वही ईश्वर हिरण्यगर्भ संज्ञा को प्राप्त हुआ वह समष्टि सर्वव्यापी है। जो चेतन अविद्या की विचित्रता से व्यष्टि होने योग्य हैं वे तेजस अनेक हैं और इन सब का ईश्वर में तद्रूप अभेद होने से समष्टि नाम वाला ईश्वर एक है। व्यष्टियों (तेजसों) को भोग के अर्थ योग्य (भोगने योग्य पदार्थ)और भोगायतन (जिससे भोग भोगे जावें ऐसा स्थूल शरीर) बनाने के लिए ईश्वर ने आकाश आदि पाँचों तत्वों का पंचीकरण किया।

द्विदलीकृत्यै केकं दलमेकैकं विभज्य च चतुर्द्धा।
भागानपर दलै स्तान्संयोज्य च पञ्च पञ्चेति॥१४॥

तैरण्डं तत्र च भुवन भोग्य भोंगायतन मसृजदीशः।
स्थूलै हिरण्यगर्भो देहे वैश्वानर त्वमितः॥१५॥

तैजस सञ्ज्ञा विश्वाभिधानमीयुर्ह्यविद्यया जीवाः।
सुर नर तिर्यक्त्वभिदा पराग्दृशोन्तर स्वगतिमूढाः॥१६॥

कुर्वन्ति कम भुक्त्यै कृत्वा कर्माऽपि भुञ्जते तत्तत्।
न लभन्ते सच्चित्सुख मनुयान्तो जन्मनो जन्म॥१७॥

वह पंचीकरण इस प्रकार से है कि पाँचों प्रत्येक तत्व के आधे-आधे बराबर दो-दो भाग करके उनमें पाँचों तत्वों के पाँच आधे भागों को तो वैसे ही रहने दिये और बाकी के आधे-आधे पाँच भागों में प्रत्येक के चार-चार विभाग करके फिर इन प्रत्येक पाँचों अष्टमांश भागों को उन प्रत्येक अर्ध भागों में ऐसे मिलाये कि जिससे आधा तो एक तत्व और आधे में बाकी के चार तत्व के चार अष्टमांश भाग मिलाकर पूरा तत्व बना दिया। जैसे आकाश तत्व के आधे भाग में बाकी चार तत्वों के अर्थात् आकाश के अष्टमांश को छोड़ कर शेष वायु, तेज, जल, पृथ्वी इन चारों का एक-एक अष्टमांश आकाश के उस अर्ध भाग में मिलाकर आकाश तत्व को पूरा किया। इसी प्रकार के संयोग से पाँचों तत्वों का परस्पर पंचीकरण किया। उन पंचकृत पाँचों तत्वों से ईश्वर ने ब्रह्मांड बनाया, उस ब्रह्मांड में चौदह भुवन (लोक) बनाये और उन भुवनों में योग्य पदार्थ भोगायतन (भोग के घर) अर्थात् स्थूल शरीर बनाये। इस प्रकार स्थूल शरीर होने पर हिरण्यगर्भ, वैश्वानर संज्ञा को प्राप्त हुआ। स्थूल शरीर में अविद्या के कारण तेजस नाम वाले जीव विश्वनाम को प्राप्त हुए; जो सुर, नर, पशु, पक्षी इन भेदों वाले बहिर्दृष्टि होने के कारण अभ्यन्तरदृष्टि (आत्मज्ञान) से मूढ हैं। वे जीव भोग के अर्थ कर्म करते हैं और कर्म करके उस-उस फल को भोगते है, इस प्रकार जन्म-जन्मान्तर में फिरते हुए भी सच्चिदानंद रूप परब्रह्म को नहीं पाते।

स्वस्वहृदाहितमिथ्या द्वैत सदास्थाः सदैव तप्यन्ते।
आवर्तादावर्तं यान्तो नद्यां यथा कृमयः॥१८॥

सत्कर्मोदर्कबलाद्यो यस्तेषूपदेशमेत्य गुरोः।
स्वयमद्वैती भवति हि स स जीवन्मुक्त उद्दिष्टः॥१९॥

श्रुतिशीर्षमहावाक्यात्तत्ता हन्ते विहाय तदुपाधी।
सच्चित्सुख बोधात्मन्यस्मितयोना स्थितिः परमा॥२०॥

येशस्येशनशक्तिर्नियामिका सर्ववस्तुजातस्य।
चित्प्रतिबिंबावेशाद्विभाति साऽचेतने चैव॥२१॥

वे जीव अपने आप हृदय में ठहराये हुए मिथ्या द्वैत भाव में आस्था

रख कर नदी के एक चक्र से दूसरे चक्र में कीड़ों के समान ही दु:ख पाते हैं। इनमें से जिन जीवों के सत्कर्मों का उदय होता है वे उस कर्म फल के बल से गुरु के उपदेश को पाकर स्वयं अद्वैत (अहंब्रह्मास्मि) हो जाते हैं, वे ही जीवन्मुक्त कहलाते हैं। उपनिषदों (वैदान्त) के महावाक्यों (तत्वमसि) से तेरे मेरे मन की उपाधियों को छोड़कर, सच्चिदानंद और ज्ञानमय ब्रह्म में अंहकार रहित स्थिति है वही परम मुक्ति है। जो वस्तु मात्र को नियम में रखने वाली ईश्वर की प्रभु शक्ति है वही प्रतिबिम्ब को पा कर चेतन स्वरूप में भासती (प्रंकाशती) है।

तच्छक्त्युपाधियोगात्सद्ब्रह्मै वेश्वरत्व मुपयातम्।
कोशो पाधिविवक्षा जीवं प्रत्याययति तद्धि॥२२॥

यो हि पिता सुत योगात् स नप्तृ योगात्पितामहोप्येकः।
पितृ योगेन स पुत्र : श्वसुरो जामातृ योगेन॥२३॥

पुत्राद्युपाध्यसङ्गे क्व पिता क्व पितामहाङ्गजश्वसुराः।
द्वै कोश शक्त्युपाधी हित्वा तद्वत्र जीवे शौ॥२४॥

ईशश्चिदधिष्टानं माया मायागतश्च चिद्बिम्बः।
जीवश्चिदधिष्ठानं लिङ्गतनु स्तत्स्थचिद्बिम्बः॥२५॥

उसी शक्ति रूपी उपाधि के सम्बन्ध से सत् रूप ब्रह्म ईश्वरपन को प्राप्त हुआ है और वही (ब्रह्म) पंच कोशों की उपाधि (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय आत्मा को आच्छादन करने वाले ये पाँच कोश हैं) योग से जीव भाव को प्राप्त हुआ है, ऐसी प्रतीति कराता है। जो पुत्र के सम्बन्ध से पिता है, वही पोत्र के सम्बन्ध से पितामह (दादा) है और वही पिता के सम्बन्ध से पुत्र है और जमाई के सम्बन्ध से श्वसुर है। वास्तव में वह एक ही है, परन्तु सम्बन्ध भेद मे भिन्न-भिन्न कहा जाता है। यदि पुत्र आदि उपाधियाँ न हों तो कहाँ पिता, कहाँ पितामह, कहाँ पुत्र और कहाँ श्वसुर है ? वैसे ही कोश और शक्ति इन दोनों का त्याग किये बाद न तो जीव है, और न ईश्वर है अर्थात् दोनों एक ही हैं। चैतन्य का स्थान माया है और मागा में रहने वाले चैतन्य का जो प्रतिबिंब है वह ईश्वर है और जहाँ चैतन्य का स्थान लिंग शरीर है उस लिंग शरीर में चैतन्य का बिंब है वह जीव है।

अन्न प्राण मनो बुद्धया नन्दाख्येषु पञ्चकोशेषु।
तैरावृत एकात्मा स्वविस्मृतौ भ्रमति संसारम्॥२६॥
एवं विचार्य्य विद्वान्नरस्य नानाभ्रमं सुखमवाप्य।
भ्रमनाशावधि दुःखमवगीर्य कूटस्थ आतिष्ठेत्॥२७॥
अस्य सचिव सेनान्यावात्मज्ञानाख्य सार्वभौमस्य।
तौ साख्य योग संज्ञौ भेदत्रिकतः सदस्यभिमतौ॥२८॥
आत्मसु भेदो जगति च तथ्यत्व मथेश्वरोन्य इति भेदानू।
त्यजतश्चेद्व्रजतस्तो सम्राजा स्वेन साम्यमुभौ॥२९॥

अन्न (स्थूल शरीर) प्राण, मन, बुद्धि, आनन्द इन पाँच कोशों से ढका हुआ आत्मा जो एक अद्वितीय, ईश्वर से भेद रहित है, वह अपने स्वरूप को भूल जाने के कारण उक्त पाँच कोशों में आसक्त हो कर संसार में भ्रमता है (अन्न जल से उत्पन्न और पुष्ट हुआ स्थूल शरीर अन्नमय कोश है, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण यह प्राणमय कोश है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन यह मनोमय कोश है, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि यह विज्ञानमय कोश है, और पुण्य कर्म के फल से दक्षिण अन्तरमुख हुई वृत्ति आनन्दमय कोश है। ये ही पाँच कोश जीव को आच्छादन करने वाले हैं)। इस प्रकार विचार करके विद्वान मानवीय सुख को नाना प्रकार का भ्रम रूप जानकर जब तक भ्रम का नाश नहीं हो तब तक दुःख सहकर दृढ़ हो कर रहे। स्वजातीय, विजातीय और स्वगत इन तीन भेदों की निवृत्ति के वास्ते आत्मज्ञान रूपी राजा है जिसके सांख्यशास्त्र तो प्रधान और योग शास्त्र सेनापति हैं। आत्माओं में भेद मानना, संसार को सत्य मानना और परमेश्वर को जीव और जगत से भिन्न मानना, इन भेदों को यदि छोड़ दे तो वे दोनों सांख्य और योग इस जीव को राजा के बराबर आत्मज्ञानी कर देते हैं।

धीर्व्याकुला न येषां ये चैक्यज्ञानविस्तृतात्मानः।
स्वैकात्मबोध येष प्राप्यत इति तैः सकृत्सुखतः॥३०॥
येषां बुद्धिर्म्मलिनाऽनन्तकलुषकर्म्मभिर्भ्रमोदर्कैः।
प्राक् तत्र सांख्य योगौ हितौ यथा धीमलं हिंस्तः॥३१॥

सांख्य सचिव योग चमुपबोध नृप स्यास्त्र सैन्य दुर्गादि।
मीमांसन काणभुजाऽक्षपाद मेतत्त्रयं सर्वम्॥३२॥

धीनैर्मल्यविवृद्धो केवलमन्त्यत्रिको पयोगोत्र।
प्राप्ते स्ववीर्यसाम्राज्ये ऽस्त्रचमू दुर्ग चिन्ता का ॥३३॥

श्रुतिकोदिता तृतीया निर्मल तत्संविदध्वगारोह्या।
श्रीराम भूमिमृदियं विद्वद्भिरवाप्यते श्रेढी॥३४॥

जिनकी बुद्धि व्याकुल (गड़बड़) नहीं है और जिनकी आत्मा अद्वैत ज्ञान से विस्तीर्ण है वे तुरन्त सुखपूर्वक आत्म ज्ञान को पाते हैं। जिनकी बुद्धि भ्रम के फल रूप अनन्त कुत्सित कर्मों से मलिन है उनको प्रथम सांख्य और योग हितकारी हैं, क्योंकि वे बुद्धि के मल का नाश कर देते हैं। जिस आत्मज्ञान रूप चक्रवर्ती राजा के सांख्य तो सचिव और योग सेनापति हैं उसके मीमांसा, वैशैषिक और न्यायशास्त्र, ये तीनों क्रम से शस्त्र, सेना और गढ़ हैं। इन में पिछले तीनों मीमांसा, वैशैषिक, न्याय केवल बुद्धि की निर्मलता बढ़ाने में उपयोगी हैं, सो अपने पराक्रम से साम्राज्य प्राप्त कर लेने पर शस्त्र सेना और किले की फिर क्या आवश्यकता है? हे राजा रामसिंह! वेद की कही हुई निर्मल बुद्धिवाले पथिकों के चढ़ने योग्य इस तीसरी सीढ़ी को विद्वान ही पाते हैं।

अस्या आदिर्मध्या या श्रेढी सा ह्युपासनोपाख्या।
सारूप्यमेति जीवो विश्रब्धेऽस्यां परम्परया॥३५॥

अब आगे उपासना काण्ड कहते हैं। इस तीसरे सोपान से पहले की जो उपासना काण्ड नामक मध्य (बीच) की सीढ़ी है इसमें भी विश्वास करनेवाला जीव परम्परा से सारूप्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

दोहा

श्रुति जिहिं जंपिय मध्य सो, उपासना अभिधान।
श्रेढी मध्यम नृप सुनहु, निखिल प भक्ति निधान॥३६॥

इक रस आप असंग कों, सुरिहु जानि सकै न।
सांख्य रु योग हु मैं समुझि, हाहा जिनकी व्है न॥३७॥

मीमांसाऽदिक त्रय मनन, करिहु न बुद्धि रुकाइ।
सगुन ईस तबही समुझि, पटु निश्रेयस पाइ॥३८॥

वेद में जिसको उपासना नामक मध्यमार्ग कहा गया है उसे उपासना कहते हैं। हे भक्ति के भंडार और स्वामी राजा रामसिंह! अब सुनें! एकरस और असंग परमेश्वर को बुद्धिमान भी नहीं जान सकते (यहाँ 'आप्लृ व्याप्तौ' इस धातु से आप नाम सर्वव्यापी परमेश्वर का है।) और अफसोस! कि सांख्य और योग में भी उस परमात्मा की समझ नहीं है। मीमांसा, वैशेषिक और न्याय इन तीनों के मनन से भी जिनकी बुद्धि स्थिर नहीं होती तब वे चतुर सगुण ब्रह्म को समझने का उपक्रम कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

षट्पात्

नव बिध भक्ति सुनियत जाहि प्रभुराम भक्त जन,
अबिरत कृति आचरहिं मोरि प्राकृत गन ते मन।
श्रवन रु कीर्तन स्मरन अंघ्रिसेवन तिम अर्चन,
प्रनति दास्य सख्य पुनि नवम जहँ स्वात्म निवेदन।
ए भक्ति नव हि मिलि त्रिगुन अब सप्तबीस भेदन सहित।
कर्ताहु भक्त गुन भेद करि मान त्रिबिध कहियत महित॥३९॥

हे राजा रामसिंह! यह भक्ति नौ प्रकार की है। भक्त लोग संसार के पदार्थो से अपना मन मोड़ कर निरन्तर जिस भक्ति (का कार्य) को करते है वह नवधा भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, पूजन, वंदन, दासभाव, सखाभाव और नवमी अपनी आत्मा को अर्पण कर देना है। ये नौ प्रकार की भक्तियां तीन गुणों के कारण सत्ताईस प्रकार की है और इन्हीं तीन प्रकार के गुणों के भेद से ज्ञानी तीन प्रकार के भक्त कहते हैं।

दोहा

सप्तबीस बिध भक्ति सब, त्रिबिध भक्त करि तेहि॥
कहियत एकासीति क्रम, जिन जिन जिम जिम जेहि॥४०॥

हे राजा रामसिंह! ये सत्ताईस भक्तियाँ तीन प्रकार के भक्तों से संयुक्त हो कर जिन-जिन की जैसी-जैसी हो जाती है। अब मैं आपके सामने सभी इक्यासी प्रकार की भक्तियों को कहता हूँ।

षट्पात्

सात्विक राजस सुनहु भक्त तामस त्रय भूपति,
इन करि एकासीति भक्ति पूर्वोक्त त्रिनव मति।
इह हिंसा दंभ अरु चित्त मच्छरपन चाहत,
तकै भक्त तामसिय बलि सु कर्ता क्रोधी बत।
जस भोग भुक्ति चहि भक्त जब रचत भक्ति वह राजसिय।
कर्ता हि तत्थ कामी कहत बहुत काम जिहिँ हिय बसिय॥४१॥

हे राजा रामसिंह! सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी इन तीन प्रकार के भक्तों से पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार की भक्तियाँ मिल कर इक्यासी प्रकार की होती है। इनमें से तमोगुणी भक्त हिंसा, कपट और मत्सरता के साथ भक्ति करता है अफसोस! कि इसी कारण वह क्रोधी कहलाता (होता) है। इसी प्रकार यश, संसार के पदार्थो का भोग और उनम भोजन की वाँछा कर जो भक्ति करता है ऐसा भक्त रजोगुणी होता है। ऐसी भक्ति करने वाला कामी कहलाता है क्योंकि उसके हृदय में निरन्तर बहुत सारी कामनाएँ निवास करती हैं।

दोहा

ईश्वर मैं कृति अप्पिकैं, अघ नासन अनुरूप।
चाहि सव्य प्रभु आचरें, भक्ति सात्विकिय भूप॥४२॥
कर्ता कँहँ सात्विक कहत, सगुन भक्ति ए सर्ब।
कर्ता भक्त सकाम है, अब निष्काम अखर्ब॥४३॥

हे राजा! जो अपने पापों का नाश करने को अपने सभी कार्यो को ईश्वर में अर्पण कर एक ईश्वर को ही आराधन योग्य जान कर भक्ति करे ऐसी भक्ति सतोगुणी कही जाती है। वहीं ऐसे भक्त को सतोगुणी कहा जाता है। ये सभी (इक्यासी प्रकार की) सगुण भक्तियाँ है क्योंकि इनका कर्ता कामना सहित है। अब आगे निष्काम (कामना रहित) भक्त के बाबत बताता हूँ जो सब में बड़ा माना जाता है।

षट्पात्

प्रभु गुन सुनतहि पुरुष जानि अंतरजामी जिहिँ,
बिनु फल बिनु व्यवधान तक्कि एकाग्र चित्त तिहिँ।

सागर गंगा सलिल जथा मन वृत्ति जमावहिँ,
सांत दास्य रस सख्य रु मुचि बात्सल्य रमावहिँ।
कति जन सु भक्ति निर्गुन कहत स्वाँत बिसय इम कति सगुन।
कहि देहु सकल अभिधान कछु प्रेम अतुल चहियत प्रगुन॥४४॥

हे राजा! जो प्रभु के गुण सुनते ही उसे हिरण्यगर्भ (परब्रह्म) और अन्तर्यामी जान कर बिना फल की इच्छा से (व्यवधान रहित हो) आवरणरहित एकाग्रचित्त से देखे (ध्यान करे) और समुद्र में जिस प्रकार गंगा का जल मिलता है वैसे मन की वृत्ति का परमेश्वर में विलयन कर दे। जो शान्त रस, दास्यभाव रस, सखाभाव रस, निर्मल भाव रस और वात्सल्य रस से प्रभु को रमाते है ऐसे भक्तों को कई लोग निर्गुण भक्त और ऐसी भक्ति को निर्गुण भक्ति कहते है। पर कुछ लोग मन का विषय होने के कारण ऐसी भक्ति को सगुण भक्ति कहते हैं। दोनों में से नाम कुछ भी हो परन्तु भक्त में सरल गुण वाला अथवा प्रकृष्ट गुण वाला प्रेम अवश्य होना चाहिए।

मनोहरम्

कहत परिच्छित ज्यों श्रवन तैं आप्तकाम,
व्याससुत कीर्तन तैं बिदित बखानिये॥
स्मरन तैं दैत्यपति लच्छी पयसेवन तैं,
पूजन तैं पृथु से प्रतापी जिम जानिये॥
बंदन तैं बिदित स्वफल्कसुत पायो इष्ट,
दास्य तैं कपीस्वर प्रतीति पहिचानिये॥
संख्य तैं किरीटी बलि स्वात्म कै समर्पन तैं,
बलि से बिमुक्त पद प्रापित प्रमानिये॥४५॥

हे राजा! अब मैं नवधा भक्ति करने वाले भक्तों के उदाहरण देता हूँ। आप सुनें कि श्रवण (भक्ति) से राजा परीक्षित स्वरूपानन्द पा कर तृप्त हुआ। कीर्तन से सुखदेव प्रसिद्ध भक्त बना। स्मरण से दैत्यपति प्रहलाद (प्रल्हाद), चरण सेवन से लक्ष्मी, पूजन से प्रतापी राजा पृथु, वंदन से श्वफल्कपुत्र अक्रूर, दास्यभाव से हनुमान, सखाभाव से अर्जुन और आत्म समर्पण से बलि दैत्य ये सभी इष्ट फल पाकर मुक्ति को प्राप्त हुए।

दोहा

यह मध्यम श्रेढी इहाँ, भक्ति निरत हे भूप।
हरि पावत निष्काम व्है, अंत मुक्ति अनुरूप॥४६॥

तत्वबोध निरतहु तथा, भक्ति सहित हुव भूरि।
सिव बिरंचि सनकादि सम, प्रेम द्विधा रुचि पूरि॥४७॥

दत्त रु कपिल बिदेह से, बहु रत केवल बोध।
व्यापहु भक्तिहु बोध मैं, बोध हि भिन्न बिरोध॥४८।

हे भक्ति में प्रीति रखने वाले राजा रामसिंह! यह बीच की सीढ़ी है जिसमें निष्काम भक्ति से विष्णु भगवान की प्राप्ति हो कर अंत में सादृश्य मुक्ति हो जाती है। तत्वज्ञान में निरत हो कर भी सनकादिक ऋषियों, शिव और ब्रह्मा के समान भक्त हो कर रुचिपूर्वक दोनों (ज्ञान और भक्ति)में पूर्ण हुआ जा सकता है। दत्तात्रेय, कपिलदेव और राजा जनक जैसे बहुत सारे भक्त केवल अद्वैत ज्ञान मैं ही प्रीति रखने वाले हुए है क्योंकि ज्ञान (आत्मज्ञान) में भी भक्ति होती है इसका कारण यह कि ज्ञान विरोध से भिन्न है(इसीलिए भक्ति से भी विरोध नहीं)।

गीर्वाणभाषा

आर्या

भक्तेः श्रेढी प्रथमा यां स्वाधिष्ठाय धर्म्ममात्मीयम्॥
आद्विजचाण्डालावधि कृत्वा कर्म्माप्नुते परमम्॥४९।

हे राजा रामसिंह! भक्ति से पहले जो कर्मकाण्ड रूपी प्रथम सीढ़ी है जिसको पाकर अपने धर्म में स्थित हो, कर्म करते हुए ब्राह्मण से लगा कर चाण्डाल पर्यंत सभी परमपद् (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

षट्पात

इहाँ धर्म आचरन प्रथम श्रेढी जो भूपति,
सो सामान्य बिसेस गिनहु द्विबिध हि श्रुति संगति।
आदि बर्ण सन एह स्वपच परजंत समुद्दर,
सब मनुजन के सीस भनिय सामान्य धर्म भर।

दूजो बिसेस धर्म सु बदिय अप्प बरन आश्रम उचित।
परधर्म बरहु सद्धि रु परत निंद्य हु निज निज होत हित॥५०॥

हे राजा ! यहाँ संसार में अपने धर्म पर चलने की जो पहली सीढ़ी है वह वेद से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य और विशेष दो प्रकार की है। सामान्य धर्म का भार सभी मुनष्यों के ऊपर माना गया है। वह ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यंत सभी का उद्धार करने वाला है। वहीं सीढ़ी का दूसरा प्रकार अर्थात् सामान्य धर्म से इतर, विशेप धर्म जो कहा गया है वह अपने-अपने वर्ण और आश्रमानुसार उचित माना गया है। दूसरे का धर्म उत्तम होने पर भी उसको साधने वाला गिर जाता है वहीं अपना धर्म निन्दनीय होने पर भी उस पर चलना हित का कार्य है।

सुनहु धर्म सामान्य प्रथम संतोष छमा पुनि,
सम बहोरि दम सौच सुपहु अस्तेय लेहु सुनि।
सहित दया तिम सत्य बिहित निज पठन बिचारहु,
आत्म ब्रह्म एकत्व धी जु दसम सु हिय धारहु।
सामान्य धर्म लच्छन दस हि मुख्य इत्तर अनुगत सुमति।
आर्जव रु मैत्र अनसूयता कम परोपकारादि कति॥५१॥

हे राजा ! इस सामान्य धर्म के दस लक्षण कहे गए है। जिनमें सन्तोष, क्षमा, मन को जीतना, इन्द्रियों का दमन, शुद्धि (पवित्रता), चोरी नहीं करना (अस्तेय), दया, सत्य, अपनी विधि से अपने लिए पाठ करना और अपनी बुद्धि में जीव और ब्रहा की एकता को धारण करना ये (सामान्य धर्म के) दस लक्षण है। हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले राजा रामसिंह! इनके अतिरिक्त सरलता, मैत्री, दूसरे के गुण में दोष नहीं निकालना इसी तरह परोपकार आदि उपरोक्त दस लक्षणों वाले धर्म के साथ चलने वाले हैं।

दसम माँहि नहि दिपत अर्थ जँह तँह इम अक्खहिं,
सम मन मतिजय सद्धि रु दम इंद्रिय जय रक्खहिं।
सौच न्हान मुख सकल बहुरि अस्तेय बखानत,
बिक्खत परधन बिजन जु गन बिष्टा सम जानत।
सामान्य धर्म्म लच्छन सकल अरु बिसेस निज आचरहिं।
सत जन्म कहुँ न चुक्कहिं सु नर सत्यलोक सासन करहिं॥५२॥

उपरोक्त सामान्य धर्म के दस लक्षणों में जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं नजर आता, मैं (ग्रंथकार) अब उनकी व्याख्या कर समझाता हूँ कि मन और बुद्धि को जीतना अथवा वश में रखना सम है और इन्द्रियों को रोकने का नाम दम है। स्नान आदि सारी पवित्रताओं को शौच कहते हैं। एकान्त में देखे हुए पराये धन को विष्ठा के समान मानना अस्तेय कहलाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार से सामान्य धर्म के सभी लक्षणों और अपने-अपने विशेष धर्म का आचरण करते हैं और जो व्यक्ति अपने सौ जन्मों तक भी इनका पालन करने में चूक नहीं करते वे सत्यलोक में शासन करते है अर्थात् ब्रह्म रूप हो मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

दोहा

आस्यज बाहुज ऊरुज रु, पज्ज प्रभेदन पंति।
बिरच्यो बर्ण चतुष्क बिधि, भूतल निबसन भंति॥५३॥

तास अवस्था च्यारि तकि, चउमुख आश्रम च्यारि।
बटु गृहस्थ बैखानस रु, धरिय भिक्षु क्रम धारि॥५४॥

अवर बर्ण आश्रम उचित, पहिलैं धर्म्म प्रबोधि।
राजधर्म पुनि रावरो, सब कहियत हित सोधि॥५५॥

पठन रु पाठन यजन पुनि, ध्रुव तिम याजन धर्म्म।
बितरन ग्रहन हु बिप्र कै, किय बिधि मुख्य छ कर्म्म॥५६॥

स्नान रु संध्यादिक सकल, इनमैं निबसत आइ।
बिधि को अैसो बिप्र कै, जो इन तैं टरि जाइ॥५७॥

ब्रह्मा ने अपने मुख से, भुजा से, जंघा से और चरण से उत्पन्न कर इन भेदों के आधार पर भिन्न-भिन्न पंक्तियाँ बना कर भूमि पर बसाया अर्थात् ब्रह्मा ने चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रचे। फिर इनकी चार अवस्थाएँ देख कर अपने चारों मुखों से क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम बनाए। हे राजा रामसिंह! मैं यहाँ तीनों वर्णो और आश्रम के उचित धर्म समझा कर आपका (क्षत्रियों का) धर्म हितपूर्वक बाद में कहूँगा। पढना, पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, दान देना और दान लेना ये मुख्य छः कर्म ब्रह्मा ने ब्राह्मणों के रचे। स्नान और संध्या आदि सब इन्हीं

उपरोक्त छः कर्मों में निवास करते हैं। ऐसी अन्य कोई विधि नहीं जिससे ब्राह्मण इन छः कर्मो से टल सकें।

प्रजात्रान यजन रु पठन, भोग प्रसक्ति अभान।
बीरभाव बितरन बिधि सु, बाहुज बर्ण बिधान॥५८॥

अंहति इज्या अध्ययन, कृषि पसुपालन कर्म।
बानिज्य हु ए बैश्य कै, धरे सीस खट धर्म्म॥५९॥

पठन निजोचित यजन पुनि, बितरन शिल्प बिधान।
त्रिबरन सेवा कारुता पज्ज, छ धर्म प्रमान॥६०॥

प्रजा की रक्षा करना, यज्ञ करना, पढ़ना, भोगो में आसक्त नहीं होना, वीरता रखना और दान देना ये छः क्षत्रियों के कर्म हैं। इसी तरह दान देना, यज्ञ करना, पढना, खेती करना, पशुओं का पालन करना और व्यापार करना ये छः कर्म वैश्यों के शिरोधार्य करने योग्य हैं। पढना, अपने योग्य यज्ञ करना, दान देना, शिल्पकर्म (दस्तकारी) करना, तीनों वर्णो की सेवा करना, कारीगरी करना, ये छः धर्म शूद्रों के कहे गए हैं।

मनोहरम्

बरन चतुष्क कै ए खट खट कर्म तहँ,
तीन तीन जीवन उपाय अवधारिये।
खट मैं सम त्रय सों बिप्र अरु अप्रसक्ति,
त्रान सूरता सों जीवैं बाहुज बिचारिये।
बैश्य पसुत्रान कृषिकर्म रु बनिज तासों.
सेवा शिल्प कारुता सों पज्ज प्रतिपारिये।
गेह देह मंडन सुबैन पतिसेवा भक्ति,
बस्तुसुद्धि मुख्य छ हि नारिन निहारिये॥६१॥

हे राजा! चारों वर्णो के जो छः-छः कर्म बताए गए है उनमें से तीन-तीन कर्म उनके जीविकोपार्जन के साधन समझिये। उपरोक्त छः कर्मो में से पढ़ना, यज्ञ करना और दान लेना इन तीनों कर्मो से ब्राह्मण जीविका कमाए ऐसा प्रावधान है। भोगों में अनासक्ति, रक्षा और वीरता से क्षत्रिय आजीविका कमाए। इसी प्रकार पशु-पालन, कृषि और व्यापार इन से वैश्य अपनी जीविका का प्रबन्ध करे। सेवा करना (नौकरी), शिल्प- कारीगरी से

शुद्र अपना जीवनयापन करे, घर और शरीर को सुन्दर बनाये रखना, मीठे वचन बोलना, पति की सेवा करना, भक्ति करना और सभी वस्तुओं को शुद्ध रखना ये मुख्य छः काम स्त्रियों के लिए निर्धारित हैं।

षट्पात्

आश्रम धर्म्महु अखिल धरहु अब कर्ण धराधव,
पोत त्रिबर्णज पाइ भनित बय परि द्वितीय भव।
अजिन जटा उपवीत मेखला दंड कमंडलु,
सबिधि धारि दर्भ सय ख्यात गुरु गेह बसैं खलु।
मंगि सु द्विसंध्य भिक्षा मुदित आनि निवेदहिं गुरु अरथ।
व्है तस नियोग तो तास व्है असन नतो उपवास अथ॥६२॥

हे राजा! अब आश्रम धर्म कहता हूँ उन्हें सुनें! सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म यह है कि तीनों वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के बालक यज्ञोपवीत लेने की कही हुई अवस्था में द्विजन्में हों अर्थात् जनेऊ लेवें। वे मृगचर्म, जटा, जनेऊ, कटिमेखला (करधनी जो मूँज की बनी हों) दण्ड और कमण्डल (जलपात्र) को विधि-पूर्वक धारण कर दर्भ (डाभ) हाथ में लेकर निश्चय ही गुरु के घर में बसें। यही नहीं दानों संध्या अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल को भिक्षा माँग कर प्रसन्नतापूर्वक गुरु को भेंट करे फिर गुरु की आज्ञा से खाएँ, यदि गुरु की आज्ञा नहीं मिले तो उपवास रखें।

इंद्रिय जित मित असन सील श्रद्धा नति संजुत,
पुनि गुरु इच्छा पठन प्रथम पठनीय निगम नुत।
पठन आदि अंत पुनि प्रनति मंडहिं श्री गुरु पय,
जुग संध्या मौन जिम नियत सावित्री जप नय।
सायं प्रभात गुरु बिष्णु शिव अर्क कृसानु उपासना।
स्त्रज मधु पल भूखन गंध सह बर्जहिं नारिन बासना॥६३॥

वे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें, प्रमाण से भोजन करें, शील, श्रद्धा और विनम्रतापूर्वक अपने गुरु की इच्छा से पढें। इसमें भी सर्वप्रथम पढ़ने योग्य और स्तुति योग्य वेद पढें। पढ़ने के आरंभ और अन्त में गुरु के चरणों में नमस्कार करें। दोनों संध्या के समय मौन रखें। नियमपूर्वक गायत्री जप करें,

यही ब्रह्मचारी की नीति (न्याय) कही गई है। संध्या और प्रभात समय दोनों बार गुरु, विष्णु, शिव, सूर्य और अग्नि की उपासना करें। वे सभी ब्रह्मचारी पुष्पमाला, शहद, मांस, आभूषण, सुगंधित पदार्थो और स्त्रियों की संगति का त्याग करें।

दोहा

इम गुरु गृह पढि आयु को, बंटि चतुर्थ बिताइ।
गुरु अभीष्ट दै स्वीय गृह, उपनय बिरचहिँ आय॥६४॥
जो असपिंडा जननि कुल, स्वक असगोत्रा सुद्ध।
क्रम सबर्ण ऐसी कनी, व्याहैं सु बटु प्रबुद्ध॥६५॥

इस प्रकार अपनी आयु का चथुतांश गुरु के घर विद्या अध्ययन में बिता कर गुरु को मनोवांछित दक्षिणा दें फिर अपने घर आ कर उपनयन संस्कार (ब्रह्मचारी की विद्या की समाप्ति का संस्कार विशेष) करें। इसके बाद अपनी माता के कुल की सपिंडी को टाल कर (माता की कुल की सपिंडी पाँच पीढ़ी पर्यंत) जो अपने गोत्र की न हो ऐसी पवित्र वर्ण की कन्या से विद्वान ब्रह्मचारी विवाह करें।

षट्पात्

बिवहिँ नारि गृह बसहिँ पंच सूना जाके जिम,
कघट चुल्लि बहुकरिय आहि कंडन घरट्ट इम।
पंचन मेटन पाप पंच मख नित्य गृही पर,
पाठन पठन प्रसिद्ध ब्रह्ममख यह बसुधाबर।
बलि सुनहु श्राद्ध तर्पन नृपति मख पैत्र रु हवनादि मत।
सुरमख रु भूतमख बलि सुनहु नृमख अतिथि पूजन नियत॥६६॥

स्त्री से विवाह कर घर में रहते हुए गृहस्थी से पाँच हिंसा होती है। जल का घड़ा, चूल्हा, बुहारी, ऊखल और चाकी (घट्टी) के कार्यों में होने वाली हिंसा का पाप मिटाने को गृहस्थ पर पाँच यज्ञ करने का प्रतिबंध है। हे राजा रामसिंह! पढ़ना और पढ़ाना यह तो ब्रह्मयज्ञ कहलाता है, श्राद्ध और तर्पण यह पितृयज्ञ है अन्य यज्ञ आदि देवयज्ञ माने जाते है। बलि देना भूतयज्ञ है और अतिथि पूजन मनुष्ययज्ञ अथवा नरयज्ञ कहलाता है।

दोहा

क्रम करि करि मख पंचक रु, जति बटु अतिथि जिमाइ।
ज्यों सब निजन जिमाइ कैं, खिल तब दंपति खाई॥६७॥

जाम रहत निस नित्य जगि, धर्म अर्थ गति ध्याइ।
सौच न्हान संध्यादि सब, बिधिसह कृत्य बनाइ॥६८॥

क्रम से उपरोक्त पाँचों यज्ञ कर सन्यासी, ब्रह्मचारी और अतिथि को भोजन कराने के बाद अपने परिवार के अन्य लोगों को भोजन कराएँ फिर जो शेष बचे उससे स्त्री-पुरुष (दंपति) भोजन करे। एक प्रहर रात्रि के बाकी रहते नित्यप्रति जग कर धर्म और अर्थ की रीति सोचे फिर शौच, स्नान, संध्या आदि कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करें।

षट्पात्

महिला ऋतु प्रतिमास घस्र चउ अग्ग जु लंघत,
अह बारह सो अधम बालहंताहि होत बत।
अष्टमि भूत अमा रु अखिल चंद्रा एकादसि,
इन्ह तजि अरु खिल अहन मिलहिँ तिय सन बांछा बसि।
गर्भ लखि करहिँ तबतैं गृही संस्थावधि संस्कार सब।
गृहि धर्म एह लाघव गदित अरु बैखानस धर्म अब॥६९॥

प्रतिमाह स्त्री रजस्वला होती है उसके शुद्ध हो जाने के चार दिन बाद से बारह दिनों का काल ऋतुकाल कहलाता है। (यहाँ पर प्रथम चार दिनों का इस कारण से त्याग है कि उन चार दिनों में गर्भाधान होने से बालक अधम और हिंसक पापी होता है ऐसी मान्यता है) ऋतुकाल में आई अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और एकादशी तिथियों का त्याग कर शेष सभी दिनों में इच्छापूर्वक स्त्री से संभोग करें। फिर स्त्री को गर्भवती जान कर गृहस्थ, गर्भाधान से लगा कर मरण पर्यंत सभी संस्कार सम्पन्न करे। यह गृहस्थ का धर्म संक्षेप में कहा है और आगे अब वानप्रस्थी का धर्म कहता हूँ।

दोहा

आयु भाग दूजो सु इम, ब्याहि रु गेह बिताइ।
पुत्रन दै सब तब बिपिन, जीवैं दंपति जाइ॥७०॥

पत्नी व्है संतति प्रिया, जब गृह छौरैं जाहि।
बिपिन नतो उभय हि बसै, तक्कि अकिंचनताहि ॥७१॥

विवाह करने के बाद आयु के द्वितीय भाग को घर में व्यतीत कर सारे पदार्थ अपने पुत्रों को सोंप कर स्त्री और पुरुष दोनों वन में जा कर निवास करें। यदि स्त्री अपनी संतान को स्नेह करने वाली हो तो उसे घर में ही छोड़े। जब स्त्री सन्तान का मोह छोड़ दे तब उसे कामनारहित देख कर स्त्री-पुरुष दोनों वन में ही निवास करें।

षट्पात्

केवल रहन कृसानु उटज कंदर वा आश्रय,
नख रु रोम मल निबहि सहै सीतादि ऋतुन रय।
नीवारादिक बन्य अन्न फल पुष्प कंद इम,
पुरोडास चरु प्रमुख करैं सह क्रम तिनसों तिम।
अवसेस को सु बिरचैं असन बेर इक्क सबकरि बिहित।
नीवार आदि जब होइ नव चतुर तजै तब पुब्ब चित ॥७२॥

वानप्रस्थी को चाहिए कि वह केवल अग्नि रखने के लिए ही झोंपड़ी या गुफा का आश्रय ले। नाखून और केश नहीं काटे। शरीर का मैल नहीं उतारे। सर्दी, गर्मी आदि ऋतुओं के वेग (प्रभावों) को सहन करे। तृणों से निकलने वाले (घास से उत्पन्न) जंगली धान्य (सांवा, मलीचा आदि अड़क धान), फल, फूल, कँद, जौ के आटे की रोटी, हवन करने के अन्त से क्रमपूर्वक नित्य हवन करने का उचित कर्म करे। हवन करने के बाद बचे हुए अन्न से दिन में एक बार भोजन करे। यही नहीं जब वन में सांवा, मलीचा, भुरट आदि जंगली धान्य नया पक जाए तब उस चतुर वानप्रस्थी को अपने पूर्व में संग्रहित धान को त्याग देना चाहिए।

पादाकुलकम्

जो गिनि बिहित न्हान डारें जल, मंजन करि खोलैं न देह मल।
कृत्ति रु बल्कल दंड कमंडलु, खिल दर्भादि रहैं धारत खलु ॥७३॥

वानप्रस्थी को चाहिए कि एक विधिपूर्वक शरीर पर स्नान का जल डाले परन्तु मर्दन कर अर्थात् रगड़ कर शरीर का मैल नहीं उतारे। वह

मृगचर्म, वृक्षों की छाल से बने वस्त्र, दंड, कमण्डल, दर्भ (डाभ) आदि निश्चय ही धारण करे।

दोहा

इम तृतीय निज आयु को, बन रहि बंट बिताइ।
बैखानस सन्न्यास बिधि, पुनि सद्दैं खिन पाइ॥७४॥

जोन विरति तो वह जबहि, रचि अनसन बिधि एह।
तत्वन तत्व मिलाइ तनु, छोरैं छम लहि लाह॥७५॥

ब्रह्मचर्य हितैं बिरति, वा गृह ही तैं आइ।
तो जुग आश्रम मध्य तजि, जती द्रुतहि होजाइ॥७६॥

रहैं दिगम्बर बा धरैं, पट कौपीन पिधान।
बस्तु कमंडलु दंड बिनु, न इतर जास निधान॥७७॥

बिधि न सिखा सूत्र हु बहन, तो को बिधि खिल तास।
मिटन अहं ममता अवधि, अटैं असंग उदास॥७८॥

इस तरह अपनी आयु के तृतीय भाग को वन में रह कर बिताते हुए वानप्रस्थी समय अनुसार सन्यास साधे। यदि वानप्रस्थी रहते हुए उपराम (वैराग्य) न हो तो वहीं पर अन्न जल का त्याग कर उसे समर्थ तत्वों में तत्व मिलाने का लाभ लेते हुए अपना शरीर त्याग देना चाहिए । यदि ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थ धर्म निभाते हुए ही वैराग्य उत्पन्न हो जाए तो ऐसी अवस्था में उसे अगले एक अथवा दोनों आश्रमों का धर्म त्याग कर शीघ्र ही सन्यासी हो जाना चाहिए। सन्यासी हो कर या तो वह नग्नावस्था में रहे या अपने अंग ढांपने को लंगोटी (कौपीन) रखे। याद रहे सन्यासी के कमण्डल और दण्ड इन दो वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य कोई धन नहीं होता। सन्यासी के जब चोटी बांधने और जनेऊ धारण करने की भी रीति नहीं है तब शेष कौनसी रीति रह जाती है ? अत: कोई वस्तु अपने अधिकार में नहीं रखे और जब तक अहंता और ममता नहीं समाप्त हो जाए तब तक उसे असंग (संग रहित) और उदासीन हो कर विचरण करना चाहिए।

षट्पात्

संगति भिच्छा समय करै खिन वसति अटन क्रम,
आप ब्रह्म जग इक्क भेद बिनु पिक्खि छोरि भ्रम।

ज्ञानकांड जो गदित धरहिँ चर्या अवधूत सु,
जोजो जहँ जहँ जास पाय परसैं व्है पूत सु।
सुप्ति प्रबोध बिच संधि मैं जो थिति सो निज जानि कैं।
जो रहैं मुक्ति बंधन जुगहि मायामात्र प्रमानि कैं ॥७९॥

बस्ती की संगत सन्यासी को भिक्षा माँगने के समय ही करनी चाहिए अर्थात् उतनी देर तक ही करनी चाहिए। फिर आत्मा, ब्रह्म और जगत् इनका भ्रम छोड़ कर उन्हें भेदविहीन दृष्टि से देखे। इसके साथ ही ज्ञानकांड में बताई गई क्रिया को साधे वही अवधूत (सन्यासी) है। ऐसे सन्यासी के चरणों का यहाँ वहाँ जो स्पर्श करे वह पवित्र होता है। सुषुप्ति और जाग्रत अवस्था की संधि में जो स्थिति होती है वही स्थिति अपनी जान कर बंधन और मोक्ष दोनों को माया मान कर रहे।

दोहा

नहिं निरोध उतपत्ति नहिं, बलि न साधकन बद्ध।
अरु न मुमुक्षु न मुक्त इह, लद्धहि बिस्मृत लद्ध॥८०॥
ए वरनाश्रम धर्म इम, सुभ सामान्य बिसेस।
अर्थ राजनय सुनहु अब, नयपटु राम नरेस॥८१॥

जो यह मानें कि न नाश है, न उत्पत्ति है। न कोई साधक है न बंधन है। न कोई मुक्ति की कामना करने वाला है और न मुक्ति है। जो मिलता है वह केवल आत्म विस्मृति (आत्म स्वरूप का भूलना) से मिलता है, ऐसा सोचे वही सन्यासी है। हे राजा! इस प्रकार मैने (ग्रंथकार ने) आपके समक्ष सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के श्रेष्ठ वर्णाश्रम धर्मो को कहा हे चतुर राजा रामसिंह! मैं अब आगे पुरुपार्थ वाली राजनीति कहता हूँ उसे सुनें।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पू के उत्तरायणे नवमराशौ बून्दीन्द्र रामसिंह चरित्रे रावराजारामसिंहार्थज्ञान काण्डोपासना काण्डकर्म-काण्डसहितवर्णाश्रम धर्मश्रावणं द्वितीयो मयूखः आदितः चतुः षष्ट्युत्तरत्रिशततयो मयूख॥३६४॥

इति श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवम राशि के बून्दी के राजा रामसिंह के चरित्र में, रावराजा रामसिंह को ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड

और कर्मकाण्ड सहित वर्णाश्रम धर्म सुनाने का दूसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ चौसठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

नृप अमात्य मंत्री रु निधि, देस दुर्ग बल बुद्ध।
अंग सप्त बपु राज्य ए, स्वामी अब तहँ सुद्ध॥ १॥

सक्ति तीन खट गुन समुझि, च्यारि उपाय बिचारि।
नृप जु बहैं इनकों नियत, रहैं अजेय सु रारि॥ २॥

निज बस सो उत्तम निपुन, मध्यम दुव बस मान।
बिक्खहु अधम अमात्य बस, स्वामी त्रि बिध सु जान॥ ३॥

हे राजा रामसिंह! राज्य के सात अंग कहे गए हैं जो इस प्रकार हैं राजा, अमात्य, मंत्री, कोश (खजाना), देश, गढ, और सेना। मैं (ग्रंथकार) अब प्रथम अंग अर्थात् राजा के शुद्ध लक्षण बताता हूँ! जो राजा तीन शक्तियों, छह गुणों और चार उपायों पर विचार कर उन्हें धारण करता है वह युद्ध में सदा अजेय रहता है। जो राजा अपने स्वयं के वश रहता है वह उत्तम राजा कहलाता है और जो स्वयं और अपने अमात्य दोनों के बश में रहता है वह मध्यम राजा होता है पर जो केवल अमात्य के ही वश में रहता है उसे अधम राजा जानो। हे सुजान! इस प्रकार स्वामियों के ये तीन भेद कहे गए हैं।

पज्झटिका।

ए तीन सक्ति समुझहु अधीस, इन करि जिम गंजत सबन ईस।
सब सिर अकोघ सासन बिसेस, अवनीमहेन्द्र प्रभुसक्ति एस॥ ४॥

उपजै जहँ मंत्र जु पंच अंग, सो मंत्रसक्ति नृप नय प्रसंग।
उच्छाह होइ उद्यम असेस, उच्छाह सक्ति इम सो रसेस॥ ५॥

अब सुनहु मंत्रके पंच अंग, ...।
इक इष्ट काज साधन उपाय, दूजो समर्थ तस व्है सहाय॥ ६॥

बलि देस काल संगति बिचार, है चोथो अवयव बिघ्नहार।
सुख है अमोघ कर्मावसान, पंचम प्रतीक सो मंत्र मान॥ ७॥

नरनाह सुनहु खट गुनन नाम, तँहँ संधि रु बिग्रह यान ताम।
आसन तिम द्वैधीभाव आहि, जहँ छट्ठो आश्रय कहत जाहि॥८॥

हे राजा रामसिंह! अब मैं उन तीन शक्तियों को कहता हूँ जिनकी सहायता से वह सब पर शासन करता है। सबके ऊपर अमोघ (वापस नहीं फिरने वाली) आज्ञा को गिनें। हे राजा! इसे राजा की प्रभुशक्ति कहा जाता है। जिस मंत्रणा (सलाह) में पाँच अंग उत्पन्न हों उसको नीति के प्रसंग से राजा की मंत्रशक्ति कहा जाता है इसी तरह सम्पूर्ण उद्यमों में उत्साह प्रकट करे उसे राजा की उत्साहशक्ति कहते हैं। अब मैं मंत्रणा के पाँच अंग बताता हूँ! पहला अंग अनुकूल कार्य साधने का उपाय है। दूसरा अंग समर्थ होने का है जो कार्य साधन में सहायक है। तीसरा अंग देश-काल के प्रसंग में विचार करने का है। चौथा अंग कार्य के अंगों का विघ्न मिटाना और अन्तिम पाँचवा अंग कार्य व्यर्थ (खाली) नहीं जाने देने से सुखकारी है। यही मंत्रणा के पाँच अंग कहे गए हैं। हे राजा! अब मैं राजा के छह गुण गिनवाता हूँ! पहला संधि, दूसरा विग्रह, तीसरा यान, चौथा आसन, पाँचवा द्वैधीभाव और छठा गुण आश्रय कहा जाता है।

दोहा

संधि मैत्र संबंधज रु, इतरेतर उपकार॥
अरु उपहार स नाम इम, चउ तस भेद बिचार॥ ९॥

हे राजा! इनमें से पहले गुण संधि के चार भेद कहे गए हैं। पहली मित्रता से, दूसरी संबंध से, तीसरी परस्पर उपकार से और चौथी भूमि आदि देकर (संधि) की जाती है।

षट्पात्

पैले मैं गुन पिक्खि आप गुन रागी व्है इम,
छोरि लोभ छम संधि करैं मैत्र सु जानहु जिम।
कन्या दै रु करै सु संधि संबंधज धारहु,
माँहिं माँहिं उपकार व्है सु उपकार निहारहु।
पुहवि रु रत्न गज हय प्रमुख दै करैं सु उपहार यह।
चउ भेद संधि इम अब सुपहु अट्ठ भेद बिग्रह असह॥१०॥

उपरोक्त इन संधि प्रकारों के लक्षण इस प्रकार हैं। दूसरे (शत्रु) के गुण देख आप गुणों से प्रीति करते हुए, लोभ छोड़ कर समर्थतापूर्वक संधि करे ऐसी संधि मैत्रेयज कहलाती है। जो संधि कन्या दे कर की जाती है उसे संबंधज संधि कहते है। जहाँ परस्पर उपकार कर संधि हों उसे उपकार संधि जानो और जहाँ भूमि, रत्न , हाथी, घोड़ा आदि दे कर संधि की जाती है वह उपकार संधि है। संधि के उपरोक्त यही चार भेद हैं। अब मैं आगे सहन नहीं करने योग्य विग्रह के आठ भेद बताता हूँ।

दोहा

बिक्रम मंत्र सहाय बल रत्न दुर्ग आरोग्य।
इत्यादिक करि हीन व्हैं, जो नृप बिग्रह जोग्य॥११॥

पराक्रम, मंत्रणा, सहाय , सेना, रत्न, गढ़ और नैरोग्यता आदि से जो राजा हीन हो वह विग्रह करने योग्य है।

पादाकुलकम्

अट्ठ हि बिग्रह भेद सुनो इम, जे कामज लोभज भूमिज जिम।
मानज अभय इष्टज रु मदभव, एक द्रव्य अभिलाख धराधव॥१२॥

स्त्री निमित्त इन मैं कामज सो, श्रीनिमित्त लोभज जानहु सो।
भूनिमित्त भूमिज पहिचानों, बिरुद निमित्त मानभव मानों॥१३॥

बिजय निमित जु अभय सु बिग्रह, सरन निमित्त नाम इष्टज सह।
बिद्या धन जुब्बन मदिराबस, रचैं सु बिग्रह मदज बीत रस॥१४॥

हे राजा रामसिंह! इस विग्रह के आठ भेद इस प्रकार कहे गए हैं काम से उत्पन्न, लोभ से उत्पन्न, मान-सम्मान से उत्पन्न, भय से उत्पन्न, इष्ट वांछा से उत्पन्न, मद से उत्पन्न और एक द्रव्य की अभिलाषा से उत्पन्न इन आठ कारणों से राजाओं में विग्रह होता है। इनमें से जो विग्रह स्त्री के कारण हो उसे कामज विग्रह कहते हैं। जो लक्ष्मी(धन) के कारण हो वह लोभज विग्रह है। भूमि के कारण होने वाला विग्रह भूमिज कहलाता है और यश (स्तुति) के कारण हो वह मानज विग्रह है। विजय करने के कारण हो वह मानभव और किसी को शरण मे रखने के कारण हो वह शरण्य विग्रह कहलाता है। विद्या, धन, यौवन और मद्य के वश में हो कर जो विग्रह हो उसे बिना रसवाला मदज विग्रह कहते हैं।

दोहा

माँहिं माँहिं बिग्रह मचैं, एक हि अर्थ निमित्त ।
एकद्रव्य अभिलाख वह, चिंतहु भूपति चित्त॥१५॥

मंत्री मंत्र रु कोस बल, मित्र हु न भजत जाहि।
व्है ब्यसनी बारूण सुही, यान उचित नृप आहि॥१६॥

एक ही अर्थ के लिए परस्पर विग्रह हो वह एक द्रव्य अभिलाष विग्रह कहा जाता है। जिस राजा के (अपने) न हों और जो मनुस्मृति में कहे गए अठारह व्यसनों में से किसी एक व्यसन से युक्त हो तथा जो राजा मद्यपी (शराबी) हो ऐसा राजा यान (चढ़ाई करने) के योग्य होता है अर्थात् ऐसे राजा पर चढ़ाई अवश्य करनी चाहिए।

पादाकुलकम्

यात्रा इह तीजो गुन अक्खिय, ऋषिन भेद सतहि तस रक्खिय।
संधानजा पार्ष्णिरोधा जिम, नाम मित्रबिग्रहिनी है तिम॥

द्वंद्वजा रु कुल्या निर्व्याजा, शीघ्रगा हु रंजत जिन्ह राजा।
श्रुति धारहु लच्छन अब सत्तन, पहु जिन करि पहु होइ प्रमत्तन॥

इस यान अथवा यात्रा (चढ़ाई) को राजा का तीसरा गुण कहा है और ऋषियों ने इसके सात भेद कहे हैं। संधानजा, पार्ष्णिरोधा, मित्रविग्रहनी, द्वंद्वजा, कुल्या, निर्व्याजा और शीघ्रगा। इस शीघ्रगा से राजा लोग प्रीति करते हैं। हे राजा रामसिंह! अब सातों यानों के अलग-अलग लक्षण सुनें कि जिससे राजा लोग प्रमत्त न हो।

दोहा

पार्ष्णिग्राह सौं संधि करि, जु इतर अरि पर जात।
जो यात्रा संधानजा, कहत नीति निष्णात॥१९॥

पार्ष्णिग्राह के रोध पर, जु बल रक्खि पुनि जाइ।
ताहि पार्ष्णिरोधा कहत, पटु नयआगम पाइ॥२०॥

पीठ पीछे से चढ़ाई कर जीतने की इच्छा वाले शत्रु से संधि कर जो अन्य शत्रु पर चढ़ाई करे उसको नीतिनिपुण लोग संधानजा यात्रा कहते हैं। पीठ पीछे से चढ़ाई करने वाले शत्रु को रोकने के लिए सेना रख कर जो राजा अन्य शत्रु पर चढ़ाई करने जाते हैं नीतिज्ञ उसे पार्ष्णिरोधा यात्रा कहते हैं।

पादाकुलकम्

प्रथम कलह अरि मित्रन पारै, ताहि सत्रु पर सु पुनि सिधारैं।
एह मित्रबिग्रहिनी यात्रा, मिलि दुव जँहैं छिन्नैं अरि मात्रा॥२१॥

जापर यात्रा सोहु समुख जब, ताकै जाइ द्वंद्वजा है तब।
सत्रु बंधु लै संग सत्रु पर, जाइ सु है कुल्या बसुधाबर॥२२॥

स्वस्थभाव सन अरिसिर संक्रम, निर्व्याजा कहियत यह उत्तम।
सत्रुहिं हनन प्रमाद छोरि सब, सहसा जाइ सीघ्रगा तो तब॥॥

पहले चढ़ाई कर शत्रु का साथ देने वाले मित्रों को मारे इसके बाद असली शत्रु पर चढ़ाई करे इस चढ़ाई को मित्रविग्रहनी यात्रा कहा जाता है। जिस शत्रु पर चढ़ाई की जाए और वह शत्रु मुकाबला करने को सन्मुख आए ऐसी चढ़ाई को द्वंद्वजा यात्रा कहते हैं। हे राजा रामसिंह! जिस चढ़ाई में शत्रु के बांधव भी साथ हों अथवा उसके सगे सम्बन्धी भी साथ हों ऐसी चढ़ाई को कुल्या यात्रा कहा जाता है। जब स्वस्थ भाव से शत्रु पर चढ़ाई की जाती है तो वह उत्तम यात्रा निर्व्याजा कहलाती है और शत्रु को मारने के लिए आलस्य और असावधानी त्याग कर अचानक चढ़ाई की जाती है तो वह शीघ्रगा यात्रा कही जाती है।

घनाक्षरी

आसन चतुर्थ गुन भेद दस ताके अब,
स्वस्थ रु उपेक्षा सन मार्गअवरोध नाम॥

देस स्वीकरन रमनीय तैसें दुर्गासन,
निकट रु दूर पराधीन रु प्रलोभ ताम॥

अरि सब मारि राज्य अप्पन अकंटक कैं,
स्वस्थपन सौं जो रहैं स्वस्थासन सो ललाम॥

बैरिन निबल जानि अप्पहिं प्रबल मानि,
सदय जनावैं सो उपेक्षासन कित्ति धाम॥२४॥

हे राजा रामसिंह! राजा का चौथा गुण आसन है जिसके दस भेद कहे गए हैं। जब सारे शत्रुओं को मार कर अपने राज्य को निष्कंटक बना कर

चिन्ता रहित हो रहे उसे स्वस्थासन कहते हैं जो सबसे सुन्दर माना गया है। शत्रु को निर्बल और स्वयं को प्रबल समझ कर जो राजा दया का प्रदर्शन करते हुए रहे उसे उपेक्षा नामक आसन माना गया है जो कीर्ति का घर है।

तटिनी प्रवाह दवदाह आदि कारन कैं,
राह रुकै आसन व्है मार्ग अवरोध गेय॥
जीति अरि देस कौं करैं जो ताँहँ आसन सो,
राम नरनाह देस स्वीकरन नामधेय॥
सत्रुन कौं मारि तिन्ह नैर धन धान्य करि,
रम्य गिनि तत्थहि रहै सो रमनीय श्रेय॥
जीति दुर्ग अरि कौं तहाँसों खिल जीतिबे की,
अच्छी गिनि जो रहैं सु दुर्गासन हे अजेय॥२५॥

नदी के बढ़े हुए प्रवाह के कारण या आग लग जाने जैसे कारणों से आगे जाने का मार्ग अवरुद्ध हो जाए ऐसे में वहीं मुकाम कर रहने को मार्ग अवरोध आसन कहते हैं। जब राजा शत्रु के देश को फतह कर अपनी विजित भूमि पर निवास करे उसे देशस्वीकरण नामक आसन कहा गया है। अपने शत्रु का संहार कर उसके नगर को धन-धान्य से परिपूर्ण और रम्य जान कर जो राजा वहाँ रहे उसे रमणीय आसन कहते है। शत्रु का दुर्ग फतह कर उसे केन्द्र बनाते हुए शत्रु के शेष देश को जीतने की योजना मे यदि राजा उसी दुर्ग में रहे तो हे अजेय राजा रामसिंह! उसे दुर्गासन कहते है।

दोहा

बल सह रिपु ढिग जाइ बलि, करन महर्घ क्रयान।
राज्य बिगारन तस रहैं, वहै निकट अभिधान॥२६॥
निज देसहिँ गिनि दूर नृप, आयो पाउस इक्खि।
रचैं सिबिर दूरासन सु, सद्व्रत हित नय सिक्खि॥२७॥
बैरी बस वा सुहृद बस, नृप जो निकसि सकै न।
पराधीन नामक प्रथित, यह आसन नय अैन॥२८॥

इसी तरह कोई राजा बलपूर्वक सेना सहित दुश्मन के नगर के समीप जा कर ताबड़तोड़ क्रय-विक्रय कर उसके राज्य में मँहगाई बढ़ा दे और

उसके राज्य की व्यवस्था को बिगाड़ने हेतु वहीं बना रहे तो यह निकट आसन कहलाता है। जो राजा अपने देश को दूर जान कर और वर्षा ऋतु का आगमन देख अपने रहने का शत्रु के वहाँ शिविर लगाये और नीति की शिक्षावश अपना हित साधन करे तो यह दूरासन कहलाएगा। जो राजा शत्रु की प्रबलता से अथवा मित्र की मैत्रीवश अपने स्थान से बाहर नहीं निकल सके तो हे नीतिज्ञ राजा रामसिंह! इसे पराधीन नामक आसन के रूप में पहचानें।

कटक जास बहु दैन कहि, रिपु गंजम रक्खैं सु।
नाम प्रलोभासन नृपति, सूरि दसम अक्खैं सु॥२९॥

बली रिपुन बस करि निबल, कट्टि सकै जु न काल।
तक्कै द्वैधीभाव तब, पंचम गुन छितिपाल॥३०॥

मिथ्यामन मिथ्याबचन, मिथ्याकर्म उदार।
जुग बेतन जुग प्राभृतक, पंच हि द्वैध प्रकार॥३१॥

जो राजा अपने शत्रुसंहार के लिए सेना को अधिक धन देने का प्रलोभन दे कर रखे उसको विद्वान लोग प्रलोभासन कहते हैं। अपने बलवान शत्रुओं के वश में हो जाने पर जो राजा अपने निर्बल समय को नही काट पाने की अवस्था में द्वैधी भाव से देखे यह द्वैधीभाव से देखना राजा का पाँचवाँ गुण कहा जाता है। यह द्वैधीभाव भी पाँच प्रकार का होता है जिसे विद्वानों ने मिथ्यामन, मिथ्यावचन, मिथ्याकर्म, जुगवेतन और जुगप्राभृतक नाम से कहा है।

पादाकुलकम्

बैंनन हित मन मैं बिरोध बहि, मिथ्यामन यह द्वैध ख्यात महि।
बैनन हित रु बिरोध कर्म बिधि, बरनत मिथ्याबचन नीति निधि॥३२॥

लघु अरि काज करैं गुरु लोपन, मिथ्याकर्म सु द्वैध धरहु मन।
इक सन प्रकट रु छन्न अपर सन, बेतन लैं सु बजत जुग बेतन॥३३॥

रिपुहिं मरावन दै सु बित्त लहि, तस अरिसौंहु लहैं तिम बित्त हि।
जुग प्राभृतक नाम तस जानहु, अब छट्ठो आश्रय हिय आनहु॥३४॥

अप्प निबल दम भीत अनाश्रय, आश्रय सबल लै सु गुन आश्रय।
जास त्रिभेद सदाश्रय जैसें, अन्याश्रय दुर्गाश्रय ऐसैं॥३५॥

जहाँ वचनों में हित प्रकट होता हो पर मन में विरोध धारण किया हुआ हो यह मिथ्यामन नामक द्वैधीभाव पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वचनों में हित हो पर कार्य में विरोध हो उसको नीतिवान लोग मिथ्यावचन नामक द्वैधीभाव कहते हैं। अपने छोटे शत्रु से बड़े दुश्मन का नाश कराने का कार्य लेना मिथ्याकर्म नामक द्वैधीभाव है। एक से प्रकट रूप में और दूसरे से गुप्त रूप में तनख्वाह लेने को जुगवेतन नामक द्वैधीभाव कहा गया है। कोई अपने शत्रु का नाश करवाने को धन दे उसे ले ले, वहीं उसके शत्रु से भी इस तरह धन लेने के भाव को जुगप्राभृतक द्वैधीभाव कहते हैं। हे राजा! अब मैं राजा का आश्रय नामक छठा गुण कहता हूँ। कोई राजा निबौल और आश्रयरहित हो कर दंड के भय से बलवान की शरण ले। राजा के शरण लेने के इस गुण को आश्रयगुण कहा जाता है। यह आश्रय भी तीन प्रकार का होता है पहला सदाश्रय, दूसरा अन्याश्रय और तीसरा दुर्गाश्रय।

बली सत्रु कौं जानि धर्मधर, निबल मिले सु सदाश्रय नय पर।
रिपु सौं भीत बलिष्ट अपर लहि, व्है तस बस अन्याश्रय सो कहि॥३६॥
भज्जि निबल जो सबल सत्रु भय, सेवहिं दुर्ग है सु दुर्गाश्रय।
अब उपाय चउ भेद सुनहु यह, साम भेद उपदाम दंड सह॥३७॥
जानहु भूपचउहि क्रमति जिस, उत्तम मध्यम अधम कष्ट इम।
इन च्यारिन के भेदमान अब, सह लच्छन प्रभुराम सुनों सब॥३८॥

किसी बलवान शत्रु को धर्म धारण करने वाला जानकर यदि निर्बल राजा उससे मिले तो नीतिवान इसे सदाश्रय नामक आश्रय कहते हैं। शत्रु से भयभीत राजा जब किसी दूसरे बलवान की शरण ले तो यह उसका अन्याश्रय नामक आश्रय कहलाएगा। अपने सबल शत्रु के भय से भाग कर जो निर्बल राजा दुर्ग में शरण ले इसे दुर्गाश्रय कहा जाता है। अब हे राजा रामसिंह! मैं (ग्रंथकार) राजा के छठे गुण उपाय के बाबत बताता हूँ जो साम, दाम, दण्ड और भेद ऐसे चार प्रकार का बताया जाता है। इन्हें क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम कोटि का कहा गया है। हे राजा रामसिंह! अब में आपके समक्ष लक्षण सहित इनके भेदों को कहता हूँ उन्हें सुनें।

दोहा

कर्ण सुभग दैविक कथित, स्मारक लोभज सार।
बहुरि अप्प अर्पन बिदित, पंच हि साम प्रकार॥३९॥

पर चित्तहिँ करि प्रीति बस, हित संलाप गहाइ।
साम व्है जु दुँहु घाँ सुखद, कर्णसुभग सु कहाइ॥४०॥

सपथादिक करि परसपर, बिरचै जँहँ विस्वास।
समुझहु दैविक साम सो, पावहिँ नीति प्रकास॥४१॥

संबधहिँ सुमिराइ कैँ, व्है सो स्मारक होहि।
इष्ट परस्पर अप्पि व्है, सांत्वन लोभज सोहि॥४२॥

हे राजा! साम के पाँच प्रकार कहे गए हैं कर्णसुभग, दैविक, स्मारक, लोभज और आत्मसमर्पण साम। इनमें से पहला कर्णसुभग उसे कहते है जिसमें अपने शत्रु के चित्त को प्रीतिपूर्वक वश में कर हित के वार्तालाप से जो साम सम्पन्न हो उसे कर्णसुभग साम कहते हैं, जो दोनों पक्षों के लिए सुखदाई होता है। इसके अलावा जो साम परस्पर सौगंध-शपथ कर विश्वास दिलाते हुए किया जाता है उसे दैविक साम कहा जाता है। सम्बन्धों का स्मरण करा कर जो साम किया जाए उसे स्मारक साम कहते हैं। परस्पर इच्छानुसार ले दे कर जो साम होता है उसे लोभज साम की संज्ञा दी गई है।

मम बपुं है तव अर्थ इम, जंपि रु बिरचै जाहि।
पंचम सांत्वन भेद पहु, आत्मअर्पन सु आहि॥४३॥

सिद्धि व्हैँ न जँह साम सौं, तहँ भेद हि करतव्य।
जल पय सत्रुन हंस जिम, भिन्न किये व्है भव्य॥४४॥

त्रस्त अनादृत क्रुद्ध तिम, भेद उचित व्है भूप।
रिपुगत निजजन गुप्त रहि, रचैँ भेद अनुरूप॥४५॥

हे राजा! जहाँ यह कह कर कि मेरा शरीर तेरे लिए है साम किया जाए वह आत्मसमर्पण नामक साम होता है पर जहाँ साम से कार्य सिद्ध न हो सके वहाँ राजा को भेद के उपाय से काम लेना चाहिए जैसे हँस पानी और दूध को भिन्न-भिन्न कर देने से अर्थात् उनके मध्य भेद पटका देने से कल्याण (शुभ) की प्राप्ति होती है। हे राजा! क्योंकि डरा हुआ, अनादर पाया हुआ

और क्रोधी शत्रु राजा भेद कराने के उपयुक्त पात्र कहे गए हैं इसके लिए अपने आदमी शत्रु के पास जाकर स्थितियों के अनुरूप भेद रचें।

मनोहरम्

प्रानभंग मानभंग चित्तभंग बंधक त्यौं,
दारलाभ अंगभंग आद भेद खट है।
प्रानभ्य दैकैं भेद व्है सो प्रानभंग मान,
हानि भय दैकै व्है सो मानभंग बट है।
तीजो बित्तभंग बित्तहानि भय दैकैंव्है सु,
कारा भय दैकै व्हैं सु बंधक बिकट है।
पच्छ दुव पत्नी भय दै व्है दारलाभ अंग।
भंग भय व्है सो अंगभंग अति भेद है।।४६।।

भेद के उपाय छह तरह के माने गए हैं यथा प्रानभंग, मानभंग, वित्तभंग, बंधक, दारलाभ और अंगभंग। इनमें से पहला भेद प्रानभंग है जिसमें शत्रुओं को प्राणों का भय दे कर उनमें भेद डाला जाता है। जिसमें हानि होने का भय दिखाया जाए वह मानभंग भेद कहलाता है। तीसरे प्रकार का भेद वित्तभंग है इसमें शत्रु को धन-माल की हानि का भय दिया जाता है। जो भेद कैद करने का भय देकर किया जाता है उस विकट भेद को बंधक भेद कहा जाता है। शत्रु के पक्ष वालों में स्त्री छीनने का भय दे कर जो भेद डाला जाता है उसे दारलाभ कहते हैं, वहीं शत्रु पक्ष में शरीर के अंगभंग करने का भय दे कर जो भेद डाला जाता है उसे अंगभंग भेद कहा गया है।

षट्पात्

सिद्धि जो न भेद सन जबहि उपदा प्रयोग जिम,
सोलह बिध नृप सोहु कहत क्रम तैं अभीष्ट इम।
देश्य आब्द कर द्विरद सप्ति निवसथ पट सासन,
पुरट कनी पननारि खानि बेलाकर भूखन।
सोलहम भेद प्रतिपत्तिज सु अर्थ नाम अनुसार इन।
नहि बोध प्रकट जिनको न पति ते कति कहियत सुनहु तिन।।४७।।

हे राजा! जब किसी राजा की कार्य सिद्धि साम और भेद के उपायों से

नहीं हो तब उसे नजराना (भेंट) देने का प्रयोग करना चाहिए। यह भेंट सोलह प्रकार की होती इनमें से कुछ का अर्थ तो इनके नामों से ही स्पष्ट होता है। इसके सोलह प्रकार इस प्रकार है अभीष्ट, देश्य, आब्द, कर, द्विरद, सप्ति, निबसथ, पट, सासन, पुरट, कनी, पननारि, खानि, बेलाकार, भूखन और प्रतिपत्तिज। इनमें से जिन अर्थ की समझ प्रकट नहीं होती उन्हें समझा कर कहता हूँ। उसे हे राजा! आप सुनें।

पादाकुलकम्

मंगै सुहि दैबो अभीष्ट मत, दैबो देस सु देश्य कहावत।
सह कुटुंब निबहैं जिहिं धन सन, अब्द इक्क वह आब्द महामन।।४८।।

देसहिं रक्खि तास कर दैबो, कर नामक उपदा वह कैबो।
सप्तिदान जह तुरग समप्पहिं, अरु निबसथ सु ग्राम जँह अप्पहिं।।४९।।

जब लग व्है ग्राहक सपिंड जन, तब लग जो न लुपत सो सासन।
कांचन पुरट कनी कन्या कहि, वेश्या पित पननारि नाम बहि।।५०।।

रत्न सुवर्ण रजत निकसै जहँ, तिहिं दैबो खनिदान ख्यात तँहँ।
जँह बहित्र जीवन उतरैं धन, बेलाकर कहियत तस बितरन।।५२।।

पीठ चमर छत्रादि दान पहु, मान बढन प्रतिपत्तिज मन्नहु।
गज पट भुखन अर्थप्रकट गहि, लेहु समुझि सत्वर प्रबोध लहि।।५२।।

हे राजा! जो माँगे सो दिया जाय इसे अभीष्ट उपदा कहते हैं। जिसमें देश का नजराना दिया जाए उसे देश्य उपदा और जिसमें सामने वाले के पूरे कुटुम्ब का निर्वाह हो सके उतने धन का देना आब्द उपदा कही जाती है। जहाँ देश को राजा रखे तो अपने अधिकार में पर उससे प्राप्त हासिल की भेंट दे इसे कर उपदा कहते हैं। जिस भेंट में घोड़े दिये जाएँ उसे सप्ति उपदा और जिसमें गाँव दिया जाए उसे निब्रसथ उपदा कहते हैं। जहाँ भेंट लेने वाला राजा का सपिंड बाँधव हो और उसकी सात पीढ़ी तक उसका उपभोग करे ऐसी भेंट सासन उपदा कही जाती है। स्वर्ण की भेंट पुरट उपदा कहलाती है और कन्या दी जाए इसे कनी उपदा कहते हैं। जहाँ तोहफे में वैश्या दी जाए उसे पननारि उपदा और जहाँ रत्न अथवा सोना चाँदी निकले ऐसी खान की भेंट दी जाए उसे खनि उपदा कहते हैं। जहाँ जलमार्ग से व्यापार होता हो या

पार उतारने को नावें, जहाज आदि हों जिसकी कमाई से जीवनयापन हो सकता हो उसे भेंट में देना बेलाकार उपदा कहलाती है। सिंहासन, चँवर, छत्र आदि मान बढाने वाली भेंट को प्रतिपत्तिज उपदा कहते हैं। इसी तरह हाथी, वस्त्र, आभूषण आदि की भेंट इनके नामों वाली उपदाएँ कहलाती हैं, ऐसा समझें।

सिद्ध काज जो व्है न दान सन, पंद्रह भेद दंड तहँ प्रेरन।
देसनास अरु अंगछेद जिम, गोग्रह धान्य हरन बंधन तिम ॥४३॥

देसहरन अरु धन आदान हु, पुनि सर्वस्वहरन पहिचानहु।
दुर्गभंग सहस्थानदाह श्रुत, देसनिकास जुद्धघातन जुत ॥५४॥

अवविस दंड आभिचारिक इम, अनुचित छद्मघात जहँ अंतिम।
पहिले दम बारह प्रबलन के, अग्ग तीन निंदित अबलन के ॥५५॥

हे राजा! जहाँ उपदा पर भी कार्य सिद्धि नहीं होती हो तब उस राजा को दण्ड नामक भेद का प्रयोग करना चाहिए जो पन्द्रह प्रकार के कहे गए है। इनमें से भी प्रथम वर्णित बारह के प्रकार दण्ड प्रबल शत्रुओं को देने के होते हैं जबकि आगे वर्णित तीन प्रकार के निन्दनीय दण्ड निर्बल शत्रुओं के लिए हैं। बारह प्रकार के दण्डों में देशनाश, अंगछेद, गोग्रह, धान्यहरन, देशहरन, धनदण्ड, बंधनदण्ड, सर्वस्वहरन, दुर्गभंग, सहस्थानदाह, देशनिकास और जुद्धघात ये दण्ड प्रबल शत्रुओं को देने के कहे गए। अब आगे के तीन यथा विषदण्ड, अभिचारिक दण्ड और अनुचित छद्माघात ये दण्ड निर्बल शत्रुओं के निमित हैं।

घनाक्षरी

बेल बन छेदैं त्यों निवानन कों भेदैं लूटि,
जारैं पुर ग्रामन को सोतो दम देसनास॥
छेदैं परपच्छिन के अंग वह अंगछेद,
सर्ब पसु आनैं घेरि गोग्रह दुख दुरास॥
धान्य सब लूटै धान्य हरन सु जानौं बंधैं,
धनक कुटुंबी नाम बंधन बिदित तास॥
सत्रु की प्रजा कों बिसवास बढैं तैसैं रहि,
आपुनी करें सो देसहरन बलिष्ठ बास॥५६॥

बाग और वन को काटना, जलाशयों को फोड़ना, नगरों व गाँवों को लूटना एवं जलाना इन सभी उपरोक्त क्रियाओं वाला दण्ड देशनाश कहा गया है। अंगछेद नामक दण्ड में अपने शत्रु के अंग छेदन करना आता है। शत्रु के सारे पशुओं को घेर कर लाना यह खोटी आशा वाला दु:खदायक दण्ड गोग्रहण कहलाता है। शत्रु के अधिकार का सारा धान्य लूट लेना धान्य हरण दण्ड कहलाता है। वहीं धनवान शत्रुओं और उनके कुटुंबियों को बाँधना बंधनदण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। शत्रु की प्रजा का आप में विश्वास बढ़े उस तरह का व्यवहार करते हुए उसे अपने पक्ष में कर लेने का यह बलवान दण्ड देशहरन नामक है।

बलतैं दबाइ दंडि सत्रु धन लै सो धन.....,
दान सरबस्व लै सो जानौं सरबस्वहार॥
गढन गिरावैं दुर्गभंग सो त्यौं खंधावर,
सत्रु कौं प्रजारैं सो है स्थानदाह नाम धार॥
देस तैं निकासैं देसनिर्बासक नाम ताको,
जुद्ध करि मारैं जुद्ध घातन सो हे उदार॥
राम प्रभु अैसैं बलवान होइ ताके करि.....,
बेके कहे द्वादश ही ए तो दंड के प्रकार॥५७॥

अपने शत्रु को सेना की सहायता से दबा कर जो धन लिया जाता है उसे नीति में धनदण्ड कहा गया है। वहीं शत्रु का सर्वस्व लूट लेनें को सर्वस्वहरन दण्ड कहते हैं। शत्रु के गढ़ ध्वस्त करने को दुर्गभंग दण्ड और शत्रु की राजधानी को जला कर नष्ट करने के दण्ड को स्थानदाह कहा गया है। शत्रु को युद्ध में मारा जाए उसे युद्धघात दण्ड कहा गया है। हे उदार राजा रामसिंह! उपरोक्त बारह प्रकार के दण्ड बलवान शत्रु को दण्डित करने के कहे गए है।

प्रकृति:

निबल उचित अब दम त्रय भनैं, है बिषदंड जु गर करि हनैं।
आभिचारिक जु आभिचारि सौं, छद्मघात तिम छल वार सौं॥५८॥

अपने निर्बल शत्रु को सजा देने हेतु राजा तीन प्रकार के दण्डों को

बरतें! जिनमें से पहला शत्रु को जहर दे कर मारने वाला विषदण्ड कहलाता है। इसी तरह जंत्र-मंत्र के टोटकों से शत्रु को मारना आभिचारिक दंड के नाम से जाना जाता है। तीसरा शत्रु को छल कपट से वार करके मारने वाला दंड छद्मघात नामक है।

मनोहरम्

सावधान अैंसै प्रभुतादिक त्रि सक्तिन मैं,
संधि मुख छ गुन प्रप्रंच पटुता धरैं॥
साम आदि च्यारि हु उपाय अनपाय जानैं,
भेदन सहित सप्त प्रकृति हिये हरैं॥
वर्णाऽऽश्रम राज धर्म राजनय नेता न्याय,
निपुन उदार कोंस कुधन नही भरैं॥
अैसो नृप आपुनैं स्वतंत्र आप व्है सो एक,
उद्यमी असेस अवनी कौं अपनी करैं॥५९॥

हे राजा! इस प्रकार अपनी प्रभुता आदि तीनों शक्तियों में सावधान और संधि आदि छहों गुणों को रचने में चतुर जो राजा साम आदि चारों उपायों को जानें। फिर सभी भेदों के प्रकारों को बरतता हुआ राज्य के सातों अंगों को अपने हृदय में धारण करे। जो राजा वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म और राजनीति में प्रवृत हो, जो न्याय में चतुर और उदार हो और अपने खजाने में खोटे धन को नहीं धरे। जो राजा अपने आप में स्वतंत्र हो कर उद्यमी बने। ऐसा राजा सम्पूर्ण भूमि को अपनी बनाने वाला होता है।

पादाकुलकम्

सप्त राज्य अंगन बिच स्वामी, नयपटु सूर होत इम नामी।
अंग द्वितीय अमात्य सुनहु अब, सह लच्छन शेष हु प्रतीक सब॥६०॥

श्रुतसंपन्न कुलीन धीर सुचि, रागद्वेष बर्जित आस्तिक रुचि।
बाग्मी सम्मत सास्त्र बिसारद, नयप्रगल्भ अनुकारक निर्गद॥६१॥

आय व्यय पटु सत्यसंध इम, सूर अबैर महासत्वहु तिम।
उपधासुद्ध कुलक्रम एधित, होत सचिव अैसे स्वामिनहित॥६२॥

अंग तृतीय सुनहु मंत्री अब, साध्य असाध्य बिवेक धरैं सब।
देस रु दिष्ट अपोहन ऊहन, निपुन धीर स्वाकार निगूहन॥६३॥

स्वीय देस संभूत महामति, गहैं सबन आकृति इंगित गति।
प्रथित अलुब्ध मंत्र रक्खन पर, कुपथ भूप प्रातीप्य सुपथ कर।।६४।।

पंच हि मंत्र अंग परिचायक, आप्त कुलीन दूरदृग दायक।
ऐसे व्है मंत्री अवनीपन, परन गंजि प्रभु सुजस प्रदीपन।।६५।।

हे राजा! जो नृप राज्य के सातों अंगों का स्वामी हो वह नीति चतुर और वीर के रूप में प्रसिद्ध होता है अर्थात् राज्य का पहला अंग राजा होता है। अब मैं आपके समक्ष शेष सभी अंगों को भी लक्षणों सहित कहता हूँ उसे सुनें। सर्वप्रथम राज्य के दूसरे अंग अमात्य के गुण कहता हूँ। जो वेद की सम्पतिवाला अर्थात् वेद शास्त्र को जानने वाला, कुलवान, धीर-गंभीर, रागद्वेष से वर्जित (वंचित) परमेश्वर को मानने में रुचि रखने वाला, उत्तम बोलने वाला, सम्मानवान, शास्त्र विशारद, नीति में बुद्धिमान, रोग रहित, अपने सदृश कार्य करने वाला, आय-व्यय को समझ कर चलने वाला, सत्यप्रतिज्ञा वाला, वीर, वैर रहित, पराक्रमी, कुल के क्रम में बढ़ा हुआ और धर्मार्थ आदि के चारों पुरुषार्थो की परीक्षा करने में शुद्ध, ऐसा अमात्य (सचिव) हो तो वह अपने स्वामी का हित करने वाला होता है। आगे राज्य के तीसरे अंग मंत्री बाबत बताता हूँ। जो साध्य और असाध्य कार्यो के ज्ञान को धारण करने वाला, काम, क्रोध, शोक आदि से व्याकुल चित्तवाले की तर्कना करने वाला निपुण, धीर, अपने आकार को गूढ रखने वाला, अपने ही देश में जन्मा पला बुद्धिमान, सबकी आकृति और चेष्टा से गति को जानने वाला, प्रसिद्ध, निर्लोभी, शत्रुओं से अथवा किसी अन्य से मंत्रणा को गुप्त रखने वाला, कुमार्ग पर चलने वाले अपने राजा को शिक्षा देकर सुमार्ग पर लाने वाला, मंत्र (सलाह) के पाँचों अंगों का ज्ञाता, सत्यवादी, कुलवान और दूरदर्शी हो यदि ऐसे मंत्री हों तो उनके स्वामी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर कीर्तिवान बनते हैं।

अंग चतुर्थ कोस कहियत अब, संचित जँह रत्नादि द्रव्य सब।
पंच रत्न तह पुब्ब प्रमानहु, जिनमै प्रथम बज्र मनि जानहु।।६६।।

तास पंच गुन पंच दोस तिम, जंपिय चउ छाया वृद्धन जिम।
लघु छकोन बसुकोन रु निर्मल, अग्रतिग्म ए तो गुन अतिफल।।६७।।

त्रास बिंदु मल रेख काकपद, हीरक मै ए पंच दोस हद।
छाया स्वेत अरुन पीत असित, है क्रम तैं चउ बर्ण उचित हित ॥६८॥

मनि दूजो मुक्ता सु धराधव, तस इभ अहि किटि तिमि सिर संभव।
उपजत संख सुक्ति बंसन उर, धाराधर बिंदुज अष्टम धुर ॥६९॥

राज्य के चौथे अंग खजाने में रत्न आदि मँहगे द्रव्य संचित रहते हैं। इनमें से पाँच रत्न जो महत्वपूर्ण होते हैं इनमें भी हीरे को जानों। तजुर्बेकार वृद्धों ने हीरें में पाँच गुण, पाँच दोष और पाँच छायाएँ कही हैं। जो हीरा हल्का (भार में हल्का) हो, षटकोण अथवा अष्टकोण हो, जो हीरा मलरहित हो और जिसका आगे का भाग तीखा हो। ये पाँचों तो हीरे के वे गुण है, जो बहुत फलदायक होते हैं। त्रास, (मणिदोष विशेष), अन्य रंग का छिड़का, मैल, लकीर और काकचरण के समान चिन्ह ये पाँचों हीरे में दोष के रूप में मानें गए हैं। हीरे में श्वेत, लाल, पीली और काली ये सभी प्रकार की छायाऐं (झाँई) क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण को फायदा पहुँचाने वाली मानी जाती हैं अर्थात् वर्ण को ध्यान में रख कर छाया के अनुसार ही हीरा चुनना चाहिए। हे राजा! दूसरा बहुमूल्य रत्न मोती है जो हाथी, सर्प, सूअर और मच्छ (मछली) के मस्तक में बनता है। इसके अतिरिक्त मोती शंख, सीप और बांस के भीतर भी उत्पन्न होते हैं। मोती की आठवीं उत्पत्ति मेघ धारा के बिंदु (कण) से कही गई है।

गुनसर ज्योति वृत्तपन गुरुपन, अरु बिमलत्व स्निग्धता उरुपन।
दोस दस हि चउबडे छ छोटे, मन्नहु तहँ पहिले वउ मोटे ॥७०॥

सिमिदृग सुक्तिलग्न अरु तीजो, जरठ दीप्ति छाया बिनु हीजो।
बिद्रुमकांति चतुर्थ दोस बहि, लघु छदोस सुनिये अब क्रम लहि ॥७१॥

जुबलीबलित त्रिवृत्त सो तर्जित, बलि चर्पट बर्तुलता बर्जित।
व्है प्रलंब कृस नाम कहावैं, पुनि जु त्रिकोन त्र्यस्त्र पद पावैं ॥७२॥

खंड नाम सपिटक अवृत खिल, कैंहुक भुग्न कृपापार्श्व छठो किल।
पीत मधुर सित सिति चउ छाया, इनमैं चोथी असुभ अनाया ॥७३॥

हे राजा! मोतियों में गोलाई, भारीपन (वजनी), निर्मलता, सचिक्कणता और आकार में बड़ा होना ये पाँच गुण माने गए है। वहीं दस दोष कहे गए हैं।

जिनमें से चार बड़े दोष और छ: छोटे है। पहले मैं चार बड़े दोषों को कहता हूँ। पहला वह जिसमें उसके मुँह अथवा छिद्र में कीड़ा लगा हो इसे सिमिदृग कहा जाता है। दूसरा सुक्तिलग्न जिसमें मोती से सीप का टुकड़ा चिपका हुआ हो। मंद कांति वाला बिना छाया वाला तीसरा दोष जो जरठ दीप्ति कहलाता है। चौथा जिस में मूंगे जैसी चमक हो विद्रुम कांति दोष के नाम से जाना जाता है। इन चार बड़े दोषों के बाद मैं मोती के छह छोटे दोषों को कहता हूँ हे राजा! आप सुनें! पहला दोष उसका सलों से भरा होना होता है उसे झुर्रिदार अथवा जुबलीवलित कहते हैं। जिसमें तीन गोलाइयाँ हों वह त्रिवृत दोष कहा गया है। दोषों वाले मोती भयदायक होते हैं। जो मोती चपटा, गोलाई रहित लंबायमान आकृति वाला हो उसको कृश कहते हैं ऐसे मोती भी नहीं पहनने योग्य होते हैं। जो मोती त्रिकोण हो उसे त्र्यस्त्रपद कहते हैं। यह भी वर्जित श्रेणी में आता है। जो मोती खण्डित हो वह सपिटक कहलाता है। खंडित होने से जिसका बाकी का भाग गोलाई रहित होता है। जो मोती टेढ़ा बांका हो वह कृपापाश्र्व कहलाता है सामान्यत: मोती में पीले रंग, महुए के रंग, श्वेत और काले रंग की झाँईं होती है। इनमें से अन्तिम चौथी झाँईं वाला, श्याम रंग की कांति वाला मोती अशुभ और पीड़ादायक कहा जाता है। इसलिए वर्जित मोती की श्रेणी में आता है।

दोहा

तीजो मनि मानिक्य तहँ, गुन चउ ओगुन अष्ट।
बहुसितादि धूम्रादि छवि, करैं तथा सुख कष्ट।।७४।।
निर्मलपन अतिरक्तपन, स्निग्धछवित्व गुरुत्व।
गदित च्यारि मानिक्य गुन, ए जिन्ह भद्र उरुत्व।।७५।।

तीसरा महत्वपूर्ण रत्न माणिक्य है इसमें चार गुण और आठ दोष पाये जाते हैं। माणिक्य में श्वेत और धूम्रवर्ण जैसी कई छवियाँ होती हैं। माणिक्य में जो गुण हैं वे तो सुख देते हैं पर अवगुणों वाले माणिक्य दु:खदायक कहे गए हैं। इसमें निर्मलता, अतिरिक्त ललाई, सच्चिकणता और भारीपन ये चार गुण कहे गए हैं। जिनके पास ऐसे गुणों वाले निर्दोष माणिक्य होते हैं उनका कल्याण होता है अर्थात् ये कल्याणदायक होते हैं।

पादाकुलकम्

द्वि छबि दोष हैं जहँ छाया दुव, व्है द्विरूप तस नाम द्विपद हुव।
भिन्न जु व्है सु दोस भेदाव्हय, रेनुजुत सु कर्कर निरखहु नय।।७६ ।।

जुपटदोस पय रंग लसुन जहँ, तिम जड़ नाम रंगबिनु व्है तहँ।
मधु निभ कांति सु कोमल मानहु, धूमकांति धूम्र सु उर आनहु।।७७ ।।

मन्नहु इंद्रनील चोथो मनि, तहँ गुन पंच छ दोस दये तनि।
छाया अष्ट कहिय छितिनायक, देखहु गुन जे अब सुभदायक।।७८ ।।

माणिक्य में दो छायाएँ हों तो वह द्विछवि दोष कहलाता है उसी तरह जो दो रूप रंग वाला हो उसे द्विपद दोष वाला कहते हैं। जो माणिक्य फूटा हुआ हो उसे भेददोष वाला और जो रेतकण युक्त हो वह कर्करदोष वाला माना जाता है। दूध के रंग का श्वेत (दूधिया) पर जिसमें काला चिह्न (लहसुन) वह पटदोष वाला और जो बिना रंग का हो वह माणिक्य जड़ नामक दोष वाला होता है। जिसमें महुए के रंग की कांति हो वह माणिक्य कोमल नामक दोष से युक्त समझा जाता है। वहीं जो धूम्रवर्ण हो धूमदोष वाला जानें। हे राजा! चौथा बहुमूल्य रत्न (मणि) नीलम है जो पाँच गुणों और छह दोषों वाला होता है। इसमें आठ प्रकार की छायाएँ (कांति) होती हैं। मैं पहले इसके पाँच गुणों को कहता हूँ।

दोहा

स्निग्धछवित्व सुरंगपन, रंजन पासप्रदेस।
गुरुता अरु तृनग्राहिता, इहि गुन पंचक एस।।७९ ।।

सच्चिकण छवि, श्रेष्ठ रंग, अपने समीप के प्रदेश को रंग युक्त करना, भारीपन, अपने साथ (आर्कषण गुण) तृण को लिपका लेना, ये पाँच गुण नीलम के कहे गए हैं।

पादाकुलकम्

सुनहु दोस जहँ पटल अभ्रसम , अभ्र हि तस अभिधान अनुत्तम।
व्है सह रेनु सर्क्करी आव्हय, दै जु भिन्न भ्रम त्रास सु दृढ दय।।८० ।।

भिन्नहि व्है जु भिन्न तिहिं भाखत, मृद्गर्भ जु मृत्तिका गर्भ मत।
अस्मगर्भ अस्महि जब अंतर, बसु छाया अब सुनहु धराबर।।८१ ।।

नीलीरस वैष्णवीसुमन निभ, लवणीसुम इंदीवर घन निभ।
सिवगल विष्णुसरीर उमासुम, तिन सन्निभ इम अठ्ठ गिनहु तुम ॥८२॥

सिखिगल मधुकर पच्छ समहु तस, द्वै पुनि धरि कति कहत कांति दस।
पय मैं नील गेरि पिक्खहु पय, नील होइ सुहि नील सत्य नय ॥८३॥

जिस नीलम में बादल (अभ्र) जैसा जाला हो उसे अभ्र नीलम ही कहते हैं और यह उत्तम नहीं होता। जो नीलम रेत(धूल कण) सहित हो उसका नाम शर्करी है। हे दृढ़ दया वाले राजा रामसिंह! जो नीलम टूटे-फूटे होने का भ्रम दे उसे त्रास नामक दोष कहा जाता है और जो यथार्थ में टूटा-फूटा हो उसे भिन्न कहते हैं। जिस रत्न (नीलम) में मिट्टी हो उसे मृद्गर्भ कहते हैं और जिसमें पत्थर हो उसे अश्मगर्भ कहते हैं। हे राजा! अब मैं नीलम की आठ छायाओं बाबत बताता हूँ! नील के रस जैसी, तुलसी के पुष्प, लोनी (लोणी) नामक पोधे के पुष्प के रंग जैसी, नीलकमल, मेघ, शिव के कंठ, विष्णु के शरीर और हल्दी के पुष्प के रंग जैसी नीलम की आठ छायाएँ जानें। इन प्रसिद्ध छायाओं के अतिरिक्त कुछ लोग मयूर के कंठ और भ्रमर पंख जैसी दो छायाएँ और बताते हैं इस तरह इन्हें मिलाकर कुल दस छायाएँ हो गईं। हे राजा! नीलम की परीक्षा करने का जो उपाय है वह इस प्रकार है कि नीलम को दूध में डुबो कर देखें यदि दूध नीला झांईंदार नजर आए तो वह सच्चा नीलम माना जाता है।

मनि पंचम मरकत इम मन्नहु, पंचहि गुन तस दोस सम पहु।
बसु छबि अब पंचहिं गुन बरनत, सुरागत्व नीरेनुक सम्मत ॥८४॥

पुनि गुरुता स्निग्धता बिमलपन, देखहु पहु सत्तहि अब दूखन।
होई रूक्षता रूक्ष कहावत, पिटकनजुत सपिटक पद पावत ॥८५॥

छायाहीन सु मलिन महीबर, अस्मगर्भ अस्महि जब अंतर।
रजजुत नाम सकर्कर रक्खिय, दीप्तिहीनज इम अक्खिय ॥८६॥

पुनि कल्माष जहाँ कर्बुरपन, बसु छाया अब सुनत धगाधन।
सुकसिसु केकि किकीदिवि छद सम, काच हरित सैवल साड्वल क्रम ॥८७॥

सिरीषसुम खद्योतपृष्ठ सह, इन सन्निभ बसु छबि मरकत यह।
कृत्रिम मनिन परिच्छा कहियत, लाभ उचित निश्चै जिम लहियत ॥८८॥

हे राजा! पाँचवीं बहुमूल्य मणि पन्ना है जिसके पाँच गुण और सात दोष कहे जाते हैं। इसकी आठ प्रकार की कांतियाँ होती हैं। मैं पहले पन्ने के पाँच गुण बताता हूँ। श्रेष्ठ रंग, रेणु (रेत) रहित, भारीपन, सच्चिकणता और निर्मलता ये पाँच गुण कहे गए हैं। हे राजा! पन्ना में सात दोष पाये जाते हैं। जिस पन्ना में रूखापन हो वह रूक्ष कहलाता है और जो जालेदार हो वह सपीटक कहा जाता है। इसी तरह जो पन्ना हल्की कांति वाला काला हो उसे मलिन, जिसके भीतर पत्थर हो वह अश्मगर्भ, जो रेतयुक्त हो उसे सकर्कर, जो कांतिहीन हो उसे दीप्तिहीन और जो रंग बिरंगा हो उसे कल्माषपाद कहा जाता है। उपरोक्त सात दोष पन्ने के कहे गए। पन्ना रत्न की आठ प्रकार की कांतियाँ बताई गई हैं। शुक पक्षी के बच्चे के रंग जैसी, मयूर और चातक के पंखों के रंग जैसी, हरे काँच, शेवाल (काई) और तृण की कोंपल के रंग जैसी, शिरीष के पुष्प और जुगनू की पीठ के रंग वाली पन्ने की आठ कांतियाँ होती हैं। अब मैं रत्न की परीक्षा बाबत बताता हूँ। जिन्हें अपने लाभ के लिए आप सुनें।

षट्पात्

कृत्रिम बज्र जु करत बज्र बिद्धहि वह बिगरत,
कृत्रिम मुक्ता केर मिटन जल लवन धोइ मत।
कृत्रिम व्है मानिक्य नील मरकत मुख तो तब,
इनकौं घिसि औटाइ सत्य मिथ्या परखत सब।
व्है क्कथित कुराग रु घृष्ट मृदु जै सबै कृत्रिम जानिये।
इह रत्न पंच ए मुख्य अब मनि सप्तक लघु मानिये॥८९॥

हे राजा रामसिंह! जो हीरा कृत्रिम होता है वह सच्चे हीरे से बेधने पर बिगड़ जाता है। इसी तरह जिस मोती की शोभा नमक के पानी से धोने पर मिट जाए वह कृत्रिम होता है। कृत्रिम माणिक्य, नीलम और पन्ना आदि रत्नों की परीक्षा उन्हें घिस कर और जल में उबाल कर की जाती है। जिस रत्न का पानी में उबालने पर रंग बिगड़ जाए वह कृत्रिम होता है वहीं ये रत्न यदि घिसने से कोमल हो जाएँ तब भी कृत्रिम माने जाते हैं। हे राजा! यह सभी तो मैंने (ग्रन्थकार ने) पाँच मुख्य रत्नों बाबत कहा। अब मैं सात छोटी मणियों के विषय में आगे कहता हूँ।

सूर्यकांत जो सूर्यकिरन लहि बन्हि प्रकासत,
चन्द्रकांत जो चन्द्र अंस छबि स्राव उपासत।
पुष्पराग बैडूर्य स्फटिक गोमेद रु बिद्रुम,
यह सप्तक लघु आहि सकल द्वादस तक्कहु तुम।
गुन तीन सब हि रत्नन गिनहु कांति कठिनपन स्वच्छपन।
तजि पबि गुरुत्व गुन ग्यारहम गुन पबि गत लाघव लखन॥९०॥

हे राजा! सूर्य की किरणों की सहायता से जिस मणि से अग्नि उत्पन्न हो जाए वह सूर्यकान्तमणि कहलाती है। इसी प्रकार चन्द्रमा की किरणों से जिस मणि में अतिरिक्त कांति उत्पन्न हो वह चन्द्रकान्तमणि कही जाती है। पुखराज, वैदुर्यमणि (लहसुनिया) स्फटिकमणि, गोमेदमणि और मूँगा ये सात छोटी मणियाँ कही गई हैं। ये सातों मणियाँ पाँच मुख्य रत्नों से मिल कर बारह रत्न बनाते हैं। इन सारे रत्नों में तीन गुण उभय कहे गए हैं कान्ति, निर्मलता और कठोरता। एक हीरे को छोड़ कर शेष सभी ग्यारह रत्नों में भारीपन का गुण विद्यमान रहता है। हीरा अन्य रत्नों की अपेक्षा हल्का होने का गुणधारक होता है।

दोहा

इन्न रत्नन करिकैं अधिप, करैं निचित निज कोस।
हाटक सोलह बर्ण व्है, इनमैं अंत्य अदोस॥९१॥
पावक तपि न घटैं पुरट, सोलह बर्ण सु जानि।
नवरवि बिज्जु प्रकास निभ, अर्जहिं कोसन आनि॥९२॥
रजत नागमिश्रित रुचिर, सूचि ज्वालित बिच सुद्ध।
एका ससि संकासरुचि, परिचित करहिं प्रबुद्ध॥९३॥

हे राजा रामसिंह! आप अपने खजाने में ऐसे रत्नों का संग्रह करें और इनके साथ ही निर्दोष (सोलहवाँ) स्वर्ण भी इकट्ठा करें। सोने को सोलह बार अग्नि में तपाने से कुन्दन बनता है। जब स्वर्ण अग्नि में तपाने से नहीं घटे तो कुन्दन बन गया ऐसा जाना जाता है। प्रभात के सूर्य और बिजली के प्रकाश जैसा जिसका प्रकाश हो ऐसा आपको अपने खजाने में संचित करना चाहिए। हे राजा! सीसा धातु मिला कर अग्नि में जलाने पर चाँदी शुद्ध होती है। वह

चाँदी जिसकी कांति पार्वती और चन्द्रमा की प्रज्वलता का भ्रम देती हो ऐसी चांदी की चतुर लोग परीक्षा कर संग्रह करें।

रत्न रु दुव हाटक रजत, अघटित घटित असेस।
कोस अंग चोथो करैं, नय चित निपुन नरेस॥९४॥

करके च्यारि बिभाग करि, धर्म्म अर्थ अरु काम।
तीनन मैं त्रय बंट तजि, धरै चतुर्थहिं धाम॥९५॥

सस्त्र बस्त्र धान्यादि सब, संचय इतरहु सज्जि।
पूरन रक्खै कोस पहु, गिनैं सुकर सब गज्जि॥९६॥

हे राजा! रत्न, स्वर्ण और चाँदी, ये घड़े हुए और अघड़ (बिना घड़े हुए) सभी पदार्थों से नीति में चतुर राजा अपने राज्य के चौथे अंग अर्थात् खजाने को पूर्ण करता है। राज्य से कर के रूप में उपलब्ध राशि को राजा चार भागों में बाँट कर इसके तीन हिस्से धर्म, अर्थ एवं काम में लगाए और बाकी का चतुर्थांश अपने खजाने में डाले। रत्न, स्वर्ण, चाँदी के अतिरिक्त राजा को चाहिए कि वह अपने खजाने को शस्त्र, वस्त्र, धान्य आदि चीजों से भी सम्पन्न बनाए। अपने भरे हुए खजाने से सुखी रहने वाला राजा सदा ही गर्जना करने वाला होता है।

भेकप्लुतिः

मुक्त अमुक्त मुक्तामुक्त, यंत्रमुक्त प्रहरन चउ उक्त।
अरिअसि सक्ति रु सर इत्यादि, बिक्ख हुए क्रम करि गनबादि॥९७॥

बादर रांकव क्षौम बखानि, जिम कौशेय बसन चउ जानि।
सूत्र रु रोम सन सु पुनिपट्ट, बस्त्रन भवक्रम करि चउ बट्ट॥९८॥

सूक अनणु अणु धुर त्रय धान्य, महि तस जातिहु सत्रह मान्य।
सालि चनक कोद्रव क्रम साहि, इनबिच समझहु अखिल उमाहि॥९९॥

तैलरु तूल घृतादिहु तत्थ, सोर रु सीसक यंत्र समत्थ।
इति मुख संचय बिरचि असेस, रक्खहि संभृत कोस नरेस॥१००॥

हे राजा! शस्त्र चार प्रकार के कहे गए हैं। जो हाथ से छोड़ कर फेंके जाते हैं चक्र आदि उनको मुक्त शस्त्र कहते हैं जिन्हें हाथ में रख कर चलाया जाता है वे शस्त्र तलवार आदि अमुक्त कहलाते हैं। वे शस्त्र जो हाथ में रख

कर और फेंक कर चलाए जाते हैं उन्हें मुक्तामुक्त कहते हैं जेसे भाला, बरछी आदि और चौथे प्रकार के शस्त्र यंत्रामुक्त कहे जाते हैं। जिनमें बाण और गोली आती है जो यन्त्र की सहायता से फैंके जाते हैं। इन चारों प्रकार के शस्त्रों क्रमशः चक्र, तलवार, बरछी और तीर को युद्धहठी वीर चलाते हैं। इसी तरह वस्त्र भी चार प्रकार के कहे गए हैं सूत के वस्त्र, ऊनी वस्त्र, सन के वस्त्र (जूट के) और रेशम के वस्त्र। धान्य भी तीन प्रकार का होता है जिनमें पहला सूकधान्य, जिनमें चावल, गेहूँ, जव आदि धान आते हैं। चना, उड़द, मूँग, मोठ को दूसरे प्रकार का अन्यणु धान्य कहा जाता है। तीसरे प्रकार के धान्य अणु कहलाते है, जिनमें कोदूं आदि हैं। भूमि से इनकी सत्रह प्रजातियाँ उत्पन्न होती है। इनके अलावा तेल, रूई, घी सहित उपरोक्त सभी का भंडारण राजा जो अपने खजाने में करना चाहिए। बारूद, सीसा और इनके यंत्र यथा बंदूक, तोप आदि का भी अच्छे राजा को संचय करना चाहिए और अपने खजाने को इन से समृद्ध करना चाहिए।

दोहा

अंग पंचम सु देस अब, भनिय चतुर्बिध भूप।
इक अनूप दूजो उचित, नदीजीव अनुरूप॥१०१॥
बृष्टिज़ीव तीजो बहुरि, जंगल चोथे जानि।
उत्तर उत्तर है अधम, पूरब सुखद प्रमानि॥१०२॥
जिहिं प्रदेश उफनाई जल, ऊपर ऊपर आइ।
जु अनूप रु दूजो जहाँ, जीवननदि जल पाइ॥१०३॥
जहँ जीवन लहि वृष्टि जल, वह तृतीय अभिधान।
जंगल चोथो वृष्टिजल, सुसहिं सद्य सो थान॥१०४॥

हे राजा रामसिंह! राज्य का पाँचवाँ अंग देश कहलाता है जो चार प्रकार का कहा गया है। इनमें से पहला अनूप, दूसरा नदी से जीने वाला, तीसरा वृष्टि मे जीने वाला और चौथा जंगल से जीने वाला होता है। पहले वाला सुखदायक और शेप सारे अधम देश कहे गए हैं। सभी देशों में मे पहला वह जहाँ भुमि से जल उफनता है अनूप देश कहलाता है। जहाँ का जनजीवन नदी पर आश्रित हो वह नदीजीवी कहलाता है। तीसरा जिस देश में

जीवन वृष्टि आधारित हो उसका नाम वृष्टि जीवन है और चौथा जंगल देश जहाँ वर्षा का पानी शीघ्र ही सूख जाता है।

लै इनसौं कर आय लखि, छमहू कौं कछु छोरि।
जोतैं कृषि दल हरखि जिम, रहैं कुलोभ हिं मोरि ॥१०५॥

रत्न कनक अरु रजत के, जहँ आकर जे देस।
पोतजीव जहँ पोत सौं, उतरैं बसु चय एस ॥१०६॥

अट्ठहि जनपद मुख्य ए, महि तिम पंच अमुख्य।
उपबन बन गोचर अग रु, खिल खनि ए सब मुख्य ॥१०७॥

राजा को चाहिए कि इन देशों से जैसी आमद हो उसी के अनुसार हासिल कर ले। जो प्रजा खेती करने में समर्थ हो उन लोगों में से कुछ को क्षम्य मानकर हासिल वसूल करें इमसे खेती करने वाले प्रसन्न हो कर हल जोते और खोटा लोभ न करे। जहाँ रत्न, स्वर्ण और चाँदी आदि की खानें हो वह देश आकर कहलाता है। जहाँ जल के पार उतरने को लोग धन दे कर नाव से काम लेते हों उसे पोतजीवी कहते हैं। इस प्रकार चार देश पूर्व वर्णित अनुसार, तीन अलग-अलग खानों वाले आकर और पोतजीवी कुल आठ प्रकार के मुख्य जनपद (देश) गिने गए जिनमें भूमि के आधार पर बने पाँच प्रदेश गौण है। वे पाँच प्रदेश इस प्रकार हैं बाग, वन, गोचर, पर्वतीय और पाँचवाँ वह प्रदेश जहाँ तीन (रत्न, स्वर्ण, रजत) खाना के अतिरिक्त दूसरी खानें हों।

पादाकुलकम्

इन तेरह देसन के आश्रित, होइ प्रजा जितनी चाहत हित।
तस्कर धाटि आदि दुख तिनके, सकल हरैं सीमा बासिनके ॥१०८॥

तब सब देस रहैं घन बरसत, देस अंग पंचम यह दरसत।
अंग छठो दुर्गाभिध अक्खिय, ऋषिन तदीय भेदन बरनिय ॥१०९॥

चूड़ाल दोहा

महिपति दुर्ग सलिलमय गिरिमय, अस्ममय रु इष्टामय अत्थ।
बनमय बिदित मृतिकामय बलि, सो मरुमय रुमर्त्थमय सत्थ ॥११०॥

बरनत नवम दारुमय इन बिच, पहिले दुव उत्तम पहिचानी।
अग्ग छमित मध्यम सुव इक्खहु, जो अंतिम सु अधम इक जानि ॥१११॥

इस तरह आठ और पाँच कुल तेरह प्रकार के जनपद हुए। इन जनपदों की प्रजा राजा पर आश्रित होती है अत: राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा की चोर- तस्करों और डाकुओं से रक्षा करे। क्योंकि इन जनपदों की सीमा में बसने वाले सभी प्राणियों की सुरक्षा का जिम्मा राजा का होता है। राज्य का यह पाँचवाँ अंग देश अच्छी वर्षा पर आधारित कहा गया है।

हे राजा! अब मैं (ग्रंथकार) आपके समक्ष राज्य के छठे अंग दुर्ग के बाबत कहता हूँ। जिसके विद्वानों ने नौ भेद कहे हैं। ये जलमय, पर्वतमय, पत्थरमय (पत्थरों से निर्मित), इष्टामय (ईटों से बने), वनमय, मृतिकामय (मिट्टी से बने), मरुमय (निर्जल भूमिमय), मनुष्यमय (मनुष्यों के समूह से बना) और अन्तिम काष्टमय हैं। इनमें से प्रथम कहे गए दो दुर्ग (जलमय और पर्वतमय) उत्तम कहे गए और छह मध्यम कहे गए हैं। इस प्रकार ये आठ प्रकार के दुर्ग निवासयोग्य बताए गये हैं वहीं अन्तिम काष्ठमय दुर्ग अधम कहा गया है।

तहँ अन्न रु उदक रु घृत तैल रु तूल दारु गोलक तिम तोप।
सीसक सोर सूत्र सन सस्त्रन, रक्खहि गढन निचय आरोप॥

छट्ठो अंग दुर्ग यह छोनिप, जो छोनिप सज्जैं इहिं जुद्ध।
मुदित रहैं सु बलिष्ठहु सों मुरि, पुनि दब्बैं पर अवनि प्रबुद्ध ॥१११॥

भनित अंग सप्तम बल भेदहु, मनुज गज रु हय रथ चउ मान।
मनुज छ भेद प्रथम तहँ मोलसु, पीढिन तैं सु बिसास प्रधान ॥

दूजो भृत्य बस जु लहि बेतन, तीजो मैत्र जु लहि मित्रत्व।
श्रैण सु व्है जु समय बस आश्रित, सो आटविक बन्यजा सत्व ॥११२॥

इन दुर्गों में राजा को अन्न, जल, घी, तेल, रूई, ईंधन, तोपें, सीसा, बारूद, सूत, जूट (सन) और शस्त्रों का संग्रह रखना चाहिए। हे राजा रामसिंह! छठे अंग दुर्ग को जो राजा निरन्तर युद्ध के लिए सज्जित रखता है वह बलवान शत्रु से विमुख होकर भी प्रसन्न रहता है। और वह चतुर राजा पराई भूमि को

दबाने में भी समर्थ होता है। राज्य का सातवाँ अंग सेना को कहा गया है जिसके मनुष्य, हाथी, घोड़ा और रथ ये चार भेद होते हैं। इनमें से प्रथम मनुष्य (सैनिक) के छह भेद हैं। पहला वह जो राजा द्वारा पीढ़ियों से मोल लिया हुआ हो वह विश्वासपात्र होता है। दूसरे प्रकार का भृत्य कहा गया जो वेतन भोगी सेवक हो। तीसरा मैत्र जो मित्रता से वश में किया गया हो। चौथा श्रेण जो अपने कठिन समय के कारण शरण में आया हुआ हो। पाँचवा जो वन में उत्पन्न सत्व के आधार पर आश्रित हुआ हो उसे आटवी कहते है।

अरि व्है स्वबस दबायो इतरन, सो अमित्र समुझहु नरनाह।
उत्तम त्रय चोथो मध्यम इह, पुनि अंतिम दुव अधम सिपाह॥

बल को अंग द्वितीय जु बारन, सहु चउ बिध नामन अनुसार।
भद्र मंद मृग मिश्र भिदा भनि, पुनि मुनि सूचित सुनहु प्रकार॥११३॥

मधुनिभ दंत जघन सूकर सम, उन्नत बंस धनुख आकार।
सुंडा वृत्र लोभ मृदु संजुत, व्हैं गर्जित बारिद अनुहार॥

रंग हरित सुरभित मद राजत, ओठ रु मुख काकुद आरक्त।
मत्त हु बाह्य नयन मधुपिंगल...........वृत्र ग्रीवा सु विभक्त॥११४॥

जो कर सप्त उच्छ्रित रु जाकै, अठ्ठारह कि बीसनख आहि।
इभ जिहिं भूप चतुर व्हैं एरिस, भाखत भद्र जाति करि जाहि॥

अन्तिम छठे प्रकार का वह है जो अन्य लोगों का दबाया हुआ शत्रु अपने वश में हो जाए। इसे अमित्र कहते हैं। इन छहो प्रकार के सैनिक (सेवक) में से प्रथम तीन उत्तम, चौथा सेवक मध्यम और अंत के दोनों (आटवी और अमित्र) अधम कहे गए हैं। सेना का दूसरा अंग हाथी माना जाता है। हाथी भी अपने नामों के अनुसार मुनियों द्वारा चार प्रकार के बताये गये है। भद्र, मंद, मृग और मिश्र चार भेद बताते हुए मुनियों ने जो सूचित किया है उसे सुनें! दूधिया अथवा महुए के पुष्प के रंग के जिन हाथियों के दाँत हों, सुअर के समान पुष्ट जंघा हो और धनुषाकार जिनकी पीठ की हड्डी हो। गोल सूण्ड, कोमल रोमावली हो, मेघ के समान गर्जन और सुगंधित हरे रंग का जिनका मद हो। जिन हाथियों के होठ, मुख और तालु लाल रंग के हों, जो मदमस्त होने पर भी सवारी योग्य हों और जिनके नेत्र महुवा के समान

हल्के पीले हों। पूरे शरीर से विभक्त श्रेष्ठ गोल गर्दन हो, सात हाथ ऊँचे हों और जिनके अट्ठारह अथवा बीस नाखून हों। ऐसे हाथी जिस राजा की गजशाला की शोभा बढ़ाते हों उन्हें भद्र जाति के समझना चाहिए।

सिंह नयन कक्षा उर सिथिल रु, लंब थूल कर पेचक गल पेट।
जास चतुर अैसो इभ जाकै, भनि बुध करत मंद पन भेट॥११५॥

कर्ण उदर मेहन पय कंठ रु, कर रद लोम ह्रस्व जिहिं केर।
सो मृग जाति गज रु मिश्रित सब, बहि लच्छन मिश्र सु इम बेर॥

बल कों अंग तुरग तीजो बलि, सूचित तास भिदा बहु सूरि।
बल रय रूप आयु तिम बिक्रम, पानिय खेत अर्घ क्रम पूरि॥११६॥

जिन हाथियों के नेत्र सिंह के समान हों पर कूख (छाती) ढीली हो। जिनकी पूँछ का मूल भाग, गला और पेट लम्बा-(मोटा) हो। ऐसे हाथी जिनका राजा की हस्तिशाला में हों उन्हें मन्द जाति के समझें। जिन हाथियों के कान, पेट, लिंग, चरण, कण्ठ, सूँड, दाँत और केश छोटे हों वे हाथी मृग जाति के होते हैं। जिन हाथियों के शरीर पर उपरोक्त वर्णित सभी लक्षण मिश्रित नजर आते हों उन्हें मिश्र जाति के हाथी समझना चाहिए। सेना का तीसरा महत्वपूर्ण अंग घोड़े माने गए हैं जिनके विद्वान विशेषज्ञों ने कई भेद बताए हैं। इनके भेदों का आधार विशेषज्ञों ने बल, गति, रूप, आयु, साहस (पराक्रम), पांण, जन्मस्थान और मूल्य को माना है।

षट्पात्

खुरासान ताजिक तुखार भाड़ेज खेत भव,
बलि बनायु कांबोज जात बाल्हिक उत्तम जव।
गोजिकान केकान प्रौढहर राजसूल अब,
मध्य रु गव्हर सिंधुपार साकुर कनिष्ट सब।
तिम इतर देस भव जे तुरंग नीच कहे पांडव नकुल।
मुनि सालिहौत्र पुब्बहु सुमति बाजितंत्र बरनिय बिपुल॥११७॥

जो घोड़े खुरासान, ताजिक, तुखार, भाड़ेज, बनायु, कांबोज और बाल्हक देशों में जन्में हों तो सभी घोड़े उत्तम वेग वाले होते हैं। वहीं गोजिकान, केकान, प्रोढहर, राजसूल आदि देशों में उत्पन्न घोड़े मध्यम वेग

वाले माने जाते हैं। जबकि गव्हर और सिंधुपार इन दोनों देशों के घोड़ें अधम वेग वाले कहे गए हैं। उपरोक्त देशों के अतिरिक्त अन्य देशों में उत्पन्न घोड़ों को पाण्डव नकुल ने अपने घोड़ों के शास्त्र मं अधमाधम माना है। नकुल से पूर्व हुए बुद्धिमान मुनि शालिहोत्र ने घोड़ों के अपने शास्त्र (शालिहोत्र) में घोड़ों का विशद वर्णन किया है।

दोहा

जल भव कति कति ज्वलन भव, बात प्रभव कति बाजि।
येन घूक भव क्रम इहाँ, रहत बर्ण चउ राजि ॥११८॥

शालिहोत्र के अनुसार कुछ घोड़ों की उत्पत्ति जल से कही गई है और वे मृग जाति के घोड़े कहे गए। जिन घोड़ों की उत्पत्ति अग्नि से कही गई उन्हें उलूक जाति का कहा गया। वहीं पवन से उत्पन्न घोड़े क्रमशः चार वर्णो के मगलकारी माने गए है।

षट्पात

कुसमगंध मत्सर बिवेक द्विज हयकै देखहु,
अगरु गंध रय ओज प्रान बाहुज गत पेखहु।
सर्पिगंध मन सभय अस्व ऊरुज अवगाहत,
सित रक्त पीत हरित रु असित कपिस सबल तिन्ह वर्ण क्रम।
सठ तिमिगंध असत्व चकित चोथो जु न चाहत।
पीत जु तुरंग सित नेत्र पय चक्रवाक सुभ छत्र छम ॥११९॥

चार वर्णो में से ब्राह्मण वर्ण के घोड़े के शरीर से पुष्प गंध, मत्सरता और मालिक की भलाई करने का ज्ञान (विवेक) होता है। क्षत्रिय वर्ण के घोड़े के शरीर में अगर की गंध, वेग, तेज, और पराक्रम पाया जाता है। वैश्य वर्ण के घोड़े में घी की गंध (सर्प की गंध) और मन में भय होता है वहीं शूद्र वर्ण के घोड़े से मत्स्य गंध आती है और वह भययुक्त, पराक्रम रहित होता है। ऐसे वर्ण के घोड़े मनुष्यों को नहीं पालने चाहिए। ये घोड़े कई रंगों के कहे गए हैं जिनमें क्रमशः श्वेत (नुकरा), लाल (कुमैत), पीला, हरा, (नीला), काला (लक्खी), दो मिश्रित रंगों का (अबलख) और कई रंगों का मिश्रण

(अबलख) जैसे रंग पाये जाते हैं। हे राजा! इनमें से जिस पीले रंग के घोड़े के चरण और नेत्र श्वेत हों उसका नाम चक्रवाक है। किसी समर्थ स्वामी को ऐसा घोड़ा शुभ फलदायक होता हैं।

स्वेत चरन मुख सप्ति अंग जंबूफल आकृति,
मल्लिकाक्ष वह महत भद्र बर्द्धक नृप भा कृति।
स्वेत अंग जो सप्ति स्यामकर्ण सु अति सुभफल,
पय मुख केसर पुच्छ बच्छ सित सो बसु मंगल।
आगोधि बरन अरु चउ चरन सित सु पंच कल्यान हय।
ए सुभ रु सित ज चउ पय असित जमदूत सु गेरत अजय॥१२०॥

जिस घोड़े के चारों पाँव और मुख श्वेत हो और शेष पूरा गात जामुनिया रंग का हो उस पूज्य घोड़े को मल्लिकाक्ष कहते हैं। ऐसा घोड़ा अपने स्वामी राजा के लिए मंगलकारी होता है और स्वामी की कांति बढाने वाला माना जाता है अर्थात् कीर्तिवर्धक होता है। जिस घोड़े का शरीर श्वेत रंग का हो पर उसके कान काले हों वह श्यामकर्ण कहलाता है और स्वामी को अत्यन्त शुभ फल देने वाला माना जाता है। जिस घोड़े के चारों चरण, मुख, रोमावली, पूँछ और सीना (छाती) ये आठों अंग श्वेत हो तो वह अष्टमंगल कहलाता है और अपने स्वामी के लिए सुखदायक होता है। जिस घोड़े के चारों चरण और ललाट श्वेत रंग के हों वह पंचकल्याण नामक होता है जो अपने स्वामी के लिए शुभ माना जाता है। इसके विपरीत जिस श्वेत रंग के घोड़ें के चारों चरण काले रंग के हों उसे जमदूत कहा जाता है और वह अपने स्वामी को अजय के (हार) गर्त में गिराता है।

दोहा

रोम भिन्न व्है रंग मै, असुभ सु पुष्पित आहि।
भस्मबर्ण तुरगहु भयद, तजत महीपति ताहि॥१२१॥

हे राजा! जिस घोड़े के शरीर पर अन्य रंग के बाल हों उसे फूला हुआ (पुष्पित) कहते हैं और स्वामी के लिए अशुभ मानते हैं। इसी तरह जो घोड़ा भस्म के रंग (राखी) का हो वह अपने मालिक के लिए भयकारी होता है इसलिए राजा लोग इसे त्याज्य मानते हैं।

षट्पात्

ग्रीवा सिर हिय गोधि कुक्षि मणिबंध नाभि क्रम,
अंसपार्श्व त्रिक आस्य गलख पच्छति सुभ रवि भ्रम।
गोधि अग्र नासाग्र संख सिर कंठ पंच पुनि,
अरु गल इक आवर्त गदित चिंतामनि निभ गुनि।
जिहिं तालु मध्य आवर्त जुग सुक्ल नाम सुभ जानिये।
इक बाहुमूल थनविच अपर नाम बिजय सुभ मानिये॥१२२॥

हे राजा! अब मैं (ग्रंथकार) आपके समक्ष घोड़ों के शरीर पर बालों के बने आर्वत अर्थात् भँवरियों के शुभ-अशुभ फलों को कहता हूँ। घोड़े की गर्दन, मस्तक, हृदय, ललाट, कूख, अगले पैरों के मुरचों पर, नाभि, कंधे का पार्श्व भाग, कमर, मुख, गला और बगल में इन बारह स्थानों पर भँवरी का होना शुभ माना गया है। वहीं लल्लाट के अग्रभाग, नासिका के अग्रभाग और लल्लाट की हड्डी पर, सिर और कंठ पर ये पाँच स्थानों की भँवरियाँ और एक गले की भँवरी जिसे चिंतामणि कहा जाता है। घोड़ों के ये आवर्त अपने स्वामी के लिए चिंतामणि के सदृश फल देने वाले माने गए हैं। (चिंतामणि के लिए प्रसिद्ध है कि यह रत्न जिसके पास होता है उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती है। इस अर्थ में इसे शुभ कहेंगे) यदि किसी घोड़ी के दोनों स्तनों के मध्य भँवरी हो तो उसे विजय कहते है और यह भी शुभ विजयकारी मानी जाती है।

दोहा

भाल उभय तीजो सिर सु, नाम पूर्ण सुभ नित्य।
जिहिं ललाट भ्रम जुग्म सो, चन्द्रकोस सुख चित्य॥१२३॥
दक्खिन भ्रम जिहिं कंठ दुव, इन्द्र नाम तस आहि।
सुभ जनपद बर्द्धक सदा, बामाबर्त वृथाहि॥१२४॥
अंसपार्श्व आवर्त इक, पद्मलच्छन सु पुण्य।
नक्रमध्य इक वा दुव सु, चक्रवर्ति सुभ गुण्य॥१२५॥
उत्तम ए दस अर्ब अब, अंस रु गल भ्रम आनि।
कुक्षि नाभि हिय पार्श्व कटि, जे क्रम मध्यम जानि॥१२६॥

किसी घोड़े के ललाट पर दो आवर्त हों और इन दोनों के शीर्ष पर एक और आवर्त हों तो इसे पूर्ण कहते है जो शुभ फलदायक गिना जाता है। इसी तरह किसी घोड़े के ललाट पर दो भँवरियाँ हों और तीसरी शीर्ष वाली न हो तो इसे चन्द्रकोस कहते हैं और यह भी स्वामी के लिए शुभ फलदायक है। जिस घोड़े के कंठ पर दाहिने मुख वाले दो आवर्त हों तो इसे इन्द्र के नाम से जाना जाता है और अपने स्वामी राजा के लिए जागीरवर्द्धक फल देने वाला शुभ माना जाता है। पर यदि आवर्त के मुख बांईं ओर हों तो वह व्यर्थ है। जिस घोड़े के कंधे के पार्श्व में एक भँवरी हो उसे पद्म कहते है जो शुभ है। इसी तरह घोड़े की नासिका पर एक अथवा दो आवर्त हों तो उसे चक्रवर्ती कहते हैं और शुभ होता है। उपरोक्त ऐसे आवर्त वाले दस घोड़े उत्तम कहे गए। ये दस भँवरियाँ घोड़े के कंधे, गले और ललाट वाली कही गई जो उत्तम भँवरियों की श्रेणी में आती है पर कोख, नाभि, हृदय श्रेत्र, कमर पर पाई जाने वाली भँवरियाँ मध्यम गिनी जाती हैं।

षट्पात्

इक्क पृष्ट आवर्त असुभ यह भनित भयंकर,
भाल इक हु बाम भ्रम कलह द्रुत स्वामि स्वयंकर।
इक्क बदन आवर्त अपर कक्षांत सु अर्दक,
जानुदेस भ्रम जोहु बाजि खल अध्व बिमर्दक।
आवर्त जास सेफ सु असुभ प्रभुनासक पहिचाानिये।
आवर्त त्रि बलि जाकै वहहु नृप त्रिबर्ग हय मानिये॥१२७॥

घोड़े की पीठ पर भँवरी अशुभ मानी जाती है क्योंकि इसे स्वामी के लिए भयंकर कष्टकारी माना जाता है। इसी तरह ललाट पर वाममुख की भँवरी हो वह स्वामी के लिए शीघ्र कलहकारी होती है। यदि किसी घोड़े के एक आवर्त मुख पर और दूसरा कक्षांत (काँख के अन्त) में हो तो वह दुष्ट घोड़ा अपने स्वामी को मार्ग में ही मारने वाला माना जाता है। जिस घोड़े के लिंग पर तीन भँवरियां हों उस घोड़े को हे राजा! त्रिवर्ग वृद्धि का नाश करने वाला घोड़ा जानो।

दोहा

पृष्ठ बंस इक भ्रम असुभ, धूमकेतु अभिधान।
नाभि पुच्छ गुद त्रय भ्रमन, सो जमराज समान॥१२८॥

हे राजा! जिस घोड़े के पीठ की लंबी हड्डी पर (मेरुदण्ड) भँवरी होती है उसे धूमकेतु कहते हैं और वह स्वामी हित में अशुभ गिनी जाती है। जिस घोड़े की नाभि, पूँछ और गुदा स्थान पर तीन भँवरियाँ हों उसे, तो साक्षात यमराज जानना चाहिए।

रोला

अध ऊरध आवर्त जुगन परसैं जमदूत सु।
ओगुन खिल अवनीस सुनहु अब हय संभूत सु॥
अधिक हीन रद अंड असित काकुद मुसली इम।
बदन कराली बहुरि घटी शृंगी त्रिकर्ण तिम॥१२९॥
सह कंकोली द्वि सफ पंच जट अंजनी हु पुनि।
सथन चउद्दह असुभ गदित वृद्वन स्वबुद्धि गुनि॥
इंदिंदिर सम असित तालु व्है तो वह असुभ न।
सब भ्रम दक्खिन ससुभ सव्यबर्ती कहुँ ससुभ न॥१३०॥

जिस घोड़े के शरीर पर ऊपर-नीचे दो आवर्त हों उसे यमदूत स्पर्श करता है अर्थात् वह प्रलयंकारी होता है इसलिए अशुभ कहा गया है। हे राजा! इन अवगुणों के अतिरिक्त भी कुछ अशुभकारी घोड़े होते हैं उन्हें कहता हूँ सो आप सुनें! जो घोड़ा अधिकदँता (अधिक दाँतों वाला) और हीन दँता हो, जो हीन अण्डकोश और बड़े अंडकोश वाला हो ऐसे सभी घोड़े अशुभ माने जाते हैं। साँवले रंग के (काकुद) तलुए वाला हो वह अशुभ है। जिस घोड़े का पूरा शरीर एक रंग का हो पर उसका एक पैर दूसरे रंग का हो उसे मुसली कहते हैं यह अशुभ माना गया हैं। जिस घोड़े के मुख पर भँवरी हो और दाँत होठों से बाहर झाँकते हों उसे कराली कहते हैं। यह भी अशुभ की श्रेणी में आता है। जिस घोड़े के गले पर भँवरी हो उसे कंठभंजन कहते हैं वह अशुभ है। जिस घोड़े के मस्तक पर सींग का चिन्ह हो, जो तीन कान वाला हो, कंकोली (अवगुण विशेष) वाला, दो खुर वाला हो। जिस घोड़े के

मस्तक की रोमावली में पाँच भँवरियां हों वह पंचजट और जो नेत्र के नीचे आवर्त आंसू ढाळ भंवरी वाला हो। जो अधिक स्तन वाला हो । इस तरह के चौदह दोष वाले घोड़ों को अनुभवी लोग अपनी बुद्धि से अशुभ फलदायक मानते हैं। पर इंदीवर (नील कमल) के समान श्याम तालु वाला हो उसे अशुभ नहीं मानते। हे राजा! उपरोक्त सभी आवर्त जो दक्षिणमुखी हों वे सभी शुभ और वाममुखी अशुभ कहे गये हैं।

दोहा

इम बाजि न लखि सुभ असुभ, समुचित संग्रहि सप्ति।
सह पाटव रक्खैं सुही, बाढैं अरिन बिलप्ति॥१३१॥
कटक अंग तीजो कहिय, यह हय नाम उदार।
स्यंदन अब पोथो सुनहु, प्रस्तुत च्यारि प्रकार॥१३२॥
कर्म उचित च्यारिन कथित, चउ छ अट्ठ दस चक्र।
व्है चक्रन मित जुत्तहय, सुभ सबेग छितिसक्र॥१३३॥
रन समुचित चउ चक्र रथ, चउ हय सुखद बिचारि।
रक्खिय अरु अब रथरनहु, धरनि लुप्त कलि धारि॥१३४॥
अंग राज्य के सप्त ए, मुख्य बलावधि मानि॥
इतरहु अंग अवस्य इम, जेहु लेहु प्रभु जानि॥१३५॥

हे राजा! प्रत्येक राजा को चाहिए कि वह पहले शुभ-अशुभ घोड़े की परीक्षा करे फिर अपने अस्तबल में बांधे। जो शुभ घोड़ों का संग्रह करता है और उनकी परवरिश चतुराई के साथ करवाता है वह अपने शत्रुओं को हमेशा रुलाने वाला होता है। हे राजा! अब तक मैंने सेना के तीसरे अंग घोड़े के बारे में बताया। अब मैं आपके समक्ष सेना के चौथे अंग रथ के बारे में बताता हूँ। जो चार प्रकार के होते हैं। ये रथ कार्य की दृष्टि से अलग-अलग संख्या में चक्र वाले होते है। किसी रथ में चार, किसी में छह, किसी में आठ और किसी रथ में दस पहिए होते हैं। हे राजा रामसिंह! नियम यह कहता है कि रथ के जितने पहिए हों उस रथ में उतने ही घोड़े जुतने से वह शुभ वेगवान बनता है। युद्ध के लिए चार पहिए वाला रथ ही उचित है जिसमें चार घोड़े रहना सुखद है परन्तु कलियुग के इस समय में रथ भूमि से लुप्त हो गए

हैं। राज्य के सांत अंगों में मुख्य सेना तक के अंग ही मानें पर हे राजा! अन्य अंग भी हैं उन्हें भी बताता हूँ। सो आप जानें।

घनाक्षरी

त्रयी त्यों अथर्ब दंडनीति सांति पुष्टि कर्म,
कोबिद व्है एरिस पुरोहित प्रमान्यों जात॥
संहिता गनित होरा केरल सकुन पंच,
भेद जानैं ज्योतिष सो गणक बखान्यों जात॥
पीढिन तैं सील कुलवारो धीर बाजि गज,
सस्त्र सास्त्र बिद्याबुध सेनापति जान्यों जात॥
बेद स्मृति कुसल आराग द्वेष चेष्टाबुध,
अष्टक[1] दसक[2] वा यों न्यायकर्म आन्यों जात॥१३६॥

हे राजा! जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनों वेदों की त्रयी के साथ मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि अभिचार मंत्र-तंत्र नीतिशास्त्र, शांति और पुष्टिकर्म में पडिंत हो राजा के पास ऐसा पुरोहित चाहिए। संहिता, गणित, होरा, केरल और शकुन को जानने वाला ज्योतिषी कहलाता है। पीढियों से जो शीलवान, कुलवान हो, धैयवान हो, हाथी, घोड़े, शस्त्र, और शास्त्र में बुद्धिमान हों ऐसा सेनापति राजा के पास होना चाहिए। वेद, स्मृति का जानकार, किसी से प्रीति और द्वेष नहीं रखने वाला, चेष्टा से अभिप्राय को भाँपने वाला, जो क्रोध के आठ दोषों और काम से उत्पन्न दस दोषों का जानकार हो ऐसा व्यक्ति राजा के यहाँ न्याय करने वाला होना चाहिए।

सर्व रनकोविद परीच्छित सिद्धसस्त्र,
हस्ती हययंता दुष्ट दंडक व्है जोध जोहि॥
चो उपाया छ गुन प्रपंची देश काल बुध,
मंडलेस मान्य आप्त सांधिविग्रहिक सोहि॥

टिप्पणी : १. पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्या ऽसूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डनं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टक॥

२. मृगया ऽसो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मद.।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गण॥

(उपरोक्त क्रोध से उत्पन्न आठ दोष (अष्टक) मनुस्मृति में कहे गए हैं वहाँ काम से उत्पन्न होने वाले दोष (दशक) भी मनुस्मृति के अनुसार हैं - सम्पादक)

सर्ब चयकारी यंत्रयोधी आप्त स्वामी के,
दिवाये हू मरैं दें गढ दुर्गपति ऐसो होहि ॥
आप्त रु अलुब्ध सर्व भाषा लिपि बेदी कूट,
गनित बिबेकी अधिकारी लेखसाला कोहि ॥१३७॥

हे राजा! जो हाथी घोड़ों को चलाने की विद्या में प्रवीण, सभी प्रकार के युद्धों में चतुर, शस्त्र परीक्षा में जिसके शस्त्र सिद्ध हों अर्थात् जिनके वार खाली न जाएँ, दुष्टों को दण्ड देने वाले हों ऐसे योद्धा राजा को अपने यहाँ रखने चाहिए। साम आदि चारों उपायों में दक्ष, संधि आदि के छहों गुणों में प्रपंच रचने वाला और जो देश-काल की आवश्यकता को समझने वाला चतुर हो, ऐसा हाकिम राजा को अपने यहाँ रखना चाहिए। जो सभी से मान पाने योग्य और संधि-विग्रह का कार्य करने वाला होना चाहिए। इनके अतिरिक्त जो संचय करने वाला, तोप आदि यंत्रों से युद्ध करने में सक्षम, सत्यवादी ऐसा दुर्गपति (किलेदार) राजा के अधीन होना चाहिए। इसी तरह निर्लोभी, सभी भाषाओं को लिपि सहित जानने वाला, कूटलिपि पढ़ने में चतुर और विवकेवान लेखसाला (दफ्तर) का अधिकारी भी राजा के पास होना चाहिए।

स्मार्तबर्म कोबिद जथा उचित दंडदाता,
धर्मधुर धीर सत्यवादी होइ दंडधर ॥
सुश्रुतादि आयुर्वेद अभ्यासी निदान पर,
धर्मधर धीर क्रिया कोविद सो वैद्य बर ॥
रत्न हेम रजत पटादिक विधान बुध,
आप्त रु कुटुंबी त्यौं अलुब्ध सो है भांडघर ॥
लेखन कुसल सर्बदेसलिपि बानी बुध,
आप्त अग्रबाची ते व्है बाचक रु लेखकर ॥१३८॥

हे राजा! जो धर्मशास्त्र का पण्डित, उचित दंड का देने वाला, धर्म में स्थिर, धैर्यवान और सत्यवादी हो ऐसा कोतवाल राजा के यहाँ होना चाहिए। जो सुश्रुत आदि आयुर्वेद का अभ्यासी, रोग का निदान करने वाला, धर्म में स्थिर, धीर हो ऐसा वैद्य राज्य में अवश्य होना चाहिए। जो रत्न, स्वर्ण, चाँदी,

वस्त्र आदि के विधान में चतुर, सत्यवादी, कुटुम्ब वाला पर निर्लोभी हो, ऐसा भंडारी (भंडार का दरोगा) राज्य में होना चाहिए। जो सभी देशों की भाषाओं की लिपि लिखने में कुशल, बोलने में चतुर, सत्यवादी, आगे से आगे बाँचने वाला और लिखने वाला हो ऐसे अहलकार राजा के पास होने चाहिए।

पीढिन तैं आप्त स्वादुपाची सूदसास्त्र बुध,
लोभहीन बैद्यक बिसारद व्है सूपकार॥
मेधावी अलोभी परचितबेदी व्यक्तबाक्य,
निर्भय प्रगल्भ सत्यवादी व्है संदेसहार॥
स्थानदंडपाती गजसिच्छा हयसिच्छा दच्छ,
सिद्धसस्त्र आप्त व्है गजाऽर्च अधिकारवार॥
लोहभेद बोधी चित्रयोधी सानकर्मपटु,
सूर सस्त्रसाधक समाश्रित व्है सस्त्रधार॥१३१॥

हे राजा! जो पीढ़ियों से सत्यवक्ता, स्वादिष्ट भोजन पकाने वाला, रसोई शास्त्र में निपुण, और वैद्यक का जानकार हो राजा के यहाँ ऐसा रसोईदार होना चाहिए। जो दूसरों के मन की बात भाँपने वाला, मेधावी, स्पष्टवक्ता, निर्लोभी, निर्भय, हाजिर-जवाब हो ऐसा दूत राजा के यहाँ होना चाहिए। जो दंड की जगह दंड देने वाला, हाथी-घोड़ों की विद्या में दक्ष, शस्त्र विद्या में कुशल और सत्यवादी हो ऐसा हयशाला और गजशाला का अधिकारा राज्य में होना चाहिए। राज्य में ऐसा सकलीगर भी होना चाहिए। जो धातुभेद का ज्ञाता, आश्चर्यजनक युद्ध करने वाला, साण कर्म में दक्ष, वीर, शस्त्र संधान का जानकार और समाश्रित हों।

कान खंज वृद्ध कुब्ज बामन खलति पंगु,
कुष्ट खैनवारे अवरोध द्वारबासी एहि॥
आप्त रु अरुप लोभहीन जितइंद्रिय व्है,
चेष्टाऽऽकार बेदी अवरोध अधिकारी जेहि॥
सर्वचित्तग्राही दर्पबर्जित मधुरबाची,
रूप तेज वारे बैत्रवारे प्रतिहार तेहि॥

ओरहु अनेक राज्यवारे उपअंग ऐसैं ,
जानौं प्रभुराम उपयोगी जे नृपन केहि॥१४०॥

हे राजा! जो काना, लंगड़ा, बुड्ढा, कुबड़ा, ठिगना, गंजा, पंगु, कोढ़ी और क्षयरोगी हो ऐसा व्यक्ति जनाना का द्वारपाल होने के उपयुक्त होता है। जो सत्यवादी, कुरूप, निर्लोभी, जितेंन्द्रिय, और चेष्टा एवं आकृति से अभिप्राय को जानने वाला हो, ऐसा व्यक्ति जनाना ड्योढी का दरोगा बनने योग्य होता है। जो सभी के चित को समझने वाला, दर्प रहित, मधुर बोलने वाला, रूपवान, और तेजस्वी हो ऐसे व्यक्ति को राजा को अपना छड़ीदार और द्वारपाल बनाना चाहिए। इन अंगो के अतिरिक्त भी राज्य के कई उपअंग भी कहे गए हैं। हे राजा रामसिंह! उन्हें जानना भी एक राजा के लिए उपयोगी होता है।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ रामसिंह चरित्रे राज्ञे राजनीतिश्रावणं तृतीयो मयूखः आदित पंचषष्टयुत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३६५॥

श्रीवंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवम राशि के रामसिंह के चरित्र में राजा को राजनीति सुनाने का तीसरा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ पैंसठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

तहँ ऐसैं पंडित जनन, सब मग बरनि सुरीति।
पुहवीपहु पहुराम प्रति, प्रथित कहे सह प्रीति॥१॥

सूरि कथित सब प्रति समुझि, जोग्य अजोग्यहि जानि।
नास्तिक मग खट तजि नियत, आस्तिक मग पग आनि॥ २॥

सहित धर्म तिम भक्ति सह, आत्मबोध उपदेस।
पथ यह मन्यौं सिसुपनहु, निज गिनि राम नरेस॥३॥

हे राजा रामसिंह! तब पडितों ने एक राजा के ग्रहण करने योग्य सभी मार्गों का वर्णन कर आप को प्रीति सहित नीतिशास्त्र समझाया। पंडित लोगों ने जो कहा उसे अच्छी तरह समझ कर आपने एक राजा के करने योग्य और न करने योग्य कर्मों को पहचाना फिर आपने (राजा रामसिंह ने) छहों

नास्तिक मतों का त्याग कर एक आस्तिक मत को अपने योग्य माना अथवा आस्तिक मार्ग पर पाँव बढाना अंगीकार किया। धर्म और भक्ति सहित पंडितों के आत्मबोध हेतु किए गए उपदेशों के पथ को बचपन सें ही आपने अपने योग्य मान कर चुना।

षट्पात्

दस सम बय इम दिपत सकल स्वबिधेय भूप सुनि,
दिये सभा बुध द्विजन पुरट भू पट भूखन पुनि।
रक्खि निकट अनुरूप भनित कवि सूरि मंत्रि भट,
लग्गिय सिच्छा लैन सबन समुचित बीरन बट।
जगि ब्राह्ययमुहूरत नित्य जिम करि मंगल दरसन कथित।
दैं द्विजन भर्म भोजन बदन स्वलखि आज्य भोजन सहित।।४।।

दस वर्ष की उम्र में इस प्रकार शोभायमान हो कर राजा (रामसिंह) ने अपने कर्तव्यों की शिक्षा सुन कर शिक्षा देने वाले पंडित ब्राह्मणों को स्वर्ण, भूमि, वस्त्र आदि प्रदान किये। इसके बाद राजा सदा अपने समीप, अपने सदृश विद्वानों, कवियों, योद्धाओं को रखत हुए उनसे वीरता के मार्ग पर बढने की समुचित शिक्षा ग्रहण करने लगा। वह नित्य-प्रति ब्रह्म-मुहूर्त में उठता और अपने इष्ट देवों के दर्शन कर ब्राह्मणों को स्वर्णदान कर उन्हें भोजन करवाता फिर घृत के पात्र में अपना मुँह निरखता।

हय गज सुरभि निहारि सौच आचरि सौचालय,
कर पय रद करि सुद्ध नियत बिधि न्हाइ निपुन नय।
संध्या बिरचि सअंग अष्टि भेदन प्रभु अर्चन,
श्राद्ध रु तर्पन सद्धि श्रवन सुकथा जु सपर्चन।
संध्या द्वितीय लगतहि करि सु पुनि सुनि भारत भागवत।
अध्ययन धारि अप्पन उचित द्रुत अरोहि गज हय द्रवत ।।५।।

स्वयं तब अपने हाथी, घोड़ों, गायों को देख कर शौच आदि कर्मों से निवृत होता फिर अपने हाथ-पाँव धो कर दाँत माँजता। इसके बाद अपनी दिनचर्या का पक्का वह राजा स्नान करता फिर संध्या में षोड़स प्रकार से प्रभु का अर्चन-पूजन करता। इसके बाद श्राद्ध और तर्पण कर राजा अच्छी कथाएँ

सुनता। दूसरी संध्या के लगते ही राजा फिर से महाभारत और श्रीमद्‌भागवत का पाठ सुनता फिर अपने अध्धयन को पूरा कर शीघ्र ही हाथी-घोड़ों की सवारी कर भ्रमण को जाता।

इनहिँ फेरि बय उचित अस्त्र अनुक्रम अभ्यासहिँ,
बैश्र्वदेवकरि बहुरि असन मध्यान्ह उपासहिँ।
मंत्रिन सह रचि मंत्र करहिँ नय मर्म बिलोकन,
सुनि व्यय आय समस्त सद्धि खेल सखिलोकन।
अपरान्ह समय संध्याहु इम रचि गज हय फेरत रहत।
सस्त्रहु समस्त पुनि सद्धिकैं लै अचवन भोजन लहत ॥६॥

हाथी-घोड़ों को फिरा लाने के बाद अपनी वय के अनुसार सारे अस्त्र-शस्त्रों के चलाने का अभ्यास करता फिर मध्यान्ह में विश्‍वदेव की पूजा कर भोजन ग्रहण करता। इसके बाद अपने सचिवों से राजकाज हेतु मत्रंणा करता जिसमें नीतिशास्त्र के मर्म को ग्रहण करने की जिज्ञासा होती फिर राज्य के आय-व्यय का लेखाजोखा सुनकर अपने समवयस्क सखाओं के साथ खेल में प्रवृत्त हो जाता। अपरान्ह समय में फिर से संध्या कर फिर से हाथी-घोड़ों की सवारी करने में संलग्न होता और एक बार फिर से शस्त्राभ्यास कर आचमन करने के बाद भोजन ग्रहण करता।

दोहा

जननी गुरु कुलवृद्ध जे, बंदि चरन तिन्ह बीर।
मित्रन रमि निद्रा समय, धरैं सयन पय धीर॥७॥
ब्राह्ममुहूरत ही बहुरि, अैसैं जगि अवनीस।
चर्या प्रतिदिन आचरैं, श्रुति निदेस बहि सीस॥८॥
अैसे क्रम बुंदी अधिप, हायन दस बय होत।
सद्धि बढ्यो स्वबिधेय सब, इन कि मकर उद्योत॥९॥

रात्रि समय अपने माता, गुरु और कुल के वृद्ध स्वजनों के चरण स्पर्श कर थोड़ी देर के लिए अपने मित्रों के साथ खेल कर अपनी शय्या पर शयन को जाता। अगले प्रात:काल फिर से ब्रह्ममुहूर्त में जगकर राजा (रामसिंह) वेदों के निर्देशानुसार अपनी दिनचर्या को साधने में लग जाता। ऐसा करते हुए बून्दी के राजा (रामसिंह) की वय दस वर्ष की पूर्ण हो गई और वह अपने

कर्तव्यों को पूरी निष्ठा से साधता हुआ दिन-दिन मकर- सक्रांति के सूर्य की तरह बढ़ने लगा।

महाराव कोटा महिप, जो इत दिल्लिय जाइ।
बिफल होत चिंतत बिबिध, भयो बिमन खिन भाइ ॥१० ॥

बिष्णुसिंह नृप सिक्खबिधि, चिंति सकल अब चित्त।
पछितावत महि बिरतपन, बिरह पिक्खि भुव बित्त ॥११ ॥

अंगरेज अनुकूल इक, मिल्यो तदुक्त न मानि।
मत्त अनुज सिखयो मुख्यो, जुज्झत द्रुत बल जानि ॥१२ ॥

सब खिल सासक समय के, अंगरेज मति इद्ध।
जालम दिस अनुकूल जे, सज्ज भये बल सिद्ध ॥१३ ॥

उधर कोटा का महाराव इस समय दिल्ली गया पर वहाँ से भी उसे विफल हो कर लौटना पड़ा। वह उदासमना सभी ओर से निराश हो गया। पूर्व में बून्दी के राजा विष्णुसिंह ने जो उसे अच्छी शिक्षा दी थी उसे वह अपने मन हो मन याद करता हुआ अपनी जागीर की भूमि के छूट जाने पर पश्चाताप करने लगा। वह अब अपने धरती-धन के विरह में पछताने लगा। इस समय उसे अपने एक अनुकूल अंग्रेज अफसर का सानिध्य मिला पर वह प्रमत्त महाराव उस अंग्रेज अधिकारी का कहा नहीं मान कर अपने छोटे भाई के सिखाये उससे विमुख हो अपनी सेना को बलशाली समझते हुए जूझने पर उतारू हुआ। इस समय के बाकी सभी शासक जो बड़े बुद्धिमान अंग्रेज हकिम थे वे झाला जालिमसिंह के अनुकूल आचरण करते हुए उसके पक्ष में हो गए और उसके साथ सज्जित होने लगे।

षट्पात्

करन जुद्ध कोटेस सज्जि सानुज दिल्ली सन,
आयो सरद अनेह मन्त्रि देसहि स्वकीय मन।
कति छन्न रु कति प्रकट मिले बंधव माधानी,
इतरहु कोटा अनुग मिले इहिँ क्रम जय मानी।
परदेस सुभट जिनमैं प्रचुर कहत देस सुभट हु कतिक।
जालम अधीन जे सब जुरे मन भुपहि मारन मतिक ॥१४॥

दिल्ली से युद्ध करने को आमादा कोटा का महाराव अपने छोटे भाई सहित सज्जित हुआ और शरद ऋतु के समय में अपने देश को फिर से अपने अधिकार में लेने का उसने मन बनाया। इस समय कुछ उसके बांधव माधानी हाड़ा तो प्रकट रूप में आ कर अपने स्वामी के साथ हुए वहीं कुछ ने गुप्त सहायता करने की सोची। इनके अलावा और भी कोटा के सेवक अपने स्वामी की फतह समझ कर महाराव से आ मिले। ऐसे सेवकों में परदेशी योद्धाओं की संख्या अधिक थी कुछ लोगों का यह मानना था पर कुछ का कहना है कि नहीं उस दल में देशी योद्धाओं की संख्या अधिक थी। उधर झाला जालिमसिंह के साथ जो थे वे सभी कोटा के राजा किशोरसिंह को मारने की मन में सोच कर झाला के पक्ष में आ एकत्र हुए।

तबहि गोठपुर तजि रु तानि साहस बलवंत हु,
प्रभु पितृव्य सजि सत्थ लरन जावन लग्गो लहु।
पहु माता तब पत्र कलित नय भेजि कहाई,
लखहु कालगति लाल इक्खि आलय अधिकाई।
तुमरो अधीस बय बाल तिहिँ सिक्ख देहु हित अनुसरहु।
भार जो परैं अप्पन भवन कोबिद तस उपसम करहु॥१५॥

इसी समय गोठड़ा नामक अपने पुर को छोड़ कर बलवंतसिंह ने भी लड़ने की ठानी। बून्दी के राजा रामसिंह का यह काका तुरन्त ही कोटा के महाराव के साथ हो कर लड़ने को रवाना होने लगा। इस बात की खबर पाकर बून्दी के हाड़ा राजा की माता ने एक नीतिमय पत्र लिखवा कर गोठड़ा भिजवाया। उसमें लिखा कि हे देवर जी! समय की गति को समझियेगा और अपने घर (बून्दी) की मयार्दा पर भी विचार कीजियेगा। हमारे घर (बून्दी) की बढी हुई इज्जत को मद्देनजर रखते हुए लाला! आपको अपने स्वामी राजा रामसिंह की बाल वय को देखते हुए उसे अच्छी शिक्षा देने का कार्य कर बून्दी का हित करना चाहिए। आपके ऐसा करने पर (बून्दी के) अपने घर पर जो भार पड़ेगा उसका तकमीना आप जैसे चतुर को करना चाहिए और उसके अनुरूप इस मिलन (महाराव कोटा के साथ जाने के) को मिटाना चाहिए।

बिन्नति लिखि इम बिबिध प्रसू प्रभु की देवर प्रति,
समुझायो सुमिराइ गेह कुल कर्म धर्म गति।
बढत दर्प बलवंत सोहु मन्नी न जथा सठ,
महाराव सन मिलि रु भयो तस भीर हेरि हठ।
अंग्रेज झल्ल उत ए हि इत मंगरोलपुर ढिग मिले।
पटकेहि झल्ल निज स्वामि पर गुरु गोले तोपन गिले॥१६॥

बून्दी के राजा रामसिंह की माता ने अपने देवर बलवंतसिंह को पत्र में ऐसी विन्रम सलाह लिख भेजी। जिसमें बार-बार अपने घर, कुल और उचित कर्म का वास्ता देकर धर्म की गति का स्मरण कराते हुए अच्छी समझायस की गई थी पर अपने बढते दर्प के चलते मूर्ख बंलवंतसिंह हाड़ा ने इस अच्छी सलाह को नहीं मानते हुए नजरअदांज कर दिया और वह हठपूर्वक कोटा के महाराव से मिला फिर उसके साथ हो गया। उधर से अंग्रेज और झाला जालिमसिंह की सम्मिलित सेना मंगरोल नामक पुर में आकर कोटा के महाराव की सेना से आमने-सामने हुई। जहाँ झाला जालिमसिंह ने अपने स्वामी के पक्ष की सेना पर तोप से बड़े-बड़े गोले बरसाए।

इतके हंकन अर्ब कहत थाके कोटैसहिँ,
कह्यो तदपि कोटेस सचिव करिहै न कलेसहिँ।
इति अंतर सहसाहि फैर जालम तोपन फबि,
नृप किसोर दल निखिल छोरि नठ्ठो कातर छवि।
सुनि फैर बाजि न रह्यो स्वबस गहि पसुत्व इक दिस गयो।
असवार तास नृप को अनुज भीत उतहि जावत भयो॥१७॥

उसके मुकाबले को इधर (कोटा) के वीर अपने राजा को कह- कह कर थक गए कि घोड़े बढ़ाने की इजाजत दें पर वे बराबर यह कहते रहे कि हमारा सचिव झाला हमारे विरुद्ध युद्ध नहीं करेगा। इसी बीच अचानक जालिमसिंह ने फिर से तोपों के गोले बरसाना आरंभ किया। इसे देख कर कायर कोटा महाराव किशोरसिंह अपनी सेना को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। तोपों के धमाके सुनकर उसका घोड़ा भी उसके वश में नहीं रहा और बिदके हुए पशु की मानिन्द एक तरफ भाग खड़ा हुआ। इसी समय अपने घोड़े पर सवार महाराव का छोटा भाई भी भयभीत होकर उसी दिशा में भागा।

मन ओर हि मग मुरत अर्ब भजिगो मग ओर हि,
कुंट कुसा दुहुँ करन जुरे इक्कत बरजोर हि।
आयुध हय अभ्यास न दिय सिक्खन जालम जिम,
चमकत हय हुव चकित अनुज नृप को परबस इम।
जालम बरूथ बिच जावतहि पृथ्वीसिंह सु जानि पर।
मल्लार नाम इक आयुधिक धर पटक्यो दै कुंत धर॥१८॥

सवार का मन तो दूसरी ओर के मार्ग पर जाने का था पर घोड़ा अलग ही मार्ग और दिशा में भाग गया। घबराहट के मारे सवार के हाथ से लगाम के दोनों कोने बरबस मिल गए चूंकि झाला जालिमसिंह ने पूर्व में इस महाराव को न तो शस्त्र चलाने दिये और न ही घुड़सवारी करने दी थी। दोनों बातों का अभ्यास नहीं था। इसी समय महाराव के छोटे भाई का घोड़ा बिदक गया और वह परबस हो जिधर घोड़ा जा रहा था उधर जाने लगा। थोड़ी देर में वह घोड़ा जालिमसिंह की सेना के मध्य जा पहुँचा। झाला की सेना ने राजा के भाई पृथ्वीसिंह को शत्रु समझा और तभी मल्हार नामक एक योद्धा ने भाला मार कर पृथ्वीसिंह को मार गिराया।

कछु न हुतो नृपकोंहु बाजि आयुध बिद्या बल,
अर्ब खर्ब आरूढ देखि तोपन बिखरत-दल।
भाखी अ़ब मैं भजि रु कहां दुरिहों अपजस करि,
अब मरनहि मम अच्छ धुत्त अरि समुह पैंड धरि।
प्रभु के पितृव्य मुख रनपटुन तहँ जंपिय नय तक्कि तिम।
हम कह्यो तब न हंके हय रु अब न बिगारहु मिच्चु इम॥१९॥

राजा किशोरसिंह को आयुध विद्या का ज्ञान न था। न ही उसे घोड़ा चलाना आता था अत: एक छोटे घोड़े पर सवार जब उसने शत्रुओं की तोपों के प्रहारों से अपनी सेना को बिखरता देखा तो उसने मन ही मन स्वयं से पूछा कि अब मैं भाग कर भी कहाँ जाकर दुबकूं ? कोई सुरक्षित जगह नहीं। इससे अच्छा यह रहेगा कि मैं शत्रुदल की ओर शीघ्र ही कदम बढ़ाते हुए जाऊँ और उस धूर्त शत्रु के हाथों मारा जाऊँ। बून्दी के राजा के काका (बलवंतसिंह) आदि रण चतुर योद्धाओं ने नीतिपूर्वक उलाहना देते हुए कहा कि हे महाराव!

हमने जब कहा था तब तो आपने घोड़े नहीं बढ़ाए अब अपनी इस प्रकार मृत्यु क्यों बिगाड़ रहे हो ?

कहि इम सह कोटेस दुमंन नट्ठो हट्ठु हि दल,
पथ कछु तिहिँ पहुँचाइ बिजय करि मुरिग झल्ल बल।
अंधकार मचि अतुल धूम तोपन अंबर धर,
कति कोसन संक्रमत भये संगत बिछुरे भर।
अनुजहिँ न इक्खि कोटाअधिप कहिय रहिय पित्थल कहां।
बढि अग्ग चलत संगिनबदिय त्वरित आहु मिलिहै तहां ॥२०॥

यह सुनते ही कोटा का महाराव किशोरसिंह अपने दल सहित युद्ध से उदासीन हो भाग खड़ा हुआ। रास्ते में उनका पीछा करते हुए अर्थात् रास्ते में दूर तक उनका पीछा कर झाला का दल वापस मुड़ा। उसकी फतह हुई। तोपों के चलने से धुआँ और मिट्टी के उड़नें से अंधकार फैल गया। इस स्पष्ट नजर नहीं आते रास्तें में कई कोस की दूरी तय करने के बाद राजा की सेना के बिछुड़े हुए वीर वापस साथ हुए। जब कोटा के राजा किशोरसिंह ने अपने छोटे भाई को दल के मध्य नहीं पाया तो पूछा- कि पृथ्वीसिंह कहाँ रह गया ? आगे बढ़ते हुए साथ वालों ने जवाब दिया कि आप शीघ्र चलिए वह भी आ ही मिलेगा।

नगर बरोदा निकट भूप पहुंच्यो गोरन भुव,
पुच्छत तहँ अति प्रसभ हन्यों अनुज सु जानत हुव।
भनिय रोइ खिल भ्रात मरहु जिन तजहु संग मम,
जालम कोटा जाइ राज्य निज करहु मनोरम।
श्रीद्वार जाइ में अब सदा प्रभु को करिहों अनुगपन।
पन सोहि रक्खि कोटेस पुनि जाइ तत्थ किय हरि जजन ॥२१॥

बड़ोदा नामक एक गौड़ों के श्रेत्र के नगर में पहुँच कर राजा किशोरसिंह ने जब फिर से हठपूर्वक अपने छोटे भाई पृथ्वीसिंह के नहीं पहुँच पाने का कारण पूछा तब उसके साथियों ने कहा कि वह अब इस दुनिया में नहीं, वह मारा गया। यह सुनते ही आँखों में आँसू भर कर राजा ने अपने साथ वाले बांधव सामन्तों से कहा कि आप लोग मेरा साथ छोड़ दें। क्योंकि ऐसा करने

पर हो सकता है तुम भी सारे मारे जाओ। वह जालिमसिंह कोटा पहुँच कर सुन्दर राज करेगा। रही मेरी बात तो–मैं नाथद्वारा जा कर श्रीनाथजी की सेवा-अर्चना करूंगा और वही हुआ।

पीछैं चिरकरि पट्ट आनि रक्ख्यो जालम यह,
सून्य तखत तिहिं समय तास कतिदिन रक्ख्यो तह।
अक्खिय सुत माधवहु विष्णुसिंह हिं बैठारन,
जालम तउ तस जनक कुमर बरज्यो कहि कारन।
आवन किसोर--कोटा अवधि पट्ट निकट धरि पावरी।
तिन्ह अग्ग प्रनमि किय काम तिहिं रसा सकल कहि रावरी॥ २२॥

इस कारण से कोटा की राजगद्दी कई दिनों तक खाली रही क्योंकि राजा किशोरसिंह नाथद्वारा चला गया। फिर बहुत दिनों बाद राजा को जालिमसिंह झाला ने नाथद्वारा से वापस कोटा ला कर तख्त पर बिठाया। इस बीच जालिमसिंह ने अपने पुत्र माधवसिंह से कहा कि अब राजा किशोरसिंह के छोटे भाई विष्णुसिंह को कोटा की राजगद्दी क्यों न सोंपी जाए। इस जालिमसिंह के पुत्र माधवसिंह ने कारण बताते हुए अपने पिता को ऐसा करने से रोका। किशोरसिंह के वापस कोटा आने तक की अवधि में जालिमसिंह ने कोटा के तख्त पर राजा की पादुकाएँ रख दीं और इन पादुकाओं को प्रणाम कर यह कह कर कि यह सारी भूमि आपकी है वह कोटा का सारा राजकाज करता रहा।

अष्टपात्

मंगरोल रन मचिग समय बसु हय धृति संबत,
निधि हय धृति सक नियत इतहु सेना सजि उद्धत।
जुज्झन सिख रनजीत प्रबल हंकिय लवपुरपति,
पुर सदुर्ग पेसोर अनखि घेर्‌यो आग्रह अति।
चक्क सहँस चौबीस अरिन पंचहि हजार उत,
भयकर संगर भयउ जदिन दुहुँ ओर जोर जुत।
कलि पर्‌यो मुख्य रनजीत को भोलासिंह सनाम भट।
इक सहँस कतल घायल इहाँ बिदित परे सिख बीरबट॥२३॥

हे राजा रामसिंह! उधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठोत्तर में

मंगरोल के प्रसिद्ध युद्ध की भूमिका बनी। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ उनासी में इधर की उद्धत सेना सज्जित हो कर बढ़ी लाहोर के सिक्ख राजा रणजीतसिंह ने रणभूमि में जूझने को अपने रणबाँकुरे साथियों के साथ जा कर पेसोर के दुर्ग को नगर सहित जा घेरा। इस समय शत्रुओं की सेना की संख्या चौबीस हजार थी जब कि उसके पास मात्र पाँच हजार की फौज थी। उस दिन दोनों पक्षों की तरफ से भयंकर मारकाट वाला युद्ध हुआ। इस भिड़ंत मे राजा रणजीतसिंह का मुख्य सामंत योद्धा भोलासिंह रणभूमि में मर कर गिरा उसके साथ रणजीतसिंह की सिक्ख सेना के एक हजार योद्धा कत्ल हो कर अथवा घायल हो रणभूमि में कट पड़े।

जहँ काबल सन जित्ति प्रहत करि कथित पठानन,
प्रतिभट लहि पेसोर उहाँ थानाँ धरि अप्पन।
हुव अजेय लाहोर बाहु बस करि पंजाबहि,
कोउन हुव जट्ट कुल महिप दब्बत इतीक महि।
स्वीय सचिव इत सुपहु नैर बुन्दिय मृत नागर,
संभूराम स नाम जगत नय मत उज्जागर।
द्विज तुलाराम संभू दुव हि भ्राता बर मंत्री भये।
तिनके अभाव धात्रेय तकि गेरन भर जग दृग भये॥२४॥

पर काबुल के साथ पेसोर के पठान शत्रुओं को भी मारकर राजा रणजीतसिंह ने जीत लिया। उसने शत्रुओं से पेसोर छीन कर उसे अपने अधिकार में लिया और उस क्षेत्र में अपने थाने स्थापित किए। इस तरह अपनी भुजाओं के बल पर लाहोर के राजा ने पूरे पंजाब को अपने अधिकार में किया। हे राजा रामसिंह! जाट कुल में उत्पन्न कदाचित् राजा रणजीतसिंह के अतिरिक्त कोई ऐसा वीर नहीं हुआ जिसने इतनी अधिक भूमि अपने अधिकार में की हो। इधर आपके नगर बून्दी में सचिव नागर शंभुराम का देहान्त हो गया जिसने अपनी नीति के कारण संसार में नाम कमाया था। शंभुराम नागर और ब्राह्मण तुलाराम दोनों के अभाव में तब राजकाज का सारा भार धायभाई के कंधों पर डालने को नगर के प्रजाजनों की नजर गई अर्थात् सभी ने तब धायभाई को ही इस पद के उचित माना।

दोहा

ग्राम सूहरी को गदित, गैंदा गुज्जर गंग।
धावर नृप उम्मेद कै, जो हुव पुब्ब प्रसंग॥२५॥

तस नत्ती धात्रेय यह, कृष्णराम अभिधान।
तारागढ को दुर्गपति, मन्न्यौं नय मति मान॥२६॥

पंचनमत प्रभु की प्रसू, अप्पहिँ समुचित अक्खि।
सचिव किन्न धात्रेय सो, राज्य भार भुज रक्खि॥२७॥

किय मोहन तस ज्येष्ठ सुत, तारागढपति तत्थ।
सुख मंगल याके अनुज, स्वामिभक्त हित सत्थ॥२८॥

कृष्णराम कोबिद अनुज, रामकृष्ण धात्रेय।
दुर्ग अजितगढ को हुतो, सासक जो रन श्रेय॥२९॥

तास तनय जेठो रतन, भट सोपैं प्रभु भक्त।
बाजि सस्त्र अभ्यास बुध, सब अधीस हित सक्त॥३०॥

सुभटन के पुत्रहु सबय, हुव सब भूप हजूर।
साम्य जुवानन संग्रहैं, सिसुपन बहैं न सूर॥३१॥

सूहरी नामक गाँव का गैंदा गोत्र का गुर्जर गंगाराम जो रावराजा उम्मेदसिंह हाड़ा की धाय का पति था। इसी गंगाराम के पौत्र कृष्णराम नामक धायभाई को जो बून्दी के दुर्ग तारागढ का किलेदार था। सभी की नजर में यह कृष्णराम नीतिज्ञ और बुद्धिमान माना जाता था। पंचों की राय जान कर हे राजा रामसिंह! आपकी माता ने आपको कहा कि यह कृष्णराम राज्य का नया सचिव बनने योग्य है। यह सुन कर आपने इस धायभाई को अपना सचिव नियक्त किया और उसके कंधों पर राज्य का भार रखा। आपने इसके बड़े बेटे मोहन को तब तारागढ़ का नया किलेदार बनाया। मोहन के दोनों छोटे भाईयों सुखराम और मंगलराम को भी पूर्ण स्वामिभक्त मान कर अपनी सेवा में लिया। कृष्णराम का छोटा भाई धायभाई रामकृष्ण जो मतिवान और युद्ध विद्या में चतुर उन दिनों अजीतगढ़ नामक दुर्ग का किलेदार था उसका जयेष्ट पुत्र रतन धायभाई जो आपका स्वामिभक्त है। वह घोड़ा चलाने में और शस्त्र विद्या में चतुर, अपने स्वामी के हित साधन में आसक्त रहने वाला वीर, आपकी सेवा में संलग्न होने को उपस्थित हुआ। इस तरह राज के सभी

सामन्तों के पुत्र जो राजा के समवयस्क थे राजा के हुजूर में उपस्थित हुए। यह वीर राजा (रामसिंह) अपने समतुल्य अवस्था वाले युवाओं का ही संग्रह करता है। शिशुपन की अवस्था वालों को अपने पास रखना स्वीकार नहीं करता।

षट्पात

कृष्णराम धात्रेय सु इम हुव मुख्य मुसाहब,
सब प्रभु राज्य सम्हारि तक्कि व्यय आय तुला तब।
मेटि असेस प्रमाद कोस धन अन्न रासि करि,
कुनय करज दूर किय भूप आलय लच्छी भरि।
अरु किय समाढ्य देसहु अखिल बसुधा किय जस ख्यात बहु।
सुखराम सोहु बढिगो सचिव पहु अप्पहिँ लहि राम पहु ॥३२॥

धायभाई कृष्णराम ने इस तरह राजा का मुख्य सचिव बन कर राजकाज की व्यवस्था अपने हाथ में ली। उसने सर्व प्रथम राज की आमदनी और खर्च के अनुपात की परीक्षा की फिर उसने अनुचित खर्च पर पाबन्दी लगाई। ऐसा कर उसने राज के खजाने को धन और अन्न के भण्डार से भर दिया। सचिव कृष्णराम ने अपनी सूझबूझ से कर्ज की कुनीति छोड़ कर राजा के घर को लक्ष्मी से भर दिया। इसी नीति का सहारा ले कर उसने अपने पूरे राज्य को धनवान किया। अपने नाम की कीर्ति जगत में प्रमार कर वह कृष्णराम धायभाई तो अपने पूर्ववर्ती सचिव सुखराम से भी बढ कर हो गया।

चुडाल दोहा

नभ अहि गज ससि सक इत निपुनन अंग्रेजन दिन दिन जय आस।
लरत लरत हायन दुव तैं लगि पंचसहँस निज बल लहि पास॥
प्राची ओर बिलायत बर्मा आबा पुर तस खंधावार।
अरु दूजो जिहिँ नाम अइन्वा रत्नपुर हु तीजो रुचिकार॥३३॥
अब तस निकट पहुँचि अंग्रेजन मंजिल दुव पर मंडि मुकाम।
बढि आवा लैबोहि बिचारिय तोपन त्रास धुजावत धाम॥
तब करि संधि चकित बर्मापति दम्म कोटि बलव्यय हित दिन्न।
दूजो मोलमनि को जनपद कहि उपदा इनके बस किन्न॥३४॥

विक्रम सवंत् के वर्ष अठारह सौ अस्सी में दिन-प्रतिदिन अपनी

विजय की आशा में अंग्रेजों को लड़ते-लड़ते पूरे दो वर्ष का समय हो गया। जूझती हुई अंग्रेजों की पाँच हजार की सेना आर्यावर्त से पूर्व दिशा में अवस्थित बर्मा नामक विलायत की राजधानी आवापुर के निकट पहुँच गई। इस आवापुर का एक नाम अइन्वा था। वहीं दूसरे सुन्दर नाम रत्नपुर से भी यह जानी जाती थी। रत्नपुर से अंग्रेज सेना मात्र दो पड़ाव की दूरी पर रह गई थी। तोपों के भय से पृथ्वी कंपाती अंग्रेज सेना बढ़ कर अब आवा को लेने वाली ही थी कि तभी बर्मा के राजा ने संधि का प्रस्ताव रखा और फौजखर्च की राशि एक करोड़ रुपये देना तय किया। यही नहीं सेनाखर्च की राशि के साथ अपना मोलमीन नामक जनपद बतौर उपहार के अंग्रेजों को भेंट दिया।

इत कोटा जालम बपु उज्झिय प्रतिमा तुल्य नृपहि धरि पट्ट।
माधव तब हुव मुख्य मुसाहब बहत जनक जालम गत बट्ट॥

विष्णुसिंह कोटेस मध्यसुत जालम सौं जु मिल्यो द्रुत जाइ।
आय लक्ख दम्मन पुर अनता दिय ताकहँमन अभय दृढाइ ॥३५॥

मार्‍यो जिहिं पित्थल हनि तोमर सो बाहुज मल्लार स नाम।
करि सत दुव सादिन को सासक थुरि गिनि ताहि दये धन धाम॥

भ्रात भयो अनतापुर अधिप रु जिहिं इक भ्रात हन्यो बरजोर।
अभय सु पै मल्लार बढ्यो इम कहि न सक्यो कछु भूप किसोर॥३६॥

इधर कोटा में इसी समय जालिमसिंह झाला का देहान्त हो गया जो अब तक राजा को एक कठपुतली की मानिंद राजसिंहासन पर बिठाये रखने वाला था। मरे हुए पिता के मार्ग पर चल कर अपने पिता की जगह तब माधवसिंह झाला कोटा का नया मुसाहिब बना। पूर्व में कोटा के राजा का मंझला पुत्र विष्णुसिंह जो झाला जालिमसिंह से जा मिला था और उसे एक लाख रुपयों की आमदनी वाली अन्ता नामक पुर की जागीर मिली। यहीं नहीं मल्हार नामक जिस क्षत्रिय ने अपने भाले के प्रहार से महाराव किशोरसिंह के छोटे भाई पृथ्वीसिंह को मारा था उसे दो सौ घुड़सवारों का अधिकारी बना दिया और उसे धन-धाम के रूप में इनाम देकर नवाजा गया। महाराव किशोरसिंह का एक भाई (विष्णुसिंह) तो अन्तापुर का शासक हो गया और उसके दूसरे भाई को जबरन मारने वाला हत्यारा मल्हार सचिव माधवसिंह

झाला का प्रश्रय पा कर दिनोदिन निर्भयता के साथ बरजोरी करने पर उतारू हो गया तब भी महाराव किशोरसिंह कुछ न कर सका। वह तो इस अन्याय के विरोध में बोल भी नहीं पाया।

माधव अब जालम जिम मालिक अंग अखिल करि अप्प अधीन।
देस कोस सेना दुर्गादिक कोटा सब सासन बस कीन॥
विष्णुसिंह बून्दीस बिराजत नरपति मान जोधपुर नाह।
स्वसुता को प्रभु सौं किय सगपन कुमरपनहि सुनि सबन सराह।।३७॥
यातैं व्याह त्वरा करिबे अब भट बिक्रम थानांपति भ्रात।
दूजो चंदकुमर बिस्देस हु खंगारज कूरम जस ख्यात॥
ए दुव तबहि जोधपुर पठये बलि आये तहँ मंडि बिवाह।
प्रभु बय इत हायन बारह पर सद्धिय सब राजन नय राह॥३८॥

धीरे-धीरे माधवसिंह झाला ने भी अपने पिता जालिमसिंह की तरह राज के सारे अंगों पर अधिकार कर लिया। उसने खजाना, सेना, दुर्ग और पूरे कोटा प्रांत को अपनी आज्ञा के वश में कर लिया। असली सत्ता उसके अधिकार में हो गई। इधर बूँदी में राजा विष्णुसिंह विद्यमान था और जोधपुर का शासक राठौड़ राजा मानसिंह था। राजा मानसिंह ने जब बून्दी के राज कुमार रामसिंह की सराहना सुनी तो उसने अपनी बेटी की सगाई उसके साथ कर दी। अब इस समय विवाह शीघ्र करवाने का प्रस्ताव ले कर राजा के भाई और थाना के स्वामी विक्रमसिंह और प्रसिद्ध खंगारोत कछवाहा कु मार चन्द्रसिंह दोनों को जोधपुर भेजा गया। इन दोनों भले सरदारों ने जोधपुर जाकर विवाह मंडवाया अर्थात् विवाह समारोह का आरंभ करवाया। इस समय हे स्वामी रामसिंह! आपकी उम्र बारह वर्ष की ही थी पर नीति की राह पर चलने वालों में आप सभी अन्य राजाओं की तरह थे।

मनोरहम्

खेलत खलूरिका मैं खुरली सरासन की,
पानि धरि पाटव यौं राम छितिपाल के।
ऊंचे अब्भ उडत पतत्रिन कौं पारि देत,
ओर न उतारि देत बेझा चिरकाल के।

दीठि जो परैं तो दूर बेधन मैं हालहाल,
बाल बाल अंतर बच न बट बाल के।
केहि चित्र क्रम तैं तये मैं करि छेकछेक,
एकएक बेधैं मनि मोतिन की माल के॥३९॥

अखाड़े में धनुष का शस्त्राभ्यास करते समय महाराव राजा रामसिंह के हाथों में ऐसी कुशलता नजर आती है कि वह ऊँचे आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को अपना बाण मार कर गिरा देता है । वह दूसरे अन्य अभ्यासियों के ठहरे हुए लक्ष्य को भी बेध कर गिराने की सामर्थ्य रखता है अर्थात् अन्य साथी जिस लक्ष्य को नहीं बेध पाते उसे वह स्वयं आसानी से बेध लेता है। दृष्टि की जद में पड़ने वाले हिलते हुए बाल जैसे प्रत्येक लक्ष्य को बेधने में सक्षम है। बाल जैसा महीन लक्ष्य भी उसके तीर से बाल भर भी नहीं बच पाता। वह अपने तीरों से आश्चर्य जनक रूप से तवे को बेध कर उसमें छिद्र बना देता है। उसके तीर से बेधे हुए छिद्रों को भी वह छेक लेता है। तवे पर बने छेदों को देखने पर लगता है जैसे धनुष की सहायता से उसने मोतियों की माला बनाई हो अथवा दूसरे अर्थ में वह धनुर्धर मोतियों की माला के एकएक मनके को भी बेधने में सक्षम है।

अैसै नरनायक अनेक क्रम आनि आनि,
साधि सर बिद्या पानि तुपक प्रमान की।
फैंकि नभ निंबू बेध डारत बिबिध रीति,
दोलाजंत्र त्यौं तति उतारत बटान की।
कवि रविमल्ल बुद्धि बिसत कितीक बात,
सैरिभ मैं सहित पखाल कढि जान की।
चोचा दल चनक खुमादिन के खंडि देत,
मोचादल मंडि देत माला गुटिकान की॥४०॥

वह नरनायक राजा रामसिंह अपनी तीरदांजी में क्रम से एक-एक कर कई तरह के अभ्यास करता है। उसके हाथ तीर कमान पर ऐसे सधे हुए है मानों किसी बेजोड़ निशानेबाज के हाथ बन्दूक चलाने के अभ्यस्त हो। वह आकाश में ऊपर की ओर नीबू उछाल कर उसे अपने तीर से चीर देता है

और वह भी तरह तरह से। वह झूले में झूलते हुए तीर चला कर गोल लट्टुओं की पंक्ति को गिराने में भी सिद्धहस्त है। ग्रंथकार कवि सूर्यमल्ल कहता है कि इन आश्चर्य जनक बेधन कार्यों को देख कर समझने की तो मेरी बुद्धि की भी बिसात नहीं पर यह राजा खाल सहित भैंसे के शरीर को बेध कर अपना तीर पार निकालने की कुव्वत रखता है। यह राजा छोटे लक्ष्य जैसे चने का दाना, तेजपात और पारिपर्णी लता विशेष के पत्तों को अपनी बन्दूक की गोली से काटने में सक्षम है। यह केले के पत्ते पर बन्दूक की गोलियों से छिद्र युक्त माला उकेर देने वाला है।

यौं धनु तुपक साधि बारहैं बरस आप,
कासू कुंत पट्टिस कृपान कला पकरी।
हायन छ वारे पीन कायन लुलायन के,
कंधर कठोरन ज्यौं काटि देत ककरी।
साग्रगत माघ होत निस्सह निदाघ होत,
अस्त्रन को आघ होत बाघ होत बकरी।
टकरी टराइ करी आवजाव अस्वन कौं,
बीथी सकरी बिच चलात जैंसैं चकरी।।४१।।

यह राजा रामसिंह अपनी बारह वर्ष की आयु में धनुर्विधा में निष्णात हो बन्दूक चलाने में अच्छा निशानेबाज हो गया। यही नहीं वह बरछी, भाला, कटारी, तलवार आदि चलाने की कला में भी पारंगत हो गया। यह राजा छः वर्ष के पुष्ट भैंसे के कठोर कंधों को अपनी तलवार के प्रहार (झटके) से ककड़ी की तरह काटने वाला बन गया। यह राजा नहीं सहने योग्य अग्रगत (आगे गया हुआ) पौष और माघ मास के जाड़े में भी शस्त्राभ्यास जारी रखता और असहनीय ग्रीष्म ऋतु में चलती लू में भी अपने शस्त्रों का आदर करता अर्थात् अभ्यास नहीं छोड़ता यही कारण है कि इसके समक्ष बाघ भी बकरीवत हो जाते हैं। शस्त्रों को चलाने में पारंगत यह राजा घोड़ा चलाने में भी उतना ही चतुर है। यह अपने घोड़े की टक्कर से हाथियों को परे कर, संकरी गलियों में भी घोड़े से आवागमन करने में समर्थ घोड़े को चकरी की तरह चलाने वाला है।

दोहा

गत प्रत्यागत साचिगत, पाटन रोध प्रहार।
हयारूढ सद्धे हुलसि, ए खट तोमर वार॥४२॥

बाईस हि असि मग्ग बलि, खुरली सद्धि स खेल।
बेधन लग्गो सबन बढि, सादी सिंहन सेल॥४३॥

सूचित बय सब गुन गहत, बहत वृकोदर बेस।
प्रथित नियुद्ध पटैतपन, सिक्खो नृपति असेस॥४४॥

इस राजा ने अपनी इतनी कम उम्र में ही घोड़े पर सवार हो भाले से गत, प्रत्यागत, साचिगत, पाटन, रोध और प्रहार इन छहों प्रकार के वार करना सीखा। यही नहीं अखाड़े में शस्त्राभ्यास करते समय यह अपनी तलवार से बाईसों प्रकार के दाँवो का प्रदर्शन करता है। अखाड़े में सभी प्रकार के शस्त्राभ्यास में सलंग्न रहने वाला यह राजा घोड़े पर सवार हो भाले से सिंह मारने लगा। शस्त्रों के अतिरिक्त इस उम्र अर्थात बारह वर्ष की अवस्था में यह राजा मल्लयुद्ध में भी पांडव भीमसेन की तरह बाहुयुद्ध के सभी दाँव जानता है। अर्थात् सभी प्रकार के शस्त्रों को चलाना और बाहुयुद्ध करना राजा ने सीख लिया है, वह किसी अभ्यास से वंचित नहीं रहा।

घनाक्षरी

सूकल तुरंगन कौं बाहन बिनीत करि,
आरोहत मैंगल मतंगन धराइ धीर॥

कानन के मह रु बराह खड्ग कंठीरव,
फांदन फलंगें तिनके तनु रुकैं न तीर॥

निखिल नियुद्ध मैं न समबय साम्हैं होत,
तत्वबोध भक्ति धर्म नीति सम साधि सीर॥

पाटव जितोक पटु पायो पुहवीप ताहि,
आसु अपनायो एक बुंदी अधिराज बीर॥४५॥

यह राजा रामसिंह अशिक्षित घोड़ों अर्थात् नये बछेरों पर भी सवारी कर उन्हें सवार की आज्ञा मानने वाला विनीत बना देता है। इसी तरह हाथियों पर भी धीरज के साथ सवारी करने में सक्षम है। आखेट के समय वन में

दौड़ते हुए जंगली भैंसे, गेंडे और सिंह जैसे जानवरों के शरीर में भी उसका तीर नहीं रुकता अर्थात् पार हो जाता है। बाहुयुद्ध (कुश्ती) करने को राजा का कोई समवयस्क अखाड़े में सामने नही आता अर्थात् कोई सामना नही कर सकता है। शस्त्राभ्यास, शिकार और सवारी में पारंगत इस कम उम्र के राजा रामसिंह ने तत्वबोध, भक्ति, धर्म और नीति को इसी समान ढंग से साधा है। ऐसी चतुराई वाले चतुर राजा रामसिंह को इसकी नगरी बून्दी ने एक वीर राजा के रूप में अपनाया अर्थात उसे अपना स्वामी माना।

सूरि सूर खोजन मैं आलंबन आदि बनैं,
सोहत समज्या मैं सरोजन मैं गंध सम॥
जागै जस जाको भू पचास कोटि जोजन मैं,
रम्य रुचि रम्य तैं मनोजन मैं अंध सम॥
ओजन मैं भोजन मैं पावै पर मोजन मैं,
फोजन मैं को जन कहावैं बलाबंध सम॥
---------------------------,
---------------------------॥४६॥

यह राजा रामसिंह अपने राज्य में पंडितों और शूरवीरों को ढूंढ निकालने में सदा सहायक रहता है और मिलने पर ऐसे व्यक्तियों का सहारा बनता है। फूल में सुगंध की तरह अपनी राजसभा में सुशोभित होने वाला है। वहीं अपनी सुन्दर कांति में यह कामदेव और कामदेव के अवतार पद्युम्न की कांति को दबाने वाला है अर्थात् इसके समक्ष उनकी सुन्दरता नजर नहीं आती। जिसका यश पचास कोटि पृथ्वी पर पसरा है। पराक्रम और दान में राजा भोज भी इसके जैसा नही था और सेना में तो अरावली पर्वत के पति इस हाड़ा राजा के अतिरिक्त और कौन सुहाना लग सकता है अर्थात् नहीं। .....

चूडाल दोहा

अखिल हेय आदेय इम, ध्रुव धीक्रम तजि धारि धराधन।
नाम निकास्यो नृपन मैं, डग राघव मग डारि महामन॥४७॥
जिहिं बतरावैं सोहि जन, मन्नैं मोहन मंत्र पढ्यो मति।
कवि बुध भट सचिवादिकन, त्वरित करेनिजतंत्र पढ्यो मति॥४८॥

प्रभु पितृव्य इत गोठपुर, सुनि बाहुल सित अंत पुण्य सुख।
पट्टनि तीरथ न्हान पर, रुचि धारिय बलवंत ताहि रुख।।४९।।

सम्पूर्ण छोड़ने और ग्रहण करने योग्य सारी बातों को इस राजा ने छोड़ा और धारण किया है। राजा रामचन्द्र की राह पर अपने कदम बढ़ा कर इस महामना राजा ने अपना नाम राजाओं के मध्य प्रकाशित किया है। यह राजा जिस आदमी से मुखातिब होता है वही इसकी वाणी से मोहनी मंत्र की तरह सम्मोहित हो जाता है। कवि, पंडितों, सामन्तों और सचिवों को शीघ्र ही यह मतिवान राजा अपना बना लेता है। इस राजा रामसिंह का काका बलवंतसिंह गोठड़ा से कार्तिक माह की पूर्णिमा को पाटण तीर्थ पर स्नान करने की योजना बना कर रवाना हुआ।

कन्या निज उपयम पहिलैं किय दुर्गापुर सासक सरदार।
सोपुर अधिप राधिकादासहिँ बुल्लिय व्याहन सबिधि बिचार।।

संध्यापति ताको सह सोपुर दोलतराव लयो सब देस।
बैठनहित दिय ताहि बरोधा सासन बस रंचक भुव सेस।।५०।।

दुर्गापुर आयउ वह दुल्लहु तिहिँ मह गो बलवंत हु तत्थ।
सोपुर लैन मंत्र किय तासन सूचिय हम जुज्झहिँ अब सत्थ।।

सर हुलकर संध्या संध्या जुग मालव बंटि अनीक अमान।
भू जितत्तित दब्बी बहु भूपन पटकि त्रास प्रबलत्व प्रमान।।५१।।

दुर्गापुर के शासक सरदारसिंह ने पूर्व में अपनी कन्या का विवाह करने के लिए सोपुर के राजा राधिकादास को पूरे आदर से आमंत्रित किया। इधर वह सोपुर का राजा दूल्हा बन कर दुर्गापुर में हाड़ाओं के घर विवाह करने आया और पीछे से सिंधिया दौलतराव ने पूरे सोपुर के प्रांत पर अधिकार कर लिया। राजा के लिए मात्र एक बरोधा का छोटा सा क्षेत्र छोड़ा। इस विवाह के अवसर पर गोठड़ा का स्वामी बलवंतसिंह भी आमंत्रित था इसलिए वह भी दुर्गापुर गया। वहाँ जब राधिकादास से सोपुर छिन जाने की बात सुनी तो सभी ने बैठ कर मंत्रणा की। यहाँ बलवंतसिंह ने कहा कि हम आपके साथ युद्ध में जूझेंगे आप अपने सोपुर को वापस लेने के अर्थ भिड़ंत कीजिए। इन दिनों होल्कर और सिंधिया दोनों ने मिल कर अपनी जंगी सेना के बल पर मालवा के अन्य राजाओं को भयभीत कर उनकी भूमि छीन ली थी।

कूरम गोर तथा खिच्ची कुल पुनि जद्दव बुंदेल प्रमार।
गढ नरउर सोपुर राघवगढ धूमि करोलिय झंसिय धार॥
संध्या लिय इनकी अवनी सब बिन्नति पर कछु रक्खि निबाह।
बुंदेलन खिच्चिन तब गहि बल दिय जुरि जुरि संध्या उर दाह ॥५२॥
जत्थहु बीर रचहिँ जुज्झिय रन रन-रन इक जयसिंघ नरेस।
बहु बेरहि लक्खन अरिदल बिच इत सन उत कढि कढि गयएस॥
जिहिँ ईस्वर न हनैँ तिहिँ को जन महत बरूथ हनैँ रन मांहिँ।
इम खिच्चिय राघवगढ को इन निर्भय भिरत मर्‌यो कहु नांहिँ ।५३।

अपनी सेना के सहारे कछवाहा, गौड़, खिच्वी, यादव, बुंदेल, प्रमार आदि छोटे-छोटे राजाओं से नरवर, सोपुर, राघवगढ़, करोली, झांसी और धार की भूमि सिंधिया ने छीन ली। सिंधिया ने उपरोक्त राज्यों के राजाओं के पास उनके निर्वाह योग्य भूमि ही रखी। शेष सारी भूमि पर अपना अधिकार कर लिया। इस पर बुंदेलों और खिच्चियों ने अपनी-अपनी सेना जोड़ कर जब तब सिंधिया के हृदय में दाह जगाई। पर इनमें भी राजा जयसिंह जो राघवगढ़ का खिच्ची राजा था, युद्ध-युद्ध उसने मचाया। वह पराक्रमी वीर अपने शत्रुओं की एक लाख की संख्या वाली सेना के समक्ष अपना घोड़ा बढ़ा कर इस पार से उस पार निकल जाता। वीर जयसिंह को ईश्वर ही न मारे तब तक उसे युद्ध में कौन सी सेना मार सकती थी अर्थात् नहीं। राघवगढ़ का वह निर्भय राजा जयसिंह कई युद्धों में लड़ा पर नही मारा गया।

बहुबेरन इहिँ नृप किय व्याकुल रुद्ध स्वसित सम दोलतराव।
तोपन ईस फिरंगिन तीनन दहि रनरन बन जिम तप दाव॥
जे भट मुख्य सिकंदर जेकम निडर ज्यानबत्तीस सनाम।
ए त्रय फ्रांस बिलायत उद्भव तिन बल अधिप लहैं जय ताम ॥५४॥
तोप न भारि सतत तरकावहिँ ए हरिमंथ अरिन रन ऐन।
तृनजिम गिनि जयसिंह सु तीनन निजबल जुरिग मिचावत नैन॥
आयु बिताय समय बपु उज्झिय राघवगढ जयसिंह नरेस।
धुव सुव तास नामकरि धोंकल अंकस्थित भुवहित हुव एस ॥५५॥

कई बार इस खिच्ची वीर जयसिंह ने दौलतराव को व्याकुल बनाया। कई बार उसकी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रख दी। शत्रुसेना के जिन तीन फिरंगियों (फ्रांसिसी जो तोपों को हाकिम थे) ने जैसे ग्रीष्म ऋतु की अग्नि वन को जलाती है उस तरह प्रत्येक युद्ध में जयसिंह को जलाया। वे सिंधिया की सेना के मुख्य योद्धा थे। उनके नाम सिकंदर, जेकम, और जॉन बेप्टिस थे। ये तीनों फ्रांस नामक विलायत के रहने वाले थे और इन्हीं तीन तोपचियों के बल पर सिंधिया की सेना विजय हासिल करती थी। ये फिरंगी अपनी तोपों रूपी भाड़ में शत्रु रूपी चनों को युद्ध में निरन्तर भूनते रहते थे पर वह राघवगढ का राजा जयसिंह तो इन तीनों फिरंगियों को भी तृणवत मान कर अपने बल के साथ आ भिड़ा और उसने इनकी आँख मिंचावा दी अथवा दूसरे अर्थ में वह निर्भय खिची वीर अपने दल के साथ उन्हें तृणवत मान कर आँख मींच कर टक्कर लेता। अंत में अपनी आयु सम्पूर्ण कर राघवगढ के राजा जयसिंह ने अपना शरीर त्यागा तब पृथ्वी के कारण (जागीर के लिए) निश्चय ही धोंकलसिंह को गोद लिया गया।

संगर सोहु जनक जिम सत्रुन व्याकुल करत भयो बहु बेर।
मानत असह कह्यो तिहिं मारन दोलतराव न करि छिन देर॥

परिचर रक्खि सिंकदर प्रमुखन धारत हुव अप्पहु अवधान।
चरन पठाइ कहां इम चाहत धोंकल सुद्धि सुनत व्यवधान॥५६॥

लिखि छद तब धोंकल पठयो लघु गोठनगर अनुचर निज गूढ।
तामैं लिपि सोदर उभय हि तुम आहव धीर प्रबीर अमूढ॥

संध्या रिपु हमरी भुव लै सब प्रानहु लैन चहत अब पाप।
हम खिच्ची भ्राता तुम हड्डुन दलपति देहु सहाय दुराप॥५७॥

यह धोकलसिंह भी युद्ध में अपने पिता राजा जयसिंह के समान था जिसने रणभूमि में कई बार अपने शत्रुओं को व्याकुल किया। इसका पराक्रम दौलतराव सिंधिया के लिए असह्य था उसने शीघ्र ही अपने योद्धाओं से कहा कि जिस किसी तरह से संभव हो इस धोंकलसिंह को मार डाला जाए। इस काम के लिए उसने सिकंदर आदि को अपनी सेवा में रखा और स्वयं भी बराबर सावधानी रखता। उसने अपने दूत बुला कर कहा कि पता लगाओ

कि आखिर वह धोंकलसिंह चाहता क्या है? जैसी-तैसी भी उसकी खबर शीघ्र मुझे उपलब्ध कराओ। इधर धोंकलसिंह ने एक पत्र लिख कर अपने दूत के हाथों गुप्त रूप से गोठड़ा भिजवाया जिसमें लिखा कि युद्ध भूमि में धीरज रखने वाले आप दोनों वीर भाई मेरी सहायता के लिए यहाँ आएँ। शत्रु सिंधिया ने हमारी जमीन ले ली है और वह पापी अब मेरे प्राणों का प्यासा है। हम खिच्ची हैं और आप लोग हाड़ा, इस तरह भाई हैं। अब हे दलपतसिंह! आप तुरन्त दुर्लभ सहाय करें।

दल यह बंचि भीर गय दलपति जो बलवंत सहोदर जोध।
सन्ध्या सह जनजन मन सालत बालत हुव दुव स्वभुव बिरोध॥
सुद्धि दुहुँन इक अह सुनि बलसह चपल ज्यानबत्तीस चलाइ।
स्वल्पहि सुनि परिगह इन्ह संग रु जुग बंधुहि बेढे तहँ जाइ ॥५८॥
मिलि सम्मुह दलपति रन मंडिय भजि निकसन समुझत जस भंग।
तुरगारूढ सद्धि भुज तोमर जुज्झत बहुत हने अरि जंग॥
परत तुरंग पदाति अभै पन पैंड धरत हयमेध प्रभाव।
बारह बीर हनें असि बाहत दलित तुरंग पंच धरि दाव॥५९।

ऐसा पत्र पाते ही दलपतसिंह हाड़ा जो योद्धा बलवंतसिंह का सहोदर था सहायता करने राघवगढ़ गया। अब धोकलसिंह और दलपतसिंह दो हो गए जो सिंधिया के विरोध में सलंग्न हो गए। ये अपनी भूमि वापस लेने का प्रयत्न करने वाले दोनों वीर शीघ्र ही सिंधिया के सभी आदमियों के मन में काँटे की तरह चुभने लगे। एक दिन सिंधिया के फिरंगी योद्धा जॉन बेप्टिस ने इन दोनों की खबर पा कर इनका पीछा किया। थोड़े ही सैनिकों के साथ वह फिरंगी इन से जा भिड़ा। इनका सामना करने को दलपतसिंह ने युद्ध छेड़ा क्योंकि रणभूमि से भागने में वह अपने यश की क्षति देखने वाला था। वह तुरन्त हाथ में भाला लेकर घोड़े पर सवार हुआ और शत्रुओं से जूझ कर उन्हें मारने लगा। इसी बीच उसका घोड़ा कट पड़ा तो वह घोड़ा मरने पर पैदल ही अश्वमेध के कदम भरने लगा और उसने इस हालत में भी शत्रुओं के बारह योद्धाओं को अपनी तलवार के प्रहारों से काट गिराया। घोड़े से विहीन वह वीर पाँच प्रकार के तलवार के पेंतरों का प्रदर्शन करते हुए घमासान युद्ध करने लगा।

तुट्टत खग्ग कटार गह्यो तिम कलह कितेकन बच्छ बिदारि।
तिलतिल रन दलपति बपु तुट्टिग धोंकल कढिग लरन पुनि धारि॥
सोदर बैर इक्क यह सालत बलि जामिप तुम अवनि बिहीन॥।
सौपुर लैन राधिकादासहिँ दुसहन हनन बचन इम दीन॥६०॥
प्रथम भई सु कही दुर्गापुर भूत हु मैं सु कथा इम भूत।
संगर हनन ज्यानबतीसहिँ अनुज बैर बालन अरि ऊत॥
सद्धि अभीष्ट राधिकादास सु भाम करन सोपुर भूपाल।
उभय कज्ज बलवंत करन इम किय रहस्य ताप्रति तिहिँ काल॥६१॥

इसी बीच उसकी तलवार टूट गई तब उस वीर हाड़ा दलपतसिंह ने अपनी कटारी निकाली और उसकी सहायता से उसने कई शत्रुओं की छाती चीर डाली। अन्ततः रणभूमि में शत्रुओं के प्रहारों से तिल तिल कट कर उसने अपने प्राण त्यागे और तभी धोंकलसिंह फिर से लड़ने की सोच कर रणभूमि से निकल गया। अब इधर जब राजा राधिकादास के विवाह में उससे मुलाकात हुई तब बलवंतसिंह हाड़ा (गोठड़ा) ने कहा कि एक तो मेरे ह्दय में मेरे भाई का बैर रह-रह कर खटकता है फिर हे बहिनोई! उसने आपको भूमिविहीन बना दिया है। इसलिए मैं आपको सोपुर वापस दिलवाने और शत्रु को मारने का वचन देता हूँ। ग्रंथकार कहता है यह बात दुर्गापुर में घटित हुई और उस समय की कथा है (अर्थात् पूर्व की बात है मैने वहाँ भी कहा है अब उस प्रसंग में यह नया जानें) कि हाड़ा बलवंतसिंह ने अपने भाई दलपतसिंह के हत्यारे जॉन बेप्टिस को रणभूमि में मार कर भाई का बैर लेने का इरादा किया। इसके साथ ही अपने बहिनोई को फिर से सोपुर का राजा बनाने का वचन भी दिया हुआ था इन दोनों कारणों से बलवंतसिंह ने इस समय युद्ध करने की ठानी।

अब वह बत्त सुमिरि मन अंतर इक अहि बसु ससि सम सक आत।
प्रसन्न सिसिर भावी ऋतु खिन पर सोपुर समर बिचारिय बात॥
मातुल स्वीय सवाई लछमन जदुकुल दुर्ग अमरगढ जत्थ।
तिन प्रति इम छद लिखि सूचिय तुम सब भेदहु सोपुरगढ सत्थ॥६२॥

सुनि यह तब चिंतिय जदुबंसिन जिन संहरि दलपति जामेय।
अतिबलपन दब्बिय छिति अप्पन द्रुत अब त्रास अरिन तिन्ह देय॥

भनि इम भेजि पिहित जन भेदन लिय सोपुर भट कतिक लुभाइ।
इहिँ अंतर बलवंत चह्यो इत पट्टनि गमन श्रवन सुभ पाइ॥६३॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्यासी के आरंभ में बलवंतसिंह ने हेमन्त और शिशिर ऋतु के आगम समय को देख युद्ध करने की बात सोची। इसके लिए उसने अपने मामा यादव सवाईसिंह और लक्ष्मणसिंह को अमरगढ़ पत्र लिख कर भेजा जिसमें लिखा कि वर्तमान में सोपुर के शासकों को येन क्रेन प्रक रेण फोड़ो अर्थात् उन्हें अपने पक्ष में करो। यह पत्र पढ़ते ही यदुवंशियों ने सोचा कि जिन्होंने हमारे भानजे दलपतसिंह जैसे वीर को मारा है अब हम अपने बल गे रनकी भूमि दबाएँगे और शीघ्र ही शत्रु को त्रासित करेंगे। यह सोच कर उन्होंने अपने भेदिये भेज कर सोपुर के कई योद्धाओं का लालच देकर गुप्त रूप से अपने पक्ष में कर लिया। इसी बीच बलवंतसिंह हाड़ा ने पाटण तीर्थ पर स्नान करने हेतु गमन किया।

जिहिँ पहिँलैं बिरचहिँ जंग रु निज प्रभु को दब्ब्यो दृगनैर।
जित्तिलयो बुंदीस वहै जब तिहिँ बंधिय जिततित बहु बैर॥

लै पुर नगर अबस पुनि लुट्टिय चहि व्याकुल किय नागरचाल।
बिंझोली मंडिलगढ बेढत बस न भये तउ चकित बिहाल॥६४॥

झल्लन पर पहुँच्यो असि झारन मंगरोल कोटापति मेल।
सत्रु करे चहुँ घाँ भूधन सब खग्गन अतुल मचावत खेल॥

इहिँ कारन पट्टनि सुनि आवत बलवंत हिँ मारन चहि बंट।
माधव झल्ल रहस्य मिलायउ अंगरेज कलफिल्ड अंजट॥६५॥

यह वही गोठड़ा का स्वामी बलवंतसिंह हाड़ा था जिसने कई युद्ध किये और अपने स्वामी बून्दी के राजा का नैनवा नगर दबा लिया था। इस नगर नैणवा को तो हाड़ा राजा ने वापस जीत लिया पर इस कारण से बलवंतसिंह के यहाँ-वहाँ कई शत्रु हो गए। यही नहीं इसने पुर नगर जीत कर नागरचाल जनपद को लूट कर व्याकुल किया। इसने बिझोंली, मांडलगढ पर भी आक्रमण किये यद्यपि वहाँ इसकी विजय न हो सकी, हाँ, शत्रुता अवश्य

बढ़ी। मंगरोल के युद्ध में यह वीर कोटा के स्वामी के पक्ष में झालाओं पर तलवार चलाने भी गया था। इस प्रकार बलवंतसिंह हाड़ा ने इधर-उधर के राजाओं को अपनी तलवार के अतुलनीय जोहर दिखा कर उन्हें अपना शत्रु बना लिया। यही कारण रहा कि जब उसके शत्रुओं ने सुना कि बलवंतसिंह पाटण आ रहा है तो उन्होनें उसे मारना चाहा ताकि उसे मारकर उसकी भूमि को आपस में बाँट ले। इसके लिए माधवसिंह झाला ने गुप्त मंत्रणा कर अंग्रेज एजेन्ट कॉलफील्ड को अपने साथ मिलाया।

सजि दल पिह्नित रुद्ध किय मग सब इक अहि बसु ससि सम सक एस।
प्रस्थित तित बाहुल तेरसि पर दिन तीजै गय गम्य प्रदेस॥
करि तहँ न्हाँन पूजि प्रभु केसव इक आलय पट्टनि बिच आइ।
अप्प रह्यो राकानिस आगम इतर निलय हयगन पठवाइ॥६६॥
देवकरन अनुचर इक निज दल स्वल्प बिच सु मालिक करि संग।
बलि माधव साहब बल अतिबल भेजिय करन नाम बल भंग॥
रहत मुहूर्त उभय खिल राका दुजनन ताहि लयो गरदाइ।
लरत रह्यो स जाम ससक लग सोदर सुत भट सबन सजाइ॥६७॥

इसके लिए विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्यासी में उसने अपना दल सज्जित कर चुपके से सारे मार्ग अवरुद्ध कर लिये। बलवंतसिंह हाड़ा कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन अपने नगर गोठड़ा से प्रस्थान कर अपने जाने योग्य स्थान पाटण को गया। पाटण तीर्थ पर जा कर उसने स्नान किया और केशवदेव के मंदिर में पूजा-अर्चना की। पूर्णमासी की रात्रि के आगम समय अपने घोड़ों के समूह को अन्यत्र भेज दिया और स्वयं केशवराय भगवान के मंदिर में रहा। इस समय उसके पास उसका अनुचर देवकर्ण अवश्य एक छोटे से दल के साथ था कि तभी झाला माधवसिंह और अग्रेंज एजेंट कॉलफील्ड ने बलवंतसिंह को मारने हेतु बड़ी सेना भेजी। पूर्णिमा की चार घड़ी रात शेष रहते शत्रुओं की सेना ने हाड़ा बलवतंसिंह को आ घेरा। ऐसे में वह हाड़ा वीर अपने भाई के लड़के और अपने योद्धाओं को सज्जित कर सात प्रहर तक शत्रुसेना का सामना करता हुआ लड़ता रहा।

प्रतिपद रत्ति निसीथ कढ्यो पुनि पारि कुड्यगृह चरम प्रतीक।
जानत कढत हक्क फुट्टिय जब उत झुक्किय सब मेटि अनीक॥
सेरसिंह अभिधान सहोदर सुत धोंकल फतमल्ल समेत।
सैंतालीस प्रमित भट संगर खग्गन रमत चले बिच खेत॥६८॥

बित्तत बारि पिपासा बिकलन जल पिन्नों चम्मलि तट जाइ।
तुट्टे सब तिलतिल तरवारिन पुनि रुपि खेत सुजस प्रकटाइ॥
पानिन तुपक चाप असि पट्टिस सद्धिय सब बलवंत सधीर।
पट्टिस फैंकि जवन इक जाठर बिधिसु गिराइ दयो वह बीर॥६९॥

फिर वह प्रतिपदा तिथि की आधी रात को एक घर की पिछली दीवार को ढहा कर वहाँ से निकल आया। उसके निकलते ही सभी ओर से यह हल्ला फूट गया कि वह निकल भागा तो युद्ध ठहर गया। इस युद्ध में बलवंतसिंह के भतीजे शेरसिंह, धोंकलसिंह और फतमल्ल सहित उसके पक्ष के सेंतालीस योद्धा रणखेत में तलवारों का खेल-खेल कर खेत रहे। पीने के पानी की किल्लत के कारण उसके शेष रहे प्यास से विकल सैनिकों ने चम्बल नदी के तट पर जा कर अपनी प्यास बुझाई। इस भिड़ंत में उसके साथी योद्धाओं ने तिल-तिल कट कर रणभूमि में यश अर्जित किया। इस युद्ध में बलवंतसिंह हाड़ा ने अपने हाथों में क्रमश: बंदूक, धनुष, तलवार और अंत में कटारी धारण की। उसने अंत में अपने हाथ की कटारी फैंक कर एक शत्रु यवन (फिरंगी) का पेट चीर कर उसके प्राण हरे।

सोदर अनुज उभय जेठे सुत अप्प तिमहि भटबर्ग असेस।
--------------------------------------॥

सतकन हनि घायल करि सतकन गिद्धसनाम अंस धरि गूढ।
निकस्यो लै सु स्वामिकुल नाम हिँ रक्खन सिसु वह जनन प्ररूढ॥७०॥
प्रभु कवि जनक रचिय तिहिँ रनपर 'बल बिग्रह' अभिधान प्रबंध।
उद्धत गुंफ बीररस आलय सह बल लरन मरन दृढसंध॥
प्रकटत सुद्धि इम सु बुन्दीपुर सुनि प्रभु अप्प असह किय सोक।
आप्लल ठानि दई जल अंजलि अब ऋतु प्रसल छ्यो सब ओक॥७१॥

सो बित्तत प्रकट्यो सिसिरागम जहँ प्रभु ब्याह प्रथम मह जात।
घरघर हरख नगर बून्दी घन बहुजन हुलसत चलन बरात॥
ससि पन्नग बसु इक सूचित सक अबिसद फग्गुन नवमि अनेह।
दुव दिस थप्पि लगनकग्गर दिय आवन दुलह समय सुभ एह॥७२॥

अपने भाई के एक पुत्र और अपने बेटे सहित सैंतालीस योद्धाओं के नि:शेष रहने पर वह वीर सैकड़ों शत्रुओं को मार कर और सैकड़ों शत्रुओं को घायल कर स्वर्ग गया। इस बीच उसका गीधा नामक एक चाकर अपने कंधों पर बलवंतसिंह के बालवय के पुत्र को उठा कर वहाँ से चला। वह बुड्ढा अपने स्वामी के वंश का नाम रखने की खातिर वंश की अंतिम निशानी रूप बालक को उठाये चुपचाप निकला। हे राजा रामसिंह! आपके कवि सूर्यमल्ल के पिता चंडीदान ने इस युद्ध पर उद्धत वीर रस से गुंथे हुए घर रूपी 'बलविग्रह' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी जिसमें बलवंतसिंह के लड़ने और मरने की दृढ प्रतिज्ञा का वृत्तांत है। बलवंतसिंह के मरने की खबर जब बून्दी आई तब हे स्वामी! आपने असह्य शोक किया। आपने स्नान कर अपनी अंजुरी में जल भर कर उसे जलांजलि अर्पित की। सचमुच अब जा कर सभी घरों में हेमन्त ऋतु आई। इस ऋतु के बीतने पर शिशिर का आगमन हुआ और रावराजा रामसिंह के प्रथम विवाह का उत्सव हुआ। बून्दी के घर-घर में हर्ष मनाया गया और हुलसती हुई आपकी बरात रवाना हुई। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्यासी के फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि के दिन दोनों पक्षों में लग्न के पत्र का आदान-प्रदान हुआ कि इस शुभ मुहूर्त पर दूल्हे को विवाह करने आना है।

दोहा

इम नवमी फग्गुन असित, समै लगन थपि सुद्ध।
मचन लग्यो पुर देस मह, दिसदिस पटह प्रबुद्ध॥७३॥
कृष्णराम धात्रेय कुल, सचिव मुख्य सब साज।
सज्ज करे समुचित सुमति, करन स्वामि जस काज॥७४॥

इस प्रकार फाल्गुन कृष्णा नवमी के दिन राजा के विवाह के शुभ लग्न का समय निर्धारित हुआ और नगर सहित पूरे राज्य में सभी ओर उत्सव मनाना आरंभ हुआ। राज के मुख्य सचिव कृष्णराम धायभाई ने अपने स्वामी

के विवाह की सारी सामग्री इकट्ठी करनी आरंभ, की उस सुमतिवान मंत्री ने यशपूर्वक अपने राजा के विवाह की सभी तैयारियां की।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ रामसिंहचरित्रे झल्लजालमसिंह समरस्वसोदर पृथ्वीसिंहमरण पलायित नाथद्वारगत कोटापति किशोरसिंह विष्णुपूजन समासंजन नाथद्वारस्थकिशोरसिंह पादुकाज्ञयाझल्लजालमसिंह कोटाराज्यकार्यकरण विजितकाबुल जनपदलवपुरपतिसिखरणजीतसिंह पेसोरविजयन विजितबर्माराष्ट्रांगरेज कोटिद्रम्मसहित देशैकभागग्रहण कोटासिंहासनसंस्थापिताकिशोर-सिंहजालमसिंहमरणकिशोरसिंहानुजविष्णुसिंहलक्षद्रम्मपट्टप्रापण झल्लमाधवसिंहकोटामहामात्यीभवनसिंधियाहुलकर कतिपयलघु-राज्यहरणसुचन सहित राघव दुर्गाधिपजयसिंहवीरत्वसूचन बून्दीपति-रामसिंह पितृव्यबलवंतसिंह पट्टनप्रधननिधनरामसिंह प्रथम विवाहप्रारम्भ-सूधनं चतुर्थो मयूखः आदितः षट्षष्ट्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३६६॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमराशि के रामसिंह चरित्र में कोटा के महाराव किशोरसिंह का अपने भाई पृथ्वीसिंह को मरवाकर झाला जालमसिंह के युद्ध से भागना और नाथद्वारा में विष्णु भगवान के पूजन में लगकर रहना, किशोरसिंह के नाथद्वारा रहने के समय किशोरसिंह की पादुकाओं से आज्ञा लेकर झाला जालिमसिंह का कोटा का राज्यकार्य करना, लाहोर के राजा सिक्ख रणजीतसिंह का काबुल को विजय करने के बाद पेशावर को विजय करना, अंग्रेजों का बर्मा की विलायत को जीतकर करोड़ रुपयों के साथ देश का एक भाग लेना, महाराव किशोरसिंह को कोटा की गद्दी पर फिर से बिठाये बाद झाला जालिमसिंह का मरना, किशोरसिंह के छोटे भाई विष्णुसिंह को लाख रुपयों का पट्टा मिलना और झाला माधवसिंह का कोटा का मुसाहिब होना, सिंधिया और होल्कर का कई छोटे-छोटे राजाओं के राज्य छीनने की सूचना के साथ राघवगढ के राजा जयसिंह की वीरता की सूचना करना, बून्दी के पति रामसिंह के काका बलवंतसिंह का पाटण के युद्ध में मारा जाना और रामसिंह के प्रथम विवाह के प्रारंभ की सूचना का चौथा मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ छियासठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

उपदोहा

हड्डुवती भुव समह हुव, अधिपति उपयम उचित।
निखिल भये उपहार नव , चित जन मन रुचित ॥१ ॥

लग्गि निमंत्रन दिसन लग, द्योंस निस न मह दुरत।
सद्द तुमुल भेरिन सतत, फैलि प्रतत जस फुरत ॥२ ॥

हे राजा रामसिंह! पूरी हाड़ोती उत्सव मय हो गई उनके राजा 'रामसिंह' का विवाहोत्सव जो आरंभ हुआ था। नगर में सभी ओर नयी सामग्री नजर आने लगी और प्रजाजनों के चित्त प्रसन्न हो गए। दिशा-दिशा में विवाह के निमंत्रण भेजे जाने से सारी दिशाएँ जैसे निमंत्रण मयी हो गई। रात दिन उत्सव में छिपने लगे अर्थात् उत्सव की ओट में समय के गुजरने का आभास नहीं रह गया। नोबतों का तुमुल शब्द हवा में सतत तैरने लगा, इससे राजा का यश भी निरंतर बढ़ने लगा।

षट्पात्

सचिव भारत बेसरन भोलि सकटन सु चित्त भर,
दिसदिस देस बिदेस व्यावहारिक क्रमि कग्गर।
समय अंत सब सुभट होइ हाजरि सुख सँधिय,
हुव पूजित हेरंब बिहित क्रम कंकन बंध्धिय।
जजि माइ देव भजि तैल जब फबि बरात जस सर फलिय।
इम अप्प बरस तेरह उदित चित्त मुदित व्याहन चलिय ॥३ ॥

सचिव लोग खच्चरों, ऊँटों और बैलगाड़ियाँ भर-भर कर सामग्री मँगवाने लगे। सभी ओर देश, परदेश में व्यवहारिक पत्र भेजे जाने लगे। निमंत्रण भेजे जाने लगे। लग्न मुहूर्त के निकट आने पर राजा के सारे सामंतों ने उपस्थित हो कर अपनी हाजरी दी। गणेश पूजन से विवाह समारोह का आरंभ हुआ। राजा के हाथ में कांकण डोरड़ा (कंकन) बंधा। माईदेव (माया) की पूजा हो कर दूल्हे राजा को तेलवान चढ़ाने की रस्म अदा की गई। सुन्दर बरात सज्जित हुई और मुदित मन से तेरह वर्ष की वय वाले राजा रामसिंह ने विवाह के लिए प्रस्थान किया।

मुक्तादाम

चढ्यो प्रभु चक्र बिशिष्ट बरात, सबै जन कुंकुम चैल सुहात।
करी मदमत्त चले सह केक, सजे जनु कज्जल अद्रि सटेक ।।४ ।।

जथाकुल भद्र मृगादिक जात, झरैं मद ज्यों झरनाँ गिरिगात।
चले कतिमक्कुन उद्धतव्याल, किते कलभाभिधबिक्क बिसाल ।।५ ।।

महाजव जुत्थप मैंगल मत्त, रहैं मग इष्ट बसा सुख रत्त।
अयोमय अंदुक लंब लगाइ, जरे डगबेरिन जेर न जाइ ।।६ ।।

गहैं नर बेणुक प्रेरत गैल, डिगै डग डाकनै चैंक चरैल।
अपष्टन घात समुद्धुर अंग, सजे हुव हाटक होदन संग ।।७ ।।

राजा रामसिंह की बरात सहित सेना चढ़ी। सभी लोग केसरिया बाने में सुशोभित होने लगे। कई मदमस्त हाथी चले मानों काजल के पर्वत सज्जित हो कर जा रहे हों। ये हाथी भद्र और मृग कुलों में उत्पन्न हैं अर्थात् नस्लदार हैं। जिनसे पर्वत के झरने के समान मद झरता था। इनमे से कई मुकने बिना दाँत वाले हाथी और कितने ही उद्धत तिरछी घात करने वाले थे। उनके साथ कई कलभ नाम के छोटे बच्चे और कितने ही बड़े बच्चे (हाथियों के) चले। इन हाथियों में से कई तो बड़े वेगवान यूथपति, कई मदकल, कई सामान्य रूप से मस्त, कई आगे हथिनियों के चलते सुखी चाल से चलने वाले हैं। लोहे की लंबी जंजीरों से जकड़े हैं तब भी नहीं बंधे होने के समान चलने वाले हैं। इनको पीछे से हाँकने के लिए भाले लिये हुए मनुष्य इन्हें प्रेरित करते हैं और इसके लिये वे इन हाथियों को क्रोध दिलाने को छोटे-छोटे घाव लगाते हैं जिनसे चिड़ने वाले ये क्रोध कर आगे कदम बढाते हैं। कई अकुंश के अग्रभाग की घात से चलने वाले हाथी हैं जो स्वर्णनिर्मित होदों से सज्जित हैं।

महावत बीत घुमावत मत्थ, हठी फटकारत भोरन हत्थ।
परे कुथपट्ट जरी मय पिट्ठी, हवाइन हाकन नोदत निट्ठि ।।८ ।।

बहैं खग सिंचत जे बमथून, जगैं जिन लोचन खून जनून।
कलापक कंठ मिले मखतूल, मरोरत जाखिन साखिन मूल ।।९ ।।

दु दंतन कानक बंगर बेस, बजैं लगि घंटन घोर बिसेस।
तनै तनुहिंगुलु त्यौं हरिताल, जथा ऽवर गातन भात जँगाल ॥१० ॥

उठावत पोंगर दान अमान, पटावत पच्छिन लैन प्रमान।
बढे अग उच्छ्रय मेचक बर्ण, करैं चल सुप्प समाकृति कर्ण ॥११ ॥

महावतों के हुलनों (पाँव की ठोकर देना) से प्रेरित ये हाथी अपना मस्तक हिलाते हैं और चलते-चलते ही अपनी सूंड से मस्तक पर मंडराते भ्रमरों को फटकारते हैं। जिनकी पीठों पर रेशमी और जरीदार झूलें पड़ी हैं। ये हाथी ललकारों और बारुदी धमाकों से भी बमुश्किल तमाम प्रेरित होते हैं। चलते हुए ये अपनी सूंड से जलकण उड़ा कर उड़ते हुए पक्षियों को सींचते है और जिनके नेत्रों में क्रोध का खून (जनून) जागता है। जिनके कंठों पर रेशम के कलावे बंधे हैं ये हाथी चलते हुए राह में खड़े वृक्षों को मरोड़ते (उखाड़ते) जाते हैं। इन हाथियों के दोनों दाँतों में स्वर्ण के उत्तम बंगड़ लगे हैं और इनके गले में बंधे गजघंट चलने पर विशेष रव के साथ बज उठते हैं। किन्हीं हाथियों के शरीर पर हिंगलू और हरताल से चित्रकारी की गई है तो कई के गात जंगाल से शोभित हैं। ये जब चलते-चलते अमाप मद से अपनी सूंड के अग्रभाग को उठाते हैं तब ऐसा लगता है मानों ये ऊपर उड़ते पक्षियों की चेष्टा करते हों। ऐसे काले रंग के ऊँचे पर्वत अपने सूपाकार कानों को चपल गति से हिलाते बढ़े।

अगद्दग बाँनि बले अतिकाय, चले इम सामज कामज चाय।
खरे रचि राजिय बाजिय खेल, मलगंत ताजिय राजिय मेल ॥१२ ॥

भये भुव बाल्हिक कच्छ बनायु, सअर्ब इरान हिरातज सायु।
तुखार इराक रु तिब्बत चीन, किते घट कच्छ रु बंग कुलीन ॥१३ ॥

किते सित नील हलाह कुलाह, सुनावत सादिन ओरन बाह।
नचैं बजि प्रोथन आनिल नाद, बढैं गति पंचक अंचक बाद ॥१४ ॥

लसैं छबि चम्मर डम्मर लूम, घलैं कर मंडत घुम्मर घूम।
घनैं रय व्हैंन कसा अवघात, झरैं खुरतारन अग्गि अलात ॥१५ ॥

सांटमारों की 'अगछग' वाणी से आगे बढ़ने वाले ये हाथी कामना की चाहत से चले। उधर खेल दिखाते (करतब करते) घोड़े भी पंक्तिबद्ध हुए और कूदते हुए घोड़ों का उस पंक्ति में खड़े घोड़ों से मिलाप हुआ। ये घोड़े

बाल्हिक, कच्छ, बनायु, अरब, इरान, हिरात, तुखार, इराक, तिब्बत, चीन, बंगाल आदि देशों में उत्पन्न कुलीन जाति वाले (नस्लदार) है। इन में से कई श्वेत, नीले, अबलख, रंग वाले हैं तो कई पीले रंग के, जिनके घुटने काले है। इनके चलते समय सवारों को इनकी चाल की प्रशंसा दूसरे लोगों द्वारा की गई सुनाई देती है। नाचते समय इन घोड़ों के नासाछिद्रों से आती-जाती साँस (पवन) की ध्वनि होती है सो मानों यह अपनी पाँचों प्रकार की चालों से पवन से होड़ करने की ध्वनि हो। इनकी पूँछ चँवर के आडम्बर जैसी शोभा देने वाली लगती है जब ये घूमर में घूमते हैं। अपनी तेज गति वाली चाल के कारण इन पर चाबुक का प्रहार नही होता और इनके पाँवो में लगी खुरतालों से चलते समय टकरा कर पत्थरों से निर्धूम अग्नि निकलती है।

समीर करैं जिनतैं अनुसार, परैं उडि पानि पचीसन पार।
मजे कसि खंध कबी मुख सच्च, नचैं पय चातुरि पातुरि नच्च॥१६॥

तुले समभाग कुसा मखतूल, फबैं गल चोसर हाटक फूल।
खरे मुख आयस पक्क खलीन, जरे जरजाल बिराजत जीन॥१७॥

बनी पय नाल ठनी गजबेल, खनंकत नेउर तंडव खेल।
गुथे घन घुम्म उडैं गजगाह, बनैं स्वरगच्युत गंग प्रवाह॥१८॥

किते अहिपेच पटी गति काव, फिरैं पटु आदसफूल फिराव।
भुजंगन साव सटा तति भास, करैं मनि ज्यौं मनिगुंफ प्रकास॥१९॥

पवन इन तेज गति से चलते घोड़ों का अनुसरण करता चलता है बराबरी नहीं कर सकता क्योंकि जब ये उड़ान (छलांग) भरते हैं तो पवन से भी पच्चीस हाथ आगे पहुँच जाते हैं। इन घोड़ों के कंधे कसे हुए और सज्जित हैं। ये अपनी मुँह की लगाम के सच्चे (अर्थात आज्ञाकारी) जब नृत्य करते हैं तो अपने पाँवो की चतुराई से पातुरी गणिका की नकल करते हैं। इनकी गर्दन के दोनों और बराबर तोल वाली रेशम की बाग है और इनके गलों में स्वर्णनिर्मित फूलों की मालाएं शोभा देती हैं। जिनके मुँह में पक्के खरे लोहे की लगामें लगी हैं और जो जरीदार (जालीवाले) जीनों से शोभित हैं। पाँवो में ठुकी नालों से गजब के बनेठने लगते हैं, दूसरे अर्थ में लोहविशेष की (गजबेल) नालें पाँवों में लगी है और नाचते समय पाँवों में बंधे नूपुर (नेवर)

बजते हैं। ये जब घुमते हैं तो इनके श्रृगांर में लगे गूंथे हुए गजगाह उछलते ऐसे लगते हैं जैसे स्वर्ग से गिरती गंगा का प्रवाह अथवा गंगा की धारा हो। इनमें से कई घोड़े नागपेच (चाल विशेष), पट्टी (शीघ्र दौड़) सर्पट चाल से चलने वाले हैं तो कई कावा (गोलाकार वृत में) में अपनी चतुर धीमी दौड़ आदसफूल से घूमने वाले हैं। इनके गले पर गूंथी हुई केशावली की लटें सर्प के बच्चों की तरह गति करने वाली है और इन लटों में गूंथी हुई मणियां ऐसी लगती है मानों इन सर्पो की मणियां चमक रही हों।

लसैं बपु बोधि तरुच्छद लोल, कनीनिय कै गनिका दृग गोल।
करैं छबि नौंक कढे जुग कर्ण, प्रदीप सिखा किमु केतकपर्ण ॥२० ॥

अमेय तरोगति निम्न अलीक, भुलावत जे सिबिका भरि भीक।
महामृदु लोम जथा पसमीन, बटा नटके जिम झंप प्रबीन ॥२१ ॥

अटैं झुकि बक्र हयच्छट अच्छ, मुरैं छक बिंजक ज्यौं दक मच्छ।
किंधौं सर्फ आयस कांत कटोर, उडैं अति अंबर जुब्बन जोर ॥२२ ॥

थरक्किहिं अक्किहिं संभ्रम थप्पि, बहैं सुख बग्गहिं मग्गहिं मप्पि।
जवाधिक रथ्य किते जुग जुत्त, मनोरय पानिय पावक पुत्त ॥२३ ॥

इन घोड़ों के पुठ्ठे पीपल के पत्तों के आकार में शोभा देने वाले हैं इनकी कनोती मिलने पर ऐसी गोलाकार लगती है मानों किसी गणिका के नेत्रों की गोल पुतली हो। अलग-अलग देखने पर इनके कानों की नोकें किसी दीप की शिखा सी नजर आती है या कि केतकी के पर्ण हों। अमेय शीघ्रता वाले इन घोड़ों के ललाट दबे हुए हैं। ये जब अपनी भीक (चाल विशेष) चाल में चलते हैं तो सवारों को ऐसा आराम महसूस होता है कि वे पालकी की सवारी के मजे भूल जाते हैं। पसमीने की तरह अत्यन्त कोमल केशवाले ये घोड़े नट के लड़के (छोकरे) की तरह कूदने में प्रवीन हैं। उत्तम झुके हुए टेढ़े कंधों वाले ये घोड़े जब पूरी गति से मुड़ते हैं तो उनकी छटा ऐसी लगती है मानों पानी में मछली लहराती हुई आगे बढ़ रही हो। सुन्दर लोहनिर्मित कटोरों जैसे खुरों वाले ये घोड़े अपने यौवन के जोर से ऊपर उछलते हुए ऐसे लगते हैं जैसे ये आकाश में उड़ने को तत्पर हों। थिरक कर चलते समय सूर्य को भी संभ्रम में डालने वाले ये घोड़े राह पर बढ़ते हुए ऐसे

लगते हैं मानो ये अपनी बागों से मार्ग को नापते जा रहे हों। सवारों से विहीन कुछ तेज गति वाले घोड़े ऐसे भी हैं जो दो-दो के जोड़े में रथों में जुते हैं। इनके वेग से ऐसा प्रतीत होता है मानों ये जल और अग्नि के पुत्र हों।

सुहात चले इम अब्ब समूह, जथा सुख मंद न स्यंदन जूह।
बरप्रधि नाभि सकूबर चक्र, बनैं जुग चंदन संभव बक्र ॥२४॥

प्रभाकर जे जर जाल पिनद्ध, बहैं धुर उद्धुर रेसम बद्ध।
लगे अनुकर्ष बरूथ बिधेय, रजे पथ यौं रथ गोरथ गेय ॥२५॥

चली बहुधा सिबिका सुखपाल, चले बहु भोलि बजावत गाल।
क्रमें सह जन्य सु धन्य कुलीन, हजारन दान कृपानन हीन ॥२६॥

भरैं नग भूखन जोति जराय, कसैं सब हेति गिनैं तृन काय।
भले भुज हत्थिन ठिल्लनहार, अहो कर आसुग पाय पहार ॥२७॥

जहाँ राजा की बरात में ऐसे घोड़ों के समुह शोभित हो कर चले वहीं साथ ही आरामदायक रथों के समूह भी बढ़े। इन रथों की उत्तम पूठियाँ (बरप्रधि) नाही (नाभि) और पीनणी (सकूबर) वाले पहिए हैं और चन्दन की लकड़ी से बने जूवे हैं। कांतिदायक जरी की जालियों से सुशोभित इन रथों के अग्रभाग (उद्धुर) जूवे के साथ रेशम से बनी रस्सियों से बंधे हैं। मजबूत ओदणों (रथ के नीचे के आधारभूत काष्ठ) और रथ कवचों (शत्रु के प्रहार से बचने को लगी लोहनिर्मित जालियों) से सजे ऐसे रथ मार्ग को सुशोभित करते बढ़े। इनके अतिरिक्त कई बैलों से खींचे जाने वाले रथ भी बढ़े। रथों के साथ कई पालकियाँ और सुखपालें भी चलीं। उनके पीछे गाल बजाते हुए ऊँट बढ़े। इन सवारियों में कुलवान और समृद्ध हजारों बराती सवार थे। जो दान और कृपान से हीन न थे अर्थात वीरता और वदान्यता में बढ़ कर थे। ये बराती रत्नजटित आभूषणों से सजे-धजे अपने-अपने शस्त्रों को कसे हुए स्वयं के शरीर को तृणवत गिनने वाले थे। इनमें से कई अपनी मजबूत भुजाओं से हाथियों को ठेलने वाले वीर थे जिनके हाथ आश्चर्यजनक ढंग से हिलने में पवन से होड़ करने वाले और पाँव पहाड़ की तरह अचल थे (जो रणभूमि में अपनी जगह से पीछे हटना सीखे ही नहीं थे)।

कहें ऋत तूटि परो किन सीस, निहारत इक्क बकारत बीस।
सजे कछवाह कमंधज सत्थ, तृना हित ता दव जादव तत्थ ॥२८॥

मिले बडगुज्जर झल्ल प्रमार, हिले गहिलोत तथा प्रतिहार।
उमंगत चालुक के चहुवान, स जावल सैंगर बैस सुजान ॥२९॥

बली धनुउत्कट गोर रु बिंद, महारन सत्रु गइंद मइंद।
रमै खुरली पटु सद्धि कृपान, बढे बिन बेधत के नभबान ॥३०॥

लहैं कति लच्छ्य तुपक्कन तक्कि, छजैं कति कुंतन संगिन छक्कि।
कटार गदा इलिका छुरिकादि, बढे रमते इम सस्त्रन बादि ॥३१॥

राजा की बरात में चल रहे इन वीरों के लिए सत्य ही कहा जाता है कि ये रणभूमि में अकेले अपने बीस-बीस शत्रुओं को एक साथ ललकारने की सामर्थ्य रखते हैं। बरातियों में ऐसे कछवाहे, राठौड़ थे तो अपने तृण रूपी शत्रुओं को जलाने वाली अग्नि रूप यादव थे। इनमें बडगुज्जर, झाला, प्रमार, गुहिलोत, प्रतिहार, चहुवान, जावल, सैंगर, बैस वंशीय सामन्त योद्धा थे, वहीं उमगते चालुक्य, चावड़ा, गौड़, और बिंद भी थे जो बड़े-बड़े युद्धों में शत्रु रूपी हाथियों को ढाहने वाले सिंह थे। इन वीरो में कई शस्त्राभ्यास के दौरान कटारी चलाने में चतुर थे तो कई नभचर पक्षियों को अपने तीर से बेध डालने में समर्थ थे। कई अपनी बन्दूक से छोटे से लक्ष्य को बेध कर गिराने वाले तो कई भाला और सांग चलाने में सिद्धहस्त थे तो कई कटार, गदा, इलिका, और छुरिका चलाने में निष्णात थे। राह में ये वीर अपने शस्त्राभ्यास का प्रदर्शन करते बढ़े।

चले झपटावत बाजि नचाय, किते उडि लंघत हत्थिन काय।
टरैं झपटावत है लपटाइ, जवी कति हत्थिन पैं कढि जाइ ॥३२॥

सजे इम सूर चले प्रभु संग, बन्यौं बर भूबर ओप अनंग।
सजी सिर कुंकुम पुंजित पग्घ, नव ग्रह गोसिखपट्ट अनग्घ ॥३३॥

महामनि पंचसिखि तिम मोर, जर्यो तूररा रु किलंगिय जोर।
लगी मृगनाभि त्रिरेख ललाट, लसैं श्रुति कुंडल झल्ल तलाट ॥३४॥

हसैं मनि पंच प्रपंचक हार, दिपैं भुज अंगद ओज अपार।
बनैं मनिबंध अनर्घ अवाप, छजैं करसाख महोर्मिक छाप ॥३५॥

बरातियों में कई वीर अपने घोड़ों को नचाते बढ़े तो कई उन्हें सरपट भगाते चले। कई अपने घोड़ों को उड़ा कर (झपटा कर) हाथियों को लांघते

बढ़े। कई अपने अत्यंत वेगवान घोड़ों को पलटा कर यों बढाते कि वे आगे हाथियों को कूद जाते। ऐसे सजेधजे वीर अपने स्वामी के साथ बरात में बढ़े। राजा दूल्हा भी साक्षात कामदेव की शोभावाला था जिसके सिर पर केसरिया रंग से रंगी पगड़ी थी और उस पर नवरत्नों से जटित पाँच कलंगियों वाला अमूल्य शिरपेच बंधा था। पाँच मयूर मंडा मोड़ बंधा था और उसके साथ पगड़ी में तुर्रे और कलंगियें शोभा दे रही थीं। ललाट पर कस्तूरी तिलक की तीन रेखाएं चमक रही थीं और कानों में गालों तक नीचे बड़े-बड़े कुण्डल शोभायमान थे। गले में पँचलड़ा हार शोभा पा रहा था तो भुजबंधों की छटा ही न्यारी थी। पोंचे में मनिबंध और बहुमूल्य कंगन दूल्हे की ओप बढ़ा रहे थे वहीं हाथों की अंगुलियों में मोहरछाप अंगूठियाँ फब रही थीं।

रह्यो फबि कंचुक जागुड़ रंग, सटी समलंक कस्यो अधिकंग।
धस्यो सित सानधुप्यो इक धार, कस्यो निज पत्तनजात कटार ॥३६॥

बन्यौं बर खेटक पिट्ठि बिसाल, मनों कनकाचल पैं घनमाल।
सु शृंखल सोहिर गोहिर संग, अलंकृत अंघ्रिन अंगुलि अंग ॥३७॥

छयो मनिमंडित दंडित छत्र, प्रबीजीत चामर बर्ह पतत्र।
चल्यो बनि रूच्य इभेंद्र अरोहि, सु ज्यों सतसत्र घनद्विप सोहि ॥३८॥

समै सिसिरोत्तर पक्कत सस्य, तपागत कल्प रु गम्य तपस्य।
नकीबन संकुल लग्गि ललक्क, चल्यो इम राम धराधवचक्क ॥३९॥

दूल्हे राजा ने अपने शरीर पर केसरिया रंग का जामा (बागा) पहना था और सिंह जैसी कटि पर कमरबंधा शोभायमान था जिसमें (सान पत्थर पर धार लगा कर) एकधार वाला खड्ग बंधा था। पास ही अपने नगर बून्दी की बनी कटारी शोभा दे रही थी। दूल्हे राजा की पीठ पर बंधी बड़ी ढाल ऐसी लग रही थी मानें कनकाचल पर्वत पर काली घटाएँ उमड़ी हों। पाँवों में गिरीयों पर सुन्दर पगसाँकले बंधे थे और उनसे ऊपर पहने स्वर्ण लंगर की छटा अलग ही थी। वहीं पाँवों में सारी अगुंलियाँ भी अंगूठियों से अलंकृत थीं। राजा के सिर पर मणिमंडित छत्र शोभा दे रहा था तो दूल्हे को चँवर और मोरछल (वर्ह) से हवा की जा रही थी । इस तरह सजा धजा दूल्हा राजा गजराज पर आरूढ़ होकर चला जिसे देख कर लगा मानों ऐरावत पर सवार

स्वयं इन्द्र जा रहा हो। शिशिर के अंत में खेतों में यह फसलों के पकने का समय था और माघ माह की समाप्ति पर गमन करने योग्य फाल्गुन मास की आमद थी। बरात के समूह के आगे चलते नकीबों नें ऐसे समय में ललकार की और भूपति रामसिंह की सेना बरात ने प्रस्थान किया।

दिसा बिदिसा न निसानन नद्द, बजे सिर भेरिन कोन बिहद्द।
दुघाँ दल अग्ग रु पिट्ठि दिपात, बनैं अति ओपन तोपन ब्रात।।४०।।

बटीनट भंड नटी बहुरूप, भये गन गैल रिझावन भूप।
अधीसहु दै तिन्ह इष्ट अछेह, महा बसु बिदुंन बुट्ठत मेह।।४१।।

सारी दिशाएँ बड़े-बड़े नगाड़ों के बजने से निनादित हो उठीं। भेरियों पर डाके पर डाके बजे। पूरी सेना अपने अग्रभाग से लगा कर पृष्ठभाग तक शोभायमान हुई और तोपों के समूह ने अपनी कांति बिखेरी। नट, नटी, बहुरूपिये और भांड अपने तमाशों के साथ आगे चलते हुए मार्ग में राजा का मनोरंजन करने लगे। राजा भी उन्हें मनोवांछित इनाम देने को धन की बड़ी-बड़ी बूंदों से मेघ की तरह बरसता रहा।

षट्पात्

प्रति मुकाम क्रम प्रचुर सुकवि पंडित सनमानिय,
सह बरात मह सुलह दिपत प्रस्थित तह द्रानिय।
पणव स दुंदुभि ढोल मुरज ढक्का गोमुख मुख,
वृंहित हेंसा बिबिध तुमुल घन तनित रनित रुख।
रुचि भाग राग गायक रचत भनत बंदि भोगावलिय।
मारीच हिरद आतहि महिप चतुर रूच्य व्याहन चलिय।।४२।।

बरात के प्रत्येक पड़ाव पर बहुत सारे कवि-पंडितों को सम्मान दिया जाता। सभी पड़ावों पर उत्सव मनाया जाता जिनमें वह दानवीर शोभित होता। इस उत्सव के अवसर पर विविध वाद्ययंत्र यथा पणव, दुदुंभि, पटह, (ढोल) मुरज, ढक्का (ढाक) गोमुखा आदि बजाये जाते। इन वाद्यों की गूँज के मध्य हाथियों की गर्जना और घोड़ों की हिनहिनाहट मिल कर, पूरे वातावरण पर इनका मेघ गर्जना जैसा रव छा जाता। सारी दिशाएँ गूँजायमान हो जातीं। वाद्ययंत्रों के अतिरिक्त गायक सुन्दर सुन्दर राग रागनियाँ छेड़ते और

भाट लोग स्तुतिगान करते। ऐसे माहोल में राजा की अपनी सवारी के मुख्य हाथी मारीच के होदे पर आरूढ होते ही लगता कि चतुर दूल्हा हाड़ा राजा रामसिंह विवाह करने जा रहा है। अर्थात बरात के प्रस्थान से अगले पड़ाव तक ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

फुट्टि फुट्टि हय खुरन गिरिन पाखान गरद मिलि,
छुट्टि छुट्टि छितिसंधि सिथिल भोगीस सीस झिलि।
तुट्टि तुट्टि तरु दुगम पृथुल पद्धति हुव पद्धर,
कुट्टि कुट्टि बत बज्ज कोन गत गज्ज दिगंतर॥
बित्थरि बखान जस दिस बिदिस बिदित बत्त हुव नर नरन।
बुंदीस बिंद पहु जोधपुर क्रमत अज्ज उपयम करन॥४३॥

इस जंगी सेना रूपी बरात के प्रयाण में हाथी घोड़ों के चलने से, उनके खुरों से टकरा-टकरा कर पहाड़ पत्थर होने लगे और पत्थर चूर्ण हो कर गर्द में मिलने लगे। विशाल सेना के संचलन से पृथ्वी के बंध शिथिल होने लगे और काँपती धरती को अपने फणों पर उठाये शेषनाग विचलित हो उठता। दुर्गम रास्ते के किनारे पड़ने वाले पृथुल पेड़ टूटने लगे और दुर्गम राह एकदम सीधी सपाट होने लगी। नगारों पर पड़ते डाकों से उनके बजने की ध्वनि और हाथियों की गर्जना दिग्-दिगंतर तक पसरने लगी। सभी और यश फैलने लगा और परदेशों में नर नारियों में यही चर्चा आम हो गई कि बून्दी का राजा दूल्हा रामसिंह आज अपना विवाह रचाने जोधपुर की राह पर बढ़ता जा रहा है।

गजन फरकि बहरक्क थरकि गन गगन बिराजत,
छोनी बमथुन छिरकि झर कि भद्दव घन साजत।
बरकि दड्ढ बाराह लरकि फनमाल नाग इन,
धरकि धरकि भय घुज्जि दरकि उर असह अरातिन।
गढ गढन संक अंतर उपजि करत मंत्र मंत्रिन कतिक।
कुलरीति गीति हड्डुन कहत समिति व्याह उच्छाह इक॥४४॥

राजा दूल्हे की बारात में चलते हाथियों की पीठ पर लगे बड़े-बड़े ध्वज फहर कर आकाश की छवि सुन्दर करने लगे। हाथियों द्वारा अपनी सूंडों से उछली जल कणिकाओं से भूमि पर छिड़काव सा होने लगा और

ऐसा लगने लगा कि जैसे भाद्रपद माह में वर्षा की झड़ी लगी हो। जंगी सेना रूपी बरात के चलने से पृथ्वी पर अचानक बढ़े भार से वराह की दतुंलें दरकने लगीं और शेषनाग की फणमाल लचक उठी। शत्रुओं के हृदयों में असह्य भय की पीड़ा समा गई और उनके कलेजे धड़क-धड़क करने लगे। रास्तें में पड़ते गढ़ों किलों में तरह-तरह की शंकाएं उपजने लगीं और इसे लेकर सचिव अपने स्वामियों से मंत्रणा करने में संलग्न हो गए क्योंकि इन हाड़ाओं की कुलरीति कहती है कि उनके लिए युद्ध और विवाह का उत्सव एक जैसा होता है।

गरद अक्क अच्छदिय सरद घन जरद सोम जिम,
तोम गगन तोमरन प्रदर पुंखन कलाप तिम।
भजत भजत बनजंतु कटक अंतर थकि छुट्टत,
कति कमनैतन करन सरन बिकिरन बपु फुट्टत।
इभ पिठ्ठि अप्प बिरुदन सुनत भनत दैन रंकन बिभव।
सुरनाह राह अतिछबि अटत रटत जलेब नकीब रव॥४५॥

जिस तरह शरद ऋतु के बादल चन्द्रमा को जर्द कर देते हैं उसी तरह सेना रूपी बरात के चलने से उड़ी धूल ने आकाश को आच्छादित कर सूर्य को ढक लिया। जिस तरह बाणों पर लगे पंखों से तुणीर भर जाता है उसी तरह भालों के समूह से आकाश भर सा गया। सेना के प्रयाण के हल्ले से घबरा कर वन के जीव-जंतु इधर-उधर भाग कर थकते हुए सेना में आ पड़ने लगे। धनुर्धरों के बाणों से नभचरों के गात बिंधे जाने लगे। हाथी की पीठ पर आरूढ राजा अपने विरुद सुन कर रंक जनों को धन देने की आज्ञा देने लगा। इन्द्र की तरह छवि देता हुआ दूल्हा राजा रामसिंह बढ़ा जिसके आगे छड़ीदार 'चलो-बढ़ो' की ध्वनि गूंजायमान करते चले।

उलटि उलटि दल ओट पवन मंडत प्रत्यागम,
सुगम हरोलन सलिल दुगम चंदोलन कर्दम।
आसपास इहिँ चास त्रास मेवासन पत्तिय,
हेतुन हास हुलास बास सेतुन गुन बत्तिय।
सुनि धन्य धन्य सूचक सुजस जन्य जनन अति मोद इत।
प्रति ग्राम गाम बंधत कलस धाम धाम मंगल महित॥४६॥

इस जंगी सैन्य समुह की ओट पाकर पवन टकरा-टकरा कर पलटने लगा। सेना की विशालता का आलम यह था कि बरात के हरावल में चल रहे लोगों को पीने का पानी उपलब्ध होता वहीं चंदावल में चलते लोगों को उस स्थान पर पहँचने पर मात्र कीचड़ ही मिलता। राजा के प्रयाण की इस खबर से लुटेरों-चोरों के घरो में भय व्याप्त हो गया। वहीं मित्रों के घरों में हर्ष की लहर दौड़ गई और हाड़ा राजा के गुणों के बखान भूमि की सीमा तक होने लगे जिन्हें सुन कर लोग धन्य हो गए, वे पूरे सुयश को सुन कर मुदित होने लगे। रास्तें में आते प्रत्येक गाँव-ढांणी में जगह-जगह मंगल गीतों की धुनों में कलश बधाये जाने लगे अर्थात् प्रत्येक राह के गाँव की स्त्रियाँ कलश ले कर मंगल गीत गाती दूल्हे राजा के स्वागत को आने लगीं।

भागधेय भौमिकन निकर लैलै प्रताप नत,
उपहित अंजलि आत नात सिर भेट निवेदत।
कहत नाथ किंकरन पूत करि ओदन पानिय,
मंडहु उचित मुकाम मन्नि स्वीकृत महमानिय।
बिसवासि मिष्ट बैनन बरहु मन्नी हम सूचत मुदित।
मगजाल जुरत आवरि मनुज होत निछावरि परम हित॥४७॥

राजा के प्रताप के आगे नतमस्तक हो छोटे-छोटे जागीरदार खिराज ले लेकर सामने आने लगे। वे हाथ जोड़ कर अंजलि सहित मस्तक झुका कर नजराना देते और निवेदन करते कि हे नाथ! हम किंकरों का अन्न पानी ग्रहण कर पवित्र बनाएँ और इसके निमित्त आज अतिथि रूप यहीं ठहरें। ऐसी मनुहार सुन कर मीठे वचनों से उन्हें भरोसा बंधाते राजा कहता कि मेहमान बन कर ठहरने की आपकी मनुहार से मेरा मन प्रसन्न हुआ! वहीं रास्ते के दोनों ओर पंक्तिबद्ध हो कर लोग खड़े हो जाते और अपने हित की सोच कर वे मुदित मन से राजा को निछरावल करते।

दोहा

प्रतिमुकाम सचिवन प्रकर, गोनिन रुप्पय गेरि।
पट भूखन हय मय प्रचुर, हाजरि रक्खत हेरि॥४८॥
जहँ मिश्रन प्रभुकवि जनक, चारन मनि कवि चंड।
भट्ट रतन बंटत भये, ए दुव त्याग अखंड॥४९॥

इच्छित धन इम कविकुलन, मिलत मुकाम मुकाम।
सुनत त्याग जस संक्रमिय, रूच्य मुकुट प्रभुराम ॥५० ॥

बरात के प्रत्येक पड़ाव पर सचिवों का समूह गोणियों (नोलियों)को फिर से रुपयों से भरने लगता। आभूषण, वस्त्र, (शिरोपाव), घोड़े, ऊँट आदि प्रचुर मात्रा में इकठ्ठे कर तैयार रखते जिससे राजा किसी को इनायत करे तो उसे देने में आसानी हो। प्रत्येक पड़ाव पर होते उत्सव के समय हे राजा रामसिंह! आपके कवि सूर्यमल्ल मीसण के पिता चारण-मणि चंडीदान मीसण और रतन भाट ये दोनों याचकों को निरंतर त्याग (विवाह का इनाम स्वरूप दान) बाँटने में व्यस्त रहते। इस तरह कवि कुलों अर्थात चारणों को बरात के प्रत्येक पड़ाव पर इच्छित राशि मिलने लगी और त्याग का यश सुनते हुए दूल्हा राजा रामसिंह अगले पड़ाव के लिए प्रयाण करने लगा।

घनाक्षरी

प्रथम पगाराँ दिय देवली मुकाम दूजो,
केकरी तृतीय सरवार चोथो जसकाम॥
रामसर श्रीनगर कावरि यों बीच रहि,
अष्टम सु पुष्कर भो न्हांन दान अभिराम॥
अल्हनादिआवास रु मेरता निबसि ऐंसैं,
बोरुंदा पीपाड़ नैर बीसलपुर स नाम॥
अध्व इम खंधावार तेरह बिरचि आप,
धन्यता धुरंधर निरायो नृप मान धाम॥५१ ॥

बून्दी से प्रयाण कर सेना रूपी बरात का पहला मुकाम पगारां नामक गाँव में हुआ, वहीं देवली में दूसरा। इसके आगे केकड़ी में तीसरा पड़ाव और यश अर्थी राजा ने चौथा मुकाम सरवाड़ में किया। आगे क्रमशः रामसर, श्रीनगर, और काबरी में डेरा करते हुए राजा की बरात के काफिले ने आठवाँ मुकाम पुष्कर पहुँच कर किया जहाँ उसने पवित्र झील में स्नान कर ब्राह्मणों को सुन्दर दान दिया। यहाँ से चल कर आलनियावास में राजा ने अपना नवमाँ पड़ाव कर दसवाँ मुकाम मेड़ता में किया। यहाँ से आगे चल कर बोरूंदा, पीपाड़, और बीसलपुर में रात्रि विश्राम करते हुए राजा ने पूरे मार्ग में कुल

तेरह मुकाम कर अन्ततः जोधपुर के धुरंधर राजा मानसिंह के निवास को नियराया अर्थात् राजा जोधपुर पहुँचा।

षट्पात्

किय मग बिच कासार इक्क रानिय सेखाउति,
आवन सम्मुह अवधि सौंहि निश्चित उक्ति रु श्रुति।
अब तासौं बढि अधिक पैंड संख्या असीति पर,
समुह आइ नृप स्वसुर मिल्यो मान सु बसुधाबर।
नालकी जान आरूढ नृप जुग हि कुलक्रम रीति जिम।
बिरचित बिधेय मोदित मिलि रु आये गम्य निकेत इम॥५२॥

रास्तें में एक शेखावत वंशीय रानी द्वारा निर्मित तालाब आया। उधर जोधपुर के राजा का अगवानी में जितनी दूरी तक सामने आना तय किया हुआ था वह इस तालाब तक आना था पर इससे भी अस्सी कदम वह और आगे आया और इस तरह वह श्वसुर राजा मानसिंह हाड़ा राजा के सम्मुख आ कर मिला। दोनों राजा स्नेहपूर्वक मिले और फिर अपने-अपने कुलों के रीति रिवाज निभाते हुए पालकियों में सवार हुए। पूरा काफिला चल कर निश्चित स्थान पर पहुँचा।

सौराष्ट्री दोहा

प्रथित जोधपुर पास, राईको उपबन रहत।
नृप बल जन्य निवास, किय तिहिं सिबिर प्रबंध करि॥५३॥
महलन गो नृप मान, सिक्ख बहुरि करि मग्गसन।
अंबरघर चहुवान, व्है कृत दान प्रविष्ट हुव॥५४॥
मिले स्वसुर जामात, सूचित क्रम जबतैं सरनि।
तबतैं द्वि गुन दिपात, जर झर बुट्ठो इंद्र जिम॥५५॥
महुर द्रम्म अति मान, ऐसे बिधि नभ उच्छलिय।
देखि पिहित जिम दान, कर लिय झेलि अजाचकहु॥५६॥

प्रसिद्ध नगर जोधपुर के पास ही अवस्थित राईका बाग में दूल्हे राजा के बरातियों और सेना के ठहरने की व्यवस्था थी। राजा मानसिंह ने वहाँ

शिविर के प्रबन्ध का निरीक्षण किया फिर राजा मानसिंह विदाज्ञा लेकर अपने महलों में गया और इधर चहुवान राजा लोगों को इनाम इकराम बाँटता हुआ बरात के डेरे में प्रविष्ट हुआ। रास्ते में श्वसुर और दामाद के मिलन होने के बाद तो आगे बढते हुए मार्ग में जो भी मिला उसे दुगुना प्राप्त हुआ क्योंकि राजा ने मेघ की बूंदों की तरह धन की वर्षा की। राजा मानसिंह ने दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्त्त तक रुपये उछालने की आज्ञा दी जिससे याचना नहीं करने वाले अयाचकों ने भी इस गुप्तदान के अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया अर्थात् उन्होंने भी उछलते रुपयें बटोरे।

इत संध्यादिक अंग, नित्य क्रिया के बिरचि नृप।
पावत समय प्रसंग, सज्ज भयो पुर संक्रमन॥५७॥

भरि जो लग अति भीर, रुच्य सदन बाहिर रही।
पाई संकट पीर, जिम तरउप्पर लब्ध जन॥५८॥

इभ मारीच अरोहि, पहु सज्जित अब समय पर।
मनमन जनजन मोहि, चल्यो बिवाहन लग्न चहि॥५९॥

जत्थ रिझावन जानि, सामग्री समुचित सहित।
अभिमुख मंडिय आनि, नटन गान पातुरि निकर॥६०॥

इधर बरात के डेरे पर हाड़ा राजा ने अवकाश पा कर नित्य कर्मो से निवृत हो संध्या आदि की और स्वयं पौशाक धारण कर सज्जित हुआ अर्थात् दूल्हा बना ताकि अब आगे जोधपुर नगर में संचरण किया जा सके। इस समय दूल्हे के डेरे के बाहर असंख्य लोगों की भीड़ जमा हो गई। इस दूल्हे को निरखने के लिए भीड़ के संकट से उबरने को लोग बाग पेड़ों पर चढ़ गए। ठीक समय पर दूल्हा अर्थात् हाड़ा राजा अपनी मुख्य सवारी के हाथी 'मारीच' पर आरूढ हुआ और जोधपुर नगर के देखने वालों के मन को हर्षित करता हुआ लग्न के समय पर विवाह करने नगर की गलियों से गुजरता हुआ महलों की ओर बढ़ा। इस समय दूल्हा और बरातियों के मनोरंजन की सभी नरह की सामग्री वहाँ मौजूद थी जिनमें गायन, वाद्ययंत्र और नृत्य करने वाले कलाकार थे। दूल्हे के हाथी के सम्मुख पातुरियों का समूह लोकरंजक नृत्य प्रस्तुत कर रहा था।

षट्पात्

पृथुल दारु पट्टिरिय कमन चित्रित लिपिकारिन,
अंस नरन थित अटन नच्च उप्पर पननारि।
तंडव पटु बय तरुन झोक रागन झुम्मावत,
चंडातक चल चरन घेर घुम्मर घुम्मावत।
श्रुति जाति ताल बादन कुसल मोहत तत गीतन सुमति।
आरोह ग्राम अंतिम अवधि ग्राम प्रथम अवरोह गति॥६१॥

वर निकासी के इस अवसर पर दूल्हे राजा के हाथी के आगे कई लोगों ने अपने कंधे पर काष्ठ निर्मित एक बड़ा सा तख्ता उठा रखा था जो रंगरंगीली सुन्दर पच्चीकारी और चित्रकारी से सज्जित था। इस तख्ते पर एक जवान वैश्या नृत्यरत थी जो नृत्यकला में निष्णात और राग की झोंक में सभी लोगों को झुमाने में सक्षम थी। नृत्य में कुशल, अपनी चपल मुद्राओं से दर्शकों को लुभाने वाली वैश्या तीव्रा से लेकर छोहनी पर्यन्त स्वरों के बाईस ही भेदों में राग की जाति और ताल की जानकार थी। वाद्य यंत्र बजाने में कुशल वह वैश्या अन्तिम ग्राम तक आरोह कर अपने सुर को अवरोह में प्रथम ग्राम पर उतारने लगी।

घुरि नेउरि घंटकिन झमकि सिंजित झहनावत,
बिधि क्रम ताल बढाइ बहुरि प्रतिलोम बनावत।
मिलि संक्रम मुच्छनन मोद निकसत नाद मय,
कंदुक अहि गति क्रमन चढत उतरत अलाप चय।
आनद्ध बितत बादन उचित मादन मुदित नरेस मन।
बसि वास आइ सायकबिसम निज निवास गावन नटन॥६२॥

उसके आभूषणों के बजने के साथ पाँव के नूपुरों की झनझनाहट गूंजने लगी तब उसने विधि-विधानपूर्वक क्रम से ताल को दुहरी,तिहरी, और चौहरी यथाशक्ति बढाया फिर चौहरी, तिहरी, दोहरी इस क्रम से ताल को प्रतिलोम बनाने लगी। इन तालों के मूर्छना पर मिल कर चलने से शब्दमय मोद। (सप्त स्वरों के उत्तर मंद्रा से लेकर व्याला पर्यंत इक्कीस मूर्छनाएं मानी गई हैं)। निकलने लगा। उस वैश्या के गायन में अलाप का समूह कभी

कंदुक (गैंद) की गति से आरोह, स्थिति और तब अवरोह पर आता तो कभी सर्प की चाल की तरह (अहिगति) से चलता हुआ आरोह, स्थिति और अवरोह को प्राप्त होता अर्थात् वह अपने अलाप के समूह को कभी कंदुक गति से तो कभी अहिगति से चढ़ाने-उतारने लगी। उसकी संगत में चर्म से मढ़े हुए घनवाद्य अर्थात् मृदंगादि और तंतुवाद्य अर्थात् सारंगी आदि बजने लगे। कामदेव को जागृत करने की सामर्थ्य रखने वाले ऐसे कृत्यों को निरख, सुन कर दूल्हा राजा प्रसन्न हुआ। वहीं विषमसायक अर्थात् कामदेव नृत्य और गायन रूपी अपने निवास स्थानों में आ बसा।

नाराच

तहाँ अलाप जाल बाल रुद्रताल तैं तन्यों।
अदोस घोस तोस पोस मालकोस उप्फन्यों॥
भुजंग जाइ ज्यों धुनाइ उद्ध छाइ थंभयो।
पिकारवा प टारि उच्चरयो छ मैं अंचभयो॥ ६३॥

बढाइ मंजु मुच्छना मिलाप माप बित्थरयो।
अधीन ग्राम तीन पीन इक्क इक्क उद्धरयो॥
झनंकि जंत्र तंत्र गोन झारि कोन झंझटैं।
अलीन आवलीन लीन मीनकेतु उप्पटैं॥६४॥

उस नायिका ने अलापों के समूह और रूद्रताल के सहारे अपने राग को विस्तार दिया। उसने निर्दोष घोषवाला और धीरज के साथ पोषित मालकोश नामक राग बढाया। फिर धीरे-धीरे भुजंग गति से लहरा कर राग को ऊपर ले जा कर ठहराया। इससे वह जैसे सर्वत्र व्याप्त हो गया। गायन में कोयल से होड़ लेने वाली उस वैश्या (गणिका) ने पँचम स्वर को टाल कर शेष छह स्वर में उच्चारण किया। यह एक आश्चर्यजनक बात हुई (कोकिलो रौति पंचनम् अर्थात् कोयल पंचम स्वर में बोलती है) क्योंकि पिकारवा अर्थात् पिक कोयल के समान आरव (शब्द) वाली ने पंचम स्वर छोड़कर गाया।

टिप्पणी :- १ रूद्रताल का लक्षण यह है कि जिसमें छठा ताल सम पा आता है और आगे के पाँच ताल विषम होते हैं। इसके आगे छह स्थान शून्य हों फिर पाँच ताल विषम हों इस तरह ग्यारह तालों के क्रम को रूद्रताल कहा जाता है। २. शास्त्रों में मालकोश राग की ऋतु शिशिर कही गई है और राजा का विवाह भी शिशिर ऋतु में हो रहा है इसलिए जागरूक और संगीत के जानकार ग्रंथकार ने समयानुरूप मालकोश राग का वर्णन किया है-**सम्पादक**

(वैसे मालकोश राग में पंचम स्वर का निषेध है)। फिर उसने सुंदर मुर्छना के मिलाप से राग के माप को फैलाया। उसने एक-एक स्वर के साथ तीन-तीन ग्राम निकाले। साथ ही उसने कोण (मिजराब) से वीणा के तारों को भी सुंदर ढंग से झनझनाया और स्वयं दृश्य से बाहर सी हो गई। वह तो पार्श्व में होकर अपने सखियों की पंक्ति में लीन हो गई पर श्रोताओं के कामदेव को जगा गई।

स रे ग मे ध ने निवेस छक्क छक्क संचरयो।
पकार दीन भो प्रखीन पंतिहीन ज्यौं परयो॥
स्वरच्छटाऽनुलोम व्है बिलोम तान संकरी।
भिदा अपोह सोहनी समस्त मोहनी भरी॥६५॥
स्वलोक घाँ दिपात छात जात राग श्रेणिका।
त्रिक प्ररोह रेल तीन मेलज्यौं त्रि बेणिका॥
घुरंत पाय घुम्मरी घमंकि घोर घंटिका।
उपंग चंग के बजैं मृदंग अंग अंटिका॥६६॥

संगीत शास्त्र में षड्ज (स), ऋषभ (रे), गांधार (ग) मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), और निषाद (नी) ये सात स्वरों की संज्ञा है। इनमें से छह स्वरों वाला राग मालकोश संचरित हुआ जिसमें पंचम स्वर दीन और अत्यंत क्षीण हो कर पंक्ति से बाहर हो वैसे ही पड़ा रहा वहीं अन्य स्वरों की शोभा अनुलोम और विलोम तानों से चली। अपोहनी आदि भेदों से शोभा देने वाली रागिनी ने सभी श्रोताओं के चित्त में मोहनी भर दी अर्थात् उनके मन को मोह लिया। रागों की पंक्ति थी जो मानों अपने लोक (गंधर्वलोक) की दिशा में बढ़ती, अपने लोक का दीप्त करती, वातावरण में छाती जा रही थी और तीनों ग्रामों की रेल तथा मंद्र, मध्य, तार इन तीनों स्वर भेदों के मिलन से त्रिवेणी बन खड़ी हुई। नृत्य में घूमर लेते समय उसकी पायल की रुनझुन सुनाई देने लगी। उपंग, भपंग, चंग और मृदंग जैसे वाद्ययंत्र घनघना उठे।

तथुंग थुंग तत्त थेइ-थेइ लेइ ताल पैं।
क्रमैं मतानु चुक्कि मान पै बिधान काल पैं॥
बनाव हाव भाव मैं रनंकि हत्थ बंगरी।
किधों पिकादि चंप झंप रोर सोरकी करी॥६७॥

ततो मुखेंदु तैं कढैं सती सिँगार तार सी।
ढरी बिनिद्र कंज तैं मनों मरंद ढार सी॥
पलट्टि अंग के झुकैं लचक्क लंक पैं परैं।
उरोज भार निट्ठि जो बली त्रिबंध उद्धरैं॥६८॥

नृत्य में 'थुंग-थुंग तत्त थेई-थेई' के अनुसार अपने पाँवों को ताल पर थिरकाती, राग के अनुसार चलती, वह नृत्य में पारंगत गणिका एक भी पाँव नहीं चूकती थी। नृत्य में हाव-भाव प्रदर्शित करते समय जब उसके हाथों की बंगड़ी (आभूषण-विशेष) 'रंनक' की ध्वनि के साथ बज उठी तो ऐसा लगा मानो चम्पे के वृक्ष की शाखा पर क्रीड़ा करते कोयल आदि (पक्षियों) ने रव (ध्वनि) किया हो। इस गायिका के मुख रूपी चन्द्रमा से अथवा इस चन्द्रबदनी गायिका के मुख से स्वरों की पंक्ति श्रेष्ठ श्रृंगार रस के तार की तरह निकलती ऐसी लगी मानो किसी विकसित कमल के मकरंद (पुष्परस) पर भँवरे पंक्तिबद्ध होकर उतर रहे हों। नृत्य करते समय जब यह पलटा लेती है उस समय झुके अंगों से इसकी कमर लचकती तब ऐसा लगता मानो इसके कुचों का भार बमुश्किल तमाम इसके पेट की त्रिवलि ने सहेजा हो।

क्रमैं अधोदुकूल फेर घुम्म घेर केणिका।
अंपाग गोल लोल ज्यों बिछोह टोल एणिका॥
उरोज अग्रचार हार इंदछंद उच्छटैं।
अगार इक्क थान क्यों न तान संगही अटें॥६९॥
लुठंत पिट्ठि केसपास आस रास मैं लगी।
पसारि गत्त जानि मत्त केलिपत्त पन्नगी॥
छुटी अलक्क अंसपैं लसैं अतीव तच्छटा।
रहे कि लुब्भि कालनाग बाल राग की रटा॥७०॥

नृत्य की मुद्रा में घूमते हुए इसके लहँगे का घेरा किसी छोटे डेरे (तम्बू) जैसा हो जाता है और इसके सुन्दर गोल नेत्रों की पुतलियाँ (भोलेपन के भाव से) देख कर लगता है जैसे अपनी डार (झुण्ड) से बिछुड़ी कोई हिरणी सामने खड़ी हो। नृत्य के समय कुचों के आगे चलने वाला 'इन्द्रछन्द'

(हार जिस हार में १००८ मूंगे हों उसे इन्द्रछन्द कहते है) उछलता है गिरता है क्योंकि तान और हार दोनों का घर एक ही है। (हार भी गले में रहता है और तान भी) इसलिए तान के अवरोह-आरोह के साथ उछलता-गिरता हार उसका साथ नहीं छोड़ता। इसी तरह इस गणिका की चोटी नृत्य की आशा में (नृत्य की मुद्रा में वह भी नाचती है) पीठ पर लेटी रहती है जैसे कोई मस्त सर्पिणी अपना गात केले के पत्तों पर फैलाये लेटी हो। चोटी में गुंथे जाने से छूटी हुई छोटी अलकें इस नायिका के कंधे पर झूलती यों लगती है मानो इसके राग की ध्वनि पर छोटे-छोटे काले सर्प रीझने को लुभा रहे हों।

सु नीर छाँह बक्र व्है रचैं दुचक्र रंग सौं।
मही रहे समीप हत्थ इक्क उत्तमगं सौं॥
समीर चक्र नच्चा मैं लखै समस्त सम्मुही।
सु चित्त माधुरी झरैं स्मरेच्छु जंत्र व्है सुही॥७१॥

जु अंग जास दिट्ठिगो सु दैव अंक व्है जुर्यो।
अलाप आनके उफान पंच बान अंकुर्यो॥
धुन्यौं घुमाइ टोडिकादि पंच नारि को धनी।
त्रिअंग उत्तमादि संग इक्क लै तती तनी॥७२॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ नीर में छाया वक्र नजर आती है उसी तरह वक्र हो कर रसपूर्वक जब वह दुचक्र नाच नाचती है तब उसका मस्तक जमीन से मात्र एक हाथ ऊपर रह जाता है। जब नृत्य मुद्रा में वह पवन की गति से चक्राकार घूमती है तो इतनी त्वरा से घूमती है कि सारे दर्शकों को वह उनके सम्मुख दृष्टिगोचर होती है और ऐसे में देखने वाले का चित्त रूपी गन्ना कामदेव की चरखी में पेरा जा कर रस माधुर्य टपकाने लगता है। उसका जो अंग जिस किसी को नजर आ जाता वह जैसे उसकी नजर के सामने अटल हो जाता अर्थात् उसे वही वही नजर आता। उसके आलापों के सहारे कामदेव उदय हुआ। टोडी, खंभावती, गौरी, गुनकली और ककुभ इन पाँचों रागिनियों का पति मालकोश (राग)जब साकार हो अपनी ठुड्डी धुनने लगा। तब वहाँ उत्तमा आदि राग के तीनों अंगों में लय की एक पंक्ति सी तन गई।

धरैं प्रतीति यों न तान कोन थानतैं धपी।
करैं पिधान गान जानि बानि पानि कच्छपी॥
निखंग चाप आदि हेति रूप मंडती नचैं ।
बिलोकिबे त्रिलोक ओक नैन कोन के बचैं॥७३॥

स्वरावली समुद्र मैं तिरैं निसंक सुंदरी।
जु मंद्र मैं सु मध्य मैं जु मध्य मैं सु तार मैं॥
मजे तथापि भिन्न देत सार मैं सु मार मैं॥७४॥

इसकी प्रतीती नहीं होती थी कि तान किस स्थान से चली (उठी)। उस गणिका की वाणी सुन कर सभी को लगा जैसे यह गुह्य गान स्वयं सरस्वती की वीणा कर रही हो। वह अपने गात को झुकाती तानती नृत्य मुद्राओं से धनुष बाण आदि शस्त्रों की छवि बनाती नाचती रही। ऐसे मनोहारी नृत्य को निरखने से भला तीनों लोकों में ऐसे किसके नेत्र होंगे जो वंचित रहना चाहें। वह अद्‌भुत गायिका स्वर लहरियों के समुद्र की सुंदर रसभरी तानरूपी तरंगों में वीणा की तुंबिकाओं वाली नाव से निशंक तैरने लगी। इसके मंद्र सप्तक के स्वरों में जो रस है वही मध्य सप्तक के स्वरों में है और जो रस मध्य स्वर में है वही तार सप्तक (उच्च) के स्वर में उपस्थित है तब भी तार में (वीणा के) और मार में (कामदेव) में आनन्द भिन्न-भिन्न देता है।

तजैं कुझैं कुझैं कुतत्थ धित्थ धित्थ तंडई।
छटा अनुद्रुतादि तैं प्लुत प्रमान लौं छई॥
ग्रह प्रकास अंस न्यास व्है बिलास गान मैं।
तुलैं न इक्क इक्क सौं असंख्य कूट तान मैं॥७५॥

बितस्ति दोइ मध्य लीन मध्य खीन यौं बन्यौं।
तुटैं घुटैं रुटैं मुटैं छुटैं प्रबाद यौं तन्यौं॥
क्रमे प्रमान ध्वान यौं अनौंट फुल्लरी करैं।
उदार मार चट्टसार भा प्रकार उद्धरैं॥७६॥

जब उसने 'तजें कुझें कुझें कुतत्थ, धित्थ, धित्थ' की ताल पर नृत्य किया तो उसमें अनुद्रुत से ले कर प्लुत पर्यंत शोभा छा गई अर्थात् अनुद्रुत,

द्रुत, द-विराम, लघु, ल-विराम, गुरु और प्लुत ताल के इन सातों अंगों की अनोखी छटा बिखर गई। ग्रह (जिस स्वर से राग उठे) का, अंश (जिस स्वर में राग को स्थिर करे) का और न्यास (जिस स्वर में राग की समाप्ति हो) का तीनों का प्रकाश और विलास उसके गायन में प्रतीत हुआ। उसके गायन में कूटतानें (मूर्छना आदि के क्रम बिना तान हो उसे कूटतान कहते हैं।) तो असंख्य थीं जो एक से दूसरी नहीं मिलती थी अर्थात् एक से एक आला थी। नृत्य की ठौर दो बिलस्त (हाथ के पंजे को पूरा फैलाने पर अंगूठे से कनिष्ठा तक की दूरी का नाप)के घेरे में सिमट आई और इस घेरे के मध्य नाचते हुए उस गणिका का मध्य अंग अर्थात क्षीण कटि टूटती है, घूमती है, रुकती है, मुड़ती है, पर लय नहीं टूटती क्योंकि दर्शकों में गान. तान, नृत्य की लय टूटने का कोई प्रवाद (बहस) नहीं सुना गया। इस प्रकार का वह गायन और नृत्य वहाँ पसरा। उस नृत्यांगना के चलने के क्रम के प्रमाण से उसके पाँव में पहनी अणवट (आभूषण विशेष) और फोलरी (गहना विशेष) ऐसी ध्वनि (छमछम) करने लगी मानो उदार कामदेव की पाठशाला की कांति के प्रकार भासमान होते हों।

दुकूल ओट भास्य आस्य लास्य यों कढै दुरैं।
बिछद कंद फंद ज्यों अमंद चंद बिप्फुरैं॥
कढे परैं उरोज पीन चीन अंगिका कसे।
फबैं सरोज पत्त रोक मत्त कोक ज्यों फसे॥
पलट्टि ताल ताल मैं अनेक काल मैं प्रमा।
बढैं घटैं घटैं बढै तुलैं तुला तुलें समा॥
श्रुति दुबीस तीव्रकादि छोहिनी ऽवसानलों।
मिली स मैं म मैं प मैं तिच्यारि च्यारि मान लौं॥७८॥

नृत्य करते समय इस नायिका के घूंघट की ओट से इसके मुख की शोभा कभी दिखती और कभी छिपती हुई ऐसी प्रतीत होती है जैसे बादलों के फंदे में फँसा मंदतारहित चन्द्रमा कभी निकलता और कभी छिपता हो। इस गणिका के पुष्ट कुच उसकी झीनी कचुंकी में कसे हुए यों निकले पड़ते हैं मानों कमलपत्र की रोक में फँसे मस्त दो चक्रवाक पक्षी उड़ने को

हों। ताल-ताल के साथ पलटों से उस समय राग का निश्चय ज्ञान उसके (राग के) चढ़ने उतरने से बढने और घटने और घटने और बढ़ने लगा पर वह लय की तराजू पर बराबर था। तीव्रका से लेकर छोहनी के अंत तक जो बाईस श्रुतियाँ हैं वे षड्ज में, मध्यम में, और पंचम में (वे श्रुतियाँ) चार-चार के युग्म के प्रमाण से मिली रहती हैं।

रि मैं ध मैं त्रि रु त्रि द्वै रु मैं नि मैं रहैं।
बिचारि जो पटं टारि नारि तास च्यारि क्यौं बहैं॥
रु जाति पंच दीप्तिका दि अंत मध्यमा रजैं।
श्रुतिल जाति संग प्रान राग अंग उप्पजैं॥७९॥
चलाहि उच्चलाहि द्वै हि अत्र कोशिको चिता।
समाइदेत भिन्न-भिन्न रुद्रताल सम्मिता॥
समस्त चित्त भान कान नैन बैन संग्रहे।
रुके निनाद ब्रह्म मैं प्रलै जड़त्व लै रहे॥८०॥

वे श्रुतियाँ ऋषभ में, धैवत में क्रम से तीन-तीन और गांधार में, निषाद में दो-दो रहती हैं। उनका खयाल कर विचारपूर्वक पंचम को टालती हुई वह गणिका पंचम की चार श्रुतियों को कैसे वहन करे अर्थात् पंचम की श्रुतियों को छोड़ कर वह राग की पाँच जातियों में से दीप्तिका और अंत में शोभायमान मध्यमा का सहारा लेने लगी। श्रुति और जाति ये दोनों राग के प्राण और अंग हैं सो यहाँ उत्पन्न होने लगे। पाँच जातियों में से यहाँ चला और उच्चला जो मालकोश राग की उचित स्त्रियाँ हैं इनमें वह ग्यारह तालों को भिन्न-भिन्न रूप में समायोजित करने लगी। ऐसा कर इस नायिका गायिका ने सभी सुनने वालों के चित्त, ज्ञान, कान, नेत्र और वचनों को रोक सा लिया मानों निनाद रूपी ब्रह्म में रुक कर प्रलय के समान वे जड़ीभूत हो गए हों।

अलंक्रिया कपाल प्रास ग्रामकादि अंग जे।
सगत्ति सूड मेल बर्ण भाग राग संग जे॥
स्वरूप वै रु काल नाम लिंग जाति सूचनी।
मुनीन धीन के अधीन भिन्न भिन्न जो भनी॥

सुतो बिचार रागलार बुद्धिफार साध्य है।
बिगूढ ऊढ बादरूढ मूढ उक्ति बाध्य है॥
सुरिंद बिंद संक्रम्यो नरिंद मान नैर मैं।
बहे अपार तोप वार फार फैर फैर मैं॥८२॥

राग के नौ अंगों यथा अलंक्रिया, कपाल, प्रास, ग्रामक, सगत्ति, सूड, मेल, वर्ण तथा भाग और स्वरूप से लेकर लिंग तक (स्वरूप, वय, काल, नाम और लिंग) राग की जातियों को मुनियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न-भिन्न कहा है क्योंकि इन पर विचार तो राग के साथ बुद्धि के फैलाव से साध्य है अथवा बुद्धि के समूह वाले (विद्वानों) से साध्य है। अत्यन्त गूढ को धारण करने वाले और यथार्थ बोध की इच्छा वाले वचनों पर आरूढ (चढे हुए) विद्वानों से मूर्खों की उक्ति का बोध होता है अर्थात् ऐसे लोग राग का आकलन नहीं कर सकते। ग्रंथकार (सूर्यमल्ल) अब वापस बरात की यात्रा के वर्णन पर आता है। वह कहता है कि ऐसी गणिका के गायन और नृत्य के साथ इन्द्र जैसे दूल्हे राजा रामसिंह ने महाराजा मानसिंह की नगरी (जोधपुर) में प्रवेश लिया और दूल्हे राजा के आगमन की खुशी में तोपों के समूह से धमाके पर धमाके किये गऐ।

चलैं दुपास व्है प्रकास चंद्रभास भैचपा।
छई प्रभा सु द्योंस लौं दई छिपाइ सो छपा॥
अरुास दोर ओर ओर निष्क द्रम्म उच्चरैं।
किते बिहाल व्है निहाल माल जाल चै करैं॥८३॥

बदैं निहारि द्रंग नारि लोंन वारि बिंद पैं।
अहो निकाम कोटि काम राम छोनिइंद पैं॥
अहो सु धन्य दुल्लही लहो बिसिष्ट इष्ट कौं।
दहो अनिष्ट रिष्ट त्यौं बहो अभीष्ट दिष्ट कौं॥८४॥

नरेस यौं सुरेस रूप देत रीझ नृत्य पैं।
प्रयान मुख्य द्वार लों कर्यो बिबाह कृत्य पें॥
कसा प्रहार रूप द्वार रीति लौकिकी करी।
उहां अपार फार हेम तार बुठ्ठि उच्छरी॥८५॥

बरात और दूल्हे के हाथी के दोनों ओर प्रकाश की ऐसी व्यवस्था थी कि चाँदनी का सा आभास होने लगा। इस पर आतिशबाजी होने से वहाँ दिन जैसी कांति छा गई जिसने रात्रि को छिपा लिया। नगर की गलियों में दूल्हे की ओर से ठौर-ठौर रुपये और मोहरें उछाली गईं। उछाले गए द्रव्य को लेने के लिए कई लोग यहाँ-वहाँ दौड़ते-दौड़ते बेहाल हो गए और कई निहाल हो गए जिन्होनें इस धन का संचय किया था। दूल्हे की छवि भी क्या है? इस समय इस निष्काम दूल्हे पृथ्वी के इन्द्र रामसिंह के आगे करोड़ों कामदेवों की छवि भी फीकी पड़ती है। नगर की स्त्रियाँ ऐसा कहते हुए दूल्हे राजा को नजर ना लगे इसलिए लोंन (नमक) उतारने लगीं। नगर की स्त्रियों के मुँह से दूल्हे को देख कर अनायास निकला कि ऐसे दूल्हे की दुल्हनियाँ तो धन्य हो गई। लो अब अपना वांछित विशिष्ट फल हो! ओ दुल्हन! तुम अपने अनिच्छा वाले दुःखों को दहनकर अब अपने वांछित सौभाग्य को धारण करो! उनके गीत और नृत्य पर दूल्हा राजा भी इन्द्र की तरह रीझ कर बरसने लगा अर्थात् खूब सारा धन लुटाने लगा। ऐसे करते हाड़ा राजा रामसिंह ने जोधपुर के महलों के मुख्य द्वार की ओर विवाह सम्पन्न करने हेतु प्रयाण किया। मुख्य द्वार पर लोक रीति के अनुसार तोरण (पर चाबुक) मारा और इस क्षण मोहरें और चांदी के रुपयों की बरसात सी की गई।

दोहा

सुपह्‌‌ु बिंद मारीच सन, करि लौकिक मत कज्ज।
इभ सन तोरन उत्तरिय, श्रुतिमत साधन सज्ज ॥८६॥

लोक रीति के अनुसार कार्य सम्पन्न कर (तोरण मार) कर अब अच्छा दूल्हा राजा अपनी सवारी के मारीच नामक मुख्य हाथी से तोरणस्थल पर उतरा ताकि आगे के सारे मंगल कार्य वेदोक्त विधि-विधान से पूरे किये जा सकें।

पद्धतिः

इम दुल्लह तोरन मुख्य आइ, बंदन नीराजन क्रम बनाइ।
मंडप थल जावन हुव समोद, बिष्टर रु पाद्य बनि बिधि बिनोद ॥८७॥

बिष्टर रु अर्घ अचवन बहोरि, जहँ मधुपर्क गोहान जोरि।
कन्याऽऽगम व्यवहित बसन काम, बर बरनि परस्पर तिलक ताम ॥८८॥

बलि प्रवर गोत्र आख्या बिधान, बर पूजन भूषन बस्त्र दान।
कन्या करग्राहन समय किन्न, दै कनक दक्खिना तदनु दिन्न॥८९॥
क्रम गो प्रदान तांबूल कर्म, पुनि दंपति सयमेलन सधर्म।
बरमाला अंचल गंठि बंध, खिन तदनु धरन दककुंभ खंध॥९०॥
बर बरनि मिथो दरसन बिधेय, पुनि अग्नि परिक्रम सद्धि श्रेय।
पावक सन चर्मा ऽऽसन प्रविष्ट, आचार्य बरन कुसकंडि इष्ट॥९१॥
क्रम बिहित होम तहँ चउ प्रकार, धुर तत्थ राष्ट्रभृत नामधार।
सुजया रु प्रणीता नाम सत्थ, तिम लाजहवन हुव चउम तत्थ॥९२॥

यहाँ जब राजा दूल्हा मुख्य तोरणद्वार पर आया तो उसके स्वागत वंदन में आरती उतारी गई। इससे आगे मण्डप तक मुदित दूल्हा गया जहाँ पर आसन ग्रहण कर दूल्हे के पाँव धोने की रस्म अदा की गई। फिर दूसरे आसन पर बैठकर दूल्हे ने अर्घ्य समर्पित कर आचमन किया। राजा को तब दही, शहद, घी का मिश्रण पीने को निवेदित किया गया। इसके बाद जरी की पौशाक से सजी-धजी दुल्हन को लाया गया, जहाँ दूल्हे- दुल्हन ने परस्पर एक दूजे के तिलक लगाया। फिर वर पूजन के अवसर पर दूल्हे का गोत्र, प्रवर, नाम आदि कहे गए तब दूल्हे राजा ने आभूषण और सिरोपावों का दान दिया। फिर उचित मुहूर्त्त पर कन्या के पाणिग्रहण की रस्म अदा हुई, इस पर राजा ने स्वर्ण की दक्षिणा दी। इसके आगे राजा ने गोदान कर, पान का बीड़ा मुँह में लिया, फिर दूल्हे-दुल्हन के हाथ जोड़ने (हथजोड़ा) की रस्म पूरी की गई। दोनों ने एक दूजे के गले में वरमाला डाली और गठजोड़ा बांधा गया। इसी समय जल से भरा घड़ा दूल्हे के कंधे पर रखे जाने की रस्म पूरी हुई। इसके बाद दूल्हे-दुल्हन ने परस्पर एक दूजे का मुँह देखा और अग्नि की परिक्रमा की रस्म साधी गई। अग्नि से पश्चिम दिशा के आसन पर दूल्हा-दुल्हन को बिठाया गया तब आचार्यविरों ने हवन आरंभ किया। क्रमशः हवन भी चार प्रकार के सम्पन्न किये गए। पहले धुर फिर राष्ट्रभृत, सुजया और प्रणीता नामक यज्ञ में संस्कारित किये हुए चावलों का हविष्य डाला गया।

बहुरिहु करग्राहन बिधि बिलास, दुलही पय दक्खिन उपल न्यास।
बनि गाथा गावन तहँ बिधेय, करि अग्नि परिक्रम पुनिहु प्रेय॥९३॥

सालक संतुष्टि रु होम शिष्ट, पुनि सप्तपदी बिधि क्रम प्रदिष्ट।
इह कन्या निविसन बाम अंग, अभिसेचन घटजल करि अभंग॥९४॥

क्रम हृदयाऽऽलभन रु तिलक कर्म, चहि बैठन वृखभव अरुन चर्म्म।
किय तिम ध्रुवदरसन रत्ति काल, बलि अप्पिय गुरु हित बसु बिसाल॥९५॥

इत्यादि बेंदबिधि भजि असेस, नवबय बिशिष्ट व्याहिय नरेस।
दै इष्ट नेग नेगिन उदार, फैलाइ दयो जस दिसन फार॥९६॥

विधि-विधान के अनुरूप फिर से करग्राहन की रस्म की गई और दुल्हन के दाएँ पाँव के नीचे पत्थर रखा गया। इस समय वहाँ उपस्थित स्त्री-समुदाय ने मंगल गीत गाए और दूल्हा-दुल्हन ने फिर से अग्नि परिक्रमा की। दूल्हे ने साले की सन्तुष्टि की अर्थात् कुछ स्वर्णादि प्रदान कर हवन में हविष्य डाला गया फिर सात फेरे (सप्तपदी) लिये गए। इसके बाद दुल्हन दूल्हे के बाईं और बैठी फिर घड़े के जल से अभिषेचन किया गया। इसके बाद हृदय का स्पर्श करने की रस्म पूरी कर उन्हें बैल की लाल रंग की चर्म पर बिठाया गया। फिर रात्रिकाल में ध्रुव तारे के दर्शन किये गए और यहाँ राजा ने आचार्य को विशाल धन की दक्षिणा दी। सभी रस्में पूरे वेदोक्त विधि-विधान से पूरी कर नई उम्र के दूल्हे राजा ने विवाह सम्पन्न किया। इसके बाद याचकों को उदार मन से नेगचार दे कर राजा ने सभी दिशाओं में अपनी कीर्ति प्रसारित की।

दोहा

जोरी लखि अवरोध जन, कहन लगे बलि कज्ज।
रुचि दंपति पर काम रति, वारैं कोटिन अज्ज॥९७॥

निस बित्तत रहि नालकी, गत प्रच्छद पटगूढ।
पट गृह जन्य निवास प्रति, आये दंपति ऊढ॥९८॥

जनाने की स्त्रियों ने दूल्हा राजा और दुल्हन रानी की नई जोड़ी को देख कर सराहना करते हुए कहा कि इस नव-दम्पति की जोड़ी पर कामदेव और रति की करोड़ों जोड़ियाँ न्यौछावर की जा सकती हैं। इसके बाद खास सवारी की पालकी जो वस्त्रों से अच्छी तरह ढकी हुई थी उसमें सवार हो कर ब्याहे हुए दूल्हा-दुल्हन बरात के डेरे पर आए।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ रामसिंह चरित्रे रामसिंह प्रथम विवाहवर्णनं पञ्चमो मयूखः आदितः सप्तषष्ट्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३६७॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमराशि के रामसिंह चरित्र में राजा रामसिंह का प्रथम विवाह होने के वर्णन का पाँचवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सड़सठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

हेम रजत मय बुट्ठि हुव, इम जन्यालय आत।
धन्य धन्य जय जय ध्वनित, खुलि ठाँठाँ हुव ख्यात॥ १॥

बैदिक लौकिक सद्धि बिधि, बहि सम्मति निर्बाद।
पिता जनन दुलही सु पुनि, पधराई प्रासाद॥ २॥

संग सखिन दासिन सतन, नंद जीव छम नद्द।
भो तिम सहचर भूखनन, सिंजित कलकल सद्द॥ ३॥

पधराई दुलही पिहित, इमि जो जनक अगार।
पति दासीजन बिबिध पटु, लगे सतन गन लार॥ ४॥

हे राजा रामसिंह! बून्दी का हाड़ा राजा (स्वयं रामसिंह) जब विवाह की रस्म पूरी कर वापस बरात के डेरे पर आया तो वहाँ (सोने की) अशर्फियों और (चाँदी के) रुपयों की बरसात सी आरंभ हुई। सभी और से 'जय हो' और 'धन्य-धन्य' का घोष हुआ। राजा ने यह विवाह वैदिक और लौकिक विधि-विधान से निर्विवाद सम्पन्न किया अर्थात् राजा ने किसी रस्म की अवहेलना नहीं की, जैसा कहा गया वैसा किया फिर पिता के वंश वालों ने दुल्हन को महलों में पधराया (भेजा)। इस समय दुल्हन के साथ उसकी सैंकड़ों सखियाँ और दासियाँ थीं उनके मंगल गीतों से जी को आनन्द देने वाली सुर लहरियाँ प्रकट हुईं। वहीं साथ वाली स्त्रियों द्वारा पहने आभूषणों की रनक-झनक से जोरदार शब्द हुआ। इस तरह दुल्हन को अपने पिता के आंगन (घर) तक पहुँचाया गया। इस समय उसके साथ ससुराल पक्ष की सैकड़ों दासियाँ भी साथ गईं।

षट्पात्

इत डेरन खिन इक्खि अतुल आरंभि त्याग अब,
कृष्णराम इत कहिय मुख्य नरनाह मुसाहब।
चतुर मुकुट कवि चंड जनक कवि के बुलाइ जब,
बंदी रतन बहोरि पुच्छि संभव दोउन पहँ।
कहिय त्याग व्यय कतिक कतिक परिमान कविन कहँ,
नृप मान कृपापातहु कतिक मुख्य सुकवि इह मानियत।
करियत तदीय सतकार किम जिम अच्छुत जस जानियत॥ ५॥ *[1]

इधर बरात के डेरे पर उचित समय जान कर त्याग (विवाह के उपलक्ष पर दिया जाने वाला दान) बाँटने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। बून्दी का कृष्णराम धायभाई जो राजा का खास मुसाहिब था ने ग्रंथकार सूर्यमल्ल मीसण के पिता और कवि मुकुट चंडीदान मीसण को बुलवाया फिर उसने बंदी (भाट) रतन को बुलवाया। दोनों को बुला कर बून्दी के सचिव ने उनसे मंत्रणा करते हुए पुछा कि आप लोग बताएँ कि त्याग बाँटने में कुल कितना खर्च आ जाएगा ? अर्थात् कितनी सख्या में कवि विद्यमान हैं ? आप लोग यह भी बताएँ कि जोधपुर राजा मानसिंह के राज में कितने मुख्य कवि हैं जिन्हें सुकवि माना जाता हैं ? हमें उन लोगों का पहले सत्कार करना होगा पर कैसे ? जिससे हमारे स्वांमी की अछूती कीर्ति फैले!

दोहा

कवि अक्खिय चउ मुख्य कवि, अतिसय प्रीति अमत्र।
मानैं जे नृप मान के, अतुलित बैभव अत्र॥६॥

कृष्णराम धायभाई के प्रश्नों के उत्तर में चंडीदान मीसण ने कहा कि यहाँ के चार कवियों के लिए सुना गया है कि वे राठौड़ राजा मानसिंह के अत्यंत प्रीतिपात्र हैं क्योंकि उन्हें राजा ने अपनी ओर से अतुलित वैभव दे रखा है।

टिप्पणी :- १. छंद संख्या ५ जो कि छप्पय (पट्पात) छन्द है इसमें सामान्यत. छह पंक्तियाँ होती है पर इसमें सात पंक्तियँ है। यह भी संभव है कि यह अष्टपात् रहा हो और उसमें एक पंक्ति छूट गई हो। मैंने इसे जस का तस दे दिया है- संपादक

षट्पात्

प्रथम प्रतोलीपात्र अवनिपति वृत्ति उपासक,
नाम जास अवनाड़ सु पुर मुंध्याहर सासक।
कथित जाति रौहड़िक पट्ट पंचायुत पावत,
इहिँ प्रमान पति अधिप सुभट बहु तंत्र सुहावत।
इम लक्ख अधिप चारन यह रु छिदतर्जंति नृप उदय छत।
आउवा मर्यो जबतैं अखय बीसरुसत साससक बजत॥ ७॥

उनमें से पहला तो राजा की वृति की उपासना करने वाला प्रतोलीपात्र (पोलपात) बारहठ है (महीपकोश में नगर के द्वार का नाम प्रतोली कहा है-'गोपुरं हि प्रतोल्यां तु नगरद्वारयोरपीति महीपः' इसलिए ग्रंथकार ने प्रतोलीपात्र शब्द काम में लिया है)। जो मूंध्याड़ (मुंध्याहार) नामक गाँव का जागीरदार है और उसका नाम औनाड़सिंह है। वह रोहड़िया गोत्र का चारण पचास हजार की वार्षिक आमदनी वाली जागीर का भोक्ता है अर्थात् पट्टेदार है। इतनी जागीर वाले राठौड़ राजा के कई उमराव हैं। जोधपुर के स्वामी के अधीन एक लाख चारणों के साथ उसके पूर्वज ने राजा द्वारा तर्जना किये जाने पर (राजा उदयसिंह के समय में) आउवा नामक गाँव में धरणा दिया उसमें अखा (अखैराज अथवा अक्षयसिंह) मरा तब से रोहड़िया शाखा के बारहठों को चारणों की एक सौ बीस शाखाओं का स्वामी कहा जाता है।

बलि द्वितीय कवि बंक धीर सब गुनन धुरंधर,
अयुतक सासन ईस बिदित छहगिरा गनिका बर।
बनि सु न्याय व्याकरन सर रु साहित्य समुद्रहि,
जो यह आसिक जाति बत्त कलि भूत ख्याति बहि।
जगतेस मान किय मेल जब बुध यह हुव सब जग बिदित।
कछवाह बिप्र भाखा सुकवि जो पदमाकर किन्न जित॥ ८॥

इसके अतिरिक्त दूसरा कवि बांकीदास है। वह धीर सभी गुणों में धुरंधर है। दस हजार की जागीर वाला यह कवि छह भाषाओं रूपी गणिकाओं

का स्वामी है अतः षट्भाषाविद है। वह व्याकरण, न्याय आदि दर्शनों का ज्ञाता और साहित्य का समुद्र है। वह आशिया शाखा का है जो पूर्व काल से प्रसिद्ध रही है। जब जयपुर के राजा जगतसिंह और जोधपुर के राजा मानसिंह मिले थे तभी से यह कवि जगत में प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इसने तब कछवाहा राजा के पंडित भाषाकवि पद्माकर को शास्त्रार्थ में हराया था।

महादान महडू तृतीय जो भूप कृपा जुत,
जुरत मान जगतेस बन्यौं कर्मध्वज बिद्रुत।
रिपु हुव सब रट्ठोर काव्य तिनको महडू किय,
सूचनबिनु निज सदन निखिल मारव भट निंदिय।
सो कवि बुलाइ मेवार सन तिहिँ उत्थान नृजान तह।
दिय मान अरुत आयक द्रविन सासन सोढावास सह॥ ९॥

राठौड़ राजा का कृपापात्र तीसरा चारण कवि महादान मेहडू है। जब जयपुर के राजा जगतसिंह और जोधपुर के राजा मानसिंह में भिंड़त हुई तब राठौड़ राजा को भागना पड़ा क्योंकि उसके अपने सामन्तों और बांधव राठौड़ों ने उसका साथ न दे कर शत्रुता निभाई। इस वृत्तान्त का काव्य इस मेहडू कवि ने बनाया जिसमें उसने मारवाड़ के ऐसे सामन्तों की भर्त्सना की। इस पर राजा मानसिंह ने महादान मेहडू को मेवाड़ से बुलवाया और ताजीम (उठ कर सलाम लेना), पालकी इनायत कर दस हजार की आमदनी वाली सोढावास नामक गाँव की जागीर प्रदान की और कवि का मान बढ़ाया।

भीम जोधपुर भूप आजि दूजो आरंभिय,
जुरत मान जालोर दइव अनसन बिपत्ति दिय।
सो चारन बनसूर जुगत नामक आश्रित जब,
अप्पत हुव तँहँ आनि स्वतिय भूखन समेत सब।
पहु मान ताहि लहि जोधपुर जहँ उत्थान नृजान जुत।
दिय तिथि सहस्त्र सासन दिपत प्रथित पाडलाऊ प्रनुत॥१०॥

जोधपुर के राजा भीमसिंह ने जब अपना द्वितीय युद्ध मानसिंह के विरुद्ध छेड़ा तब भाग्य ने जालोर के किले में मानसिंह को निराहार रहने जैसी विपत्ती दी। ऐसे कठिन समय में उसी के आश्रित और जालोर के घेरे में साथ

देने वाले जुगता नामक वणसूर चारण ने अपनी स्त्री के आभूषणों सहित सारी जमा पूँजी मानसिंह को लाकर दी। जब मानसिंह का जोधपुर पर अधिकार हुआ तो इस राठौड़ राजा ने जुगता (जुगतीदान) वणसूर को ताजीम और पालकी का सम्मान दिया। यही नहीं अपनी की गई सेवा को याद कर राजा ने पन्द्रह हजार की आमदनी वाले पाडलाउ नामक प्रसिद्ध गाँव की जागीर इनायत की।

दोहा

इन मैं आदि सु आदि तैं, सूचित बिभव समत्थ।
भाखे हेतुन करि भये, ए त्रय प्रविदित अत्थ॥११॥

अभिउत्थान नृजान इभ, संजुत त्रयहि सुबाद।
बढि इनमैं दुव बंक नैं, पाये लक्ख प्रसाद॥१२॥

नंडीदान मीसण ने आगे कहा कि हे कृष्णराम! इन चारों में प्रथम वर्णित मूंधियाड़ का जागीरदार बारहठ औनाड़सिंह तो पहले से ही कहे गए वैभव का स्वामी है। शेष तीनों चारण उपरोक्त वर्णित कारणों से प्रसिद्ध हैं। इन तीनों को ताजीम, पालकी और हाथी इनायत हो रखे हैं। इन तीनों में से बांकीदास अन्य दो से आगे है क्योंकि उसे राजा ने दो बार लाख पसाव प्रदान किये हैं।

षट्पात्

इन च्यारिनहित उचित ग्राम इक इक, इक इक्क गज,
पंचसहँस प्रत्येक बिहित बितरन मुद्रा ब्रज।
खास बिभूखन खिलत सुल्वपत्रक लिपि सासन,
पठवहु च्यारिन पास स्वल्प अक्खि रु पटुता सन।
ए च्यारि मुख्य तिनकै इहाँ क्रम जानहु यह मुख्य करि।
बलि सेस कृपाभाजन बहुत पच्छहु मध्य कनिष्ठ परि॥१३॥

इसलिए राजा मानसिंह के आश्रित इन चारों (चारण कवियों) के लिए तो उचित यह रहेगा कि उन्हें एक-एक गाँव की जागीर और एक-एक हाथी दे कर प्रत्येक को पाँच हजार मुद्राएँ (रुपये) दी जाएँ। इनके साथ ही शिरोपाव, आभूषण, और ताम्रपत्र पर उदक ग्राम लिखवा कर इन चारों के

पास चतुराई के साथ यह कह कर भिजवाना उपयुक्त रहेगा कि यह सब कुछ आपके लिए स्वल्प है। हे कृष्णराम! ये चार चाण तो मुख्य हैं पर इनके अतिरिक्त भी राठौड़ राजा के कृपाभाजन बहुत सारे हैं उन्हें हम मध्य और कनिष्ठ दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

पट हय कुंडल कटक पंचसत दम्म मध्य प्रति,
सप्ति कटक पट दुसत गनित मुद्रा कनिष्ठ गति।
इम नृप सेवी अत्र सुकवि द्वैसत पावहिं सब,
सोतो अधिक न सुनहु अधिक बसु व्यय निदान अब।
सोरट्ठ कच्छ गुज्जर सहित मरु जंगल ए पंच मति।
कुल खानिदेस पौरानिकन इम अयुतन अेकत्र प्रति॥१४॥

इन दो श्रेणियों में से मध्य श्रेणी के चारणों को शिरोपाव, घोड़ा, मोतियों के कुंडल अथवा मोती, हाथों में पहनने के कड़े और पाँच सौ रुपये त्याग में प्रदान करना उपयुक्त रहेगा। वहीं तीसरी कनिष्ठ श्रेणी के चारणों हेतु घोड़ा, क ड़ा, शिरोपाव सहित दो सौ रुपये प्रत्येक के लिए उत्तम रहेगा। इनके अतिरिक्त अन्य राजाश्रित कवि चारण हैं उन्हें प्रतिव्यक्ति दो सौ रुपये देना ठीक रहेगा। यह सब तो अधिक नहीं पर अब मैं अधिक व्यय का कारण बताता हूँ उसे सुनो! सौराष्ट्र, कच्छ, गुजरात, मारवाड़ और जांगल प्रदेश (बीकानेर) आदि ये पाँच देश चारण कुल की खान हैं इसलिए यहाँ हजारों की संख्या में चारण उपस्थित हैं और वे सभी विवाह के अवसर पर आए हैं।

दुलह हड्डु बून्दीस इहाँ व्याहन बलि आवत,
लक्खन उप्पर लग्गि मिले कुल कवि न मावत।
राजा ढिग नहिँ रहत तदपि बैभव समृद्धितर,
सहँसन कर सासनिक सतन मित इत अग्रेसर।
उपबसथ नाम मंथान इक तीन अरुत कर दम्मतहँ।
अैसे अनेक सासन अतुल जनपद पंच प्रपंच्च जहँ॥१५॥

उन्होंने सुना कि बून्दी का हाड़ा राजा रामसिंह यहाँ (जोधपुर) विवाह करने आ रहा है इसलिए कवियों (चारणों) के कुल के असख्य लोग यहाँ आ एकत्रित हुए हैं जो यहाँ समा नहीं रहे। यद्यपि ये सभी राजाश्रित नहीं, पर

हैं सभी वैभवशाली। इनमें से कई तो हजारों रुपयों की आमदनी वाले सांसणों के स्वामी हैं। ऐसों की संख्या सैकड़ों में होगी। यहाँ पास ही चारणों का एक उदक ग्राम मथाणिया है जिसकी सालाना आमदनी तीस हजार रुपये है। उपरोक्त पाँचों जनपदों में इसके (मथाणिया के) समतुल्य अनेक सांसण हैं।

बंदी पूरब बंस सूत संतति पच्छिम सब,
अैंसे पृथु अवतार तिनहि दिय देस बंटि तब।
यातैं भट्ट न अधिक तदपि चारन अतिसयतम,
तिहिं निदान करि त्याग कठिन भासत बंटन क्रम।
पहु सत्रुसल्ल उदयादिपुर परे अग्ग कछु बाद पर
रुप्पय छ लक्ख बंटि रु रसा अद्भुत जस किन्नौं अमर॥१६॥

पूर्व में (अवतार) राजा पृथु ने जब देश का बँटवारा किया था तब भाट लोगों को पूर्व दिशा वाला भाग और चारणों को पश्चिम वाला भाग दिया था। यही कारण रहा कि भाट लोगों की संख्या अधिक नहीं बढ़ी पर चारणों की संख्या तो अत्यधिक है। इस कारण से मुझे तो त्याग बाँटना कठिन लगता है। पूर्व में भी हमारे राजा शत्रुसाल जब उदयपुर विवाह करने गए थे तब भी त्याग बाँटने पर विवाद हो गया था नतीजन उन्हें छह लाख रुपयों की राशि बाँटनी पड़ी पर हाँ, उन्होनें ऐसा कर पृथ्वीतल पर अद्‌भुत यश कमाया। उन्होनें अपना नाम अमर कर लिया।

तितो मुलक धन ताम अब न अप्पन अगार इम,
श्रद्धा छिति अनुसार कर हिं क्रम तो सु बनैं किम।
धीर सचिव धात्रेय जानि मत कविन एह जब,
कह्यो कछु न भय करहु सुकवि बढि करहु तुष्ट सब।
बुंदिय कुबेर पुर तैं बिथरि त्वरित जोधपुर द्वार तक।
सहपंति जोरि रुप्पय सकट सरनि बंधि दैहौं सड़क॥१७॥

आगे चंडीदान मीसण ने धायभाई कृष्णराम को समझाते हुए कहा कि आज तो राजा शत्रसाल के समय की तुलना में उतनी बड़ी जागीर और धन अपने घर (बून्दी) में नजर नहीं आता है। रही हिम्मत की बात तो वह तो भूमि के अनुसार दिखानी चाहिए। अन्यथा हमसे इतना खर्च करना कैसे

बनेगा? धैर्यवान सचिव धायभाई कृष्णराम ने चंडीदान मीसण की पूरी बात सुनी और उसका मत जान कर कहने लगा कि आप किसी बात का भय अपने मन में न लाइये। आप तो श्रेष्ठ कवियों को मबसे बढ कर तुष्ट कीजिये। कुबेर की पुरी रूपी बून्दी से लगा कर जोधपुर के राजद्वार तक मैं रुपयों से भरी बैलगाड़ियों की पंक्ति बांध दूँगा। मैं पूरे मार्ग को ऐसी गाड़ियों से भरी सड़क बना दूँगा।

सहँस पंच सिरुपाव सहँस हय दुरद सत्तसय,
दुलह सता अग्ग दिय रानघर लक्ख छ रुप्पय।
तब ओरहु पहु तत्त पत्त बनि बिंद उदैपुर,
पहुँचे तोरन पिहित धुत्त छल सों चढि सिंधुर।
छम चढि तुरंग जानि सु छलहु गम्य बलज हड्डेस गय।
अक्ख्यो सु बार बारन उचित हरि चारन तहँ निंदि यह॥१८॥

पाँच हजार शिरोपाव, एक हजार घोड़े और सात सौ हाथी, दूल्हे राजा शत्रुसाल ने पूर्व में प्रदान किए और महाराणा के घर अर्थात् उदयपुर में कुल छह लाख रुपयों की राशि (त्याग बाँटने में) खर्च की थी।वहाँ उस समय उदयपुर में अन्य राजा भी दूल्हा बन कर आए थे। वे सभी धूर्त राजा तो चुपचाप हाथियों पर सवार हो तोरन पर पहुँचे थे। याद नही, वहाँ एक मात्र हमारा स्वामी वह समर्थ हाड़ा राजा ही अपने घोड़े पर चढ़ कर राणा के द्वार पर गया था और द्वार पर प्रतोलीपात चारण हरिदास महियारिया ने राजा की घोड़े पर सवार हो कर आने की निन्दा करते हुए कहा था कि यह द्वार (महाराणा का) हाथी के ही योग्य है।

कुंजर थित रचि कपट इतर दुल्लह नृप आवन,
दूखन ब्रिनु हरिदास बिफल तस सत्व बनावन।
हेरि सता दुव हेतु रोकि रोधक हठ रानाँ,
तिम बढि बंटिय त्याग खुल्लि अलकेस खजाना।
तैसो इहाँ न सभंव तुलत बनिहु जाइ तो टेक बस।
प्रभुराम आन दैहौं पलटि सत्रुसल्ल संचित सुजस॥१९॥

कपट रच कर अर्थात् चुपके से हाथियों पर सवार हो कर आने वाले

अन्य राजाओं के दोषों को तो नहीं गिनवाया पर उस हरिदास चारण ने निष्फल हो (कुछ भी न पा कर) अपना जोम दिखाने को जब हाड़ा राजा से ऐसा कहा तब हाड़ा राजा शत्रुसाल ने अधिक खर्च करने से रोकने का हठ करने वाले महाराणा की नहीं सुन कर दोनों पक्षों का (उदयपुर और बून्दी का) अच्छा लगाने के लिए सबसे बढ़कर त्याग बाँटा और इसके लिए उसने अपना कुबेर जैसा खजाना खोल दिया। हे चंडीदान! वैसा करना अर्थात् राजा शत्रुसाल की बराबरी करना तो यहाँ संभव नहीं पर उसकी टेक निभ जाए इतना तो करना ही पड़ेगा। मैं अपने स्वामी रामसिंह की शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैं राजा शत्रुसाल द्वारा संचित किये हुए यश को पलट कर यहाँ ला दूँगा।

सचिव बैन इम सुनत कविन सादर सराह करि,
नृप भाऊ छत नियत घने नेगन चिंतन धरि।
थैलिन बिच कर थप्पि पसिय निज निज भरि रुप्पय,
इक इक महुर उपेत लये दोउ न जन्यालय।
इम बीरमुट्ठि नामक यहै दुल्लह कवि लहि नेग द्रुत।
क्रम संग त्याग उपहार करि पहिलैं पुर प्रविसे प्रनुत॥२०॥

बून्दी के सचिव के ऐसे वचन सुन कर कवि चंडीदान मीसण ने उसकी सराहना की कि तभी उसे हाड़ा राजा भावसिंह के समय में नियत (तय) किए गए सभी नेगों की याद आई। कवि ने सोचा कि रुपयों से भरी थेली में हाथ डाल कर मुठ्ठी भर रुपये किस प्रकार लिये थे दूल्हे के साथ गए दोनों कवियों ने। बरात के डेरे पर सम्पन्न 'वीरमुट्ठि' नामक नेग के तहत मुठ्ठी में समाये जितने रुपयों के अतिरिक्त एक-एक स्वर्ण मोहर भी प्रदान की गई थी। चारणों के लिए 'वीरमुट्ठि' के अलावा त्याग, उपहार भी राजा ने पहले चुकाये थे उसके बाद वह स्तुतियोग्य राजा अपने नगर में प्रविष्ट हुआ था।

धारित क्रम अभिधान कथित रौहड़ आसिक कुल,
सह महड़ू बनसूर मिले च्यारिन हित मंजुल।
पंचसहँस प्रत्येक अग्ग रुप्पय इक इक इभ,
सासनपत्र समेत निखिल रक्खे पद सन्निभ।
भूखन पटादि जे लखि भये सब प्रसन्न सूचित सुजस।
नृप सत्रुसल्ल नत्तिय दुलह क्योंन धरहिं जस गृह कलस॥२१॥

स्वयं द्वारा लिये गये नेग को याद कर चंडीदान मीसण ने सचिव सहित पूर्व में वर्णित जोधपुर के प्रमुख चार चारणों में से क्रमशः रोहड़िया, आशिया, मेहड़ू, और वणसूर कुल के चारणों से सुंदर हितपूर्वक मुलाकात की । फिर उन्होनें सभी को डेरे पर बुला कर प्रत्येक के सामने पाँच हजार रुपये, एक हाथी, और तांबापत्र सहित सारी सामग्री रखी। आभूषणों और पट्टों आदि को देख कर वे चारों चारण अत्यधिक प्रसन्न हुए और दूल्हे राजा का यशवर्णन करते हुए कहा कि आखिर राजा शत्रुसाल का पौत्र है वह क्यों नहीं अपने घर पर कीर्ति कलश चढाएगा अर्थात् उसका यह करना उचित है।

चित्त सबन हुव चाह धन सु आदान करन ध्रुव,
भूप मान दिय बिभव हृदय सोपै चिंतित हुव।
लैबे मंगि निलज्ज धनी हेरि सु कर्मध्वज,
न लये च्यारिन नटि रु ग्राम पट धन भूखन गज।
क्रम सोहि मान सेवी कविन लखि इतरन काहु न लयो।
तकि बित्त चित्त ललचें तदपि द्वैहि सतन उत्तर दयो॥२२॥

चारों कवियों के मन में तो यह सामग्री (धन) लेने की इच्छा हुई पर सभी ने अपने मन में राठौड़ राजा मानसिंह द्वारा सौंपे गए वैभव का स्मरण किया और सोचा कि राजा मानसिंह जैसे स्वामी के होते दूसरों का दान लेना निरी निर्ल्लजता है। यह सोचते ही चारों ने त्याग की सामग्री में गाँव की जागीर, शिरोपाव, रुपये, आभूषण, तथा हाथी लेने से इनकार कर दिया और सामग्री स्वीकार नहीं की। इसी क्रम में इन चारों के अतिरिक्त मानसिंह की सेवा करने वाले अन्य चारणों में से भी किसी ने कुछ भी नहीं लिया। यद्यपि राशि और सामग्री देख कर इनका मन भी लेने को ललचाया पर उन दो सौ चारणों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए।

दृढ साहसदानीय निखिल कवि जदपि निहोरे,
ललचि मनन धन लैन जनन तदपि न दृग जोरे।
साहस बस प्रभु सुकवि जतन बहु प्रेरि चुके जब,
इन जन्यालय आइ सचिव संबोधि कह्यो सब।
नृप मान कृपाभाजन निखिल लचे मनहु त्याग न लहत।
न बिरत्त तोहु सबके नयन स्वामि स्वसुर कानिहिं कहत॥२३॥

यह सुन कर भी दृढदानी राजा रामसिंह ने हठ पूर्वक त्याग लेने हेतु सभी उपस्थित चारण कवियों के निहोरे किए। राजा की मनुहार सुन कर सभी के मन तो धन लेने को ललचाए मगर उन्होनें राजा से आँख भी न मिलाई। यह देख कर राजा के कवि चंडीदान मीसण ने उन्हें कई प्रकार से प्रेरित करने का प्रयत्न किया पर वे सभी सम्मिलित हो कर बरात के डेरे पर आए और यहाँ उन्होंने बून्दी के सचिव धायभाई कृष्णराम को समझाते हुए कहा कि मन ललचाने के बावजूद राजा मानसिंह के कृपा भाजन होने के कारण हम त्याग नहीं लेते। हम सभी के नयन विरक्त नहीं हैं तब भी हम यह सब आपके राजा के श्वसुर अर्थात् राजा मानसिंह की मर्यादा रखने हेतु कह रहे हैं।

प्रभु आसय मान प्रति द्रुतहि सचिव सु जमाइ दिय,
मनबिनु अक्खिय मान लेहु तदपि न तिन तो लिय।

प्रभु के सुकविन प्रसभ जानि नाहक जंपिय जब,
द्वैसत लेहुन देय इहाँ ग्राहक अयुतन अब।

इम अक्खि भिन्न पटगेह इक थिर बहु थंभन थंभयो।
तहँ बैठि स्वामि स्वकविन अतुल अब बितरन आरंभयो॥२४॥

रावराजा रामसिंह के त्याग देने के आशय को सचिवों ने शीघ्र ही राजा मानसिंह से जा कहा। तब राजा मानसिंह ने कहा कि यदि वे कवि लेना उपयुक्त समझते तो लेते। उन्होंने नहीं लिया तो इसका मतलब है वे लेना ही नहीं चाहते। तब रामसिंह के पक्ष वालों ने जोधपुर के कवियों का हठ सुन कर कहा कि तुम दो सौ चारण भले ही यह दान (त्याग) मत लो। तुम लोगों से इतर हजारों लोग लेने वाले हैं। ऐसा कहकर उन्होनें एक बहुत सारे थंभों वाला डेरा (तम्बू) तनवाया और उसमें बैठ कर रावराजा रामसिंह के कवि लोगों ने त्याग बाँटना आरम्भ किया।

सतन स्वीय कवि सचिव लिखन सब दिस पठ्ये लहु,
जे बटि बटि बसु जाम बनैं जामिक लेखन बहु।

आवन लग्गे अमित पत्र लिपिकृत चित पुस्तक,
हुब अंहति आरंभ सोम बसु धृति संगत सक।

अंतर तपस्य दसमी असित गोरन अह तहँ मेघ गति।
रचयो अजस्त्र झर रुप्पयन त्याग प्रगुन सब देय तति॥२५॥

बून्दी के सैकड़ों कवि और सचिव निमंत्रण पत्र लिखने बैठे। वे बारी-बारी से आठों प्रहर तक लिखने का ही काम करते रहे अर्थात् पत्र लिखने का कार्य अनवरत चला। इन पत्रों को पाकर गाँवों-गाँवों से चारण कवि आने लगे और विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ इक्यासी के फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथि के दिन त्याग बाँटने का कार्य आरंभ हुआ। राजा रामसिंह की शादी के अगले दिन (सुहागरात के दिन) मेघ की तरह निरंतर रुपयों की बरसात की झड़ी सी लग गई। उस दिन विशेष गुण वाला त्याग चारणों की सारी पंक्तियों में बाँटा गया अर्थात् सभी को प्रदान किया गया।

जाचक अनुचर जनन दम्म पंचास अवधि दिय,
सतजुग सोलह सहँस कविन उपहार पृथा किय।
मुद्रा लक्खन प्रमित बसन अयुतन मित बिस्तरि,
क्रम सहँसन मित कटक सतन सम्मित कुंडल करि।
ताही प्रमान हय मय बितरि सब देसन तर्कुक सकल।
किन्नैं निहाल सादर कथन बादर पथन स्वबुद्धि बल॥२६॥

इस समय चारणों के अनुचरों को पचास रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से त्याग दिया गया और चारणों को प्रति व्यक्ति दो सौ रुपये चुकाए गए। इस प्रकार कुल सोलह हजार चारणों को त्याग से उपकृत कर राजा ने इस प्रथा का निर्वाह किया। लाखों रुपयों की राशि, हजारों सिरोपाव, हजारों कड़े (हाथ के आभूषण) और सैंकड़ों कानों में पहनने वाले मोतियों से बने कुण्डल प्रदान किये गए। इसी प्रमाण में घोड़े और ऊँट भी सारे देशों से आए याचकों को पूरे सम्मान के साथ प्रदान किये। इस तरह राजा ने धन की वर्षा कर सभी को निहाल किया।

दोहा

द्रविन बुद्धि बिधि इम दुलह, प्रस्तरि त्याग प्रवाह।
उभय घटी मित रहत अह, चढ्यो स्वसुर गृह चाह॥२७॥

मेघ के सदृश वृष्टि के बल से त्याग का प्रवाह फैला कर दो घड़ी दिन बाकी रहते दूल्हा राव राजा रामसिंह अपने श्वसुर के घर चाव से गया।

उपदोहा

जिततित सब जाचक जनन, सुजस स्व संचित सुनत।
गोरन भोजन स्वसुर गृह, चल्यो नगर सर चुनत॥२८॥

कर्मध्वज हक्कार क्रम, लघु गुरु मानव लहत।
महासुभट सचिवन मिलित, चल्यो स्वसुर मन चहत॥२९॥

इस तरह संचित किये हुए यश की घोषणाएँ वह यहाँ-वहाँ याचकगणों से सुनता हुआ सुहागरात (गोरण) के दिन भोजन करने सद्यविवाहित राजा रामसिंह जोधपुर नगर के मध्य से गुजरा। मनुहार के लिए राठौड़ राजा मानसिंह छोटे-बड़े अपने कई अनुचरों के साथ अपने जामाता के उमरावों और सचिवों से निवेदन करने आया।

पद्धतिका

प्रभु दुलह जोधपुर के प्रवेस, अधिरूप क्मन पन लहि असेस॥
साखापुर बहुबिध लखि समत्थ, तकि भरत कुसीलव भटन तत्थ॥३०॥

बुठ्ठत स्वबुठ्ठि मघवा बनाव, भूपाल लखत मग सबन भाव॥
दौलाअरघट्टक कहुँ दिपात, पावत तिन प्रेरक बसुन ब्रात॥३१॥

गावत कहुँ बंसिन धमि गवार, पावत प्रसाद धन प्रकटि प्यार॥
बहुचित्र भांड नर्तक बनाइ, लावत बसु पावत प्रमद लाइ॥३२॥

मंदिरमहादि उदयादि मान, निरखत स्वसुरार्चित नय निधान
लघुबाटिन कहुँ लघु मनुज लीन, पिक्खत प्रसन्नबर बहु प्रबीन॥३३॥

अपने कमनीय रूप के अनुसार सजे-धजे दूल्हा राजा रामसिंह ने जोधपुर के नगर में प्रवेश लिया। यहाँ तक पहुँचने से पूर्व हाड़ा राजा सारे मेहमानों सहित नगर की परिधि में बसे छोटे-छोटे गाँवो से गुजरा, जहाँ उसने खेल दिखाते नटों के करतब देखे। कई कत्थकों का नृत्य देखता हुआ हाड़ा राजा चलते-चल्ते ही इन्द्र की तरह धन की वर्षा करता हुआ मार्ग में ऐसे प्रदर्शनकारियों की कला निरखने का भाव लिये बढ़ा। रास्तें में कही झूले (डोलर हिंडे) शोभा दे रहे थे। उन झूलों को झुलाने वालों को हाड़ा राजा इनाम-इकराम से नवाजता चल रहा था, कही पर गाँव वाले कलाकार बांसुरी पर राग अलाप रहे थे और वे भी दूल्हे राजा से बख्शीस पा रहे थे। जगह-

जगह पर बहुरूपिये, भांड नर्तक अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे और दूल्हे से धन पा रहे थे। अपने श्वसुर द्वारा निर्मित कराए गए महामन्दिर और उदयमुन्दिर नामक दोनों पूजा स्थलों को निरखता हुआ दूल्हा राजा आगे बढ़ा।वहाँ छोटी छोटी बगीचियों में खड़े आम आदमी (प्रजाजन) दूल्हे को पूरी तल्लीनता से देख रहे थे और चतुर हाड़ा राजा की झलक पा कर प्रसन्न हो रहे थे।

मालिकन सुमन उपहार मेल, हाटक चय बुठ्ठत गनित हेल॥
कंजरन कहुँक तंडव प्रकार, दुहरी तिहरी तिन्ह रचत दार॥३४

जो जोहि रिझावत जिम जथाहि, सो सोहि स्वसंगत तिम तथाहि
कहुँ कहुँ खट इंधन निचय कार, पहिलैंहि पटकि बरदल प्रसार॥३५॥

लै रीझ बहुरि लेबे लबार, पावत धन करि अति नुति प्रसार॥
जुरि फिरिफिरि सम्मुह नटन जूह, सु रिझाइ लेत बहु बसु समूह॥३६॥

गन निप कुंभारिन बसु गिराइ, पुनि कहुँ बागुरिकन मृगन पाइ॥
दैबहु बसु बखसत तिन्ह निदेस, अबसों न करहु तुम कर्म एस॥३७॥

रास्तें में कई जगह माली आ कर दूल्हे को पुष्पाहार भेंट करते और दूल्हा राजा उन पर स्वर्ण के समूह की वर्षा करता। किसी जगह पर कंजर जाति के नर-नारी अपने नृत्य का प्रदर्शन करते जिनमें उनकी स्त्रियां सहज ही दुहरी-तिहरी कुलाँचें भरती दूल्हे को रिझाने के यत्नों में सलंग्न होती। दूल्हा राजा उन्हें भी इनाम देकर उपकृत करता बढ रहा था। रास्ते में कहीं अपने सिर पर सूखी घास का गठ्ठर उठाए नर नारी मिलते तो कहीं ईंधन लिये हुए। ये सभी लोग हाड़ा राजा की सेना के लिए ला रहे होते। दूल्हा उन्हें भी धन दे कर बरात की सेवा करने का प्रतिफल देता चलता। कई झूठे, (लापर), बड़बोले (लबार) एक बार रीझ पाकर फिर से रीझ पाने को दूल्हे के समक्ष नम्रता का प्रदर्शन करने लगते और राजा उन्हें भी संतुष्ट करता जाता। नटों के समूह बार-बार घूम फिर कर दूल्हे के समक्ष आते जाते और इनाम पा जाते। कहीं पर कुम्हारिनों का समूह अपने सिर पर कलश उठाए दूल्हे के सामने आ जाता। हाड़ा राजा उन कलशों में रुपये डालता। कभी बन-बागरी जाति के लोग जो जंगली हिरण आदि पकड़ने का कार्य करने

वाले थे, दूल्हे के सामने याचना करने उपस्थित होते और दूल्हा राजा उन्हें इनाम देते समय समझाता कि भविष्य में ऐसा मत करना अर्थात् मृगों को मत पकड़ना।

इम देत जनन धन घन अछेह, प्रविस्यो पुर गोपुर उचित अेह॥
नृप गोपुर पालन करि निहाल, बिक्खत पुर जन जुव वृद्ध बाल॥३८॥

कहुँ नटन नटन उड्डुन कुरंग, भजि कहुँ नरेन्द्र दिखवत भुजंग॥
कहुँ द्यूत द्यूतदेविन निकार, समपन कहुँ जय कहुँ रय प्रसार॥३९॥

प्रबहत कुल्ल्याजल कहुँ दु पास, मरुछिति हुलसत्त जिम भाद्रमास॥
बैतालिक चाक्रिक बिबिध ब्रात, जय जीव जल्प सबिरुद सुनात॥४०॥

नच्चत बहु बारन बारनारि, पटु धाव हाव भावन प्रसारि॥
कहुँ सान भ्रमासक्तन सनंकि, झारत फुलिंग सस्त्रन झनंकि॥४१॥

दूल्हे राजा रामसिंह ने इस तरह कलाकारों, याचकों आदि को धन लुटाते हुए नगर के परकोटे के द्वार में प्रवेश लिया। जहाँ हाड़ा राजा ने गोपुर के प्रहरियों को इनाम में धन दे कर निहाल किया। यहाँ दूल्हे राजा की एक झलक पाने को नगर के सैकड़ों नर-नारी, वृद्ध, बच्चे और युवक उपस्थित थे। यहाँ पर भी कई नट लोग अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए मृगों की तरह छलांगे भरते या कुलाँचें भरने लगते। उनकी तरह सपेरे (कालबेलिया) भी साँप नचा कर राजा को रिझाने का प्रयत्न करते। कहीं पर द्यूत खेलने वाले द्यूत की देवी के समक्ष अपनी जेबों से सब कुछ निकाल कर दाँव लगाते नजर आते और इनमें से जो जीतता वह विजयोल्लास को ऊँचे स्वर में प्रकट करता। कहीं पर मार्ग मे दोनों और नालियाँ (नहरें) बहती मिलती जिनसे भाद्रपद माह में मारवाड़ की भूमि प्रसन्न होती है। कहीं पर स्तुति कर राजा को जगाने वाले वैतालिक (भाट) सामने मिलते तो कहीं घंटा बजा कर राजा की स्तुति करने वाले चाक्रिकों का समूह आता जो 'राजा की जय हो' 'जय हो' का स्वर बुलंद करता और दूल्हे राजा की बिरुदावली उच्चारता। जब गलियों से दूल्हे राजा की सवारी गुजरने लगी तो बहुत सारे घरों के द्वार के आगे वेश्याएँ नृत्य करने लगीं। वे अपनी नृत्य कला में भावों का प्रदर्शन करती कभी इधर भागती कभी उधर भागती पर उनकी इस भागदौड़ में भी

नृत्य की सी चतुरता नजर आती। कहीं पर बाजार की गलियों में सकलीगर अपनी सान के पहियों पर शस्त्रों को धार देते अग्निकण बिखेरते नजर आते।

बिहुँदिसन असीसत द्विजन बार, स्वेहासम पावत बसु प्रसार ॥
कहुँ उघरि चित्रसालन कपाट, बिक्खत तिय बिंदहिं नयन बाट ।।४२ ॥

उत्तारन उद्धहि कहुँ करंत्त, बलि करन प्रान हित बित्थरंत ॥
बिखरत नोछावरि बसु बजार, अति रंक होत तिन्ह लहि उदार ।।४३ ॥

प्रभु आदि जन्य जन गजन पिट्ठि, द्रुत परत निछावरि द्रविन दिट्ठि ॥
सोसो आधोरन मुख समेटि, मग गेरि देत दुख दुखिन मेटि ।।४४ ॥

कहुँ अन्नरासि नाना प्रकार, मप्पत द्रोणादिन बिनु सुमार ॥
कहुँ आढक प्रस्थन मपन कर्म, मुसियत अधमर्णन पिहित मर्म ।।४५ ॥

ब्राह्मणों के बास की गली में रास्ते के दोनों और खड़े ब्राह्मणों के दल दूल्हे राजा को आशीर्वाद प्रदान करने लगते और दूल्हे से इनाम पाते। कहीं पर घरों की दूसरी मंजिल पर बनी चित्रशालाओं के कपाट और कहीं झरोखों की किंवाड़ी खोल कर घर की स्त्रियाँ नजरें बिछाये दूल्हे को देखने की प्रतीक्षा में आकुल नजर आतीं। तो कहीं ऊपर से ही दूल्हे राजा की निछरावलें होती तो कहीं दूल्हे पर प्राण-न्यौछावरों करने जितने भावुक होने का अभिनय होता। इस तरह बाजार में न्योछावरों के रुपयें बिखरने लगे। जिन्हें एकत्र कर रंक लोग भी उदार बनने लगे। हाथी पर सवार दूल्हा राजा और उसके साथ बैठे बराती जब होदे पर बिखरे हुए रुपयें देखते तो महावत को संकेत करते जिससे महावत उन रुपयों को एकत्र कर नीचे गरीब लोगों के झुण्डों के मध्य फेंकता चलता जिन्हें पा कर दुखियारे रंक अपना दुःख कम करते। आगे कहीं (धानमंडी) बाजार के मार्ग के दोनों ओर धान की ढेरियाँ लगी थीं जिन्हें व्यापारी द्रोण (बत्तीस सेर का तोल) के हिसाब से लोगों को तोल रहे थे। तो कहीं पर आढक (द्रोण का एक चौथाई माप) से और कहीं पर प्रस्थ (आढक का चौथाई भाग अर्थात् दो सेर) से नापने का कार्य हो रहा था। कहीं पर बोहरे (ऋण देने वाले) अपने यहाँ आए ऋण माँगने वालों को गुप्त रूप से ठगने में मशगुल थे।

रचि व्रीहि सुगंधिक कुलम रासि, पावत कहुँ बिक्रय क्रय प्रकासि ॥
जव सुमन मदन हरिमंथ जात, भरमुद्ग राजमुद्गन बिभात ॥४६ ॥

जवनाल बीजपुष्पिन जथाहि, अति रासिन इतिमुख सीत्य आहि ॥
भासत कहुँ हट्टन भ्रमर भीर, पीतन कपूर मृगमद पटीर ॥४७ ॥

कहुँ कुसुम निकर नाना प्रकार, अधिपति पर वारत बिविध बार
नृप करत रीझि मालिन निह्मल, चल्लत खिन रहि खिन सिथिल चाल ॥४८ ॥

प्रभु द्विरद अग्ग बहु दारुपट्ट, बहि ढबत कहारन अंस बट्ट ॥
गनिकाजन तिन पर नटन गान, बज्जन सह बिरचित बहु बिधान ॥४९ ॥

धानों में कहीं पर चावलों की ढेरी लगी थी। तो कहीं पर कुलथों (धान विशेष) की और क्रय-विक्रय का कार्य धड़ल्ले से जारी था। कहीं पर जव, गेहूँ तो कहीं पर उड़द की ढेरियाँ थी। कहीं पर चने, मूंग, मोठ, तथा चौला (चँवला) की ढेरियाँ लगी थीं। तो कहीं पर जवार, बाजरा जैसे धानों के बड़े-बड़े ढ़ेर लगे थे और सभी जगह क्रय-विक्रय की प्रक्रिया जारी थी। कई दुकानों पर भँवरों की भीड़ लगी थी क्योकि वहाँ कपूर, कस्तूरी, कुमकुम, हरताल, आँवला और चंदन बेचे जा रहे थे। रास्ते के पास ही दोनों ओर कहीं तरह-तरह के पुष्पों के ढेर बने थे जिन्हें लोग उछाल कर दूल्हे राजा पर पुष्पवर्षा कर रहे थे। प्रत्युत्तर में दूल्हा राजा इन मालियों को अपनी बख्शीस से निहाल करता, कभी ठहर जाता और कभी महावत से हाथी की चाल धीमी करवाता। स्वामी राजा रामसिंह के हाथी के आगे-आगे कहार अपने कंधों पर एक काठ का तख्ता उठाए चल रहे थे जिस पर कभी बैठ कर कोई गायक गायन करता और कभी गणिकाएँ अपना नृत्य करतीं। वहाँ गायन वादन के सभी तरह के वाद्ययंत्र भी विद्यमान थे।

उनपैं हु महुर रुप्पय उछारि, बुट्ठहिं जन जन्य कि भाद्र बारि ॥
तँहतँह तिन्ह बादक लोभ तानि, लचि लेत होत लय ताल हानि ॥५० ॥

अधिकारी तिनके तिन्ह उतारि, पुनि इतर चढावत न खिन पारि ॥
बिखरत पट्टन सन द्रविन ब्रात, बहु लुट्टत बहु पय रज दबात ॥५१ ॥

पुरलोक बहुरि जिन्ह ढुंढि प्रात, बनि बिबिध गये बहु आढ्य ब्रात ॥
विक्खत कहुँ इँत उत मनिन बार, क्रम बिबिध अर्घ नाना प्रकार ॥५२

पवि नील मुक्तिभव पद्मराग, बैडूर्य बहुरि चउ खिल बिभाग ॥
दुहुँ ओर बहुल कहुँ पट दिपात, जे रांकव बादर क्षौम जात ॥५३ ॥
कौसेय सहित इम चउ प्रकार, बिक्खत दु ओर बर बिबिध बार ॥

इन गायन वादन करने वालों पर बराती मोहरें और रुपये यों उछालने लगे जैसे भाद्रपद माह के मेघ वृष्टि कर रहे हों। इन स्वर्ण मुद्राओं और रजत मुद्राओं को चुगने के लिए लोभवश जब वादक लोग अपना हाथ बढाते हैं और इससे वह लय और ताल को साधने में चूक जाते हैं। लय-ताल की हानि देख कर उनके अधिकारी उस्ताद उन्हें तख्त से नीचे उतार देते हैं और उनकी ठौर दूसरों को चढाते हैं। जो रुपये और मोहरें इस तख्त से उछल कर नीचे गिरते हैं उनमें से कुछ तो रंकों की भीड़ लूट लेती है। शेष कुछ इस लवाजमें के साथ चलते लोगों के पाँवो तले दब कर राह की धूल में खो जाते थे। प्रात:काल में इन्हें अन्य लोग ढूंढ निकालेंगें और इस तरह वे समृद्ध हो जाऐंगे। नगर के प्रजाजन कभी इसे तो कभी उसे इस प्रकार बरातियों की ओर ताकने लगे जिन्होंने कई प्रकार की मणियों की माला से जटित आभूषण पहन रखे थे। वे सभी भिन्न-भिन्न प्रकार के बहुमूल्य रत्नों के समूह कुतूहुलपूर्वक देखने लगे। किसी ने हीरा तो किसी ने नीलम धारण कर रखा था। बरात का कोई सामन्त मोती और माणक जटित आभूपण से सज्जित था। किसी की पहनी हुई वैदुर्य मणि नजर आती अर्थात् सभी प्रकार के रत्नों की कांति वहाँ बरात में नजर आ रही थी। दो-दो के जोड़े से चल रहे बरातियों में सभी प्रकार के वस्त्र भी शोभायमान थे। ऊन, सूत, जूट, और रेशम से निर्मित चारों प्रकार के वस्त्रों से सजे-धजे वे दूल्हे के दोनों ओर चलते सुंदर बराती नजर आ रहे थे।

कहुँ कुंकुम मृगमद सुम प्रकीर्ण, सब ठम अगुरू चंदन बिशीर्ण ॥५४ ॥
दुल्लह सुगंध प्रथम हि दिपात, पुनि नगर जनन सौरभ लिपात ॥
फग्गुन खिन उच्छव फाग फार, कति बिध तस खेलन मरुप्रकार ॥५५ ॥
प्रभु दृगन कहुँक कर्पूर पूर, हितपुब्ब डारि रिझवत हजूर ॥
बलिबलि सुगंधमय द्रव्य ब्रात, जनप्रीत जनन जन्यन जनात ॥५६ ॥
बचि अक्खिन डारत सुरभि बारि, नृप दुल्लह हित सह अति निहारि ॥
जागुड़ मृगनाभिन जानि जानि, प्रभु जन्यन सिंचित हित प्रतानि ॥५७ ॥

कहीं पर केसर, कस्तूरी और पुष्पगंध पसरी थी। सभी जगह अगर और चंदन की सुगंध महक रही थी। इनमें भी दूल्हे राजा को सर्वप्रथम सुगन्ध आती फिर शेष सभी पुरवासी उस सुगंध से सराबोर हो जाते। यह फाल्गुन माह का समय था और मारवाड़ प्रदेश में यह माह होली की फाग का होता है इसलिए प्रजाजन झुण्ड बना कर फाग खेलने में व्यस्त थे। बीच-बीच में कभी दूल्हे राजा की आँख बचा कर कपूर मिश्रित पानी डाल कर राजा को रिझाने का प्रयत्न करते। इसी प्रकार तरह-तरह के सुगंधित द्रव्यों से वे सभी बरातियों का स्वागत करते हुए अपने स्नेह का प्रदर्शन करते। आँख बचा कर वे गुलाबजल बरसाते और राजा दूल्हे की ओर स्नेहभरी नजरें डाल कर उसे बार-बार सींचते जाते। कहीं केसर तो कहीं कस्तूरी के जल से अभिसंचित करते। इस तरह नगरवासी सभी बरात के प्रेमासिक्त स्वागत में जुटे थे।

दुहुँ ओर नारि नर लखि दुरूह, आनत अनेक बिध सुजसऊह॥
कहुँगंधिनि मालिनि बहु प्रकार, फैलावत बर सिर सुरभि फार॥५८॥

बहु कहत अम्ह नृप मति बिचार, सुभ बिधि गय बुंदिय समुझि सार॥
यह जोग दुलह दुलहिन अपुब्ब, बिरचिय कबंध दै दहि रु दुब्ब॥५९॥

कहुं कहत स्वपत गिघोलि खेत, दुल्लह जनक न जो भीर देत॥
होतो अनर्थ तो हाइ हाइ, पै हुव सुभ दुलहिनि दुलह पाइ॥६०॥

इम लखत नगर सोभा असेस, पहु पत्त मुख्य तोरन प्रदेस॥
इम दुल्लह लोहापोरि अंत, बुठ्ठत गो बसु चय सुम बसंत॥६१॥

नगर में प्रयाण करती बरात के दोनों ओर खड़े पुरवासी कठिनाई से समझ में आए ऐसे दूल्हे को देख-देख कर तर्कना करने लगे । वे बीच-बीच में तारीफ और यश भी करते जाते। कहीं पर बरात के स्वागत में मालियों ने तरह-तरह के पुष्पों के हारों के ढेर लगा रखे थे जिनकी मिली जुली खुशबू पूरे वातावरण में तारी थी। दूल्हे राजा को निरख-निरख कर पुरवासी आपस में बातें करने लगते कि हमारा चतुर राजा मानसिंह बहुत सोच विचार कर बून्दी यह सगाई करने गया। सार की बात यह है कि उसका बून्दी जाना शुभ और सार्थक रहा। दूल्हा-दुल्हन की अपूर्व जोड़ी जमेगी। दुल्हन के अतिशय योग्य इस दूल्हे को राठौड़ों ने दही और दुर्वा से ठीक ही पूजा (विवाह की एक रस्म के अनुसार यह किया जाता है कि दूल्हे को दुर्वा और दही चढाया

जाता है।) कुछ लोग कानाफूसी करते कहने लगे कि पूर्व में जब हमारा राजा गिंघोली (उदयपुर कृष्णा कुमारी से विवाह करने) गया था यदि उस समय इस दूल्हे के पिता ने जोधपुर की सेना की सहायता न की होती तो भारी अनर्थ हो जाता पर उसकी सहायता से जोधपुर का शुभ ही हुआ। अब इस विवाह से तो और भी शुभ हुआ है। इधर बून्दी का हाड़ा राजा रामसिंह भी दूल्हे के वेश में हाथी पर आरूढ होकर जोधपुर नगर की शोभा निरखता हुआ अन्ततः महलों के मुख्य (तोरणद्वार) द्वार पर पहुँचा और महलों की लोहपोल (जोधपुर के मेहरानगढ दुर्ग केप्रथम दरवाजे का नाम है) तक दूल्हा राजा पूरे रास्ते भर धन यों बरसाता गया जैसे बसन्त ऋतु में पेड़ों से पुष्प गिरते हों।

मृगमद पटरि कुंकुम मिलाप, छिरक्यो बर फग्गुन समय छाप॥
बुट्ठिय पहु तह बहु बसु बिसेस, अंदर लिय सह बिधि सुबर एस॥६२॥

बहुबिध बहुदासिन सखिन बार, किय पुनि नीराजन सह प्रकार॥
त्रिक नाड़िन जावत रजनि जत्थ, पहुँच्यो मह दुल्ह स्वपुर पत्थ॥६३॥

पहु मान आइ पहिले पउट्ठ, तक्किय मिलि सम्मुह अधिक तुट्ठ॥
जावत घटिका चउ रजनि जाम, किय समिति फत्तैमहल सु प्रकाम॥६४॥

कापरनि ईस सामंत काज, दिय गद्दि आदि रुट्ठोरराज॥
बैठार्‌यो नृपदिस इम सु बीर, ध्रुव बैठे सम थित दुबहि धीर॥६५॥

रास्तें में पुरंवासियों ने केसर कस्तूरी और केसर युक्त जल दूल्हे पर होली का अवसर जान कर छिड़का था पर प्रत्युत्तर में दूल्हे राजा ने धन छिड़का अर्थात् धन की वर्षा की। इस तरह बरसने वाले हाथों वाले इस सुन्दर दूल्हे को पूरे विधि-विधान से दुर्ग के भीतर प्रवेश कराया गया। यहाँ पहुँचने पर दुल्हन की सखियों और दासियों के हुजूम ने फिर से दूल्हे राजा की आरती उतारी और तीन घड़ी रात गये पूरी धूमधाम से उत्सवपूर्वक धीरे-धीरे विचरण करता वहाँ पहुँचा। राजा मानसिंह ने पहली सीढ़ी तक सम्मुख आ कर अपने जामाता राजा और उसके साथियों को निहारा और मन ही मन प्रसन्न हुआ। वह सभी से मिला और चार घड़ी रात गये मेहमानों के साथ फतहमल में राजदरबार का आयोजन हुआ। अपने दरबार में राठौड़ राजा ने दूल्हे राजा के साथ आए उसके सामन्त कापरनी के जागीरदार को बैठक प्रदान की। फिर वह अपने जामाता और बून्दो के राजा के साथ गद्दी पर बैठा।

दोनों धीर-वीर राजा बराबर के आसन पर आसीन हुए।

ईसान नृपन मुख दुहुँन आस, सामंत अनिल दिस मुख सुभास ।।
थित सख्य मान दाहिन थिरेस, इम हुव समाज कछु काल एस ।।६६ ।।

रहि इक मुहूर्त संसद रसेस, पुनि परिग पंति भोजन प्रदेस ।।
पश्चिम मुख बैठे तहँ नृपाल, थित पट्टुन चउ बिध असन थाल ।।६७ ।।

जुरि पंतिन पंचम पेय जुत्त, बिस्तरिय भिघा सूदन बहुत्त ।।
जल थल भव दुव बिध अन्न जात, पल त्रिबिधि खचर जुत बिधि दिपात ।।६८ ।।

प्रतिथाल साकगन दस प्रकार, बिस्तरि पुनि तेमन बिबिध बार ।।
इम बरि परिबेसन द्रुत असेस, रस छ जुत पत्त हुव दुव रसेस ।।६९ ।।

इस समय दोनों राजाओं का मुँह ईशान दिशा की ओर था और शेष सारे उमराव वायु कोण में मुँह कर बैठे। इस समय राठौड़ राजा बाईं और बैठा और हाड़ा राजा दाहिनी ओर। आसन ग्रहण करने के थोड़ी देर बाद तक राजसभा चली। दो घड़ी तक का समय राजसभा में बिताने के बाद भोजन की व्यवस्था हुई । पंक्तिबद्ध होकर नियम से सभी बिराजमान हुए। यहाँ दोनों राजा पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके बैठे। जहाँ चार बाजोटों (पट्टे) पर विविध व्यंजनों से भरे थाल धरे गए। पाँचवी पांत (पंक्ति) इन सरदारों की जुड़ी जो मद्यपान करने वाले थे। उनके आगे उम्दा शराब परोसी गई। यहाँ तब रसोईदारों ने कई तरह के व्यंजनों के भेद फैलाए अर्थात् कई तरह के खाने परोसे गए। जल में उत्पन्न अन्न अर्थात् चावल और थल से उत्पन्न गेहूँ दोनों तरह के अन्न, अच्छी तरह से पकाया हुआ तीनों तरह का माँस अर्थात् बकरा आदि ग्रामपशु, सुअर आदि वन पशु और नभचर पक्षियों का माँस परोसा गया। प्रत्येक थाली में दस प्रकार की सब्जियाँ और अनेक प्रकार की मिठाईयाँ परोसी गईं। इस तरह की परूसगारी होने के बाद दोनों राजाओं के साथ सभी मेहमानों ने खटरस व्यंजनों का आस्वादन किया।

जहँ चसक चसक मनुहारि जात, प्रभु रूच्य नट्यो सनियम दिपात ।।
रतपान बुद्ध दिय हारि राज्य, तस सुत उम्मेद सु कियउ त्याज्य ।।७० ।

बर अक्खिय स्वसुर हिं इम प्रबीर, सामंत तदपि किय पान सीर ।।
पुनि लहि अदेस सब असन पाइ, उट्ठिय लहि बीटक जल अचाइ ।।७१ ।

कछुखिन रहि संसद हित प्रकाम, तब दिय सब जन्यन सिक्ख ताम ॥
पधराइ प्रभुहिँ अवरोध प्रीत, गावत गन बंदिन बिरुद गीत ॥७२ ॥

कुलदेवि कबंधन नागनेचि, पूजाइ प्रभुहि सुम निकर सेचि ॥
सज्जा पोढाये नृप स्वगेह, अभिलाखिन सुर तरु रजनि एह ॥७३ ॥

पंक्तिबद्ध बिराजे सरदारों में आपस में मद्य के प्याले-प्याले पर मनुहारें हुईं (रस्मानुसार निछरावल के रुपयों के साथ मनुहार होती है।) पर हाड़ा राजा ने विनम्रता पूर्वक मद्यपान से इनकार किया। पूर्व में हाडा राजा बुधसिंह ने मद्यपान में प्रीति बढ़ा कर बून्दी का राज खो दिया था। इसी से उसके बाद उसके पुत्र राजा उम्मेदसिंह ने भी मद्यपान से परहेज रखा। उस प्रवीण राजा रामसिंह ने विनयपूर्वक अपने श्वसुर राजा के समक्ष ये नजीरें देते हुए मद्यपान से क्षमा चाही। हाँ, उसके सामन्तों ने अवश्य राठोड़ों के साथ मद्यपान में साझा किया। इसके बाद सभी सरदारों ने अपने-अपने राजा से आज्ञा लेकर भोजन किया और सभी आचमन के बाद पान का बीड़ा ले कर उठे। भोजन के बाद कुछ देर तक फिर से सभी राजसभा में बैठे। इसके बाद हाड़ा राजा के साथ वालों को अपने डेरों पर जाने की विदाज्ञा मिली और दूल्हे राजा को प्रीतिपूर्वक महलों मे ले जाया गया। जहाँ बंदीजनों ने बिरुदावली गाई। हाड़ा राजा तब राठौड़ों की कुलदेवी नागणेची के थान पर ले जाया गया जहाँ उसनें पुष्पों से देवी की अर्चना की। इसके बाद हाड़ा राजा को रंगमहल की शय्या पर ले जाया गया ताकि वह चिरअभिलाषित अपनी सुहागरात मना सके।

इह बर स्वासुर कुल तियन आइ, लहि कछुक काल अतिहित लडाइ।
लखि समय कियउ दंपति मिलाप, इहिँ काल बुद्धि बसु हुव अमाप ॥७४ ॥

बहुरीति चतुर बर रचि बिधेय, सद्धिय सब लौकिक सहित श्रेय ॥
रहि सुख सह बित्तत उचित रत्ति, घन गानाजीविन द्रविन घत्ति ॥७५ ॥

नृप आइ प्रात निज पटनिकाय, राजस सुख बिलसत हड्डु राय ॥
तिम निवसि दिवस बावीस सत्थ, सब तर्कुक जन करि बसु समत्थ ॥७६ ॥

बहु अप्पि हरन सब बिधि बिसेस, नृप मान तुष्ट करि बर निसेस ॥
ग्रामक उपेत केकीन्द्र द्रंग, पुनि मान सुता हित हित प्रसंग ॥७७ ॥

इसी समय हाड़ा राजा रामसिंह के श्वसुर के कुल की स्त्रियां एकत्र हुईं और उन्होंने वहाँ आ कर थोड़ी देर तक दूल्हे को लाड लडाया (गीत, पहेली आदि द्वारा जामाता को लाने की एक रस्म जो ससुराल में होती है।) फिर जब वे गीत गा कर चली गईं तब समय पा कर इस नवदम्पति का मिलाप हुआ और इस अवसर पर एक बार फिर दूल्हे राजा ने धन की वर्षा की। इस प्रकार चतुर दूल्हे राजा ने सारे लौकिक विधि-विधान का पालन करते हुए सभी रस्मों का निर्वाह किया और यश अर्जित किया। सुहागरात की रात्रि को हाड़ा राजा ने वहीं रंगमहल में व्यतीत किया और गायन से अपनी आजीविका कमाने वाले याचकों (रस्म के अनुसार रंगमहल के बाहर गायक पूरी रात गाते हैं) को प्रचुर धन दिया। प्रात:काल हाड़ा राजा जोधपुर के महलों से चल कर वापस अपने बरात के डेरे पर आया। यहाँ राजा रामसिंह ने राज्य सुख भोगते हुए बाईस दिन की अवधि बिताई और सारे याचकगणों को धन का वितरण कर उन्हें समर्थ बनाया। इस अवसर पर राजा मानसिंह ने अपनी पुत्री को केकीन्द नामक नगर सहित कुछ गाँवों की जागीर प्रदान की और दहेज में पच्चीस हजार मुद्राएँ देकर पुत्री को दामाद के साथ प्रीतिपूर्वक विदा किया।

अतिकृति सहस्त्र मित दम्म आय, दै दुव लड़ाइ पठये सदाय ॥
रइयाँ पुरेस सिवनाथसीह ,मेरतियन मालिक बल अबीह ॥७८ ॥

रुचिभाजन नाजर अमृतराम, तिन दुहुँन सिक्ख दिय संग ताम ॥
लक्खन मित सब सन धन लुटाइ, भूखन गय हय मय दान भाइ ॥७९ ॥

सब चुकि सके न तब कति स्वसंग, आयो लै जाचक छबि अनंग ॥
मधु असित आदि तिथि चढि महीप, दरकुंचन प्रस्थित बंसदीप ॥८० ॥

मीनाऽर्क बिसन पुर न सुभ मानि, पटगृह केदारेश्वर प्रतानि ॥
इह करि बनीयकन खिलन आढ्य, संसद बुलाइ सब जस समाढ्य ॥८१ ॥

सह मह आस्वासन तिन्ह सराहि, दिय सिक्ख सबन दारिद्र दाहि ॥
निवसन करि बहुदिन तह नरेस, आरंभिय अवसर पुर प्रवेस ॥८२ ॥

पुत्री की विदाई के समय राठौड़ राजा मानसिंह ने रियां के निर्भय वीर जागीरदार और अपने मातहत शिवनाथसिंह मेड़तिया सहित अपने प्रीतिपात्र नाजर अमृतराम को भी बरात के साथ बून्दी जाने की विदाज्ञा दी और साथ

भेजा। लाखों रुपयो की राशि, सिरोपाव, आभूषण, हाथी, घोड़े और ऊँट दान में देकर सभी याचक गणों को प्रसन्न कर हाड़ा राजा रामसिंह जोधपुर से अपनी राजधानी बून्दी के लिए रवाना हुआ। इस विवाह के अवसर पर जो याचकगण दान पाने से वंचित रह गए उन्हें वह कामदेव की छवि वाला हाड़ा राजा बून्दी अपने साथ ले कर आया ताकि बून्दी में उन्हें इनाम दे सके। चैत्र माह के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि के दिन अपने कुल के दीपक हाड़ा राजा ने अपने लवाजमें सहित जोधपुर से प्रस्थान किया पर आगे बूंदी के प्रवेश के समय चूंकि सूर्य मीन राशी की संक्रांति में था और यह गृह-प्रवेश का अशुभ मुहूर्त्त गिना जाता है यह सोच कर हाड़ा राजा ने केदारेश्वर महादेव के स्थान पर शिविर लगाया और वहीं ठहरा। यहाँ हाड़ा राजा ने राज-दरबार लगाया और अपने साथ आए याचकगणों को दान दे कर यश अर्जित किया। राजा ने इन याचकों को भी धनाढ्य बनाया और उत्सवपूर्वक उनके दारिद्र्य का दहन कर उन्हें वापस अपने वतन को जाने की विदाज्ञा दी। शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा में यहाँ कई दिन राजा ने मुकाम किया और उचित अवसर आने पर ही अपने नगर में प्रवेश किया।

दोहा

श्राम्राध गत पक्ख सित, तिथि.....दिन तत्थ।
प्रविसे दिन पच्छिम पहर, सहर सकल बल सत्थ ॥८३॥

हाड़ा राजा रामसिंह ने तब वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की........... तिथि के दिन तीसरे प्रहर के बाद अपनी सेना और सामन्तों सहित अपनी राजधानी बून्दी नगर में विवाह के बाद प्रवेश लिया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूकेउत्तरायणेनवम राशो रामसिंहचरित्रे महारावराजरामसिंह योधपुरविवाहानन्तरबुंदीपुरप्रवेशनं षष्ठो मयुखः आदितः अष्टषष्ट्युत्तरद्विशततमः ॥३६८॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में महारावराजा रामसिंह का जोधपुर में विवाह करके वापस बून्दी आने का छठाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ अड़सठ मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

पुर प्रविसन पूरजन प्रचुर, स्वामि लखन हित संग।
कढिहु करत दरसन किते, अरु चुंबक बिध अंग ॥१ ॥

अटत जाय बन ताल तट, दिपत उदीची द्वार।
बिसि गोपुर बिख्यो सु त्वर, पुर निज बिबिध प्रकार ॥२ ॥

हे राजा रामसिंह! जब बून्दी का राजा रामसिंह (आप स्वयं) जोधपुर से अपना विवाह सम्पन्न कर वापस बून्दी आया तब वधू सहित आपके नगर प्रवेश के समय अपने राजा-रानी को देखने के लिए बून्दी के निवासी उलट पड़े। वे यह सोच कर कि राजा-रानी जब यहाँ से गुजरेंगे तो उनकी एक झलक पा जाएगें। इस उत्साह से खिंचे हुए वे इस प्रकार आकर्षित हुए जैसे चुंबक के पास लोहे का बुरादा आकर्षित होता है। तालाब के किनारे और पेड़ों के साथ सटे पुरनिवासियों की नजर में उत्तर दिशा वाले नगर के प्रवेशद्वार का ही आकर्षण था क्योंकि यहीं से राजा प्रवेश करने वाला था। यही कारण था कि राजा ने जब अपने पुर को देखा तो उमे अपना पुर कुछ नया-नया सा लगा। उसने हैरत के साथ विविध प्रकार से अपने नगर का पुनरावलोकन किया।

भुजंगप्रयातम्

उदीची दिसा द्वार यौं भूप आयो, प्रवेस्यो पुरी सज्ज सेना सुहायो।
दिप्पो अप्पनो द्रग श्रृंगार सज्ज्यो, लखै इंद्र को श्रीद को नैर लज्ज्यो ॥३ ॥

पइठ्ठो तहाँ द्रंग याँ जेव पायो, अकस्मात ज्याँ काय भैं प्रान आयो।
कहौं बप्र प्राकार सोहै सुधारैं, कहौं कंगुरे मंजु ऊँचे अटारै ॥४ ॥

कहौं ग्राव पै टंक मा मंजु मंडे, कहौं भोन चक्री धरैं चक्र भंडैं।
कहौं सार व्योकार के कूट बज्जैं, कहौं बर्णचंचून के लेख रज्जें ॥५ ॥

कहौं बर्द्धकी स्यंदनाली सुधारैं, कहौं कंदुजीवी हवी कंदु डारै।
कहौं चैल चंगे बनै तंतुबाई, कहौं उब्बटै अंग अंतावसाई ॥६ ॥

जिस समय उत्तर दिशा वाले नगरद्वार से राजा नगर के भीतर आया उस समय वह अपनी सज्जित सेना और सजेधजे बरातियों के मध्य अलग ही

शोभा दे रहा था। राजा को इस रूप में देखना पुरजनों को बहुत भाया। राजा को भी अपना नगर नई सजधज के साथ ऐसा नजर आया कि उसके समक्ष इन्द्र की पुरी अमरावती और कुबेर की पुरी अलकापुरी भी फीकी लगी। राजा के नगर में प्रवेश लेते ही नगर ने अपना सौन्दर्य पाया जैसे अचानक किसी देह में फिर से प्राण आ बसे हों। अभी धूल कोट और शहरपनाह दोनों मरम्मतशुदा होने से सुंदर लग रहे थे। वहीं गढ़ के कंगुरे और महल की छतें भी रंगी-पुती शोभा दे रही थीं। कहीं पर पत्थरों पर छेनी (टांकी) से सुन्दर मुर्तियाँ उकेरी हुई थीं। कहीं पर कुम्हारों के घरों में चाक पर नये भांडे बन रहे थे। कहीं लुहार की ऐरन पर ठकाठक घण बज रहे थे। कहीं दीवारों पर चित्रकार (चितेरे) अपनी कलओं से चित्र बना रहे थे और पास ही बने हुए चित्र शोभा दे रहे थे । कहीं पर बढई रथों की पंक्तियों की मरम्मत कर रहे थे। कहीं पर हलवाई अपने कड़ाव में मिठाईयाँ बनाने को घी उड़ेल रहे थे। कहीं जुलाहे नया कपड़ा बुनने में व्यस्त थे तो कही मालिस करने वाले नाई अपने ग्राहको के शरीर पर उबटन मल रहे थे।

भ्रमासक्त मंजै कहों हेति भारी, धरैं सान झंझान फुल्लिंग धारी ॥
बढे बस्त्र जोरैं कहों तुन्नवाई, छमंकैं कहों पिंजरी तूल छाई ॥७॥

कहों सूत कासी चितीभूत चोरें, कहों सीस कत्थीर के जाल जौरैं ॥
कहों च्रित्र आवास मंडैं चितारे, कहों स्तोत्र बंदी पढैं नव्य न्यारे ॥८॥

कहों के करै मालिनी माल्य भंगै, कहें रंगरेजावली चैल रंगें ॥
कहों ब्रीहि गोधूम के गंज भारी, कहों रासि मप्पैं गहैं द्रोन खारी ॥९॥

कहौं रक्त रीतीन के गंज डारे, कहों नैर नाना रुपय्ये बिथारे ॥
कहों स्वर्णकारावली हेम तुल्लै, कहौं ग्राम गंधीन के गंध खुल्लै ॥१०॥

नगर में कहीं पर सकलीगर अपनी सान पर शस्त्रों को धार दे रहे थे और नीचे बैठे सान को फिराने वाले के सिर पर सान की रगड़ से शस्त्रों से उठती चिनगारियाँ पड़ रही थी। कहीं पर दर्जी कटे वस्त्रों को जोड़ने हेतु मिलाई कर रहे थे और कहीं पर पिनारों के यहाँ धुनी हुई रूई के नीचे चलती हुई धुनकी 'धुन-फट' का शोर कर रही थी। कहीं ठठेरे के घर के आगे पारा और काँमे का ढेर नजर आता तो कहीं जालगरों की दुकान के सामने सीसा

और रांगा (कथीर) मिलाया जा रहा था। किसी घर की भींत पर चितेरे चितराम उकेर रहे थे। और कहीं पर बंदीजन नई-नई स्तुतियाँ उच्चराते खड़े थे। किसी स्थान पर मालिनियाँ अलग-अलग तरह की मालाएँ गूँथने में व्यस्त थीं तो कहीं रंगरेज अपने रंगे वस्त्रों को पंक्तिबद्ध सुखाने हेतु डोरियों पर पसारने में व्यस्त थे। किसी दुकान के आगे धान का ढेर लगा था तो कहीं गेहूँ की राशि थी जो द्रोण (एक नाप बत्तीस सेर के बराबर) और खारी (टोकरी, एक नाप विशेष जो सोलह द्रोण के बराबर होता है) के मापों से दी जा रही थी। कहीं पर पीतल और तांबे से बनी वस्तुओं के ढेर लगे थे और किसी दुकान में सिक्कों और रेजगारी की ढेरियां लगी थीं। कहीं पर सुनार लोग स्वर्ण तोल रहे थे और कहीं पर गंधियों की हाटों से खुशबू फैल रही थी।

कहौं थंभ संबद्ध तुल्लै तराजू, कहों हेम हिंडोल बंधे दुबाजू॥
कहों निक्खसैं नीर कुल्या प्रणाली, कहों ब्रच्छ सोहैं बनैं आलबाली॥११॥

कहों कै घटीजंत्र चल्लैं चठठ्ठैं, कहों नीति की प्रीति धी भीति नठ्ठैं॥
खलूरी कहों खग्ग के मग्ग सद्धैं, कहों तोत्र के राह मैं लाह लद्धैं॥१२॥

कहों बान संधान पच्छीन पारैं, कहो झारि बंदूक गुंजा उतारैं॥
पटेबाज के ढाल तैं वार पेलैं, कहौं मल्लबिद्या बढे दाव मेलै॥१३॥

कहौं बाल हुल्लास कै रास रच्चैं, कहों भट्ट बुल्लें कहौं नट्ट नच्चैं॥
कहों खंजरी झज्झरी ढोल गज्जैं, कहों डिंडिमी दुंदुभी चंग बज्जैं॥१४॥

राजा ने देखा कि कहीं नगर के बाजार में थंभे पर (कांटे) तराजू बंधे हैं और उनके दोनों सिरों पर सुनहरी डोरी से बंधे पल्लड़ लटक रहे हैं। कहीं पर मार्ग की बाजू में नहरों और नालियों मे पानी बह रहा है। कहीं पर पेड़ अपने तने के नीचे बने गोलाकार गड्ढों (आलबाल, कुंडाले) से शोभित हैं। कहीं निरंतर 'घर्र-घर्र' की ध्वनि के साथ चक्कियाँ चल रही हैं। कहीं पर नीति की प्रीति से बुद्धि का भय नष्ट हो रहा है अर्थात् नीति की चर्चा हो रही है। कहीं अखाड़े में तलवार चलाने के दाँव साधे जा रहे हैं तो कहीं भाले फिराने का मजा लिया जा रहा है। कहीं पर तीर संधान कर आकाश में उड़ते पक्षी गिराये जा रहे हैं तो कहीं बंदूक के निशाने ताक कर चिरमी जैसे छोटे लक्ष्य बेधे जा रहे हैं। कहीं पट्टेबाजों के वार ढालों पर झेले जा रहे हैं तो कहीं

पर पहलवान मल्लविद्या के पेंतरे आजमा रहे हैं। कहीं पर हर्षोल्लास में बच्चे नाच रहे हैं तो कहीं पर भाट बिरुद बोल रहे हैं और कहीं पर नट खेल दिखा रहे हैं। कहीं पर खंजड़ी, झांझ और ढोल बज रहे हैं तो कहीं डिंडिम, चंग और दुंदुभियाँ बज रही हैं।

कहों तंति की पंति पै कोन लग्गैं, कहों बारनारी नचैं द्वार अग्गैं॥
कहों सुद्ध श्रंगार की धार चल्लैं, कहो हास उल्लास आभा उझल्लैं॥

मचैं क्कापि कारुण्य के उग्र मंडैं, कहों बीर आतंक अक्खैं अखंडैं॥
बनैं क्कापि बीभत्स के चित्र बल्लैं, कहों सांत मैं कांत निर्बेद खुल्लैं॥१६॥

कहौं भारती सात्वती वृत्ति आनैं, कहों कौसिकी आरभट्टी बखानैं॥
कहों नाटक प्पक्रिया भाण कढ्ढैं, प्रहासाख्य डिंबाख्य व्यायोग पढ्ढैं॥१७॥

समाबादिकारात को क्कापि सढ्ढैं, कहों अंक बीथीन सौं नैर नढ्ढैं॥
कहौं केक ईहामृगैं अच्छ आनैं, बढे पंक्ति संख्याहि एकैं बखानैं॥१८॥

कहीं पर तंतुवाद्यों के तारों पर मिजराब उन्हें झनझनाते हुए फिसल रहे हैं और कहीं किसी द्वार पर गणिकाएँ नृत्य कर रही हैं। कहीं पर शुद्ध श्रृंगार रस की धारा बह रही है तो कहीं हँसी ठहाकों के मध्य हास्य रस शोभा पा रहा है। कहीं पर करुण रस, तो कहीं रौद्र रस की सृष्टि हो रही है। कहीं वीर रस की छटा है, तो कहीं भयानक रस उच्चारित हो रहा है। कहीं विभत्स रस के चित्र श्रोताओं के समक्ष उकेरे जा रहे हैं, तो कहीं अद्‌भुत रस वाली रचना पढ़ी जा रही हैं। कहीं पर सुन्दर निर्वेद शांत रस प्रकाशित हो रहा है अर्थात् सभी नौ रसों का रसास्वादन हो रहा है। कहीं पर भारती (नाटक का भेद) तो कहीं पर सात्वती (नाटक का भेद) खेला जा रहा है। कहीं पर कौसिकी तो कहीं आरभटी का मंचन हो रहा है। कहीं पर नाटक प्रकरण और भाण खेले जा रहे हैं। तो कहीं पर प्रहसन (प्रहास) और डिम और व्यायोग आदि शैली की नाट्य कृतियाँ पढी जा रही हैं। कहीं समवकार, तो कहीं अंक नाटक की इन वृत्तियों से कलाकारों ने नगर को बांधसा (मंत्रमुग्ध)रखा है।

कहौं रूप कै अंत लै यों उपादी, बदैं अंग संख्या समाक्षेप बादी॥
मुखे नाटिका भाणिका अंत मप्पी, थिरा पंक्ति ओ अठ्ठ ए सर्ब थप्पी॥१९॥

मिति पंक्ति ह्याँ रूपकाख्या प्रमानी, जथा अठ्ठ भू ते उपाद्याहु जानी॥
कहों स्तंभ प्रस्वेद रोमांच कत्थैं, स्वरामोट लै अश्रु वैवर्ण्य सत्थैं॥२०॥

कहौं कंप केठां प्रलै भाव भासैं, कहौं पीठ मर्द प्रहासी बिलासैं ।।
सजैं क्वापि संगीत कालानुसारी भने बत्ति के जात के भेद भारी ।।२१ ।।

मचे व्हाँ श्रुति बेद बाईस मोहैं, स मैं चो म मैं चो प मैं चो हिं सोहैं ।।
गिने रे रु धे त्रि त्रि द्वै ग नी मैं, सुलै तीब्रिका छोहिनी अंत श्रीमैं ।।२२ ।।

कहीं पर पंक्ति (रूपक) अर्थात् दृश्यकाव्य उपस्थित है (पंक्ति नाम का नाटक का कोई भिन्न भेद नहीं यहाँ पंक्ति का अर्थ रूपक से है।) जिसमें समाक्षेपवादी, मुख, नाटिका, भाणिका को समाहित मानते है अर्थात् उसी के अंग मानते हैं। साहित्य में दस प्रकार के रूपक माने जाते हैं और आठ अन्य अर्थात् कुल भेद इसके अठारह हैं (पंक्ति को यहाँ रूपक का नाम बताया गया जिसके अठारह उपभेद माने जाते हैं।) नगर की गलियों में इन रूपकों का जिनमें मिश्रित वृत्तान्त होते हैं का बोलबाला है। कहीं पर स्तंभ, प्रस्वेद, रोमांच आदि हावभाव कहे जा रहे हैं तो कहीं स्वरभंग (स्वरामोट) में अश्रु और वैवर्ण्य प्रकाशित किये जा रहे हैं। कहीं पर कंप तो कहीं प्रलय के भाव दिखाए जा रहे हैं । कहीं पर पीठमर्द और प्रहासी भाव का विलास हो रहा है। कहीं पर समयानुसार उचित संगीत सज रहा है और संगीत के सारे भेदों की बातें हो रही हैं। कहीं पर बाईस प्रकार की रागनियाँ मोहित कर रही हैं। तो कहीं षड्ज में चार, मध्यम में चार और पंचम में चार श्रुतियाँ शोभित हैं। तो कहीं ऋषभ में तीन, धैवत में तीन तथा गांधार मे और निषाद में दो दो श्रुतियाँ निकाली जा रही हैं इस प्रकार तीव्रा से ले कर छोहनी के अंत तक सभी श्रुतियाँ शोभा दे रही हैं।

लसैं पंच ही जाति दीमादि लैकैं, छटैं जे जथा भाग सों राग छैकैं ।।
मचे मोद त्रि ग्राम खड्गादि मंडैं, मिलि मूर्छना इक्कबीसी अखंडैं ।।२३ ।।

क्रिया गीत्य लंकार ओ गामकाऽऽदी, बदै रम्यता जुष्ट के पुष्ट बादी ।।
कहों सैंधवी कम्म आलाप आनैं, मुखारी कहों गौड़ मालंग मानैं ।।२४ ।।

कहों राग घंटा रमा टक्क कड्ढै, पहाड़ी बिहंगाख्य सामंत पढ्ढैं ।।
कहौं कोकिलैं कोकिलालाप कूजैं, प्रगाता कहौं कर्णटी मारु पूजैं ।।२५ ।।

कहौं नाट कल्ल्यान गौरी कुरंगी, स सौदामिनी कौमुदी चक्रि संगी ।।
बराली कहौं एल पट्टाऽऽदि बंधै, सबै ठाँ ग्रह न्यास अंसादि संधैं ।।२६ ।।

नगर के गुणीजनों के यहाँ दीप्ति से आरंभ हो कर राग की पाँचों ही जातियों के अभ्यास हो रहे हैं और रागों की निराली छटा व्याप्त है। कहीं पर षड्ज से शुरूआत कर तीनों ग्राम रचे जा रहे हैं जिनमें इक्कीस ही प्रकार की त्रुटि रहित मूर्छनाओं का समावेश है। क्रिया, गीत, लयकारी और गमक सभी एक से बढ़ कर एक सुंदर हैं। कहीं सैंधवी राग के अलाप सुनाई दे रहे है तो कहीं विशुद्ध गौड़ राग मुखर हो रही है। कहीं सांलग, रंभा, घंटा, और टक्क राग फूट रही है तो कहीं पहाड़ी, सामंत और विहाग मुखरित हो रही है। कहीं कोयल जैसे मीठे सुर में राग कोकिला गाई जा रही है तो कहीं पर कर्णाट और मारु के सुर सुनाई दे रहे हैं। कहीं पर नाट, कल्याण, गौरी, कुरंगी, कौमुदी, चक्री और सौदामिनी रागें गाई जा रही हैं। तो कहीं से बराली,एल,पट्टा आदि के पदबंध सुनाइे दे रहे हैं। सभी जगह इन रागों के अंशों के विन्यास साधे जा रहे हैं। इस तरह कुल एक सौ बाईस रागों की रागावली नगर में प्राणवंत हो उठी है।

अहो एकसो अग्ग बावीस अैंसे, पुरी मुख्य रागावली प्रान पैंसैं॥
निबद्धा निबद्धाऽख्य व्है भेद न्यारे, अनुप्रास लैं आदि मध्यान्त वारे॥२७॥

गहैंक्कापि व्हाँ पंक्ति संख्या गुणाली, सजैंक्कापि त्रेता प्रबंधाऽऽख्य साली॥
कहौं ताल चंचत्पुटैं लै क्रमावैं, कहौं चाचसौं लै पुटैं लीन लावैं॥२८॥

कहौं षट् पितापुत्र उद्घट्ट कढ़ैं, बनैं मार्ग तालाख्य यौं सर्ब बढ़ैं॥
कहौं ताल देशीय लै मैं क्रमावैं, लखो जे जथा संभवी छंद लावैं॥२९॥

कहौं ताल श्रीरंग लै मैं निकासैं, भले मंठि के चञ्चरी मंठ भासैं॥
कहौं मल्लिकामोद मैं मोद कढ़ैं, पगे पूर्ण कंकाल त्यौं मल्ल पढ़ैं॥३०॥

ये राग जिन जिन तालों में निबद्ध हैं उनके नाम से फिर आगे इनके भेद हो रहे हैं। इनमें भी अनुप्रास ले कर आदि और मध्यान्त वाले भेद अलग से हो रहे हैं। कही पर गायक एक पंक्ति ग्रहण कर उसे दस के गुणनखंडों की संख्या में दुहरा कर उसे अलग-अलग रूपों में सजा रहे हैं। कहीं पर त्रिताल में निबद्ध कर उन्हें प्रबंधात्मक बना रहे हैं। कहीं पर चञ्चुपुट ताल में ले कर गायक अपनी राग को आगे बढ़ा रहे हैं तो कहीं पर चाच के पुट में लीन कर रहे हैं। कहीं षटताल और त्रिताल का जोड़ा ऐसे मिला रहे हैं जैसे बाप-बेटे

की जोड़ी हो। कहीं उद्घुट्ट ताल निकाली जा रही हैं और इस तरह ताल के नामों वाले मार्गो (पद्धति) का अनुसरण कर गायक अपनी-अपनी राग बढा रहे हैं। कहीं पर देशी ताल में लय को धीरे-धीरे बढाते हैं और उसमें भी यथासंभव अनुरूप छंद को ढालते हैं। कहीं पर श्रीरंग ताल में लय निकाल कर मंठी ताल को चंचरी ताल में शोभित करते हैं। कहीं पर मल्लिकामोद ताल में मोदपूर्वक लयकारी निकाल रहे हैं और कही पर पूरी तरह से पूर्ण और कंकाल ताल की तरह मल्लताल को साधते हैं।

कहौं झुम्मरी हंस झंपा क्रमावैं, सु लै स्कंद त्यौं सिंह घत्ता समावैं॥
तथा चित्र कुंताख्य लै एकताली, मचैं ब्रह्म ज्यौं रुद्र त्यौं बिंदुमाली॥३१॥

कहौं इक्क लै सर्बही ताल सद्धैं, बिधा व्याह के राह के लाह लद्धैं॥
ठनैं देव आगार घँटा ठनंकैं, कहौं झल्लरी कुंबु झंझा झनंकैं॥३२॥

कहों धाम आराम आमोद खुल्लै, कहों दारु के लोल हिंडोल झुल्लै॥
कहों द्वार बाजार हट्टा कँवारी, सुढारी सजी चित्रकारी सँवारी॥३३॥

कहौं कुट्टिमागार भंडार भासैं, नये ओक बासोक के सोक नासैं॥
कहों संधिला मग्ग शृंगाट सोहैं, कहों चत्वराऽऽली मिलि चित्त मोहैं॥३४॥

कहीं पर झुम्मरी ताल का प्रयोग हो रहा है तो कहीं हँसताल और झंपताल बढ रही है तो कहीं लय को स्कंदताल से आरंभ कर सिंहताल और गतताल (घत्तताल) में समाहित कर रहे हैं। कहीं पर चित्रताल और कुंतताल जैसे इकताले बज रहे हैं तो कहीं ब्रह्मताल, रुद्रताल और बिदुंमाली ताल का प्रयोग हो रहा है। कहीं पर गायकी में एकताल से लगा कर सभी तालों को साधा जा रहा है। कुल मिला कर अपने राजा के विवाह की खुशी में पुरवासी कलावतों को अपनी विद्या का आनन्द लेने की राह मिल गई है। कहीं मन्दिरों में घंटे घनघना रहे हैं तो कहीं झालर, झंझा और शंख बजाए जा रहे हैं। कहीं पर घरों में, तो कही बाग-बगीचों की भीनी-भीनी खुशबू के मध्य काठ के सुंदर चपल झूले झुलाये जा रहे हैं। कहीं घरों के द्वारों पर, हाट बजार की किंवाड़ियों पर सुन्दर सजावट के मध्य चित्रकारी कर उन्हें सँवारा जा रहा है। कही पर सजे धजे छोटे-छोटे घर नजर आ रहे हैं तो कहीं भंडार शोभा दे रहे है। रंगे पुते नये घर और शयनागार शोक का नाश कर उछाह प्रकट कर रहे

हैं। कहीं पर सुरंगें (गुप्त मार्ग) सजी हैं तो कही चौराहे सजे हैं और कहीं घरों के बाहर बनी चबूतरों की पंक्तियाँ लीपी-पुती अपनी अलग छटा बिखेर रही है और लोगों का चित्त मोह रही है।

कहों गोख जाली लगे तोखकारी, कहों सौध संधानिका चित्रसारी ॥
कहों सुभ्र संदानिनी हस्तिसाला, कहों मंदुरा बीतिमाला बिसाला ॥३५ ॥

कहों भित्ति लै कित्ति बेदी बिलासैं, कहों अंगना अङ्गना भा प्रकासैं ॥
कहों पुण्यप्रासाद खुल्लैं पताका, रजैं हेम के कुंभ ज्यों चंद राका ॥३६ ॥

कहों राजती देहली गेह पक्की, कहों अर्गला ताल खासा खडक्की ॥
सुधा मैं सने धाम के थंभ धारैं, बने तीव्र गोपानसी भा बिथारैं ॥३७ ॥

कहों दंत प्रग्रीव अट्टी अलिंदी , भिधा सर्बतोभद्र लैकैं बिछिंदी ॥
भनैं सिल्पि सोभा कहों सालभंजी, कहों अंजली कारिका रंगरंजी ॥३८ ॥

कहीं पर झाली लगे झरोखे सजे हैं तो कहीं पर मदिरागृह, चित्रशालाएँ और महल सजे हैं। कहीं चूनापुती शुभ्र गौशाला नजर आती है तो कहीं घोड़ों की लंबी पंक्तियों से शोभायमान हयशाला, तो कहीं सजी -धजी गजशाला अपना रूआब पसारे हुए दिखाई देती है। राजा ने देखा कि कहीं दीवारें अल्पनाओं और भीती चित्रों से सज्जित हैं तो कहीं मांडनों से चबूतरियाँ शोभित हैं और कहीं पर स्त्रियों ने अपने घर के आगंन सजाए हैं। ऊँचे सुन्दर महलों पर पचरंगी ध्वजाएँ फरफरा रही हैं और महलों की गुबंदों के कलश दूर से यों प्रतीत हो रहे हैं जैसे प्रत्येक महल पर पूर्णमामी का चाँद उतर आया हो। कहीं पक्के घरों की दहलीजें सजी हैं तो कहीं नये रंग-रोगन से दरवाजों की अर्गलाएँ, खिड़कियाँ और ताले चमक रहे हैं। नगर के घर घर में उनके थंभे चूने से पुते नये रूप में खिले हुए हैं तो कहीं घरों में काठ के सेंतीर (बलींडे) और मियालें (छादनाधार) अपनी भव्यता की शोभा बिखेर रही हैं। कहीं घरों की खूंटियाँ, झरोखे, अट्टालिकाएँ अपने राजा के आगमन पर स्वागत की अभिलाषा में सजे-धजे से उसकी राह में बिछे से लगते हैं। घरों के बाहरी बड़े-बड़े आयताकार चौकों से परमेश्वर के मन्दिर तक का मार्ग दोनों ओर हाथीदाँत से बनी शालभंजिकाओं से सज्जित है। कहीं इन रास्तों को कई सुन्दर रंगरंगीली काठ की पुतलियों की श्रृंखला से श्रृंगारित किया गया है।

सजे क्वापि सोपान श्रेढी निसैंनी, नटें नट्टसाला कहों कंजनैंनी ॥
कहों कंणिका थूल उल्लोच कच्छे, कहों पीठ पल्यंक आस्तीर्ण अच्छे ॥३९ ॥

कहों बिप्र मंडैं कथा बेद बादी, कृति क्वापि अद्वैत अप्पैं अनादी ॥
कहों सत्थ साहित्य के अत्थ कढ्ढैं, कहों न्याय की कोटि पैं चाय चढ्ढैं ॥४० ॥

दिपैं द्यूतबिद्या कहों अक्षदेवी, कहों मोहमाया करैं साढ्यसेवी ॥
कहों बापिका कुंड कासार कूपी, रुचे नीर नारी भरैं आनुरूपी ॥४१ ॥

धरे रलौ कहों धीर त्यों गंधधूली, फबैं केतकी मल्लिका क्वापि फूली ॥
कहों धूप धूमावली जाल कढ्ढैं, चहे सेवती तंब रोलंब चढ्ढैं ॥४२ ॥

किन्हीं घरों में बड़े पत्थरों से बनी सीढियाँ शोभायमान हैं तो किन्ही घरों में काठ से बना जीना। कहीं नीसरनियाँ लगीं हैं। कहीं नृत्यशालाओं में कमलनयनी बालाएँ नृत्यरत हैं। कहीं पर छोटे तंबू बने हैं तो कहीं बड़े डेरे। कहीं पर सुन्दर रंगरंगीले सामियाने तने हैं। कहीं पर रंग रोशन से नये से लगते बाजोट हैं तो कहीं पर आसन के पाट। कहीं पर मनोहारी पंलग बिछे हैं जिन पर उत्तम बिछोने बिछे हैं। कहीं पर पंडित ब्राह्मण वेदों की कथा कह रहे हैं तो कहीं वेदान्त के अनादि अद्वैत मत के उपदेश चल रहे हैं। कहीं पर विद्वानों के समूह साहित्य के गूढार्थ निकालने में व्यस्त हैं तो कहीं चाव से न्यायादि दर्शनों पर तर्क हो रहे हैं। कहीं द्यूतविद्या का प्रदर्शन हो रहा है और द्यूत की देवी अपनी दीप्ति बिखेर रही है और कहीं पर छली लोग अविद्या की माया फैला रहे हैं। कहीं पर बापिका से तो कहीं कुंड और तालाब से सुन्दर सजीधजी पनिहारिनें अपनी रुचि के अनुरूप पानी भर रही हैं। कहीं पर नगर में कपूर, कुकुंम और कस्तूरी रखी हुई है जिसकी मादक गंध हवा में विद्यमान है तो कहीं पर केतकी और बेला के खिले पुष्प सुगंध फैला रहे हैं। कहीं पर सुगंधित धूप का धुँआ छाया है तो कहीं सेवती के गुच्छों पर मंडराते भँवरों की गुंजार है।

कहों ब्रह्मचारी क्रमैं रीति रागी, कहों दान अप्पैं गृही पंच पागी ॥
जुरे अग्निहोत्री जुहू अग्नि अंचैं, सुधी के कहों नव्य अन्यष्टि संचैं ॥४३ ॥

कहों आल जंगाल सिंदूर केरे, कहों हेम हीरे सके रासि हेरे ॥
कहा नील गारुत्मती चैं प्रकासैं, भले पद्मरागाख्य मुक्ताख्य भासैं ॥४४ ॥

प्रवाली रसोनी कहों रंग पढ़ैं, कहों पुष्पवंताऽऽदिकां तांत कढ़ैं ॥
कहों तैल छीरादि लै स्फटिकाऽऽख्या, सगोमेद इत्यादि केही समाऽऽख्या ॥४५ ॥

सुहाये कहों सिट्ठ बानिज्य साजैं, रचे चे कहों हुन्न निष्कादि राजैं ॥
कहों लै कला नीवि बित्तैं बढावैं, प्रभा क्रेय क्रय्यावली क्वापि पावैं ॥४६ ॥

नगर में कहीं मुक्ति में प्रीति रखने वाले ब्रह्मचारी विचरण कर रहे हैं तो कही गृहस्थ धर्म में जो लोग दान पुण्य कर रहे हैं। कहीं पर अग्निहोत्री लोग हवन की अग्नि के पूजन में निमग्न हैं तो कहीं श्रेष्ठ बुद्धि वाले नये विलक्षण यज्ञ हेतु सामग्री संचयन में व्यस्त हैं। नगर के बाजार में कहीं अलता, हरताल, और सिन्दूर से पात्र भरे हैं तो कहीं स्वर्ण की राशि और हीरा-जवाहरात की छोटी ढेरियाँ सजी हैं। कहीं नीलम और पन्ने अपनी कांति पसार रहे हैं तो कहीं माणक मोती चमक रहे हैं। कहीं दुकानों में प्रवाल (मूंगे) और लहसुनिया जैसे बहुमूल्य नगीने रखे हैं तो कहीं सुंदर पुखराज निकाल कर ग्राहकों को दिखाये जा रहे हैं। कहीं पेढी पर सेठ वाणिज्य व्यापार में रत हैं। कहीं पर तेलिया और दूधिया स्फुटिक बताये जा रहे हैं तो कहीं गोमेद जैसे कई नामों वाले रत्नों का क्रय-विक्रय कर रहे हैं। कहीं पर साहुकार अपनी संचित मोहरें और रुपये गिनते हुए नजर आ रहे हैं। किसी पेढी पर ब्याज पर उधार दे कर मूलधन बढाया जा रहाँ है तो किसी दुकाने पर क्रय-विक्रय हेतु कई वस्तुएँ पंक्तिवार सजी हैं।

कला बोहरे क्वापि छोरैं धुरे को, कहों के न रक्खैं स्वघाँ बाहुरे कों ॥
परार्द्धाऽऽदिके गण्य गोये प्रकासैं, कहों श्रेढि त्रैराशि की भंति भासैं ॥४७ ॥

कहों चैल चो भेद चै चैलक्रेता, जथा हट्टसोभा रचैं लाभ जेता ॥
उमा पट्ट कार्पास रोमादि वारे, वनैं यों चतुर्द्धा कहों के बिथारे ॥४८ ॥

लसैं आम्र मोचा कहों द्वार लग्गे, प्रभा दारिमी निंबु नारंग पग्गे ॥
कहों लांगली पूग एला निकाई, छजै छत्रिका गोस्तनी लोंग छाई ॥

झरैं केक हों सौरभी बिंदु झीनैं, भरैं केक हों क्षोद आमोद भीनैं ॥
दु घाँ रूच्य पै द्रव्य यों के उतारैं, कहों गोख नैं पुष्प के डीन डारैं ॥५० ॥

बाजार में किसी पेढ़ी पर बोहरे कर्जदारों का ब्याज माफ कर रहे हैं तो कहीं साहुकार हिसाब के बाद अपनी और आई अधिक राशि वापस लौटा

रहे हैं। कहीं पर लीलावती में वर्णित विशेष गणित के अनुसार परार्ध आदि गुह्य गिनती पर प्रकाश डाला जा रहा है तो कहीं श्रेढि के अनुसार त्रैराशि की गिनती हो रही हैं। कहीं पर कपड़े का व्यापार करने वाले बजाजी चारों प्रकार के वस्त्रों का क्रय करते उसके संचय से अपनी दुकान की शोभा चौगुनी कर रहे हैं और इनसे होने वाले लाभ की रचना कर रहे हैं। कहीं सण (जूट) रेशम, सूत और ऊन से बने चारों प्रकार के वस्त्रों की प्रदर्शनी लगाई जा रही है। किसी घर के द्वार, आम और केले के पत्तों से शोभा दे रहे हैं तो कहीं पर घर के आगे की बगिया में अनार, नीबू, और नारंगी के पेड़ सुन्दरता बढ़ा रहे हैं। कहीं नारियल, सुपारी, और इलायची के पेड़ों की शोभा है तो कहीं लोंग है, तो कहीं अगूंर की बेल छाई हुई शोभा दे रही है। कहीं पर राजा दूल्हे पर सुगंधित जल की छोटी-छोटी बूंदनियाँ गिराई जा रही हैं तो कहीं पर तेज खुशबू वाला चूर्ण छिटका जा रहा है। गलियों में, सड़को पर, बाजारों में दोनों ओर खड़े पंक्तिबद्ध लोग ऐसा सुंगधित द्रव्य छिड़कने लगे और कहीं ऊपर झरोखों से दूल्हे पर पुष्प वर्षा की जाने लगी।

रहे रीझि वारे कहौं लोन राई, कहौं बिक्खिके बिंद बंटैं बधाई ॥
लसैं मग्ग गेरे दही दुब्ब लाजा, रिझावैं सिचे सौरभी बारि राजा ॥५१ ॥

बिस्यो भूप बुंदीपुरी इक्खि अैसी, कही जाइ जो लाइ सामरथ्यं कैसी ॥
बिधा बैदिकी लौकिकी योग्य लद्धी, सबै भूप जे प्रीति की रीति सद्धी ॥५२ ॥

अपने नगर में प्रवेश किये राजा दूल्हे पर कहीं राई और नमक वारे जाने लगे (ताकि उसे नजर न लगे) और कहीं पर दूल्हे को देख कर बधाई बाँटी जाने लगी। कहीं पर दही, दूब और पके हुए चावल राजा दूल्हे पर डाले जाने लगे (क्योंकि ये चीजे मांगलिक गिनी जाती हैं) और कहीं सुंगधित जल (गुलाब जल) से सींच कर राजा को प्रसन्न करने के प्रयत्न होने लगे। दूल्हे राव राजा रामसिंह ने अपनी नगरी बून्दी में प्रवेश कर उसे नये से जिस रूप में देखा उस रूप का पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता, ग्रंथकार की इतनी सामर्थ्य नही। राजा ने भी अपने नगर में आ कर लौकिक और वैदिक दोनों रीतियों के रिवाजों का पालन किया और इस तरह प्रजाजनों के प्रति अपनी प्रीति का प्रदर्शन किया।

दोहा

परिकर द्विरद प्रतोलि तैं, सबिधि भिन्न हुव सर्ब।
जंपति अंचलपर्ब जुत, पेठे सद्धत पर्व॥५३॥

उपयम देवन अर्चि इम, बलि गुरुजन पय बंदि।
अंचल छुटि निज निज अयन, आये उभय अनंदि॥५४॥

निज परिकर सब हित निरत, बलि प्रासाद बुलाइ।
कवि बुध भट सचिवादिकन, खिन दिय सिक्ख खुलाइ॥५५॥

करि भोजन नर्तन क्रिया, लखि कछु काल ललाम।
इम अवसर सद्धिय सयन, राजराज प्रभु राम॥५६॥

जग्गि समय सूचित जथा, नित्य असन करि नाह।
बुध कवि भट सचिवन बिलसि, लिय संसद रस लाह॥५७॥

हाथीपोल तक राजा दूल्हे को पहुँचा कर यहाँ से उसके सभी परिकर (सेवक) बिछड़े और गठजोड़े में बंधी नवदम्पति ने उचित मुहूर्त्त पर महलों में प्रवेश किया। यहाँ पहुँच कर राजदम्पति ने सारे ब्याह के देवताओं की पूजा अर्चना की और अपने गुरुजनों के चरणों में प्रणाम निवेदन किया फिर गठजोड़े को छोड़ कर दोनों आन्नदपूर्वक अपने-अपने महल में आए। राजा ने तब हित में निरत हो होकर अपनी सारी परगह (परिकरों) को महल में आमंत्रित किया। फिर अपने सचिवों, पंडितों, चारणों (कवियों) और भाटों को अपने-अपने घर जाने की विदाज्ञा दी। तत्पश्चात राजा ने भोजन किया और थोड़ी दूर तक जनाना की स्त्रियों का सुन्दर नृत्य देखा। इसके बाद गव राजा रामसिंह अपने महल में सोने के लिए चला गया। प्रातःकाल जागने के समय पर जगकर राजा नित्यकर्म से निवृत हुआ और भोजन कर राजसभा में आया जहाँ उसने सचिवों के साथ अपने पंडितों, कवियों, बंदीजनों के काव्य के रस का लाभ लिया।

षट्पात्

सुनि लखि संसद सुपहु काव्य नर्तन आदिक क्रम,
राय बिबिध दै रीझ राय बढि चाय मनोरम।
समा अनंतर सबन कानि लोकन व्यवहित करि,
सकलबयस्यन सहित सकल गुन पठन समुद्धरि।

बलि इम प्रदोस संध्या बिरचि रत्ति कछुक सबयस्य रहि।
लहि असन जाइ जननी निलय जोग्यसयन बिलसैं जुगहि ।।५८ ।।

राजा ने राजसभा में कवियों से काव्य सुना और कलाकारों के नृत्य का अवलोकन किया। यहाँ पसन्द आए सुन्दर काव्यों पर रीझ कर राजा ने धन बाँटा। उत्साहित राजा ने तब अदब वाले (जिनका संकोच किया जाता है।) लोगों को थोड़ी (देर) बाद अलग दूर भेजा फिर समवयस्क और सभी गुणीजनों को आदर देते हुए प्रदोष तिथि का संध्यावंदन किया। इसके बाद रात होने पर कुछ अपने हमउम्र साथियों सहित अपनी माँ के महल में जा कर भोजन किया और अपने महल में शयन को गया। जहाँ नव दम्पति ने भोग विलास में रात्रि व्यतीत की।

इत धात्रेय आमात्य कृष्णराम सु बढते क्रम,
रचि सिवनाथ रु अमृतराम सम्मद संभव सम।
पंतिन सह आपान असन बिहरन आखेटन,
सर उपबन प्रासाद मुख्य दिखवन झुकाइ मन।
सब स्वीय अधिप परिकर सहित प्राघुन गन इम घस्त्र प्रति।
बिसलन बढाइ रक्खे बिबिध कति मासन करि लाड कति ।।५९ ।।

उधर राजा के प्रधान धायभाई कृष्णराम ने अपने अतिथियों को बढ़ा-चढ़ा कर आतिथ्य प्रदान किया। जोधपुर से बरात के साथ आए हुए मेड़तिया शिवनाथसिंह और नाजर अमृतराम के समक्ष अत्यधिक हर्ष का प्रदर्शन करते हुए उसने महफिल सजवाई। उसने उत्तम गुणवत्ता वाली शराब पेश की, फिर अतिथियों को स्वादिष्ट भोजन करवाया। मेहमानों हेतु नगर के दर्शनीय स्थानों पर भ्रमण की व्यवस्था की। साथ ही उनके आखेट पर जाने का इंतजाम भी किया। अमात्य ने उन्हें बून्दी के सारे बाग-बगीचों, सरोवर-तालाबों, का भ्रमण करवाते हुए सभी देखने योग्य स्थल दिखाये। अपने स्वामी राजा रामसिंह के सभी परिकरों के साथ प्रतिदिन इन मेहमानों के मनोरंजन की व्यवस्थाएँ कीं और इस तरह पूरे सम्मान और आतिथ्य के साथ उन्हें कई माह तक प्रीतिपूर्वक बून्दी में रखा।

रूपराम सरदार बिप्र ऊरुज अमात्य बिय,
स्वसुता दायज सत्थ देय पहु मान संग दिय।

तिनहिँ बुल्लि धात्रेय सुमति सिवनाथ अमृत सह,
किय पट्टा लिपि कलित महारानिय हित अति मह।
पुर हिंडउली नवगाम पुनि इत पुर बच्छोलादि इत।
कर अरुत पंच सह ग्राम कति सचिवन तिन्ह अप्पिय सहित।।६०।।

जोधपुर के राठौड़ राजा मानसिंह ने अपनी पुत्री के साथ दहेज रूप में अपने दो सचिव भी बून्दी भेजे। इनमें से एक ब्राह्मण रूपराम और दूसरा वैश्य सरदरमल था। सुमतिवान धायभाई कृष्णराम ने इन दोनों को बुलवाया और इनके साथ रियां के ठाकुर मेड़तिया राठौड़ शिवनाथसिंह और नाजर अमृतराम को भी आमंत्रित किया फिर उसने सभी के समक्ष नई महारानी का हित सोचते हुए एक लिखित पट्टा दिया जिसमें हिंडोली, नवगाँव और बाछोला आदि गाँवों की पचास हजार की आमदनी वाली जागीर लिख कर पूरे सम्मान सहित उनके माध्यम से महारानी को निवेदित किया।

उन मंडिय तह अमल पट्ट रानिय सासन पगि,
इत प्राघुन गन अखिल लोक मारव सम्मद लगि।
प्रभु भट सचिवन प्रथित लाड अतिसीम लडाये,
कतिक पच्छ इम कढ्ढि प्रीति मरुपुर पहुँचाये।
इत भूप सकल गुन सभ्य सन उन्नति लहि प्रत्यह अधिक।
बुधपन्न बयस्य गन तैंहु बढि सब पटु हुव मति साहसिक।।६१।।

पट्टा मिलते ही राठौड़ रानी की आज्ञा से जोधपुर से आये दोनों सचिवों ने हिंडोली, नवगाँव, बाछोला सहित सारे गाँवों पर रानी का अमल जमाया। इधर सचिव कृष्णराम ने जोधपुर से आए सारे मेहमानों को सम्मानपूर्वक पूरा आतिथ्य प्रदान किया। यही नहीं हाड़ा राजा के सभी सामन्तों ने भी मेहमानों के प्रति अतिशय प्रीति का प्रदर्शन किया। कई पक्ष ऐसे निकाल कर दोनों ओर की निकटता में श्रीवृद्धि की और फिर उन्हें प्रेमपूर्वक मारवाड़ पहुँचाया। इधर रावराजा रामसिंह प्रतिदिन अपने गुणों के सहारे अधिकाधिक उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा। वह बुद्धिमान राजा अपने हमउम्र राजाओं में सबसे बढ़ कर साहसी और चतुर सिद्ध हुआ।

करन अग्घ बुध कविन बहुत हित पटुन बिबेचन,
स्वगुन सिद्ध भट सचिव सद्धि हित रस अभिसेचन।

माधव इम गत महत सुक्र आगत समाज सह,
उचित समय उपहार बिभव बिलसत दिन दुल्लह।
प्रति जन बदान्य रीझत प्रगुन मुष्ट सगुन मन घन मुदित।
इम अस्थिपाल अन्वय अरुन उदय अद्रि बुंदिय उदित॥६२॥

यह राजा अपने दरबार के विद्वान कवियों और पंडितों का पूरा आदर करता और उनके हितों की रक्षा करता। अपने गुणवान सामन्तों और सचिवों को भी उनके हित रूपी रस से अभिसिंचित रखता। इस तरह उसने अपने गुणवान मातहतों को पूरे आतिथ्य के सम्मान के साथ इतने दिन बून्दी रखा। इसी बीच वैशाख माह गुजर गया और ज्येष्ठ माह लगा। अब सारे आमंत्रित सदस्यों को विदाज्ञा के साथ उपहार देकर रवाना करने का समय आया तब दूल्हा राजा ने अपने गुणों से सभी का चित्त चुराते हुए प्रत्येक व्यक्ति पर एक वदान्य राजा की तरह रीझ की। इस प्रकार सभी के मनों को मुदित करने वाला चौहान अस्थिपाल के कुल का सूर्य वह (राजा रामसिंह) बून्दी रूपी उदयांचल पर उदय हुआ।

घनाक्षरी

सेखाउत स्यामसिंह जुंझुन नगर नाह,
कूरम कुहक मुख्य भ्रात रु भीतीज मारि॥
आप पाइ पत्तन बसाऊ गल अंगमि रु,
धिगु चित धीठ भयो धूतन धुरहिं धारि॥
ही गुलाबकुमरि तनूजा तास ज्ञात गुन,
सगपन ताको कर्‌यो प्रभुसौं हित प्रसारि॥
जोधपुर जाई बर बिदालै सिधारे सुनि,
बुल्ले गृह व्याहिबे बडे जव मह बिथारि॥६३॥

उधर झुंझनु नगर का जो स्वामी शेखावत श्यामसिंह था। इस धूर्त कछवाहा ने अपने बड़े भाई और भतीजे के हक को मार कर अथवा उन्हें मार कर बिसाऊ नामक नगर पर अधिकार कर लिया। इस धिक्कार योग्य धूर्तों के धुरंधर कछवाहा की एक गुणवान पुत्री गुलाब कुमारी थी। श्यामसिंह ने विवाह योग्य वय वाली होने पर अपनी गुणवान पुत्री की सगाई बून्दी के राजा

रामसिंह के साथ सम्पन्न की। जब राव राजा रामसिंह जोधपुर विवाहने गया और वहाँ से विदा ले कर वापस बून्दी के लिए रवाना हुआ तब राजा के लौटने की खबर पा कर श्यामसिंह ने उत्सवपूर्वक पूरी धूमधाम के साथ राजा को अपने यहाँ विवाह करने को आमंत्रित किया।

तब सुचि सुक्र मध्य रित्ता पैं सुमह तानि,
व्याह पुब्ब बरने सबै बिधि सधाइ सिव॥
केदारेस थान ढिग श्रीजित रचित कम्न,
आव्हय सिकार अट्ट निबसि सुरेस इन॥
कज्ज बिधि साधि प्रात बहुरि बिधेय करि,
चक्र लै चलत देखिबे को जुरे देव दिव॥
थैलिन खुलाइ ताही थान सौं बसुन बुट्ठि,
सिंचे कवि कृष्णराम सुमति महासचिव॥६४॥

राव राजा रामसिंह ने तब आषाढ माह के शुक्ल पक्ष की नवमीं तिथि के दिन बड़ा उत्सव कर पहले विवाह में वर्णन किये गए सभी मांगलिक कार्यो को साधा अर्थात् बरात प्रस्थान के पूर्व की सभी रस्में पूरी कर केदारेश्वर महादेव के निकट राजा श्रीजित (उम्मेदसिंह) द्वारा निर्मित शिकारबुर्ज नामक महल में आया। यहाँ राजा रामसिंह ने इन्द्र की छवि के समान अपनी छवि बना कर निवास किया। दूसरे दिन सारे कार्यों को साधकर अर्थात् सभी जिम्मेदार परिकरों को पीछे का कार्य संभलाकर जब राजा अपनी सेना सहित रवाना हुआ तब आकाश में दिव्यलोक के सारे देवतागण इस बरात की ठसक देखने आ जुटे। यहीं से अर्थात् प्रस्थान बिन्दु से ही सुमतिवान प्रधान सचिव धायभाई कृष्णराम ने रुपयों से भरी थैलियाँ खोल कर कवियों (चारणों) पर धन की वर्षा करना आरंभ कर दिया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवमराशौ रामसिंह चरित्रे विहितयोधपुरविवाहरामसिंह बून्दीपुर प्रवेश समय बून्दीवर्णन सेखावाटी बिसाऊ विवाहार्थप्रयाणवर्णनं सप्तमो मयूखः आदित एकोनसप्तत्युत्तर त्रिशततमो मयूखः॥३६९॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में रामसिंह के जोधपुर विवाह करके वापस बून्दी में प्रवेश होते समय बून्दी के वर्णन का और शेखावटी में बिसाऊ विवाह करने के अर्थ प्रयाण करने के वर्णन का सातवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ उनसत्तर मयूख हुए।

आर्या

बिधि सब सद्धि बिबेकी, किय सिव केदार पात दल पहिलो।
कविजन घन जनु केकी, लसि सम्मद रीझ लैन लगे॥ १॥

बेताल:

केदार ईस निकेत प्रभु कहँ सब बिधेय सधाइ।
धात्रेय कृष्ण आमात्य धुरधर मह अमेय मचाइ॥
पौगंड जात किसोर प्रकटत अर्ह सब उपहार।
बय तुल्लि बुल्लि दिखाइ बहु बिधि देय दैन उदार॥ २॥

हे राजा रामसिंह! विवेकवान राजा दूल्हा (स्वयं रामसिंह आपने)ने सारी रस्में विधि-विधान सहित सम्पन्न कर बून्दी से चल कर पहला पड़ाव (बरात सहित) केदारेश्वर महादेव के स्थान पर किया। यहाँ कवि लोग मेघ से हर्षयुक्त होते मयुरों की तरह रीझ लेने लगे अर्थात् राजा ने कवियों को रीझ प्रदान की। राजा के प्रधान अमात्य धायभाई कृष्णराम ने अमाप उत्सव का आयोजन किया। यह आयोजन अपने स्वामी द्वारा पौगण्ड अवस्था (पाँच वर्ष से दस वर्ष के मध्य की अवस्था) से किशोरावस्था में पदार्पण करने के उपलक्ष में आयोजित था। इस अवसर पर उसने अपने राजा की बढ़ी हुई वय के अनुरूप ही उपहार योग्य सामग्री जुटा कर सभी को बढ़ा चढ़ा कर उदारता पूर्वक दान दिलवाया।

बहुरीति इम बसु बिंद बुद्धिन पात्र जन मन पूरि।
रचि भा द्वितीय बिबाह बिरचन सज्जहुव सब सूरि॥
बुध बिप्र सुत रु मागधन ब्रज सुमति बंदिन सत्थ।
इह दै अनेक बिधान उल्लसि इक्क इक्कहिँ अत्थ॥३॥

निज रठ्ठ जो लग संक्रमैं नृप चाहि तो लग चित्र।
पिक्खाइ भाइ अनेक पाटव मान चाटव मित्र॥

बुंदीपुरी सन त्याग बंटत संक्रम्यों पहु सूरि।
मग लैनहारन तर्कुकन मचि भीर जस रव भूरि॥४॥

सभी याचकों की इच्छा पूर्ण करने के लिए दूल्हा राजा ने धन की वर्षा की फिर अपना दूसरा विवाह रचाने के लिए सभी पंडितों के साथ सज्जित हुआ। राजा ने अपने साथ बुद्धिमान ब्राह्मणों, चारणों और भाटों के समूह को लिया। बंदीजन भी साथ लिये और प्रसन्न हो कर प्रत्येक को अनेक तरह से अर्थ (धन) प्रदान किया। जहाँ तक अपने राज्य (बून्दी) की सीमा थी वहाँ तक सभी लोग जो बरात के साथ चले उनसे चतुर राजा ने पूरे आदर का व्यवहार किया और प्रिय वचन बोल कर उनके साथ मित्रवत रसूक निभाया। बून्दी नगर से ही राजा त्याग बाँटता चला इसलिए रास्ते में भी नये आने वाले याचकों की भीड़ लग गई। इन याचकों ने राजा के लिए जो यश के बोल कहे वे सभी ओर फैले।

जसलेत देत अनेक बिध बसु संक्रमैं तिम जन्य।
इन भिदा इन छत्र चामर अंक अंकन अन्य॥

सब बस्त्र बाहन भूखनादिन ओर रीति समान।
करते चले प्रभु व्याह कौतुक कित्ति कानन कान॥५॥

जे सूत मागध बंदि लै बसु सिक्ख गेहन जात।
उनतैं अतीव प्रसार ओरन अध्व मैं अधिकात॥

नमि सेस जाचक जीत बाचक पंथ होत निहाल।
प्रतिपात यों बसुव्रात पूरन संक्रम्यों छितिपाल॥६॥

यश का क्रय करने वाला राजा याचकों को कई तरह से धन प्रदान करते हुए आगे बढ़ा। इस समय राजा ने बरात से भिन्न लगने के लिए छत्र धारण किया और चँवर दुलवाने लगा। इन राजसी चिन्हों की बदौलत ही वह अलग लग रहा था क्योंकि शेष बरातियों ने भी मंहगे वस्त्र और आभूषण पहने थे और वे सभी वाहनों पर सवार थे। इसलिए अपरिचित लोग जब बरात को निहारते तो यकायक दूल्हा राजा कौन सा है, वे चिन्हित नही कर पाते। विवाह

करने जाते इस लवाजमें को देखने वाले कौतुक करते हुए चर्चा करते जिससे राजा की कीर्ति एक कान से दूसरे कानों तक जाने लगी। जो चारण, भाट और बंदीजन राजा से धन पा गए वे विदाज्ञा ले अपने-अपने घरों को जाते पर मार्ग में उनकी संख्या कम होने के बजाय बढने लगी क्योंकि राजा की बरात के प्रयाण को सुनकर कई नये चारण, बंदीजन और भाट उस ओर आने लगे और रास्ते में ही बरात के साथ होने लगे। इन नये आने वाले याचकों की संख्या अधिक थी। उन्हें जब राजा धन देता तो ये राजा के समक्ष झुक कर अदब के साथ ग्रहण करते और 'जय हो' 'राजा की जय हो' ऐसे बोल बोलते। इन बोलों से पूरा रास्ता गूँजने लगा। राजा ने भी धन देने का अपना क्रम भंग नही किया। वह प्रत्येक पड़ाव पर धन का समूह बाँटता आगे बढ़ता।

मय के चले हय के चले गय के चले बय मत्त।
पहिलैं कहे मय अंग उन्नत जंगली जयपत्त॥
कतिबेग पूर चलाक बासर इक्क मैं सत कोस।
परिविष्ट दुंदुभि सिष्ट मस्तक प्रच्छदे सिरपोस॥७॥
जुग कन्न बावन बाह पावन छन्न जेवर जाल।
थल उच्च नीचहु नाँ ढरै जिनपैं भरे जलथाल॥
गोधेर आनन तिक्खता गुन पीत अंजलि अंभ।
थकिबो न जानत ढान तानत बाहु देउल थंभ॥८॥

राजा की बरात के इस काफिले में मस्त वय वाले ऊँट चले, घोड़े चले, और हाथी चले। सर्वप्रथम ऊँट कैसे है ? मैं (ग्रंथकार) उन्हें कहता हूँ कि ये जांगल प्रदेश (बीकानेर का जनपद) में उत्पन्न विजय दिलाने वाले हैं। ये ऊँट अपनी तेज गति से चल कर एक दिन में सौ कोस का फासला तय करने वाले हैं। जिनकी पीठ पर नगारे बंधे हैं और इनके मस्तक श्रेष्ठ सिरपोसों (ऊँट के मस्तक पर बांधा जाने वाला कपड़ा) से आच्छादित (ढके) हैं। इनके दोनों छोटे-छोटे कान प्रशंसा पाने योग्य जेवरों से श्रृंगारित हैं। ये अपनी चाल में जब चलते हैं तो ऊँची नीची जगह पर भी ये इतने संतुलित हो कर गुजरते हैं कि इन पर सवार के हाथ में यदि पानी से भरी थाली हो तब भी पानी नहीं छलकता। इन ऊँटों के मुँह गोह की तरह तीखे

हैं यही कारण है कि ये ऊँट (अपने संकरे मुँह के कारण) आदमी की अंजली में भरा पानी भी पीने में सक्षम हैं। ये ऊँट जैसे थकना तो जानते ही नहीं। ये अपने आगे वाले, किसी मन्दिर के स्तंभ जैसे दोनों पैरों से जब ढांण (एक चाल विशेष)में चलते हैं तो चलते ही चले जाते है।

आरूढ अंक लगाइ मस्तक जाइ बान उडान।
मिलि अग्गि सोर घने चले जनु बान इक दिस मान॥
मग सूचनी ललि बाहु बज्जत तार घुग्घरमाल।
बहु दूर जानत जावते तिन्ह बेग धाव बिसाल॥९॥
लघु लूम संहित यौं लसैं परि पट्ट रज्जुव पास।
अटक्यो समीर कि ताहि अैचत अध्व पहुँचन आस॥
मृदु ह्वस्व पायतलीन मंडत छोनि मप्पन छाप।
अति लोल बाजिन लज्ज आनत आवजाव अमाप॥१०॥

अपने सवार की गोद से अपना मस्तक सटा कर (चलने की मुद्रा में ऊँट की गर्दन तन कर दुहरी हो जाती है यह उस ओर संकेत है।) ये जब चलते हैं तब तीर की तरह उड़ते जाते हैं। जैसे बारूद से भरा तीर अग्नि का संयोग पाते ही सामने वाली दिशा में तेजी से बढता है उसी तरह सामने वाली दिशा में ये बढते हैं। इनके आगे पैरों में बंधी सुन्दर घूघरमाल (घुंघरुओं की माला) जब ऊँचे स्वर में बजती है तो मानो रास्ते पर चलने की सूचना देती जाती हो। तेज गति से चलने वाले ये ऊँट बहुत दूर निकल जाते हुए नजर आते हैं। रेशम की डोरी से बंधी हुई छोटी-छोटी लूमों (ऊँट के तंग के पास लटकती हुई सजावट की सामग्री जिसमें रेशम अथवा ऊन के गुच्छे होते हैं।) से शोभित ये ऊँट जब बढ़ते हैं तो लूमें पीछे की ओर झुकती हुई दिखाई देती हैं मानों राह में ठिठका हुआ पवन मार्ग में उनके साथ चलने की इच्छा से उन्हें पकड़ कर खींच रहा हो अथवा उनसे लटक रहा हो। ये ऊँट जब चलते हैं तो अपनी कोमल पगतली से धरती पर पदचिन्हों की छाप छोड़ते हुए जाते हैं मानों वे इन छापों के सहारे पृथ्वी को नापने का मसूंबा रखते हों और यह जता रहे हों कि यहाँ इस छाप तक पृथ्वी नापी जा चुकी है। आवागमन में ये ऊँट अत्यंत चपल गति वाले घोड़ों को भी लज्जित करने वाले हैं।

उपविष्ट इड्डुर बाहु अंगन मध्य के अवकास।
भृस धावते कढिजाइ सूलिक मोक खंदुक भास॥
लगि पट्ट लूम दु पास लंबित गुंफ के गजगाह।
प्रतिपास पब्बय कैं कि रैंजित बारि च्यारि प्रवाह॥११॥

मढि तार पिट्ठि पलान दारव कृति कंबल मेल।
ककुदंग ले बिच जे कसे मखतूल तंगन मेल॥
कृत कांति राजत नक्कईलन राजती कटि कान।
पगि बंध पट्ट बिचित्र रस्सिन जे इचे अतिप्रान॥१२॥

ईडर (थुही) के कारण इनके दोनों आसनों के मध्य भी दूरी रहती है और आगे के पैरों के मध्य भी दूरी होती है पर अपनी दौड़ में ये ऊँट अपनी खंदक (बिल) छोड़ कर सर्र से निकलने वाले खरगोसों से मुकाबला करने वाले हैं। इनके दोनों ओर रेशम की लूमें लटकती हैं और गूंथे हुए गजगाह ऐसी शोभा देते हैं मानों किसी पर्वत के चारों ओर जल के प्रवाहवाले झरने हों। इनकी काठियाँ, काठ, कोमल चमड़े और ऊन के नमदे से बनी हैं जिन पर चाँदी का पतरा मढा है। ये (काठी पलान) इन पर थुही को मध्य में रख कर रेशम के तंगों से कसे हुए हैं। इनकी नाक में चाँदी मढी नकेलें हैं और कान में चाँदी की कड़ियाँ शोभा दे रही हैं। ये अतिप्रान (बलवान) ऊँट रेशम से बनी चित्र-विचित्र रस्सियों से कसे हुए बढ़ रहे हैं।

गन घंटिका बजि तार हार हमेल श्रृंखल ग्रीव।
सह भेक झिल्लिन जोर सोर कि ओरओर अतीव॥
जिनपैं सु बाजिन के चढाकन के लुभे मन जाइ।
छम हाल कौतुक काल चाल अनेक चित्रन छाइ॥१३॥

पृथुभाल बेग बिसाल उच्छ्रित अक्षिकूट प्रदेस।
बतरात गात दिपात बातन बात तेंहु बिसेस॥
बल मैं क्रमेलक यों चले कति जान छुट्टत बान।
बिलसंत बाहन दब्बि बाहन भुम्मि व्योम बिमान॥१४॥

चलते समय इनके गले में बंधे हुए घूघरे बज रहे हैं, वहीं इनके गले में पड़े हार और हालरों (हार विशेष) की कड़ियाँ बज रही हैं। ये जब अपनी

चाल में बढते हैं तो चारों ओर मैंढक और झिल्लियाँ (झिंगुर) बोल कर कोलाहल मचाते हैं। इनकी मरोड़ देख कर घुड़सवारों का भी मन करता है कि काश, वे भी इन पर सवारी करते अर्थात् ये ऊँट घुड़सवारों का भी मन ललचाने वाले हैं। ये ऊँट अपनी समर्थ चाल से देखने वालों में कुतूहल जगाते हैं इनके ललाट, वेग और नेत्रों के गोले ऊँचे उठे हुए हैं अर्थात् उन्नत हैं। ये ऊँट बतलाने पर शोभा देते हैं (मस्त ऊँट बतलाने पर गर्जना करता है) और अपने सुन्दर गात वाले ये चलने में पवन से भी विशेष हैं। राजा रामसिंह की सेना मिश्रित बरात में ये ऊँट ऐसे चले मानों तीर छुटा हो। यही कारण रहा कि ये अपनी छटा से पृथ्वी पर चलने वाले अन्य वाहनों और आकाश में उड़ने वाले विमानों को मात देने वाले माने गए।

कति भारबाहक धार लाहक पार गाहक पंथ।
नहि लारबाहक आरनाहक जे सहैं गति ग्रंथ॥
मुख मध्य मल्लन फुल्ल गल्लन आनि बाह्य प्रतीक।
घटना कवर्ग चतुर्थ की घन ठानि गज्जत ठीक॥१५॥
धवली करैं अवली अटे धर बुट्ठि फेनन बार।
अनखे लगैं मग उट्ठि अप्पहि पिट्ठि धारि पहार॥
जिनके दुपास कसे सलीतन भार हिंडत जाइ।
असुमंत तोलत अल्प अद्रिन ज्यों तुला अधिकाइ॥१६॥

इन ऊँटों में कई भारवाहक हैं। जो लाभ धारण करने वाले ग्राहकों का मार्ग पार कराने वाले हैं। इनकी गति ऐसी है कि कोई इनके साथ नहीं चल सकता है। ये जब चलने में संलग्न होते हैं तब किसी आर (चलाने हेतु चाबुक आदि मारना) नहीं सहन करते। ये अपने मुँह में दाँतों को भींच कर गाल फुलाते हुए गालों के एक हिस्से को (गलफा) मुँह के बाहर निकाल कर, वर्णमाला के 'क' वर्ग के चतुर्थ वर्ण 'घ' उच्चारते (गर्जना करते) हुए 'घ घ घ घ' का शब्द करते हैं। पृथ्वी के जिस भाग पर से इनकी पंक्तियाँ गुजरती हैं वहाँ की भूमि को ये अपने मुख से झरने वाले धवल झागों के समूह से सफैद बनाते जाते हैं। पीठ पर पर्वत समान बोझ को धारण करते ही क्रोधित हो कर अपने आप उठ खड़े होते हैं और अपनी राह लेते है। चलते

समय इन लद्दू (भारवाहक) ऊँटों की पीठ के दोनों ओर लटकते हुए सलीते (सामान भरने की जाली) झूलते जाते हैं मानों ये प्राणवंत तराजू छोटे-छोटे पहाड़ तोल रहे हों।

उरुवार में गुरुभार उच्छलि यों लगैं प्रतिअंग।
करि कुम्म पच्छन लै तुले परखें कि राजपतंग॥
अपटी कनात बितान थूल रु केणिका चिक आदि।
बिनु बिट्ठि पिट्ठि बहैं रहैं रय नाद उद्धत नादि ॥१७॥
लहि मंच आदि समूहनी लग अध्व के उपहार।
लदवाइ सर्ब अखर्ब गर्ब तजैन स्वामिन लार॥
जिन संग को खिन कुंचं केतिनकोहु क्यों रहिजाइ।
बहिजाइ अतिभर श्रांतपत्तन ततो बाह्य बनाइ॥१८॥

लंबी दूरी पर चलते हुए इनकी पीठ पर लदा भार उछलता हुआ ऐसी शोभा देता है मानो हाथी और कच्छप को अपने पँखों में दबाये पक्षियों का राजा गरुड़ उड़ा जा रहा हो (वाल्मीकि रामायण में एक कथा का प्रसंग है कि गरुड़ एक हाथी और एक कछुए को अपने पँखों में समेट कर उड़ा था।) ये अपनी पीठ पर परदे, कनातें, सामियानें, बड़े तंबू, छोटे तंबू आदि के गट्ठरों का भार उठाए, बिना किसी क्लेश के तेज गति से चलते, शब्द करते जा रहे हैं। खाट से लगा कर बुहारी (झाड़ू) तक की रास्ते के पड़ावों की सारी सामग्री अपनी पीठ पर लदवाते हुए ये बड़ा गर्व करते हैं कि वे अपने स्वामी की सेवा में तत्पर हैं। पड़ाव के बाद कूच करते समय मज़ाल है कि राह के पड़ावों के सामान में से तिनका भी पीछे छूट जाये। इन्हीं का बूता है कि ये अत्यधिक भार ढोने का श्रम करते हुए भी नगर के बाहर नया नगर (पड़ाव) बसा देते हैं।

जिनतैं बसैं पुर रत्ति पात सु प्रात लों उठि जाँहिं।
बसि सोहि सोहि बहोरि मंगल होत जंगल माँहिं॥
बहु यों चले मय नारबाह रु भारबाह दु भेद।
पहु त्यों चले हय प्रान के पवमान के छकछेद॥१९॥
धट अंग बंग कलिंग गुर्जर कच्छ जंगल धाम।
कंबोज बाल्हिक पारसीक बनायु भव जयकाम।

तातार चीन तुखार ताजिक अर्ब रूम इरान॥
खुरसान रूस फिरंग खेत भये नये बय भान॥२०॥

इन्हीं के बल पर रात्रि विश्राम हेतु पड़ाव के स्थल पर पुर बस जाता है और अगले प्रभात में वह बस्ती फिर से समेट ली जाती है। इन्हीं ऊँटों के सहारे वही-वही नगर फिर से आगे के पड़ाव पर बस जाता है और जंगल में मंगल हो जाता है। राजा के बरात के इस काफिले में सवारी वाले अर्थात् नरवाहक और भारवाहक दो तरह के कई ऊँट चले जा रहे हैं। इन ऊँटों के साथ राजा के कई बलवान घोड़े भी चले, जो वेग में पवन के दर्प को चूर करने वाले थे। ये घोड़े धाट (पश्चिमी राजस्थान), अंग, बंग, कलिंग, गुजरात, कच्छ, जांगल (बीकानेर) कंबोज, बाल्हिक, पारसीक, बनायु आदि देशों में उत्पन्न तेज गति वाले हैं। कुछ तातार, चीन, तुखार, ताजिक, अरब, रोम, इरान, खुरसान, रूस और फिरंग (इंगलैंड) में जन्में हुए हैं।

जिनतैं प्रयोजन भिन्न व्है जयधार पंचक धाव।
आखेट आहव अद्रि बन मग साध्य सिद्धि अमाव॥

मुख बजू गुंफित केसरावलि भिन्न भिन्न समान।
इक व्है अधोगत लंब अहि मनिमंत बहुफन मान॥२१॥

जिनके प्रफुल्ल मुरे बहिर्नुत नासिकाग्र जनात।
मनु व्हीत व्है जित ताहिमैं घुसिजात बात नमात॥

क्रमपत्र तिच्छन कर्तरी कि करैं गतागत कर्ण।
मनबेग कट्टत जानि सत्रुहिं ठानि सत्व महर्ण॥२२॥

ये घोड़े भिन्न- भिन्न प्रयोजनों के अनुरूप भिन्न-भिन्न पाँच प्रकार की चाल चलने वाले हैं। शिकार में, युद्ध में, पहाड़ पर और वन में, ये सभी प्रकार के रास्तों को साधने वाली सिद्धि रखते हैं। इनकी केसवालियाँ (अयालें) अलग-अलग होते हुए भी हीरे-जवाहरात से गूंथी होने के कारण समान नजर आती हैं। मानों एक लंबे साँप का अधोभाग तो एक हो पर उसके बहुत सारे फण मणियुक्त हों। इनके बाहर की ओर झुके हुए और फूले हुए फुरणों (नासाछिद्रों) के अग्रभाग बताते हैं कि पवन भी इनमें नम्र हो कर प्रवेश लेता है (सांस के रूप में)। इनके दोनों कान आपस में हिलते हुए यों मिलते हैं

मानों कोई कैंची चल रही हो और इस तीखी कैंची से पराक्रम के समुद्र वे मन के वेग को जैसे अपना शत्रु मान कर उसे काटने को आमादा हो।

नुत पाइ नाइ हयच्छटा कृत जेरबंध निरत्थ।
सिथिलत्व धारत सिंजनी जनु उत्तरे धनु सत्थ ॥
जर गुंफ नेत्र पिधानिका तिहरी लसैं छवि जुत्त।
जवनीन के त्रिकतैं करे जनु गल्लकी हरि जुत्त ॥२३॥
पबि गंड भंडन भा करैं नत वृत गोधि प्रदेस।
जयलेख पट्ट कि जानि जो उपदा धरैं मन एस॥
जिन्ह हिट्ठ हिंदत जेबदे लरलूम मुत्तिय जाल ।
मनु मूर्तही जव द्वार अर्थिन बद्ध बंदनमाल॥२४॥

स्तुति योग्य अपने पुष्ट कंधों को झुका कर ये अपने जेरबंधों को कभी इस तरह ढीला करते हैं मानों वे जेरबंध रूपी प्रत्यंचा को उतार कर अपने धनुषाकार कंधों को आराम प्रदान कर रहे हों। और उनके नेत्र पर बंधी जरीदार विधानिका (उजाली) उनके नेत्रों पर छज्जा बनाती हुई तिहरी शोभा दे रही है मानों तीन पड़दों (गण्डस्थल)की ओट में विष्णु के रूप में पूजे जाने वाले शालिग्राम हों। उनके कपोलों पर हीरे के कलश और ललाट के दबे हुए भाग पर जो गोलाकार पतरा (सजावट की सामग्री) शोभा दे रहा है वह मानों मन के वेग को जीतने पर मन द्वारा भेंट किया हुआ जय पत्र हो। इस के नीचे लगी मोतियों की जाली झूलती हुई अपनी ऐसी छटा बिखेर रही है मानों वेग ने मूर्तिमान हो कर अपने द्वार पर याचकों के अर्थ वंदनमाल बांधी हो।

बय जोर तोर मरोर मंडत मात खंधन व्याम।
छक जानि जुब्बन कों भरैं बढि पारि प्रतिबल छाम॥
जिन्ह पास पट्ट कुसा लसैं भृकुटी भिरी अधिजीन।
खर पक्व आयस शृंखला सह लास्य आस्य खलीन॥२५॥
कलना बिसाल कुलाल चक्र कि द्वै हि पुट्ठन दोर।
अधिपिट्ठि सन्नत मध्य आसन जेब भासन जोर ॥
नतभाव यों सहजै लसैं तस ज्यो दुतंगन नद्ध।
पसमीन पीन अधीन बैठक लीन जीन प्रबद्ध॥२६॥

अपनी वय के जोर पर जब ये घोड़े अपने पुष्ट कंधों को मरोड़ते है तब इनकी गर्दन आदमी के बाथ (दोनों हाथों की परिधि) में नही समाती। ये अपने योवन के मद में बढ कर अपने समर्थ शत्रुओं को दुर्बल बना कर गिराने वाले हैं। इनकी भृकुटी के पास से निकलती हुई रेशम की बाग का सिरा जीन के ऊपर भिड़ा हुआ है और इनके मुँह में नृत्य करती खरे पक्के लोहे (इस्पात) से बनी श्रृखंला सहित लगामें हैं। गणना के हिसाब से कुम्हार के चाक की मोटाई वाले इनके दोनों पुट्ठों का फैलाव है। इनकी पीठ पर लगे आसन का मध्य भाग झुका हुआ शोभा देता है और आसन का यह नतभाव भी सहज सुंदर है क्योंकि ये दो दो तंगों से बंधा हुआ है। सवार के बैठने का स्थान जो इनकी पसम का झुका हुआ भाग है वह जीन के नीचे छिपा हुआ बंधा है।

बढि व्योम झंपत होत चामर नाचि साचि बिसेस।
गति अच्छ के गुंन ज्यों उडैं चउ पच्छ के पतगेस॥

चल बेर नच्चत बेर नच्चत लुम्म भार चउक्क।
मतजानि सिक्खत नच्च को जड एहु आनि मउक्क॥२७॥

प्रतिफाल केकि कलाप फुल्लन बालहस्त प्रसार।
फबि के रहे छबि के गहे बनि तेहु चामर फार॥

खुर पक्व लोह कटाह सों खर यों भिरी खुरताल।
किमु सत्रु के सुत मंद को तम नैं ग्रस्यो ततकाल॥२८॥

ये घोड़े जब आकाश नापते हुए तेज गति से बढते हैं तब जैसे चँवर ढुलाने को वक्र हो कर इन की पूंछ हिलती रहती है। प्रत्यंचा की तरह अच्छी गति से चलने वाले ये घोड़े ऐसे हैं कि जब ये तेज चलते हैं तो ऐसा लगता है कि मानों अपने चार पंखों से पक्षियों का राजा गरुड़ उड़ रहा हो। चलते समय और नाचते समय इन घोड़ों की चपल काया के साथ चारों लूमें भी पूरी चपलता से नाच उठती हैं मानों ये जड़ वस्तुएँ (गजगाह) भी इस मांगलिक अवसर नाचना सीखने को मचक (ठुमका) दे रही हों। मलापते समय ये घोड़े अपना बालछा (पूंछ) यों फुलाते हैं मानों मयूर अपनी प्रत्येक छलाँग पर अपने पँख पसारते हो। इनके खुरों में लगी पक्के लोहे से बनी काले रंग की खुरतालों से राह की घास यो ग्रसी जाती है जैसे अपने शत्रु (सूर्य) के पुत्र शनिश्चर को राहु (तम) ने ग्रसा हो (सूर्य अंधेरे का शत्रु है इस अर्थ में)।

इम लग्गि अंघ्रि छुवै इला जिम अग्गि दज्झत जात।
बलि होत त्यों चपलत्व निर्जित चंचला मन बात॥
जित सत्थि सूचन व्है मुरैं तित नत्थि देर जनाइ।
जव मग्ग ठानत बग्ग कों सिथिलत्व आनन जाइ॥२९॥

चपलत्व चक्रंमके चलैं चिरैं बातचक्र चलाव।
धरनी धुजावत धारि केचन नागपेचन धाव॥
लसि के कुविंदन बान भान अटैं अटेरनि लेत।
बय पैं चढे जय पैं बढे कति भीक क्रम समवेत॥३०॥

तेज गति से चलते ये घोड़े अपने पैरों से पृथ्वी को यों छूते चलते है मानों अग्नि पर पाँव रखने से दाझने का खतरा हो और इनकी गति के आगे गतिवान तड़ित (बिजली), मन और पवन भी पराजित होते हैं। ये घोड़े अपने सवार (सारथी) का संकेत पाते ही मुड़ते है और इस कार्य में तनिक भी देर नहीं लगाते अर्थात् लगाम का संकेत पूरा होने से पहले ही मुड़ जाते हैं। जब ये अपने मुँह पर लगाम का खिंचाव कम होता जाता जानते हैं तो शीघ्र ही रास्ता पकड़ कर भागने लगते हैं और चलते ममय अपनी चपलता के कारण पवन के बगूले के समान चक्री मी बन जाते हैं। कवच (पाखर) पहने हुए ये घोड़े दौड़ते समय पतंग के पेचों की लोच धारण करने वाले हैं दुसरे अर्थ में पाखर धारण किये हुए ये घोड़े जब अपनी नागपेच नामक चाल से चलते हैं तब ये धरती को कँपाते हुए बढते है। मानों ये घोड़े न होकर जुलाहे के ताने-बाने में चलती नाल हो ये उसी तरह इधर-उधर त्वरा से अटेरन चाल पकड़ लेते है। दूसरे अर्थ में अपनी चपलता के कारण इधर- उधर फिरते जाते ये घोड़े शीघ्र ही वातचक्र नामक चाल में चलने लगते है। वय में बढ़े हुए और जय में बढ़े हुए कई घोड़े समवेत कदमों से भीक (घोड़े की चाल विशेष) चाल में बढे।

भरि फूलआदस के तिरैं धर ज्यों फिरै सर भंग।
इम लै पटी कति अैन श्रीसन दैन दीसन अंग॥
कति झंप धारन लै तरारन जात बारन कुद्दि।
जिन्ह बेग मारुत जोर दिठ्ठिहु दै महावत मुद्दि॥३१॥

खुरतार मारन ग्राव बारन खेरि फार फुल्लिंग।
प्रकटात तास प्रकास पास प्रदेस भासन पिंग॥
पखराल चातुरि देत के नखराल पातुरि पाय।
कति साचि कढ्ढुत तेग की गति बेग की गति काय॥३२॥

अपनी पाँचवी तरह की चाल फूलआदस से चलते जब धरती को तैरते हुए पार करते हैं तब ये सरोवर की बढ़ती लहर की तरह चलते नजर आते हैं। जब ये पटी नामक चाल से दौड़ते हैं तब इनके अंग ऐसे लगते हैं मानों हरिणों ने शोभा सहित अपने अंग इन्हें प्रदान कर दिये हों। कभी जब झंप नामक चाल से छलांग भरते हैं तो ये आगे हाथियों को कूद जाते हैं और जब ये हाथियों को उलांघते हैं तब इनकी गति की फेट के पवन के मारे महावत अपनी आँखे मींच लेते हैं। चलते वक्त ये अपने पाँवों की खुरतालें पत्थर पर मार कर स्फुलिंग का समूह उछालते जाते हैं और इन चिनंगारियों के प्रकाश में आस-पास की भूमि पीली नजर आती है। पाखर वाले ये घोड़े नाचते समय अपने पाँव इस खूबी से निकालते हैं मानों कोई नखराली गणिका नृत्य करते समय सुघड़ता के साथ अपना थिरकता पाँव किसी मुद्रा में निकालती हो। कभी ये घोड़े अपनी काया में ऐसी वेगवान गति निकालते हैं मानों कोई तलवार अपनी पूरी त्वरा से चल रही हो।

पलटाति छाइ छटा करैं कुलटा कडच्छ प्रमान।
मिटि जाइ जो लखि मीन दर्पन बिंब अंबक मान॥
सननंकि नत्थत दम्य लों फबि फुल्हि प्रोथन स्वास।
कर कन्ह नस्तित याल जाल कि काल व्याल प्रकास॥३३॥
त्रिक कों नमाइ कितेक उड्डुत अैंड अंग तुरंग।
कमनैत कित्ति गिनै न जिन्ह जव रोकि रंक कुरंग॥
हरते हिँडोरन होंस दोरन ओर घोरन दाहि।
गति एक मंडत केक डाकर टेक माकर गाहि॥३४॥

पल्टा करते हुए ये घोड़े ऐसी छटा बिखेरते हैं मानों कोई कुलटा स्त्री कटाक्ष मार रही हो। उनके पलटा करने की छवि का प्रतिबिंब यदि दर्पण में

कोई मछली देख ले तो उसकी आँखों का दर्प चुक जाए। जिस प्रकार नाथने समय बैल की नासिका बोलती है वैसे ही इनके फूले हुए नासाछिद्रों में श्वास बोलता है। इनकी अयालों की छवि ऐसी है मानों कृष्ण द्वारा नाथे हुए कालियनाग के फणों की छटा हो। ये घोड़े अपनी कमर झुका कर काया के करार से जब उड़ते हैं अर्थात् छलाँगें भरते दौड़ते हैं और वेग से हिरणों को रोकते है तब इन पर सवार कमनैत (धनुर्धर) इसमें उनकी कोई कीर्ति नहीं गिनते अर्थात् वे इस बात को घोड़ों के प्रसंग में साधारण गिनते हैं। चलते समय अपने सवार को पीठ पर ऐसा आराम देते हैं मानों वे झूले का आराम देने का हौसला हर लेना चाहते हों और दौड़ में दुसरे घोड़ों का दिल जला कर आगे निकल आते हैं क्योंकि ये घोड़े अपनी एक गति से चल कर कूदने का दंभ भरने वाले लंगूरों को भी पकड़ने की सामर्थ्य रखते है।

इत की मुरी इत मानबे तन आन देतन अंखि।
पटु मग्ग अग्गल जान देतन प्रान एतन पंखि॥
मनु सादिके जित जात छुट्टि गुलाल मुट्ठिय मान।
उततै तथा इत बाह अंचित आत बात उडान॥३५॥
बिधि बग्ग मोटन ब्योम जात दिखात त्रोटन बट्ट।
पटरी सहायक लै टरी नटरी कि उद्धव लट्ट॥
जिन्ह भेट लग्गत फेट चक्रित केट गै गहि जाइ।
जिनकी कटीपर पै पटी पर जे छदित्व जनाइ॥३६॥

मुड़ने में त्वरा दिखाने वाले ये घोड़े जब इधर से उधर मुड़ते हैं तो देखने वाले की आँख उनके मुड़ने की क्रिया को पकड़ नहीं पाती अर्थात् इतनी जल्दी मुड़ते हैं कि उनका मुड़ना दिखता नहीं। अपनी चाल के चतुर ये राह में चलते समय जान दे कर भी अपने से आगे किसी को नहीं निकलने देते, पक्षियों तक को नहीं। सवार का जिधर जाने का मन हो उसके अनुरूप ये तुरन्त जाते है जैसे मुट्ठी से छूटी हुई गुलाल जो हवा के साथ इधर उधर और उधर से इधर उड़ी चली जाती है। उड़ते हुए (छलांग भर कर भूमि से ऊपर उठे हुए) सवार द्वारा बाग मोड़ने पर पक्षियों की तरह हवा में घूम जाते हैं। मानों काठ की खड़ी की गई ऊँची लाठ पर पटरी से बंधी घूमती नटनी

के करतब हों। जिनकी उछाल की फेट में आ कर चकराए हुए हाथी नीचे छूट जाते हैं और तेज गति से उछले हुए इन घोड़ों के चरण हाथी की पीठ पर छाए हुए से नजर आते हैं।

कति लेत कच्छिय मोर मच्छिय बे बरच्छिय ग्राम।
प्रतिधाव आवत पाव जे धरि पाव चिन्हन धाम ॥
जुरि जात द्वै कति ज्यों कि सद्दिय संग तक्किय जीह।
जिन्ह लाह हानत होइ आनत अक्क सक्क हु ईह ॥३७॥
बिसि चक्र संकट जात बीथिन चक्र संक्रम सिद्ध।
इम केक बट्ट बिबेक ठेकत छोनि छेकत इद्ध ॥
मृधमें मतंगन पिट्ठि अंगन आनिकै अवसार।
हनि ते निषादिन बच्छ जे छुरिका बहावन हार ॥३८॥

ये कच्छी (घोड़े) मछली की तरह (पानी में लहराती मुड़ती) मुड़ कर दो बरछियों के अंतर को फांद कर विश्राम लेते है (वापस अपनी स्थिति में लौटते हैं) ये घोड़े अपनी प्रत्येक दौड़ में जहाँ उन्हें पूर्व के पदचिन्ह मंडे होते हैं उन्हीं पर फिर से पाँव धरते हैं। इस तरह उनके दोनों पदचिन्ह जुड़ कर एक हो जाते हैं मानों शाब्दिक (व्याकरण वाले) के साथ तार्किक (न्याय शास्त्र वाले) की जिव्हा (शास्त्रार्थ में) जुड़ती है। जिनकी सवारी करने के लाभ पर नम्र हो कर सूर्य और इन्द्र भी इन पर सवारी की इच्छा करते हैं क्योंकि ये घोड़े शत्रु सेना की संकरी गलियों में घुस कर चकरी की तरह घूमने की सामर्थ्य को सिद्ध करने वाले हैं। ये घोड़े मार्ग में अपने विवेक से कूद कर भूमि की लंबी दूरी को पार करना जानते हैं। रणभूमि में भिड़त की बेला में ये अपने पर सवार वीर को हाथियों की पीठ तक पहुँचाने वाले हैं जहाँ से योद्धा अपनी कटारी को सीधा हाथियों पर सवार शत्रु योद्धाओं की छाती में उतार सके।

क्रम के बढे जय के पढे भटभेर दै ततकाल।
सरकात जे रय के चढे जय के चढे दृढसाल ॥
कति तोप गोलन संग कैं परखे स्वधाव प्रमान।
हरखे बहैं करके गहैं सिथिलत्व संक्रम हान ॥३९॥

सित के उड़ैं जिम सूत नालन ग्राव पावक संग।
हिमबालुका जित आलुका किमु व्है अनावृत अंग॥
मनि नील सच्छवि के उड़ैं मिलवे कि व्योम हि मित्र।
कति बालबायुज रंग क्रीड़न पोन मित्र पवित्र॥४०॥

विजय का ही पाठ पढ़े ये घोड़े क्रमश: बढ कर आगे वाले शत्रु को तत्काल टक्कर मारने में सक्षम हैं और अपने वेग में बढे हुए विजय के करीब पहुँचे शत्रु को भी वापस पीछे सरकाने वाले हैं। इनमें से कई घोड़े अपनी दौड़ के प्रमाण में तोप के गोलों की रय से प्रतिस्पर्द्धा करने वाले हैं और वह भी हर्ष के साथ दौड़ कर। वे ऐसा कर चलने में शिथिलता बरतते हुए वेग की हानि कर रुकते हैं। अपनी खुरतालों से पत्थरों में चिनगारियाँ उत्पन्न कर ये श्वेत रंग के घोड़े जब उड़ते हैं तब यों लगता है जैसे सफेद रंग का पारा बढ़ रहा हो। ये उड़ने में कपूर को जीतने वाले हैं पर अपने नजर आते नंगे बदन के साथ, जब कि कपूर उड़ता हुआ नजर नही आता है। कुछ नीलम मणि के समान नीले रंग वाले घोड़े उड़ते हैं तो मानों वे अपने समानरंगा मित्र आकाश मे मिलने जा रहे हों। कई वैदूर्य मणि (लहसुनिया) के रंग वाले घोड़े उड़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो वे अपने पवित्र मित्र पवन के साथ क्रीड़ा करने जा रहे हों।

कति पद्मराग सराग भिंटन ज्यों रजोगुन कज्ज।
सुरराज सच्छवि केक पीवल सत्रु जीवल सज्ज॥
द्विक बाजि रूप चउक्क सच्छबि मेलमित्र नदैन।
इम जे बिनीत बिनीत क्रीड़त अैन के क्रम अैन॥४१॥
जलजात के कति बन्हिजात किते प्रभंजन जात।
द्विज आदि वर्ण त्रई जई पन तत्तई सुदिपात॥
कति पंच मंगल अष्ट मंगल मल्लिकाक्ष कहाइ।
कति चक्रवाक कजाक मंडत मान पान न माइ॥४२॥

कई माणक के रंग वाले अर्थात् कुमैत घोड़े उड़ते हैं तो वे ऐसा मानों उतावले हो कर अपने समान रंग वाले रजोगुण से मिलने को करते हैं (रजोगुण का रंग लाल माना गया है)। पन्नें जैसे रंग वाले पुष्ट घोड़े उड़ते हैं

तो मानों वे अपने शत्रुओं की जान लेने जा रहे हों। चकवे के रंग वाले घोड़ें जो उड़ते (दौड़ते)हैं मगर अपनी जैसी छवि वाले चकवों से मिल नहीं पाते क्योंकि उनके यहाँ (मित्रों से) मेलजोल की कमी है। ऐसे विनीत (शिक्षा पाए हुए) और विनीत (विनम्र) घोड़े मार्ग में बढ़ते समय हिरणों की तरह क्रीड़ा करते चलते हैं। इन घोड़ों में से कई जल से उत्पन्न हैं, तो कई अग्नि से और कई पवन से उत्पन्न हैं। इस तरह ये तीनों वर्णों वाले घोड़े तत्काल विजय दिलाने वाले हैं। इनमें से कई पंचमंगल हैं तो कई अष्ट-मंगल हैं जो मल्लिकाक्ष कहलाते हैं। कई चक्रवाक के नाम से जाने जाने वाले (ये नाम रंगानुरूप हैं) इन घोड़ों के शरीर में दर्प और बल समाये नहीं समाता जब वीर योद्धा इन पर सवार होता हैं।

मनिबंध नाभि रु ब्रच्छ मस्तक आस्य गोधि रु अंस।
त्रिक देस कंठ पिचंड रंध्रन भद्र भ्रम अवतंस॥
आवर्त ए दसइक्क उत्तम भिन्न दै अभिधान।
तहँ इंद पद्म रु चक्रबर्तिक चिंतितार्थ प्रतान॥४३॥
बिजयाख्य शुक्ल रु चंद्रकोसक आदि जे इहिं बट्ट।
पगि पुष्प चंदन आज्य गंधक राज्य संधक पट्ट॥
चउ दड्ढ बारह दंत सु स्थित रोचि मेचक चारु।
कठिनत्व मैं प्रभुता तनात बनात बज्रहिं कारु॥४४॥

श्रम के मुकुट इन भद्र घोड़ों के मणिबंध,नाभि, मस्तक,ललाट, कंधे, मुँह, कटि प्रदेश, वक्ष, कंठ, पिचंड (पेट) और रंध्र जैसे ग्यारह अंगों पर आवर्त (भँवरियाँ) हो वे सभी उत्तम माने जाते है और अलग-अलग नामों से बोले जाते हैं। इन नामों में इन्द्र, पद्म, चक्रवर्ती, विजय, शुक्ल, और चन्द्रकोश जैसे नाम वाले घोड़े जो इन मार्गों पर बढ़ रहे हैं। इनमें से जो घोड़े पुष्प, चंदन, घी, और गंधक की देहगंध वाले हैं वे राज्य को बढ़ाने वाले माने जाते हैं इनमें से जो सुन्दर घोड़े चार दाढ़ों और बारह दांतो वाले है वे कठिन परिस्थितियों में भी अपने स्वामी के निमित्त वज्रता धारण करने वाले हैं।

मुख मान सत्त रु बीस अंगुल कान मान छ मान।
सत मान अंगुल उच्च बिग्रह पिट्ठि जिन अवसान॥

ललितत्व उल्लसि कंधरा बसुबेद लंब ललाम।
निहिँ मान लूम रु मध्य ख त्रय संख्य अंगुल ताम ॥४५ ॥

इह च्यारि दिग्घ रु च्यारि लोहित च्यारि सन्नत अंग।
सुभ च्यारि उन्नत च्यारि सुच्छम च्यारि ह्रस्व प्रसंग ॥

इम भव्य भायत च्यारि आयत पाइ मंजु प्रतीक।
मन नैंन चोर मगेर मंडत ठानि संगति ठीक ॥४६ ॥

इनमें से कई घोड़ों का मुँह सत्ताईस अंगुल लंबा है और कान छह अंगुल की नाप वाले हैं। इनमे से कई सौ अगुंल की ऊँचाई वाले हैं जिनकी पीठ चौबीस अगुंल के प्रसार वाली है। उल्लास से भरे जब ये अपनी गर्दन तानते हैं, जो अड़तालीस अगुंल वाली हैं तो अत्यन्त शोभा देते हैं। प्रमाण में इनकी पूंछ से पीठ के मध्य भाग तक तीस अंगुल की दूरी है। इनके चार अंग दीर्घ, चार अंग रक्तिम वर्ण के और चार अंग उन्नत (उठे हुए) हैं। इनमें से चारों उन्नत अंग शुभ हैं जो उन्नत हैं। जो चार अंग सूक्ष्म हैं (जो चार अंग पतले हैं) वे भी शुभ माने जाते हैं। इसी तरह चार चौड़े अंग वाले ये सुंदर घोड़े नयनों में दर्प भर लेते है जब वीर योद्धा सवार को इन्हें संगत प्राप्त हो जाती है। ऐसे मन को चुराने वाले घोड़े राजा की बरात में चले।

अब दिग्घ आदि गुनत्व अंगन सूचना क्रम आनि।
मुख बाहु केस निगाल देस प्रलंबता गुन मानि ॥

क्रम सेफ ओठ रु जीह काकुद लोहितत्व लसाव।
भरि कक्ष कुक्षि रु जानु प्रिट्ठि प्रतीक सन्नत भाव ॥४७ ॥

सफ भाल को सिर प्रोथ पायु समुन्नतत्व समान।
पय कोष्ट बालधि कर्ण सोभित सुच्छमत्व प्रमान ॥

श्रुति ओ तदंतर बंस आसन बामनत्व प्रसिद्ध।
नलकील बक्रि रु खंध आनन ए बिसंकट इद्ध ॥४८ ॥

अब मैं ग्रंथकार घोड़ों के जो अवयव दीर्घ हैं उन्हें बतलाता हूँ। मुख, बाहु, (अगले पैर), केश और निगाल (गला) इन अंगों का लंबा होना घोड़े का गुण माना जाता है। इसी तरह लिंग, होंठ, जीभ, और तालु ये चार अंग लोहित (लाल रंग के) श्रेष्ठ शोभा वाले कहे गए हैं। जानु, पीठ, कुक्षि, और

काँख ये चारों अंग झुके हुए हों तो इन्हें अच्छा माना जाता है। इसके उलट खुर, गुदा, ललाट और प्रोथ ये चार अंग उठे हुए अर्थात् समुन्नत हो तो घोड़ा उत्तम अंगों वाला कहा जाता हैं। पाँव, पैरों के गाले (कोष्ट), पूंछ और कान जितने छोटे हो उतनी ही अधिक शोभा देते हैं। कान, दोनों कानों के बीच की दूरी, रीढ की हड्डी (बंस) और आसन वाला भाग छोटे हों तो घोड़ा उत्तम माना जाता हैं। पाँवो की नली (नलकील), मद्दु (बक्रि), कंधे और मुख इन चारों अवयवों के लम्बा होने का शुमार घोड़े के गुणों में किया जाता है।

कहुँ बै बिसेस जवान नच्चत जै बिसेस जनात।
कहुँ जोर दोर किसोर तंडव मोर तैं अधिकात॥

स्वच्छंदपत्तिन मान सत्तिन मेल ठानत श्रेय।
इभ मानलो उडिजान उद्ध दिपात सादिन देय॥४९॥

प्रभु को बयस्यन दान मोदित दान सूचक पाइ।
असवार कौं बहि स्वामि अंतिक देय देत दिवाइ॥

सुचि मास घर्म प्रकास के करि सेक बारि सुगंध।
प्रभु सौं अभीष्ट प्रसाद पावत स्वामिधर्मित संध॥५०॥

राजा रामसिंह की सेना युक्त बरात के प्रयाण समय रास्ते में कई विशेष यौवन की वय वाले घोड़े जब नाचते हुए बढ़ते हैं तो यह देखने योग्य विशिष्ट दृश्य होता है। घोड़ों के इस समूह के साथ चल कर किशोर वय के बछेरे जब नृत्य करते हैं तो उनका नृत्य मयूर के नाच से भी बढ़कर सुन्दर होता है। एक तरफ ये पीछे छूट जाते बछेरे पैदल चलने वाले सैनिकों के पास से भाग कर वापस सवारों के दल के घोड़ों के साथ हो जाते हैं और इस तरह वे सवारों और पैदलों के बीच मेलजोल की एक कड़ी बनते हैं। इस श्रेय से हाथी के बराबर की ऊँचाई तक उड़ जाने वाले घोड़ों पर सवार सामन्त प्रदीप्त हो रहे हैं। अपने स्वामी द्वारा समवयस्कों को दिये गए दान (सामान्यतः जो घोड़ों के रूप में होता है) से मुदित हो वे सामन्त इसकी चर्चा करते हैं कि मुझे अमुक घोड़ा तब मिला था और वे अपने वाहन (घोड़े) को रास्ते में चलते स्वामी के समीप लेकर जाते हैं और देय प्राप्त करते हैं। आषाढ़ माह की गर्मी मे स्वामी को निजात दिलाने हेतु वे सुगन्धित जल का छिड़काव करते। ऐसा

कर स्वामिधर्म निबाहने की प्रतिज्ञा वाले लोग राजा से मनोवांछित पुरस्कार पाते चले।

क्रम मैं गहे गुनहै रुहे अब गै लहे अवकास
बर बै लहे तन जै लहे रन रै लहे पन बास॥
समवेत उत्तम खेत संभव जे तनै जस जूह।
दिपती छटा जिनकी घटा घुमड़ी घटा कि दुरूह॥५१॥
चलि भद्र मंद मृगाख्य मिश्रक जाता जात चउक्क।
श्रम अच्छ के परपच्छ के गय जे करैं मय सुक्क॥
मधुरोचि दंत बारह जंघन रु चाप रीढक मान।
द्युति में हरित्व झरित्व सालि सुगंध सोभित दान॥५२॥

ग्रंथकार कहता है कि अब तक मैंने राजा की बरात में चल रहे ऊँटों के बाद घोड़ों का वर्णन किया। अब यहाँ उचित अवकाश पा कर मैं समूह में चलते हाथियों का वर्णन करता हूँ। अच्छी वय के अनुरूप अच्छा शरीर पाकर, उसमें विजय की आकांक्षा पाले ये हाथी युद्ध में अच्छे वेग को ग्रहण करने वाले हैं। समवेत हो कर उत्तम ढंग से रणभूमि में ये हाथी यश के समूह की तरह तन कर खड़े हो जाते हैं। अपनी दीप्त छटा के साथ इनकी घटा ऐसी उमड़ आई कि उसका वर्णन दुरूह है। बरात में चलते हाथियों के समूह में कई हाथी भद्र जाति के हैं तो कई मृग जाति के। कुछ मंद जाति के हैं तो कई मिश्र जाति के अर्थात् चारों जाति के हाथी इस प्रकार बरात में बढ़े। अपने अच्छे श्रम से ये हाथी शत्रु पक्ष के हाथियों का मद सुखाने वाले है। श्वेत कांति वाले इनके दाँत वराह के दाँतो के आकार में उठे हुए हैं। रीढ की हड्डी से जंघा प्रदेश तक का इनका शरीर धनुषाकार झुका हुआ सा है। कांति में हरित्व लिये इनसे चावल की गंध वाला मद झरता है।

मधुमास पिंगल नैन ओ मृदु लोम अंग ललाम।
तिम तास आनन ओठ आकुद रोचि रोहित ताम॥
सम वृत पीवर कंधरा कर मेघ वृंहित सद्द।
नख बीस कै धृति नेम क्कैकर सत्त उच्छ्रय हद्द॥५३॥

जिन्ह मत्थ मुत्तिय जुद्ध में जय ओ सदा अनुकूल।
इक भीद्र लच्छन सूचना अब मंद बोधन मूल॥
गज कुक्षि पेचक थूल लंबित दिट्ठि इट्ठि मृगेस।
पुनि कक्ष बक्ष उभै कहे सिथिलत्व जुत्त प्रदेस॥५४॥

मधुमास की सुन्दरता की तरह पीली झांई वाले इनके नयन और कोमल लोमों से आच्छादित इनका शरीर शोभा देता है। वहीं मुख, होंठ और आकुद ये सभी आरक्त वर्ण के हैं। इनके कंधे पुष्ट और समवृत आकार वाले हैं और जो मेघ की तरह गर्जना करने वाले हैं। जिनके बीस नाखून हैं अथवा अठारह और जिनके सात अंग उभरे हुए हैं। जिनके माथे से मोती निकलता है और जो सदा अनुकूल रह कर युद्ध में विजय दिलवाने वाले होते हैं ऐसे लक्षणों वाले भद्र हाथी बरात वाले हाथियों के समूह में थे। अब (ग्रंथकार) मैं वहाँ उपस्थित मंद जाति के हाथियों को बतलाता हूँ। जिन हाथियों की कुक्षि और पेट (पेचक) स्थूल और लंबे हों जिन्हें देखने की इच्छा से सिंह भी अपनी ऐंठ भूल जाता हो और जिनकी छाती (वक्ष स्थल) तथा काँख का क्षेत्र पतला हो। ऐसे मंद जाति के हाथी बरात के साथ रास्ते पर बढ़े।

मृग कै बडे दृग तत्थ ए बसु अंग खर्ब्ब प्रमान।
कर दंत अंघ्रि पिचंड मोहन कंठ लोम रु कान॥
सब चिन्ह मिश्रित मिश्र जाति चउक्क यों गज सज्ज।
गति मेघ बिग्रह बिज्जु भूखन गाढ गर्जित गज्ज॥५५॥
अरि राहु के सनि केक सोदर ध्वांत के धवअंग।
प्रसरे तमोगुन के कुटुंब्ब कि अन्य जुग्म प्रसंग॥
पथ सेक पूरत निर्झरें बपुसों प्रवृति प्रवाह।
लसि ज्यों मनोरम अद्रि जंगम श्रोत संगल लाह॥५६॥

वहीं मृग जाति के हाथी की आँखें बड़ी होती हैं और आँखों के साथ जो आठ अंग विकसित होते हैं वे सूंड, दाँत, पाँव, पेट, लिंग, कंठ, लोम (रोम) और कान होते हैं। ऐसे लक्षणों वाले मृग जाति के हाथी भी राजा के बरात समूह में चले। उपरोक्त सारे लक्षणों का मिश्रण जिन हाथियों में होता है

वे मिश्र जाति के हाथी कहलाते हैं। राजा रामसिंह की बरात में चारों प्रकार के हाथियों के समूह बढ़े। काले मेघ जैसे आकार (शरीर) वाले और बिजली के समान आभूषणों से जगमग ये हाथी जब गर्जना करते हैं तो लगता है जैसे बादल गरज रहे हों। शनिश्चर के शत्रु राहु (तम) के सहोदर और अंधेरे के पति जैसे तमोगुण के कुटुंबी इन हाथियों के जोड़े बढ़े। जो राह चलते अपने मद से पूरे मार्ग को सींचते हुए चले। जिन्हें देख कर लगता जैसे चलते हुए पर्वतों की छटा देखने का लोभ पूरा हुआ। ऐसे हाथी बरात के साथ चले।

तृनमान दै मग तुंग साखिन बाम दक्खिन तोरि।
मन के बिचारत डिग्घ डारत मेरुशृंग मरोरि॥
घन कुंभि के उर दाह घल्लत राह चल्लत रोहि।
जब ओघ मोघ जनाइ सत्तिन हत्थ कत्तिन सोहि॥५७॥

दृढ दंभि के खिन थंभि दोग्त व्है समग्र हरोल।
लवहू लगात न सत्रु सातन तोप गोलक लोल॥
नस लंब लंगर पाइ जंग रचाइ चित्र प्रतीति।
रद हेम बंगर रोचि दै ससि सूर संगर रीति॥५८॥

ये हाथी रास्ते के दोनों ओर खड़े हुए बड़े-बड़े पेड़ों को तृण के समान तोड़ देने वाले हैं। मन में यदि निश्चय करलें तो ये सुमेरू पर्वत के ऊँचे शिखरों को मरोड़ कर गिरा सकते हैं। राह में चलते ये पूरे मार्ग को रोक लेने वाले ऐरावत के हृदय में दाह उपजाने वाले हैं। ये हाथी घोड़ों के वेग को निरर्थक बना कर जब बढ़ते हैं तो इनकी सूंडों में लगी तलवारें शोभा देती हैं। दंभी योद्धाओं के हरावल से भाग छूटने पर ये हाथी ही हैं जो स्तंभ की तरह एक जगह रुप कर हरावल के स्वरूप को थामें रखते हैं जब कि शत्रु तोपों से लाल लाल गोले दागने में कोई देरी नही लगा रहे होते। अपने पाँवो में बंधी लंबी लंबी लोहे की श्रृंखलाओं वाले ये हाथी आश्चर्यजनक युद्ध करते हैं। अपने श्वेत दाँतो में स्वर्णनिर्मित बंगड़ धारी ये हाथी सूर्य और चन्द्रमा दोनों की शोभा वाले (स्वर्ण का रंग पीला और सूर्य भी पीला है, हाथियों के दाँत भी श्वेत और चन्द्रमा भी श्वेत है) युद्ध में युद्ध की रीति निभाने वाले हैं।

मचलै हमल्लन भू हलावत के चलावत मग्ग।
बट लेत उब्बट उज्झि के असु आनि अंकुस अग्ग॥
उलटान इच्छत अब्भ के इभ फैंकि सुंडिन उद्ध।
रय अँड उद्धर के कढैं तिरछे उपाय अरुद्ध॥५९॥
चल केक बान रु भैचपा चिरखी चटच्चट चैंकि।
बहुधा बिचित्र तनैं गतागत बीति रीति बनैं कि॥
छिर कैं पतत्रिन के बली बमथून व्योम झपाइ।
उलटे क बुद्धन जानि सिक्खत मेघ मेचक आइ॥६०॥

शत्रु पर हमला करने को मचलने वाले ये जब मार्ग पर चलते हैं तब पृथ्वी को कँपाते जाते हैं। रास्ता छोड़ कर ऊजड़ मार्ग पर बढने वाले ये हाथी जब अकुंश की चोट पाते हैं तभी वापस मार्ग पर लौटते हैं। चलते हुए ये अपनी सूंडें ऊपर उछालते हैं सो मानों वे ऐसा कर ऊपर स्वर्गलोक में उपस्थित इन्द्र के हाथी ऐरावत को उलटना चाहते हों। इसके लिए वे तिरछे हो जाते हैं जब वे अपनी गति और ऐंठ को उर्द्धगामी बनाना चाहते हैं। कभी तोप और कभी उसकी चरखी की आवाज से तो कभी तीर खा कर भौंचक्के हो कर बहुधा ये हाथी इधर से उधर विचित्र आवजाव कर घोड़े की भांति व्यवहार करते हैं। ये हाथी जब अपनी सूंड से ऊपर आकाश में उड़ते पक्षियों पर जल कण छिड़कते हैं तो ऐसा लगता है मानों नीचे आ कर काले रंग के मेघ उल्टा (ऊपर की ओर) जल बरसाना सीख रहे हों।

मचिजात अंदुक अग्ग अँचत मग्ग जंगल मग्ग।
दिपि बिंदुपद्मक ज्यौं जरे बपु पद्मराग उदग्ग॥
कति मग्ग लग्ग बहैं करे बस अग्ग लग्ग करेनु।
बहु मत्त डाक लगे बहैं बहुगत्त बेधत बेनु॥६१॥
जारि रतल सीस भिरी सिरी उदयाद्रि ज्यौं उडुजाल।
त्रिपदी जरे त्रिपदी तथापि चलैं अनर्गल चाल॥
मचलैं महावत बीत पावत के घुमावत मत्थ।
जनु छुत अंबर छत्ति कों बिखरात ओ घसि जत्थ॥६२॥

ये हाथी जब अपने पाँवो में बंधी जंगी लोह श्रृंखलाओं को धरती पर घसीटते हुए बढते हैं तब ये उबड़-खाबड़ जंगल में भी मार्ग बनाते जाते हैं। शरीर पर जो वीरघंट बंधने से इनकी शोभा बढी है उन्हें देख कर ऐसा लगता है मानों इन उदग्रों की काया पर माणिक्य का जड़ाव हो रखा हो। इन्हें वश में लेकर रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए हथीनियों को आगे चलाया जा रहा है। कई मतवाले हाथी डाक (क्रोध दिलाने को दिये जाने वाले छोटे घाव) लगने से चलते हैं और कई अपने शरीर पर भाले चुभाने से गति पकड़ते हैं। इनके मस्तक पर जो रत्नजटित सिरी (मस्तक का आभुषण) बंधी है उसे देख कर लगता है मानों उदयाचल पर्वत पर नक्षत्रों का समुह हो। इनके तीन-तीन पैर डगबेड़ी (त्रिपदी) से बंधे हैं तब भी अनर्गल चाल चलने से बाज नहीं आते। महावत द्वारा अकुंश से हूलना (बीत) दिये जाने पर ये अपना मस्तक ऐसे हिलाते हैं मानों आकाश रूपी छाते को अपने मस्तक से घिस कर (रगड़ कर) बिखेर देना चाहते हों।

मखतूल झूल कपाल मंडित जो अखंडित जोर।
मृधमल्ल खंडित खोम पंडित जोम तोम मरोर॥
कर कुंडली करि लंब अंबर क्रुद्ध के फटकारि।
बट लेत अंखिन देत पंखिन बेग बेत बिडारि॥६३॥
जंगाल हिंगुलु ताल जालित सीस सुंडि सुहाइ।
बुध आर जीव कि चारबक्रन आक्रम्यो सनि आइ॥
कुथ रत्त पैं गुड कांत आयस हेम रत्न अमुल्ल।
फबि ज्यौं रहे रवि गोद मंद रु चक्र लै उडु फुल्ल॥६४॥

अभी रेशम से बनी झूल जिनके श्रृंगारित कपाल को ढांपे है वे अखंडित बल वाले और युद्ध के मल्ल, हाथी अपने समूह के बल की मरोड़ के साथ शत्रु के दुर्ग की बुर्जे गिराने में सिद्धहस्त हैं। अपनी कुंडलाकार सूंड को जब आकाश की ओर लंबी करते हुए क्रोध से फटकारते उछालते हैं तब आकाशचारी पक्षियों के वेग को बिखेर देते हैं। जंगाल (तांबे से बना रंग) हिंगलु और हरताल से मस्तक और इनकी रंगी हुई सूंड को देख कर लगता है मानो बुध, मंगल, और बृहस्पति ने शनि को आ घेरा हो (ग्रहों के रंगानुसार

जाते हों। महावतों के अंगों पर शोभा देने वाले आभूषण न हों तब भी चलता है क्योंकि पूर्व में कहे अनुसार आभूषणों की कांति तो सवारों की नजर आती है।

झननंकि श्रृंखल ज्यौं बजैं तिम पिट्ठि बिस्मित झंकि।
अति सेन संकट अग्ग सादिय बट्ट बिक्खत संकि॥
मारीचगज ढिग के मतंगज यों निषादन आनि।
प्रभु पानि रीझ दिवान पिल्लत जात क्लिल्लित जानि॥७१॥
हति हत्थि होदन भौंर संक्रम गत्त पत्तनगोपि।
अति लास कज्जल भास आनत आसनावधि ओपि॥
गज यों अनेक्क अनीक संगत देत खेत दिपाइ।
रथ के सजे पथ के मनोरम जे मनोरम जाइ॥७२॥

ये हाथी जब चलते हैं तब इनके पाँवों की श्रृंखलाएँ बज उठती हैं और इस ध्वनि से विस्मित हो कर वे पीछे की ओर झांकते हैं और जहाँ संकरा मार्ग आ जाता है वहाँ सेना के घोड़े आगे का मार्ग भी नहीं देख पाते क्योंकि आगे हाथियों का दल है। राजा की मुख्य सवारी के हाथी (मारीच) के पास गजारूढ सवारों द्वारा दूसरे हाथियों को लाये जाने से यह सब कुछ हुआ है (कि पीछे वालें घुड़सवारों को आगे का मार्ग नजर नही आ रहा।) और अन्य सवार अपने हाथियों के साथ मारीच के पास इसलिए आये हैं कि वे राजा के हाथ से रीझ पा सकें। बरात में बढ़ते कई हाथियों के होदे उड़ कर आए भ्रमरों से भर गए हैं उन पर सवार लोग भँवरों के पँखों की ओट में हो गए हैं। मंडरा कर नृत्य करते भँवरों ने मुख्य आसन तक अपने रंग से काजल की शोभा पाई। राजा की सेना युक्त बरात में ऐसे कई हाथी उस क्षेत्र में शोभा देते आगे बढ़ने लगे। इन ऊँट, घोड़ों, और हाथियों के अतिरिक्त बरात में अपनी उपस्थिती से मार्ग को सुन्दर बनाने वाले मनोरम रथ भी बढ़ रहे हैं।

कति पारियानिक केक पुष्परथाख्य बैनयिकाख्य।
अरिनेमि अक्ष रु पिंडिका अणि पेसलत्व प्रथाख्य॥
सम्प्या धुरा जुग ओ जुगंधर गुप्ति आदि सुहात।
सबही प्रतीकन सज्ज स्यंदन यों बढे बहु ब्रात॥७३॥

हुव सज्ज आरुहि पट्ट हत्थिय इष्ट सत्थिय अप्प।
द्युति देखि दुर्लभ देवकी दुरिजात दर्पक दप्प॥
उष्णीष सीस कुसुंभ अर्चित स्वीय बंधु सुघट्ट।
सह साल्पनाल्प किरीट सेखर पंच रत्न पट्ट॥७४॥

राजा की बरात के इस काफिले में कई चारों ओर से खुले हुए (पारियानिक) रथ हैं तो कई हवाखोरी में प्रयुक्त होने वाले पुष्परथ और कुछ बैनयिक (शस्त्राभ्यास करने के) रथ चल रहे हैं। इन रथों के अंग उपांग जैसे पूठियाँ (अरिनेमी), फाचरे, पिंडिका (नाभी), अणि (अरों के ऊपर लगने वाले काष्ठ, आंवले) अपनी सुन्दरता बिखेर रहे हैं। इन रथों के जुए की कीलें (सोल), धुरे (ओदण), जूए (जूडे), और जुगंधर (वह स्थान जहाँ जूड़े बांधे जाते हैं) और गुप्ति (रथ कवच, रथ पर लगी वह जाली जो शत्रु के शस्त्र प्रहारों से रक्षा करने में प्रयुक्त होती हैं) सभी सुहाने लग रहे हैं। ऐसे शोभा देने वाले सज्जित रथों के समूह बढ़े। इधर अपनी खास सवारी के सज्जित (मारीच) हाथी पर अपने इष्ट साथियों के साथ दूल्हा आरूढ है। जिसकी दुर्लभ कांति देख कर कामदेव का दर्प भी मिट जाता है। इस समय सिर पर कसूमल रंग की सुगठित पगड़ी धारे दूल्हे ने, न छोटा न बड़ा आकार में सतुंलित मुकुट पहन रखा है। वहीं मोड़ के नीचे लटकने वाली पाँचों लड़ियों वाला शिखाबंधन रत्नजटित है। पगड़ी पर शिखाबंधन के पास पाँच रत्नों वाला सिरपेच बंधा है ।

लगि मुत्ति अच्छत धीर चंदन चंद्र हाड ललाट।
तिम रत्न कुंडल कर्ण जामल लाल गल्ल तलाट॥
हद रोचि गुंफित रत्न पंचक कंठ हिंडत हार।
बहुधा बिचित्र अनेक आवलि जो ज ओज बिथार॥७५॥
लट्ठा ललाम सु काय कुंचुक बिप्फुरैं जर बान।
सायंतनारुण अभ्र सीम कि बिज्जु पंनि बितान॥
कटिबंध मध्य लसैं कस्यो पगि पग्घ राचि प्रकास।
केयूर कटक अवाप भुज कर भव्यमनि मनिभास॥७६॥

ललाट पर लगे चंदन के तिलक पर मोतियों के अक्षत लगे हैं जो

पगड़ी पर बंधे चन्द्रमा (आभूषण विशेष) के ठीक नीचे लगा है। दोनों कानों में मणियुक्त कुंडल हैं जो लटकते हुए गले तक आ रहे हैं। बड़ी कलात्मक सुन्दरता से घड़ा हुआ पाँच रत्नों वाला कंठा (हार) गले पर शोभित है जिसकी अलग अलग लड़ियाँ राजा के विजय से प्राप्त प्रताप को और अधिक निखार रही हैं। शरीर पर सुन्दर लट्ठे (कपड़ा विशेष) से निर्मित जामा पहना हुआ है जिस पर जरी का कलात्मक काम हो रखा है। यह जरदोजी ऐसी चमक वाली है मानों संध्या समय के लाल बादलों की आभा हो अथवा पसरती हुई बिजली की पंक्तियों की जगमगाहट हो। शरीर के मध्य भाग अर्थात् कमर पर कसा हुआ कटिबंध है तो दूल्हे राजा की भुजा पर बंधा भुजबंध है जो पगड़ी पर बंधे आभूषणों के साथ अपनी अलग ही शोभा दे रहा है। हाथों में कड़े और पौंचा (आभूषण विशेष) पहन रखा है इन सभी आभूषणों पर जटित रत्नों की आभा मिल कर ऐसी लग रही है मानों किसी एक भव्य मणि से जगमग प्रकाश फूट रहा हो।

बहु मुद्रिका बहुरत्न बेढ दुपंच पल्लव पाइ।
अहिद्वै कि कर फनपंच पुच उरुत्व मनि अधिकाइ॥
कटि सान सुद्ध कृपान पट्टिस कत्तिका छुरिकादि।
चउ पुष्प अट्ठुन अष्ट चंद्रक पिट्ठु दिट्ठि प्रमादि॥७७॥

उपवीत प्रतिपथ मेखला इत रत्न रोचि अपुब्ब।
उर देम जानि अगाध अर्णव एस बेस कि उब्ब॥

सह धौत आवृत अंघ्रि कंचुक लंब आघुट साजि।
बनि जुग्म गोहिर रत्नशृंखल नेम हेम बिराजि॥७८॥

राजा दूल्हा ने अपने दोनों हाथों की दसों अगुंलियों में रत्न जड़ी मुद्रिकाएँ (अगुंठियाँ) पहन रखी हैं। उन्हें देख कर ऐसा लगता है कि मानों पाँच-पाँच फणों वाले दो सर्प हों और उनके फणों पर अहिमुक्ता दिप दिप कर रही हो। राजा की कमर पर सान चढ़ी कृपाण (कटारी) आदि बंधी है वहीं पीठ पर चार फूलों और आठ चन्द्रमा वाली बंधी ढाल अपनी अलग ही छटा बिखेर रही है। दूल्हे राजा के जनेऊ (उपवीत)वाले उदर प्रदेश पर रत्नजटित मेखला (करधनी) अपूर्व कांति के साथ विद्यमान है। मानों उदर

प्रदेश को अगाध समुद्र जान कर राजा का आभूषणों से युक्त यह भेष बड़वाग्नि बन कर समाया हो। लंबे बागे और पहनी हुई धोती से राजा के ढके हुए चरण हैं जहाँ उसके दोनों गिरियों पर हीरे जड़े स्वर्णनिर्मित पग- सांकले विद्यमान है।

अभिरूप यों बर भूप प्रस्थित पट्ट पीलु अरोहि।
सहचार जन्य बयस्य सन्थिय संक्रम्यों तिम सोहि॥
नृपनाग के चहुँ ओर जोर मरोर मंडत नाग।
परिबेस भेस सबेस प्रस्थित बेस देस बिभाग॥७९॥
इभ व्यूह बाह्य समूह अर्बन ऊह यों अधिकात।
जनु पच्छछेद अभेद अद्रिन बेढि सख्य जनात॥
गजव्यूह मैं गजपट्ट कौं गन पत्ति के गरदाइ।
प्रभुके प्रसाद प्रसन्न प्रस्थित चक्र चंक्रम पाइ॥८०॥

इस तरह के वस्त्रों और आभूषणों से सजा धजा मनोहारी दूल्हा राजा अपने मारीच हाथी पर आरूढ हो अपने समवयस्क बांधवों, बरातियों के साथ शोभा देता हुआ बढ़ा। इस समय राजा की सवारी के हाथी के चारों ओर बलवान मतवाले हाथियों का समूह है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सूर्य के चारों ओर नक्षत्रों की बनी कुंडली हो। हाथियों के घेरे के बाहरी ओर घोड़ों का समूह विद्यमान है मानों बिना पंख कटे पर्वतों को घेरकर बढ़ते ये घोड़े उनके प्रति अपनी मैत्री का प्रदर्शन कर रहे हों। (पाटवी) मारीच हाथी को घेरे हाथियों का व्यूह है, उसके आगे घोड़ों का घेरा है, उसे घेर कर सेना के पैदल सिपाही इधर-उधर चल रहे हैं जो अपने राजा की खुशी में खुश हैं।

सिर रूच्य के सह रत्न हाटक आतपत्र सुहाइ।
जनु रत्नसानुहि भानु को तब ताप टारत जाइ॥
दुहुँ ओर बीजत सोममुच्छ कि रोमगुच्छ दिपात।
पुरटाद्रि सूचित छत्र ज्यों पगि द्वैध गंग निपात॥८१॥
इम अर्ह बर्ह अगर्ह बीजत बित्थरे दुहुँ ओर।
मनु चोर अभ्र अदभ्र मोदित मंडि तंडव मोर॥

द्विसती नकीबन दंड प्रेरित हत्थ हाटक दंड।
अतिसीम अर्णव फौज बाडव ओज जानि अखंड ॥८२॥

दूल्हे राजा के मस्तक पर ताना हुआ स्वर्ण निर्मित रत्नों से जड़ा छत्र ऐसी शोभा दे रहा है मानों यह सूर्य के ताप से रत्न शिखर वाले सुमेरू पर्वत को बचाने का दम भर रहा हो। अभी दूल्हे के दोनों ओर से जो रोमगुच्छ (चँवर) ढुलाए जा रहे हैं उन्हें देख कर ऐसा लगता है कि जेसे ये रोमगुच्छ चंद्रमा की किरणों से बने सोमगुच्छ हों। लहराते हुए चँवरों को देख कर ऐसा आभास होता है मानों पूर्व में वर्णित उस स्वर्णनिर्मित छत्र रूपी सुमेरू पर्वत से गंगा की दो धाराएँ लहराती हुई गिर रही हों। दूल्हे राजा को पवित्र मयूरपंख (मोरछल) झल कर दोनों ओर से अगर्ह (अनिन्दनीय) पवन झला जा रहा है। मोरछलों का झलना देख कर लगता है मानो चँवर रूपी बादलों के दिख जाने पर प्रसन्न हो कर ये मयूर नाचने लगे हों। सेना युक्त बरात में आगे-आगे दो सौ नकीब (छड़ीदार) चल रहे हैं। उनके हाथ में सोने के जो दण्ड (छड़ियाँ) हैं। सो मानों अतिसंख्य रूपी समुद्र सेना में ओजवान बड़वाग्नि हो।

पहु पत्त यों दरकुंच जैपुर मंडि चक्क मुकाम।
तह भूप सिसु जयसिंह तैं नन रीति सद्धिय ताम॥
इह बैरिसल्ल स नाम राउल कुम्म नाथ कुलीन।
कछवाह भूप प्रधान व्हाँ सतकार स्वोचित कीन॥८३॥
तहँ भूप कूरम केर मुख्य प्रकोष्ठ पालक ताम।
प्रति द्वारपालन जीन जैन स्वरूपचंद्र सनाम॥
जिहिं भेजि राउल भूप द्वार स्वरूप बाल्य जनाइ।
भनि ऐन सद्धिय बैन स्वागत अैन आगत भाइ॥८४॥

ऐसी भव्य बरात के साथ राजा दूल्हा रावराजा रामसिंह दर कूच दर मंजिल बढ़ता जयपुर पहुँचा और यहीं सेना के साथ पड़ाव डाला। इस समय जयपुर का राजा जयसिंह बाल्यावस्था में था इसलिए वह रीतिपूर्वक अपने मेहमान राजा की सारी व्यवस्था करने में असमर्थ था पर जयपुर का जो प्रधान नाथावत कछवाहा रावल बैरिसाल था उसने हाड़ा राजा के सत्कार की

व्यवस्था संभाली। उसने बालक राजा जयसिंह के मुख्य द्वारपाल एक वृद्ध जैनी स्वरूपचंद को भेजा। रावल बैरिसाल द्वारा हाड़ा राजा के सम्मुख भेजे गए इस द्वारपाल स्वरूपचंद ने डेरे पर जा कर कहा कि हे राजा! हमारा स्वामी तो अभी बाल्यावस्था में है इसलिए मैं यह कहने को भेजा गया हूँ कि यह जयपुर आपका घर है! इसे अपना घर समझ कर आप यहाँ बिराजे।

इम जैन जो प्रभु बिंद तोरन दूर बाहन उज्झि।
बय अब्द सत्तरि लंघि ओरन मंदलोचन बुज्झि॥
कहि बुल्लि मुख्य प्रकोष्टपालक हड्डु भूपति केर।
अवधान हानि दिखाइ अप्पन बाढ स्वागत बेर॥८५॥
जिम भूप बाल्य प्रमाद व्है तिम सर्ब देर जनाइ।
आहूत हड्डु इलेस अंतिक एस एकक आइ॥
सय जोरि अक्खिय एह बिन्नति बैरिसल्ल समुक्त।
जो कल्हि व्है रहिबो ततो बनिजाइ स्वागत जुक्त॥८६॥

वह जैन द्वारपाल हाड़ा राजा के शिविर के मुख्यद्वार के बाहर अपना वाहन (घोड़ा) छोड़ कर भीतर गया। इस समय उसकी उम्र सत्तर वर्ष से भी अधिक थी और उसे आँखों से कम दिखता था पर वह दूसरों से पूछता हुआ आगे गया। उसने हाड़ा राजा के द्वारपाल के पास जा कर कहा कि आपके आगमन पर हम आपका स्वागत न कर सके। हमारी ओर से हुई इस असावधानी का हमें खेद है, क्योंकि जिनका राजा बाल्यावस्था में हो उन्हें इस तरह आने में देर लगना स्वाभाविक है। फिर हाड़ा राजा द्वारा बुलाये जाने पर अकेला ही उनके पास गया और हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में कहने लगा कि रावल बैरिसाल ने यह अर्ज करवाया है कि यदि आपका मुकाम कल भी यहीं रहे तो आपके आदरयुक्त स्वागत की व्यवस्था हो जाएगी।

क्रम सज्ज संसद व्है मिलाप उभै अधीसन केर।
बिधि सद्धि दोउन नेह सों सहभुक्त व्है मह बेर॥
धात्रेय मुख्यन वहाँ कही नरनाह सम्मति धारि।
सम मग्गमान प्रमान जानहु लग्न बिन अनुसारि॥८७॥

इम क्है न नैंक बिलंब ओ इम क्है हठी इत आत।
बनिजाइ तो कछवाह कै यह लाह नाह बरात॥
जो अंधकल्प चल्यो यहै सचिवादि सूचित जानि।
प्रतिहार सौं इतकेन अक्खिय जाहु लै गहि पानि॥८८॥

इसके लिए कल राजसभा आमंत्रित की जाए जहाँ आप दोनों राजाओं का मिलाप हो और आप दोनों उत्सवपूर्वक साथ साथ भोजन कर सकें। यह सुनकर बून्दी के प्रधान धायभाई कृष्णराम ने अपने स्वामी की सम्मपत्ति लेकर प्रत्युत्तर में कहा कि आप जानते हैं कि रास्ता कितना लंबा है और हमें लग्न समय पर पहुँचना आवश्यक है। यदि आप इसे हमारा हठ न समझें तो निवेदन करता हूँ कि यहाँ ठहरने में विलंब होने की संभावना है इसलिए हम झुंझनु से लौटते समय ठहरेंगे, जिससे कछवाहा राजा हमारे स्वामी की बरात का स्वागत करने का लाभ प्राप्त कर सके। हाड़ा राजा के सचिवों का यह निर्णय सुन कर वह मंददृष्टि द्वारपाल वहाँ से रवाना हुआ। इसी समय बून्दी वालों ने अपने द्वारपाल से कहा कि इसका हाथ पकड़ कर ले जा।

चहि जो अनर्महु नर्म बुल्लिय जैन जो हित चोर।
आमैरनाथ गह्यो यहै कर को गहैं तिहिं ओर॥
·जड़ दंभ खानि हसाइ हड्डुन जाइ यौं उत जैन।
आकूत अक्खिय अैन सत्वर क्हैन थंभन अैन॥८९॥
इम जात व्याहन ईस भो जयनैर एह उदंत।
दरकुंच हंकिय जुंज्झनाँ दिस सज्ज जन्य सुमंत॥
पुर गम्य अंतिक जात अंतर कोस द्वै परिमान।
तह कुम्म सेख कुलीन सम्मुह संजुरे बलतान॥९०॥

यह कोई मजाक तो था नहीं पर उस जैन स्वरूपचंद ने इसे मजाकवत लेते हुए विनम्रपूर्वक जवाब दिया कि मेरे इस हाथ को आमेरनाथ कछवाहा राजा ने पकड़ रखा है अब कोई और कैसे पकड़ेगा? इस तरह दर्प की खान उन हाड़ाओं को हँसा कर वह जैन द्वारपाल वापस लौटा और उसने आ कर रावल बैरिसाल से निवेदन किया कि हाड़ा राजा को आगे पँहुचने की जल्दी है इसलिए उनका ठहरना अपने घर जयपुर में नहीं हो सकेगा। इस तरह

विवाह करने जाते हाड़ा राजा के साथ जयपुर में यह वृत्तान्त हुआ। इसके बाद झुंझनु की ओर जाने के लिए दूल्हे राजा ने जयपुर से प्रयाण किया और दर कूच दर मंजिल बरात का काफिला आगे बढ़ा। जब रावराजा रामसिंह का यह कारवां झुंझनु के करीब पहुँचा और आगे दो कोस का फासला रह गया तब शेखा कुल के कछवाहा अपने दल के साथ चल कर स्वागत को सम्मुख आए।

सब मुख्य सेखन मैं मनोहरद्रंग बै हनुमंत।
सहसत्थ तहँ खंडेल वै सुत वातदा जुहि संत॥
बखतेस कूरम खेतरी पति बाहबाहन बुद्ध।
इक खंजपैहु बिपर्यलखन सीकरेस अलुद्ध॥९१॥
प्रभु रूच्य के स्वसुरत्व उद्धत स्याम जुज्झनपाल।
जिहिँ दुष्ट भ्रात भतीज मुख्य दले दगा अघजाल॥
सहदंत रामगढादि इम सब कुम्म सेख कुलीन।
करिकैं महामद बिंद सम्मुह आइ स्वागत कीन॥९२॥

स्वागत को सामने आए इस दल में शेखावतों में मुख्य मनोहरपुर नगर का स्वामी हनुमंतसिंह था। उसके साथ खंडेला नगर का जागीरदार, संत स्वाभाव वाला पवन पुत्र (हनुमानसिंह) भी था। खेतड़ी का राजा बखतसिंह जो घोड़े फेरने (घोड़े को चालें सिखाने) में सिद्धहस्त था वह भी साथ था और एक पाँव से लंगड़ा पर विपरीत लक्षण वाला (अर्थात् भला) निर्लोभी सीकर का स्वामी भी इस दल में शामिल था। स्वामी रामसिंह का होने वाला श्वसुर झुंझनु का स्वामी श्यामसिंह इस दल को ले कर आया जिसने पाप का जाल रच कर धोखे से अपने भाई और भतीजे को मारा था। इस दल में दांता रामगढ़ का शेखावत कछवाहा जागीरदार भी था। इस तरह इस दल ने सम्मुख आ कर उत्सवपूर्वक दूल्हे राजा रामसिंह का स्वागत किया।

उपदा निछावरि सद्धि सादर संग जे सब आइ।
प्रभु कों पटालय मुख्य अंतर प्रीति सों प्रविसाइ॥
लहि सिक्ख अप्पन अैन संक्रमि आत अंतिक लग्न।
मिलि सर्ब मंडप के महामह मोद अर्णव मग्न॥९३॥

चहुवान इंद्रहिं लै चले पधराइ व्याहन प्रीत।
गजपट्ट आरुहि हट्टु हंकिय होत मंगल गीत॥
सुचि मास के सुचि पक्ख द्वै अहि अट्ठ भू मितसाक।
दसमी दिपी पतनी जहाँ पति मंद छंद मिलाक॥९४॥

शेखावतों के इस दल में आए सभी लोगों ने हाड़ा राजा को उपहार भेंट किये (नजराना किया) और आदरपूर्वक दूल्हे राजा पर निछरावलें कीं। फिर पास ही लगे शिविर के मुख्य तंबू में हाड़ा राजा को प्रवेश करा कर उन सभी ने विदाज्ञा मांगी और चलकर अपने घर (झुंझनु) आए क्योंकि लग्न का तिथि करीब थी। इस तरह मांढे वाले (लड़की के पक्ष के) उस बड़े उत्सव में हाड़ा राजा से मिल कर हर्ष के समुद्र में डूबे। चहुवानों के स्वामी को तब यहाँ से विवाहने के लिए प्रीतिपूर्वक बरात वाले ले कर चले। इसके लिए दूल्हा राजा जब अपने हाथी मारीच पर आरूढ हुआ उस समय सभी ओर मंगल गीत गूँज उठे। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बयासी के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि रूपी स्त्री शोभायमान हुई जब शनिवार रूपी पति स्वच्छंद रूप से उसे प्राप्त हुआ।

निज लग्न पुब्ब अनेह यों तहँ संक्रम्यों नरनाह।
चउ दंत पै मघवा कि सोभित व्है सचीहित चाह॥
इचि अग्ग तोपन पंति ओपन कंति भंति अनेक।
बहि तास पिट्ठि निसान धारन इट्ठि बारन केक॥९५॥
तिन पिट्ठि गाहन व्यूह ब्याहन लै ताारन तत्थ।
चहुँ ओर व्है तिन दोर चंक्रम जोर संक्रम सत्थ॥
तिन मध्य पत्तिन व्यूह तक्खिन व्है सहस्त्रन संग।
इन मध्य हत्थिन व्यूह सत्थिन जूह ऊह उमंग॥९६॥

अपने विवाह के लग्न समय से पूर्व हाड़ा राजा हाथी पर आरूढ हो कर चला उस समय ऐसा लगा मानों चार दाँतों वाले अपने ऐरावत हाथी पर इन्द्राणी के हित की चाहना से इन्द्र शोभायमान हुआ हो। सबसे आगे तोपों की

पंक्तियां बढ़ी, जिनकी भांति-भांति की शोभा देखने योग्य थी। इनके पीछे अपनी पीठ पर ध्वजाएँ और निशान फहराते अभिलाषायुक्त कई हाथी चले। इनके पीछे-पीछे चलने वाला व्यूह हाथियों के बच्चों का था जो उछलकूद करता चला। इस समय पूरी सेना में 'चलो-चलो' के साथ इधर-उधर अफरातफरी मच गई। सभी कारवाँ के साथ चलने को तत्पर हुए। इनमें हजारों पैदल सिपहियों का समूह था (जो तत्क्षण साथ हो लिये थे) जिनके मध्य हाथियों का झुण्ड था जो विवाह के अवसर की उमंग से भरा था।

तिन मैं तथा परिबेस पत्तिन व्है बिसेस प्रतान।
बिच यों लस्यो बरनाग मेरु कि द्वीप जुंबुव मान॥
गज अग्ग व्है कछु चोक ता बिच नच्च बादन गेय।
पननारि सज्ज भई कहारन खंध पट्टन प्रेय॥९७॥
बनि अग्ग थेइ तथुंग धुंकट धुंक पिट्ठि बिभाग।
रस प्रीति बास बिलास मंडिय मेघ मंजुल राग॥
सारंभ मूर्छना ताहिसों गृह अंस न्यास गृहीत ।
ग नि हीन ओडव जो अहोबल बज्रबपु मत गीत॥९८॥

इसके बाद पैदलों के घेरे में जो बहुत लंबा था के मध्य राजा का मारीच हाथी ऐसा शोभित हुआ जैसे जंबूद्वीप में सुमेरू पर्वत हो। जब दूल्हे राजा का हाथी थोड़ा आगे बढ़ा। वहाँ एक चौक था जहाँ नृत्य, गायन, और वादन हो रहा था। इसी बीच राजा के हाथी के आगे चलने को कहारों के कंधों पर रखे हुए लकड़ी के चौड़े पट्टे पर सज्जित गणिकाएँ नृत्य करने को आतुर हो चढ़ आईं। तभी 'थेई तथुंग धुंकट धुंक' की ध्वनि करते वाद्ययंत्र बज उठे जिन्हें उनके पीछे के विभाग में बैठे बाजिदें बजा रहे थे। प्रीति रस का विलास देने को तभी मेघ राग के अलाप गूंज उठे। (यह विवाह आषाढ़ माह में हुआ इसलिए वर्षा ऋतु के राग मेघ को यहाँ स्थान दिया गया है।) आरंभ सहित मूर्छना ही से गृह, अंश और न्यास का ग्रहण करता यह गंधार और निषाद से रहित (मेघ राग में 'ग' और 'नि' के स्वर नही होते) राग था जिसे वज्रवपु महाबली हनुमान के मत से औडव (पाँच स्वर वाला) राग कहा जाता है। उसका गान आरंभ हुआ।

संगीत आदिक पारिजात रु ग्रंथ मैं सु प्रसिद्ध।
बरखा समागम में मनोज्ञ करैं स्मरासुग बिद्ध॥
रागार्णवादिक तंत्र गत संपूर्ण आदि जु राग।
बपु रूप ध त्रय उत्तरायत मूर्छना प्रबिभाग॥९९॥
मत बज्त्रबिग्रह को प्रमानत बर्तमान बिगेय।
इम पुब्ब उक्त हि उद्धरयो सबिलास लासित श्रेय॥
दिपि नील उत्पल आभ बिग्रह इंदु गोर दुकूल।
सपिपास चातक याच्यमान सु मत्त जुब्बन मूल॥१००॥

संगीत के 'संगीत पारिजात' नामक ग्रंथ में इस राग को प्रसिद्ध रागों में माना गया है और वर्षा ऋतु के आगमन समय में यह मेघ राग कामदेव के बाणों से बेधन करने वाला माना गया है। वहीं 'रागार्णव' नामक संगीत के आदि ग्रंथ में इस राग को सम्पूर्ण राग अर्थात् सात स्वरों वाला कहा गया है और इसे आदि राग की संज्ञा दी गई है। जिसके रूप में धैवत में तीन-तीन मूर्छनाओं का प्रयोग होता है जिसे गाकर वर्तमान के बहुत सारे गायक हनुमान 'बज्रविग्रह' के मत की पुष्टि करते हैं। नृत्यांगना गणिकाओं ने भी अपने श्रेष्ठ नृत्य में इसी मेघराग को उद्धरित किया। जिस राग का शरीर नीलोत्पल (रात्रि विकासी कमल) के समान है, जिस पर चन्द्रमा की चाँदनी जैसे श्वेत वस्त्र हैं और ऐसे योवन वाले और मतवाले मेघराग की याचना करने वाला प्यास से भरे चातक को माना गया है।

पीयूष मंदस्मिता ऽऽर्द्रपल्लव ओठ अंबुद अैन।
गन धीर बीरन जुट्ठ तुट्ठत बारि बुट्ठत गैन॥
कलकेक केकि रुचा रचावन ह्वै नचावनहार।
इहिंरूप राग लयो उठाइ सु सर्वराग अगार॥१०१॥
मल्लारकादिक पंच तिय पति उप्फन्यों बय मत्त।
अतिमोद ठानत रूच्य आदिन रीझ मैं अनुरत्त॥
श्रुति जाति ग्राम रु मुर्छना सब थप्पि संभव थान।
तिय मंजु माप अलाप मंडिय ब्रह्मताल प्रतान॥१०२॥

अमृत रूपी मंदहास्य, गीले पत्रों रूपी होंठ और मेघ ही जिसका घर है। धीर वीरों के समूह पर प्रसन्न हो कर आकाश से जो जल बरसाने वाला है। मधुर ध्वनि में बोलने की इच्छा करा कर मयूरों को केकाध्वनि के साथ नचाने वाला यह राग है। गणिकाओं ने ऐसे मेघराग को उच्चारित किया (गाया) जो सभी रागों का घर कहा जाता है। मल्हार, भूपाली, टंक, सारंग और गूजरी इन पाँच स्त्रियों (रागनियों) का पति वहाँ यौवन में मत्त हो कर बढ़ा। गणिकाओं ने पूरे मोद से इसे गा कर दूल्हे सहित कई सामन्तों को रीझ में अनुरक्त किया अर्थात् रिझाया। गणिका गायिकाओं ने संगीत की बाईस श्रुतियों, पाँच जातियों, तीन ग्रामों और इक्कीस मूर्छनाओं में से चुन कर संभावित स्थानों पर प्रयोग करते हुए सुन्दर माप की तानों (अलाप) रच कर इसे ब्रह्मताल (इकताल) में निबद्ध किया।

चउ कोन पट्टन तास यों पयन्यास मंडित चित्र।
मनु बाटिका बहु पुष्प झौंरन भास भौंरन मित्र॥
ध्रिमु पत्र पैं बहुचित्र सोभित चित्रकारन केर।
इम अंघ्रि उट्ठुत इष्ट आकृति दैंन भा कृति देर॥१०३॥
पय फेर अंकुस घेर घुम्मत केणिका कि प्रतान।
मुरिजात ज्यों लचकात लंक बिबंक तुट्टन मान॥
फबिजात तंडव यों गतागत साचि चक्र फिराव।
भ्रमिजात मच्छरि भाव मैं गुमि जात अच्छरि भाव॥१०४॥

चार कोने वाले उस (चौकोर) तख्ते पर नृत्यांगनाओं ने अपने पद विन्यास से ऐसा चित्र रचा जैसा मानों बगीचे के बहुत सारे पुष्पगुच्छों पर उनके मित्र भ्रमर मंडरा कर उपस्थित करते हैं। अथवा कि किसी चित्रकला में निष्णात चित्रकार ने अपनी तूलिका से नृत्यमग्न थिरकते पाँवों की लय को उकेरा हो और उसके अनुरूप इन नृत्यांगनाओं ने अपने पाँव उठा कर उसी आकृति को नृत्य में सिरजा हो। नाचते समय जब वे पाँव थिरकाती हुई घूमर लेतीं उस समय उनका लँहगा (केणिका, छोटे तंबू) के वितान की तरह तन जाता। जब वे अपनी कमर लचकाती हुई मुड़तीं तब तो देखने वाले को यह आभास होता जैसे इन नृत्यांगनाओं के या तो कमर है ही नहीं, यदि है तो टूटी

हुई होगी। वे नृत्य में आव-भाव रचतीं टेढ़ी हो कर (चक्राकार घूमती) ऐसी छवि देने लगी कि यदि उन्हें मछली देख ले तो चक्कर खा जाए या कोई अप्सरा देख ले तो नाचना भूल जाए।

तत आदि बादन च्यारि नादन धारि रारिहु तत्थ।
सब झैंकु धित्य पिपी ठनंक न मान मेलत सत्थ॥

उद्ग्राहक रु मेलापक ध्रुव अंतर रु आभोग।
जहँ लद्धि गीतक पंच भागन सद्धि संभव जोग॥१०५॥

पद ताल ओ स्वर पाट तेन बहोरि बिरुदहु तत्थ।
इम गीत अंग छ भंग आश्रित संभवी क्रम सत्थ॥

मिलि देस ताल रु बानि मानुज गीत जो हुव गीत।
स्वरकंप जो गमकाख्य पंद्रह भेद तास प्रतीत॥१०६॥

चार तंतुवाद्यों (तांत से बने वाद्ययंत्र) ने सुन्दर बज कर नाद के साथ सवाल जवाब की भिड़ंत रची। संगत करते इन वाद्यों ने अपनी 'झैंकु धित्थ, पिपी, ठनंक' की ध्वनि से मेल करते उद्ग्रहक, मेलापक, ध्रुव, अंतर और आभोग (गति के इन पाँचों भागों) का यथासंभव साथ दिया। पद, ताल, स्वर, पाट, तेन, और बिरुद राग के इन छहों अंगों को भंग नहीं होने दिया और गायक कलाकारों ने क्रमशः सभी को साधा। यहाँ शेखावतों के इस देश में ताल, वाणी, मनुष्य और गीत इन सभी के सम्मिलन पर ही गीत (गायन) संभव हुआ। संगीत शास्त्र में स्वर के कँपाने को 'गमक' कहते हैं, उस गमक के सारे पन्द्रह भेदों की यहाँ प्रतीती हुई।

तिरपाख्य आदिम लै तथा इम सर्व नामित अंत।
जिम अष्टि सम्मित एहि मिश्रित सोलहैं परजंत॥

आरोह मैं अवरोह मैं थिति मैंहु ए इम आनि।
लहरी मनों रचिबे लगी स्वर सिंधु तानन तानि॥१०७॥

जाति प्रास प्रापित गीत दस गुन व्यक्तादि जुत्त।
त्रि विधत्व भिन्न प्रबंध जे तनु इक्क इक्कअछुत्त॥

तिन्ह नाम ए सूडस्थ अलिश्रित बिप्रकीर्ण तथाहि।
एलादि ख्यापित अंग अठ्ठन सूड नामक आहि॥१०८॥

ये गमक जो तिरप नामक सर्वप्रथम भेद से लेकर पन्द्रह तरह के हैं पर नामित नामक अन्तिम भेद को साथ मिलानें पर सोलह हो जाते हैं। यहाँ गायक कलाकारों (गणिकाओं) ने आरोह, अवरोह और स्थिति में इन सोलह भेदों का समावेश किया। वे गमकों को ला कर, स्वर रूपी समुद्र में तानों को फैला कर, जैसे लहरें रचने लगी (अर्थात् अपनी सुन्दर स्वर-लहरियों का विन्यास किया)। यति और प्रास मे ले कर व्यक्त तक राग के कुल दस लक्षण कहे गए हैं। इन्हें भिन्न-भिन्न प्रबंधों (संगीतशास्त्र के ग्रंथों में) तीन प्रकार की पद्धतियों में वर्गीकृत किया गया है पर यह अलग बात है कि वे सभी ग्रंथों में एक जैसे नहीं मिलते। सभी ग्रंथ अलग-अलग बतलाते हैं। वर्गीकरण की इन तीन पद्धतियों (प्रकारों) के नाम हैं मृड, अलिश्रित और विप्रकीर्ण । इनमें से पहला एल से आरंभ हो कर आठ अंग वाला मृड नामक है।

बर्णादि मित चउबीस सों अलिसंश्रयाख्य बखान।
श्रीरंग आदि छत्तीस सौं वपु बिप्रकीर्ण विधान॥
जहँ पंच मान प्रबंध जातिहु आदि तत्थ छ अंग॥
पुनि अंग इक इक हानि जे पगि सिद्ध व्है क्रम मंग॥१०९॥
अभिधान ए तिन्ह मेदिनी अरु नंदिनी अभिराम॥
पुनि दीपनी तिम पावनी तारावली जुत ताम॥
तिन्ह ठानि संभव आन संभव में असंभव त्यागि॥
रस प्रीति आलय बोर दै सब रंजये अनुरागि॥११०॥

अलिसंश्रय नामक भेद, वर्ण से ले कर चौबीस अंगों वाला माना गया है और श्रीरंग से आरंभ कर छत्तीस अंग वाला विप्रकीर्ण कहा गया है। ये प्रबंध इसकी पाँच जातियां में से प्रथम को छह अंगों वाली कहते हैं। इनमें से एक एक घटाने पर ये क्रम सहित सिद्ध होते हैं। इन पाँच जातियों को संगीत के ये प्रबंध (ग्रंथ) क्रमश: मेदिनी, नंदिनी, दीपनी, पावनी और तारावली इन पाँच नामों से बताते हैं। इन सभी जातियों सहित राग में जो संभव हो उसे साध कर और जो असंभव थी उसे छोड़ कर गायिकाओं ने बरात के सभी राग प्रेमी श्रोताओं को प्रीत के रस से सराबोर कर प्रसन्न किया।

सिव सक्ति संभव ताल देसिय उक्त व्हाँ किय सज्ज॥
तस बर्ण पंच अनुद्रुतादिक हेर हेलय कज्ज॥

लघु इक्क कै सु सपादलघु मत भेद तैं दुव मान॥
उच्चारिबे मित व्है अनुद्रुत बर्ण तस अभिधान॥१११॥
मिलि द्वै अनुद्रुत इक्क व्है द्रुत बर्ण काल प्रमेय॥
मिलिकैं द्रुतद्वय इक्क लघु लघु द्वै मिले गुरु गेय॥
लघुतीन तैं प्लुत बर्ण व्है इक ताहि मान ललाम॥
रहि ताल मैं मिति पंच भेदक वर्ण ए अभिराम॥११२॥

देशी ताल जो दो प्रकार के माने गए हैं उनमें से एक शिव से उत्पन्न है और दूसरा शक्ति (पार्वती) से उत्पन्न है। वहाँ के बाजिदों ने दोनों प्रकार के देशी तालों को सज्जित किया। इन तालों के अनुद्रुत से आरंभ कर लय के लिए पाँच वर्ण कहे गए हैं। यह अवश्य है कि संगीताचार्यों में मतभेद होने से कोई एक लघु को और कोई सवा को अनुद्रुत वर्ण कहते हैं। अर्थात् उच्चारण में एक अथवा सवा का परिमाण बताते हैं। दो अनुद्रुत मिल कर एक द्रुत बनता है जिसमें समय की अवधि का यथार्थ ज्ञान होता है। दो द्रुत मिलकर एक लघु वर्ण और दो लघु मिल कर एक गुरु वर्ण बनता है। तीन लघु वर्णों मे एक प्लुत नामक वर्ण का सुन्दर प्रमाण होता है। इस तरह ताल में यही वर्ण नाम के सुन्दर भेद कहे गए हैं।

अव ताल के दस प्रान व्है तहँ काल उक्तहि एस॥
मिलि बोध्य मग्ग क्रिया रु अंग ग्रहाख्य जाति बिसेस॥
पुनि है कला लय त्यौं गिनोजति दसम तहँ प्रस्तार॥
इहिं दसक करि असुमंत सद्धिय ब्रह्मताल उदार॥११३॥
ता नाम दक्खिन पानि जानिल नाम बामक तत्थ॥
सिव सक्ति ए मिलि ताल संभव व्है कहे क्रम सत्थ॥
सिव तैं समाहत सक्ति व्है बिधि अन्यथा बिधि हानि॥
संपा रु ताल रु सन्निपात अघात बेद प्रमानि॥११४॥

अब आगे ताल के जो दस प्राण कहे गए हैं उनमें से एक काल है दूसरा बोध, तीसरा मार्ग और चौथा क्रिया है। इस प्रकार अंग, गृह, जाति, कला, लय, और यति। यही तालों में प्राणों का विस्तार है। इन दस प्राणों की सहायता से उन बाजिंदों ने ब्रह्मताल प्राणवंत बना कर साधा। इनमें दक्षिण

हाथ से बजने वाला 'जानिल ताल' शिव से और वाम हाथ से बजने वाला 'बामक ताल' शक्ति से उत्पन्न कहा जाता है। ताल निकालने के लिए पहले दाहिने हाथ से अर्थात् शिव से उत्पन्न ताल को निकाले फिर वाम हाथ से शक्ति से उत्पन्न ताल को निकाले। यही विधि सही है और ऐसा न करने पर रीति बिगड़ जाती है। इनमें से भी मंपा, ताल और सन्निपात नामक आघातों को वेद ने भी प्रमाणिक कहा है।

इम नर्तकी जन जूह पट्टन पैं कहारन अंस॥
रचिबे लगी नृत्य गीत मुचि रस अन्य तिय अवतंस॥
करि हाव भाव कटाक्ष के क्रम अच्छरिन अनुकार॥
हुव मोहिनी मन जन्य मंडप लोक मोहन हार॥११५॥
त्रिक गान वादन नाट्य संतत मान मेलित मोहि॥
इक लै प्रसारिय राग आदिक रोहि त्यौं अवरोहि॥
सह घेर अंसुक फेर घुट्टन लंक तुट्टन संक॥
बिरचैं जथातथ आनि संभ्रम ठानि बंक अबंक॥११६॥

इस तरह कहारों के कंधों पर उठाये हुए तख्त पर गणिकाओं का समूह नृत्य और गायन रचने लगा। उन्होंने सारे रसों के मुकुट कहलाते श्रृंगार रस में सभी को आप्लावित कर दिया। अप्सराओं की तरह हाव-भाव और कटाक्ष रच कर उन्होंने मांढा (वधू पक्ष के लोगों) और बरात के लोगों के मन को मोह लिया अर्थात् वे मोहित करने वाली हुई। उन्होंने गायन, वादन और नृत्य से अर्थात् तीनों विधाओं से निरंतर सभी को मोहे रखा। एक उन्होंने राग प्रसारित कर आरोह-अवरोह से सभी को प्रमुदित किया। दूसरा नृत्य में घूमर लेते हुए लहँगे के घेरे को घुटनों से ऊपर तक ताना जिससे देखने वालों को उनकी कमर के टूटे होने का अंदेशा हुआ क्योंकि उन्होंने अपने सुन्दर नृत्य में लहराती हुई सभी को अपनी बांकी और सीधी अदाओं से संभ्रम में डाल दिया।

लसि मोद लब्भहिं इक्खि अब्भहिं जन्य मंडप लोक॥
शृंगार मैं सनिभाव जे भनि इष्ट चाहत ओक॥
इम बिंद बुट्ठत बित्त संचय गम्य स्वासुर ऐन॥
पहुँच्यो पुरीजन लाज के निधि पाल ठानत नैन॥११७॥

अति प्यार कार बजार के जन वार के दुहुँ ओर॥
लखिबे अनारतकार लग्गिय चंद्र जानि चकोर॥
उपदा निजोचित उद्धरैं रु करैं निछावरि केक॥
दानीय जे खिन पैं दिपे इनमेंहु आढ्य अनेक॥११८॥

मांढा और बरात के सभी लोग आकाश में (कहारों के कंधे पर रखे हुए तख्त पर नृत्य करने के कारण यहाँ आकाश लिखा है) हुए इस नृत्य को देख कर मोद के लोभ से लाभान्वित हुए। श्रृंगार रस में आप्लावित लोग अपने-अपने घरों की वांछा करने लगे अर्थात् सभी को अपनी अपनी प्रियतमाएँ याद आई। ऐसे में धन की वर्षा करता हुआ दूल्हा राजा जाने योग्य अपने श्वसुर के घर अर्थात् ससुराल गया। जब राजा नगर में पहुँचा तो लज्जा की निधि को पालने वाले लोग दूल्हे को देखने उमड़ पड़े। बहुत प्रीति सहित बाजार में मार्ग के दोनों ओर खड़े हो कर बरात को एकटक यों देखने लगे जैसे वे चकोर हों और दूल्हा चन्द्रमा हो। ठौर-ठौर सामने आकर अपनी हैसियत अनुसार राजा दूल्हे को नजराना देने लगे और प्रिय दूल्हे पर निछरावलें करने लगे। इस समय बाजार में नजराना करते नगर के कई वदान्य और समृद्ध लोग नजर आए।

इम जाइ तोरन सद्धि लौकिक दै कसा अवघात,
बलि बंदि कै बलि दीप पंतिय केर बेर बिभात॥
प्रविसाइ त्यों अवरोध भूपहिं थप्पि उद्वह थान,
बरन्यों अनुक्रम ठानि व्याहिय पुब्ब व्याह प्रमान॥११९॥
बिधि बेद सूचित सद्धि दुल्लह दुल्लही बपु बाम,
बपु बाम नेम बरी करी बपु बाम प्रेम प्रकाम॥
कुल सेख के अभिजात कूरम स्यामसिंह सुताजु,
कहिये गुलाबकुमारि कोविद नामधेय नुताजु॥१२०॥

इस तरह पूरी ठसक से तोरणद्वार तक जा कर दूल्हे राजा रामसिंह ने तोरण पर चाबुक का प्रहार कर लौकिक रीति का अनुसरण किया फिर जब झलामल की आरती से दूल्हे को बधाया गया उस समय झिलमिल प्रकाश में राजा का शरीर विशेष शोभायुक्त हुआ। बधाये जाने के बाद दूल्हे को अंतहपुर

के महलों में ले जाया गया फिर मंडप स्थल पर लगे आसन पर आसीन किया गया। इसके बाद विवाह की वे सारी रस्में दुहराई गईं जिनका वर्णन मैंनें (ग्रंथकार ने) राजा के जोधपुर में हुए विवाह के समय में किया है। वेदोक्त विधि विधान के अनुसार दुल्हन को राजा के वाम अंग की ओर बिठाया गया। तब राजा ने अपने वाम अंग की ओर बैठी दुल्हन का वरण कर उसे प्रीति के काज अपनी वामांगी बनाया। राव शेखा के कुल में जन्में कछवाहा श्यामसिंह की स्तुति योग्य विदुषी पुत्री गुलाब कुमारी को हाड़ा राजा रामसिंह ने अपनी रानी बनाया।

गुन रूप उत्तम चाहि ताहि बिबाहि कैं पटगेह,
अभिराम राम नरेस आइउ ओज मोज अछेह॥
निज कृष्ण धीसख बुल्लि बंटन त्याग अप्पि निदेस,
प्रारंभ मंडिय कित्ति पूरन बाढ देस बिदेस॥१२१॥
कवि के पिता कविराज चंड रु भट्ट रत्न सुकज्ज,
करिबे लगे सब द्रव्य चै करि स्वामि जे करि सज्ज॥
रजनी द्वितीय हु सद्धि लौकिक रीझि कैं अधिराज,
किय इभ्य गाइक गाइका कुल सर्ब साज समाज॥१२२॥

रूप और गुणों में उत्तम अपनी दुल्हन को ब्याह कर ओजस्वी राजा रामसिंह अछेह मोज से भरा हुआ अपने शिविर की ओर आया। शिविर में आ कर राजा ने अपने प्रधान सचिव धायभाई कृष्णराम को बुला कर त्याग बाँटने का निर्देश दिया और राजा की आज्ञानुसार देश-विदेश में कीर्ति प्रसारने हेतु प्रधान ने त्याग बाँटने की प्रक्रिया का आरंभ किया। इस समय बरात में साथ आए ग्रंथकार के पिता कविराजा चंडीदान मीसण और रत्नचंद भाट ने राज के खजाने की संचित राशि को अपने स्वामी की 'जय-जयकार' कराने हेतु बाँटना शुरू किया और सभी याचकों में बाँटा। लौकिक रीति के अनुसार अगली रात्रि को सुहागरात मनाते हुए हाड़ा राजा ने रीझ कर वहाँ गायन करने वाले गायक गायिकाओं को सभी प्रकार के इनाम-इकराम दे कर उन्हें धनवान बनाया।

रहि यों किते दिन त्यों बनीयक बर्ग कों अनुरत्त,
द्विप बाजि भूपन बस्त्र रुप्पय आदि उत्तम दत्त॥

पुर जुज्झनां सन सिक्ख संग सु दाय ओसर पाइ,
चहुवान चल्लत मंडपी हदतैं मुरे चहुआइ॥१२३॥
तहँ सेख नत्तिय खेतरीपति नाम तैं बखतेस॥
उपदा करयो तिहिं खास अप्पन बाज वेग विसेस॥
अति दच्छ उड्डुन कच्छ संभव लाडिया अभिधान॥
बर अंग रंग कुमैत अंगन जंग गैन बिमान॥१२४॥

यहाँ ससुराल में कुछ दिन ठहर कर याचक वर्ग पर अनुरक्त हो, राजा ने उन्हें हाथी, घोड़े, आभूषण, सिरोपाव और रुपयों के उत्तम दान से नवाजा। इसके बाद झुंझनु से अपने संगवालों के साथ विदा होने का अवसर आया। चहुवान राजा के प्रयाण पर मांढे के सारे लोग अपने जामाता को आदर सहित पहुँचाने के लिए अपने राज की सीमा तक आए। सीमा पर पहुँच कर खेतड़ी के राजा शेखावत बखतसिंह ने अपनी सवारी का खास घोड़ा हाड़ा राजा को उपहार स्वरूप भेंट किया। कच्छ देश में उत्पन्न और उड़ने में दक्ष इस घोड़े का नाम लाडिया था। यह कुमैत रंग का घोड़ा युद्ध क्षेत्र में सचमुच आकाश के विमान की तरह था।

लहि निट्ठि समि सु व्है दु घाँ हठ सम समि लुभाइ,
प्रंतिमग्ग प्रस्थित टारि जैपुर यों बिस्यो पुर आइ॥
बिरचे असेस बिसेस व्याहृत बेद लोक बिधेय,
दियपट्ट तत्व हजार दम्मन दुल्ही हित देय॥१२५॥

खेतड़ी के राजा द्वारा नजराने में दिये गए इस घोड़े को ले कर बहुत मान मुनव्वल हुई। दोनों पक्ष हठ पर उतर आए। खेतड़ी का राजा भेंट करना चाहता और हाड़ा राजा मना करता, अन्तत: हाड़ा राजा ने बड़ी कठिनाई से उसे स्वीकार किया। इस घोड़े को लेने का लोभ सात घोड़ों वाला (सूर्य) भी पाले था। हाड़ा राजा यहाँ से चल कर मार्ग में पड़ते जयपुर को टालता हुआ सीधा अपनी राजधानी बून्दी आया। नगर प्रवेश के अवसर पर वेदोक्त विधि विधान और लौकिक विधानों के अनुरूप राजा ने सारी रस्में पूरी कीं। हाड़ा राजा रामसिंह ने बून्दी पहुँचते ही अपनी नव ब्याहता दूसरी रानी के लिए पच्चीस

हजार की आमदनी वाली जागीर का पट्टा दिया।

दोहा

स्यामसिंहदास जु सचिव, स्वसुता कै दिय सत्थ।
सिविराम नामक सुपै, आकारित हुव अत्थ ॥१२६॥
सम्मति करि तस तंत्र सौं, माटुंदा पुर मुख्य।
कृष्णराम धात्रेय किय, स्वामि हुकम चहि मुख्य ॥१२७॥

श्यामसिंह शेखावत ने झुंझनु मे अपनी पुत्री को विदा करते समय अपने सचिव शिवराम को बून्दी साथ भेजा था। इसी शिवराम नामक सचिव को हाड़ा राजा ने बुलवाया और अपने प्रधानों से मंत्रणा कर उसे माटुंदा नामक गाँव की जागीर देने की आज्ञा दी। इस पर धायभाई कृष्णराम ने अपने स्वामी की आज्ञानुसार सारा कार्य किया।

मत्तमयूर:

यौंहि बिंदा जाहि प्रधानी करि अप्यो, माटुंदा पच्चीसहस्त्री बलि मप्यो ॥
ताहूनैं तच्छंद बढायो बसु तामैं, सारे पट्टा फुल्लन छायो सुखमा मैं ॥१२८॥

दुल्हन ने भी इसी समय शिवराम को अपना प्रधान नियुक्त किया और माटुंदा की पच्चीस हजार की जागीर का हासिल वसूलने का कार्यभार सोंपा। इस शिवराम ने रानी के लिए इस जागीर की आम्दनी को हासिल बढा कर और बढाया। इस तरह सारा पट्टा (जागीर) परम शोभा देने से फूलों छाया हो गया अर्थात् शिवराम की मेहनत से जागीर सुख देने वाली बन गई।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उततरायणे नवम राशौ बून्दीन्द्रामसिंहचरित्रे रामसिंह जूंझणों नामक नगर द्वितीयविवाहकरणानन्तर बुंदी प्रत्यागमनवर्णनमष्टमो मयूखः आदित. सप्तत्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३७०॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में, रामसिंह का झुंझनुं नामक नगर में द्वितीय विवाह करके वापस बून्दी आने के वर्णन का आठवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ सत्तर मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

इम बिलसत बुंदिय अधिप, बैभव अतुल बिलास।
जुग रानिन अनुरत जहँ, प्रस्तरि स्वजस प्रकास॥ १ ॥

सूर सुकवि सुभटन सहित, बिहरत रहित बिकार।
सर धर बन उपबन सदन, संसद सग्धि सिकार॥ २ ॥

ऋतु पाउस अंतर रसिक, राजत अतुल रसेस।
समनुभूत संगीत सह, समुचित कुतुक असेस॥ ३ ॥

पाउस सुख इम भुग्गि पहु, बिलसत सरद बहार।
इस प्रति अह बिलसिय अखिल, सह कत्तिय महसार॥ ४ ॥

सूचित दुव गज धृति सकहि, अर्ज्जुन स्मरतिथि उज्ज।
प्रभु अमात्य कोटापुरहि, प्रस्थित हुव गुनपुज्ज॥५ ॥

हे राजा रामसिंह! बून्दी का हाड़ा राजा रामसिंह (स्वयं आप) इस तरह बून्दी के अतुलित वैभव को भोगने लगा। अपनी दोनों रानियों में अनुरक्त रह कर वह अपने यश का प्रसार करने लगा। (पंडितों विद्वानों), कवियों और सामन्तों की संगत में वह विकार रहित अपना समय गुजारने लगा। कभी तालाबों में,कभी वन-उपवन में, कभी राजसभा में, कभी महलों में, कभी गोठ में और कभी शिकार में। वह भूपति अपने अंतस से पावस ऋतु का रसिक था। इस ऋतु में वह संगीत का रस लेने में संलग्न होता और कौतुक की हद तक रसाप्लावित होता रहता। राजा पावस ऋतु के सुख को भोग कर शरद ऋतु की बहार में विलास करने लगा और इस तरह उसने आश्विन माह के दिनों का लुत्फ उठा कर कार्तिक माह में पड़ने वाले त्योहारों (दिवाली) और पर्वों को मनाया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बयासी के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि के दिन राजा की आज्ञा ले कर गुणवान प्रधान अमात्य धायभाई कृष्णराम कोटा गया।

कृष्णराम अमात्य कोबिद स्वामि सत्रुनसाल।
कालफिल्ड अजण्ट सों मिलिबे चल्यो तिहिं काल॥

सो हुतो तहँ थान सूचित द्रंग बाह्य प्रदेस।
बंगला जहँ बद्ध बिस्तृत लद्ध लभ्य बिसेस॥ ६॥

बून्दी का वह बुद्धिमान प्रधान कृष्णराम कोटा के राजा शत्रुसाल और अंग्रेज एजेन्ट कॉलफिल्ड से मुलाकात करने कोटा के लिए रवाना हुआ। इस समय वह एजेन्ट कोटा नगर के बाहर उस स्थान पर था जहाँ वह एक विस्तृत क्षेत्र में निर्मित भव्य बंगले मे निवास करता था।

उद्धुरः

जब सक बेद हय धृति जात, बढि इत अंगरेजन ब्रात॥
छिति कर दक्खिनीन छुराइ, इन लिय प्रांत यह अपनाइ॥ ७॥

जैपुर जोधपुर धुर जोरि, बुंदिय उदयद्रंग बहोरि॥
करि बस त्योंहि खिल कोटादि, छिति सब स्वीय सासन छादि॥ ८॥

इतिमुख थान थप्पि अजंट, बिरचिय तंत्र निज निज बंट॥
सहरन बाह्य सासन संधि, बहुबिध बंगला लिय बंधि॥ ९॥

करि इक सासिता सब केर, मालिक थप्पि दिय अजमेर॥
बुंदिय नैर तब लहि बंट, आइउ पुब्ब टाड अजंट॥ १०॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौहत्तर के बीतते अंग्रेजों के समूह ने बढ कर दक्षिणियों मराठों के अधिकार वाली भूमि छुड़ा कर पूरे प्रांत पर अधिकार कर लिया था। अब सभी ओर अंग्रेजों का दबदबा था। जयपुर, जोधपुर को भी अपने मातहत बनाने के बाद उन्होंने बून्दी और उदयपुर को भी अपने अधीन कर लिया था। फिर कोटा को अपने अधीन बना कर अंग्रेजों ने पूरे राजपूताना पर अपनी आज्ञा चलाना आरंभ किया। अंग्रेजों ने स्थान-स्थान पर अपने एजेंट नियुक्त किये और पूरे राजपूताना को छोटे-छोटे भागों में (अपना शासन चलाने के लिए) बाँटा। सभी शहरों के बाहर की ओर उन्होनें अपने निवास और राजकाज हेतु बड़ी-बड़ी कोठियां निर्मित कर ली थीं। इन सारे एजेन्टों के ऊपर एक अधिकारी शासन चलाने के लिए रखा और उस अधिकारी के कार्यालय की स्थापना उन्होंने अजमेर में की। इस व्यवस्था में बून्दी राज का एजेन्ट बन कर सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड आया।

तिम हुव कालफिल्ड द्वितीय, सजि इन्ह अन्यतर घर स्वीय॥
किय तहँ बंगला चितिकाम, पुरसन पुब्ब धर सिर धाम॥११॥

सो हुव पीठमात्र समाप्त, पुनि रहि रुद्व नहि चयप्राप्त॥
तजि कछु हेतु करि इम ताहि, चय तस नंदगामहि चाहि॥१२॥

तिहिँ पुरतैं सु उत्तर ओर, दिय तस अस्त दिस नदि दोर॥
पगि कछु दूर नदि सन पुब्ब, परिचित बंगला जु अपुब्ब॥१३॥

तब सन हो अजंटहु तत्थ, प्रभु पुर आत अवसर अत्थ॥
इहि प्रति मिलन उक्त अनेह, आदरि कछु प्रयोजन एह॥१४॥

टॉड के बाद बून्दी का दूसरा एजेन्ट कॉलफिल्ड बन कर आया। उसने बून्दी में आते ही अपने कार्यालय और निवास हेतु बंगला बनाने का विचार किया। इसके लिए उसने बून्दी नगर से पूर्व दिशा वाले बाहरी क्षेत्र में अपने बंगले की बुनियाद डलवा कर निर्माण कार्य आरंभ किया। इस निर्माण में बंगले की पीठिका (फाउन्डेशन) ही बन पाई थी कि किसी कारण से आगे कार्य न हो सका अर्थात् बंगला पूरा नहीं बन पाया। तब उसने अपना बंगला कोटा में बनाने की सोची। उसने इसके लिए कोटा नगर से उत्तर दिशा में और नदी तट से पश्चिम दिशा के मध्य एक विस्तृत क्षेत्र का चुनाव किया। वहाँ नदी के तट से थोड़ी दूर पर एक भव्य बंगले का निर्माण कराया। इसकी इमारत अपूर्व थी। निर्माण के बाद एजेन्ट कॉलफिल्ड वहीं निवास करने लगा। बीच-बीच में वह बून्दी भी आया-जाया करता था। ऊपर बताये समय पर इसी एजेन्ट कॉलफिल्ड से मुलाकात करने के प्रयोजन से बून्दी का प्रधान धायभाई कृष्णराम अपने स्वामी के हित को धारण कर वहाँ आया।

तकि हित प्रभु मुसाहब ताम, नयपटु कृष्णराम स नाम॥
सुमति सु पाइ प्रभु सन सिक्ख, तनि प्रभु राज्य बैभव तिक्ख॥१५॥

पतन नंदग्रामहि पत्त, तकि नय बंगला गय तत्त॥
भिंटिय कालफिल्ड सु भाइ, वह जहँ रीति सम्मुह आइ॥१६॥

मंदिर लै गयो सनमानि, तकि हित उचित स्वागत तानि॥
बिरचन बिविध अवस्यनवस्य, रचि कछु मंत्र बिजन रहस्य॥१७॥

पुनि लहि गंधतैल रु पान, दुवरहि दुदिस नेह निदान॥
पुनि करि सिक्ख सिविरहिं पत्त, अर्थिन बितरि बसु अनुरत्त॥१८॥

उस सुमतिवान अमात्य ने इसके लिए अपने राजा की रजा ली और अपने स्वामी के वैभव में तना हुआ वह कोटा (नंदग्राम) पहुँचा। यहाँ आ कर वह एजेन्ट के नव-निर्मित निवास पर आया। वहाँ जा कर उसने जब कहा कि मैं कॉलफिल्ड से मिलना चाहता हूँ तो यह सुन कर एजेन्ट बाहर आया और रीति के मुजब अगवानी की। एजेन्ट उसे ले कर अपने घर में आया और उसका कायदे मुजब स्वागत सत्कार किया। इसके बाद दोनों ने एकान्त में मंत्रणा की कि जो हमारे अवश हैं उन्हें वश में कैसे किया जा सकता है ? इसके बाद इत्र-पान पेश करने की रस्म अदा हुई और दोनों पक्षों की ओर से स्नेह का प्रदर्शन किया गया। यहाँ से विदाज्ञा लेकर बून्दी का प्रधान अपने शिविर में आया जहाँ उसने याचकों को प्रसन्न हो कर अपने स्वामी की ओर से धन प्रदान किया।

इम तिथि असित मग्ग उपादि, बिरचन मिलन झल्लहिं बादि॥
बिदित जु माधवादि बिलास, उपबन झल्ल कृत जहँ आस॥१९॥

जब तहँ हो सु जालम जात, माधव बिफल दर्प मचात॥
दमि निज नृपहिं मासिक देत, अप्पहि बनि नृपत्व उपेत॥२०॥

प्रतिबल कथन मात्र प्रधान, सब बिधि स्वामिभाव समान॥
बुंदिय सचिव तब तिहिं बेल, मंडन दु दिस नय मय मेल॥२१॥

माधवसों हु चहत मिलाप, इम गय तास उपबन आप॥
अभिमुख झल्ल सुनतहि आइ, बाहिर बेल बलज बिहाइ॥२२॥

इसके बाद मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि के दिन धायभाई कृष्णराम ने कोटा के प्रधान झाला से मिलने का विचार किया। यह सोच कर वह माधवविलास नामक महल में झालाओं द्वारा बनाये गए बाग में आया जहाँ इस समय जालिमसिंह झाला का पुत्र अत्यंत दंभी माधवसिंह झाला निवास करता था। जो अपने स्वामी अर्थात् कोटा के राजा को मात्र तनख्वाह देता था और राजकाज पर पूरा उसका वर्चस्व था। वह मात्र कहने भर का प्रधान था असल में एक तरह से राज वही करता था। बून्दी का

अमात्य तब दोनों राज्यों में नीतिपूर्वक मेल-मिलाप रहे यह सोच कर झाला के निवास पर पहुँचा। यह कह कर कि मुझे माधवसिंह झाला से मिलना है वह बाग में गया। धायभाई कृष्णराम की खबर सुन कर झाला उसकी अगवानी करने अपने बाग के अहाते से बाहर तक आया।

बढि मग पंचसत मित बंस, सम्मुह भिंटि अधिक प्रसंस॥
पुनि दुव उक्त उपबन पत्त, बिरचिय काल कछु हित बत्त॥२३॥

दिय लिय अंतर बीटक देय, पटकुट पत्त पुनि सह श्रेय॥
हुव यह दोजि दिन व्यवहार, बलि करि भूप भेट बिचार॥२४॥

अंतर त्रिदिन दै तस अग्ग, मेचक मिलत गुह तिथि मग्ग॥
माधव स्वीय नृपहिँ मनाइ, बुल्लन उतहु श्रील बनाइ॥२५॥

परिकर सज्ज नृप ढिक पेलि, मनिगन आभरन पट मेलि॥
बुंदिय सचिव तहँ बुलवाइ, सबबिधि मिलन रीति सधाइ॥२६॥

वह झाला पाँच सौ कदम चल कर उसके सम्मुख गया। दोनों मिले। इसके बाद दोनों साथ-साथ बाग में आए और कुछ देर तक दोनों ने राज्यों के हित सम्बन्धी बातचीत की। रस्म के मुताबिक दोनों के मध्य इत्र और पान का आदान-प्रदान हुआ और अंत में माधवसिंह झाला उसे पहुँचाने के लिए बाग के कोट से बाहर तक आया। इसके अगले दिन बून्दी के प्रधान अमात्य ने कोटा के राजा से भेंट करने का विचार किया। इसके लिए तीन दिन बाद अर्थात् मार्गशीर्ष माह के कृष्ण पक्ष की छठी तिथि के दिन माधवसिंह झाला ने अपने राजा को मनाया और लक्ष्मीवान बनाया। झाला ने राजा के लिए अपने परिकर के साथ कुछ रत्नजटित आभूषण और महँगे वस्त्र भिजवाए अर्थात् राजा को अच्छी तरह सज्जित किया फिर उसने बून्दी के अमात्य को बुलवाया और उसकी भेंट अपने स्वामी से करवाई।

बर हय खिलत अर्घ बिसाल, मनिमय पट्ट मुत्तियमाल॥
निज नृप पानि प्रति पहुँचाइ, दृढ हित बस्तु च्यारि दिवाइ॥२७॥

आदरि नंदग्राम अधीस, सूचित ठानि इम बखसीस॥
सद दिय कृष्णरामहि सिक्ख, तुलि मति झल्ल सम्मति तिक्ख॥२८॥

इम बलि भिंटि उक्त अजंट, कृत दुव राज्य भुव गत कंट॥
इम मुरि हड्डु इंद्र अमात्य, बूंदिय भू बहिष्कृत ब्रात्य॥२९॥

सासन स्वसिर निबहन सूर, हुव नत आइ स्वामि हजूर॥
बिदलित बिक्खि प्रतिबल बाद, प्रभु किय कज्ज सिद्धि प्रसाद॥३०॥

सुन्दर घोड़ा, खिलअत, एक महँगे मोल का शिरपेच और एक मोतियों की माला, झाला ने ये चारों चीजें अपने राजा के हाथ से धायभाई कृष्णराम को इनायत करवाई। इसके लिए उसने ये चीजें पहले ही अपने स्वामी के हाथवसु करवा दी थीं। इस तरह नंदग्राम (कोटा) के राजा ने बून्दी के प्रधान को बख्शीस दे कर अपनी राजसभा में विदा किया। उसने यह सब झाला की सम्मति से डरते हुए किया। इसके बाद एक बार फिर से वह अंग्रेज एजेन्ट कॉलफिल्ड से मिलने गया और उससे मंत्रणा कर दोनों राज्यों की सीमा के तनाजे को समाप्त करवाया। बून्दी की सीमा से बाहर गया हुआ हाडा राजा रामसिंह का अमात्य तब वापस मुड़ा और अपने स्वामी की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाला वह कृष्णराम अपने राजा के हुजूर में आ कर नतमस्तक हुआ और कहने लगा कि मैं अपने प्रतिपक्षियों के खड़े किये हुए वाद को समाप्त करा कर, अपने स्वामी का कार्य सिद्ध कर लौटा हूँ।

मेचक तदनु उतरत मग्ग, अधिगत पक्ख धवलित अग्ग॥
बनि जहँ तीज तिथि ससि बार, बिरचिय गोठ गोन बिचार॥३१॥

करि दुबिलान इक्क मुकाम, रुचि गय गोठपुर प्रभु राम॥
साहब कालफिल्डहु संग, दल सह पत्त सूचित द्रंग॥

पट्टनि नैर रन करि पुब्ब, अरि दहि अंबुरासि कि उब्ब॥
खिरि बलवंत तिलतिल खेत, सूचित भ्रात सूनु समेत॥३३॥

तिहिं किय सभ्य निज त्रिदिवेस, सुत लघु भोम तस रहि सेस॥
तब दिय ताते आसन ताहि, नृपबर प्रीति रीति निबाहि॥३४॥

जब मार्गशीर्ष माह का कृष्ण पक्ष व्यतीत हो गया और शुक्ल पक्ष आरंभ हुआ तब शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि तदनुसार सोमवार के दिन हाड़ा राजा, गोठड़ा नगर जाने का विचार कर रवाना हुआ। उसने पहला पड़ाव दुबलाना में किया और दूसरा मुकाम गोठड़ा में जा किया। इस समय अपने पूरे दल बल सहित एजेन्ट कॉलफिल्ड भी गोठड़ा पहुँचा। दोनों ने पाटण नगर

में अपूर्व युद्ध का विस्तार कर समुद्र की बड़वाग्नि की तरह अपने शत्रुओं का दहन किया। इस युद्ध में बलवंतसिंह तिल-तिल कट कर रणभूमि में गिरा उसके साथ उसके भतीजे भी काम आए जैसा कि पूर्व में सूचित किया जा सुका है। इस युद्ध में बलवंतसिंह का एक भोमसिंह नामक भतीजा जीवित बचा था उसे राजा रामसिंह ने अपना सभासद बनाया। उसे उसके पिता का आसन प्रदान कर हाडा राजा ने प्रीत की रीत निभाई।

लहि जस आइ पुनि दुबिलान, अह कछु रमि सिकार अमान॥
परतट जो अजंट पठाइ, इत पुर अप्प बिलसिय आइ॥३५॥

समुझहु यह हि लग्गत साक, जट्टन खंडि मंडि कजाक॥
तोपन भरतपुर गढ तोरि, मृध जय सबन मान मरोरि॥३६॥

थिर सब देस पुर बस थप्पि, अर्भक नृपहिँ सो पुनि अप्पि॥
करि यह कंपनी जय काम, नृप अरु उद्धरिय जस नाम॥३७॥

भाकत कतिक इहिँ सक भाव, बर्मा नृपहु त्रास बढाव॥
सूबा अराकान स्वकीय, तिम बलि तनासरम द्वितीय॥३८॥

इस प्रकार यश अर्जित कर राजा रामसिंह वापस लौटते हुए दुबलाना पहुँचा। यहाँ राजा ने शिकार खेलने में कुछ दिन व्यतीत किये और खूब जानवरों का शिकार किया। फिर राजा ने एजेंट कॉलफिल्ड को चम्बल नदी के परले तट तक पहुँचाया और वहाँ से सीधा अपने नगर बून्दी आया। यह विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बयासी के आरंभ का समय था। जब कंपनी बहादुर की सेना ने युद्ध रच कर जाटों को मारा और अपनी तोपों के प्रहारों से भरतपुर के दुर्ग को तहस-नहस कर जाटों के दर्प को समाप्त किया। फिर उन्हीं के वंश के एक बालक को भरतपूर का राजा बना कर उसका राज पूरे प्रांत में पुनर्स्थापित किया और व्यवस्थित किया। कंपनी ने यह विजय हासिल कर हे राजा रामसिंह! आगे आने वाले समय के लिए अपने यश और नाम का उद्धार किया। कई लोगों का मत है कि विक्रम संवत् के इसी वर्ष अठारह सौ बयासी में ही अंग्रेजों ने बर्मा के राजा पर अपने भय का दबाव डाला। ऐसा करके उन्होंने पहले अराकान का सूबा अपने अधिकार में लिया फिर दूसरे सूबे तनासरम को अधीन किया।

द्विक यह अंगरेजन दिन्न, कतिकन अत्र संसय किन्न॥
समुझहु ताहि सूचित साक, जैपुर ठानि कपट कजाक॥३९॥
श्रावक इक्क झुंत सनाम, करि तिहिँ धुत्त धुत्तन काम॥
अंतर भेदि सब अवरोध, बहु दल छबि रानिन बोध॥४०॥
मुख्य जु भट्टिनी तिन माँहिँ, निस्त्रप नाँहिँ जिहिँ किय नाँहिँ॥
तिय वह भट्टियानिय तास, हुव करि द्वैहि कुल उपहास॥४१॥
रूपा किंकरिय अघ रत्त, तस हुव मुख्य मंत्रिय तत्त॥
इत रहि झुंत बाहिर ईस, उत दुव उक्त मध्य अधीस॥४२॥

इसमें सन्देह व्यक्त करते हुए कई लोगों का अलग मत है कि ये दो सूबे अंग्रेजों को नहीं सौंपे गए। हे राजा रामसिंह! समझो कि अब मैं इसी वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ बयासी के समय का जयपुर का हाल बताता हूँ, जहाँ पर धूर्तों ने अपना कपटजाल फैलाया। एक झूंताराम नामक धूर्त सरावगी वैश्य ने धूर्तों का काम करके राजा के जनाने की सभी स्त्रियों को अपने पक्ष में कर लिया और रानियों को भी मिला लिया। इन रानियों में सबसे मुख्य रानी भटियानी (भाटी वंश में जन्मी) थी उसने भी इस योजना का विरोध नहीं किया और ऐसा कर उसने अपने पीहर और ससुराल के दोनों पक्षों का उपहास करवाया। इस रानी की एक दुष्ट दासी रूपा नामक थी, उसके साथ रानी ने मुख्यमंत्रित्व संभाला। इस प्रकार बाहर झूंताराम कर्ताधर्ता बन गया और भीतर रनिवास में रानी भटियानी और रूपा बडारन की बन आई। वे राज संभालने लगीं।

श्रावक बुद्धि फंद प्रसारि, राउल बैरिसल्ल बिडारि॥
बाहिर मुख्य झुंत कुबोध, रूपां धीसखी अवरोध॥४३॥
मन जिहिँ झुंत रानिन मेलि, खलपन खेल अद्भुत खेलि॥
महलन छन्न द्वैहि मिलाइ, समुचित राउलहिँ निकसाइ॥४४॥
बहु बसु अंगरेजन अप्पि, थिर सब तंत्र अप्पन थप्पि॥
कति अवरोधजन प्रतिकूल, सह हठ जे लखे हिय सूल॥४५॥

जो सब नारि नाजर जूह, आये न लखि निज मति ऊह॥
गहि तिन्ह पटकि कैद अगार, दुष्टन रुद्ध करि करि द्वार ॥४६॥

उस सरावगी झूंताराम ने अपने बुद्धिबल से जाल फैला कर रावल बैरिसाल जो प्रधान था उसे वहाँ से निकाल बाहर करवाया। अब साफ-साफ बाहर कृतघ्न झूंताराम की चलने लगी और भीतर चतुर रुपा बडारन उसकी सहायक बन गई। भटियानी रानी से अपना मन मिला कर उस कपटी सरावगी ने कपट का अद्‌भुत खेल खेला। महलों में दोनों ने चुपके से मिल कर रावल वैरिसाल जो राजा का खैरख्वाह था उसे निकलवा दिया। फिर अंग्रेजों को बहुत सारा धन दे कर उसने सभी जगह अपनी आज्ञा चलाना आरंभ किया। जनाना की कुछ रानियों आदि को, विरोध करने वालों को, उसने अपने हृदय का सूल समझा अर्थात् विरोधी उसके उर में खटकने लगे। जनाने की उन सारी स्त्रियों और नाजरों के समूह को जो उनके अनुसार चलने को तैयार न थे। इन लोगों (झूंताराम, भटियानी रानी और रूपा) ने उन्हें पकड़ कर कारावास में डाल दिया और कैदघर के दरवाजे बन्द करवा दिये।

गन बहु ठानि अनसन गूढ, मारे सतन जन करि मूढ॥
सिसु बय पिक्खि नृप जयसीह, बहि त्रिक त्रास तास अबीह ॥४७॥

मिलि तह स्यामसिंह प्रमत्त, प्रभु स्वसुरत्व चहि जिहि पत्त॥
सठ इक चिमनसिंह सनाम, धरि भव मनोहरपुर धाम ॥४८॥

जो खल हो खवासिप्रजात, यह द्विक सेख कुल इत आत॥
मालिक उक्त रानिय मांहिँ, अभिमत किंकरी जुत आंहिँ ॥४९॥

इत हुव उक्त जुग जुत एस, बाहिर झुंत बैश्य बिसेस॥
तँहँ इम नारि दुव नर तीन, इम मिलि मुक्त राज्य अधीन ॥५०॥

वहाँ कारावास में कैद सभी को चुपचाप निराहार रख कर उन्होंने सैंकड़ों लोगों को मार डाला। जयपुर के राजा जयसिंह के बाल्यावस्था में होने से इन तीनों का भय पूरे राज में निर्भय हो कर फैल गया। इसी समय झुंझनु वाला प्रमत्त शेखावत श्यामसिंह जो हे स्वामी! आपका श्वसुर लगता है वह जयपुर आया। उसी की तरह एक दुष्ट चिमनसिंह नामक जो मनोहरपुर का था और दासीपुत्र था। ये दोनों शेखावत जयपुर आए जहाँ रूपा बडारन की राय से

काम करने वाली भटियानी रानी राज की मालकिन बनी हुई थी। भीतर जनाने में ये दोनों शेखावत भी इनमे आ मिले इस तरह दो स्त्रियों और तीन आदमियों, इन पाँचों ने मिल कर राज्य को पूरा अपने अधीन कर, भोगना आरंभ कर दिया।

दृढ दम झुंत रानिय द्वै हि , हाकिम उग्र सब सिर व्है हि॥
असहन ले जखे भट ओर, जिन्ह दिय कढ्ढि घर बरजोर।।५१॥

नतसिर जे रहे बल नामि, मुख्यहु ते लयेहि बिसासि॥
जयपुर ईस तजि भजि जार, इम हुव अंधकार आगार।।५२॥

राउल जो प्रधान बिरत्त, प्रेरित मान बिनु गृह पत्त॥
मो रहि द्रंग निज सामोद, कट्टहि काल पत्त प्रमोद।।५३॥

मिलि सक अग्ग अहि धृति मान, थिर गिनि अज्जभुव निज थान॥
हो इह नवम जनरल हंत, जिहिँ कहिँ सिंधु जुग परजंत।।५४॥

रानी भटियानी और झूंतागम सरावगी ये दोनों राज्य के सारे अधिकारियों के सिरताज बन बैठे। इस समय जो भी सामन्त इनका विरोध करते, ये उन्हें जबरन वहाँ से निकाल बाहर करते। जो जयपुर के सामन्त उमराव अपना बल भूल कर इनके समक्ष नतसिर हुए उन्हें इन्होंने अपना विश्वासपात्र माना। इस तरह जयपुर नगरी रूपी स्त्री ने अपने स्वामी को छोड़ कर जार पुरुष का वरण किया और पूरा राज अंधकारग्रस्त हो गया। रावल बैरिसाल जिसे प्रधान पद से हटाया गया, वह अपमानित होकर अपने घर चला गया। वह अपने नगर सामोद में रह कर समय बिताने लगा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरासी में आर्यावर्त्त को अपनी निरापद जागीर समझने वाला अंग्रेजों का नवमा जनरल मर गया। जिसकी आज्ञा पूर्व और पश्चिम में दोनों समुद्रों के मध्य वाले क्षेत्र पर निर्बाध चलती थी।

अवहित कंपनीजन आनि, मन निज छंद अज्जन मानि॥
अब दिय यह निदेस अभंग स्त्री जिन दहहु निजपति संग।।५५॥

थित पुनि नवम जनरल थान, अह कछु मटकलप अभिधान॥
अज्जन रोध मेटि असेस, दिय जिहिँ सुद्धि लेख निदेस।।५६॥

तिम लिखि खबर छद तब तेहि, हुव मिथ प्रहित जित तित हेहि ॥
सक इत उक्त मिति अनुसार, बीन जहँ छमुख तिथि बुधवार ॥५७॥

पगिसित पक्ख श्राम सहस्य, रुचि मन कोहु कज्ज रहस्य ॥
पिप्पल लंब जहँ तहँ प्रात, यह चढि पंच नाड़िय आत ॥५८॥

इसके बाद बने दसवें जनरल ने कंपनी (ईस्ट इंडिया कंपनी) के लोगों को सावधान करते हुए आर्यो की सती प्रथा को छद्म मान का आज्ञा दी कि स्त्रियों को अपने मरे हुए पतियों के साथ मत जलाने दो। वह चार्ल्स मेटकॉफ दसवें गवर्नर के पद पर कुछ दिन रहा। उसने आर्य लोगों के विरोध को मिटा कर सती प्रथा के विरुद्ध लेखों अर्थात् अखबारों में लिखने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार तब के अखबारों में सती प्रथा के विरुद्ध लिख कर सभी ओर प्रसारित किया गया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरासी के पौष माह के शुक्ल पक्ष की छठी तिथि (ज्योतिषि के अनुसार जो स्वामी कार्तिकेय की तिथि मानी जाती है) तदनुसार बुधवार के दिन अपने मन में कोई योजना सोच कर चार्ल्स मेटकॉफ ने बड़े पीपले (पिप्पललंब) जाने का कार्यक्रम बनाया। इसके अनुसार यह सूचना दी गई कि पाँच घड़ी दिन चढ़े वे खेरला गाँव में पहुँचेंगे।

गदियत खेरला जहँ ग्राम, आवत मटकलप अभिराम ॥
इतसन कृष्णराम अमात्य, जिहिं जस जातरूप कि जात्य ॥५९॥

पहुँचि सु खेरला हद पास, मिलि जिम पंगुसन कड्मास ॥
इम तिहिं लै मुख्यो मग आस, सद्धिय ताल तालहरास ॥॥६०

जनरल नवम प्रतिनिधि जोहि, संभर मंत्रि पटु इत सोहि ॥
ख्यात जु जवन जमियतखान, थित ढिग सो वकीलहु थान ॥६१॥

जहँ इम जाम त्रिक निस जात, परि खिल जाम इक्क हि प्रात ॥
व्हाँ सन होइ प्रस्थित प्रीत, आवत ग्राम तीन अतीत ॥६२॥

टिप्पणी :- १ सर चार्ल्स मेटकॉफ (१८३५–३६) ग्यारहवाँ गवर्नर जनरल था। वह विक्रम संवत् के वर्ष १८९०–९१ में जनरल बना। यहाँ ग्रंथकार का दिया समय इससे नहीं मिलता। यहाँ लिखने में ग्रंथकार काल कदाचित भूल हुई है। संभवतः यह विलियम बेंटिक रहा होगा जिसने सती प्रथा पर रोक लगाई थी **संपादक**

मेटकॉफ के आगमन की खबर पा कर बून्दी का अमात्य जिसका यश चांदी के समान था वह जैसे जयचन्द्र (पंगु) से मिलने कैमास गया था उसी तरह जनरल से मिलने हेतु खेरली के लिए रवाना हुआ। इसके लिए कृष्णराम ने ताल और तालेड़ा से हो कर जाने वाला मार्ग लिया। कायम मुकाम दमम गवर्नर जनरल को उधर से आना था और चहुवान राजा के मंत्री (कृष्णराम) को इधर से पहुँचना था। उस समय का प्रसिद्ध यवन जमियतखान जो राज्य के वकील के पद पर नियुक्त था। उसके घर बून्दी का यह अमात्य तीन प्रहर रात्रि के व्यतीत होने पर और एक पहर बाकी रहते पहुँचा। यहाँ से खान को साथ ले कर धायभाई ने तीन और गाँवों की दूरी पार की।

गहि नवग्राम उत्तर ओक, चहि जह रम्य आयत चोक॥
प्रभु उत आइ सम्मुह पत्त, रहि थित रीतिक्रम अनुरत्त॥६३॥

मिलि तहँ मटकलप महिपाल, बाहुरि तुष्ट नेह बिसाल॥
रहि वह चेलगृह अनुरत्त, प्रभु इत सुभ्र सौधन पत्त॥६४॥

इह गुरु सप्तमिय अवदात, जहँ निस इक्क नाड़िय जात॥
भिंटन भूप सूरि सतेज, आइउ उक्त तहँ अंग्रेज॥६५॥

सु बिसत छत्रसौध समाज, अभिमुख उट्ठि तव अधिराज॥
जिम बिधि अद्ध अंगन जाइ, आनि सु संग हित अधिकाइ॥६६॥

नवगाँव के उत्तर दिशा में एक चौड़ा मैदान देख कर इस स्थान को तय किया कि यह स्थान हमारे स्वामी के जनरल से मिलने हेतु उपयुक्त रहेगा। हाड़ा राजा चल कर जनरल की अगवानी के लिए जो प्रचलित रीति के अनुसार था यहाँ पहुँचा। यहाँ रावराजा रामसिंह की भेंट सर चार्ल्स मेटकॉफ से हुई जहाँ राजा ने ऊपरी मन से बहुत स्नेह का प्रदर्शन किया। वह मेटकॉफ अपने शिविर में रहा और हाड़ा राजा नवगाँव के श्वेतमहल में रुका। इस तरह सप्तमी तिथि तदनुसार गुरुवार को जब एक घड़ी रात व्यतीत हो गई उस समय वह अंग्रेज अफसर, विद्वान और वीर हाड़ा राजा रामसिंह से मिलने आया। छत्रमहल में जुड़ी राजसभा में उसके प्रवेश लेते ही अगवानी करने को राजा उठ कर सामने आधे आंगन तक चल कर गया और वहाँ से हितपूर्वक गर्वनर जनरल को साथ लेकर आया।

बैठिय इक्क पीठ बिसेस, अभिहित अंगरेज इलेस ॥
जहँ कछु बिजन मंत्रहु जोरि, बखसिय अतर पान बहोरि ॥६७ ॥

जनरल दसम सम्मत जोहि, हाकिम सबन सिर पर होहि ॥
तिहिं क्रम अधिक आदर तास, करि दिय सिक्ख प्रीतिप्रकास ॥६८ ॥

जिहिं पुनि अजिर दल लग जाइ, प्रभु इम बाहुरिय पहुँचाइ ॥
वह गय तदनु जनपद इष्ट, संभर बिभव बिलसत सिष्ट ॥६९ ॥

सूचित सकहि तनि गृह सोक, लिय इत संधिया परलोक ॥
रहि अबलों सु दोलतराव, पावत पद पटेल प्रसाव ॥७० ॥

अंग्रेज मेटकॉफ और हाड़ा राजा दोनों सभा में एक ही आसन पर बैठे। यहाँ एकान्त में दोनों ने कुछ देर तक मंत्रणा की फिर रस्म के अनुसार जनरल को इत्र और पान पेश किए गए। यहाँ राजा ने दसवें गर्वनर जनरल को सभी पर हाकिम होने की सहमति दी। फिर स्वागत के क्रम में पूरे सम्मान के साथ स्नेह का प्रदर्शन करते हुए राजा ने मेटकाँफ को विदा किया। इस समय भी राजा चल कर उसे आधे चौक तक पहुँचाने गया और उसे विदा कर वापस आया। तत्पश्चात मेटकॉफ की जहाँ जाने की योजना थी वह वहाँ गया और इधर चहुवान राजा ने श्रेष्ठ वैभव का विलास किया। उधर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरासी में ग्वालियर के घराने में शोक हुआ क्योंकि सिंधिया परलोकवासी हुआ। अब तक वह सिंधिया दौलतराव पटेल के पद पर आसीन था।

बितजिय बेर तिहिं इहिं बेर,गृह गृह हंत हुव ग्वालेर ॥
इहिं सुत कृतक तात अभाव, रहि तस पट्ट जनकुव राव ॥७१ ॥

माहजि पुत्र पुत्र सु मानि, किय तिम अंगरेजन कानि ॥
इत प्रभु अप्प हड्डुन अर्क, सम्रन सिद्ध इद्ध उदर्क ॥७२ ॥

सत्थिन सत्थ उक्त हि साक, कानन मंडि दोर कजाक ॥
बढ्ढिय घात पात बिभक्ति, मक्तिन कोल बेधन सक्ति ॥७३ ॥

दोरत पिट्ठि बाजिन देत, लघु बढि अप्प किरि हनि लेत ॥
बढि बढि दै पटी इक बीच, करि करि मग्ग सोनित कीच ॥७४ ॥

उसके शरीर त्यागने पर ग्वालियर के घर-घर में शोक व्याप्त हो गया।

दौलतराव के दत्तक पुत्र जनकुराव ने अपने पिता के अभाव में तब ग्वालियर का सिंहासन पाया। उसको महादजी सिंधिया का पुत्र मान कर अंग्रेजों ने उससे किनारा लिया। इधर हाड़ा राजा जो शुभ कर्मफल के कारण शस्त्रों में सिद्ध था ने अपने साथियों को साथ ले कर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ तिरासी में वन में जा कर युद्ध (आखेट) रचा। वे पंक्तियों में बँट कर अपनी बरछियों से सूअरों को बेधने की शक्ति का प्रदर्शन करने लगे। दौड़ते हुए सूअर के पीछे घोड़ा दौड़ाकर शीघ्र आगे बढ़ कर सूअरों को मारने लगे। अपने घोड़ों को बढ़ा कर अर्थात् दौड़ा-दौड़ा कर उन्होंने रास्ते को रक्तिम कीचड़ वाला बना डाला।

दुव त्रय बंधि इम छितिदार, भूपति बंटि सत्थिन भार॥
अंगमि अप्प कित्ति अछुत्त, जँहँ मुरि तांत्र अरुणन जुत॥७५॥

आवहिँ सिद्ध सस्त्र अगार, बत्सर पंद्रहम बय बार॥
मिलि चउ अट्ठ धृति सक माप, इत पुर नंदग्राम इलाप॥७६॥

जबलग आयु लहि बिधि जोर, किय निज देह हानि किसोर॥
पित्थल मंगरोल प्रघात, गय नृप भ्रात लघु तजि गात॥७७॥

तस सुत पट्ट पति किय ताम, सचिवहिँ रामसिंह सनाम॥
कहियत ता हि सक समकाल, मृत इत उदयपुर महिपाल॥७८॥

इस तरह अपने हाथ से दो तीन सूअरों को बेध कर शिकार का भार राजा ने अपने साथियों को सौंप दिया। इस प्रकार हाड़ा राजा शिकार में अछूती कीर्ति प्राप्त कर रक्त से लाल भालाधारी अपने साथियों सहित वापस घर लौटा। सारे शस्त्रों को चलाने में पारंगत हाड़ा राजा रामसिंह ने तब अपनी आयु का पन्द्रहवाँ वर्ष पार किया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चौरासी में नन्दग्राम (कोटा) का राजा जो अब तक अपने आयु बल से जीवित था उस राजा किशोरसिंह ने अपनी देह त्यागी। मंगरोल के युद्ध में राजा किशोरसिंह का छोटा भाई पृथ्वीसिंह पहले ही काम आ गया था तब उसके पुत्र रामसिंह को झाला सचिव ने कोटा का नया शासक बनाया। इसी वर्ष में उदयपुर के महाराणा का भी देहान्त हो गया।

रतजस भीमसिंह जु रान, जिहिँ सुत भो अधीस जवान॥
बलि अब लखनेउव बात, जहँ सुत लघु सहादत जात॥७९॥

दि असु गजिमुखयुद्दीन, रहि इम तहँ नसीरुद्दीन॥
सूचित सकहि बाहुल स्वेत, प्रतिपद बीर रवि समुपेत॥८०॥

निजकवि जनक चंड सनाम, तुम प्रभु पूज्य मन्निय ताम॥
करि इक बैठि अग्ग कुमंत, अंबक द्रंग लिय बलवंत॥८१॥

तब सन राबरे प्रभु तात, खिजि हुव भ्रात सिर अनखात॥
कविबर चंड तदपि लुकेन, रुचि बस गोठ जात रुकेन॥८२॥

यश में अनुरक्त महाराणा भीमसिंह के मरने पर उसका पुत्र जवानसिंह उदयपुर की गद्दी पर बैठा। उधर लखनऊ में भी सहादत खान के छोटे बेटे नवाब गाजिउद्दीन ने अपने प्राण त्यागे और लखनऊ का नया नवाब नसीरुद्दीन बना। हे राजा रामसिंह! विक्रम के वर्ष अठारह सौ चौरासी के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि तदनुसार रविवार के दिन हाड़ा राजा अपने कवि (ग्रंथकार) के पिता चंडीदान को सदा पूज्य माना। पर पूर्व में किसी कुमंत्रणा के अधीन हो जब बलवंतसिंह ने आपके नगर नैणवा को दबा लिया था तभी से हे स्वामी! आपके पिता अपने भाई से नाराज रहने लगे। वह कविवर चंडीदान तब भी छिप कर नहीं रहा अर्थात् अपनी रुचि से गोठड़ा जाता रहा।

तब नृप इतहु भासत भीम, तिन्ह प्रति बंध किय ताजीम॥
सो अब उक्त खिन अनुसार, प्रभु पुनि अप्पदिय करि प्यार॥८३॥

सत्थहि खास हय सिरुपाव, भूधव तुट्ट दिय हित भाव॥
आदरि चंड कवि इम अप्प, दलि किय नट्ठ कृपनन दप्प॥८४॥

इत सर नाग धृति सक आत, अह जहँ नवमि मधु अवदात॥
बिक्रमनैर लहि बिधि बाम, नृप मृत सुरतसिंह सनाम॥८५॥

तस सुत रत्नसिंह सु तत्थ, हुव नृप राज्य करि निज हत्थ॥
सक तिहिँ बिसद फग्गुन श्राम, इत पुर कामरनि अभिराम॥८६॥

इस समय भीमसिंह गोठड़ा का स्वामी था। हे राजा! आपने चंडीदान को ताजीम देना बंद कर दी थी। उसे आपने अठारह सौ चौरासी के वर्ष में प्रीति सहित वापस ताजीम देना आरंभ किया। इस प्रकार चंडीदान का आदर कर आपने कृपणों के दर्प को चूर किया। विक्रम संवत के वर्ष अठारह सौ

पिचासी के आरंभ में चैत्र शुक्ला नवमी के दिन बीकानेर के राजा का विधि के विधान से देहावसान हो गया। तब उसके पुत्र रत्नसिंह ने बीकानेर का राजा हो कर राजकाज अपने हाथ में लिया। इसी वर्ष के फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष में कापरनी नगर में आपका जाना हुआ।

वह लहि बंधु परिणय हेत, नृप गय निज पितृव्य निकेत॥
करि तहँ कज्ज बिधि सतकार, आगत कित्ति जित्ति अगार॥८७॥

बनि सामंत सुत उत बिंदु, अंहति उचित ठानि आनंद॥
सरमथुराख्य नेर सिधारि, सोधित लग्न खिन अनुसारि॥८८॥

कुमरिय जो मनोहर केर, बनि आनंदकुमरि सु बेर॥
बासर कतिक तत्थ बिहाइ, छिति थिति अमित चिति जस छाइ॥८९॥

सुत बलदेव इम बल सत्थ, जनकहु जाइ व्याहि सु जत्थ॥
लालित लै बधू बर लार, आगत रम्य गम्य अगार॥९०॥

अपने चचेरे भाई के विवाह अवसर पर रावराजा रामसिंह अपने चाचा (काका) के घर गया। वहाँ राजा का पूरे विधि-विधान से सत्कार किया गया और राजा ने भी यश की राशि अर्जित की। सामंतसिंह हाड़ा का पुत्र दूल्हा बना और याचकों को खूब दान दिया गया। सरमथुरा नामक नगर में बरात गई और लग्न के शुभ मुहूर्त पर विवाह सम्पन्न हुआ। मनोहरसिंह की पुत्री आनंदकुमारी को अपनी पत्नी बना कर वह कुछ दिनों तक सरमथुरा में ठहरा और राजा ने याचकों को दान दे कर पृथ्वी पर अपनी अमित कीर्ति प्रसारित की। अपने पिता के साथ और दल-बल के साथ बलदेवसिंह ने जा कर विवाह सम्पन्न किया और सुन्दर वधू को साथ ले कर वापस अपने नगर लौटा। यहाँ वर वधू ने सुन्दर विलास किया।

इत हय हत्थि धृति सक आत, सिति दल सुक्र मास सुहात॥
प्रभु तहँ अनुज निज गोपाल, सानुज बिनयहरि अरि साल॥९१॥

भेजिय दुवहि व्याहन भ्रात, बल सजि भिन्न भिन्न बरात॥
गागरनी पुरी पति गेह, अग्रज बिंद गो इत एह॥९२॥

तिहिं रघुनाथ व्याहिय ताम, नंदिनि चंद्रकुमरि सनाम॥
बरि बर रठुऊरि बिनीत, अह कछु किन्न तत्थ अतीत॥९३॥

पित्थल रान बीज्य प्रधान, सह तहँ खाँहमीद सुजान॥
किय जुग मुख्य तहँ जस कम्म, दिय तिन त्याग सहँसन दम्म॥९४॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सतासी के ज्येष्ठ माह के शुक्ल पक्ष के आधा गुजर जाने के बाद हाड़ा राजा ने अपने छोटे भाई गोपालसिंह और उससे छोटे विनयसिंह की बरातें सजा कर विवाह करने रवाना किया। राजा रामसिंह ने दोनों भाइयों की बरात में अपने दल के समूह भेजे। बड़ा दूल्हा अर्थात् गोपालसिंह तो गागरनी के स्वामी के घर गया। वहाँ रघुनाथसिंह ने तब अपनी पुत्री चन्द्र कुमारी का विवाह उसके साथ सम्पन्न किया। राठौड़ कुमारी से विवाह रचा कर गोपालसिंह कुछ दिन वहीं ठहरा। उदयपुर के महाराणा के वंश में प्रधान अर्थात् राणावत पृथ्वीराज ने सुजान हमीद खान की सहायता से बड़ा उत्सव किया और उसमें याचकों को हजारों रुपयों का त्याग बाँटा।

भूखन बस्त्र गय हय भोलि, खिल सब द्रव्य कोसन खोलि॥
अंहति भट्ट लहि अधिकार, हुव ब्रजलाल बंटनहार॥९५॥

इम करि आढ्य जाचक जात, बहुरिय गम्य बट्ट बरात॥
इत पुर पहुँचि उनियाराहु, लिय बरि बिनयहरि तिय लाहु॥९६॥

मुत तहँ भीम भव दासेय, गुन पटु नाम जालिम गेय॥
तनुजा रूप गुन जुत तास, आनंदादिकुमरिय तास॥९७॥

बिधि सह बिनयसिंह सु व्याहि, गन बसु दत्त जस अवगाहि॥
कूरम बिरुदसिंह कुमार, इत हुव मुख्यपन अधिकार॥९८॥

उसने सभी याचकों को आभूषण, सिरोपाव, घोड़े और ऊँट देते हुए अपना खजाना खोल दिया। वहाँ त्याग बाँटने का अधिकार ब्रजलाल भाट ने अपने हाथ में लिया और वहाँ आये हुए सभी याचकों को धनवान बना दिया तब बरात रवाना हुई। इस प्रकार उनियारा नगर पहुँच कर विनयसिंह ने अपनी वधू का वरण करने का लाभ लिया। वहाँ भीमसिंह की पासवान के पुत्र जालिमसिंह के घर उसकी पुत्री आनन्द कुमारी से विवाह किया जो रूप और गुणों का खजाना थी।

कहि तहँ रत्न भट्ठ कुलीन, क्रम हित त्याग बंटन कीन॥
मद्धन स्वामिपन गन सल्ल, मन्नि सुजान सुत फतमल्ल॥९९॥

निज करि स्वामि तिहिँ जुत नेह, अरु हुव सचिव जालिम एह ॥
जिहिँ जामात हित बसु जाल, बहुबिध हरन दत्त विसाल ॥१०० ॥

इत इन बंटि बहु बसु ब्रात, हंकिय हुलसि बट्ट बरात ॥
इन कँहँ स्वसुर नारव आइ, चल्लिय सरनि हद पहुँचाइ ॥१०१ ॥

इम हुव उभय दिस उपयाम, किय बिधि विचहि असहन काम ॥
इत नृप मान ताहि अनेह, बाढन बहुल सद्धि सनेह ॥१०२ ॥

कछवाहा कुमार ब्रिरुदसिंह यहाँ मुख्य था उसने कुलीन भाट रत्नचंद की सहायता से त्याग बाँटा। अपनी स्वामिभक्ति का प्रदर्शन करने के लिए सुजान फतहमल के पुत्र विरुदसिंह के प्रति स्नेह प्रकट कर, उसे अपना स्वामी समझते हुए, जालिमसिंह ने स्वयं को सचिव समझा। जिसने अपने जामाता विनयसिंह को बहुत माग धन दे कर विशाल दहेज दिया। यहाँ उनियारा में हाड़ा पक्ष के बरातियों ने याचाकों को दान में खूब सारा धन बाँटा और पूरे हर्षोल्लास के साथ बरात वापस रवाना हुई। इस अवसर पर विनयसिंह का श्वसुर नरूका जालिमसिंह मार्ग तक पहुँचाने आया। इस प्रकार दोनों विवाह पूरी धूमधाम से सम्पन्न हुए पर इसी बीच जोधपुर के राठौड़ राजा मानसिंह ने एक असहनीय काम किया। उसने स्नेह अधिक बढाने के लिए यह काम किया।

निज लिपि पत्र प्रीति निकेत, मतदुव सादि संघ समेत ॥
चारन इक्क जिहिँ नृप चित, मानस खास खिल्लिबत मित्त ॥१०३ ॥

जो सुत जुगत नामक जात, भैरव स्वीय नाम भनात ॥
सो इत पठ्ठयो बनसूर, हित हित हड्ड हेलि हजूर ॥१०४ ॥

दक्खिन द्रंग बाह्य प्रदेस, आतहि उत्तरिय तहँ एस ॥
बहुबल दुदिस प्रस्थित बिक्खि, सठ इत दुरित छल बल सिक्खि ॥१०५ ॥

कुसचिव पट्टरानिय केर, बिच पुर जे जुरे तिहिँ बेर ॥
मिलि तह रूपराम अमात्य, बलि सरदारमल्लहु व्रात्य ॥१०६ ॥

राजा मानसिंह ने अपने हाथों से एक पत्र लिख कर अपने दो सौ सवारों के साथ सेना भेजी। इन सवारों के साथ राजा का खास मर्जीदान एक चारण भी भेजा गया। जो जुगता वणसूर का पुत्र भैरवदान नामक था। इस

वणसूर चारण भैरवदान को राठौड़ राजा ने हाड़ाओं के सूर्य रावराजा रामसिंह के हुजूर में भेजा। जोधपुर से आये इस दल ने बून्दी के बाहर दक्षिण दिशा की ओर अपना शिविर लगाया। इस समय बून्दी की सेना राजा के छोटे भाईयों के विवाहों में दो स्थानों पर गई हुई थी, यह देख कर इन दुष्टों ने छल रचने की सोची। जोधपुर वाली राठौड़ रानी के खोटे सचिव नगर से बाहर जाकर इस आये हुए जोधपुर के दल से मिले। रानी के अमात्य रूपराम और सरदारमल जिनमें से एक पोखरणा ब्राह्मण था वहीं दूसरा ओसवाल बनिया था।

निस इक बिप्र पोखरनीय, बानिज ओसवाल बिईय॥
इत बिच तीसरो अघऊत, बाहुज सिंह अंत बिभूत॥१०७॥

यह रट्ठोर मेरतियाहु, बलि हुव भोर कहि बल बाहु॥
इम द्विज एक ऊरुज एक, बाहुज एक हीन बिबेक॥१०८॥

मिलि त्रिक एह मंडिय मंत्र, तनि छल प्रात होहु स्वतंत्र॥
मारहु कृष्णराम अमात्य, प्रतिभट होहु तेहु निपात्य॥१०९॥

इन्ह बल व्याज जुग गत आहिं, निरखहु कोहु रोधक नाँहिं॥
बिलसहिं राज्य करि निज बस्य, रक्खहु रत्ति गूढ रहस्य॥११०॥

एक रात को इन दोनों के साथ एक पाप से युक्त क्षत्रिय विभुतसिंह नामक भी आ मिला जो मेड़तिया राठौड़ था और जिसे अपने बाहुबल पर गुमान था। इस तरह एक ब्राह्मण, एक बनिया, और एक क्षत्रिय इन तीनों ने मिल कर मंत्रणा की कि प्रात:काल होते ही हम छल पूर्वक स्वतंत्र हो कर यहाँ के अमात्य कृष्णराम को मार गिरायेंगे और उसके साथ जो हमारा मुकाबला करने आएगा उसे भी मौत के घाट उतार देंगे। अभी इनकी सेना (बून्दी की) दो जगह गई हुई है और देखो, इस समय हमें कोई रोकने वाला भी नहीं होगा। इस तरह राज को अपने वश में कर हम भोगेंगे पर रात तक यह बात एक रहस्य ही रहना चाहिए अर्थात् गुप्त रहनी चाहिए।

भूपति चहैं इक सुख भोग, नकरहिं नैक जास बिजोग॥
मन इम रीझि प्रभु जामात, मन्नहिं मुदित बिलसन बात॥१११॥

जो कछु बिघ्न बिच परि जाइ, प्रेरहि भूप भट हठ भाइ॥
जुद्धहु जानि हैं भय भार, तो निज तंत्र दक्खिन द्वार॥११२॥

वंशभास्कर /६,२५,४

दुवसत सादि भट समुदाय, समुझहु अप्पनैंहि सहाय॥
जिन्ह बल द्रंग बाहिर जोरि, बस निज द्वार पैठि बहोरि॥११३॥

करि इम नियत इच्छित कज्ज, अंगमि लेहु बुंदिय अज्ज॥
जैपुर जो करी हम जाइ, पुनि इह क्यों न संभव पाइ॥११४॥

राजा तो स्वयं अपने सुख में डुबा है वह अपने अमात्य का वियोग नही करेगा अर्थात् उसे अपने प्रधान का वियोग नही खलेगा। फिर ये लोग मन में यह सोच कर रीझे कि राजा अपना दामाद है वह भी इस बात को जान कर प्रसन्न होगा। यदि हमारी योजना में कोई विघ्न पड़ा अर्थात् यदि राजा के बांधव और सामन्त हठ पूर्वक आड़े आए तो युद्ध होगा। यदि हमें युद्ध में अपने पर भार पड़ता नजर आएगा तब भी चिंता की कोई बात नहीं क्योंकि नगर के दक्षिण द्वार हमारे अधीन है उस पर हमारा कब्जा है। फिर ये जो दो सौ सवार आए हुए हैं ये हमारी सहायता करेंगे। हम इन सवारों को नगर के बाहर सज्जित कर तैनात कर देंगे और हम फिर से अपने द्वार से भीतर जाएँगे। इस तरह हम हमारा सोचा हुआ कार्य निश्चय ही कर डालेंगे और आगे बढ़ कर आज बून्दी ले लेंगे। (यहाँ आशय बून्दी का प्रधान पद के लेने से है)। हम यदि ऐसा जयपुर जा कर कर सकते है तो यहाँ कैसे संभव नही होगा।

सुनि द्विज मंत्र यह दृढ संध, कृतघन ओसवाल कबंध॥
तिहिं निस तीन व्है इक तंत्र, सदनन सुप्त मंडिय मंत्र॥११५॥

प्रेरिय सुद्धि हित चर प्रात, जदपि न नेक अवसर जात॥
जहँ गत अंघ्रि ऊन दुजाम, तहँ लखि इष्ट संभव ताम॥११६॥

अग गज अट्ठ ससि सक आहि, अधिगत सुक्र मास अमाहि॥
तहँ तिथि उक्त भुक्त अनेह, अनुचित एह तकि त्रिक एह॥११७॥

बाहुज नाम सालुव बुज्झि, खलपन मंत्र तिहिं प्रति खुज्झि॥
अक्खिय कृष्णराम अमात्य, घर अब है जु इक्कल घात्य॥११८॥

रूपराम ब्राह्मण को इस तरह दृढ प्रतिज्ञ देख कर कृतघ्न ओसवाल, और मेड़तिया राठौड़ विभूतसिंह तीनों एक हो गए और उन्होंने उस रात घर में सोते हुए ऐसी मंत्रणा की। सुबह होते ही उन्होंने कृष्णराम की खबर लाने को अपना एक गुप्तचर भेजा यह सोच कर कि यह अवसर हमारे हाथ से कहीं

निकल न जाए। उस गुप्तचर को गये हुए पोने दो प्रहर व्यतीत हो गए पर वह उनकी मनचाही खबर लेकर वापस नही लौटा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सतासी के ज्येष्ठ माह की अमावस्या के लगने से पहले उसी तिथि के भोगने के समय उन तीनों ने प्रतीक्षा करते हुए सोचा कि कहीं कुछ गलत न हो जाए। यह सोच कर उन्होंने सालू नामक एक क्षत्रिय को बुलवाया और उसके सामने अपनी योजना खोल कर रखी और कहा कि सुनो, बून्दी का अमात्य कृष्णराम धायभाई अभी अपने घर पर है और अकेला है, अत: घात करने योग्य है।

आवहु ताहि जो हनि अज्ज, कृत मत होत सब निज कज्ज॥
तो भट ग्राम दै दस तोहि, करिहैं ईस सब बल कोहि॥११९॥

सुनतहि एह सालुव सज्जि, मन तस बीररस बस मज्जि॥
सय गहि सानसित खर खग्ग, मुरि लिय सचिव परिखद मग्ग॥१२०॥

द्रुत जिहिं सचिव संसद द्वार, पहुँचत ठानि दंभ प्रसार॥
पठई कहि मुसाहब पास, बिन्नति करन संधिय व्यास॥१२१॥

भेजिय मोहि सत्वर भाखि, अप्पहिं सूच्चिबे अभिलाखि॥
जो मुहिं बिजन खिन मिल जाइ, तुमकहँ तो सु गोप्य सुनाइ॥१२२॥

यदि तुम आज उसे मार कर आ जाओ तो हम सभी का सोचा काम बन जाएगा और हम इसके बदले में तुम्हें दस गाँवों की जागीर दिला कर सामन्त बनवा देंगे। यही नहीं हम तुम्हें सेना का सेनापति बनवा देंगे। यह सुनते ही सालू सज्जित हुआ और उसका मन वीर रस में डूब गया। उसने सान पर तीखी की हुई अपनी तलवार उठाई और सीधा सचिव की सभा को ओर जाने वाला मार्ग लिया। सचिव की सभा के द्वार पर पहुँच कर उसने दंभ भरे स्वर में कहा कि मुझे मुसाहिबों ने भेजा है और व्यास से संधि करने की विनती करने का काम कहा है। मुझे यह कह कर भेजा गया है कि मैं तत्काल उसकी अभिलाषा आप तक पहुँचाऊँ। हे प्रधान! यदि मुझे तनिक भी एकान्त में आपसे मिलने का ममय मिल जाए तो मैं वह गुप्त बात आपसे कहूँगा।

करिहों सिष्ट जो इहिं काल, कहिहों सोहि जाइ कृपाल॥
बिगरहिं कज्ज होइ बिलंब, बज्जहिं तो अपष्टुर बंब॥१२३॥

सुनियत धाइभ्रात असेस, जो पटु जदपि दिष्ट रु देस॥
पै परि गहन कुक्कुटि पास, हुव बहु पटुन पुब्बहु ह्रास॥१२४॥

मन ऋजु सत्यबैन अमूढ, गहत न कुमति कुहकन गूढ़॥
जु कहै सत्य सुहि दृढ जानि, उरझत पास मग पग हानि॥१२५॥

चतुरह सचिव इम हित चाहि, तिहिं खिन निकट बुल्लिय ताहि॥
इम ढिग सचिव सालुव आइ, सकुसल सब उदंत सुनाइ॥१२६॥

आप इस समय जैसा शिष्टाचार करेंगे वह मैं तत्काल उन्हें जा कर बताऊँगा इसमें यदि विलम्ब हो गया तो शीघ्र ही विपरीत नगारे बज उठेंगे अथवा निंदा के नगारे बज उठेंगे। वह प्रधान कृष्णराम काफी चतुर था पर देशकाल के कारण यह सुनते ही उस छली के पाश में फँस गया। इस प्रकार पहले भी कई चतुर व्यक्तियों का नाश हुआ है क्योंकि सरल मन वाले और सत्य बोलने वाले चतुर लोग ऐसे छली लोगों की छिपी हुई बुरी बुद्धि को नहीं भाँप सकते और जैसा अगला कहे उसी को सत्य मान कर उनके पाश में उलझ जाते हैं। चतुर सचिव कृष्णराम के साथ भी यही हुआ, उसने हित की चाहना से उस समय उसे (सालू को) अपने पास बुलवा लिया। तब उस सालू ने भी आगे (सम्मुख) आ कर प्रधान से पहले कुशलता के सारे समाचार कहे।

लघुगति बिप्र आसिख लार, जिहिं कहि ओसवाल जुहार॥
खल हनि पास पहुँचत खग्ग, इक कर किन्न छिन्न अलग्ग॥१२७॥

असि सुहि झारि पुनि तस अंस, बढ्ढिय साचिउर सह बंस॥
परिजन दभ्र तहँबिस पज्ज, कछु रहि दूर निबहत कज्ज॥१२८॥

जिततित ते दुरे भय जानि, सचिवहिं सत्रु इत मृत मानि॥
बाहुरि छिप्र चोर बिधान, सो जगि उत्तरन सोपान॥१२९॥

कायथ सासिता बल केर, बिच भिरि सम्मुहो तिहिं बेर॥
लगि हठ नामकरि सिवलाल, कर तस नग्ग लखि करवाल॥१३०॥

छोटा आदमी कहे उस तरह उसने पहले ब्राह्मण (रूपराम) का कहलाया आशीर्वचन कहा। इसके बाद ओसवाल (स्वरूपराम) का कहलाया हुआ जुहार कहा। यह कह कर वह कपटी (सालू) प्रधान के करीब गया

और तुरंत तलवार निकाल कर वार किया और धायभाई का एक हाथ काट गिराया। उसने फिर से अपनी तलवार उठाई और एक प्रहार उसके कंधे पर किया। इस बार तलवार उसकी छाती चीरती हुई रीढ की हड्डी काटती पार निकल गई। इस समय उसके परिजन भी कम ही पास थे। एक वैश्य था और एक शूद्र, ये दोनों भी उससे दूर किसी काम में संलग्न थे। ज्योंही उन्होंने देखा कि प्रधान कृष्णराम मारा गया है तो वे भी भय से यहाँ-वहाँ दुबक गये। तब सालू चुपके से चोर की नाईं सीढियां उतरने लगा कि तभी कायस्थ सेनापति अपने दल सहित सामने से आया और दोनों का आमना सामना हुआ। इस समय शिवलाल ने उसके हाथ में नंगी तलवार देखी।

बखसी ताहि भरि निज बत्थ, जुज्झिय रक्खि हानि न जत्थ॥
सत्रुहु जो सिट्यो भय भार, परसिर दै सक्यो न प्रहार॥१३१॥

इम तहँ लुत्थिबत्थन आइ, जुज्झत द्वै गिरे अद्वै जाइ॥
रचि जन जामिकन तहँ रीस, सालुव सो कख्यो गतसीस॥१३२॥

उपयम करन इत अनुजात, भूपति भेजि इम दुव भ्रात॥
तहँ कुल पक्ख जुग सम तुल्लि, बीकानैर पति सुत बुल्लि॥१३३॥

जीवनसिंह नाम सु जाहि, बहिनिय रूपकुमरि बिवाहि॥
रक्खन गेह तिहिं नरराय, दिय दुव आढ्य ग्राम सु दाय॥१३४॥

तभी बख्सी शिवलाल ने लपक कर उसे बाथ में भर लिया। दोनों जूझने लगे पर किसी की हानि नहीं हुई। वह शत्रु (सालू) इस समय डरा हुआ था इसलिए वह अपने शत्रु (शिवलाल आदि) पर तलवार का प्रहार न कर सका। थोड़ी ही देर में दोनों गुथमगुत्था जूझते हुए सीढियों से नीचे आ गिरे कि तभी पहरेदार आ पहुँचे। उन्होंने क्रोधित हो कर सालू को सिरविहीन कर डाला अर्थात् उसका सिर उड़ा दिया। हाड़ा राजा ने इस समय विवाह करने को दोनों भाइयों को भेज रखा था। तभी राजा ने दोनों पक्षों को बराबर तोल कर अर्थात् बूंदी और बीकानेर के कुलों को बराबरी का समझ कर अपनी बहिन से विवाह करने बीकानेर के राठौड़ राजा के पुत्र जीवनसिंह को आमंत्रित किया। राठौड़ राजकुमार के आने पर रावराजा रामसिंह ने उसे अपनी बहिन रूपकुमारी ब्याही। विवाह के बाद कुछ दिन बहिनोई को हाड़ा

राजा ने अपने घर अर्थात् बून्दी में रखा फिर दो गाँवों की जागीर के साथ अच्छा दहेज देकर विदा किया।

भूषन बस्त्र गय हय भव्य, दिय रथ दास दासिय द्रव्य॥
सह मह ताहि समय बिसेस, ब्याहिय जो स्वसा बसुधेस॥१३५॥

हे इम हिठ्ठ महलन माल, मुत्तियसौध थित महिपाल॥
पगि इत छद्म खग्ग प्रहारि, सालुव सचिवमनि लिय मारि॥१३६॥

सुनतहि भूप इत यह सुद्धि, बिस्तरि बीरपन नय बुद्धि॥
जँहँ पुर पत्ति संघ जितेक, तिन्ह करि मग्ग मग्ग तितेक॥१३७॥

चउ भट भेजि गोपुर च्यारि, बस किय जे कपाट बिथारि॥
पुब्ब हि रोकि दक्खिन पोरि, ज्यों पुनि सेस रोधक जोरि॥१३८॥

हाड़ा राजा ने अपनी बहिन को दहेज में आभूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ और दास-दासियों सहित काफी द्रव्य दिया। राजा ने अपनी बहिन के विवाह के अवसर पर भव्य उत्सव किया। इस विवाह के कारण राजा इस समय नीचे वाले महलों की श्रृंखला में मोतीमहल नामक महल में था। यहाँ राजा के पास खबर पहुँची कि सालू नामक क्षत्रिय ने उसके सचिवों में मणिरूप कृष्णराम को मार डाला है। राजा ने यह खबर पाते ही नीतियुक्त बुद्धि के साथ वीरता धारण की और नगर में जितने भी पैदल सैनिक थे उन्हें नगर से बाहर जाने वाले रास्तों पर तैनात किया। नगर के चारों दरवाजों पर चार सामन्त योद्धाओं को भेज कर सारे दरवाजे बंद करवा दिये। दक्षिण द्वार को पहले ही रोक लिया गया था फिर भी राजा ने वहाँ और सहायता के लिए अधिक सैनिक भेजे।

रन दुव दुर्ग सज्ज कराइ, असहन मंतु पर अनखाइ॥
बलि कलि अप्प कसि कटिबंध, संसद सज्ज रहि दृढ संध॥१३९॥

प्रभुढिग रहनहार प्रबीर, सब किय सज्ज कज्ज सधीर॥
आतप उष्ण ऋतु अधिकात, जँहँ सुत ज्येष्ट कृष्ण प्रजात॥१४०॥

मोहन रमन सिंह मृगव्य, भूधव सिक्ख लहि चहि भव्य॥
उत्तर गहन सह अवधान, मग वह गो त्रि जोजन मान॥१४१॥

लघु तस भ्रात मंगललाल, संगर अजिर पर बल साल॥
नल निभ बाजि बिधि मतिमान, नर बर स्वामिधर्म निधान॥१४२॥

राजा ने इस असहनीय जघन्य अपराध पर कुपित हो कर दोनों दुर्गो को सज्जित करवाया फिर राजा ने स्वयं युद्ध के लिए कमर कसी और राज सभा में दृढ प्रतिज्ञा कर रवाना हुआ। इस समय राजा के पास रहने वाले योद्धा भी सज्जित हुए। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर आतप की अधिकता बढने लगी तब कृष्णराम धायभाई का बड़ा पुत्र मोहन राजा के समक्ष हाजिर हुआ और उसने स्वामी से सिंहों की शिकार पर जाने की आज्ञा मांगी। राजा की आज्ञा पाते ही वह उत्तर दिशा की ओर चला । मार्ग पर चलता वह तीन योजन दूर तक गया। इससे छोटा भाई मंगललाल था जो युद्ध के चौक में अर्थात् रणभूमि में अपने बलशाली शत्रु योद्धा को मारने वाला वीर था। वह नल के सदृश घोड़ों की विद्या का जानकार और स्वामिधर्म निभाने वाला श्रेष्ठ सेवक था।

सूर रु सरलपन मन सुद्ध, बैरिहु जास मित्रहि बुद्ध॥
तिम यह कृष्णराम तनूज, प्रापित स्वामि सेवन पूज॥१४३॥

इह पर लोहिता अभिधान, थाना रक्खि नृप तिर्हि थान॥
सादिन संघ सासक मुख्य, मंगल तत्थ किय प्रभु मुख्य॥१४४॥

काका तनय तस जस काम, सो पुनि रत्नलाल सनाम॥
बिद्या तुपक मय जिर्हि बीर, सद्विय बर्म मुख्य सधीर॥१४५॥

ए दुव भ्रात तिर्हि दिन अत्थ, सज्जित स्वीय हय भट सत्थ॥
तिन्ह मन लोहितापुर जाइ, उत्सुक हनन सिंघ अघाइ॥१४६॥

वह मंगललाल सरल चित्त और शुद्धमन वाला वीर था। उसे शत्रु भी अपना मित्र मानते थे। कृष्णराम धायभाई का यह पुत्र अपने स्वामी की सेवा में था। हाडा राजा ने लोहितापुर नामक स्थान पर अपना थाना स्थापित कर रखा था और उस थाने पर तैनात सभी सवारों के मुख्य शासक के रूप में मंगललाल को नियुक्त कर रखा था। इसका चचेरा भाई रत्नलाल नामक था जो बन्दुक चलाने की विद्या में माहिर था और युद्ध में कवच धारण करने वाला वीर था। मंगललाल और रत्नलाल दोनों भाई सज्जित हो कर अपने आदमियों के साथ घोड़ों पर सवार हो लोहितापुर आए और यहाँ वे गहन वन में शेर मारने को उत्कंठित हुए।

प्रिय मद अमल बितरत पान, जिन्ह हुव देर यह चढि जान ॥
तत्थहि बुल्लिलिय कवितात, खिल बलि कतिक भट बर ख्यात ॥१४७॥

प्रभु ढिग रहनहार प्रबीर, सब तहँ मिलित बिछुरन सीर ॥
व्यसु हुव सचिव इत तिहिँ बार, परि सब ओर हक्क पुकार ॥१४८॥

सुनतहि रत्न मंगल सत्थ, हंकिय सर्ब भट असि हत्थ ॥
इन कँहँ सिंहचत्वर आत, बुल्लिय भूप ढिग सुहि ब्रात ॥१४९॥

ए तब सत्रुदिस मग उज्झि, सब गय स्वामि ढिग हित सुज्झि ॥
ससुभट रत्न मंगल संग, प्रभु कति रक्खि बिघ्न प्रसंग ॥१५०॥

लोहितापुर में वे अपने प्रियजनों को उत्तम शराब और अफीम पिलाते और पान आदि देकर उनका आतिथ्य करते। उन्होंने लोहितापुर में कवि के पिता (चंडीदान मीसण) को बुलाया। यही नहीं वे ख्याति प्राप्त और कई लोगों को अपने यहाँ आमंत्रित करते। राजा के पास रहने वाले कई वीर यहाँ आते जाते रहते। प्रधान कृष्णराम की बून्दी में हत्या हुई उसकी हाक पुकार सभी ओर फैली। यह खबर पाते ही लोहितापुर से मंगललाल और रत्नलाल दोनों अन्य सामन्तों सहित हाथों में तलवारें ले कर रवाना हुए। यह दल जब बून्दी के सिंहचौक में पहुँचा तो राजा ने उन्हें अपने पास बुलवाया । और तब ये शत्रु की ओर जाने वाला मार्ग छोड़ कर सभी अपना हित सोच कर राजा के पास गए। राजा ने मंगललाल और रत्नलाल के साथ आए कई योद्धाओं को विघ्न का प्रसंग देखते हुए अपने पास रखा।

सचिवहि दहनदत्त सहाय, पठये पुत्र सह समुदाय ॥
दाहन जाइ पच्छिम द्वार, इन गिनि इष्ट प्रेत अगार ॥१५१॥

अब्बुवनाथ सिव जहँ आहि, दिय तहँ जो मुसाहब दाहि ॥
पुनि सब न्हाइ प्रभुढिग पत्त, इत प्रभु भृत्यहित अनुरत्त ॥१५२॥

सब लहि मंतु कारन सुद्धि, रंचहु छिद्र निकसन रुद्धि ॥
ठाँ जुग जे रहे थिति ठानि, तुपकन जंग बिच बिच तानि ॥१५३॥

सुनि नृप दै निदेस प्रसस्त, बंधन धूर्त ठानि बिहस्त ॥
तब उड्डुदुर्ग की दुव तोप, अभिमुख रक्खि जमसुख ओप ॥१५४॥

यहाँ से राजा ने अपने मृतक सचिव कृष्णराम की दाह क्रिया करने को उसके दोनों पुत्रो को भेजा और उनके साथ अपने कई सेवक भेजे। ये सभी सचिव का शव ले कर नगर के दक्षिण द्वार से बाहर वाले क्षेत्र में आए और आबूनाथ (शिव) के मन्दिर के पास एक उपयुक्त जगह चुनी। वहीं राजा के इस मुसाहिब को जलाया। दाह संस्कार कर सभी ने स्नान किया और वे वापस राजा के पास लौट आए जहाँ वह अपने भृत्य (प्रधान) द्वारा राजहित के कार्यो को याद कर रहा था। इस बीच राजा ने इस अपराध के कारण की तपास करवाई पर कोई शत्रु हाथ नही लगा। दो ठिकानों पर राजा ने अपने बन्दूकधारी सेवकों को भेज कर तलाशी करवाई पर ये दुष्ट बाहर नहीं आए। तब राजा ने उनको पस्त करके उनके हाथ- पाँव बांध कर गिरफ्तार करने की ठानी और इसके लिए राजा ने उत्तम आज्ञा दी कि तारागढ से दो तोपें उन शत्रुओं के छिपे हुए ठिकानों की ओर मुँह करके चलाई जाएं।

जुग जुग देह चल्लन जंपि, कछुहिं छुद्र गोलन कंपि॥
पटुभट दानसिंह पुरोग, जुरि तहँ पिक्खि प्रध्वर जोग॥१५५॥

चुटकिन ओप तोप चलात, बिगरत बेध्य आलय व्रात॥
मतिगति मंढि फैरन फैर, निर्मित व्यग्र मन जन नैर॥१५६॥

व्यवहित भूहरन कति बैठि, कति गय कंदरन प्रति पेठि॥
हुव यह दरित पूरन हाल, जय रस फुरित सूरन जाल॥१५७॥

अद्रिन खोह फुट्टि अवाज, गिरि गृह जात पोतन गाज॥
तरकत थंभ मंडप ताव, लरकत फुट्टि छित्ति लदाव॥१५८॥

तोपों के चलने पर धधकते गोलों से भयग्रस्त हो वे दोनों दुष्ट चल कर सामने आ जाएँगे। यह निर्देश सुनते ही सेवक योद्धा दानसिंह आदि ने जा कर देखा कि तोपें सीधी तनी हुई है कि नहीं। जब उन्हें इस बात का अन्दाजा हो गया कि तोपों की नालें सीधी दिशा में है तब उन्होनें चुटकी बजाने जितने समय में दोनों तोपें दागीं। तोपों के गोले लगते ही घरों का समूह ध्वस्त होने लगा। नगर के लोग धमाकों से सिहर गए और व्याकुल हो कर जिधर मन किया उधर भागने लगे। कई अपने मकानों के तहखानों में जा छिपे तो कई पहाड़ की कंदराओं में जा दुबके। तोपों के धमाकों से जहाँ भयग्रस्त कायरों

का यह हाल हुआ, वहीं वीरों के समूह में वीर रस उफना। तोपों के धमाके की आवाज पहाड़ की खोह में जा ध्वनित हुई और पूरे पहाड़ के घर में अर्थात् पूरे पहाड़ पर प्रतिध्वनित हुई जैसे गाज गिरी हो। नगर में जगह जगह मकानें के थंभों और मंडपों में दरारें आ गईं और मकानों की छतें ढसकने लगीं।

बिखरत गोख जालिन ब्रात, उड्डुत प्रजरि पट्ट अलात॥
बलज रु कुंड्य प्रघन बितर्दि, उबुर अजिर कुट्टिम अर्दि॥१५९॥
सह अधिरोहिनिय सोपान, बिदहत केणिका रु बितान॥
परिध रु उत्तरंग कपाट, बलभिय नीघ्र प्रसरत बाट॥१६०॥
तिम दहि नागदंत तमंग, पिट पुट पेटिका जरिजंग॥
कुट फुट मत्तवारन केतु, हुत हुव दहन असहन हेतु॥१६१॥
खिरि खिरि थट्ट हट्टन खंड, बिखरत बट्ट अट्ट बरंड॥
जिततित सालभंजिन जूह, दहियत मंच पट्ट दुरूह॥१६२॥

कहीं पर झरोखे बिखरने लगे और जालियों के समूह टूटने लगे और अग्नि से जलते पटाव उड़ने लगे। कहीं पर चार दीवारी टूटी तो किसी घर के पानी का होद फूटा। किसी घर के छज्जे उड़े तो किसी घर की चोखट गिरी। किसी घर का चौंक टूटा और कहीं पर कुटियाओं का विनाश हुआ। किसी घर का जीना सीढ़ियों सहित दरका तो कहीं छोटे तंबु (कणिका) जल उठे। कहीं सामियाने जले। किसी घर की अर्गला जली, उत्तरंग उखड़े। किसी घर के कपाट जले तो कही मियालें (वल्लभियां) और लदान का काठ कबाड़ मार्ग पर आ पसरा। किसी घर की खूटियां जलीं तो किसी घर का छप्पर जला। कहीं घड़े फूटे तो कही संदूक जले। कहीं हाथियों की पीठ पर लहराने वाली ध्वजाओं के खंड बिखरे। सभी जगह पर असहनीय अग्नि पसर गई। बाजार में दुकानें खण्ड-खण्ड हो गिरने लगीं। कहीं मार्ग पर अट्टालिकाएँ आ गिरीं। कहीं बरामदे ढहे। यहाँ वहाँ लगी शालभंजिकाओं का समूह भस्म हुआ। कहीं खाट जले तो कही पल । और तख्ते दुरुह ढंग से जल उठे।

उडि उडि ओघ गुमटन ग्राव, बिरचित व्योम पटल बनाव॥
प्रजरत डीन पत्रिन पत्र, अब्भ कि चंग राल अमत्र॥१६३॥

तजि तजि तीर नीर निपान, छिन छिन छिज्जि मेटत मान॥
कपिसिरन साल खोम कलाप, धुज्जत लोल गोलन धाप॥१६४॥

प्रतिभट पुर सूरहु संकि, झारत तुपक छिद्रन झंकि॥
जिनदिन धूल लखि निस ज्वाल, मुरन न देत गोलन माल॥१६५॥

भेदत भयद बहु पुत भित्ति, अद्रिन असनि कढ्ढन कित्ति॥
बीथिय त्रिक रु चत्वर बार, बिस्तरि अग्गि जग्गि बजार॥१६६॥

आकाश में पत्थरों के समूह उड़े मानों आकाश में छत बनाने जा रहे हों। तोप के गोलों से निकलती ज्वालाओं से उड़ते हुए पक्षियों के पंख जले। आकाश पतंग की तरह उड़ती ज्वालाओं का पात्र बन गया। गोलों की आँच के आतप से तालाबों का पानी किनारा छोड़ने लगा अर्थात् भाप बन कर पल-पल छीजने लगा। कहीं पर कंगुरे उड़ने लगे तो कहीं बुर्जे ध्वस्त होने लगीं। चपल लाल गोलों से धरती काँप उठी। सामने वाले शत्रु भी भयग्रस्त हो अवसर देख कर छिद्रों से देख-देख कर बन्दूक चलाने लगे। दिन धुएँ के कारण रात्रि जैसा और रात ज्वालाओं के प्रकाश में दिन जैसी प्रतीत होने लगी। गोलों की अनवरत श्रृंखला ने किसी को अपनी ओर मुड़ने नहीं दिया। भयदायक गोले बड़ी-बड़ी पुर्तों वाली दीवारों का गर्व मिटाने लगे जैसे वज्र पहाड़ों की कीर्ति हरता है। बाजार की गलियों में बरामदों और चबूतरों पर अग्नि पसर गई और ज्वालाओं ने पसर कर बाजार को जगमगा दिया।

बनिकन बिबिध किय क्रय बंध, गन ससि थीर मृगमद गंध॥
छिति ढकि अन्न रासिन छार, इत उत प्रजरि तैल अगार॥१६७॥

बिदलित तरकि मनि गन ब्रात, जरि बहु बिपनि औषध जात॥
द्रुत द्रुरि बंग नाग अदभ्र, उडि उडि चढत पारद अभ्र॥१६८॥

मचि पुर ध्वांत निभ करमाल, जिहिं सिति भूत सित गृह जाल॥
मिलि मिलि धूम सोर समेत, लगि दृग लेत घन जन लेत॥१६९॥

इम हुव जाम सत्त अतीत, गोलन कोस दस गत गीत॥
बिससन सचिव करि श्रुति बंट, इत तब मंदग्राम अजंट॥१७०॥

व्यापारियों ने विविध प्रकार के क्रय-विक्रय का कार्य बंद कर दिया। केसर, कस्तूरी, और कपूर का बेचना बंद किया। जमीन पर बनी अन्न

(धान) की ढेरियों को राख ने छा दिया। तेल का संचय इधर-उधर पसरता जलने लगा। रत्न और मणियाँ आग से तड़कने लगी। कई दुकानों में भरी हुई औषधियाँ जल गई। कहीं पर अपार रांगा और सीसा पिघल कर बहने लगे तो पारा उड़ कर धुएँ में बदल गया। नगर में सूर्य का प्रकाश लोप हो कर अंधेरा छा गया जैसे सूर्य की किरणों को इन जलते घरों की ज्वालाओं ने बांध लिया हो। बारूद का धुआँ और जलते मकानों का धुआँ मिल कर अथवा धुएँ के साथ शोरगुल मिल कर उठा जो लोगों की आँखों में लग कर जलन पैदा करने लगा। इस प्रकार सात प्रहर का समय व्यतीत हो गया और तोप के धमाकों की ध्वनि दस कोस की दूरी तक निरंतर सुनी गई। बून्दी के विश्वासपात्र सचिव कृष्णराम धायभाई के मारे जाने की खबर कोटा में अंग्रेज एजेन्ट ने भी सुन ली।

सुनतहि सरनि लगि त्रिउ लैन, आगत अर्ब करि रन अैन॥
दिन इन जात जाम द्वितीय, गय यह तत्थ पुर गमनीय॥१७१॥

खिरकिय सौम्य द्वार खुलाइ, पुर बिच लिन्न इन खिन पाइ॥
दिन इन जात जाम द्वितीय , गय यह तत्थ पुर गमनीय॥१७२॥

सूचित सचिव सुत जुहि जिट्ठ, सुहु यह सुनत उग्र अनिठ्ठ॥
मोहन ताहि निस द्रुत मग्ग, आगत स्वामि सबिध उदग्ग॥१७३॥

साहब समुख जिहिँ तब जाइ, आनिय उक्त पथ प्रविसाइ॥
जमियतखान संगहि जास, निर्भय चिंति रहन निवास॥
अधिपहु खास महलन आइ, स्वनिकट जालिनी सु बसाइ॥१७४॥

अंग्रेज एजेन्ट ने खबर सुनते ही घोड़े पर सवार हो जानकारी लेने के लिए बून्दी का मार्ग लिया और दो प्रहर दिन के व्यतीत होने पर वह बून्दी पहुँचा। उसने यहाँ पहुँचकर नगर के प्रवेशद्वार के कपाट की खिड़की (छोटा द्वार) खुलवाई और तत्काल नगर के भीतर गया। इधर प्रधान कृष्णराम के बड़े पुत्र मोहन को अपने पिता के मारे जाने की खबर मिली तो वह इस अनिष्ट को सुन कर रात्रि को ही बून्दी नगर पहुँचा। अब एजेन्ट साहब के आगमन पर वह सामने गया और उन्हें अपने साथ ले कर नगर में आया। इसके साथ इस समय वकील जमियतखान भी था इसलिए एजेन्ट साहब के

ठहरने की व्यवस्था की फिक्र नहीं करनी पड़ी। वह एजेन्ट को राजा के खास महलों में ले गया और उसे चित्रशाला में ला ठहराया।

जानिय इम अजंट जनेस, आइउ समर अटकन एस॥
पै तिहिँ कहिय प्रत्युत प्रेरि, गिनि खल गहहु हनसु कि हेरि॥१७५॥

अह त्रिक असह तोपन त्रस्त, ...हुव अब अहितु बिहस्त॥
सीसक सोर उदक रु अन्न, बित्तन घोर कष्ट बिपन्न॥१७६॥

इत सुनि सचिव हत मग आत, बुंदीय पत्त द्वै हि बरात॥
हाजरि सकल बल तब होइ, दब्बिय बेढि अरि गृहदोइ॥१७७॥

जानहु श्रीचतुर्भज तत्थ, तिनसन बारूनी दिस तत्थ॥
परिमित दंड बिंसति पास, आयत जो हवेलिय आस॥१७८॥

राजा ने सोचा कि यह एजेन्ट इस तरह यहाँ युद्ध के लिए आया लगता है पर एजेन्ट ने उल्टा कहा कि वह हत्यारे दुष्टों को पकड़ कर उचित सजा देगा। तीन दिनों से लगातार तोपों के चलते शत्रु भी व्याकुल हो उठे क्योंकि सीसा-बारूद सहित पानी और अन्न भी खत्म होने आया था। इधर राजा के दोनों छोटे भाइयों की बरातों ने बून्दी आते हुए रास्ते में सुना कि प्रधान की हत्या कर दी गई। नगर में आते ही सेना ने राजा के समक्ष हाजरी दी फिर जा कर उन दोनों दुष्टों के घरों को घेर लिया। चतुर्भुज भगवान के मन्दिर से पश्चिम दिशा की ओर बीस बांस (दंड) के अंतर पर जो बड़ी हवेली थी।

थिर हुव स्वामिनी बस थान, परिखद तत्थ रहन प्रधान॥
द्विज कहँ जो हवेलिय दत्त, हाजरि सो हुतो तिम तत्त॥१७९॥

गोलन सोँ ब बिगरत गेह, आतुर रूपरामहु एह॥
लै सब स्वीय अप्पन लार, कढि निस छिन्न खुल्लि किँवार॥१८०॥

बिपनि सु पुब्ब दिस लगि बट्ट, हरि बसु लुट्टि मग इक हट्ट॥
जमदिस उक्त गोपुर जाइ, परबस रूद्ध ता कहँ पाइ॥१८१॥

है ढिक व्हां पुरोहित हर्म्य, गजमुख गढित कौजन कर्म्य॥
तब सरदारमल्लहु तत्थ, ऊरुज हो सु ठानि अनत्थ॥१८२॥

वह पाटवी रानी के अधिकार में थी जो उसने अपने सचिव को

निवास हेतु दे रखी थी। रूपराम ब्राह्मण तब से वहीं रह रहा था। अब इस समय तोपों के गोलों के प्रहार से अपने घर को बिगड़ता देख वह रूपराम घबरा गया। अपने घर के सभी लोगों को साथ ले कर वह रात्रि के समय किंवाड़ खोल कर बाहर निकल गया और बाजार के पूर्व दिशा वाले मार्ग पर बढ़ा जहाँ रास्ते में एक दुकान लूट कर उसका धन अपने कब्जे में कियाऔर आगे दक्षिण दिशा में बढ़ा पर आगे गोपुर के द्वार बन्द होने से रास्ते को अवरूद्ध पा कर वह पास ही में गजमुख नामक एक पुरोहित का मकान था। उसने पुराने से दीमक के रहने योग्य उस घर में जाने की सोची जहाँ अभी सरदारमल बनिया छिपा हुआ था।

भनित जु सिंह अंतबिभूत, संगहि सोहु पर रजपूत॥
द्विज तिन्ह कहिय बिघटन द्वार, उन लिय एहु मध्य अगार॥१८३॥

महल सु जदपि दुर्ग समान, हुव तहँ तदपि जल मुख हान॥
रहि द्विज बनिक तहँ दिन रत्ति, पुनि दुव निक्खसिय निस पत्ति॥१८४॥

बाहुज रहिय तत्थहि बध्य ,ते लड़ि संचरत मग मध्य॥
बनि भय भूख प्यास बिहाल, जुग भ्रमि परिग नागन जाल॥१८५॥

तिन लखि विष्णुस्वामि मतीय, सिंचिय उदक रक्खन जीय॥
जुग तिन भोजि पेय पिबाइ, जोगिन रक्खि रत्ति जिवाइ॥१८६॥

इस समय अनर्थ करने पर उतारू वह क्षत्रिय विभूतसिंह (भभूतसिंह) भी वहीं था। ब्राह्मण रूपराम ने इसी घर के दरवाजे को खटखटाया और किंवाड़ खोलने को कहा। उन दोनों ने तब किंवाड़ खोल कर उसे भी अंदर लिया। यह घर महल जितना बड़ा और दुर्ग जितना मजबूत था पर यहाँ पानी आदि सामग्री समाप्त हो गई थी। तब इस घर में एक दिन और रात बिताकर वह बनिया (सरदारमल) और ब्राह्मण (रूपराम) अगली रात्रि को चुपचाप वहाँ से निकल कर पैदल ही बढे। जब कि वह वधयोग्य क्षत्रिय (भभूतसिंह) वहीं रहा। वे दोनों झड़प करते हुए मार्ग पर बढे पर थोड़ी ही देर में भूख प्यास के मारे उनका हाल बेहाल हो गया और दोनों चक्कर खा कर गिर पड़े। तभी एक विष्णुस्वामी मत वाले नागा साधू की नजर उन पर पड़ी। उसने सबसे पहले प्यास से तड़पते हुए दोनों को पानी पिलाया और उनकी जान बचाई।

फिर दोनों को खाना खिलाया और इन जोगियों ने उन्हें रात को अपने यहाँ रखा।

हुव खिल रत्ति जहँ दु मुहूर्त, ध्रुव प्रभु सुनत पकरन धूर्त ॥
बिप्रहु बनिक सह हठ बाद, मारिय बय किसोर प्रमाद ॥१८७॥

प्रभु तिहिँ दोष अब पछिताइ, भाखत दुरित एह न भाइ॥
महिसुर बनिक इम जुग मारि, निज पटु सचिव बैर निकारि ॥१८८॥

तिम पुनि होत घस्त्र द्वितीय, गिनि जमद्रंग निज गमनीय॥
कातर जो रह्यो सु कबंध, सस्त्रन डारि व्है हत संध ॥१८९॥

पप्पिय पक्ष द्वार प्रवेस, आदरि पत्त बाहिर एस॥
जमदिस द्वार जुग बिच जाहि, रोचक भोजि पाइ सराहि ॥१९०॥

पर दो घड़ी रात रहे राजा के सैनिकों ने इन्हें आ दबोचा। राजा को खबर दी गई तब राजा ने अपनी किशोरावस्था के जोश और क्रोध के चलते तुरन्त ही दोनों को मरवा डाला। अब (वर्तमान में) उसी दोष से रावराजा रामसिंह पछतातें हैं और कहते हैं कि यह पाप हमको अब अच्छा नहीं लगता अर्थात् मुझे तब यह पाप नहीं करना चाहिए था। इस तरह उस महिसुर (ब्राह्मण रूपाराम)और बनिये सरदारमल को मार कर हाड़ा राजा ने अपने चतुर सचिव कृष्णराम की मौत का बदला लिया। अगले दिन उस कायर मेड़तिया राठौड़ विभूतसिंह ने भी यमराज की पुरी को अपनी मंजिल समझते हुए हथियार डाल दिये। पूरी तरह से हत-प्रतिज्ञ हो कर उसने समर्पण कर दिया। पापी पक्ष के इन लोगों ने नगर के द्वार से होकर बाहर जाने का सोचा इसके लिए वे दक्षिण दिशा वाले द्वार तक आए थे ौर वहाँ मिले भोजन पानी की सराहना कर स्वीकार किया था।

मंद सु जवन इक लिय मारि, तिन्ह खल सस्त्र लहि दियतारि॥
इक द्विज अंगतैहु अवध्य, मन्त्रिय सेस अरिजुग मध्य ॥१९१॥

बाहुज बनिक सस्त्र बिहीन, करि हम अनसु अनुचित कीन॥
इम अब करत सासन आप, पै तब बय बिसेस प्रताप ॥१९२॥

त्रिक हनि हेतु बिनु खिल तारि, उद्धरि बैर बिजय उबारि॥
इत सब कढ्ढि मारव दिन्न, कंटक रहित पुर इम किन्न ॥१९३॥

चारन चिंति इष्ट बिचार, आइउ द्विसत लहि असवार॥
तिहिं सुनि सचिव तिम मृत ताम, किय भजि कोस पंच मुकाम॥१९४॥

इन मुर्खों ने रास्ते में एक यवन को मारा और उसके सभी शस्त्र छीन लिये। इन पापियों में से एक तो ब्राह्मण रूपराम था जो अवध्य माना जाता है और रहा सवाल शेप शत्रुओं का तो वे(बनिया और क्षत्रिय) शस्त्रविहीन थे। रावराजा रामसिंह कहते हैं कि हमने उन्हें मार कर अनुचित कार्य किया। हम जो आज शासन करते हैं उसमें न्याय होता है पर यह उस वय का प्रताप था अर्थात् हमसे यह सब अनुचित कर्म किशोरावस्था की कमसमझी से हुआ। चलो, उन तीनों को अकारण ही मारा पर हमने ऐसा कर शेष सारे लोगों को बचाया और यह सब मुझे वैर निकाल कर विजय प्राप्त करने के लिए करना पड़ा। इसके बाद नगर से सारे मारवाड़ियों को निकाल बाहर कर राजा ने नगर का समाज-कंटकों से मुक्त किया। उधर भैरवदान वणसूर (चारण) अपने साथ वाले दो सौ सवारों के साथ अपना हित सोच कर लौट आया। उसने ज्योंही सुना कि बून्दी का प्रधान कृष्णराम धायभाई मारा गया तो उसने वहाँ से भाग कर पाँच कोस के फासले पर आकर मुकाम किया।

रहि तहँ मरत त्रिक लगि राह, प्रनमिय पहुँचि निज नरनाह ॥
बुंदिय त्रि दिन बसि इत एह, गो इम अंगरेजहु गेह॥१९५॥

इत प्रभु सचिव सुत आकारि, मोहन मत्थ ध्रुव कर धारि॥
पुनि दिय सचिवपन सिरुपाव , आदरि अधिक वृति बढाव॥१९६॥

अनुजनु मंगल जु तस आहि, तारादुर्ग पति किय ताहि॥
पुब्बहि आत गृह प्रबिसाइ , लिय चउ बरनि बिंद लडाइ॥१९७॥

अपने रहते बून्दी में तीन आदमियों के मारे जाने के बाद भैरवदान चारण ने अपने नगर की राह ली और जोधपुर पहुँच कर अपने राजा मानसिंह को प्रणाम (अभिवादन) किया। उधर बून्दी में तीन दिन का मुकाम कर अंग्रेज एजेन्ट भी अपने घर कोटा गया। इधर रावराजा रामसिंह ने अपने दिवंगत प्रधान के पुत्र को बुलवाया और मोहन के सिर पर अपना वरदहस्त रखा। राजा ने उसे सचिव पद का सिरोपाव प्रदान किया और आदर सहित उसकी वृत्ति बढाई अर्थात् उसे सचिवपद पर नियुक्त कर उसकी जागीर

बढाई। धायभाई मोहन का जो छोटा भाई मंगललाल था उसे भी राजा ने तारागढ़ का किलेदार नियुक्त किया। फिर विवाह सम्पन्न कर लोटी अपने छोटे भाईयों की बरातों के चारों दूल्हा-दुल्हनों को प्रीतिपूर्वक उनके घरों में प्रवेश कराने की रस्म अदा की।

केकिरवम्

महिपाल यौं मोहन थप्पि मंत्री, जग कित्ति बिस्तारि दिगंत गंत्री ॥
बय वर्ष अट्ठारह अग्ग बत्ती, अभिरूप दूरीकृत देसअत्ती ॥१९८ ॥

हुकुसलत्व आच्छेटन अग्रकर्मा, खुरली खलूरी धृत धुर्यधर्मा ॥
बिबिधत्वविद्या रन बुद्धि बर्म्मा , मितसत्व संसीदित दस्यु मर्मा ॥१९९ ॥

अवधानता सज्जित अंग अंगी, सब सास्त्र ऊहाँ पटु सूरिसंगी ॥
रूचि मग्ग बेदोदित एकरंगी, जित जुद्ध खड्गी कवची निखंगी ॥२०० ॥

करिबे लग्यो कज्ज सुतीन सक्तिसौं, धरिबे लग्यो धी धुर रज्य रक्तिसौं ॥
बरिबे लग्यो बीरन व्यक्तिसों, भरिबे लग्यो श्रीप्रभु रंग भक्तिसौं ॥२०१ ॥

बिसिष्ट जो हय गय बाहि वे बली, भर्नै सदा सबहित लै बिबा भली ॥
अधीसिता बुध भट मंत्रि आदरैं, हठैंन सो इतर सभा प्रभा हरैं ॥२०२ ॥

राव राजा रामसिंह ने इस तरह धायभाई मोहन को नया सचिव बना कर दिग दिगंतर में अपनी कीर्ति का प्रसार किया। राजा ने इस समय अपने अठारह वर्ष की वय पार कर उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश लिया और अपने सुन्दर देश की पीड़ा दूर की। वह शिकार में कुशलता प्राप्त कर सभी अच्छे कार्यों में अग्रणी रहा। खुरली (अखाड़े) में सारे शस्त्रों का अभ्यास कर उसने धर्म के धुर को धारण किया। नानाविध विद्याओं में पारगंत होकर रण बुद्धि से कवच धारण कर राजा शत्रुओं के मर्म को कँपायमान करने वाला सिद्ध हुआ। स्वयं सहित राज्य के सातों अंगों में सावधान हो वह पण्डितों की संगत से शास्त्रों की तर्कना करने में चतुर हुआ। वह एकरंगी, वेदोक्त मार्ग में ही आस्था रखते हुए युद्ध जीतने हेतु तलवार, कचव और तरकश धारण करने वाला बना। वह श्रेष्ठ नीति का पालन कर, राजा की तीनों शक्तियों को बरतता हुआ राज करने लगा। वह राज्य की प्रीति में पगा राज्य हित में श्रेष्ठ बुद्धि को धारण करने लगा। वह वीरों में से वीर छांट कर उन्हें अपनी सेवा में संलग्न कर अपने

इष्टदेव श्रीरंग की भक्ति से अपने अंतस को भरने लगा। वह राजा रामसिंह जो बलवान हाथियों और घोड़ों को चलाने में सिद्धहस्त था सदैव नेकी के साथ सभी के हित की कहने वाला बना। स्वामी के रूप में पंडितों, उमरावों, मंत्रियों का आदर करने वाला वह पूरे हठ से अन्य राजाओं की सभाओं की कांति हरने लगा।

त्रिष्टुबुपजातिः

इलेस ऐसै सु बयस्य संगी, संगीत नाट्यादि कला प्रसंगी॥
संगीयमान स्तव भानु मंगी, संगीर्ण अंधार ससी पिसंगी॥२०३॥

न दान बेला कबहु नकारी, सपत्न सेना कुल घातकारी॥
साहित्य आस्वाद कवि प्रकारी, प्रमाद व्यापार बकी बकारी॥२०४॥

इस प्रकार रामसिंह अपने समवयस्कों के साथ संगीत, नाट्य आदि कलाओं में रुचि प्रकट करता हुआ स्तुति योग्य हुआ। ऐसा स्तुत्य कि जो सुख से गाई जाने वाली, सूर्य का साथ करने वाली और गहन अंधेरे में चन्द्रमा को पीली कांति देने वाली, कीर्ति की उज्ज्वलता धारे रहते हैं। वह दान देने में कभी कोताई नहीं करने वाला, शत्रु सेना का कुल सहित विनाश करने वाला, कवियों के विविध काव्य का रसास्वादन करने वाला और प्रमाद के व्यापार रूपी बकासुर का शत्रु (श्रीकृष्ण) रूप सिद्ध हुआ।

बुंदियपुर बैभव इम बिलसत, हड्डुन हेलि अधिप पटु एस॥
ललित अखंड सुधर्मा कि लसत, सहपुर अहप्रति समह सुरेस॥२०५॥

हाड़ा कुल का सूर्य और वह बून्दी का चतुर स्वामी इस प्रकार अपने राज्य वैभव का भोग करने लगा मानों अमरावती नामक अपनी पुरी को अंखडित देवसभा पर देवराज इन्द्र प्रतिदिन उत्सवपूर्वक राज करता हो।

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पुके उत्तरायणेनवम राशौ बून्दीन्द्ररामसिंह चरित्रे हृत दाक्षिणात्यक्षोणिकांरगेजराजपुत्रस्थान स्वाजंटस्थापन बिजित-भरतपुरजट्टांगरेजपुनर्भरतपुर जट्टवितरण ब्रह्माराजसकाशांगरेजप्रान्त-द्वयग्रहणसूचन जयपुरराज्यराज्ञीभट्टियानी झूंतारामवैश्यदुराचारसूचन पतिहगमनार्यावर्तप्राचीन प्रणालीवारणपूर्वांगरेजसमाचार पत्र प्रचारण जनरल मटकलपबुन्द्यागमन कोटापतिकिशोरसिंह देहांतरामसिंह-

पट्टसमासादन उदयपुरमहाराणा भीमसिंह परासुता जवानसिंह-सिंहासनाधिरोहण लखनेऊनवाबगाजियुद्दीन परेतभावनसूरुद्दीनगद्दिकोपविशन विक्रमनगरेशमहाराजसुरतसिंहासुहानिरत्नसिंह राजतिलककरण बून्दीसचिवधात्रेयकृष्णरामच्छलघात वर्णनं नवमो मयूखःआदित एकसप्तत्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३७१ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में, अंग्रेजों का दक्षिणियों से भूमि छुड़ाकर राजपूताने के राज्यों में अपने एजेंट स्थापन करना, अंग्रेजों का भरतपुर को विजय करके वापस जाटों को देना, ब्रह्मा के राजा से अंग्रेजों का दो सूबा लेने की सूचना करना, जयपुर के राज्य में रानी भटियाणी और वैश्य झूंताराम के दुराचार की सूचना करना, अंग्रेजों का आर्यावर्त में सती होने की रीति को बंद करना और आर्यावर्त में समाचार पत्रों (अखबारों) का जारी होना, जनरल मटकलाफ (मेंटक्लॉफ) का बून्दी आना, कोटा के महाराव किशोरसिंह का देहांत होकर रामसिंह का पाट बैठना, उदयपुर के महाराणा भीमसिंह का देहान्त होकर जवानसिंह का पाट बैठना, लखनऊ के नवाब गाजियुद्दीन के मरने पर नसुरुद्दीन का गद्दी बैठना, बीकानेर के महाराजा सुरतसिंह का देहांत होकर रत्नसिंह का गद्दी बैठना, बून्दी के सचिव कृष्णराम धायभाई के छलघात से मारे जाने के वर्णन का नवम मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ इकहत्तर मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

अग्ग दीधति मैं बडो अब भूप नंदप भूप।
भीमसिंह कुमार भूखन पट्टरानि प्रसूत॥
पुब्ब अब्द सहस्य मैं तस गर्भ दिष्ट प्रसाव।
भव्य धारन स्वामिनी किय भानु प्राचिय भाव ॥१ ॥

कर्क नक्र पतंग के क्रम रत्ति बासर रीति।
पक्ख उज्जल इंदु ज्यों हुव एधमान प्रतीति॥
पाइ सुर्जन भोज रत्न सता रुभाउव पुण्य।
गर्भ जो महिषी गह्यो अनलाऽरणी अनु गुण्य॥२ ॥

हे राजा रामसिंह ! अब मैं (ग्रंथकार) तेज की किरणें विस्फारित करने में सूर्य के समान अपने राजकुमार, जो कुमार भूपण है और राजा की पाटवी रानी की कोख से उत्पन्न है, उस राजकुमार भीमसिंह का वृत्तान्त कहता हूँ। विवाह के पहले वर्ष के पौष माह में रानी ने अपने गर्भ में जिस तरह पूर्व दिशा सूर्य को धारण करती हैं उसी तरह इस कुमार को धारण किया। कर्क और मकर संक्राति के क्रम से जैसे सूर्य दिनों-दिन बढ़ता है और शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा प्रति रात्रि क्रमशः बढ़ता है वैसे ही रानी के गर्भ का बढ़ना प्रतीत हुआ। हाड़ा राजा सुर्जन, भोजदेव, रत्नसिंह, शत्रुसाल, और भावसिंह जैसे पूर्वजों के पुण्यों से अरणी की लकड़ियों की रगड़ से उत्पन्न होने वाली अग्नि के अनुरूप पटरानी के गर्भ में जीव आया।

पद्धतिका

इम तनय जनन जस जन अगर्भ, गत अब्द प्रसल ॠतु गहिय गर्भ ॥
आधान बिहित संस्कार इद्ध, सीमंत पुंसवन तदनु सिद्ध ॥३॥

रानीय अदोहद बिबिध रक्खि, संपूरन पावत स्वमन सक्खि ॥
पहुँचत ढिग गम्यहु सखिन पानि, उत्थान अटन अवलंब आनि ॥४॥

प्रतिदिन गति मंथर.........प्रसंग, उच्छ्वास क्रम हु श्रम असह अंग ॥
रवि बिग्रह गौरव हरिनराग, भासन लगि गांचन मध्य भाग ॥५॥

जिमतिम परि....घन कठिन जोट, उन्नत उठि चिबुक हु कुचन ओट ॥
इन दुहुन अगोचर बनि बिचाल, जिम घन ससिन दुरत चोल जाल ॥६॥

इस तरह पुत्र को जन्म देने का यश अर्जित करने वाली पटरानी ने हेमन्त ॠतु में गर्भ धारण किया। गर्भाधान के तीन माह बाद पुंसवन संस्कार किया गया। फिर चौथे, छठे, और आठवें माह में सीमंत संस्कार सम्पन्न हुए। आरंभ में रानी ने स्वयं को अदोहद (अगर्भ) स्त्री की तरह रखने की कोशिश की। इस समय अपने गर्भ की साक्षी स्त्री का मन ही पाता है, उसी तरह रानी ने भी इसे अपने मन तक ही रखा। जब पास में बुला कर सखियों के हाथ का सहारा लेकर उठना और फिरने का क्रम आरंभ हुआ तब छिपाने पर भी गर्भ के लक्षण प्रकट होने लगे। प्रतिदिन धीरे पड़ती चाल और श्वास फूलने लगा

और चलने का श्रम असह्य होने लगा। सूर्य के समान आभा वाला शरीर भारी होने लगा और हरे रंग की झाँईं देने लगा। शरीर का मध्य भाग (पेट) ऊँचा होने लगा। शरीर के संधिभाग कठिन होने लगे। ठुड्डी (चिबुक) और कुच ऊँचे उठने लगे जो वस्त्रों से ढकने पर भी अगोचर नहीं रहने लगे जैसे बादलों से ढका हुआ चन्द्रमा अगोचर नहीं रहता है।

व्यापार हलुव मित बनत बैन, क्रीड़ा ब्रीड़ा करि नमत नैन॥
लहँगा बिबर्तलघु चैल चीन, चोली जुत चीरहु धृति अधीन॥७॥

सौभाग्य चिन्ह द्विक्कहि सुहाइ, भर अल्प बलय निष्कादि भाइ॥
अर्चित खिल भूखन सब उतारि, धव मंगल सूचक नियत धारि॥८॥

असनादि नियम सब सद्धि आप, अहप्रति सुख बिलसिय मह अमाप॥
अवर्वतन आश्विन मास आइ, बैजनन बेर तहं महं तनाइ॥९॥

नव रात्र अवधि निज अय उदर्क, अस्ताचल पहुंचत पाथअर्क॥
प्रभु सजि अनीक चोगान पत्त, देविय निमित्त बलि जजन दत्त॥१०॥

मुँह से बोल धीर धीरे निकलने लगे और कम बोलना अच्छा लगने लगा। क्रीड़ा करने में संकोच से नेत्र नीचे होने लगे। छोटे घेर वाले लँहगें और चोली सहित ओढने के चीर झीने कपड़े के होने लगे। सुहाग के दो अल्पभार के चिन्ह रखे जाने लगे। एक हाथों में स्वर्णनिर्मित वलय (चूड़ियाँ) और दूसरा तिमणिया (आभूषण विशेष जो गले में सुहागिन स्त्रियाँ मंगलसूत्र की तरह पहने रहती है) ही पहना जाने लगा और शेष सारे आभूषण नहीं सुहाने के कारण उतारे जाने लगे। ये दो गहने भी पति के मंगल की सूचना करने वाले होने के कारण पहने जाने लगे। भोजनादि भी नियमपूर्वक परहेजों के साथ होने लगे। दिन प्रतिदिन अधिक आराम करने की सूझने लगी। तभी याचकों को जीविका प्राप्त कराने वाला (पुत्र जन्म पर मिलने वाले दान के कारण) आश्विन माह आया जिसमें गर्भ के जन्म का उत्सव फैला। नवरात्र की नवमी तिथि को शुभ कर्मफल में जब चन्द्रमा अस्ताचल को पहुँचा। तभी राजा सज्जित हो कर अपनी सेना के साथ चौगान में आया जहाँ आज उसे अपनी इष्ट देवी की पूजा-अर्चना कर बलि चढ़ानी थी।

रुचि बिविध सद्धि प्रहरन दुरूह, जहँ दत्त परिच्छा भटन जूह ॥
चल अचल बेध्य गन सफल चोट, जिततित कहुँसादिन द्रवत जोट ॥११॥

तोपन चिति चल्लत असह ताप, मिलि सम्मुह हंकत हय अमाप ॥
इम कृत्रिम आहव बल बिधान, बलि चढत बस्त मह सुरन मान ॥१२॥

सुत प्रसव सुद्धि तहँ पहुँचि ताम, किय बिधि मन जनजन सफल काम ॥
सक मुनि भुजंग बसु ससि समान, इस मास पक्ख इह बिसद बान ॥१३॥

बर्तत नवमी तिथि मिहिर बार, पैंतीम घटी पल द्विचउ पार ॥
पूषा उडु बिकृति रु तिथि प्रमेय, सौभाग्य धृति रु पल प्रकृति श्रेय ॥१४॥

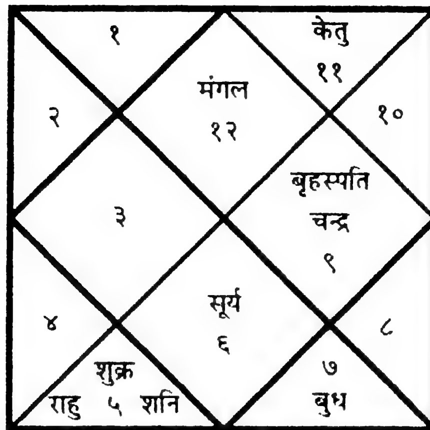
वहीं अपनी सेना के योद्धाओं का शस्त्र चालन होना था और योद्धाओं के समूह की परख होनी थी। कई स्थिर और हिलने डुलने वाले लक्ष्यों पर निशाने साधे जाने लगे। घुड़सवारों ने अपने घोड़ों की दौड़ का आयोजन किया। तोपों के समूह असह्य ताप छोड़ते घनघना उठे और सवार उनके समक्ष अपने घोड़े बढ़ाते बढ़ने लगे। इस तरह कृत्रिम युद्ध का अभ्यास हुआ और देवी के आगे भैंसे और बकरों की बलि चढाई जाने लगी कि तभी सभी के मध्य महलों से राजकुमार के जन्म की खबर (बधाई) पहुँची। सभी लोगों ने मन से राजकुमार के सफल होने की कामना की। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ सतासी के आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि विद्यमान थी तदनुसार रविवार के दिन पैंतीस घडी बयालीस पल के समय में पूर्वाषाढा नक्षत्र, तेईस घड़ी पन्द्रह पल, सौभाग्य नामक योग, अठारह घड़ी इक्कीस पल का था।

बान रु तिथि बालव मिति बिभात, तीस रु छतीस इह इष्टआत ॥
रवि सर हर रु अधिपति रु अष्टि, सिव रासि दु लव लग्नहु समष्टि ॥१५॥

मंगल सफर स्थित लग्न माँहिं, अरिगृह कवि सनि तम सिंह आँहिं ॥
दयिता गृह कन्या थित दिनेस, अंतालय ससिसुत घटग एस ॥१६॥

ससि गुरु कर्मालय चाप सत्थ, आहिक सकुंभ व्यय भौन अत्थ ॥
इम ग्रहन भोग्य राशि न अधीन, क्रम कथित छ गेहन बास कीन ॥१७॥

जँहँ हड्डु पुरंदर कुमर जात, केसव गृह दर्पक सम सुहात ॥
ऋतु मथन गृह कि कार्तिक कुमार, इन गृह बैवस्वत किमु उदार ॥१८॥



॥ राजकुमार भीमसिंह हाड़ा की जन्म कुण्डली ॥

बालव करण, पाच घड़ी पन्द्रह पल, इष्ट तीस घड़ी छत्तीस पल, सूर्य पाँचवीं राशि में ग्यारह अंश, सोलह कला, सोलह विकला, लग्न ग्यारह राशि दो अंश। मीन का मंगल लग्न में था। शुक्र, शनि, राहु तीनों ग्रह छठे भवन में सिंह के थे। कन्या राशि का सूर्य सातवें भवन में और तुला का बुध आठवें भवन में गया था। चन्द्रमा और बृहस्पति दसवें स्थान में धनु राशि के थे और कुंभ राशि का केतु बारहवें स्थान में था। उपरोक्त नौ ग्रह छः भवनों में निवास करते थे और छः भवन खाली थे। ग्रहों के इस स्थिति में उपरोक्त समय पर हाड़ाओं के इन्द्र के पुत्र जन्मा सो मानों श्रीकृष्ण के घर कामदेव (प्रद्युम्न) के समान शोभा देने लगा। मानों शिव के घर स्वामी कार्तिकेय अथवा सूर्य के घर मानों उदार वैवस्वत मनु ने जन्म पाया हो।

बिधु कै बुध बिधि कै मनु महंत, जंभाहित कै जय कै जयंत ॥
आसुग कै भीम कि असनि अंग, अप्पति कै....... किमु अभंग ॥१९ ॥

कुह कुल नलकूबर किमु कुमार, किमु राम सदन कुस सुजसकार ॥
श्रीप्रभु ऋषभालय भरत श्रेय, कृतबीर्य कुट्ट कि अर्जुन अमेय ॥२० ॥

दुक्खंत सदन भरत कि द्वितीय, बुध बसति ऐल इन हरि हितीय ॥
धर्मालय ज्यौं अजमीढ धीर, बल निलय उल्मुकक निसठ बीर ॥२१ ॥

जय कै अभिमन्यु कि असह जुद्ध, स्मर सद्म उषाबर बरप्रबुद्ध
नरपति नल सद्म कि इंद्रसेन, नाहुष निकेत पूरू अनेन ॥२२ ॥

हाड़ा राजा के घर कुमार भीमसिंह जन्मा मानों चन्द्रमा के घर बुद्ध, ब्रह्मा के मनु और इन्द्र के अर्जुन या जयन्त जन्मा हो। जैसे पवन के भीमसेन और हनुमान, कुबेर के घर नलकुबर और रामचन्द्र के घर में सुयश कमाने वाला कुश जन्मा हो। जैसे ऋषभ के घर में श्रेष्ठ भरत और कृतवीर्य के घर मानों तुलना रहित सहस्त्रार्जुन ने जन्म लिया हो। जैसे दुष्यन्त के घर भरत (द्वितीय) और बुध के घर में ईश्वर का भक्त राजा ऐल जन्मा हो। जैसे धर्म के धीर अजमीढ और बल के यहाँ वीर उल्मुक और निसठ ने जन्म पाया हो। जैसे अर्जुन के घर असहनीय योद्धा अभिमन्यु और (स्मर) प्रद्युम्न के घर बुद्धिमान उषा के पति अनिरुद्ध ने जन्म पाया हो। मानों राजा नल के घर में इन्द्रसेन और नहुष के घर में निष्पाप पुरु ने जन्म पाया हो।

मनु कै कि प्रियब्रत गुन अमेय, ध्रुव कै किमु उत्कल नामधेय॥
बैवस्वत गृह इक्ष्वाकु बुद्ध,...............................अलुद्ध॥२३॥
कलिदमन परिच्छत नृप निकेत, पनधन जनमेजय जय उपेत॥
उदयननृप गृह इत गृहमराय, नरबाहन दत्त कि कुमरनाह॥२४॥
पहु चंड महासेनाख्य पस्त्य, गोपालकुमर अरिकधि अगस्त्य॥
बिक्रम निकाय क्रम चित्रबीर, हुव भोज निलय..........गहीर॥२५॥
संभर पित्थल गृह रत्नसीह, बिजयालय करन किरन अबीह॥
जयचंद्र महोदयपुर जनेन, सुत किमु तदीय बरदायसेन॥२६॥

जैसे मनु के घर अमाप गुणों वाला प्रियव्रत और ध्रुव के मानों उत्कल नामक पुत्र जन्मा हो। जैसे वैवस्वत मनु के घर चतुर इक्ष्वाकु और कलियुग को दंड देने वाले राजा परीक्षित के घर प्रण के धनी 'जय' सहित नाम वाला जन्मेजय जन्मा हो। मानो राजा उदयन के यहाँ घर-घर से प्रशंसा प्राप्त राजकुमारों का पति नरवाहनदत्त जन्मा हो। जैसे महासेन नामक राजा प्रचंड के घर कुमार गोपाल और अरिकाधि के घर अगस्त्य ने जन्म लिया हो। मानो विक्रम के घर में चित्रवीर्य और चहुवानराज पृथ्वीराज के घर रत्नसिंह जन्मा हो। जैसे सरवहिया विजयसिंह के घर में रणभूमि में निर्भय विचरण करने वाले करण ने और महोदयपुर के राजा जयचंद के घर में बरदाईसेन ने जन्म लिया हो।

टिप्पणी:- १ यहाँ ग्रंथकार ने रामचन्द के घर कुश के जन्म लेने का लिखा है सभवत वह लव कहना चाहता रहा होगा **संपादक**

नृप सिद्धराज जयसिंह नाम, सुत गोभिलराज कि तस सुधाम ॥
सरबधिक कर्ण रैवत रसेस, सुत तस कैवर्त कि जस असेस ॥२७॥

गुन आकर हड्डुन हेलि गेह, इहिँ तुल कुमार हुव तिहिँ अनेह ॥
नर पहुँचि सुद्धि दायक अनेक, अधिगत अभीष्ट हुव एक एक ॥२८॥

भू धन गृह भूषन बसन बाह, सतकार पगे सब लद्ध लाह ॥
बांधव बयस्य भट सचिव बर्ग, सुनि कुमर जन्म अंहति निसर्ग ॥२९॥

वृत्तिहिँ बचाई सर्बस्व स्वीय, बहु देत भये रुचि जस बरीय ॥
कति संघ दत्त भूखन दुकूल, मुद्रा दिय कतिकन प्रमदमूल ॥३०॥

जैसे राजा सिद्धराज जयसिंह (सोलंकी) के श्रेष्ठ घर में गोभिल राज ने और रैवत के सरबहिया राजा करण के घर सर्वगुणसम्पन्न पुत्र केवाट ने जन्म पाया हो। इस प्रकार हाड़ा कुल के सूर्य रावराजा रामसिंह के घर ऐसे ही पुत्र का जन्म हुआ। जो खबर देने वाले दूत इसकी बधाई (खबर) ले कर पहुँचे उन्हें मनोवाँछित फल की प्राप्ति हुई। उनका भूमि, धन, घर, आभूषण, वस्त्र और वाहन पाने का लोभ पूर्ण हुआ। यही नहीं इस अवसर पर वहाँ उपस्थित राजा के समवयस्क बांधवों, उमरावों और सचिवों ने भी राजकुमार के जन्म की खबर पाकर अपनी वृत्ति को छोड़ कर अपना सर्वस्व याचकों और दूतों को दे डाला। राजा के साथ वालों में से कई ने आभूषण और दुपटे दे डाले तो कई ने (मुद्राएं) रुपये दिये।

आब्दिकदिय कतिकन अवनि आय, कतिकन दिय मासिक निज निकाय ॥
महि दत्त कतिन श्रद्धा प्रमान, दिय हो ढिग जो सुहि कतिन दान ॥३१॥

इम दत्त कतिन भूखन अगार, बसनालय कतिकन बसन बार ॥
लुटवाइ मंदुरा कति अलुद्ध, सल महिषी सुरभी वृषभ सुद्ध ॥३२॥

कतिकन दिय सस्त्रहि प्रमद काल, बटि द्रंग बधाई बसु बिसाल ॥
रीझहिँ सक्यो न कहुँ कोहु रोकि, बिग्रह असु आगम मह बिलोकि ॥३३॥

प्रभु बिहित कृत्य महलन पधारि. पोढे पुनि दुस्थन दुक्ख दारि ॥
सद्विय दसमी दिन बिधि असेस, अवसर निगमोदित विरचि एस ॥३४॥

कई उमरावों ने अपनी भूमि की एक साल की आमदनी दे डाली और कइयों ने अपनी मासिक आय का दान दिया। (इस तरह वहाँ आभूषणों और

वस्त्रों का ढेर लग गया।) कुछ जागीरदारों ने श्रद्धा से भूमिदान किया वहीं कुछ ने जो हाथ पड़ा वही दे डाला। कई निर्लोभी उमरावों ने अपनी हयशाला लुटा दी, तो कई ने ऊँट, भैंस, गाय, और बैल दे डाले। कुछ मद वाले लोगो नें तो अपने शस्त्र दे डाले। इस तरह थोड़ी ही देर में पूरे नगर के घर घर में बधाई बाँटी गई। रीझ देने से कोई अपने आपको रोक नही पाया। शरीर में प्राण आने के समान इस उत्सव को देख कर लोग अपने देने के मन पर अकुंश न लगा सके। राजा भी अपने सारे काम निबटा कर महलों में आया और कई दरिद्रियों का दुख काट कर सोया। अगले दिन दसवीं तिथि को दशहरा का उत्सव वेदोक्त विधि-विधान पूर्वक मनाया गया।

क्रम जातकर्म सह बिधि कराइ, किय नाम कर्म पुनि समय पाइ ॥
कवि चंड.... पन दानाधिकार, सह सचिव बुल्लि तहँ मह प्रसार ॥३५ ॥

अधिराज दुहुन दिय हुकम एहु, दिन ममह बधाई बंटि देहु ॥
भरि तब बहु थैलिन धन अभंग, करि कर्म सचिव कति सुकवि संग ॥३६ ॥

जब अखिल दान संभार जोरि, पीतांबर श्रीहरि निलय पोरि ॥
निज ठानि अधोमहलन निवास, पटु उचित बंधु कवि रक्खि पास ॥३७ ॥

तिहिं थान बधाई नाम त्याग, भनि हित प्रारंभिय क्रम बिभाग ॥
भूखन पट हय गय भर्म भुम्मि, घन द्रम्म ददन जसछाक घुम्मि ॥३८ ॥

राजा ने तब अपने सद्यजात पुत्र के जातकर्म संस्कार विधि-विधान पूर्वक सम्पन्न कराये, फिर आगे समय पर नामकरण संस्कार करवाया। इस अवसर पर हाड़ा राजा ने ग्रंथकार के पिता (चंडीदान मीसण) को बुलवाया और अपने सचिव के साथ दानाधिकार (दान देने का अधिकार) सौंप कर आज्ञा दी कि आज उत्सवपूर्वक सभी याचकगणों में बधाई बाँटी जाये। तब अंभग राजा ने रुपयों से भरी बहुत सारी थैलियां अपने सचिव और कवि के हाथों में सौंपी। तब इन दोनों ने दान की सारी सामग्री एकत्र कर पीताम्बर श्रीहरि के मन्दिर की पोळ (दरवाजे) में रखवाई। राजा ने भी तब अपना निवास नीचे के महलों में रखा और अपने साथ चतुर बांधवजनों और चारणों को रखा। पीताम्बर की पोळ से बधाई को, त्याग की तरह बाँटने का कार्य आरंभ करवाया। आभूषण, वस्त्र, घोड़े, हाथी, स्वर्ण, भूमि के साथ बहुत सारा धन उस यश के छके राजा ने बँटवाया।

बुध कवि द्विज बिद्या समर सूर, पौरानिक मागध बंदि पूर॥
बैतालिक चाक्रिक भांड ब्रात, जंगर बिरुदब्रत भट्ट जात॥३९॥

बहुरूप भरत चारन बहोरि, जिम नांदी सूचक जूह जोरि॥
पुनि पीठमर्द पार्श्विक प्रबीन, प्रीतिद बिट चेटक स्वगुन पीन॥४०॥

पात्र भ्रंकुस पनजुत्ति जत्थ, बादन चउ बादक श्रेनि सत्थ॥
पहिले अधिकारी चउ प्रधान, मोताजदार पुनि मध्य मान॥४१॥

उपटंक बनीयक वृंद एस, गुन बेतन ग्राहक श्रेनी सेस॥
इह अन्यहि चारन भट्ट उक्त, पौरानिक बंदी पन प्रमुक्त॥४२॥

बुद्धिमान कवियों और विद्या की रणभूमि में वीरता प्रदर्शित करने वाले ब्राह्मण, चारण, भाट, बंदीजनों के साथ-साथ वैतालिक, चाक्रिक (भाट), भांड, जांगड़ (ढोली), बिरुदाने वाले भाट, बहुरूपिया, नट, कत्थक, नाटकों आदि में मंगल पाठ करने वाले नट (नांदी), सूचक (सुत्रधार), पीठमर्द (नाटक के नायक), पार्श्विक (माया कारक नट विशेष) अथवा नाटक में पार्श्वसंगीत देने वाले, विदूषक (प्रीतिद), विट, चेटक, पात्र (नाटक कर्ता), भ्रंकुस (स्त्री के वेश में नाटक करने वाले), गणिका, वादक आदि के समूह को पंक्तिबद्ध किया गया। पहले राज के अधिकारी, चारों प्रधान, फिर मध्यम श्रेणी के वृत्तिजीवी, उसके बाद याचक पदवियों वालों के समूह और शेष वेतन पाने वाले सेवकों की चार श्रेणियां बनाई गईं।

तर्कुक बिदेश्य अरु देश्य तत्थ, आये जुरि सहँसन अत्थ अत्थ॥
इम मग्ग अवधि जुग मास अंत, दिय बंटि बधाई जस दिपंत॥४३॥
बटि मय हय भूखन सतन ब्रात, सिरुपावन सहसन मित सुहात॥
बितरत अयुतन मित द्रम्म बार, सिंधुन बिलंघि हुव जस प्रसार॥४४॥

उच्छव यह जान्यों दिसन अंत, क्रम संसकार सोभित सुमंत॥
निस्कासन प्रासन बिधि बनाइ, पुनि अवसर छुरिका बंध पाइ॥४५॥

सह चौल उपनयन व्याह सिष्ट, दिपि है सब इतिपुख भाविदिष्ट॥
अब वर्तमान क्रम करि उदंत, कोबिद श्रुति धारहु अवनिकंत॥४६॥

इनके अतिरिक्त भी पौराणिक (चारण) और बंदीजनों (भाटों) के

साथ दूसरे देश से आए याचकगण और देशी याचक धन पाने के अर्थ हजारों की संख्या में आ उपस्थित हुए, उन्हें त्याग बाँटा गया। इस तरह पूरा मार्गशीर्ष मास बधाई का त्याग बाँटने में व्यतीत हुआ जिससे राजा की कीर्ति प्रसारित हुई। जहाँ ऊँट, घोड़े, और आभूषण सैंकड़ों की संख्या में और शिरोपाव (वस्त्र) आदि तो हजारों की संख्या में बाँटे गये। हजारों की संख्या में रुपये दिये गये जिससे राजा का यश समुद्र पार तक फैला। इस उत्सव की चर्चा दिशा-दिशा में फैली कि पुत्र के जन्म संस्कार सम्पन्न कराने के लिए राजा ने इतना खर्च किया। इसके बाद राजकुमार का, समय आने पर निष्कासन (घर से चल कर बाहर आने का संस्कार) और अन्नप्राशन संस्कार किये गये। फिर समय पर कटारी बांधने का (कमर पर छुरी बंधाना) संस्कार किया गया। जब कि चूड़ाकर्म, उपनयन (जनेऊ पहनाना) और विवाह आदि के श्रेष्ठ संस्कार आगे आने वाले समय में सम्पन्न किये गये। हे राजा! अब मैं (ग्रंथकार) फिर से वर्तमान वृत्तान्त की ओर लौटता हूँ।

बलि उज्ज मग्ग अह मह बिताइ, अवलच्छ पच्छ अब पौस आइ॥
बर्तत तिथि पंचमि तरनि वार, क्रम लहिय जन्म अर्जुन कुमार॥४७॥

खनि मनि स्वरूपलतिका खवासि, जो रत्न जन्यौं रुचि रूप रासि॥
कवि जनककिन बलि कवि बिबाह, सक भावी मधुमिति लग्न लाह॥४८॥

कोटेस प्रतोलीपात्र केर, बहिनी मन सगपन किय सु बेर॥
जहँ बिद्यमान कवि माल जास, श्रुत बिजयसिंह अभिधान आस॥४९॥

जो मालिक महियारियन जात, कविराज मोघ उपपद कहात॥
सासन थोहनपुर प्रमुख सत्त, पूरन कति कतिकन बंट पत्त॥५०॥

हे चतुर राजा! सुनो, कार्तिक और मार्गशीर्ष दोनों माह उत्सवपूर्वक बीते और पौष माह का कृष्ण पक्ष आया। इसकी पंचमी तिथि तदनुसार रविवार के दिन राजा के यहाँ कुमार अर्जुन का जन्म हुआ। राजा के यह पुत्र मणियों की खान उसकी पासवान स्वरूपलता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। यह बालक अपनी सुन्दरता में सचमुच रत्न रूप था। इसी समय ग्रंथकार के पिता (चंडीदान मीसण) ने अपने पुत्र (स्वयं मेरा) का विवाह मांडा। इस विवाह का लग्न विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ अठासी के चैत्र माह के शुक्ल पक्ष

में था। कोटा के प्रतोलीपात्र की बहन से सगाई की गई। इस समय विजयसिंह का पुत्र मालसिंह विद्यमान था जो महियारिया जाति का चारण था और कवि नहीं होने पर भी कविराज के उपटंक वाला कहलाता था। वह थूहणपूर सहित सात गाँवों की पूरी जागीर के साथ कुछ गाँवों की जागीर से हिस्सा पाने वाला था।

सब कुल माधानिन नेग सत्थ, आजीवन कोटा ब्रात अत्थ॥
तस जामि बधू हित मंगि तात, प्रांरभिय उच्छव समय पात॥५१॥

सकहय अहि बसुइक पक्त सस्य, तिथि बारसि ससि सुत सित तपस्य॥
अप्पहि निमंत्रि कवि निज अगार, बुल्ले सह परिगह मह बिथार॥५२॥

समुपेत पत्ति सादिन सहस्त्र, घटिका दस जावत कथित घस्त्र॥
प्रभु निवसथ हरिना निकट पत्त, अभिमुख कवि आगत त्वरित तत्त॥५३॥

पहुँचे न कास द्रोनिय प्रदेस, सोदागर भैरव पहुँचि सेस॥
सह बिरुद दत्त आसिख सुहाइ, उपदा किय हय इक प्रमद पाइ॥५४॥

महियारिया मालसिंह इस समय कोटा के सारे माधानी हाड़ाओं के समूह मे नेग पाने वाला था। ग्रंथकार के पिता ने इसकी बहिन को अपने पुत्र (ग्रंथकार) की जीवन-संगिनी बनाने की सोची और विवाह का उत्सव आरंभ कियां। विक्रमी संवत् के वर्ष अठारह सौ सतासी की फसल पक जाने पर फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की द्वादसी तिथि तदनुसार बुधवार के दिन हे राजा! चंडीदान मीसण ने उत्सव फैला कर सारे परिकरों सहित आपको अपने घर पधारने का न्योता दिया। आप भी उपरोक्त दिन को दस घड़ी दिन चढ़े अपने सवारों और हजारों पैदल सेवकों के साथ रवाना हो कर कवि के गाँव हरिना के पास पहुँचे, जहाँ कवि ने तुरन्त सम्मुख आ कर आपका स्वागत किया। यहीं पर अर्थात् पर्वत की संधि के स्थान पर भैरव सोदागर भी अपने साथियों सहित स्वामी आगमन की खबर सुन कर आया। उसने आकर बिरुद और आसिख सुनाई और मन में सम्मान का भाव जगा कर उसने एक घोड़े का नजराना किया।

रक्ख्यो न तुरंग सु हड्डु राज, क्रमि अग्ग मग्ग लखि समय काज॥
बाहलि कारुंडसु सकट बट्ट, उत्तरि इत आये थरकि थट्ट॥५५॥

क्रमि मग डुंडुभ द्रह रु दुड़कूप, दै छतिय दक्खिन भुजहिं भूप ॥
जिम सब करि दक्खिन इच्छुजंत्र, तजि तुरग रुंडतट पुनि स्वतंत्र ॥५६ ॥
थित देवी चालकनेचि थान, तहँ बहु तनाइ पटगृह बितान ॥
अंतर प्रवेसि कटिबंध उज्झि, समयानुसार सब कज्ज सुज्झि ॥५७ ॥
दै सैन्य जिमावन तहँ निदेस, पठये नियोगि जन निपुन पेस ॥
जिम्म निज लैलै तिनहु जाइ, जे सब कवि आलय दिय जिमाइ ॥५८ ॥

हाड़ा राजा (रामसिंह) ने उसकी भेंट को स्वीकार नहीं किया अर्थात् वह घोड़ा नही रखा और समय के तकाजे को देख कर आगे का मार्ग लिया। कारूंड नामक नाले के आगे बैलगाड़ियों के मार्ग (कच्चा रास्ता) पर राजा का कारवां उतर आया। जो यहाँ से आगे डुंडुभ द्रह और दुड़कूप के रास्ते पर [illegible]गों को दाहिने हाथ की ओर छोड़ते हुए बढ़ा। इससे आगे गन्ना पिराने की चरखी (इक्षुयंत्र) को भी दाहिनी ओर रख कर रूंड तट पर आकर सभी घोड़ों से उतरे। यहाँ अवस्थित चालकनेच देवी के थान के निकट बहुत सारे तंबू और सामियाने लगा कर राजा के ठहरने का शिविर लगाया गया। राजा ने शिविर में प्रवेश कर अपना कमरबंधा खोला और समय मुताबिक सारे उचित कार्यो के निर्देश प्रदान किये। राजा ने नियोगी जन (जीमाने में सहायता देने वाले पुरुसकार) भेज कर साथ आए हुए सेना के दल को भोजन करवाने का आदेश किया। इस पर अपनी जिम्मेदारी निभानेवाले पुरुसकारों की सहायता से सैनिकों ने कवि चंडीदान के घर जा कर भोजन किया।

आदर के भट खिल रहि उदार, रहिकैं अधीस ढिग रहनहार ॥
बल आत जिम्मि जनजन बिबेक, अवसेस रहत दिन जाम एक
सह सौच बि संध्या सद्धि सूर, आरोहि अर्ब हय मृग हजूर ॥
वृहती गोबाटी मुख प्रबिष्ट, आवत निवसथ बिच स्वकवि इष्ट ॥६० ॥
तबतैं पामंडे पटन तानि, अति अर्घ पट्टमय अग्ग आनि ॥
तिम अग्ग मिलित जर तार नार, अधिराज पत्त इम कवि अगार ॥६१ ॥
गनपति सिव थान जु चतुर गोल, तजि हय तहँ लालित ललित लोल ॥
चतुर जु आव्हय करि रामचोक, अनि चउ जुत करनी सक्ति ओक ॥६२ ॥

पीछे शिविर में आदरणीय सामंत जो राजा के साथ रहने वाले थे वे

रहे। एक प्रहर दिन के शेष रहते सेना के लोग कवि के घर से भोजन कर वापस लौट आए। इधर शौचकर्म से निवृत हो कर राजा ने संध्या की। फिर सभी घोड़ों पर सवार हुए। राजा इस समय मृग नामक उत्तम नस्ल के घोड़े पर सवार हुआ। राजा अपने कवि के गाँव आते हुए कपड़े से बने स्वागत द्वारों आदि से होकर प्रविष्ट हुआ। कवि चंडीदान ने अपने स्वामी के स्वागत में पांवडे (कपडे के थान) बिछाये और ऊपर सुन्दर सामियाना तनवाया। इसके आगे वाले पटालय में जरदोजी का काम हो रखा था और वह चाँदी के तारों एवं मोतियों से सज्जित था। इस प्रकार राजा अपने कवि के घर गया। गणेश और महादेव के थान का जो गोलकार चबूतरा था वहाँ पहुँच कर राजा अपने चपल घोड़े को छोड़ कर उतरा। इसके आगे रामचौक से होते हुए करनी माता के थान के पास पहुँचा।

पैठे तहँ संसद प्रभु बनाइ, प्रविसे पुनि अंदर समय पाइ॥
कवि आलय चत्वर बिबिध कंति परि चो सग चत्वर भंति पंति॥६३॥

प्रभु तत्थ सखा सुभटन उपेत, हड्डुन इन बैठे असन हेत॥
आचांत अंबु स्वदनावसान, पानिय पवित्र लहि अप्प पान॥६४॥

पुनि इम अयनंतर अयन पत्त, महिला कविकुल की जहँ समत्त॥
भट दुजनसल्ल गोकुल भुवाल, लहि संग कर्ण तिम रत्न लाल॥६५॥

त्रय आदि महासिंहोत्त तत्थ, स्व सचिव काका----चउ समत्थ॥
ए स्वामी संग चउ बीर आस, पंचम लहि मो कहँ अप्प पास॥६६॥

जहाँ राजा अपनी राजसभा जोड़ कर थोड़ी देर के लिए बैठा फिर थोड़े समय बाद वह कवि के घर में गया। कवि ने अपने घर के चौक को अच्छी तरह सजा रखा था और अलग-अलग पंक्तियों में आसन लगा रखे थे। हाड़ाओं का स्वामी यहाँ अपने साथियों, उमरावों सहित भोजन करने बैठा। भोजन के अंत में आचमन कर राजा ने अपने पवित्र हाथ में पेश किया हुआ पान का बीड़ा लिया। इसके बाद राजा कवि के घर के भीतर वाले कमरे में गया जहाँ कवि के कुल की सारी स्त्रियाँ उपस्थित थीं। इस समय राजा के साथ उमराव दुर्जनसाल, गोकुल, कर्ण और रत्नलाल भायभाई थे। राजा ने अपने साथ तीन महासिंहोत हाड़ा जो उसके काका थे और सचिव इन चारों

ही वीरों के अलावा पाँचवा मुझे (ग्रंथकार) को साथ लिया।

पंचन जुत अंतर गृह प्रविष्ट, पहिचानी सब तिय कवि प्रदिष्ट॥
कवि जननि नजर इक द्रम्म किन्न, लहि मो रु न इतरन भेट लिन्न॥६७॥

उत्तारन करि तब तिय असेस, अक्खिय पवित्र किय सद्म एस॥
प्रभु आसिख इम कवि तियनपाइ, उपविष्ट सभा जहँ पुब्ब आइ॥६८॥

. . . . . ॥
सिरुपाव जकुट बर बरनि सीर, मुद्रा सतसह हय वितरि बीर॥६९॥

दासिन घट मुद्रा पंच दत्त, पुनि इक्क पुरोहित कलस पत्त॥
इक्कहि निप मोतीसरन आइ, पयधावक नापित उभय पाइ॥७०॥

हाड़ा राजा रामसिंह ने हम पाँचों के साथ अपने कवि के घर के भीतर प्रवेश किया जहाँ कवि (चंडीदान मीसण) ने सभी का राजा से परिचय कराया। इस समय ग्रंथकार की माता ने एक सिक्के का नजराना किया उसे राजा ने स्वीकार किया पर माता के अलावा दूसरी स्त्रियों ने जो नजराने किये, राजा ने उन्हें अस्वीकार किया। इसके बाद सभी स्त्रियों ने राजा पर निछरावलें की और कहा कि हे राजा! आपने यहाँ पधार कर हमारे घर को पवित्र किया है! राजा इस तरह कवि कुल की स्त्रियों से आसीस पाकर उस स्थान पर आया जहाँ सभा के समय आसीन था। यहाँ पहुँच कर राजा ने दूल्हा-दुल्हन के लिए दो सिरोपाव, एक सौ रुपये और एक घोड़ा दिया। फिर दासियों के कलश हेतु पाँच रुपये प्रदान किये। फिर पुरोहित के कलश में, और मोतीसरों के कलश में एक-एक रुपया डाला। पाँव धोने वाले नाई को दो रुपये दिये।

इक दम्म भेजि श्रीहरि अगार, दुग्गावी मंदिर इक उदार॥
उपदा इक चालकनेचि अत्थ, सद्धिय इक करनी भेट सत्थ॥७१॥
इततैं इक इक सिरुपाव अर्ब, कवि जनक किन्न प्राभृत सुपर्ब॥
रक्ख्यो न उपायन वह रसेस, मोताज मिलिय इततैं असेस॥७२॥

चैलालय अधिकृत दम्म च्यार धुव चउहि फरासन निकर धारि॥
दुव दम्म द्वारपालन दिवाइ, पुनि दुवहि नकीबन निकर पाइ॥७३॥
तांबूलकार हयभृत्य ताम, दुव दुव इत्यादिन लहिय दाम॥
लहि सेसन इक इक दम्म लाह, अक्खिय पाकस्तव सबन वाह॥७४॥

एक रुपया श्रीहरि के मन्दिर में और एक रुपया देवी के मन्दिर में चढ़ाने को भेजा। इसी तरह एक-एक रुपया चालकनेच और करनी जी के थान पर चढाया। इस पक्ष (कवि पिता के)की ओर से चंडीदान मीसण ने एक सिरोपाव, एक घोड़ा उचित समय पर नजर किया पर राजा ने यह भेंट स्वीकार नहीं की फिर राजा के सामने और मातहत आ उपस्थित हुए। फरासखाने के दरोगा को चार रुपये फरासों के समूह में बाँटने हेतु प्रदान किये। इसी तरह दो रुपये द्वारपालों को और दो रुपये नकीबों (छड़ीदारों)को प्रदान किये। फिर घोड़े के चरवादार (सईस) और तांबूलकार को दो दो रुपये वहीं शेष सभी सेवकों को एक-एक रुपया दिया और भोजन के पकवानों की तारीफ की।

पुहवीस व्याह मह इम पधारि, बहु पौलिपात्र गौरव बधारि॥
तिम सद्धि निमंत्रन हड्डु हेलि, किय आइ पुष्पसर बेल केलि॥७५॥

खिन पुब्ब भोज भूपति खवासि, रुचि सुजस ठानि व्यय बित्त रासि॥
नियतार्थ फुल्ललतिका स नाम, जिहिँ नरन भरन करि अट्ठ जाम॥७६॥

भुव सोधि पवनदिस कोस भाग, तहँ नाम फुल्लसागर तड़ाग॥
बिरच्यो बिसाल जहँ तहँ सुबेस, आराम रचिय भाऊ इलेस॥७७॥

सब साखी दल फल फुल्ल सालि, चद्दरि नलादि जलजंत्र चालि॥
सुभसिल्प कुंड बापिय सुहात, प्रासाद बरन छबि प्रचुर पात॥७८॥

हाड़ा राजा रामसिंह ने इस तरह विवाह के उत्सव में पधार कर अपने प्रतोलीपात्र चारण (चंडीदान मीसण) का गौरव बढ़ाया। इस निमंत्रण को साध कर वापस लौटते हुए हाड़ाओं के सूर्य ने फूलसागर नामक तालाब के बाग में विलास किया। पूर्व समय में हाड़ा राजा भोजदेव की एक पासवान ने यश अर्जित करने के लिए बहुत सारे रुपये खर्च कर इसका निर्माण करवाया था और उस फूललता नामक खवासिन ने अपने नाम पर इसका नाम फूलसागर रखा। उसने कई मजदूरों का भरण पोषण करने की मंशा से बून्दी नगर से वायु कोण में यह जमीन चुनी और यहां यह बड़ा सा तालाब बनवाया। इस बड़े तालाब के पास तब राजा भोजदेव ने एक सुन्दर बाग का निर्माण करवाया। राजा ने यहाँ सभी प्रकार के फलदार, फूलवाले वृक्ष

लगवाए और एक महल सहित चारदीवारी बनवाई। उन्होंने इस बाग में नल से चलने वाले फव्वारों के निर्माण के साथ अच्छे खुदाई वाले पत्थरों से कुण्ड, वाटिका आदि बनवाये। इस तरह यह बाग, महल और शानदार कोट से अत्यन्त मनोहारी बन गया।

लहिकाल भयो उपवन सु लुप्त, गुरु बिरल तरु न रहिगो अगुप्त ॥
अप्पहु प्रभु बिहरत कबहु आइ, लखि नाहि सज्ज बिरचन लुभाइ ॥७९ ॥

दिय कृष्णराम सचिवहिं निदेस, अभिनव बलि बिरचहु बेल एस ॥
सुत जेठो मोहन प्रीति सत्थ, तागगढ अधिकृत बुल्लि तत्थ ॥८० ॥

इम कहिय सचिव बच बेल एम, नृप कियउ नव्य बिरचन निदेस ॥
सासनसु पुत्र सुहि धरहु सीस, मतिगति अरुद्ध मन्नहु महीस ॥८१ ॥

सुनि जनक बैन प्रभु हुकम सद्य, इक्खि सु मुहूर्त नजि सब अवद्य ॥
प्रांरभिय उपबन नियम पारि, प्राकार सुधा धवलित प्रसारि ॥८२ ॥

पर समय गुजरने के साथ धीरे धीरे यह बाग सूख कर लुप्त हो गया। अब वहाँ बहुत थोड़े वृक्ष बच रहे। हाड़ा राजा अभी विचरण करते हुए यहाँ निकल आए। उन्होंने बाग की यह दशा देख कर उसे फिर से नये सिरे से बनाने की सोची। राजा ने कृष्णराम धायभाई को निर्देश दिये कि इस बाग का पुनर्निर्माण करवाया जाये! तब धायभाई प्रधान ने अपने बड़े बेटे मोहन को अधिकृत रूप से बुलवाया और ये वचन कहे कि 'राजा की इच्छा है कि इस बाग को फिर से बसाया जाए इसलिए यह काम मैं तुम्हें सौंपता हूँ, उसे राजा की इच्छा के अनुरूप बनाओ'! राजा की आज्ञा के वचन अपने पिता के मुहँ से सुन कर बिना ही कोई अच्छा मुहूर्त निकलवाये वह तुरन्त ही कार्य योजना बनाने में जुट गया। उसने इसके लिए सबसे पहले बाग के कोट की मरम्मत करवा कर उसे चूने से पुतवा कर उज्ज्वल बनवाया।

नवधातु उदुंबर के बनाइ, नलिका उखादि बहुबिध तनाइ ॥
तब गत छिति अंतर रक्खि ताम, जलजंत्र जाल लग्गिय ललाम ॥८३ ॥

चद्दरि तिम चल्लत तनत चित, परिवाह सुद्धजल भृत पवित्र ॥
सरसेतु बेल बिच अति बिसाल, किय कुंड किलोलन उष्णकाल ॥८४ ॥

तत श्रेढिन सब दिस जहँ तनाइ, बिच तास पृथुल छत्री बनाइ॥
दिस उत्तर तस तट रम्य देस, प्रासाद पंति बिरचिय बिसेस॥८५॥
चद्दरि जलतंत्र हु तहँ चलंत, छत्तिन लगि नल जल उच्छलंत॥
महलन उदीचि दिस रुचिन मेल, बिस्तारिय सब ऋतु तरु न बेल॥८६॥

नई धातु निर्मित नालियाँ बनवाईं फिर फव्वारों के नीचे की हांडियाँ बदलवाई और नई बनवाकर उन्हें फिर से फव्वारों के नीचे लगवाया। इसके बाद भूमि की ऊँच-नीच देख कर फव्वारों को नई नालिकाओं का जाल सा रच डाला ताकि तालाब की चद्दर की तरह फैली हुई नई फुहारें शुद्ध जल की निकलें और बितान की तरह विचित्र चित्र तन जाएँ। फिर तालाब की पाल पर बाग के मध्य में एक सुन्दर बड़े कुण्ड का निर्माण करवाया ताकि गर्मी के दिनों में जलक्रीड़ा करने हेतु वह तरणताल का काम दे। इस कुण्ड की चारों भुजाओं के समानान्तर सुन्दर सीढ़ियाँ बनवाई और मध्य में एक छतरी का निर्माण करवाया। इससे उत्तर दिशा में तालाब के तट पर महलों की एक श्रृखंला विशेष रूप से बनवाई और ऐसा निर्माण करवाया कि तालाब की जब चादर चले और फव्वारें चलें तब मनुष्य की छाती तक ऊँची फुहारें फूटें। फिर उसने महलों के उत्तर की ओर चुने हुए ऐसे पेड़ और लताएँ लगवाईं कि जो सभी ऋतुओं में पुष्पित-पल्लवित होते रहें।

सब कूप कुंड बापी सुधारि, चउ कोन बरन किय द्वार च्यारि॥
उत्तर तरु संभृत अखिल अैन, दल फल प्रसून सबकाल दैन॥८७॥

प्राची आसा भव द्वार पास, अभिराम राम प्रासाद आस॥
दक्खिन सन ध्रुवदिस रुचिर गह, बिच नहर बहत चद्दरि प्रवाह॥८८॥

बिच तास चलत जलजंत्र ब्रात, जिन अवधि कुंड नव नलन जात॥
अतिबेग अंबु चढि तरुन उद्ध, बरखा दिखात बिनु काल बुद्ध॥८९॥

प्रतिवाटी इच्छुन सुमन पाइ, छत्री लवंग द्राक्षादि छाइ॥
इन उपवन नैर्ऋत कोन अट्ट, बहु रमन सिंह आखेट बट्ट॥९०॥

पुरानी बनी हुई वाटिकाओं, कुण्डों और कूपों की मरम्मत करवाई और इस बाग के चारों दिशाओं में सुन्दर कलात्मक बड़े बड़े प्रवेशद्वार बनवाए। अब इस बाग के पूरे उत्तर क्षेत्र में फल फूलदार ऐसे पेड़ थे जो

सर्वकालिक पुण्य देने वाले थे। पूर्व दिशा के द्वार के पास 'राम-प्रासाद' नामक सुन्दर महल था। दक्षिण और उत्तर दिशा वाले मार्गों के साथ-साथ नहरें बनवाईं जिनका पानी विभिन्न चादरों से गुजर कर निरंतर बहता रहता था। इन नहरों के मध्य स्थान-स्थान पर फव्वारों के समूह लगे थे और जिनमें नये नलों से होता हुआ कुंड में पानी आता था। जब इन फव्वारों को पूरा खोला जाता तो पानी ऊपर की ओर उठ कर ऐसे गिरता था कि बिना ही पावस के बरसात सी मच जाती। मार्गों के दोनों ओर छतरियाँ बनाई गई थी जिन पर लौंग और अंगूरों की बेलें छाई थीं और किस्म-किस्म के फूलों की पौध लगी थी। इस उपवन के नैऋत कोण वाली दिशा में एक अट्टालिका (शिकार होदी) बनवाई जिस पर बैठ कर बाहर की ओर विचरण करने वाले सिंहों का शिकार किया जा सके।

निकटहि तस बाहिर कृत निपान, तस दु दिस चोक परिमित बितान॥
अंतहपुर मह तहँ रहि उदार, प्रभु रमत प्रचुर सिंहन सिकार॥९१॥

सर सेतु सिरहु बाटिन सुढार, बहु कुसुम नागबल्लिन बिथार॥
कुंड रु तड़ाग बिच बिबिध कंज, गुन सौरभ बिकसत कुसुम गंज॥९२॥

अति तुंग गिरिन चहुँ ओर ओघ, मुख अंत्य जाम रवि रहत मोघ॥
अति जीरन नव इम बिरचि बाग, सद्धिय प्रभु सासन रक्खि राग॥९३॥

यह भूतकाल उपबन उदंत, समुझहु हुव पहिले सचिव संत॥
अब बर्तमान क्रम बत्त आहि, कविगृह पवित्र करि इम उमाहि॥९४॥

उपवन की दीवार के पास बाहर की तरफ प्रपाओं (खेली, निपान) का निर्माण करवाया गया था जिसके दोनों और बड़े-बड़े चौक थे। इस उपवन में अपनी रानियों सहित निवास करते हुए राजा रामसिंह यहाँ कई शेरों को शिकार करता। तालाब की पाल पर नागरबेल की एक सुन्दर वाटिका का भी निर्माण करवाया गया। तालाब और कुंड के मध्य वाले क्षेत्र में भरे पानी पर विविध प्रकार के कमल खिलते और जिनके समूहों की महक से हवा भी सुगन्धित होकर आती। चारों ओर से ऊँचे पर्वतों से घिरे होने के कारण इस उपवन में दिन में प्रथम दो प्रहरों और अन्तिम दो पहरों में धूप नहीं आती थीं अर्थात सूर्य भी नजर नहीं आता था। राजा की आज्ञा को ध्यान में रख कर इस

तरह जीर्ण-शीर्ण बाग को एकदम नया बना दिया गया। पर यह उपवन के जीर्णोद्धार का वृत्तान्त गये समय का है जब वह सज्जन प्रधान कृष्णराम जीवित था। हे राजा रामसिंह! अब मैं (ग्रंथकार) वापस वर्तमान के वृत्तान्त पर आता हूँ। अपने कवि के घर को पवित्र कर उत्साह से भरा राजा वापस रवाना हुआ।

नृप तहँ बिबाह गौरव मनाइ, आये इहिँ उपबन प्रमद पाइ॥
इत जाइ व्याहि सूचित अनेह, बहु त्याग बंटि गय सुकवि गेह॥९५॥

इत सक अहि गज धृति सरद अंत, मनसिज तिथि बाहुल सित मिलंत॥
भूपति सुत अर्जुन मध्य भ्रात, जो सिसु स्वरूपलतिका प्रजात॥९६॥

न सक्यो परि नामहु तत्र तास, बिधि बाम बिचहि बिरचिय बिनास॥
सक तिहिँ तदनंतर माघ श्राम, ध्रुव मिलन थप्पि अजमेर धाम॥९७॥

अंग्रेजन अनुसरि मंत्र एस, एकत्र किन्न भूपति असेस॥
तहँ उदयनैर जयनैर ताम, सह जोधद्रंग बुन्दिय सनाम॥९८॥

अपने कवि के घर विवाह का गौरव बढ़ा कर राजा वहाँ से सीधा इस फूलसागर उपवन में आया। इधर ग्रंथकार विवाह करने कोटा गया जहाँ खूब सारा त्याग बाँट कर वापस लौटा। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठासी की शरदऋतु की समाप्ति पर कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की कामदेव तिथि अर्थात त्रयोदशी के दिन हाड़ा राजा रामसिंह का पुत्र अर्जुनसिंह जो उसकी पासवान स्वरूपलता के गर्भ से उत्पन्न था, वह चल बसा। अभी तक उसका नामकरण संस्कार भी नहीं हो पाया था कि विधि के विधान से वह विनाश को प्राप्त हुआ। इसी वर्ष अर्थात् अठासी के माघ मास में अजमेर में एक सम्मिलन समारोह आयोजित करने हेतु अंग्रेजों ने मंत्रणा की और उपरोक्त तिथि को राजपूताना के सभी राजाओं को अजमेर बुलाया। इनमें जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बून्दी, कोटा, किशनगढ, आदि कई राजाओं को आमंत्रित किया।

कोटा रु कृष्णगढ प्रमुख केक, बुल्लिय नरेस प्रभुपन विवेक॥
महिपति जवान सीसोद मोर, कूरम जयसिंह सु बय किसोर॥९९॥

कुल हड्डुन दिनकर उक्त काल, प्रभु राम पत्त अप्पहु कृपाल॥
पुनि पत्त राम कोटा पुरेस, इह सचिव झल्ल आयत्त एस॥१००॥

कल्ल्यान कृष्णगढ बिभु कहात, बिभु करि सुत कढ्ढिय जु भट ब्रात ॥
इत्यादि अधिप सब बल सजाइ, आहूत निगम अजमेर आइ ॥१०१॥
पै इक्क जोधपुर नृप प्रमत्त, पति अलम नग्न नहि मान पत्त ॥
मुरख्यो गिन्यौं सु जग मद मगेर, जिहिँ फल्न पुनि पैहैं कुविधि जोर ॥१०२॥

महाराणा जवानसिंह सिसोदिया के साथ कछवाहा राजा जो कि अभी किशोरावस्था में था वहाँ आया। इसी प्रकार हाड़ा कुल का सूर्य राजा रामसिंह भी अजमेर आया। इस तरह कोटा का राजा रामसिंह भी गया जो अपने सचिव झाला माधवसिंह के पूर्णतया वश में था। इस समय किशनगढ का राजा जो कल्याणसिंह था वह अपने पुत्र को राजपाट सौंप कर अपने सामन्तों के साथ अजमेर रवाना हुआ। उपरोक्त सभी राजा अपनी सज्जित सेनाओं के साथ अंग्रेजों के बुलावे पर अजमेर आए पर एक जोधपुर का राठौड़ राजा [illegible]सिंह अपने आलस्य के कारण कोई बहाना बना कर नहीं आया। उसके इस कृत्य को अंग्रेजों ने अपने से विमुखता माना और आगे भविष्य में वे इसकी सजा भी राजा को देंगे। बनाये गए अठासी के संवत् के माघ मास के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि तदनुसार गुरुवार को रात्रि की चौदह नाड़ी व्यतीत होने पर आने वाले शुभ मुहूर्त को देख कर बून्दी का हाड़ा राजा अपनी सेना के साथ रवाना हुआ।

सूचित सक मेचक माघ श्राम, तिथि नवमि आंगिरस वार ताम ॥
तहँ नाड़ी चउदह निस बिताइ, पुनि सुभमुहूर्त नग अग्ग पाइ ॥१०३॥
वह लहि प्रभु प्रस्थित बल सुहात, पगि प्रथम पगागँ सिविर पात ॥
दल पात देवली किय द्वितीय, तीजो सु केकरी अस्थिनीय ॥१०४॥
सरबाट रामपुर बीर सीम, किय क्रम मुकाम भट अरिन भीम ॥
सप्तम मुकाम कछु देर संग, दल पहुँचि सक्यो नहि गम्य द्रंग ॥१०५॥
परिमग्ग बिपिन बिच कटक पात, भुगि सु निस ममम हुव प्रभात ॥
अष्टम दिन दु पहर लंघि अप्प, आरुहि इभ दुजनन दलन दप्प ॥१०६॥
दुंदुभि पटहादिक बिरच बज्जि सब भट वयस्य कवि सचिव सज्जि ॥
सप्पत लगि डोगिन गमन मग्ग, बल हंकिय हद ढिग सिथिल बग्ग ॥१०७॥

उसने अपना पहला पड़ाव पगारां नामक गाँव में डाला वहाँ दूसरा

मुकाम देवली और तीसरा केकड़ी में किया। इससे आगे क्रमशः सरवाड़, रामपुर और बीर की सीमा पर पड़ाव डालता हुआ हाड़ा राजा अपने सातवें और अंतिम पड़ाव पर भी अपनी मंजिल को प्राप्त न हो सका क्योंकि यहाँ का रास्ता खराब था और उसमें बहुत सारे काँटे थे इसलिए सातवीं रात्रि को भी राजा के चलने में निकल गई। आठवें दिन दुपहर के बाद वह नगारे बजवाता हुआ हाड़ा राजा रामसिंह अपने उमरावों, सचिवों, समवयस्क बांधवों और कवियों सहित पहुँचा। इस समय राजा की सेना डोरियों से जाने योग्य मार्ग को नापती हुई बढ़ रही थी और इसलिए उसकी गति शिथिल थी।

उततैं अंग्रेजहु पर्व पाइ, अधिकारी पंचक समुख आइ॥
मातंगारूढन हुव मिलाप, इम मुदित पटालय पत्त आप॥१०८॥

गोरेहु गये लहि सिक्ख गेह, अष्टम मुकाम अजमेर एह॥
तहँ पुर सन उत्तर ताल ताम, अभिधान अन्नसागर सनाम॥१०९॥

उत्तर प्रपात तस रचिय आत, जैपुर जन सर पृतना प्रताप॥
तिम जानहु दक्खिन तीर ताम, परि बल प्रभु अप्पन सिविर आस॥११०॥

दक्खिन दिस पुर सन कछुक दूर, तहँ रान तंत्र परि तंत्र पूर॥
बलि रान के रु पुर के बिचाल, जोरिय कोटा बल सिविरजाल॥१११॥

राजा के नगर में पहुँचने की खबर पा कर ठीक समय पर पाँच अंग्रेज अगवानी करने हेतु चल कर सामने आए। हाथियों पर सवार दोनों पक्षों का मिलन हुआ और इसके बाद मुदित राजा अपने शिविर के स्थान की ओर बढ़ा। अंग्रेज अधिकारी भी राजा से विदाज्ञा ले कर अपने स्थान को गए और राजा अजमेर में अपना आठवाँ पड़ाव डालने के लिए चला। नगर के उत्तर की ओर एक आनासागर नामक तालाब है इसके उत्तरी भाग में तो पहले से ही जयपुर की सेना का शिविर था। तब राजा ने इस तालाब के दक्षिणी तट पर अपना शिविर स्थापित करवाया और नगर से दक्षिण दिशा में थोड़ा आगे जा कर उदयपुर के महाराणा की सेना का पड़ाव था। वहीं महाराणा के शिविर और नगर के मध्य क्षेत्र में कोटा की सेना का शिविर लगा था।

इत्यादि अधिप उत्तरि असेस, पटकुटन रहे परिसर प्रदेस॥
लगि ललित कलित बंसावलंब, पटबरन सरन आयत प्रलंब॥११२॥

शूलन प्रति उच्छ्रित थूल थंभ, सिर कनक कलस खचि मनि सदंभ ॥
बनि अग्र अजिर नाना बितान, सब ठां बनि स्रस्तर बिबिध बान ॥११३॥

लगि बेणु इसीकन चिक ललाम, चित्रन बिचित्र धृत धाम धाम ॥
सिचय रु जवफल मय कृत सुढार, परदा अपटी दिपि द्वार द्वार ॥११४॥

सब कृत्य सदन बसु दिस बिभाग, पल्ल्यंक पीठ रुचि रम्य राग ॥
गन तलिन न मलिन न निचुल गुम, ऊधस्य फेन छवि फबि अछुम ॥११५॥

इसी प्रकार शेष राजाओं ने भी अजमेर नगर के विभिन्न भागों में अपने शिविर लगाये और ठहरे। नगर के समीप सुन्दर लंबे और मोटे बाँसों के थंभे गाड़ कर सुन्दर रंगों की रंगरंगीली कनातों का परकोटा बना कर शिविर बनाए गए। जिनकी बल्लियों पर लगे कीलों पर मनोहारी स्वर्ण कलश जो रत्नजटित थे लगवाए गए। इनके आगे चौकों के लिए जमीन छोड़ कर सुन्दर सामियाने [illegible] गए। इन शिविरों में अनेक प्रकार के शयन कक्षों का निर्माण किया गया। जिनके दरवाजों पर बारीक बाँस की खपचियों से बनी हुई चिकें लगाई गई। जिन पर सुन्दर सुन्दर चित्र उकेरे हुए थे। वस्त्रों और बाँसों से निर्मित इन शिविरों में श्रेष्ठ पर्दे लगाये गये और सुन्दर द्वारों के पास रंगबिरंगी कनातें खड़ी की गई। इन शिविरों में अलग अलग निवासों हेतु विभाग बनाये गये। जिनमें कहीं पलंग और कहीं बैठने के आसनों की व्यवस्थाएँ की गई। फर्श पर मलिनतारहित सफेद रंग की बिछायत हुई जो सेड़ाऊ (ताजा निकाले गए) दूध के झागों के समान अस्पर्श की हुई शोभा पा रही थी।

प्रति थूल चूल सध्वज पताकि, लहरात बात बेणुन लताकि ॥
क्रम करि प्रभु बिलसन अप्प कज्ज, सिचयालय ऐसे विहित सज्ज ॥११६॥

प्राकार कील मस्कर प्रबिद्ध, संपुट त्रिक जवनिन बलज सिद्ध ॥
रहि तत्थ रुचिर बिलसत बिलास, पुनि सज्जिय जावन लाठ पास ॥११७॥

चलि अग्ग चक्क चरखन चठट्ठि, तोपन गन लोपन गढन तट्ठि ॥
थहरात हेतु झंडन थरक्कि, फहरात केतु दंडन फरक्कि ॥११८॥

बहि कतिन जुन हय कनिन बैल, गुन रत्त रत्त द्रव पत्त गैल ॥
तिन्ह पिट्ठि तरल नागन निसान, रुचि पीवल रोचन दिपि दिसान ॥११९॥

प्रत्येक डेरे के हरएक स्थूल चोबों (थंभों) पर ध्वजाएँ लगाई गई, वहीं

शेष प्रत्येक बल्ली पर पताकाएँ फहराई गईं। ये पताकाएँ फहरती हुई ऐसी लगती मानों कोई बाँसपुंज पवन में झकोले खा रहा हो। राजा के स्वयं के निवास हेतु उचित डेरे सजे जो मजबूत बाँसों पर लगे कीलों से तने थे और उनके तीन तरफ कनातों के घेरे से कोट और प्रवेश द्वार बनाए गए थे। यहाँ ठहर कर राजा ने आराम किया, फिर समय पर लार्ड (गवर्नर जनरल) से मिलने जाने हेतु सज्जित होने की कार्यवाही आरंभ हुई। सज्जित सेना जब समारोह स्थल पर जाने को निकली तो सबसे आगे पंक्ति में चरखियों पर लदी हुई तोपों के चलने की चरमराहट हुई। तोपें कि जो गढों का नाश करने को कुठारवत होती और जिनके पीछे निशानो और केतुदंडों पर ध्वज फहरते थे की पंक्तियाँ चलीं। घोडों से चलने वाली और बैलों से खींची जाने वाली अलग-अलग आकार प्रकार की तोपें जो लाल रंग बहा कर रास्तों को रक्तिम बना देने में समर्थ थीं। इनके बाद पीठ पर बंधे बड़े बड़े ध्वजों वाले हाथियों की पंक्तियाँ थी। ये चपल हाथी अपने श्रृंगार की पीले रंग की छवि के साथ शोभा देने वाले थे।

सज्जित कति होदन निबहि सिट्ठि, परि मेघाडंबर कतिन पिट्ठि ॥
बहि पिट्ठि पलट्टनि बिहित व्यूह, जहँ सद्धत प्रहरन पत्ति जूह ॥१२०॥

इन्ह केट आयुधिक पत्ति ओर, जिन्ह केट सादिगन नियति जोर ॥
पुनिकेट चोक रज्जुनप्रमेय, सादिन प्रवेक गुन पिट्ठिश्रेय ॥१२१॥

तिन्ह केट प्रमित पुनि चारु चोक, अति मुख्य पत्ति तिन्ह मध्य ओक ॥
रहि पास सामि तहँ अंतरंग, तहँ पदग मुख्य तिम स्वामि संग ॥१२२॥

आरूढ तुरग तिन बिच अधीस, महदंड खचित मनि छत्र सीस ॥
पांडररुचि चामर ढुरि दुपास, ससि पर कि दुघन सिन रचत रास ॥१२३॥

इनमें से कई आज्ञा मानने वाले शिष्ट हाथियों की पीठ पर बड़े बड़े होदे लगे थे तो कई हाथियों की पीठ पर मेघांडबर शोभा दे रहे थे। इन हाथियों के पीछे पैदल सेना के व्यूह चले जो शस्त्रों से सज्जित थे। इनके पीछे आयुधों की पंक्तियाँ थी और उनके पीछे घुड़सवार शोभा दे रहे थे। इनके बाद डोरियों से नाप कर छोड़े हुए चौक थे अर्थात् उस चौकोर क्षेत्र में कोई नहीं चल रहा था सिवाय इसके कि उस चौक जितनी जगह के मध्य में स्वयं राजा की सवारी थी। राजा के आसपास उसके अंतरंग व्यक्ति अर्थात् सुरक्षा प्रहरियों

का झुण्ड चल रहा था। अपने सुरक्षा प्रहरियों के मध्य घोड़े पर सवार राजा था जिसके सिर पर मणियों से जड़े हुए दण्ड वाला छत्र तना था। दो श्वेत रंग के चँवर डुलाये जा रहे थे मानों चन्द्रमा पर दो श्वेत रंग के बादल नृत्यरत हों।

मोरछल पुरट मनि दंड मेल, खिल ग्रह जनु मनि मन करत खेल॥
नरनाह बाह हय मनि नचात, प्रेक्षकन पंथ मेदुर मचात॥१२४॥

संक्रमिय मज्ज बल दभ्र वीर, उरझात उस्त्रि सेलन समीर॥
नागन क्रम भ्रमि जिम उदधि नाव, भुव भजत कंप तजि अचल भाव॥१२५॥

फिरि लेत तरारन तुरग फाल, भिरि देन दरारन उरग भाल॥
सिर अगन डिगन लगि लरज संग, चिर्भटकि चरन चिपि भजत भंग॥१२६॥

दुव दुव भट कुंतन करत दाव, पटु घात देन टारन प्रभाव॥
बहु खगन खगन गन गगन वेधि, मम लगन देंन तुपकन निसेधि॥१२७॥

पास ही रत्नों से जड़े स्वर्णनिर्मित हत्थों वाले मोरछल लिये दो सेवक चल रहे थे। दण्ड, छत्र, चँवर और मोरछल का मेल ऐसा लग रहा था मानों छह ग्रह शनि से खेल रहे हों। अपने सभी घोड़ों के मणिरूप घोड़े को राजा रामसिंह नचाता हुआ ऐसे चला कि मार्ग के दोनों ओर जुटे दर्शक मुग्ध भाव से भाव विभोर हो उठे और देखते ही रह गए। इस समय राजा अपनी सेना के अल्प भाग के साथ था पर उसका दल अपने भालों की अणियों (नोकों) में पवन को उलझाता हुआ अलग ही शोभा देता था। उसके हाथी अपने पथ-संचलन से पृथ्वी के अचल भाव को छुड़ा कर इस तरह डुलायमान बनाने लगे जैसे कोई छोटी सी नाव समुद्र की लहरों के थपेड़ों से ऊपर नीचे होती डोल रही हो। पंक्तियों में चलते चपल घोड़े ऐसी छलांग भरते चल रहे थे मानों वे अपने मस्तक की चोट से आकाश के भाल में दरार डाल देंगे। दो-दो के जोड़े में चलते पैदल सैनिक अपने भालों से घात देने और उन्हें टालने का प्रदर्शन करते बढ़ रहे थे। वहीं कुछ धनुर्धर अपने तीरों से आकाशचारी पक्षियों को बेधने का प्रदर्शन करते बढ़ रहे थे। पक्षी जो बन्दूक से छोड़े गए छर्रों को भी अपने लगने नहीं देते।

संगिन कति भंगिन करत सिद्ध, मद्धत कति तुपकन मन समिद्ध
मंडत कति दुद्धर असिन मग्ग, अभ्यासन हेतिन इन उदग्ग॥१२८॥

प्रस्थित इम संभर धरनिपाल, बिधि क्रम पथ पहुँचत हद बिचाल ॥
उततैंहु लाठ प्रभु समुख आइ, लैगो सु निलय बल जिहिं बिसाइ ॥१२९॥

निज सबय सुभट कति सूचि नाम, धरनीस संग लिय गम्य धाम ॥
क्रम करि तहँ दुर्ज्जनसल्ल कर्ण, पर अहिन बिजय गिरिधर सुपर्ण ॥१३०॥

बलि ईश्वर मंगल रत्न बीर, धात्रेयज अंतिम इह दु धीर ॥
थिति सत्त स्वभृत्यन बलज थप्पि, इन्ह सत्तन भृत्यन कर्म अप्पि ॥१३१॥

कई बरछी धारी सैनिक चलते हुए अपनी बरछियों को इस भंगिमा और गति से चला रहे थे कि दर्शकों को लहरों का भ्रम होता था। इस तरह शस्त्राभ्यास का प्रदर्शन करते हुए उदग्र वीर योद्धाओं की शोभायात्रा चली। ऐसी सेना के मध्य स्थान में सांभर का राजा अर्थात् चहुवान राजा रामसिंह मर्यादित चाल से बढ़ा। समारोह स्थल के पास जब बून्दी का दल पहुँचा तो सामने से चल कर (लार्ड) गवर्नर जनरल साहब ने अगवानी की। वह लार्ड फिर सम्मान के साथ राजा को अपने घर अर्थात् समारोह स्थल तक साथ चलते हुए ले कर गया। इस समय पूर्व में भेजी गई सूची के अनुसार राजा के समवयवयस्क संगी राजा के गम्य स्थल तक साथ गए। इनमें क्रमशः दुर्जनसाल, कर्णसिंह, परारेजन अर्थात् शत्रु रूपी सर्प पर झपटने वाला गरुड़ रूप विजयसिंह और गिरधरसिंह थे। इनके अतिरिक्त ईश्वर और दो धायभाई और मंगललाल एवं रत्नलाल साथ थे। इस तरह सात सेवकों के घेरे में घिरा हुआ हाड़ा राजा वहाँ पहुँचा। राजा ने सातों को अपना कार्य सौंप रखा था।

दोउन कर इक इक चमर दत्त, पुनि दोउन इक इक ब्याहै पत्त ॥
ग्विल तीनन व्यजन रु चर्म खग्ग, इन्ह थप्पि अनुग इम पिट्ठि अग्ग ॥१३२॥

छवि सारद कादंबिनि छटा कि, घनगज कुलीन कुंभिन घटा कि ॥
जनु प्रालेयाचल सिखर जाल, सिवसैल सानु बिसद कि बिसाल ॥१३३॥

अद्भुत पटआलय ओर ओर, ठनि बित्त रहे बनि ठोर ठोर ॥
निज नियत लाठ पटकुट निवास, पांडुर अनेक इम आसपास ॥१३४॥

सचिवाग्रग मोहन सह सुसील, इन तंत खान जसमयत वकील
ए दुव गढ पुव्वहि लाठ ऐन, लाये तिहिं सम्मुह प्रभुहिं लैन ॥१३५॥

जिनमें से दो के हाथ में एक एक चँवर दिया हुआ था और दो सेवक मोरछलें उठाये थे, शेष तीनों में से एक ने व्यजन (पंखा), एक ने ढाल और एक ने तलवार उठा रखी थी। ये सातों सेवक अगल-बगल और राजा के आगे पीछे चल रहे थे। इस समय समारोह स्थल की छवि ऐसी थी मानों शरद ऋतु की मेघ घटाओं के अनुरूप कुलीन हाथियों के घेरे में श्वेत रंग का ऐरावत हो या मानों हिमालय पर्वत के बड़े-बड़े शिखरों के मध्य कैलाश अपने शिखरों सहित हो। समारोह स्थल पर चारों ओर वस्त्रों से बने घर (तंबू शामियाने) ही घर शोभा दे रहे थे और ये सारे पटालय लार्ड साहब के तंबू के चारों ओर बने हुए थे अर्थात् इन श्वेत रंग के शिविरों के मध्य गवर्नर जनरल का पटालय शोभा दे रहा था। इस समय हाड़ा राजा का सुशील स्वभाव वाला, सचिवों में मुख्य मोहन धायभाई और राज का वकील जमीयतखान ये दोनों राजा के पहुँचने से पूर्व ही लार्ड साहब के पास गए हुए थे। ये दोनों ही अपने राजा की अगवानी हेतु गवर्नर जनरल को सम्मुख ले कर आए थे।

सह प्रीति रीति नृप नीति संग, अक्षय सब नय सय रक्खि अंग ॥
इन दुहुँन लाठ के संग आइ, विभु जुक्त उक्त पटगृह बिसाइ ॥१३६॥
तत चारु दारुमय पीठ तत्थ, उपविष्ट अधिप सह मुख्य सत्थ ॥
हितजुत विधेय व्यवहार होइ, प्रतिहित गुन गुन सुभ माल्य पोइ ॥१३७॥
दलनाग अतर आदत्त दत्त, रस रुचित रक्खि उदि उचित वत्त ॥
नृप आतत सिक्खहिँ करि निकेत, पहुँचान आय लाठहु उपेत ॥१३८॥
सिबिर सुख खंर हय स्वास सर्व, आरुहि तहँ नृप हयमृग सु अर्ब ॥
लहि लाठ हार्द फेरिय इलेस, बलि निहिँ तजि आरुहि हय बिसेस ॥१३९॥

अपने राजा के सम्मान की नीतिगत रीति का पालन करवाने हेतु वे दोनों लार्ड साहब के संग प्रीतिपूर्वक अपने अंगों को वश में रखते हुए विनम्रभाव से चल रहे थे। इन दोनों ने लार्ड साहब के साथ आ कर अपने राजा को वैभवशाली पटालय में प्रवेश करवाया। वहाँ एक नयनाभिराम काष्ठमय सिंहासन पर राजा आसीन हुआ और उसके साथ वाले अपने अनुरूप आसन पर बैठे। राजा के स्वागत हेतु धागे में पिरोई हुई श्वेत रंग के पुष्पों की माला अर्पित हुई फिर पान का बीडा और इत्र आदि पेश किये गये

और प्रत्युत्तर में यही सब कुछ राजा के पक्ष की ओर से भी किया गया। नृप रामसिंह ने तुरन्त ही लार्ड साहब से अपने शिविर में जाने हेतु विदाज्ञा चाही। इस पर लार्ड उन्हें पहुँचाने हेतु बाहर तक चल कर आया। राजा के संग वालों के अपने--अपने घोड़े इस स्थल के मुख्य द्वार के पास खड़े थे। यहाँ से हाड़ा राजा अपने मृग नामक घोड़े पर सवार हुआ और लार्ड साहब का सोहार्द पा कर घोड़े को आवर्त (कावा) में चक्कर कटवाते हुए चलाया। फिर राजा ने इस घोड़े को छोड़ कर दूसरे विशेष घोड़े की सवारी की।

..................................धाम, नर्तिन सु मदनमतवार नाम॥
तजि ताहि बहुरि आरुहि तृतीय, हय मनि समाख्य हय गुन गरीय॥१४०॥
गोपालसिंह निज अनुज गेय, जुरि उभय भल्ल फेरिय अजेय॥
हय फेरि रहिय थित जब महीप, मनमुदित लाठ गत हय समीप॥१४१॥
तस थप्पलि निजकर खंध नाहि, आक्खिय यह घोरन लाठ आहि॥
थित रहिय लाठ आदिक स्वथान, हंकिय निज डेरन चाहुवान॥१४२॥
सित माघ चुत्थि तिथि वार मृग, प्रभु इम आये मिलि प्रमद पूर॥
अह त्रिक बिताइ अष्टमि अनेह, आयो प्रभु पटगृह लाठ एह॥१४३॥

राजा ने नये घोड़े पर सवार हो उसे नचाया। इस घोड़े का नाम मदन मतवाला था। थोड़ी देर बाद इस घोड़े को भी छोड़ कर राजा तीसरे अपने घोड़ों में मणिरूप (मणि) नामक घोड़े पर सवार हुआ जो अपने गुणों में गंभीर था। इस बार हाड़ा राजा ने अपने छोटे भाई गोपालसिंह को घोड़े सहित साथ लिया और दोनों ने कई करतब दिखलाते हुए घोड़े फिराये। इस बार जब हाड़ा राजा घोड़ा चलाते हुए ठहरा तो मन में प्रसन्न होता हुआ लार्ड (साहब) चल कर राजा के घोड़े के समीप गया। वहाँ पहुँच कर लार्ड ने अपने हाथों से हाड़ा राजा के घोड़े का कंधा थपथपाया और कहा कि अब से यह घोड़ा मेरा है। इसके बाद गवर्नर जनरल (लार्ड) वहीं रहा जब कि हाड़ा राजा अपने डेरे पर जाने को रवाना हुआ। इस तरह माघ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि तदनुसार शनिवार के दिन राजा रामसिंह अंग्रेज गवर्नर जनरल से सगौरव मिल कर आया। इसके तीन दिन व्यतीत हो जाने के बाद अष्टमी तिथि के दिन लार्ड (साहब) हाड़ा राजा के शिविर पर मुलाकात के लिए आया।

अधिपहु सीमा लग समुह आइ, लैगो पटआलय भव्य लसाइ॥
सुचि मोहन जमियतखान सत्थ, मंलपि अनेह कछु मति समत्थ॥१४४॥
थित रहिय सभा तिहिँ सिबिर थान, इक मंत्र पटालय पिट्ठि आन॥
तिहिँ प्रविसय नृप मह लाठ तत्थ, साहब सिकत्तर अजंट सत्थ॥१४५॥
सचिव रु वकील दुव चलिय संग, इक मोहन जमियत खाँ अभंग॥
थित खुरसिन हुव सब मंत्र थान, जंपिय नरेस लाठहिँ सुजान॥१४६॥
केसबपट्टनि पुर पूर्बकाल, हमरो हुतो सु बिख्यात हाल॥
दक्खिन अधीस वह किय दलेल, मंडिय मरहट्ठन हिंतु मेल॥१४७॥

हाड़ा राजा भी नियमानुसार निर्धारित सीमा तक चल कर लार्ड की अगवानी करने सम्मुख आया और उसे साथ ले कर अपने भव्य पटालय में आया। यहाँ बून्दी के प्रधान मोहन धायभाई और राज के वकील जमीयतखान ने थोड़ी देर तक लार्ड से बातचीत की। इसके बाद सभी लोग वहीं राज सभा में बैठे रहे जबकि पास ही बने मंत्रणा कक्ष के तंबू में लार्ड के साथ राजा ने प्रवेश लिया। इस समय वहाँ लार्ड का एजेंट सेक्रेट्री (संभवत पोलेटिकल एजेंट) भी उपस्थित था और बून्दी की ओर से सचिव और वकील अर्थात् मोहन धायभाई और जमीयतखान। सभी वहाँ लगी कुर्सियों पर बैठे तभी नरेश ने सुजान लार्ड से कहा कि केशवराय पाटण पूर्व काल में हमारा था इसे आप भी जानते है पर दलेलसिंह ने दक्षिण के मराठों से मेलजोल बढाने के लिए इस क्षेत्र को मराठों को दे दिया।

संबत श्रुति मुनि गिरि इक्क मार, किन्नौं जु अप्प हमतैं करार॥
दिन्नौंहि लख्यो ताबिच सु द्रंग, सो देहु हमहिं अब लेख संग॥१४८॥
कोटरिय इद्रंगढ मुख कुचाल, जे परि सब जालम कपट जाल॥
प्रतिवार्षिक सूबा द्रम्म पूर, कोटा सम्मलि द्वै देत कूर॥१४९॥
अब करहु सबन हमरे अधीन, क्यौं अप्प राज्य अनय कीन॥
पुनि रान हिंतु हम चहत प्रीति, रक्खैं वे हम सन द्वेष रीति॥१५०॥
कछु द्वेस हेतु हुव पूर्वकाल, हम तिहिँ न गिनत वै गिनत हाल॥
किन्नौं ब चहत सम्मिलन काम, मम अप्प मध्य रहि करहु साम॥१५१॥

विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ चोहत्तर में आपने उसे हमें देने का वादा किया था। हमने भी इसे दिया हुआ मान लिया पर अब आप उसे हमें लिख कर पट्टा रूप में प्रदान करें। इन्द्रगढ आदि की कोटड़ियों वाले छुटभाई खोटी चाल चलते हुए जालिमसिंह झाला के जाल कपट में आकर अब क्षेत्र की प्रतिवर्ष की आमदनी कोटा के राजा को देते हैं। वे कायर उस क्षेत्र को कोटा के राजा के अधीन मानते हैं। अब आप इस क्षेत्र को फिर से हमारे अधीन बनाइये। आपके राज में ऐसी अनीति नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि हम (बून्दी वाले) तो उदयपुर महाराणा के साथ प्रीति रखना चाहते हैं जब कि वे हमसे द्वेष पालते हैं। पूर्व में अवश्य हमारे मध्य द्वेष उपस्थित हुआ था। हम तो उसे भूल गए पर महाराणा अभी भी अपने मन में उसे धारे हुए हैं। तीसरी बात कि हम अब उनसे मेल मिलाप चाहते हैं इसके लिए आप मध्यस्तता करते हुए हमारी संधि करवाएँ।

तहँ बिंटक सुनि नृप बत्त तीन, क्रमतैं प्रत्युत्तर लाठ कीन॥
किय पूर्व ग्वालियर हम करार, दिय पट्टनि ताबिच लेखद्वार॥१५२॥

बदलै सु लेख जब तबहि बत्त, तुमरो वकील यह कहहु तत्त॥
कोटरिय तिमहि कोटा करार, बिच पुब्ब दई हम लेख बार॥१५३॥

सुहु जबहि लेख बदलैं सु सील, कारित चिंतन सब व्है वकील॥
तब होत होन संभव प्रतीति, नहि बिचहि बचन बदलैं सु नीति॥१५४॥

अरु रान मिलन जो चहत आप, मन्नत सु हमहु उचितहि मिलाप॥
पै पुच्छि गन सम्मतहिँ पाइ, जो हार्द सु हम दैहैं जनाइ॥१५५॥

इस तरह हाड़ा राजा की तीनों बातें सुन कर लार्ड ने क्रमशः उनका खुलासा करते हुए प्रत्युत्तर दिया कि हमने पूर्व में ग्वालियर राज के साथ करार किया था उस समय पाटण उन्हें लिखित में दे दिया था। अब जब भी संशोधन का वक्त आए तब आपके वकील से कहिये कि वह हमें याद दिलाये। इसी तरह इन्द्रगढ़ की कोटड़ियों और कोटा के मध्य भी करार हो गया है और कोटा को भी हमने लिखित में दिया है। अब जब भी हमारे उस आलेख के बदलने का समय आए तब आप हमें याद दिलाने वाले अपने वकील से कहें कि वह हमें याद दिलाये। यदि उसे संभव करने की संभावना

होगी तो हम आपको वचन देते हैं कि हम उसमे विचलित नहीं होंगे। अब रहा सवाल इस बात का कि आप उदयपुर के महाराणा के साथ प्रीति के संबंध रखना चाहते हैं। इस बारे में हमारी राय है कि यह अच्छा है पर इस बारे में हम कुछ भी कहने में की स्थिति में तब होंगे जब हम उदयपुर के महाराणा से बात कर लें। हम उनसे बात कर आपको सूचित करेंगे।

तदनंतर स्वागत पर्व तत्त, द्विप इक अखर्ब दुव अर्ब दत्त॥
मंजुल महग्घ सिरुपाव श्रेय, महि बेद संख्य तखती प्रमेय॥१५६॥

दृढ इक्क जटित मनि मुट्ठिदार, कमनीय प्रतन बुन्दिय कटार॥
अभिनव दुस्सह बल तुपक एक, ए उक्त उभय प्रहरन प्रवेक॥१५७॥

इत्यादि अप्पि लाठहिँ इलेस, दिय सिक्ख आइ सीमा प्रदेस॥
दूजे अह नवमी भाग्य दिष्ट, अप्पहु पहु बिरचन सिक्ख इष्ट॥१५८॥

पुनि लाठ पटालय प्रगुन पत्त, बिधि आनि ठानि हित तानि बत्त॥
तीन हि मिलाप भट सत्त तेंहि, हितपुब्ब अनुगपन रत रहेहि॥१५९॥

इस वार्तालाप के बाद स्वागत करने की परम्परा में बून्दी की ओर से एक हाथी और दो घोड़े भेंट किये गय और सुन्दर महँगे इकतालीस शिरोपाव दिये गये। इनके अलावा रत्नजटित मुट्ठी वाली एक कटार प्रदान की गई जो बून्दी में निर्मित थी। इनके साथ ही एक नई तकनीक वाली बन्दूक दी गई। इस तरह दो शस्त्र बून्दी की ओर से भेंट किये गये। इसके बाद हाड़ा राजा गवर्नर जनरल को पहुँचाने के लिए निर्धारित स्थान तक गया। इसके अगले दिन अर्थात् नवमी तिथि के दिन बून्दी के राजा ने लार्ड से अपने राज्य में जाने की विदाज्ञा मांगी। इसके बाद अपने दोनों मातहतों सहित बून्दो के राजा ने लार्ड साहब से मुलाकात की और भरोसा दिलाया कि हम आपने अनुचर बने रहेंगे। बून्दी हितपूर्वक आपका अनुसरण करेगी।

इक दंती इक हय जव अमान, सिरुपाव इक्क सुचि बर बितान॥
तखती मिति निधि गुन संख्य तास, इत्यादि आदि प्रभु भेट आस॥१६०॥

दीरघ दुनालि हुक नालिदार. बिनु अनल उपल फल बल बिथार॥
इम तुपक बिधा अद्भुत अनेक, कटितंत्र तमैंचा जंत्र केक॥१६१॥

पुनि दूरबीन घटिका पुरोग, बिस्मय करि बस्तुन जोरि जोग॥
उपदा इत्यादिक पुनि अनेक, पुनि भेट लाठ किय गुन प्रवेक॥१६२॥

करि सिक्ख आइ प्रभु पटनिकेत, चिंतिय पुनि पुष्कर गमन चेत ॥
इत उदयनैर जयनैर ईस, हुव मिलन उत्क जिम कुल हदीस ॥१६३ ॥

इस समय लार्ड की ओर से एक हाथी,एक चपलगति वाला अश्व और उनचालीस श्रेष्ठ शिरोपाव हाड़ा राजा को भेंट दिये गये। एक लंबी नाल वाली दुनाली और एक एकनाली बंदूक प्रदान की गई। बिना ही बारूद के दूर तक पत्थर फेंकने वाला एक यंत्र और बन्दूक जैसे शस्त्रों की श्रेणी में आने वाले अद्भुत तमंचे एवं पिस्तोलें प्रदान की गईं। लार्ड द्वारा दी जाने वाली भेंट में एक दूरबीन और घड़ियों का समूह भी था। सभी विस्मयकारी चीजें थी। गुणग्राही लार्ड ने अपने देश इंगलेंड में निर्मित ऐसे छह उपहार दे कर राजा का सम्मान बढाया। विदाज्ञा ले कर हाड़ा राजा फिर अपने डेरे पर आया। यहाँ आ कर राजा ने पुष्कर जाने का विचार किया। इधर उदयपुर के महाराणा, जयपुर के कछवाहा राजा से मिलने को उत्कंठित हुए।

पै कुम्म झुंत सिंघी प्रणेय, गुन सक्ति रहित जु न प्रभु गणेय ॥
इत तदपि झुंत सम्मति अधीन, कछवाह श्रावकन सज्जकीन ॥१६४ ॥

सामज चढाइ दल दभ्र सत्थ, प्रस्थित किय कुम्म हिँ रान पत्थ ॥
जहँ हुकमचंद्र झुंताग्रजात, नृप पिट्ठि खवासी थिति निभात ॥१६५ ॥

सह दंड जटित मनि छत्र सीस, मोरछल चमर बीजित महीस ॥
इम रान सिबिर जयसिंह आइ, कछु बढि गज हुल्लिय क्रम चुकाइ ॥१६६ ॥

प्रतिहार मुख्य तहँ रान पोरि, निज जनन पिल्लि गजपल निहोरि ॥
कछवाह करी करि राज रुद्ध, उतराइ अधिप सीमा अबुद्ध ॥१६७ ॥

जयपुर का कछवाहा राजा जयसिंह इन दिनों झूंताराम के वशीभूत था। वह राज्य के संधि आदि छह गुणों और मंत्र आदि तीनों शक्तियों से रहित था इसलिए वह स्वामी गिने जाने योग्य नहीं था। झूंताराम की सम्मति से राजा को सज्जित किया गया। फिर उसे हाथी पर आरूढ कर अपनी सेना के छोटे से दल के साथ रवाना किया गया। कछवाहा राजा इस प्रकार महाराणा के शिविर की ओर चला। इस समय झूंताराम का बड़ा भाई हुकमचंद हाथी पर राजा की खवासी में बैठा। राजा के सिर पर रत्नजटित दंड वाला छत्र लगा था। चँवर डुलाये जा रहे थे और मोरछलों से हवा की जा रही थी। इस प्रकार पूरे दबदबे

के साथ राजा जयसिंह महाराणा जवानसिंह के डेरे पर आया पर जिस निर्धारित जगह पर हाथी रोकना था वहाँ नहीं रोक कर जयपुर वालों ने हाथी आगे बढ़ाया। महाराणा के छड़ीदार ने जब यह देखा तो द्वारपालों के साथ महावत को चेतावनी दी कि हाथी आगे न बढ़ाये और उन्होंने राह रोक कर राजा को उतरने की सीमा समझाते हुए हाथी से नीचे उतारा।

पटबरन पुटन अंतर पउट्ठ, जयहरि इम पहुँचत स्वजन जुट्ठ॥
उततैं तिम तदवधि समुह आइ,ससिोद राजकुल क्रम सधाइ॥१६८॥

कर तास अप्प कर रक्खि तान, जग बिदित जनन आव्हय जवान॥
बिष्टर इक पुनि किय थिति बिसेस, दाहिन जवान जय बाम देस॥१६९॥

इम बैठि सभासन कछु अनेह, संलाप आप करि भरि सनेह॥
बलि अतर पान मुख बनि बिधेय, पटकुट गो कूरम भट प्रमेय॥१७०॥

रहि क्रम लहि अवसर तदनु रान, जयसिंह पटालय गय जवान॥
कुल रीति सद्धि किय मिथ मिलाप, दक्खिन दिस उपविसि इतहु आप॥१७१॥

कनात से बने शिविर के परकोटे के भीतर जा कर कछवाहा राजा जयसिंह अपने सेवकों सहित आया। तब महाराणा ने निर्धारित दूरी तक सम्मुख आ कर कछवाहा राजा की अगवानी की। अपना हाथ राजा जयसिंह के हाथ पर रख कर जगत प्रसिद्ध कुल वाला सिसोदिया महाराणा उसे अपने शिविर में लाया। यहाँ दोनों नरेश एक आसन पर जहाँ दाहिनी ओर महाराणा और वाम दिशा में कछवाहा राजा बैठे। इस तरह दोनों राजा थोड़ी देर के लिए आयोजित राजसभा में बैठे। उन्होंनें वहाँ थोड़े समय तक स्नेहपूर्वक वार्तालाप किया। इसके बाद इत्र और पान का बीड़ा देने की रस्म अदा की गई और कछवाहा राजा अपने पटालय को लौटा। इसके बाद समय पाकर रीति के अनुरूप महाराणा जवानसिंह भी जयपुर के शिविर को गया। यहाँ पर भी निर्धारित नियमों के अनुसार स्वागत हुआ और दोनों राजा एक ही आसन पर बैठे। महाराणा यहाँ भी दाहिनी ओर बैठै।

तंबोल अतर लै दै तथाहि, स्व सिबिर गय रानहु नय समाहि॥
प्रभु चहि निज मातुल मिलन प्रीति, कल्ल्यान कृष्णागढ नृप पुनीति॥१७२॥

बुल्लिय स्व पटालय क्रम विधान, मातुल तहँ अनुचित गहिय मात्र ॥
भाखिय तुम लघुबय भागिनेय, गुरु बृद्ध रु मातुल हम गणेय ॥१७३ ॥
तकि तारतम्य कारन तदीय, इम बाढहु गौरव अस्मदीय ॥
उल्लंघि रीति बिधि कज्ज एस, न गिन्यौं हित ससचिव भट नरेस ॥१७४ ॥
जहँ इम इतरेतर दर्प जोर, अवनीस मिले जाने न ओर ॥
मिच्छन निदेस सब धरत मत्थ, न मिले ति परस्पर मद अनत्थ ॥१७५ ॥

थोड़ी देर बार पान और इत्र का आदान प्रदान हुआ और महाराणा अपने शिविर को लौटे। इसी समय बून्दी के राजा के मन में अपने मामा से मिलने की उत्कंठा जगी। इसके लिए हाड़ा राजा ने किशनगढ़ के राजा कल्याणसिंह को अपने शिविर में बुलवाया पर इस प्रकार बुलाये जाने को कल्याणसिंह ने अच्छा नही माना। उसने प्रत्युत्तर में कहलवाया कि अव्वल तो हम मामा है फिर भानजे से उम्र में बड़े हैं। हमारी परंपरा गुरुजनों और वृद्धों का सम्मान करने की रही है। परम्परानुसार तारतम्य बिठाते हुए हाड़ा राजा को हमारे सम्मान की रक्षा करनी चाहिए पर ऐसा करना हाड़ा राजा (स्वयं) सहित उसके उमरावों और सचिवों को भी नही जँचा। नतीजा परस्पर घंमड धारण करने के कारण इन दोनों राजाओं का मिलन नहीं हो सका। हिन्दु राजाओं में भी यह क्या बिमारी हैं कि वे यवन शासकों के समक्ष तो नतमस्तक होते हैं पर परस्पर मिलते समय उन्हें अपने अपने अनर्थकारी मद का अहसास हो आता है।

इत प्रभुहु तीर्थगुरु गम्य आइ, किय न्हान दान क्रम मह मचाइ ॥
द्विज चिमनराम मुख गुरु उदार, किय आढ्य सर्ब कुल बंधुबार ॥१७६ ॥
नर नपारि सिसु भूषन निचोल, अखिलन अधीस अप्पिय अमोल ॥
इभ हय रथ मंडित एक एक, इम धेनु निकर अप्पिय अनेक ॥१७७ ॥
रुप्पय सोलहसत दै रसेस, अजमेर आइ रहि रत्ति एस ॥
बुंदिय दिस प्रस्थित हुव बहोरि, पहिले मुकाम पुनि जात जोरि ॥१७८ ॥
तिथि तीज असित असित रु तपस्य, बुंदिय बिसेस सह मह सदस्य ॥
पुर पुर अमात्य जुब्बन प्रष्टि, बिलसिय बिलास प्रभु अप्पि इष्ट ॥१७९ ॥

तब बून्दी का राजा रामसिंह तीर्थगुरु कहलाते पुष्कर तीर्थ पर आया। यहाँ पहुँच कर राजा ने उत्सवपूर्वक स्नान दान आदि सम्पन्न किया। राजा ने यहाँ अपने पण्डे चिमनराम को दान में धन आदि देकर उसे सकुटुंब धनाढ्य बनाया। राजा ने उसके घर के सारे आदमियों, स्त्रियों और बच्चों को आभूषण और महँगे मोल के वस्त्र प्रदान किये। इनके अतिरिक्त राजा ने उसे एक हाथी, एक घोड़ा, घोड़े सहित रथ, और गायों का समूह प्रदान किया। इन चीजों के अलावा राजा उसे एक हजार छह सौ रुपये नकद दे कर वापस अजमेर अपने शिविर में लौटा। अब राजा ने यहाँ से वापस बून्दी लौटने हेतु प्रयाण किया और आते समय जहाँ जहाँ पड़ाव डाले थे उन्हीं जगहों पर जाते हुए भी मुकाम करता हुआ फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को अपने सभासदों और सेना सहित राजा ने बून्दी में प्रवेश लिया। यहाँ अमात्य रूपी यौवन ने शरीर रूपी पुर में प्रवेश कर स्वामी को वांछित फल दे कर विलास करवाया।

दोहा

दिन दुल्लह होरिय जनन, सह मह कौतुक सद्धि।
सचिव सुहृद भट बुध सभा, लिय क्रीड़न रस लद्धि॥१८०॥

कुसुम रु रंग गुलाल क्रम, करि बाहिर बहु केलि।
सह रानिन अंतर सभा, होरिय किय कुल हेलि॥१८१॥

तभी होली का त्योहार आया। इस अवसर पर राजा ने दूल्हा रूप हो कर अपने प्रधानों, इष्ट मित्रों, पंडितों और उमरावों के साथ राजसभा में होली खेलने की क्रीड़ा का रस लाभ लिया। सभासदों के साथ राजा ने फूलों से बने रंगों और गुलाल से खूब होली खेली। इसके बाद जनाना में जा कर रानियो के संग भी हाड़ा कूल के सूर्य रावराजा रामसिंह ने फाग खेली।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवम राशौ बून्दीन्द्ररामसिंहचरित्रे महारावराजारामसिंहराजकुमार भीमसिंह जनन ग्रन्थकर्तृसूर्यमल्लप्रथमविवाहतन्मह सूर्य मल्लहरणाग्रामरामसिंहगमन योधपुरेशमानसिंहातिरिक्तोदयपुर महाराणाजवानसिंहादि राजस्थान भूपाललार्डाभिधांगरेज प्रधानाधिकारिसंमिलनाजमेर राजसभागमन अजमेर प्रत्यावृत्त पुष्कर स्नातरामसिंह बुन्दीप्रत्यागमनवर्णनंदशमो मयूखः

आदितो द्विसप्तत्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३७२॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में, महारावराजा रामसिंह के राजकुमार भीमसिंह का जन्म होना, इस ग्रन्थकर्ता सूर्यमल्ल का प्रथम विवाह और सूर्यमल्ल के ग्राम हरणा में रावराजा रामसिंह का मेहमान होना, अजमेर में आम दरबार होकर जोधपुर के महाराजा मानसिंह के अलावा उदयपुर के महाराणा जवानसिंह आदि राजपूताना के रईसों का लार्ड (साहब) की मुलाकात को अजमेर जाना, अजमेर से पुष्कर स्नान करके रावराजा रामसिंह के बून्दी में वापस आने के वर्णन का दसवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ बहत्तर मयूख हुए।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

समरसिंह नृप चरित सन, लहि आरंभ उदंत।
रु अजमेर सन रावरे, आगम लग जिहिँ अंत॥१॥

इते ग्रंथ बिच किय अनिस, बिदित बरन संबध।
त्यागि मनोहर आदि त्रिक, सबहि छंद दृढ संध॥२॥

मनोहराख्य घनच्छरी, सरूपक हु इन माँहिँ।
वृत्ति छेक बहु पै नियत, बरसगाई नाँहिँ॥३॥

सब खिल छंदन नियम सह, बिहित बरन संबंध।
इक्क चरन गत इक्क अरु, द्वि त्रादिहु श्रुत संध॥४॥

हे राजा रामसिंह! मैंने राजा समरसिंह हाड़ा के चरित्र से आरंभ का वृतान्त लेकर राव राजा रामसिंह (स्वयं आप) के अजमेर से वापस बून्दी लौट आने के वृत्तान्त तक अपने इस ग्रंथ वंशभास्कर में निरंतर वर्णमैत्री अथवा बयणसगाई नामक अलंकार का पूरा निर्वाह किया है। मनोहर आदि तीन जाति के छन्द उसका अपवाद हो सकते हैं पर शेष सभी छन्दों में दृढ़ प्रतिज्ञ हो कर मैंने उपरोक्त अलंकार का निर्वहन किया है। मनोहर, घनाक्षरी और रूपक इन तीन प्रकार के छन्दों में यदि वर्ण सम्बंध अलंकार नहीं है तब भी पाठक को छेकानुप्रास की अनुपस्थिति नहीं नजर आएगी अर्थात् उन्हें छेकानुप्रास तो अवश्य मिलेंगे। शेष सभी छंदों में मैंने वणमैत्री अलंकार को

नियमपूर्वक रखा है। उनमें यह आपको कहीं एक चरण में एक मिलेगा तो किसी चरण में दो-दो और कहीं-कहीं एक चरण में तीन-तीन वर्ण से सम्बंध मिलेंगे।

चरन केर अद्ध रु चरन, इनके अल्पहु अंस।
तिन्हलै आदि रु अंत तक, सुहि संबंध प्रसंस॥५॥

स्मृत न भयो कहुँ तो सुबुध, न गिनहु कठिन बनै न।
मनको धर्म्महि बिस्मरन, यहहि सनैन अनैन॥६॥

कथित प्रयत्न प्रबंध करि, अच्छर सगपन आनि।
अब प्रयत्न तजि अक्खियत, ठांठां नियम न ठानि॥७॥

कवि के सविता चंड कवि, अति प्रभु प्रीति अमत्र।
लैन सिक्ख तिन किय अरज, तीरथ सेवन तत्र॥८॥

मेरे छन्दों में कहीं कहीं एक चौथाई चरण में आपको वरणसगाई मिलेगी तो कहीं आधे चरणों में नजर आएगी। कहीं-कहीं तो यह अल्पतम अंश में भी दिख जाएगी। इनको नजर में रखते हुए आप पाठक आदि से लेकर अन्त तक प्रशंसा योग्य इस अलंकार का प्रयोग पाएंगे। जहाँ कहीं उपरोक्त अलंकार (वर्ण मैत्री) का रखना मुझे याद नहीं रहा वहाँ विद्वान लोग यह नहीं सोचें कि मेरे लिए यह करना कठिन था इसलिए नहीं किया। रहा सवाल भूलने का तो आँखो वाले और अंधे सभी के मन का स्वभाव भूलने का होता है। मैंने (ग्रंथकार) वंश भास्कर के इस ग्रंथ में प्रयत्न कर वर्ण मैत्री अलंकार रखा है पर अब इसका प्रयत्न छोड़ कर इसके नहीं रखने का नियम बनाता हूँ। ग्रंथकर्ता के पिता चंदीदान मीसण जो राव राजा रामसिंह के अत्यन्त प्रीतिपात्र थे। उन्होंने आ कर राजा से आज्ञा चाही कि मैं तीर्थ यात्रा पर जाना चाहता हूँ।

षटपात्

सुकवि चंड तिहिँ समय बरस चालीस इक्क बय,
भाखा त्रिक साहित्य तुपक बिद्या रु स्वरोदय।
सकुनादिक जय सद्धि अब जु श्रुति सिर आलोचिय,
सक सत्तरि सन सतत रमन मृगया रस रोचिय।

पहिले समै सु दस अब्द प्रति मृगया इम रुचि मैं रहिय।
मारे छ सिंह महि रोक रहि अमित बराहन असु गहिय ॥९ ॥

उस समय सुकवि चंडीदान मीसण की उम्र इकतालीस वर्ष की थी और जो संस्कृत, प्राकृत और देशी भाषा के साहित्य के पूर्ण ज्ञाता थे। साहित्य के अलावा स्वरोदय और शकुन शास्त्र का भी उन्हें पूरा ज्ञान था। वे बन्दूक चालने में अत्यन्त सिद्धहस्थ थे। अब उन्होंने वेद मार्ग को शिरोधार्य करना स्वीकारा। वे विक्रम के वर्ष अठारह सौ सत्तर तक निरंतर आखेट में रस लेते थे। और पिछले दस वर्षों में शिकार खेलते हुए उन्होंने छह सिंह मारे थे। भूमि में खड्डा खोद कर बनाई गई शिकार-ओदियों में बैठ कर अनगिन सूअर मारे।

सिंहन सन कछु खर्व सिंह आव्हय तदीय अब,
द्वीप बग्घ सद्दूल सुनहु इतिमुख बाचक सब।
वृक -- त्रिकि मुख बहु ह्वस्व तिनमैं अति हिंसक,
हनें प्रकट भुव बैठि कतिक ठड्ढैंहि छये छक।
सूकर अदभ्र खिल दभ्र सब हायन दस मृग संहरिय।
आरंभि उज्ज फग्गुन अवधि काल पलल ह्यस न करिय ॥१० ॥

बड़े शेरों के साथ उन्होंने छोटे कई शेरों का भी शिकार किया था। उनमें चीता, बघेरा, शार्दूल (चौफूल्या, बघेरा विशेष) नामक थे। उन्होंने पिछले दस वर्षों में इन सिंहों के अतिरिक्त तीन भेड़िये भी मारे जो अत्यन्त हिंसक जीव माने जाते हैं। इनमें से कई शिकार उन्होंने प्रकट रूप में बाहर वन में खड़े रह कर गोली मार कर की। वहीं कई शिकारें उन्होंने जमीन में गड्ढा खुदवा कर ओदियों में बैठ कर कीं। कार्तिक माह से लेकर प्रत्येक फाल्गुन माह पर्यन्त उन्होंने सूअर का माँस खाने में कभी नागा नहीं की अर्थात् बराबर खाते थे। उन्होंने इसके लिए कई बड़े सूअर (एकल), छोटे सूअर और मृग आदि पूरे दस वर्ष तक जम कर मारे।

आबान करि आखेट सुपहु सद्धिय रस सेलन,
सद्धिय अवट सिकार सुकवि स्वतुपक सम्मेलन।
इम असीति सक अंत अतुल इक्कल कटैल किटि,
सीमा निज संबसथ महाबल निडर गये मिटि।

अबतैंहि दया अंकुरि ह्रदय बलि रागादिक करि बिजय।
प्रभु के समीप निबसन प्रथित भुव भावित हुव बीत भय ॥११॥

हे राजा रामसिंह! मेरे पिता चंदीदान मीसण ने बाणों से, और भालों से कभी ओदियों में बैठ कर बंदूक से तो कभी दौड़ते हुए जानवरों पर गाली चला कर शिकारें की। विक्रम के वर्ष अठारह सौ अस्सी तक कई अतुलनीय डाढों वाले एकल सूअरों का शिकार उन्होंने अपने गाँव की सीमा में किया। यही कारण रहा कि वहाँ से मारे ताकतवर जानवर खत्म हो गये पर अब से अर्थात् संवत् अस्सी के वर्ष के बाद उन्होंने अपने अंतस में दया धारण कर ली उन्होंने सारे राग द्वेषों को जीत लिया। यह सभी कुछ उनसे इसलिए संभव हो सका क्योंकि वे इस अवधि में आपके सान्निध्य में रहे। पीछे के कुछ वर्षों से पवित्र (शुद्ध) हृदय हो कर निर्भय हो गये।

अप्पहि प्रमुदित अप्प किन्न कवि अरज जोरि कर,
तीरथ सेवन सद्धि नसत मो कृत अघ निर्भर।
देहु सिक्ख प्रभु सदय त्वरित अैहौं करि तीरथ,
बनिहै अघ न बहोरि पाइ कुमतिन सु संग पथ।
प्रभु कहिय बाह सेवक कतिक संग लैहौ कहहु,
कवि कहिय द्वै हि गृहजन बहुत प्रभु प्रसन्न रुचि करि रहहु ॥१२॥

ऐसे मेरे पिता ने हाड़ा राजा को प्रमुदित कर हाथ जोड़ते हुए निवेदन किया कि हे राजा! आप मुझे प्रसन्नचित्त हो तीर्थाटन पर जाने की इजाजत प्रदान करें जिससे मैं अपने पाप धो सकूं। आप उर में दया विचार कर मुझे शीघ्र स्वीकृति दें जिससे मैं तीर्थयात्रा कर शीघ्र ही वापस आऊँ। ग्रह कार्य मुझ से बाद में कुमतियों के संग से संभव नहीं होगा। यह सुन कर राजा ने कहा कि इसके लिए आपको कैसा वाहन चाहिए और कितने सेवक साथ चाहिए? इस पर कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि इसके लिए मेरे घर के दो व्यक्ति साथ बहुत हैं मैं उनके संग आराम से यात्रा सम्पूर्ण कर आऊँगा।

जांपिय प्रभु दुव जनन काय सेवन सद्धिहिं किम,
बलि न लेत तुम बाह राह अंति कष्ट अहो इम।
प्रभु जुत मित्रन प्रकर जदपि............ हठ जोरिय,
दोइ जनन बढि तदपि निखिल बिधि संग निहोरिय।

सक अक अचल गज बिधु समय मास भद्द पाउस अमा,
कविराज कढिय बुन्दि बितजि, बिधु रु वेद स्वक बय समा ।।१३ ।।

यह सुन कर राजा ने कहा वहाँ परदेश में दो व्यक्तियों से कैसे सेवा बन आएगी फिर तुम कोई वाहन भी साथ नहीं ले रहे तो मार्ग में अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ेगा। राजा के साथ राजा के मित्रों ने भी हठ किया कि इतने कम सेवकों से कैसे कार्य होगा ? इस पर कवि ने कहा कि नहीं, उनके संग से मेरा कार्य सध जाएगा। ऐसा निवेदन कर विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ अठासी की पावस ऋतु के भाद्रपद माह की अमावस्या तिथि के दिन कविराज (चंडीदान मीसण) अपनी इकतालीस वर्ष की वय में बून्दी छोड़ कर तीर्थ यात्रा पर जाने को निकले।

अक्खिय पुनि अधिराज प्रीति अंतर पर उप्पजि,
रथ नृजान हय रहित तुम न बिहरे मृगया तजि।
भारबाह इक भोलि ह्रस्व इक लेहु किधों हय,
इक्क बाह चढि अप्प जाहु बिरचत श्रमादि जय।
जामिक स्व संग लहि अट्ठ जन अभय पुण्य बिधि आचरहु।
बालपन तैं जु अब लग बन्यों कलुख भस्म वह सब करहु ।।१४ ।।

राजा ने अपने अंतस में परम प्रीति उपजा कर कहा कि रथ, पालकी और घोड़े के बिना तो तुम आज दिन तक शिकार खेलने भी नहीं गए हो। अपना सामान लादने के लिए तो कम से कम एक ऊँट अथवा खच्चर(छोटा घोड़ा) साथ ले लो और इसी तरह एक वाहन अपने लिए रख लो जिससे तुम विशेष श्रम करने से बचोगे। यही नहीं अपने साथ आठ पहरेदार ले जाओ जिससे तुम निर्भय हो कर तीर्थों में पुण्य अर्जित कर सको और बाल्यावस्था से अब तक संग्रहित पाप को धो सको।

स्वामि हुकम जिम सुहृदजनन तिम प्रसभ जनायउ,
तजि हठ कवि हिय तदपि भृत्य तीजोहु न भायउ।
बनत असन इक बेर मद्य तब लै त्रिचषक मित ,
बलि लहियत चउबेर अरक भंगा मय अंचित।

अहिफेन निसा दिन खिन उभय हुक्का जंत्र छ जाम हित।
चढि बाह चलन ए इह सुकवि सब उज्झिय बुंदिय सहित॥१५॥

राजा की तरह राजा के मित्रों ने भी हठ करते हुए जोर दे कर कहा कि कवि! हमारी बात मानों, यात्रा में सुख पाओगे। तब भी चंडीदान मीसण के दो के अलावा तीसरा सेवक भी साथ लेना नहीं जँचा। इन दिनों कवि के नियम था कि वे दिन मे मात्र एक बार भोजन करते थे। शाम को तीन प्याला (चसक) मद्य सेवन करते, दिन में चार बार भांग का अर्क ग्रहण करते थे। वे दिन में और रात में दो बार अफीम लेते और छह प्रहर हुक्का पीते थे। इनके अतिरिक्त सवारी के बिना चलते न थे पर यात्रा जाने के अवसर पर उपरोक्त सभी चीजें छोड़कर ही उन्होंने बून्दी छोड़ी।

को साहर. इभ करहिं सूर तजि सब सरीर सुख,
चउ मादक तजि चित्त दमि रु क्रमि पयन लहैं दुख।

स्वप्रभु सन लहि सिक्ख सुहृद लोकन इम सम्मति,
कढि बुंदिय सन सुकवि पत्त हरिनाँ हरिनाँपति।

बाँधव कुटुंब सब बुल्लिकैं कहिय धाम चउ मुख्य करि।
तिन्ह सरनि न्हाइ सब तीरथन एहाँ अछल अजात अरि॥१६॥

ऐसा साहस भला कौन वीर कर सकेगा कि वह अपने सम्पूर्ण शारीरिक सुखों को तिलांजली दे। अपने चारों प्रकार के नशों को छोड़ दे और अपने चित्त को अर्थात सारी इच्छाओं को दमित कर, पैदल चलने का कष्ट साध्य श्रम करता हुआ तीर्थ करने जाए। पर उपरोक्त सभी कुछ करते हुए चंडीदान मीसण ने अपने स्वामी से विदाज्ञा ली और अपने सुहृद जनो से सम्मति लेकर बून्दी से रवाना हो कर वह हरिणा गाँव का जागीरदार अपने गाँव हरिणा आया। यहाँ उसने अपने सारे कुटुम्बियों और बांधवों को बुलाया और कहा कि मैं चारो धामों (जगदीश, बद्रीनारायण, रामेश्वर और द्वारिका) और मार्ग में पड़ने वाले तीर्थो में स्नान कर छल कपट से रहित हो अजातशत्रु हो कर वापस आऊँगा।

रुद्रदान अभिधान सुकवि सविता सोदर सुत,
मम माता निजनारि जुगहि हम तनय बिनय जुत।

अप्पन जन इत्यादि बिरचि हारे सब बिन्नति,
पै तीजो जन पास दास न लयो मनस्विमति।
पेथिदेव पुज्जि इष्टहिँ प्रनमि करि निज ग्राम परिक्रमन।
पितादि अस्थि लै बिधि प्रथित गम्य सरनि मंडिय मनन ॥१७॥

इस समय मेरे पिता चंडीदान मीसण के भतीजे रूद्रदान, मेरी माता (उनकी स्त्री) और हम दोनों भाइयों अर्थात् सूर्यमल्ल और जयलाल सभी ने मिल कर विनम्रता पूर्वक निवेदन करते हुए उन्हें मनाने के प्रयास किये पर दो सेवकों के अतिरिक्त तीसरे व्यक्ति को अपने साथ लेने से उस मनस्वी ने एकदम मना कर दिया और पथवारी की पूजा कर अपने इष्ट देवों को प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने अपने गाँव की परिक्रमा की और अस्थियां लेकर प्रसिद्ध रीति से जाने योग्य मार्ग पर गमन किया।

लीलावति निज लार भृत्य इक लिय स्वसद्म भव,
दूजो सेवक द्विज सु रामकृष्णा भिऽधेय रव।
सेवक ए दुव संग लै रु प्रस्थित कविंद लहु,
जित चित मादक जात पयन गंताहु अरुन पहु।
पूरब प्रयान पूरब ककुभ करि सेवित ब्रज्जभूमि किय।
तिहि ठाम धाम कम तीरथन सुनहु राम प्रभु नाम प्रिय ॥१८॥

लीलावती नामक अपने एक सेवक को जो उनके अपने घर में उत्पन्न अर्थात् खानाजाद था उन्होंने अपने साथ लिया। इसके अतिरक्त दूसरा रामकृष्ण नामक ब्राह्मण था जिसे चंडीदान मीसण ने यात्रा प्रस्थान के समय अपने साथ लिया। दोनों सेवकों के साथ प्रस्थान करते हुए शीघ्र ही अपने नशे के आदी चित्त को जीत कर मार्ग में पैदल ही चलने लगे। सर्वप्रथम चंडीदान मीसण से पूर्व दिशा में गमन कर ब्रजभूमि का सेवन किया। हे राजा रामसिंह! वहाँ उन्होंने कौन-कौन से तीर्थ के दर्शन किये अब मैं (ग्रंथकार) उन्हें कहता हूँ।

पद्धतिका

गिरिराज रु गोकूल अनघ गम्य, मथुरा वृंदावन रुचिर रम्य॥
जमुना अघहरनी न्हाइ जत्थ, सुरबापी न्हाये प्रनति सत्थ॥१९॥

पुनि सेवित सूकर छत्र पास, इह रामघट्ट सह कर्णबास॥
जमुना गंगा जुग सुबिधि सज्ज, करि मुंडन मज्जन श्राद्ध कज्ज॥२०॥

सेवक जे सूचित स्वामि सत्थ, तजि रत्ति सुप्त दुव तेहु तत्थ॥
एकाकी व्है इम पथ पिधान, सूकर सन हंकिय अब सुजान॥२१॥

पुनि प्राची अभिमुख रक्खि राग, पहुंचे कवि तीरथ पति प्रयाग॥
सति असित संधि जल कृत सनान, दितलोम न्हाइ कृत श्राद्ध दान॥२२॥

बिश्वेश्वर पालित पुर बहोरि, किय कासी जिय तिम कृत्य जोरि॥
पुनि स्त्रोत कर्मनासा प्रवाह, इहिं आमय न्हाये धरि उछाह॥२३॥

सरसिंधु भस्म किय दुरित सर्ब, यह पुण्य भस्म करिहों अखर्ब॥
तो सुगम मुक्तपन लभ्यताम, किय तहँ इम मज्जन मनअकाम॥२४॥

बलि न्हाइ सोननद में बिसेस, पुनि करि पुनः पुना धुनि प्रवेस॥
जिम उद्धरि गयपुर पितर जात, प्रभु विष्णु अंघ्रि करि पिंड पात॥२५॥

धरि भेट गदाधर चरन धाम, कृत फल्गु प्रेत गिरि बल्गु काम॥
गंगो दधि संगम पगि प्रबीन, कपिलाश्रम बंदन न्हान कीन॥२६॥

हे राजा! मेरे पिता ने गिरिराज गोवर्द्धन, गोकुल, मथुरा और रुचिर बृंदावन की यात्रा की। पाप हरने वाली यमुना नदी में स्नान कर, सुरवापिका में स्नान किया। इसके बाद सूकर क्षेत्र के पास रामघाट और कर्णवास की यात्रा की। यहाँ गंगा और यमुना दोनों नदियों में स्नान करने के बाद मुंडन करवा कर फिर से स्नान कर श्राद्ध किया। यहीं अपने दोनों साथ वाले सेवकों को नींद में सोता हुआ छोड़कर चंडीदान मीसण अकेले गुप्त मार्ग से सूकर क्षेत्र से चले। सर्वप्रथम प्राची (पूर्व दिशा) से अनुराग रखते हुए कवि सीधे तीर्थो के तीर्थ प्रयागराज पहुँचे। यहाँ गंगा की श्वेत धारा और यमुना की श्याम रंग की धरा के संगम स्थल पर जा कर स्नान किया। और मुण्डन करा कर स्नान के साथ श्राद्ध किया। फिर विश्वनाथ द्वारा पालित इस पुर काशी में जा कर उन्होंने महादेव के मन्दिर में दर्शन किये। यहाँ से वे कर्मनासा नामक नदी के उद्‌गम स्थल पर जा कर मन में उछाह भर कर नहाये फिर गंगा के किनारे की पवित्र भस्मी से सारे पाप भस्म हो जाएंगे तो मुक्ति पाना सहज होगा ऐसी मन में

कामना कर उन्होंने वहाँ स्नान किया। यहाँ से आगे जाकर सोमनद में स्नान किया फिर पुनः पुना नामक नदी में डुबकी लगाई। अपने पित्तरों का श्राद्ध करने की सोच कर आगे वे गया गये। विष्णु भगवान के चरणों के दर्शन कर उन्होंने पिंडदान किया। यहाँ से आगे गदाधर के चरण धाम में दर्शन कर फल्गु, प्रेतगिरि, गंगासागर के संगम और कपिलाश्रम जा कर वंदन करते हुए सभी जगह स्नान किया।

जगदीस द्रंग चढि पोत जाइ, प्रभु को प्रसाद बहु बिबिध पाइ॥
करि उदधि न्हान दानादि कज्ज, सेये जगदीश्वर प्रनति सज्ज॥२७॥

रहि दक्खिन अभिमुख सिंधु रोध, संक्रमि रामेश्वर दिस सुबोध॥
संप्लुत चिलका नदि सिंधु संग, इम प्रस्थित इक्खत भ्रमन भंग॥२८॥

द्रुत गोन अंग क्रमि बंग देस, बिसि इम कलिंग जनपद बिसेस॥
गोदावरि तटिनी जल गहीर, किय मंजन भंजन दुरत भीर॥२९॥

कृष्णा धुनि न्हाये सह प्रकार, भस्मीकृत कलिमल असह भार॥
धर तहँ पनाह नरसिंह धाम, निज बपु असक्त जजि किय प्रनाम॥३०॥

इसके बाद पानी के जहाज में सवार हो मेरे पिता जगदीशपुर अर्थात् जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ समुद्र में स्नान कर भगवान जगन्नाथ के दर्शन कर पूजा अर्चना की। फिर चिलका नदी में स्नान किया जहाँ उन्होंने समुद्र में पड़ने वाले भंवर और बड़ी-बड़ी लहरों को देखा। यहाँ से आगे भंग देश फिर बंग देश होते हुए कालिंग के जनपद में पहुँचे। जहाँ पहुँच कर उन्होंने गोदावरी नदी के गंभीर गहरे जल में स्नानादि सम्पन्न किया। इस नदी की लहरें भी भयानक थीं। फिर कृष्णा नदी में स्नान किया और अपने पापों के कलुप को धो कर उसके असहभार से निजात पाई। यहाँ से आगे नृसिंह धाम पहुँच कर उन्होंने अपने क्लांत और अशक्त शरीर से पूजा-अर्चना की।

इम भुवकलिंग प्रविसत अनेह, दृढ जग्ध ज्वर रु अतिसार देह॥
मंजिल दु कोस इक कोस मान, पथ निट्ठि निट्ठि बिरचत प्रयान॥३१॥

इक ग्राम जाइ बपु गद असक्त, गृह द्वार गिरे नत निबल नक्त॥
गृहवासिन जानि सु कहिय गच्छ, ए डिगि सके न तउ बपु अनच्छ॥३२॥

मन मन थकि बढि हठ माँहि माँहिं, न डिगत लखि अक्खिय गृह्न नाहिं।।
हुव तदपि प्रसभ दुख दैनहार, गल पय धरि ईसा छल अगार।।३३।।

दृढ हठ उठाइ क्रमि ग्राम दूर, पल्वल इक तट तजि पाप पूर।।
आये गृह अरु इत कवि उदास, बलि तहँ निस दस मित बिमति बास।।३४।।

कलिंग प्रदेश की भूमि में प्रवेश करते समय ही वे ज्वर से पीड़ित हो गए और ज्वर के साथ दस्त के रोग ने भी उन्हें अपनी चपेट में ले लिया। उन्हें आगे दो कोस की यात्रा करनी थी पर एक कोस के फासले से ही उनकी हालत खराब हो गई। वे ठीक से चल पाने में भी असमर्थ हो गए। रोग की अधिकता से वे रास्ते में पड़े एक गाँव के भीतर गये और वहाँ रात्रि में सर्वथा अशक्त हो कर एक घर के द्वार के आगे जा गिरे। तभी घर वालों ने कहा कि यहाँ से आगे जाओ, बाबा! पर उनके हाथ-पाँवों ने जवाब दे दिया था वे वहाँ से हिल भी न सके। बार-बार गृहस्वामी के कहने पर उन्होंने दृढ़ मन कर वहाँ से हटना भी चाहा पर व्यर्थ, तब उन्होंने कहा कि मैं आगे नहीं जा सकता। हठ दु:ख देने वाला साबित हुआ। उन लोगों ने चंडीदान के गले और पावों के नीचे हल की हाल डाल कर उठाया और गाँव से बाहर दूर वे पापी उन्हें एक तालाब के तट पर डाल कर लौट गये। वे गाँव के आदमी तो अपने घर आ गये पर चंडीदान ने अगले दस दिनों तक वहीं भूखे-प्यासे मूर्छित दशा में निवास किया अर्थात् पड़े रहे।

संतत दस लंघन करि सहाय, बपु चेति जित्ति ज्वर रेक बाय।।
अति अदय देस ऐसे अतथ्य, पटु तदनु चलें भजि सुलभ पथ्य।।३५।।

बलि पत्त सह्य कुलगिरि बिसेस, भजि लछ्मन बाला तहँ भगेस।।
धर अधर पुरी त्रिपदी सुधाम, तहँ इंधन चंदन अरुन ताम।।३६।।

भव हरि भट कौंची पर दु भंति, पुर सप्त मध्य हतपाप पंति।।
धर लघु बेदाचल नामधेय, सुहि पच्छी तीरथ नाम श्रेय।।३७।।

क्रमि पत्त सलंबर कुंभकोन, बाहिनी काबेरी भद्रभोन।।
कढि कढितस धारा भिन्न भास, बिसतार त्रि जोजन जन बिलास।।३८।।

निरंतर दस दिनों तक भूखे रहने के कारण अतिसार(दस्त) के रोग में कुछ कभी आई और ज्वर भी कम हुआ। अन्ततः उन्हें होश आया। वे फिर

इस अदया वाले प्रदेश के लोगों को छोड़ कर वापस राह लगे। यहाँ से वे सह्याद्रि गिरि में स्थित 'लछमन वाला' नामक तीर्थ पर आये जहाँ महादेव अथवा विष्णु का मन्दिर है। आगे त्रिपदी नामक तीर्थ धरा पर पहुँचे जहाँ लाल रंग के चंदन को ईधन की तरह बरता जाता है। इससे आगे वे काँची पहुँचे जहाँ महादेव सप्तपुरी के मध्य(शिव) और विष्णु दोनों के भव्य मंदिर हैं और जिन्हें पाप की पंक्तियों को काटने वाला माना जाता है। यहाँ लघु बेदाचल नामक जनपद है जहाँ पक्षी नामक तीर्थ है वहाँ दर्शन किये और आगे चलते हुए वे संलबर तीर्थ पहुँचे जहाँ कावेरी नदी बहती है। यहाँ कावेरी की जल धारा में से होकर गुजरते हुए उसे पार करना पड़ा जिसका विस्तार तीन योजन का था।

श्रीरंग छत्र मंदिर सुढार, श्रीरंगनाथ जहँ सेव्य सार॥
पाखान स्याम मूरति प्रसिद्ध, अवनीतल साई तल्प इद्ध॥३९॥

प्राकार घेर गव्यूति पाय,श्रीरंग द्रंग ढिग प्रभु सहाय॥
सु बिभिषन सेवक जातुजात, श्रीरंग प्रनुत सब बिधी सुहात॥४०॥

अग्ग समुद्रतट पुण्य ऐन, बिनु तरि तदग्ग पहुँचत बनै न॥
जहँ नव नव पत्थर घटित जानि, पिक्खत इम जगँदृग लै प्रमानि॥४१॥

तरि करि तरि संकर सफल संध, बिक्खे रामेश्वर सेतुबंध॥
श्रीरामचंद्र लंघत समुद्र, रुचि कपिल मुट्ठि त्रय प्रमित रुद्र॥४२॥

आगे श्रीरंग का गुमटियों वाला मंदिर था वहाँ पहुँच कर चंडीदान मीसण ने श्रीरंगनाथ की पूजा-अर्चना की। यहाँ श्रीरंग की पत्थर से निर्मित बड़ी भारी मूर्ति है जहाँ श्रीरंग जमीन पर सोने की मुद्रा में है। इसके प्राकार का घेरा दो कोस का है जो श्रीरंग नामक गाँव को घेरे हुए है और भगवान के मंदिर को भी। कहते हैं यह राक्षस विभीषण द्वारा निर्मित है। यहाँ मेरे पिता (चंडीदान मीसण) ने विशेष स्तुति पूर्वक सेवा अर्चना की। यहाँ से आगे पुण्य का घर समुद्र है। यहाँ से बिना नाव के आगे नहीं जाया जा सकता हैं। यहाँ नई- नई घड़त (प्रकार) के पत्थरों की चट्टाने हैं जो सूर्य की रोशनी में चमकती हैं। यहाँ से रामेश्वर जाने वाले यात्रियों के संघ ने एक नाव किराये पर ली और पूरा संघ सेतुबंध रामेश्वर पहुँचा। यहाँ पर प्रभु रामचन्द्र ने समुद्र पार

करने को कांतियुक्त अग्नि से तीन मुट्ठियां भर कर रखी थीं वे सभी अब वहाँ शिवलिंग के रूप में स्थापित है।

श्रीज्योतिलिंग नति नुति समेत, कृत दरसन सेवित जय निकेत॥
तदंनतर व्है ज्वर असह ताप, पच्छिम प्रयान टारिय बिपाप॥४३॥

नहि तो जजि पच्छिम धाम धार, बदरीस प्रनमि आगम बिचार॥
पै बिचहि मोरि ज्वर इत प्रयान, दृढ हुव निकेत आगम निदान॥४४॥

अग सह्य व्है रु दिस सौम्य आइ, पुनि कृष्णा गोदा न्हान पाइ॥
पूर्णा अरु तापी बपु पखारि, रचि मज्जन रेवा बिमल बारि॥४५॥

रेवा काबेरी मिलन रम्य, गहिरे ह्रद न्हाये सदृस गम्य॥
सेवित मेकलजा पुलिन सीस, श्रीज्योतिलिंग ओंकार ईस॥४६॥

मेरे पिता चंडीदान मीसण ने यहाँ के ज्योतिर्लिंग के समक्ष विनयपूर्वक स्तुति कर दर्शन पाये और जीत के घर इस तीर्थ पर पूजा अर्चना की। यहाँ कवि फिर से ज्वर पीड़ित हो उठे। असह्य शारीरिक पीड़ा के चलते यहाँ से पश्चिम की ओर जाने का इरादा छोड़ दिया अन्यथा उनका विचार था कि वे पश्चिम के धामों द्वारिकाधीश के दर्शन कर आगे बद्रिधाम चले जाएंगे। उन्हें बीच से ही मुड़ जाना पड़ा। वे अब दृढ़ धारणा कर वापस घर लौटने के लिए चल पड़े। सह्याद्रि पर्वत से हो कर वे वापस कृष्णा और गोदावरी नदी में स्नान करते हुए आगे बढ़े। आगे फिर पूर्णा और ताप्ति नदी में अपनी काया पखार कर आगे रेवा नदी में आ नहाये। यहाँ से आगे जहाँ रेवा नदी और कावेरी नदी का संगमस्थल है वहाँ स्नान किया। आगे बढ़ते हुए वे नर्बदा नदी द्वारा सेवित जहाँ ओंकारेश्वर भगवान हैं वहाँ पहुँचे।

सब ओर सिंधु पूरब प्रवाह, रेवा गति केवल बरुन राह॥
उल्लंघ्य बिंध्य कुलगिरि अमान, पहुँचे भुव मालव सिथिल प्रान॥४७॥

बिच द्रंग बिसाला जहँ बिसिष्ट, अरु ईस महाकालाख्य इष्ट॥
गुरु सप्त पुरन पुर जो गणेय, श्रीकृष्ण अध्ययन धाम श्रेय॥४८॥

सिप्रा सैविलिनी पुंण्य श्रोत, साक्किनि कृत प्रासन पाप पोत॥
तदंनतर प्रवणा सिंधु स्याम, तटिनी चर्मणवति न्हाइ ताम॥४९॥

मिलि सक ख नंद बसु इंदु मेय, सित पच्छ जेठ नवमी सु गेय ॥
बसु दिवस मासनव के बिचाल, कवि आये बुंदिय उष्ण काल ॥५० ॥

यहाँ ज्योतिर्लिंग के दर्शन कर ओंकारेश्वर से आगे बढ़े। यहाँ सारी नदियाँ जहाँ पूर्व दिशा की ओर बहती हैं वही रेवा का प्रवाह पश्चिम दिशा में है। विंध्याचल पर्वतमाला को पार कर आगे वे शिथिलप्राण(थके हुए बीमार) मालवा की भूमि पर पहुँचे। वहाँ जो विशिष्ट पुरी उज्जैन(विसाला) है जिसमें प्रसिद्ध महाकाल नामक तीर्थ है उसके दर्शन कर वे आगे जो सात गुप्त पुरियां गिनी जाती हैं जहाँ श्रीकृष्ण भगवान ने शिक्षा अर्जित की थी और इसी के कारण वह तीर्थ माना जाता है वहाँ आये। यहाँ दर्शन पूजन सम्पन्न कर वे शिप्रा नदी के पुण्य बहाव में नहाने गए जो पापों के समूह को धोने वाला तीर्थ स्थान माना जाता है। यहाँ से आगे वे प्रवणा, कालीसिंध और चर्मण्वति (चंबल) नदियों में स्नान करते हुए विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ नब्बे के जेष्ठ माह के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को नये महीने के आठ दिन बिता कर कवि चंडीदान मीसण अपनी यात्रा पूर्ण कर गर्मियों में वापस बून्दी पहुँचे।

क्रम भुव त्रिसहस्त्र द्विसत कोस, दुव धाम परसि धुव हुव अदोस ॥
इक्कल पदाति सूचित अनेह, पुर बुंदिय प्रविसे दुबल देह ॥५१ ॥

दिनदुल्ल्ह प्रभु सुनि न किय देर, बुल्लिय कवि परिखद आत बेर॥
इम ठानि कुशल पृच्छादु ओर, मोदित ससभ्य प्रभु महिपमोर ॥५२ ॥

अक्खि सु असेस पद्धति उंदत , हरिनाँ निज निवसथ पत्त हंत ॥
तब निज प्रकार तजि चरनचार, आलय गय रयहय अस्ववार ॥५३ ॥

पथिदेव पूजि गुरुजन उपेत, कछु अह गंगामह रहि निकेत ॥
पत्ते बलि बुंदिय कवि प्रबीर, श्रीस्वामि सभ्य गुरु सुहृद सीर ॥५४ ॥

इस तरह तीन हजार दो सौ कोस की कुल दूरी तय करते हुए वे दो धामों की यात्रा के बाद निष्पाप हो अकेले चलते हुए उपरोक्त तिथि को दुर्बल देह के साथ लौटे। हाड़ा राजा ने जब सुना कि चंडीदान मीसण यात्रा से लौट आया है तो उसी दिन राजसभा का आयोजन कर उसे वहाँ बुलवाया। दोनों ने परस्पर कुशल-मंगल के समाचार पूछे फिर राजाओं के मुकुट और उसके

सभासदों के समक्ष चंडीदान मीसण ने पूरे मार्ग का विवरण देते हुए विस्तार से अपना यात्रा-वृत्तांत सुनाया। इसके बाद वह यात्रा से थके-हारे अपने गाँव हरिणा पहुँचे। बून्दी से पैदल चलना छौड़ कर वे अपने घोड़े पर सवार होकर गये। यहाँ पहुँचने पर अपने गुरुजनों सहित पथवारी की पूजा करने के बाद कुछ दिन घर में आराम करने को बिताये। कुछ दिनों बाद कवि चंडीदान मीसण वापस बून्दी आए जो हाडा राजा के सभ्य और सुहृदय मित्रवत थे।

मन तैंहु परस्वेहा मिटाइ, अघ काइक बाचक दिय उठाइ॥
बिनु सिंह छोरि मृगया बिलास, हित समुझि नसा मद्यादिह्रास॥५५॥

सह मिथ्या संसन काम क्रोध, मद लोभ मोह संहरि सुबोध॥
असहत्व असूया ईरखा रु , सठतादि उज्झि छम भ्रम सरारु ॥५६॥

मायामय गोचर अखिल मानि, स्वाऽभिन्न अगोचर बिभु बखानि॥
इम अप्प अवस्था त्रय अतीत, पर बोध तुरीया स्थिति प्रतीत॥५७॥

चउ बेद सीस बचनन बिचारि, जड़ प्राकृत चेतन सुचि प्रजारि॥
आंनद अप्प अव्यय अंसग, अक्खी सम रोचन एक रंग॥५८॥

सुभ सत्व सत्य अनुभव अनंत, सर्वोत प्रोत अज सतत अंत॥
निष्ठ यह कवि मनि गहि अनिच्छ, दुर्लभ स्वबोध मख प्राप्त दिच्छ॥५९॥

अपने मन से पराई वस्तु की वांछा मिटा कर उन्होंने अब काया और वचन से होने वाले पाप करना छोड़ दिया था। उन्होंने सिंह के अतिरिक्त अन्य जानवरों की शिकार खेलना त्याग दिया था और मद्यपान आदि सारे नशों का त्याग कर दिया था। उस श्रेष्ठ ज्ञानी ने झूठ बोलना छोड़ दिया और काम, क्रोध, मद, लोभ से भी किनारा कर लिया था। उन्होंने असहत्व, असूया, ईर्षा, सठता और भ्रमों का निवारण कर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन इन्द्रियों के विषयों को मायामय गिनते हुए इनका परित्याग कर दिया। यही नहीं जो इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता है ऐसे अगोचर ब्रह्म से वे अभिन्न हो गए। अपनी तीन अवस्था पूर्ण कर उन्होंने चौथी तुरीया अवस्था में अपने को स्थित कर लिया। चारों वेदों के उपनिषदों के वचनों पर विचार कर प्रकृति सम्बन्धी जड़ पदार्थो को चैतन्य रूप अग्नि में जला कर वे आनन्दमय, आत्मरूप, नाशरहित, असंग, अक्षम, सम, प्रकाश रूप, एकरस ,शुभ, सत्वरूप, सत्य,

अनुभव रूप, अनन्त, सर्वव्यापक, अजन्मा और सदा सत्‌रूप ऐसे परमात्मा में उस कवि शिरोमणि चंडीदान ने इच्छारहित हो निष्ठा धारण की और दुर्लभ आत्मज्ञान रूपी यज्ञ की दीक्षा ली।

प्रभु कै उत्तेजन तस प्रकासि, निर्णय जय संसय निचय नासि॥
बोधन छ तर्क छम बुधन बार, देसीय बिदेसज के उदार॥६०॥

करि मति तदीय तत्त्वानुकूल, मत ओर जोर तत दलि समूल॥
कवि जित बहिरंतर करन काम, निज सख द्विज आसानंद नाम॥६१॥

तिन्ह मत उत्तेजित प्रभु तृतीय, सन्नद्ध बाद रन सुभट स्वीय॥
परिपूर्ण सत्व चित सुख प्रभाव ,धी सुद्ध रुद्ध गन करन धाव॥६२॥

आस्थान गान तिम नटन तूर, परिहास सग्धि रस नवक पूर॥
जय सिद्ध सस्त्र सय मल्ल जुद्ध, आखेट फाग क्रीड़न अलुद्ध॥६३॥

गज बितिन बाहन रीति गैल, फटकारि बिडारत सठन फैल ॥
इत्यादि रजोगुन के उफान, भुग्गै पहु कौतुक बिबिध भान॥६४॥

देश विदेश के बड़े विद्वानों के समुदाय में छहों शास्त्रों का उपदेश करने में समर्थ उस कवि चंडीदान ने राजा के मन में उस निष्ठा का उत्तेजन कर निर्णय की जय और संशय के समूह का नाश किया। फैले हुए अन्य मतों के बल का मूल सहित नाश कर अपने राजा की मति को परमतत्व के अनुकूल बनाया। वहीं उसे अपनी बाहर और भीतर की इन्द्रियों की कामना को जीतने के लिए कवि के सखा आशानन्द ब्राह्मण ने प्रेरित किया। कवि और रुविसखा आशानन्द के मत से उत्तेजित (प्रभावित) राजा रामसिंह जो अपने उमरावों सहित शास्त्रार्थ रूपी रण हेतु सज्जित रहता था और सच्चिदानन्द के प्रभाव से परिपूर्ण रहता था ने इस तीसरी प्रकृति पर ध्यान दिया और उस शुद्ध बुद्धि वाले राजा ने इन्द्रियों के समूह की दौड़(गति) को रोक लिया। वह राजा सभा, गान, नृत्य, वाद्ययंत्र, हंसी, खटरसपूर्ण सहभोजन (गोठ) और नौ रसों से परिपूर्ण था। वह शास्त्रों को साधने में जय सिद्ध करने वाला था। वह बाहुयुद्ध और मल्लयुद्ध, आखेट और फाग खेलना, हाथी और घोड़ों को रीतिपूर्वक चलाना, दुष्टों के तुफैल को फटकार कर मिटाना इत्यादि सारे रजोगुण के उफान रूप नाना प्रकार के कौतुकों को अनासक्त भाव से भोगने वाला था।

पै तत्त्व सत्त्व गुरु कवि प्रसाद, व्युत्थान समाहित सदृस बाद ॥
इम पत्त राज्य तरु फल अलुद्ध, सब रीति प्रीति पटु नीति सुद्ध ॥६५ ॥

संधा ली बितरन जस प्रसक्त, उल्लंधि सक्ति रज सत्व अक्त ॥
भंडार भूपके भर्म भूरि, पूरे धात्रेयन सुमह पूरि ॥६६ ॥

संधा जिन्ह सचिवन सह बिसेस, धन कोस नित्य धरि नुत निसेस ॥
अन्नोदक पीछैं लहत आप, पटु स्वामिधर्म सेवन प्रताप ॥६७ ॥

रक्खिय प्रभु तहँ इम दान रीति, जग के उदार सब अधिप जीति ॥
जँह द्विज पौरानिक बंदि जात, दिगबिजयी सबबुध जो दिपात ॥६८ ॥

परन्तु गुरु (आशानन्द) और कवि (चंडीदान) की कृपा से ब्रह्मभाव की विद्यमानता से उक्त विरुद्ध कार्य और समाधि ये दोनों उसमें समान भाव से रहते थे। इस प्रकार सब रीतियों में और प्रीति में, चतुर नीति से शुद्ध, उस राजा ने अनासक्त हो राज्य के फल को लिया। वह रजोगुण ओर सतोगुण में आसक्त हो कर यश अर्जित करने को दान की प्रतिज्ञा लेने वाला बना। इस राजा के धायभाई ने उत्साहपूर्वक राजा के भंडार को स्वर्ण से भरा। वह स्तुति योग्य सचिव धन को खजाने में रखने के बाद ही स्वयं अन्न जल ग्रहण करता और जो स्वामिधर्म के सेवन में चतुर था। उधर यह राजा दान में प्रीति रख कर शेष जगत के सभी दातार राजाओं को जीतने वाला था। यही कारण था कि इसके राज्य में जो भी ब्राह्मण, चारण और भाट अपने काव्य में सभी विषयों का अथवा शास्त्र रचियता होता और सर्वश्रेष्ठ होता।

तिँहिँ अयुत दम्म अप्पत इलेस, पट भूखन हय गजभू प्रदेस ॥
बादीन तदपि जो सब प्रबुद्ध, लहत सु सहस्त्र पंचक अलुद्ध ॥६९ ॥

इक देस सूरि कल्पक अभंग, सो लहत सँहस मुद्रा प्रसंग ॥
बादीन तदपि इक देस बीर, सतंपच लहत मुद्रा सुधीर ॥७० ॥

सत दम्म लहत लहि अब्द सुद्धि, बितरन क्रम संस्कृत बुधन बुद्धि ॥
भाखा छ कोहि जिनको न भान, प्राकृत मुख पंचहु हत प्रमान ॥७१ ॥

केवल नृगिरा कवि जे कहात, जाने न प्रकृत भव अब्दजात ॥
पै जिन्ह कवित्व हिय जाइ पैठि, बिकसाइ देत मन सबन बैठि ॥७२ ॥

जे काव्य केर सब अंग जानि, अँचत श्रोता मन रीझि आनि॥
सत संख्य तदर्थहु दम्प देय, सिरुपाव तुरंगम संग श्रेय॥७३॥

उसे यह राजा रामसिंह दस हजार रुपये देता इसके अतिरिक्त आभूषण, घोड़ें, हाथी और भूमि ऊपर से। जो विद्वान पंडित शास्त्रार्थ करने वाला न भी हो पर यदि सभी शास्त्रों का जानने वाला हो वह निर्लोभी, राजा से पाँच हजार रुपयों का इनाम पाता। इसी तरह जो एकदेशी (एक ही शास्त्र जानने वाला) पंडित हो और उत्तम कल्पना करने वाला हो जैसी अन्य न कर सके तो उसे धैर्यवान यह राजा एक हजार रुपये प्रदान करता। जो देशी पंडित शास्त्रार्थ नहीं करने वाला होने पर भी शास्त्र में वीर हो अर्थात् पंडित हो, उसे राजा द्वारा पाँच सौ रुपये दिये जाते। जो संस्कृत भाषा मे निष्णात हो वह सौ रुपये प्रतिवर्ष पाता। जो षटभाषाविद न हो पर प्राकृत और देसी भाषा में प्रवीण, हो जो केवल देशी भाषा का कवि हो भले ही उसे प्राकृत भी न आती हो पर उसकी कविता हृदयग्राही हो और सुनने वालों को हर्षित अथवा विकासित कर दे। जो काव्य के दस अंग जानता हो और श्रोताओं का मन प्रसन्न कर दे। ऐसे सभी लोग राजा से सौ रुपये प्राप्त करते और साथ में सिरोपाव और कभी-कभी घोड़ा भी पाते।

सामान्य कवि रु बर्जित बिबाद, संस्कृत कवि लहत सु सत प्रसाद॥
अैसो भासा कवि मति अनिद्ध, पंचास द्रम्म लहत सु प्रसिद्ध॥७४॥

इत्यादिन तै गुन घटि अनेक, बितरन क्रम बहुबिध तिन्ह बिबेक॥
पच्चीस आदि करि अंत पंच, रोह्यो न चालिस न बट हु रंच॥७५॥

हायन इक टारि रु लैनहार, पुनि लहत आइ सुहि सुहि प्रकार॥
इम खट ऋतु बारह मास अंत, अंहति झर मंडिय जस उंदत॥७६॥

दुव दुव सहस्त्र कोसन बिदूर, पुर लग्गे आवन बुधन पूर॥
उज्ज्वल रुचि बुदिंय तिहिँ अनेह, गिनिये कि पुरंदर धनद गेह॥७७॥

इसके अलावा जो सामान्य कोटि का कवि हो और संस्कृत में रचना करता हो भले ही वह शास्त्रार्थ न कर सके ऐसा कवि राजा रामसिंह से सौ रुपये पाता। बड़ी बुद्धिवाला नहीं होकर भी यदि कोई उसके राज में भाषा कवि है तो वह पचास रुपये पाएगा। इस तरह राजा रामसिंह के राज में घटते

गुणों के साथ क्रमशः दान की राशि भी घटती जाती है अर्थात् इसके उलट वह बड़ा गुणग्राही है। पच्चीस रुपये से कम किसी स्थानीय विद्वान अथवा कवि को नहीं देता और बाहर से आने वाले कवि को चालीस रुपये से कम नही देता। इसमें भी लेने वाला एक वर्ष (जिस वर्ष में मिला हो) छोड़ कर फिर से उतनी ही राशि प्राप्त करने का अधिकारी होता। इस तरह षट् ऋतु और बारहों मास इस यशअर्थी के यहाँ दान की झड़ी लगी रहती है। यह सुन कर दो-दो सौ कौस की दूरी से पंडित, कविजन इस बून्दी नगरी में आने लगे क्योंकि इस समय में बून्दी के राजा रामसिंह का घर जैसे इन्द्र अथवा कुबेर का घर हो रखा है।

तृन मान सबन मन धन तुलंत, अंकुरि मह सब अह सादि अंत॥
ऐसे उदारपन करि इलेस, प्रतप्यो परिपालत देस देस॥७८॥

आयुध सब साधक बहु उपाय, मृगयादि कुतूहल रमत राय॥
आनन कलिंदिका निलय इद्ध, सब ठाम तदपि अद्वैत सिद्ध॥७९॥

चोगान तुरग बाजी प्रचार, खेल्हैं बिदग्ध बिजई खिल्हार॥
हठि कुसल सिकारिन ठिगनहार, किरि केहरि ऐसे छल प्रकार॥८०॥

छलिकैं तिन्ह बेधत सर समुह , दै डाक थकावत गज दुरुह ॥
अवरोध जनन क्रीड़न अनेक, बिलसत विदग्ध इम एक एक॥८१॥

उत्सव का दिन हो या सामान्य दिन इस राजा के आगे सभी राजाओं का मन और धन तृणवत सा हो कर रह जाता है। ऐसा उदार राजा रामसिंह अपनी राजधानी बून्दी पर तपता है जो दूर-दूर के पंडितों, कवियों का पालनहार कहलाता है। यह राजा सभी प्रकार के शस्त्रों को चलाने में सिद्धहस्त होने से शिकार आदि में कुतूहल जगाने वाला मृगया का आशिक है। यमुना नदी यमराज की बहिन है इस कारण से उसका और यम का घर एक ही है सो उपरोक्त कर्मों में रामसिंह का मुख युमना का घर है (एक बार कह दिया वह लोह की लकीर) तब भी सभी ठौर अद्वैत मत ही सिद्ध है। नगर के चौगान में घुड़दौड़ हो अथवा घोड़ों की चाल का प्रदर्शन, यह उनमें हमेशा विजयी खिलाड़ी ही ठहरता है। घोड़ा चलाने में इतना सिद्धहस्त है कि शिकार में सूअर हो या सिंह, सभी को ठगता हुआ घोड़े से वह करीब से करीब तक

पहुँच जाता है। फिर छल से उन्हें अपने बाणों से बेध देता है। यह डाक (अकुंश के छोटे घाव) दे कर सवारी में दुस्सह हाथी को दौड़ा-दौडा कर थकाने में समर्थ है। यही नहीं आभ्यंतर (घर में खेलने के खेल चौपड़, शतरंज आदि) खेलों में भी यह राजा अपनी बुद्धि से एक-एक खेल, खेल सकता है अर्थात् वह उन खेलों में भी पारंगत है।

व्युत्थान बनत अेसे अनेह, अन्यत्र अधिप चित बोध एह॥
कवि चंड रु आंसानंद केर, सफली हुव सिच्छा स्वबय बेर॥८२॥

पौरानिक कै हुव सुख प्रबोध, रहिगो द्विज कै तस तदपि रोध॥
कवि चंड तैहुं हय अग्ग हंकि, अद्धय मय अंतहकरन अंकि॥८३॥

कवि सूरि सुभट सचिवन कलाप, अखिलन ख्रिात मन गुनन आप॥
जिहिं गुन प्रसार जन बिदित जोहि, स्वामी कहँ समुझात पठित सोहि॥८४॥

प्रभु मनु बसीकरन मनु प्रभाव, विद्या कि मोहिनी मनु बढाव॥
करि नैन बेन करि ध्रुव धनेस, जन जन मन पैठो जनु जनेस॥८५॥

इस समय ये सभी गतिविधियाँ देख कर तो राजा में विरोधाभास नजर आता है क्योंकि चतुर राजा के चित्त में एक ही ज्ञान रहना चाहिए। इस समय में चंडीदान मीसण और आशानन्द की शिक्षा राजा के संदर्भ में तो सफलीभूत हुई पर अपने-अपने तईं वे दोनों अलग-अलग रहे, क्योंकि चंडीदान मीसण को तो सुख कारी आत्मज्ञान हो गया पर आशानन्द ब्राह्मण के रोक लग गई अर्थात् उसे आत्मज्ञान नहीं हो पाया। यही कारण रहा कि अपने अंत:करण को अद्वैत मत से सिंहयुक्त कर कवि चंडीदान अपना घोड़ा हांकता हुआ उससे आगे निकल गया। वहीं राजा भी अपने कवियों, पंडितों, उमरावों और प्रधानों द्वारा सम्पन्न सारे कार्य कलापों में प्रदर्शित अद्वितीय गुणों का पारखी था। राजा रामसिंह अपने मातहतों के गुणों को जानकर मन में प्रसन्न होता। दूसरी ओर गुण के प्रसाद मे अपनी विशिष्टता दिखाने वाला कोई सामान्य जन भी राजा की निगाह से नहीं बच पाता क्योंकि वह ऐसा स्वामी था जो सब कुछ समझता था मानों मनु के प्रभाव मे अपना मन वश में कर वह मोहिनी विद्या पढ़ा हो। वह कुबेर के समान राज देख सुनकर निश्चय ही सभी कुछ सीख कर जन-जन के मन में जा बसा।

पिक्खन संलापन के प्रसाद, बिनु बेतन सेवन प्रकटि बाद ॥
इम सबन चित्त कर गहि इलेस, देखत बलि हारत द्रंग देस ॥८६ ॥

इम अब्द पंद्रहम बय प्रबेस, बिलसिय बिलास बैभव बिसेस ॥
हायन बिंसति तम लगबहार, सुख राजस लुट्ठिय नीतिसार ॥८७ ॥

अब सक नव गज बसु ससि अनेह, सुरभि रु निदाघ बिलसिय सनेह ॥
क्रम निज तजि सावन भद्द काल, बदल्यो ऋतु पाउस वह बिचाल ॥८८ ॥

बुट्ठिय जल ढिग ढिग त्रि चउ बेर , पैसो न समय घन प्रचुरघेर ॥
खर कर दहि दिस दिस सस्य खेत, अंग किसलय बीरुध तृन उपेत ॥८९ ॥

उसके देखने की निर्मलता और बोलने की मधुरता से कई व्यक्ति हठपूर्वक बिना वेतन ही उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। इस तरह सभी प्रजाजनों के चित्त को अपने वश में कर वह राजा ऐसा प्रतापी बना कि उसके भ्रकुटि टेढ़ी कर देखने मात्र से बलवान शत्रु अपना गाँव अथवा देश हार जाते अथात् छोड़ जाते। ऐसे राजा रामसिंह ने पन्द्रह वर्ष की आयु में प्रवेश लेते समय राज्य वैभव का विलास किया और बीसवाँ वर्ष लगते तक उस नीतिवान ने राज करने का सुख लूटा। अब विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ नवासी के आगमन पर बसन्त और ग्रीष्म ऋतु तो आराम से बीत गई पर पावस ऋतु के आने पर सावन और भाद्रपद माह में ऋतु बदल गई अर्थात् तीन चार बार हल्की वर्षा हुई पर समय पर मेघों ने प्रचुर बरसात नहीं की। खरड़ा पड़ने से (वर्षा की अनुपस्थिति की गर्मी से) दिशा-दिशा में खेती वाले खेत के खेत सूखने लगे। फसलों की कोंपलें और भूमि पर पसरने वाली लताएँ और घास तक सूखकर नष्ट हो गई।

अस्त्रप अस्त्र रु पच्छिम दु ओर , रचि पोन गोन किय भोन रोर ॥
पप्पीह प्यास खिन खिन बढात , घटि लास मयूरन आस घात ॥९० ॥

लालित्य बेल बन गिरिन लोप , किय झंखर भंखर किरन कोपि ॥
हाकार मचिग गत इस हु होत, श्रोतन चंडन गय तुट्टि श्रोत ॥९१ ॥

गडि भेक कमठ झख पंक गर्त,व्यसु सम बिचेष्ट बर्तन बिबर्त ॥
तउ तजन नक्र गन तरफरान जल प्रति पल छिति तल बिसत जात ॥९२ ॥

पवमान भान इत बिरचि पान, नियरात करत हंत छबि निपान ॥
जलजात रु कैरव कुमुद जाल, सैवल नल संजुत हुत बिहाल ॥९३ ॥

दक्षिण दिशा और पश्चिम दिशा से पवन ने चल कर (अकाल के लक्षणों ने) घर-घर में हाहाकार मचा दिया। पपीहों की प्यास क्षण-क्षण बढ़ने लगी और मयूरों की 'मेह आने' की आशा क्षीण हो गई और उनका नाचना थम गया । वनों, पहाड़ों से सुन्दर बेलें गायब हो गईं। सूर्य की किरणों ने कोप कर सभी ओर पेड़ों को सूखा कर झंखाड़ बना डाला। आश्विन माह के बीतते-बीतते चारों ओर हाहाकार मच गया। बड़े-बड़े जल स्रोतों की सीरें सूख गईं, पानी खत्म हो गया नतीजन मेंढक, मछलियाँ और कछुए सभी कीचड़ से सन गए। और वे मरे हुओं की तरह हतगति और निश्चेष्ट हो गये। उन सूखते जल स्रोतों को छोड़ने हेतु मगरमच्छ तड़फड़ाने लगे और पानी प्रतिपल जमीन में समाने लगा। पवन और सूर्य की किरणों ने पान कर सभी निपानों और छोटे जलाशयों को शोभाविहीन बना डाला। सभी ओर के कमल, गुलाब, श्वेत कमलों आदि का समूह मुरझा कर सूख गया। जलनीली (कुमुदनी) और कमलिनी के समूह उस बड़ी अग्नि में बेहाल हो कर सूख गए।

जनपद मरु जंगल सिंधु जत्थ, श्रमि सूरसेन हरियान सत्थ ॥
दुढार सेखवट्टी कुंढग, मेवार मुलक सुं पहार संग ॥॥९४
इत्यादि मनुज उज्जट अगार, सकुटुंब कढे नत भूख भार ॥
इन्ह सूचित देसत अंतराल, हड्डोतिय भुव हुव बिकल हाल ॥९५॥
कंकाल करंकन निचित कोट, इम पसुन अस्थि प्रतिगाम ओट ॥
तरु पत्र असन कब लग कराइ, पय नाम मिट्यो रव क्षाम पाइ ॥९६॥
कनिका दि अट्ठ जल घोरि केक, बहिकात सिसुन जन पय बिवेक ॥
जिम मृत तंपादिक ग्रामजन्य, बचि तिमहिँ रहे कहुँ बिरलबन्य ॥९७॥

मारवाड़, जांगल(बीकानेर), सिंध, सूरसेन, हरियाणा, के साथ ढूंढाड़ (जयपुर) और शेखावाटी जनपदों में अकाल के मारे बुरा हाल था। पहाड़ों वाला मेवाड़ भी अछुता न रहा। यहाँ के निवासी अपने उजड़े घर छोड़ कर, भूख के भार से, कुटुम्ब सहित पलायन करने लगे। इन बताए गए जनपदों के अलावा हाड़ोती (कोटा-बून्दी) का भी बुरा हाल था। ठौर-ठौर मरे हुए पशुओं की हड्डियों के ढेर लगे थे। आखिर लोग अपने पशुओं को पेड़ो के पत्ते

भी कब तक खिलाते वे भी खत्म हो गए। पशुओं की दुर्बलता के कारण दूध नामक शब्द ही विलुप्त हो गया। लोग गेहुँ का आटा पानी में घोल कर अपने बच्चों को दूध का भ्रम कराने लगे। जिस तरह पालतू जानवर मरे उसी तरह वन्य प्राणी भी मरने लगे। वन में कहीं-कहीं कोई बिरला जानवर जीवित रह गया।

पसु तृन बुसा दि प्रतिमहु न पाइ, खिल ग्राम्य जियत कहुँ कीट खाइ॥
नाकहिंजिम नाकुंन ऋच्छ रक्खि, कस्खत छिति कीटन स्वास सक्खि॥९८॥

इम चट्टि पिपीलक दीम आदि, जीवत कहुँ गो महिषी अजादि॥
तिन्हँ थनन ऐंचिं जन अधम ओहि, दित करुन लेत पय अरुन दोहि॥९९॥

दधि तस बिलोरि तजि तक्र दूर, कुभृतहु वह बेचन गहत कूर॥
निज सिसुन बेचि कहुँ अन्नआनि, खल बहु धारत दुरित खानि॥१००॥

ऐसो प्रवृत संकट अनेह, संबधित ठहस्यो नन सनेह॥
दयिता मारी पति इहिं दुकाल, हाहारव बाढिय असह हाल॥१०१॥

पशु तिनके-तिनके को मोहताज हो गए। उनमें तुप आदि का ज्ञान ही नहीं रह गया। और गाँवों में कीड़े खा कर कुछ पशु बच गए। जिस प्रकार रींछ अपना नथुना दीमक की बांबी (नाकुन) पर टिका कर श्वास की हवा के साथ उन कीड़ों को खीचता है उसी तरह चींटियाँ और दीमक चाट-चाट कर कुछ गाएँ, भैंसें और बकरियाँ जीवित रहने लगीं। इस पर भी अधम लोग इन पालतु जानवरों के थनों को चिंचोंड़ कर लाल रंग का (रक्तिम) दूध दोहने लगे फिर उस दूध को जमा कर दही बिलो कर छाछ को फेंकते हुए खोटी वृति वाले वे उस घी को बेचने लगे। कहीं पर लोग भूख मिटाने के लिए अन्न खरीदने हेतु पैसों के लिए अपने बच्चे बेचने लगे और इस तरह कुछ खा कर लोग जीवित रहने लगे। इस समय अकाल का ऐसा कठिन संकट आ उपस्थित हुआ कि संबंधियों के मध्य भी स्नेह नहीं बचा। इस दुष्काल के मारे पति अपनी ब्याहताओं को मारने लगे। अकाल की इस स्थिति में चारों ओर हाहाकार बढ़ा।

अति व्याकुल तजि इम देस उक्त, आये हड्डोतिय मान मुक्त॥
प्रभु बुल्लि सचित धात्रेय पास, करुनापर सासन किय प्रकास॥१०२॥

अंबार निचित अप्पन अगार, बरखन तैं चित सब धान्य बार ॥
उनके सब रुप्पय करन काल, बसुमति रस बिलसन जस बिसाल ॥१०३॥

जन रंक कुटुंबिय दुस्थ जानि, आसन चहि ओडैं आनि पानि ॥
अप्पहु तिन्ह भोजन अर्घ उज्झि, सब भंति बिसासहु पुण्य सुज्झि ॥१०४॥

बसु आढ्य कुटुंबी जे बिपन्न, उचितार्घ लै रु तिन्ह देहु अन्न ॥
नव कोस निकर भृत द्रम्म निष्क, व्है अधिक गोप गृह जिम हविष्क ॥१०५॥

लोग अत्यन्त व्याकुल हो कर अपना-अपना वतन छोड़ कर, स्वाभिमान त्याग कर, हाड़ोती की ओर आने लगे। इस समय राजा रामसिंह ने मन में करुणा उपजा कर अपने प्रधान धायभाई को बुलवाया और कहा कि हमारे भंडारों में बरसों से संचित अन्न का आगार है। यह उससे रुपये बनाने का काल था पर धरती पर अपना विशाल यश फैलाने का विलास करने वाले उस राजा ने गरीब-गुरबों और दरिद्री कुटुम्बों की पीड़ा को समझते हुए खुले हाथों से अन्न बाटंने का आदेश दिया। मूल्य रहित भोजन उपलब्ध करवा कर उसने सभी लोगों का विश्वास अर्जित किया और पुण्य कमाया। राजा ने कहा जो धनवान लोग अन्न के बिना व्याकुल हैं। उन्हें उचित मूल्य पर अन्न उपलब्ध करवाया जाए। इस तरह राजा ने अन्न के बदले आए रुपयों से अपने नये भण्डार भर लिये जिनमें मुद्रा और स्वर्ण का ढेर था। श्री कृष्ण की सम्मति से ब्रज के गोपों के घर में जो हवन हुए थे उनसे भी अधिक अन्न-यज्ञ यहाँ होने चाहिए।

सचिवहु निवेदि आकूत सोहि, अन्नालय खुल्लिय बिबिध ओहि ॥
प्रतिदेस पहुँचि तस जस प्रसार , द्रुत आये जे खिल तेहु द्वार ॥१०६॥

इम अल्प अर्घ किय कल्प अन्न, बसु दुर्बिध निबहे जिम बिपन्न ॥
रहि मुल्य आढ्य देसन परत्र, अष्टमलव ता सन लहिय अत्र ॥१०७॥

इहिं मोल तोल जिम कोल ऊख, भजि भजि जन आपे भनत भूख ॥
बेचे जे अर्भक जननि बप्प, उनकों छुराइ बसु अत्थि अप्प ॥१०८॥

जाने जिम जाके बर्ण जाति, ते भ्रष्ट होने दिय न सिव ताति ॥
कंटक दुकाल इम अन्न सत्र, अधिपति बिस्तारिय जस अमत्र ॥१०९॥

राजा का अभिप्राय समझ कर सचिव ने सभी जगह अन्नालय खुलवा दिए। इससे देश-देश में राजा का यश फैला और यह सुन-सुन कर शीघ्र ही भूखे लोग राजा के द्वार पर आने लगे। इस तरह कम मूल्य से अन्न कल्प किया गया जिससे धरती के विपन्न और भूख से व्याकुल लोगों का निर्वाह हुआ। जो धनवान लोग अभी पराये देशों में रह गए थे उन्होंने भी लघुता धारण कर यहाँ से अन्न खरीदा। कम मूल्य पर यहाँ मिलने वाले अन्न पर लोग इस तरह झपट पड़े जैसे सूअर गन्ने के खेत पर लपकता है। लोग भूख-भूख चिल्लातें हुए यहाँ भाग-भाग कर आए। जिन लोगों ने भूख के मारे अपने बालक, और माँ-बाप को बेच डाला था उनको राजा ने अपनी ओर से धन देकर खरीदने वालों के अधिकार से छुड़वाया फिर उनकी जाति, वर्ग और गोत्र पूछ कर उन्हें जातिच्युत और वर्णच्युत होने से बचाया। इस तरह राजा ने इस दुष्कर दुष्काल के समय अन्न का यज्ञ सम्पन्न कर अपने यश का विस्तार किया।

प्रतिदिन चित सहसन दम्म पूर, दुख भूख जनन हुव जनन दूर।।
जिन सिसुन लये कुल ग्राम जानि, तिनके संबधिन हू हित तानि।।११०।।

बुल्लि रु मिलाइ परिचय बिबेक, सह बास निबाहे इम अनेक।।
बिप्रादि बर्ण आश्रम बिधान, सब ब्रात्यन किय जिहिं जो समान।।१११।।

जिनके बसुंधा बसु निज निबाह, ते पहुँचे सु समय घरन ताह।।
जिन्ह रंकन रंचन वृत्ति जोग, प्रभु सीस बमे ते सुख पुरोग।।११२।।

लक्खन जमाइ इम पुण्य पारि, बलि कोस दम्म लक्खन बिथारि।।
इम यह दुकाल अंकिय अधीस, सब द्वीप जनन जस बहिय सीस।।११३।।

प्रतिदिन हजारों लोगों को दान देकर और अन्न बाँट कर राजा ने लोगों के भूख का दुःख दूर किया। राजा ने जिन बालकों को खरीदने वालों से छुड़वाया था उनके कुल और गाँव पूछ कर उनके संबंधियों को बुलवाया। आने पर परस्पर परिचय करवा कर उन का साथ-साथ निर्वाह किया अर्थात् उनको भी अन्न उपलब्ध करवाया। अकाल के इस कठिन समय ने ब्राह्मण वर्ण को शूद्र वर्ण की तरह का बना दिया था उन्हें वापस अपना ब्राह्मणत्व का पद दिलवाया। जिन लोगों ने अपने गुजारे के लिए अपना धन खर्च कर दिया और अपनी जमीन तक बेच डाली थी उन्हें राजा ने उनका घर और भूमि

वापस उपलब्ध करवा कर अपने घर भेजा। जो लोग गरीब हो कर भीख मांगने लगे थे वे जब बून्दी के स्वामी की शरण में आ गए तो उन्हें सुख का समूह प्राप्त हुआ। ऐसे लाखों विस्थापित लोगों को फिर से बसा कर कमाने के लिए राजा रामसिंह ने अपने खजाने से लाखों रुपये खर्च किए। इस तरह इस अकाल ने इस द्वीप पर बसने वाले सारे लोगों के भाल पर हाड़ा राजा के नाम को अंकित कर दिया।

निज जनन त्रिह्ययन लखि निबाह, लिय खिल करि दुर्लभ पुण्य लाह।।
जस दूत बुलाये सुकवि जूह, आनायक कोटिन कोटि ऊह।।११४।।

मूढहु तदीय कुल बिरचि मान, जाचक सब पोखे तिम सुजान।।
दलि दलि दयालु दुस्सह दुकाल, किय नृप सुभांड पहिलें सुकाल।।११५।।

दब्बत तिहिं घन धन अन्न दान, ऐसो सुकाल किय चाहुवान।।
इहिं जस उफान दिस बिदिस ऐन, हतरोचि ह्रीण नत नृपन नैन।।११६।।

हाड़ा राजा ने अपने प्रजाजनों के तीन वर्ष के निर्वाह की व्यवस्था कर पुण्य का लाभ अर्जित किया। उसने यश के दूत रूप सुकवियों के समूह को अपनी ओर आकर्षित किया और इस तरह उस नायक राजा ने अपने यश के जाल में करोड़ों-करोड़ लोगों को फँसाया। इस समय कुछ मूर्खो ने अपने कुल का यश याद कर मान किया पर उस सुजान राजा ने ऐसे सभी का पोषण किया। इस दयालु राजा ने दुस्सह अकाल को दंड दे देकर पूर्व समय में हुए राजा सुभांडदेव की बराबरी की। इस चहुवान राजा (रामसिंह) ने बहुत सारे लोगों को धन और अन्न का दान कर, अकाल को दबा कर, उनके लिए अकाल की जगह सुकाल बना दिया। इस कार्य से देश-विदेश के घर-घर में राजा के यश ने उफान पा कर शेष सारे राजाओं को कांति रहित और लज्जित किया जिससे उन राजाओं ने अपने नेत्र नीचे किए।

दोहा

ऐसो असह दुकाल यह, दिनदुल्लह कुल दीप।
सु दुख दब्बि पोखे सकल, हड्डुन हेलि महीप।।११७।।

जनपद हुव उज्जट जिते, बचि हड्डोतिय बास।
स्वस्व बसाये ग्राम गृह, पुनि तिन स्वर्घ प्रकास।।११८।।

ऐसे असह्य अकाल में उस कुलदीपक राजा ने अपने सारे प्रजाजनों के कष्ट को मिटा कर उनका पोषण किया। हाड़ाओं के सूर्य उस राजा ने जो लोग देश से विस्थापित हो गए थे और जिन्होंने हाड़ोती का निवास छोड़ दिया था उन्हें अपने-अपने गाँव में ला कर फिर से बसाया। उन्हें अपनी ओर से मूल्य चुका कर फिर से अपने-अपने घर में बसाया।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवम राशौ बून्दीन्द्र रामसिंह चरित्रे आगामिग्रन्थगुम्फनवर्णसंबन्धाख्यालंकारपरित्यागसूचन ग्रन्थकर्तृपितृचण्डीदान मृगयामद्यपानादिदुष्टाचरणसूचनपदातितीर्थयात्रा-विधानाखिलपापमुक्तवेदान्तज्ञान समधिगमन प्रतिवर्षनियतीकृत-रामसिंहदानविवेचन एकोननवत्युत्तराष्टदशशत तमसंवत्सरदुर्भिक्ष रामसिंहोदारत्ववर्णन मेकादशो मयूखः आदितस्त्रिसप्तत्युत्तरत्रिशततमो मयूखः ॥३७३ ॥

श्री वंशभास्कर महाचम्पू के उत्तरायण की नवमी राशि के रामसिंह चरित्र में, आगे की ग्रन्थ रचना में 'वर्ण सम्बन्ध' नामक अलंकार के छोड़ने की सूचना करना, ग्रन्थकर्ता सूर्यमल्ल के पिता चंडीदान के शिकार और मद्यपानादि दुष्टाचरणों की सूचना करने के बाद पैदल तीर्थ करके सब पापों से मुक्त होकर वेदान्त के ज्ञान में प्राप्त होने का कथन, प्रत्येक वर्ष में महारावराजा रामसिंह के दान नियत करने का विवेचन, अठारह सौ नवासी के दुर्भिक्ष में रामसिंह की उदारता के वर्णन का ग्यारहवाँ मयूख समाप्त हुआ और आदि से तीन सौ तिहत्तर मयूख हुए ।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

अन्वय हड्डुन इंद्र इम, देसन दलित दुकाल।
निबहे सब आपन्न नर, जे सीमागत जाल ॥१ ॥

भूपति बिक्रम भोज की, पद्धति लग्गि पवित्र।
दहि दुभिच्छ महि मंडियो, चाहुवान जस चित्र ॥२ ॥

हे राजा रामसिंह! हाड़ा वंश के राजा (आप स्वंय) ने इन्द्र के समान अपने देश में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष के समय सभी आपदाग्रस्त प्रजाजनों का निर्वाह किया। इसके साथ उसने उन मनुष्यों को भी भूख से मरने नहीं दिया जो उसके राज की सीमा में आ गए।

षट्पात

नभ नव बसु ससि नियत सुखद लग्गत सुकाल सक,
बारिद अभिमत बरसि दरसि आसार महोदक।
औषधि गन अन्नादि बिबिध निपजे सीमा बढि,
कर्षुक कुल मन मुदित उदित कृषि ताव चाव चढि।
बहु बहुरि देस उज्जट बसे प्रान बारि बुंदीस पर।
निज सत्रु आदि मंडल नृपहु पढन लगे नत नुति प्रसर॥३॥

विक्रम संवत् के सुखद वर्ष अठारह सौ नब्बे के लगते ही (जो सुकाल वर्ष था में) मेघों ने अभीष्ट वर्षा करते हुए ऐसी मेघधाराएँ दिखलाईं कि सारे तालाब लबालब भर गए। औषधि और अन्न भी फिर उसी अनुपात में निपजे। किसान कुल के सभी लोगों का मन मुदित हुआ और उनमें कृषि कर्म का उत्साह बढ़ा। कई उजड़े हुए गाँव-कस्बे फिर से आबाद हुए। बून्दी के राजा पर न्योछावर जाते उन लोगों ने राहत की सांस ली कि चलो जीवित वापस लौटने योग्य हुए। इस मंडलीक राजा के सारे शत्रु नतमस्तक हुए और वे नम्र हो कर स्तुति करने लगे।

बंदी इक तिहिँ बेर सहर बुंदी पत्तो सजि,
सावन लग्गत समय भ्रमत अतिसीम दर्प भजि।
बाम मग्ग सठ बहत रहत रत पंच मकारन,
तुलसी मालहिँ तरजि रुद्र अक्षहिँ करि धारन।
नैकन छिपाइ बरतैं निलज स्वपचादिक सब कृत्त असन।
स्वपचीहु गम्य जाकेसुरत दुरतन गज दरसन दंसन॥४॥

इसी सुकाल वर्ष में एक बंदीजन (भाट) बून्दी नगर में आया। वह कई राजाओं के राज में घूमता हुआ दर्प से भरा यहाँ सावन मास के आरंभ में आया। वह दुष्ट वाममार्गी मत को मानने वाला और 'पाँच मकार' में रत्त रहने वाला था। उससे तुलसी की माला छोड़ कर रुद्राक्ष की माला पहनना शुरु किया था। वह किसी से यह बात भी नहीं छिपाता था कि वह शूद्र के घर का अन्न भी खाता है। यहाँ तक कि शूद्र स्त्री पर गमन भी उसके लिए त्याज्य नहीं था और हाथी के दाँतों की तरह उसके पाप छिपे नहीं थे अर्थात् उसके पाप भी प्रकट रूप से चर्चा में थे।

चंडबाद कवि चंड इहां प्रभु के अनुकंपित,
तिन प्रति मुरि धात्रेय सचिव मोहन अनख्यो इत।
भनि सहाय वह भट्ट बुल्लि बुंदिय रुचि रक्खिय,
अप्प सचिव अवलंब भयो प्रभुकवि परपक्खिय।
करि निज सु भट्ट दै छन्न कछु अधिपति प्रति किन्नी अरज।
आयु प्रवीन कवि भट्ट इक गुन की जो कढ्ढहिं गरज ॥५॥

यहाँ बून्दी में राजा रामसिंह की अनुकंपा में रहने वाला, शास्त्रार्थ करने में प्रचंड चंडीदान मीसण जो राजकवि था उस से राज का प्रधान मोहन धायभाई किसी बात को लेकर रुष्ट हो गया। अपनी नाराजगी की बदौलत प्रधान ने उस भाट को बुला कर अपने घर में प्रश्रय दिया, यह सोचते हुए कि यह भाट चंडीदान को नीचा दिखाने में मेरी मदद करेगा। हे राजा! आपका सचिव इस तरह आपके कवि का शत्रु हुआ। उसने इस भाट को गुप्त रूप से कुछ धन दिया और फिर राजा के पास जा कर निवेदन किया कि हमारे नगर में काव्य शास्त्र में प्रवीण एक नया कवि आया है जो सारे कवियों की गरज सारने में सक्षम है।

दोहा

सुंकवि चंड आदिक सदा, प्रचुर रहैं प्रभु पास।
तिन सबसों यह अधिकतम, बंदी स्वगुन बिलास ॥६॥

हे राजा! चंडीदान आदि श्रेष्ठ कवि आपके पास बहुत रहते है पर मैं जिसका जिक्र कर रहा हूँ वह नया भाट कवि अपने गुणों में इन सभी से बढ़ कर है।

षट्पात्

भूपहिँ मोहन भनिय भट्ट यह अद्वितीय भव,
रामचंद्र अभिधान बाद बादन बिजयी हुव।
तिन दिवसन कवि तात स्वीय प्रभु को लहि सासन,
किय भारत उद्योग पर्ब नरभाखा भासन।
कवि तत्थ एह संधा करिय सुर नर बानी सब्दमय।
इम अर्थ बिपुल अच्छर अलप जुहि आनैं सुहि लै बिजय ॥७॥

प्रधान धायभाई मोहन ने राजा से आगे कहा कि यह जो नया अद्वितीय कवि हमारे नगर में आया है उसका नाम रामचन्द्र है और कई शास्त्रार्थो में विजयी रहा है। इन्हीं दिनों ग्रथंकार के पिता चंडीदान मीसण ने अपने स्वामी की आज्ञा से महाभारत के उद्योगपर्व का अपनी देशी भाषा में पुनर्सृजन किया था और इसे सृजित करते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरी तुलना में संस्कृत और देशी भाषा के शब्दों में, इस प्रकार थोड़े अक्षरों में अधिक से अधिक अर्थ भर देगा वह मुझसे जीता हुआ माना जाएगा।

सुरबानिय भव सब्द बिदित जे पुनि नर बानिय,
इह द्वि बिधहि उद्योग पर्ब अंतर सब आनिय।
पंच अनुष्टुप प्रमित अर्थ अैंचिय इक अंतर,
संधा लिय तहँ सुकवि दिपत जस पूरि दिगंतर।
बहु अर्थ अलप अच्छर बिहित जो बिरचैं कहुँ अन्य जन।
तो खुल्लि पाय टुड्डुर तजौं ध्रुव न बजौं अब काव्यधन॥ ८॥

चंडीदान मीसण ने मूल संस्कृत के शब्दों के समानान्तर देशी भाषा में जो शब्द प्रयुक्त किये, दोनों का अन्तर उद्योग पर्व की पुनरर्चना करते हुए स्पष्ट कर दिया था अर्थात् मूल रचना के बरख्स अपनी देशी भाषा की रचना को ऐसे रखा कि पाठक दोनों भाषाओं के अन्तर का रसास्वादन कर सकें। उसने 'उद्योग पर्व' के अनुष्टुप छन्द में निबद्ध पाँच-पाँच श्लोकों का अर्थ अपने एक छन्द में भर डाला। ऐसे समास रूप अपनी उत्कृष्ट रचना पर गर्व करते हुए कवि ने प्रतिज्ञा कर डाली कि अन्य कोई कवि जो इस तरह समास में मुझ से श्रेष्ठ रचना कर दिखा देगा तो मैं अपने पाँव में पहनने का यह लंगर (प्रतिज्ञा स्वरूप पहना हुआ) पहनना छोड़ दूंगा और स्वयं को, काव्य ही जिसका धन है ऐसा कवि कहलाना बंद कर दूंगा।

करि संधा कवि चंड धीर लंगर पय धारिय,
कहिय जोहि इम करहु कवि सु जय जस अधिकारिय।
अर्जुन शृंखल अग्ग द्विजन भोजन हित देहैं,
जयपट्टहु लिखि जाहि सोंपि गुरु गिनि गुन गैहैं।
यह नियम धारि किय ग्रंथ वह नाम 'सारसागर' नियत।
निर्भय नियोग प्रभु को स्वसिर जु किय सुजनमुख मुख जियत॥९॥

ऐसी प्रतिज्ञा कर धीर कवि चंडीदान मीसण ने अपने पाँव में लंगर पहना और कहा कि जैसा मैंने कहा है यदि कोई अन्य कवि उसे संभव बना देगा तो वह मुझसे जीतने का यश पाने का अधिकारी होगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं उस अवसर पर चाँदी की श्रृंखला की दक्षिणा के साथ बून्दी के सभी ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज दूंगा और विजय का पत्र (पट्टा) लिखकर मुझसे जीतने वाले को सौंप दूंगा। यही नहीं मैं उसे काव्य-विद्या का विद्यागुरु मानूंगा और उसके गुण गाऊँगा। ऐसी प्रतिज्ञा के साथ कवि चंडीदान मीसण ने 'सार सागर' नामक अपना ग्रंथ बनाया। अपने राजा की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसने जो काव्य बनाया वह आज भी सुजान श्रोताओं के कंठों में जीवित है।

बंदी इक ब्रजलाल कृष्णधात्रेय आढ्य किय,
अधिराजहिँ करि अरज ग्राम गौरव गज अप्पिय।

सचिव कृष्ण तनु तजत अग्ग सहि साचि खग्ग उर,
सुत तस मोहन सचिव धर्‌यो अधिकार राज्य धुर।

प्रभुकेर कृपाभाजन परम जानें कवि चंडादि जन।
तिन्ह मानहान मिटवान तिम मोरन लग्गो स्वामि मन॥१०॥

पूर्व में बून्दी का एक भाट ब्रजलाल नामक था जिसे पूर्व प्रधान कृष्णराम धायभाई ने धनाढ्य बनाया। प्रधान ने अपने राजा से निवेदन कर उसे एक गाँव और हाथी दिलवा कर उसका गौरव बढवाया। अपनी छाती पर तलवार का एक तिरछा घातक प्रहार झेल कर जब कृष्णराम ने अपना शरीर त्यागा तब उसके बड़े बेटे मोहन धायभाई ने बून्दी का प्रधान हो कर राजकाज संभाला। उसने जब यह देखा कि राजा का खास कृपाभाजन तो चंडीदान मीसण बना हुआ है तो ईर्षा स्वरूप वह उसी दिन से चंडीदान की मान हानि करवाने में तत्पर हो गया और अपने स्वामी का मन पलटाने के लिए भी हर संभव प्रयत्न करने लगा।

तब अक्खिय धात्रेय अरज इम प्रभुहि उपव्हर,
चित्र बढत कवि चंड नहत जयमय पय लंगर।

कवि अनेक भुवचक्र परत पर जुरत परिच्छा,
संसद बानिय समर सकल उघरैं धृत सिच्छा।

भारती जुद्ध रस स्वाद.भर एहु लेहु आनंद इन।
कवि चंड रचत संधा कुसल करिये बिभव बिलास किन ॥११॥

इसी बीच अवसर पा कर एक दिन प्रधान धायभाई मोहन ने राजा को एकान्त में कहा कि हे स्वामी! आश्चर्यजनक बात है कि इन दिनों चंडीदान मीसण अपने पाँव में विजय का लंगर पहने रहता है। वह दिनोंदिन दर्प में बढ़ता जाता है। इस पृथ्वी पर अनेकानेक कवि हैं कोई बराबरी वाला आकर इससे भिड़ेगा तभी इसके काव्यत्व की परीक्षा होगी। सभा में वचनों का समर रचा जाए तो सभी की परख हो जाएगी। हे स्वामी! इसलिए आपसे प्रार्थना है कि ऐसा शास्त्रार्थ करवा कर आप सरस्वती के युद्ध के रस का आस्वाद लें। इस प्रकार कवि चंडीदान मीसण ने जो प्रतिज्ञापूर्वक रचना की है उसके वैभव का विलास भी हो जाएगा।

प्रभु अक्खिय जहँ प्रीति सो न मेटहु कूटाश्रय,
सुहृदभाव जहँ सुनत तहँ न छल लेस कहन नय।
पुनि असहन यह पाप महत बिस्वासघात मय,
उज्झहु स्वमति उपाय एह बिधि बलित टारि रय।
तत्थ्य रु अतत्थ्य न दुरैं तदपि जिहिं जैसो कहि देत जग।
दुख सहत चिंति करिकैं हुरव मिलित द्रोह यह धीर मग ॥१२॥

यह सुनकर राजा ने कहा कि जो प्रीति है उसे छल-कपट का आश्रय लेकर मत तोड़ो! नीति का कथन है कि जहाँ सुहृदभाव हो वहाँ लेश मात्र भी छल नहीं होना चाहिए। फिर विश्वासघात को असहनीय पाप माना गया है। इसलिए तुम्हें भी मेरी राय है कि तुम भी अपनी इस तुच्छ उपाय वाली बुद्धि को छोड़ दो और टेढ़े मार्ग के वेग को लगाम दो। सत्य और असत्य छिपाने से कभी नहीं छिपते। जगत जो जैसा है उसे वैसा कह देगा। सोचा हुआ द्रोह का गीदड़पन जिस मार्ग पर बढ़ता है वह बड़े दुःख का रास्ता होता है।

यातैं कपट उपाय कवि न कोऊ आकारहु,
बहु आवत बिनु जतन बिबिध पावत बसु बारहु।
जो संभव बनिजाइ बिक्खि लैहैं बानी बल,
पर दुख चिंतन पाप त्वरित लैजाइ रसातल।

सुनि यह निदेस मोहन सचिव बिन्नति किय सब स्वामि बस।
प्रभु के प्रसाद जो धर्मपथ सु सब गम्य रहिहैं सरस ॥१३॥

इसलिए छल-कपट के उपाय से किसी कवि को मत बुलाओ। यहाँ तो वैसे भी कई कवि आते हैं और बिना ही विविध यत्नों के हमसे धन का समूह पाते हैं। कभी संयोग हुआ तो उसका भी वाणी बल हम देख लेगें पर दूसरों के लिए दुख की सोचना पाप है, जो आदमी को रसातल में डालता है। अपने स्वामी से ऐसा सुन कर प्रधान धायभाई मोहन ने निवेदन किया कि स्वामी की कृपा का जो धर्मपथ है हम सभी उसी का अनुसरण करेंगे अर्थात् जैसी प्रभु की आज्ञा!

आवन लगि तिन अहन प्रचुर भूसुर पौरानिक,
मागध बंदिय सुमति बहुत बिरचहिं कवि बानिक।
पुब्ब कथित क्रम पाइ घरन जावत लै धन घन,
तिहिँ अनेह धात्रेय पाप प्रेरिय कपटीपन।
ब्रजलाल भट्ट वह बुल्लिकैं कुटिल उपव्हर मंत्र किय।
बुन्दिय अधीन बंदिन बहुरि लै बिच सम्मति सबन लिय ॥१४॥

इन्हीं दिनों प्रचुर मात्रा में अर्थात् बड़ी संख्या में ब्राह्मण पंडित, चारण, भाट और बंदीजन बून्दी आने लगे जो सुमतिपूर्वक रची हुई अपनी रचनाएँ सुनाते। पूर्व में बताये अनुसार वह ब्रजलाल भाट कवि अब राजा द्वारा प्रदत बहुत सारा धन अपने घर ले जाने लगा अर्थात् राजा की कृपा से इनाम पाने लगा। ऐसे समय में पाप से प्रेरित धायभाई मोहन ने कपट विचारा और ब्रजलाल भाट को अपने घर बुला कर उससे एकान्त में गुप्त सलाह की और बून्दी के राज में जितने भी भाट थे उनकी भी इसमें राय ली अर्थात् अपने कार्य में उनकी भी सहमति ली।

लंगर पय धृत ईरखा को गिनि आकर,
लै ढिग वह ब्रजलाल चविय कवि चंड चंडतर।
या कवि को उतकर्ष सह्यो नन जात सदस्यन,
हमहु रुद्ध मुख होहिँ बनत उत्तर कहुँ बस्यन।
कविचंड मान निर्मूल करि अप्पन रहहिँ अभीत इम।
तस अर्द्ध कविहु पावहिँ ततो जयी करहिँ निज पच्छ जिम ॥१५॥

कवि के पाँवों में लंगर देख कर ढेर सारी ईर्षा मन में लिये सचिव, ब्रजलाल को अपने साथ ले कर भाटों के समूह के सम्मुख गया और कहने लगा कि शास्त्रार्थ में प्रचंड वह चंडीदान अपने आप को बहुत बड़ा विद्वान समझने लगा है। उसका यह बड़प्पन सभासदों के लिए भी असहनीय है। हम सभी यदि उसके विरोध में हो कर उसे टोकें तो उससे उत्तर देते न बनेगा और इस तरह हम चंड कवि का मान मर्दन कर निर्भय हो जाएंगे। यदि उससे आधी काव्य मेधा वाला कवि भी हमें मिल जाए तो हम उसका पक्ष ले कर शास्त्रार्थ में उसे विजयी बना देंगे।

भन्यों सचिव सुनि भट्ट बदिय तुमरे सासन बस,
रामचन्द्र अभिधान इक्क बंदिय जाहिर जस।
वृत्ति नाँहिं बाहुजन पज्ज बर्द्धकि तस पालक,
पै सुनियत कवि निपुन व्यूह ऊहन उत्तालक।
जय आस प्रथम बिनुही जतन पच्छन तो तावक प्रबल।
इक तंतु चटक तोंरैं अलप मिलि बहु गज मोरैं मिसल ॥१६॥

सचिव मोहन धायभाई का ऐसा कहा सुन कर भाटों ने कहा कि आपके हुक्म के अधीन वह रामचन्द्र नामक भाट कवि है, वह बहुत यशस्वी है। अभी उसके पास क्षत्रियों की वृत्ति नहीं है और शूद्र खाती (सुथार) उसका पोषण करते हैं। सुना है कि वह अपनी तर्कबुद्धि से तर्कों के समूह को उड़ाने वाला है और काव्य में निपुण है। यदि उसे ले आया जाए तो बिना ही अतिरिक्त प्रयत्नों के वह जीत जाएगा, फिर आप का पक्ष तो प्रबल है ही। हे धायभाई! एक अकेले तंतु को तो छोटी चिड़िया भी तोड़ डालती है पर बहुत सारे तंतु (हम सभी की ओर संकेत है) मिल जाएँ तो वे हाथी को रोकने में भी समर्थ होते हैं।

स्वामी प्रति नटि सचिव ताहि न सक्यो बुलाइ तब,
ब्याह ब्याह बाहुजन अटन ब्रजलाल मिल्यो अब।
करि दुमंत्र साकूत पिहित समझाइ प्रयोजन,
सो तिहिं आवन सज्ज बिरचि आयो गृह अप्पन।
सक गगन अंग बसु ससि समय........................ ॥

अपने स्वामी के समक्ष उस (रामचन्द्र) को नहीं बुलाने की बात जो कह चुका था सचिव, इसलिए उसे तो नहीं बुला सका। इधर वह ब्रजलाल भाट जो क्षत्रियों के विवाह-अवसरों में जगह-जगह जाता था। एक विवाह में उसे रामचन्द्र मिल गया। दोनों ने मंत्रणा की और उसे अपना गुप्त प्रयोजन समझा कर ब्रजलाल ने उसे पूरी तैयारी के साथ आने को कहा। अपनी कार्य-योजना रामचन्द्र को समझा कर वह ब्रजलाल वापस बून्दी आ गया। विक्रम संवत् के वर्ष अठारह सौ नब्बे.................................।

॥ सूर्यमल्लस्य काव्यं समाप्तमिदम्॥

(सूर्यमल्ल मीसण द्वारा रचित असम्पूर्ण 'वंशभास्कर' समाप्त)

२३ सितम्बर, २००५
१२ बज कर ३५ मिनिट
स्थान :-७४, बलदेव नगर, माकड़वाली रोड़,
अजमेर (राज.)

परिशिष्ट

किसी पुस्तक के अंत में जोड़ा हुआ वह अंश जिसमें ऐसी बातें दी गई हों जो उसकी उपयोगिता बढ़ाने में सहायक हो वह शाब्दिक रूप में परिशिष्ट कहलाता है। संपादक की मंशा यह थी कि वंश भास्कर के अंत में उस सहायक सामग्री की झलक पाठकों को नजर आये जिनके आधार पर ग्रंथकर्ता सुकवि सूर्यमल्ल ने इसे रचा। ऐसी सामग्री में सामान्यत: वंशावलियों का समावेश होना था। ग्रंथ निर्माण के समय में हुआ कवि का ग्रंथ विषयक पत्राचार भी स्थान पा सकता था पर यहाँ एक समस्या आ खड़ी हुई चूंकि वंश भास्कर अपूर्ण रहा और सूर्यमल्ल ने इसे छोड़ने के बाद कभी पूरा करने की नहीं सोची यद्यपि ग्रंथ-रचना छोड़ने के बाद कवि बहुत समय विद्यमान रहा।

ऐसी परिस्थिति में ग्रंथ की अन्तिम राशि को बूंदी के राजा रामसिंह ने सूर्यमल्ल के दत्तक पुत्र मुरारीदान से पूरा करवाया। यहाँ संपादक की भूमिका सूर्यमल्ल के ग्रंथ तक ही सीमित रहनी चाहिए थी वह रही क्योंकि ' अर्थ प्रबोधनी ' इस टीका में सूर्यमल्ल द्वारा रचित पद्य-गद्य का ही अनुवाद दिया गया है लेकिन पाठकों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए परिशिष्ट में वह पद्यांश भी दिया गया है जो मुरारीदान द्वारा कुल आठ मयूखों (इनमें से एक चौदहवें मयूख को छोड़ कर) में रचित है। परिशिष्ट की इस सामग्री में एक मयूख जो संस्कृत छन्दों में निबद्ध है उसके लिए कहा जाता है कि राजा रामसिंह की तीर्थयात्रा के प्रकरण वाला वह मयूख सूर्यमल्ल ने ग्रंथ निर्माण के साथ ही रचा था इसलिए उसका हिन्दी अर्थ दे दिया गया है - संपादक

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

बसु नव गज भू मित बरस, समय सोधि सुभ भूप।
पहु यात्रा प्रारंभ कों, निज मन किय अनुरूप॥ १॥
श्रीभट्टजी महाराज सह, प्रभु दुव सासन पाई।
उमरावन पंचन अखिल, नरपति हार्द सुनाइ॥ २॥

षट्पात्

इम बिचारि अजमेर पत्र मंडिय पुहवीपति,
बाहुल बदि तिथि तीज सोमवासर साहब प्रति।

रजीडंट अंग्रेज सदरलैनहु सब सासक,
अरू अजंट चारलिस रिचारडिस तिनको आसिक।
कलकत्त नगर स्वामी सबन, तहँ सु लार्ड प्रति पत्र तिम।
लिखि अट्ठ कलम जग जस रहत, अधिपहिँ भेजिय छिप इम ॥ ३ ॥

पद्धतिः

मम सेना सन्निधि पंथ मान, व्है नाँहिँ धर्म गो प्रान हान॥
प्रति पंथ मम सु दरजा प्रमान, व्है सलक सलामी न तहँ हान ॥ ४ ॥

सेना अरू पुरजन सत्थ मोहि, जो नागझाग रत रहत जोहि॥
लखि ताहि पंथ मासूल लैन, व्है हत्थ अमल तो रोष व्हैन ॥ ५ ॥

पुनि दुग्ग थान जो व्है प्रसिद्ध, सब जन हम जावै सस्त्र सिद्ध
बलि चक्र माँहिँ जो सस्त्रबंध, सो नाँहिँ रोक पावै सुसंध ॥ ६ ॥

पुनि पथ स्नानयात्रा प्रसंग, अंतेउर उतरैं जहँ उमंग॥
जो नीच उच्च व्है पुहवि जत्थ, तो व्है प्रबंध हम तोर तत्थ ॥ ७ ॥

उतरैं जो हम जिहिँ थान आय, पुनि स्नान निमित्तक पट्ट पाय॥
बनवावैं हम तापैंही बात, रोधक, नह बुल्लैं दिन रू रात ॥ ८ ॥

हमरेहि सत्थ व्हैं नयन नालि, आवै इम भोलिन नालि नालि॥
तस सलक सलामी नित्य माग, जोकोहु हुकम व्है सर्ब जाग ॥ ९ ॥

कट्ठाँदि बस्तु सब प्रति मुकाम, दल मामक नैं लै सुविधि दाम॥
दृढ चित्त अग्ग व्है थानदार, सबकों सु दिवावैं वस्तु सार ॥ १० ॥

खत बीच अट्ठ कलमां लिखाइ, जो तूर्ण चार अजमेर जाइ॥
अर्प्पित किय साहब हत्थ अैन, लै त्वरित बंचि दल सदरलैन ॥ ११ ॥

प्रतिउत्तर भेजिय इम प्रजेस, अधिपति सु अन्यतर जिम असेस॥
जो क्रम सु सनातन तिन जबाब, सो सब व्हैजैहैं तिहिँ हिसाब ॥ १२ ॥

तिन दिवस जहाँ व्यवहार तत्थ, असाप दृढ भेजिय तहँ सु अत्थ॥
इम करि रु सर्ब भूपति उदार, साज्पादि श्राद्ध सास्त्रानुसार ॥ १३ ॥

श्रीरंग सिष्टि लै पुनि रसेस, क्रमकरि रू परिक्रम पुर असेस ॥
सुद्धांत सहित पुनि किय प्रयान, दिय रंक रू भूसुर अमित दान ॥ १४ ॥

पहु लियउ भीम पट्टप कुमार, तिम कियउ कुमार अर्जुन तयार ॥
गोवर्धन तदनुज गुन गरीय, बचना सु सिष्टि भूबर बरीय ॥ १५ ॥

पथि माता पूजन करि प्रजेस, बलि किय सिकार बुरजहि प्रवेस
सित पोष द्वितियांऽगिरस वार, नाड़ी त्रय मध्यहि रजनि कार ॥ १६ ॥

कोटेस राम प्रति अब्द काज, भेजे पउसाक सु प्रीति भाज ॥
सो पत्र सहित लै रत्नलाल, आइउ पंचोली तहँ उताल ॥ १७ ॥

घटिका सब बित्तत जब सु घस्र हाजरि बितर्द हुव अष्ट अस्र ॥
नजर रु निछावर करि सिरनाय, पढि कुसल तास कृत मिसल पाय ॥ १८ ॥

आविक पुनि अंबर अरज आखि, किय नजर पत्र संमदकराखि ॥
अरू कहिय जयश्रीकष्णा आप, आदेस ममोपरि इम इलाप ॥ १९ ॥

पथि संग रहन यात्रा प्रसंग, तसमात चित्त मम है उमंग ॥
सो अरज सुनि रू तस कुसल किन्न, दयया सह ताकों सीख दिन्न ॥ २० ॥

सित पौष पंचमी सूर वार, किय वर्षगंठि अर्जुन कुमार ॥
तदनंतर तहँ संबंध ताहि, मंदेस झल्ल नंदन उमाहि ॥ २१ ॥

हिंदूमल जीवन भट हिताय, दिय तार भर्म लांगलि दुराय ॥
तिम पंच लांगली क्रमक त्यौंहिं, सिरपेच जटित इक पुनि सुयौंहिं ॥ २२ ।

तिम दियउ इक्क उरसूत्रिकाहि, मौक्तिक्य कर्णिका दुव उमाहि ॥
सिरुपाव चतुर्दस पुनि सप्रीति, राजत मतंग इक हय सुरीति ॥ २३ ॥

इत्यादिक दुव लै आजगाम, हुव अरज त्वरित तहँ हितहि काम ॥
सित सोम षष्ठिका पुहवि सक्क, अंबक सह घटिका रहत अक्क ॥ २४ ॥

रचि सभा चोक मानिक रसेस, आहूत सर्ब उमरा असेस ॥
देव्यादिसिंह दुर्गापुरेस, जय बिजय सिंह आइउ जयेस ॥ २५ ॥

सचिवादि ऊरुजा सर्ब आइ, प्राघुन हुव हाजरि प्रीति पाइ ॥
अरू अप्प कुमर अर्जुन उमाहि, रहि ब्रह्मघट्ट त्रिद्वार काहि ॥ २६ ॥
तिम कतिक तहाँ उमराव तत्थ, अर्चित करि नवग्रह कुमर अत्थ ॥
प्राघुनक प्रथम हे प्रीति पाय, तिन अंक कुमर अर्जुन हिताय ॥ २७ ॥
भरि किय तिलक कुंकुम सुभाल, इम मुहर नजर करि तिन उताल ॥
पूर्वोक्त जवाहर बस्तु पेस, सब कियउ भूप हित तहँ असेस ॥ २८ ॥

करि समापन तिन्ह दिन कतिक रखि, अप्पिय सुसीख पुनि कुसल आखि ॥
उग्गत रवि सप्तमि आरबार, सामंतसिंह आइउ उदार ॥ २९ ॥
धोउर पुरेस महिपाल धीर, बलि सम्मुह भेजिय तस प्रबीर ॥
जो उपबन भट्टजि अस्त्रजाइ, अति प्रीति मिलि रु पटगृह सुआइ ॥ ३० ॥
पुनि रहत बेद नाड़ी पतंग, कापरनि कांत आये उमंग ॥
बलि बेल बिलासहिँ देव माँहिँ, अति स्वच्छ जलासय आब आँहि ॥ ३१ ॥
सामंत पितृव्यक तहँ सचाह, आतहि प्रभु गौरव दिय उछाह ॥
मिलि बहुरि भुजांतर उर मिलाइ, किय मुजरा तिन्ह अति भविक पाइ ॥३२ ॥
संलाप कुसल हुव पुनि सप्रीति, अरु कहिय रहहु रह अप्प रीति ॥
कहि इम रु तास दसतूर किन्न, सीतहि सु जानि स्थुल सीख दिन्न ॥ ३३ ॥

आ धवल तप पक्षति जीव आत, दुव लाल नयन विश्रामदात ॥
रहि तत्थ द्वितीया सुक्रवार, किय बहुरा जीवन कारदार ॥ ३४ ॥
तिम अंकित मुद्रा नाम तास, प्रभु दियउ निरंतर रहन पास ॥
हुव कुच्च तृतीया सौरि होत, दृढ अप्प नयनपुर किय सु द्योत ॥ ३५ ॥
बदि बासर पंचमि चंद्र बत्त, साहब रिचारडिस अर स पत्त ॥
प्रेषित किय लंघन हर्ष पाइ, आदि सु अजंट गढइंद्र आइ ॥ ३६ ॥
करि साम कोटरिन तत्थ काज, रहतहि तस खबरि सु आत राज ॥
प्रभु भेजिय सह दल अग्ग पास, हुव राणी विकटोरिया हुलास ॥ ३७ ॥
सुनि पत्त कियउ अति मह प्रसारि, दारिद दिय सूरिन इम बिदारि ॥
उग्गत बुध सत्तमि पुनि उदंत, भेजिय अजंट साहब भनंत ॥ ३८ ॥

सेना अरु पुरजन सहँस दोइ, सुहि जावैं भूपति संग होइ॥
अरु दुग्ग थान तहँ पंथ आत, जँहँ व्है असस्त्र सह सेन जात ॥ ३९ ॥

.... ॥
साहब न जात जिम अप्प सत्थ, इम सुनि मुकाम क्रम करि न अत्थ ॥ ४० ॥

एकादसि बदि दिन अर्क जात, प्रभु अप्प सिबिर तैं सौघ पात ॥
श्रीरंग दरस करि तहँ सप्रीति, संसद रचि तत्रहि प्रभु सनीति ॥ ४१ ॥

आंत्रद अधीस मुहुकम्म उत्त, आह्वान राम प्रति दियउ छुत्त ॥
हाजरि हुव सत सु जनहि आइ, प्रभुतैं सुहि अभ्युत्थान पाइ ॥ ४२ ॥

किय मुजरा तिहिँ अति भविक पात, दृढ अप्प पानि सुद्धहि दिखात ॥
किय कुसल तास तिन नजर किन्न, दुव नाड़ी राखि रु सीख दिन्न ॥ ४३ ॥

सुदि होत प्रतिपद सुक्र वार, ... ॥
...., तब कियउ पत्रानुरूप ॥ ४४ ॥

सित सौम्य चतुर्दसि सूर आत, व्यापत चतुष्क राखिय विख्यात ॥
इक ईस नंद जुत लाल आँहिँ, तिम राखि पठान जु जमितखाँहिँ ॥ ४५ ॥

बलि पन्नाजुतलालहिँ भुवाल, इह मंगल राखिय अंतलाल ॥
थिरराज चतुष्क न अत्थ अप्पि, महिपाल लेख त्रिंसति समप्पि ॥ ४६ ॥

क्रमतै जु लेख सुनिये कृपाल, बल आदि सर्ब बच आलबाल ॥
रजवार दसावर इतर पत्र, आवैं उदंत ता माँहिँ अत्र॥ ४७ ॥

जो होइ आसु तो झटिति देय, न त्वरित जो सु मम प्रतिहि नेय ॥
अरू स्तेयो व्यापत अन्य आइ, करि दंड इतर बिधि जुत कराइ ॥ ४८ ॥

जन स्वीय अन्यतर राज जाइ, इह स्तेय आदि करि जोहि आइ ॥
तामैं प्रमान डारैं सु तत्थ्य, पूरब स्वदंड करि तास पत्थ्य ॥ ४९ ॥

मेवारज मैंने जात मोसि,पूर्वोक्त लेख जिम स्तैन्य पोसि ॥
माहब अंजट तैं कहि सु लेय, बिधिजुत इत्यादिक तब बिधेय ॥ ५० ॥

इम करत प्रबंध सु राज्य अंग, महिपाल लगत फग्गुन उमंग ॥
रविवार तृतीया रमत फग्ग, स्थलकमल गुलालादिक समग्ग ॥ ५१ ॥

इम रमत फग्ग पुण्णिमसु आत, प्रभु चलत सत्थ मागीन पात ॥
मधु लगत मास पक्षति पतंग, साहब रिचारिडिस अर उमंग ॥ ५२ ॥
पट्टनि तैं साहब झल्ल केर, मग बैठि डाक हय नां अबेर ॥
आराम नयनपुर राम आइ, तस अत्थ सिबिर प्रभुतैं तनाइ ॥ ५३ ॥
तस मिलन अत्थ प्रभु तहँ पधारि, साहब उदंत यात्रिक सु धारि ॥
साहब सु उभय लै अप्प मत्थ, प्रभु सौध पधारे पग्ग अत्थ ॥ ५४ ॥
तहँ छत्रमहल बिच रंग ताहि, अक्खत कवि आह्वय तास आहि ॥
कौसुंभि रु कुंकुम नीर कारि, बर्णक अबीर तोखीर पारि ॥ ५५ ॥

पत्तंग नीर पुनि करि रु स्फीत, पिचकारिन साहब किय पुनीत ॥
साहब अजंट प्रभुपें सु बारि, दृढ प्रीति बहुरि दिय तबहि डारि ॥ ५६ ॥
प्रभु अप्प डारि पुनि सहँम धार, किय बर्णक जुत पट्टप कुमार ॥
करि फग्ग अजंटहि सीख दिन्न, अरु अप्प स्नान आदिक सु किन्न ॥ ५७ ॥
आत्मीय शिबिर साहब उम्हात, अंगार तीज मध्याह्न आत ॥
तस सम्मुह ड्योढी अप्प जाइ, आनंदित तासह माँहिँ आइ ॥ ५८ ॥
क्रमतैं जु बैठि पुनि तहँ कृपाल, किय सार्द्ध मुहूर्त रहस्यकाल ॥
बुंदी अरु यात्रा करि प्रबंध, तिन्ह अतर पान दै पुनि सुसंध ॥ ५९ ॥
इम सीख दै रु मग कुसल आखि, तँहँ अप्प नयन विश्राम राखि ॥
उग्गत रवि षष्ठी कवि गरीय, विश्राम समाधा दिय तृतीय ॥ ६० ॥

किय चोरू सप्तमि सनि मुकाम, माधवपुर अष्टमि दिय बिश्राम ॥
नवमी मूकाम किय पुर पडान, दसमी अंगारक करि निदान ॥ ६१ ॥
डुंगर मलार ने किय मुकाम, बाटोंदै किय एकादसि विश्राम ॥
पुनि जीव द्वादसी घस्त्र आत, नवमो कुशालगढ चक्र पात ॥ ६२ ॥
पुनि असिता तेरसि कवि प्रभात, पीलोदै प्रभु किय सेन पात ॥
हिंडोन चतुर्दसि होत बास, परताप करोली पति हुलास ॥ ६३ ॥
बलदेव बनिक दीवान ख्यात, पुनि प्रियादास बाड़व उम्हात ॥
अरू ऊरूज चूनीलाल एम, गुस्साही रक्तीगर हि तेम ॥ ६४ ॥

सचिवादि सुजन चउ ए पठाइ, मनुहारि बिबिध बिधि जुत कराइ ॥
सतपंच रौप्य महमानि अत्थ, पक्कान्न मंथनी तास सत्थ॥ ६५ ॥

इत्यादि उहाँ लै त्वरित आइ, रहि रत्ति प्रात पहु हुकम पाइ ॥
हाजरि हुव पटगृह होत कुच्च, आसिख सलाम करि प्रीति उच्च ॥ ६६ ॥
अरु नजर निछावर अरज किन्न, भूपति जुहार भाखिय अभिन्न ॥
अरु कहिय आगमन इह स्वकीय, गृह करहु प्रवित्रहि अस्मदीय ॥ ६७ ॥
सतपंच रौप्य पुनि व्है प्रसन्न, ... ॥
तामैं सुदोइ नारंग एम डाल्याँ कंडोल च्यारि फल कुसुम ॥ ६८ ॥
कूष्मांड इक्क इक श्रूमिकंद, अहिबल्लिपत्र सत चउ अनंद ॥
महमानि करहू स्वीकार एह, सो अरज सुनि रु पुनि करि सनेह ॥ ६९ ॥
करि माफ रौप्य कंडोल राखि, जय रंग कहहू नृपतैं इमाखि ॥
दै सीख ताहि पुनि कुच्च पाइ, बिश्राम किय सूरैट जाइ ॥ ७० ॥

पक्षति मुकाम सित दिय बियान, तहँ करत द्वितीया दिन मिलान ॥
चूड़ामनि जट्टहि बंस जात, लै वाल मुकुंदातित्थ्य आत ॥ ७१ ॥
रचि सिबिर सभा लिय तिहिँ बुलाइ, हाजरि हुव तहँ सो हुकम पाइ ॥
करि नजरि निछवर पुनि सलाम, दुव सचिव हेठ्ठ बैठि रु सुआम ॥ ७२ ॥
किय अरज मुकंदहि फौजदार, बलवंत किय मालुम जुहार ॥
अरू पंचसतक नाणकसु एह, स्वीकार करहु प्रभु करि सनेह ॥ ७३ ॥
विज्ञप्ति सुनि रु तस भव्य आखि, आतित्थ्य रौप्य आदिक सु राखि ॥
व्यवहार भरतपुर करि सुवत्त, दुव घट्टि राखि तिन्ह सीख दत्त ॥ ७४ ॥
पुनि सदरलैन साहब मिलाप, भेजिय हमीदखाँ सदल आप ॥
तिहिँ जाय पत्र दिय करि सलाम, रहि एह मिलन प्रभु चउ मुकाम ॥ ७५ ॥
पुनि दियउ तृतीय तहँ मिलान, सब जन दिय उत्सव गोरि दान ॥
पुनि होत चतुर्थी दिन प्रभात, खांअंत हमीयद छदन आत ॥ ७६ ॥

ता माँहिँ लेख पंचमि मिलाप, अरू सदरलैन व्है मुद अमाप ॥
कहि रामसिंह राजाधिराज, दृढचित्त रु है वार्द्धक दराज ॥ ७७ ॥
तातैं हम चाहत मिलन तूर्ण, पुनि चहत भरतपुर ईस पूर्ण ॥
आवत हम सम्मुह उभय तत्थ, सुनि राम अरज करि कुच्च सत्थ ॥ ७८ ॥

दोहा

पंचमि दिन करि कुच्च प्रभु, वैर मुकामन आत।
नगर कनावर तैं निकट, पिप्पलतरू इक पात ॥ ७९ ॥
उहाँ भरतपुर ईस के, बारीदारन आई।
रंजित किन्न बिछात सम, मन बहु मोद मनाई ॥ ८० ॥

षट्पात्

सदरलैन साहब रू भूप बलवंत भरतपुर,
बाजी रथ थित होइ उभय सम्मुह उमंगि उर।
तीन कोस लग आई बहुरि ठड्ढे बिछात पर,
तब जीवन बहुरा रु हमिदखां तह वकील तर।
चहुवान तरनि सन्निधि त्वरित आइ निवेदिय अरज इम।
प्रभु वे बिछात ठड्ढे उपरि अप्प पधारहु देर किम ॥ ८१ ॥

दोहा

यहै अरज सुनतहि अधिप, तहाँ हय स्थित आत।
अस्त्र बिछायत के उपरि, हुलसित तुरग बिहात ॥ ८२ ॥
सदरलैन साहब समुह, अरू बलवंत हु आइ।
सय इक भरतपुरेस हू, लिन्नों सीस लगाइ ॥ ८३ ॥
प्रभु तब अप्प सु पानि इक, आनन द्वयस उठाई।
कुसल परस्पर किन्न पुनि, मुद जुत खंघ मिलाई ॥ ८४ ॥

षट्पात्

उत्तमंग पुनि सदरलैन कर इक्क लगाइय,
तब पहु आनन निकट अप्प सुभ पानि उठाइय।

खंध जुट्ट मिलि मुदित दुवहि रचि कुसल परस्पर,
तुच्छ समय तहँ बैठि बत्त करि देस काल बर।
जेट्टस केर उच तुरग रथ बैठ तीन हि मुदित मन।
बलवंत बाम दक्खिन सदरलैनहु सम्मुह अप्प सन ॥ ८५ ॥

सिरै रहि रु प्रभु अप्प चले डेरन प्रति सत्वर,
हुव सु अग्ग जय बिजय सिंह आरुहि तुरंग बर।
इम त्रय डेरन आइ अधिप सह तजि रु अस्व रथ,
बाजी स्यंदन चढि रु वे सु दुव चलिय वैर पथ।
इत होत सिबिर दाखिल अधिप ताप कीन नाली त्वरित।
दसपंच फैर उततैं चलत इत नालिय चालिय सहित ॥ ८६ ॥

हुव हाजरि बलवंत बहुरि जन तहँ सु प्रतिष्टित,
अरज कराइय एह भूप महमानि सेनहित।
सासन करहु प्रसिद्ध लेहु पक्वान्न चक्र सब,
यह सुनि रु दिय जु हुकम सचिव आवैं मामक जब।
मिलि सचिव चक्रपति आदि तहँ जाइ दिवाइय स्वच्छ मन।
आमोद तत्थ इम राखि पुनि आये व्यापत मठ सदन ॥ ८७ ॥

पादाकुलकम्

षष्ठी दिवस मिलान तहाँ दिय, पुलि बलवंत भविक जन आइय ॥
तब प्रभु निकट ह्मिदखाँ जाइ रु , कियउ अग्ज प्रभु तैं मुद पाइ रु ॥८८ ॥
प्रभु बलवंत सुजन पठवाये, पधरावन अप्पहिं उत आये ॥
समय प्रजेस हार्द जो पाऊं, सो उनकौं मैं जाइ सुनाऊं ॥ ८९ ॥
सुनि इम अरज निदेस दयो जब, नाड़ी नयन ग्हैं दिनकर तब ॥
इम क्रम क्रमन उहाँ तुम जानहु, पुनि तहँ साहब मिलन प्रमानहु ॥ ९० ॥
इम वकील सासन सुनि आयो, सुजन त्वरित बलवंत सुनायो ॥
स्वनृप जाइ तिन वृत्त निवेदिय, तब सभ्य रु संसद तयार किय ॥ ९१ ॥

पट्टप भीम कुमार जुत्त पुनि, गोवर्द्धन कुमरहिं प्रभु लिय चुनि॥
सेना सर्व चार भट सारे, प्रभु नवलक्खा बाग पधारे॥ ९२॥

प्रथम ताज बलवंत गेह पट, सम्मुह बिंसति पैंड वे सु अट॥
तुच्छ समय पुनि बस्त्रसदन रहि, साहब शिबिर बरब्बर क्रम चहि॥ ९३॥
तहाँ अव्य बलवंत सिधाये, दर पद सदरलैन समुहाये॥
करि सँल्लप भव्य मुद पाइउ, त्रयहि सौध संसद जहँ आइउ॥ ९४॥
कुरसी अप्प मध्य आरुहि जहँ, भीम कुमर दच्छिन कुरसी तहँ॥
तदनंतर जय विजयसिंह दुव, उपबेसन गोवर्द्धन तत हुव॥ ९५॥
तातैं बक्र मिसल सम्मुह सन, खुरसिन लग्गिय तास सुभट जन॥
सव्यहि सदरलैन साहब रहि, सन्निधि तास भरतपुर ईसहि॥ ९६॥
समय मुहूर्त वृत्त तहँ जंपिय, अतर पान पुनि चरन निवेदिय॥
साहब उक्त सु अप्प लगाये, पानदान प्रभु नजर निराये॥ ९७॥

संग्रहि कहिय सिबिर संजावन, प्रभु कों तब वे दुव पहुँचावन॥
महलन तैं सु चोक लग आये, सदाचार तीनहिं तहँ पाये॥ ९८॥
प्रभु पुनि अप्प सिबिर दाखिल हुव, तुरतहि तहां वे सु आये दुव॥
जब वहिसिबिर दुदिस भट रखिरु, प्रभु पुनि मुख्य सिबिरस्थ चाहिरु॥ ९९॥
प्रभु तहँ कुरसी मध्य बिराजिय, सदरलैन उपविष्ट सव्य किय॥
पुनि बलवंत असव्यहि पाये, प्रभु तत लार्ड पलास दिखाये॥ १००॥
तामें लेख कोल नामाँ को, साहब देखि चविय नृप याको॥
उत्तर झटिति अत्थ नहिं ऐहैं, बासर कतिक्क विचारिहु दैहैं॥ १०१॥
अतर अप्प दोउन पुनि अप्पिय, पहुँचावन प्रभु तिन्हैं गमन किय॥
बाहिर सिबिर तनावहिं आइ रु, दियउ सिक्ख तिन्ह सुवच दृढ्ढइ रु॥ १०२॥

बाजी स्यंदन चढि रु सिबिर प्रति, कियउ गमन प्रभु दुवहि रक्खि रति॥
इत पटआलय अप्प पधारिय, बलाधीस कटिबंध निवारिय॥ १०३॥

षष्ठी दिन तहँ रत्ति बिहाई, सुज्जवार सत्तमि अब पाई ॥
सत्त कोस व्हांतैं कवईपुर, हुव प्रभात दाखिल अंतेउर ॥ १०४ ॥
करत कुच्च पुनि प्रभु तहँ भेजिय, सुजन प्रताप महीप करोलिय ॥
इम विज्ञप्ति आइ तिन्ह अक्खिय, भूप मदीय मिलन प्रभु भक्खिय ॥ १०५ ॥
पुनि निर्देस समय को पावैं, प्रभु मामक दुत ही पधरावैं ॥
इम सुनि अरज नियोग दयो नृप, हमरो तुम जानहु द्रुतही सृप ॥ १०६ ॥
इम सुनि सुजन पटालय आइ रु, प्रभु इत समय संझ कों पाइ रु ॥
कर्म नित्य आदिक सब किन्नों, संसद रचन निदेसहु दिन्नों ॥ १०७ ॥

बान घटी रजनी पुनि बित्तत, चढि इभ भूप प्रताप सु चित्तत ॥
उतरय्यो द्वार पटालय आइ रु, पहु सुनि सम्मुह अप्प पधारिरु ॥ १०८ ॥
शस्त बहुरि मिलि कियउ परस्पर, बैठे इक आसन धरनीबर ॥
समय देस वृत्तांत सु जंपिय, नाड़ी इक उपवेसन रक्खिय ॥ १०९ ॥
दै तिन्ह सिक्ख कियो पहुँचावन, अंसुक सदन द्वार लग आवन ॥
इम दै सिक्ख अप्प तुरगासहि, सिबिर प्रतापपाल के आसुहि ॥ ११० ॥
कियउ क्रमन प्रभु रत्ति रक्खि रति, सुभट मुख्य--सह संहति ॥
तिन्हैं तबहि आगमन रु सम्मुह, संल्लप रु उपविष्ट आदि सुह ॥ १११ ॥
प्रथम रीति जिम कियउ धराबर, जंपिय सिक्ख अप्प तदतंतर ॥
इम सुनि सोहु पुगावन आये, पटगृह द्वार द्वय सही पाये ॥ ११२ ॥

दोहा

सदाचरन करि तह सुबत, पुनि चल्लिय मुद पाइ ।
नयन घटी रजनी रहत, हुव दाखिल स्थुल आइ ॥ ११३ ॥
अष्टमि दिन पुनि तहँ अधिप, राखि रु श्रम विश्राम ।
शस्त्रादिक पूजन सकल, रंजित किय प्रभु राम ॥ ११४ ॥

मुक्तादाम

कियो नवमी कुज वार प्रयान, दयो सु कुमेर मुकाम दिवान ॥
तहां बलवंत सुनाग पठाइ, जरी कुथ तास सिरी सु बनाई ॥ ११५ ॥

सुतारन मंडित होदन साजि, पलास बहोरि सु यावनि राजि ॥
कियो तस लंच सु मानुस आइ, कस्यो मुररीकृत भाविक पाइ ॥ ११६ ॥
दियो दशमी दिन डिग्घ मुकाम, रहे तहँ रुद्र तिथी प्रभु राम ॥
तहां भवनाभिध सुंदर थान, तिन्है किय देखन गोन दिवान ॥ ११७ ॥
उहां ब्रजमोहन दुग्गप आइ, दये तिँहिँ भोन असेस बताई ॥
बिताई घटी बसु व्हाँ क्षण देस, कियो प्रभु अंबरओक प्रवेस ॥ ११८ ॥
चले पुनि द्वादसि लै चतुरंग, गिन्यो सु मुकामहि मानसि गंग ॥
तहां इक गोरधनाव्हय सैल, मिटैं जहँ जातहि मानुस मैल ॥ ११९ ॥

अनंग तिथी दिन स्नान उमंग, सु गोन कियो प्रभु मानसि गंग ॥
उहां करि आप्लव अंहति अत्थ, मंगायउ नाग तुरंगम तत्थ ॥ १२० ॥
सिरी कुथ ताहि बनात सु साजि, बनाइ रु तादृश त्योँहि सुबाजि ॥
महीप बहोरि सु द्रम्म पचास, तथा सर निष्क रु चीर सतास ॥ १२१ ॥
तुरंग बहोरि सनिष्कहि तीन दये पुनि द्रम्म पचीस सु दीन ॥
.... बलापति ॥१२२ ॥
अंबर पिट्ठि रु तार खुराहिँ, उहाँ दस दम्म दु निष्क सु आहिँ ॥
प्रदेसन दै इम प्रीति प्रजेस, कियो पुनि अंसुक ओक प्रबेस ॥ १२३ ॥
मुकाम तहाँ करि पुण्णिम दीह, अगेस परिक्रम कों पुनि ईह ॥
प्रभू किय लै अवरोध प्रयान, कियो गिरिराज परिक्रम यान ॥ १२४ ॥
निसीथ घटी दुव उप्पर जात, प्रदेसन व्हां करि डेरन पात ॥
तिथी पड़िया बदि माधव मास, बली सत वै किय बाही निबास ॥ १२५ ॥

दोहा

कियउ द्वितीया दिन क्रमन, राजराज प्रभु राम ।
साहब सुनि आयो समुह, मथुरा जानि मुकाम ॥ १२६ ॥
सुहु डिपटी अभिधा बिदित, पद रु किलट्टर पाइ ॥
मथुरा तजि सम्मुह मिल्यो, इक्क कोसलों आइ ॥ १२७ ॥
मिलत अनामय पुच्छि करि, सत्रह नालिन फैर ॥
साहब सह आये उमँगि, बस्त्रसदन वह नैर ॥ १२८ ॥

पुनि ब्रंदाबन नैर पहु, मातामही मिलाप॥
किया तुरग आरूहि क्रमन, अल्प सत्थ करि आप॥ १२९॥
जाइ अरज सुभ करि जहां, प्रसूमही पय बंदि॥
आधघरी रहि सिक्ख करि, आये सिबिर अनंदि॥ १३०॥

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पुके उत्तरायणे नवम राशो रामसिंह चरित्रे त्रयोदशो मयूखः ॥ १३॥

गीर्वाणभाषा

अनुष्टुप्

राधाकृष्णतृतीयायां कृत्वा श्राद्धादिकं नृपः॥
पद्भ्यां विश्रामघट्टाय पञ्चम्यां सायमव्रजत्॥ १॥

राजा रामसिंह वैशाख बदि तीज को श्राद्ध आदि करके पंचमी के दिन पैदल विश्राम घाट गया।

गीतिः

जयसिंहविजयसिंहेत्याख्यमहाराजसंयुतस्तत्र॥
आचम्य षट्सुवर्णीमुपायनीकृत्य तस्थिवान् घटिकाम्॥ २॥

महाराजा जयसिंह और विजयसिंह के साथ आचमन करके सुवर्ण की छः मोहर भेंट करके घड़ी भर बैठा।

उपजातिः

विलोक्य नीराजनमत्र घट्टे नारायणं चापि गतश्रमाख्यम्॥
नत्वोपहृत्य द्रविणं यथार्हं भूपो निवासं स्वमलंचकार॥ ३॥

और आरती के दर्शन करके विश्राम नामक नारायण को पृथ्वी पर साष्टांग विधि से नमस्कार करके अपने डेरे वापस आया।

सप्तम्यामुषसि परिक्रमाय पद्भ्यामायस्यन् दददथ तत्र तत्र वित्तम्॥
विश्रामं प्रथममथ प्रयागघट्टं संपश्यन्नथ बलदेवघट्टमागात्॥ ४॥

सप्तमी के दिन प्रातःकाल में पैदल परिक्रमा करने को जहाँ तहाँ द्रव्य देता हुआ पहले विश्राम घाट गया फिर प्रयाग घाट का दर्शन करके बलदेव घाट गया।

वसन्ततिलका

श्यामाभिधं कनकनाख्यमथार्थघट्टंघट्टंध्रुवस्य कलयन्नथ मोक्ष तीर्थम्॥
रङ्गावनीं तदनु भूतपतिं महेशं दृष्ट्वातपे स्वशिबिरं पुनराजगाम॥५॥

वहाँ से श्याम घाट, कनक घाट, अर्थ घाट, ध्रुव घाट और मोक्ष तीर्थ गया। वहाँ से भूतनाथ महादेव के दर्शन करके धूप में अपने डेरे वापस आया।

उपजातिः

अथो भुजिष्यातनये निवृत्तमसूरिरोगेऽर्जुनसिंहनाम्नि॥
आचारतः प्राप्तमुदस्तविघ्नमकारयद्भूपतिरम्बुसेकम्॥६॥
अश्वे स्थितोऽयष्टमिभूतनाथपर्यन्तमेताथ चलन् पदाभ्याम्॥
विलोक्य रामं बलभद्रकुण्डेऽथ ज्ञानवापीमवलोकते स्म॥७॥

इसके बाद राजा ने अपने पासवानिये पुत्र अर्जुनसिंह को कुष्ठ कोढ़ रोग मिटाने के अर्थ जल में स्नान कराया। अष्टमी के दिन भूतनाथ महादेव तक तो घोड़े पर चढ़कर गया और वहीं से पैदल होकर बलभद्र कुंड पर राम-बलदेव के दर्शन करके ज्ञानवापी का दर्शन किया।

स्वागता

बालकृष्णपटशोधनकुण्डं जन्मसद्म पितृबन्धनभूमिम्॥
भूपतिस्तदुन केशवदेवं पश्यति स्म वनखण्डशिवं च॥८॥

इसके बाद राजा ने बालकृष्ण के वस्त्र धोने के कुंड जन्मघर, भूमि और माता-पिता के बंधन की भूमि को देखकर केशवदेव और बनखंडी शिव के दर्शन किये।

शिखरिणी

महाविद्यां देवीमगमददसीयां च सरसीं,
सरस्वत्याः कुण्डं तदनु च तदीयं झरमपि॥
शिवं गोकर्णेशं तदनु गणपं दीर्घवदनं,
ततस्तीर्थं भूपो दशातुरगमेघाभिधमगात्॥ ९॥

वहाँ से विद्या देवी के दर्शन करके अदसिया नामक सरोवर पर गया, वहाँ से सरस्वती कुंड के झरने को भी देखा फिर आगे गोकर्णेश्वरमेघ तीर्थ गया।

उपजातिः

सरस्वतीसङ्गमकृष्णगङ्गावेकुण्ठघट्टानथ सामघट्टम् ॥
ददर्श भूमीपतिरष्टकुण्डघट्टे हनूमन्तमथैकदन्तम् ॥ १० ॥

ततो द्वारकाधीशमालोक्य देवं पुनः प्राप विश्रान्तिघट्टं क्षितीशः ॥
परिक्रान्तिमेतां यथार्हं विधाय निकेतं निजं भूषयामास भूपः ॥ ११ ॥

ततोभिधाय प्रभुणा नवम्यामाकारणां माथुरपण्डितानाम् ॥
प्रश्नानुवादेतररीतिचञ्चत्तर्कालिरश्रूयत शास्त्रचर्चा ॥ १२ ॥

सरस्वती संगम, कृष्णगंगा, वैकुण्ठ घाट और साम घाट के दर्शन करके राजा ने वैकुण्ठ घाट पर हनुमान और गणपती के दर्शन किये। फिर आगे द्वारकाधीश के दर्शन करके राजा वापस विश्रामघाट आया, इस परिक्रमा को यथायोग्य रचकर राजा अपने डेरे आया। राजा ने नवमी के दिन मथुरा निवासी पंडितों को बुलाकर शास्त्र चर्चा सुनी।

शालिनी

एकादश्या प्राप्य विश्रान्तिघट्टं तत्र स्नात्वा सावरोधः क्षितीशः ॥
स्तुत्वा भानोर्नन्दिनीं भक्तियुक्तः प्रादाद्दानं शास्त्ररीत्या द्विजेभ्यः ॥ १३ ॥

एकादशी के दिन राजा ने विश्राम घाट जाकर रानियों सहित स्नान किया और यमुना की भक्ति पूर्वक स्तुति करके शास्त्र के अनुसार ब्राह्मण को दान दिया।

उपेन्द्रवज्रा

गजं शतद्रम्मयुतं विचित्रप्रवेणिपर्याणनिबद्धशोभम् ॥
ददौ महशो दश निष्कयुक्तं द्विजाय सर्वाम्बरपूजिताय ॥ १४ ॥

राजा ने सौ रुपये और दस मोहर के साथ हाथी का दान किया फिर सम्पूर्ण वस्त्रों से पूजन कर ब्राह्मण को दिया।

उपजातिः

अश्वं शतद्रम्मयुतं सपञ्चनिष्कं स्फुरद्राजसुभाण्डशोभम् ॥
वस्त्रैः समस्तैः परिपूज्य भक्त्या ददौ द्विजेन्द्राय महीपतीन्द्रः ॥ १५ ।

एकैकनिष्कान्वितपञ्चपञ्चद्रम्मार्चिताः पञ्चदशात्त गावः ॥
द्विजेश्वरेभ्योम्बरपूजितेभ्यो भक्त्यात्यसृज्यन्त महीश्वरेण ॥ १६ ॥

सुवर्णमर्त्यादिकमर्चनाङ्ग वधूचितं श्रीयमुनाम्बरौघम्॥
अष्टाधिकं विंशतिमत्र भूमेर्निवर्तमानामदिशत्प्रेजेशः॥ १७॥

इस पूजन के सम्पन्न होने के बाद राजा ने ब्राह्मण को सौ रुपये और पाँच मोहर के साथ घोड़ा दिया। श्रेष्ठ ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन कर उन्हें एक एक मोहर और पाँच पाँच रुपयों के साथ पन्द्रह गायें दीं। राजा ने यमुना पर सुवर्ण की मूर्ति आदि का दान दिया और उस पूजा के अंगभूत स्त्रियों के योग्य वस्त्र समुदाय दिये और अठ्ठाईस निर्वतन भूमि दी। (बीस बांस का एक निवर्तन होता है। निवर्तनं विंशतिवंशसंख्यै; इति लीलावत्याम्।)

इन्द्रवज्रा

सम्पूज्य तं तीर्थगुरूं स्वमघ्रिशौचादिना जीवनरामसंज्ञम्॥
नानाम्बरैमौक्तिककर्णवेष्टहारान्वितैर्भूषयति स्म भूपः॥ १८॥

जीवनराम नामक तीर्थगुरु को अपने हाथ से चरण धोने आदि विधि से पूजन करके अनेक प्रकार के वस्त्र, मोतियों के कुंडल और हार से सुशोभित किया।

उपजातिः

भोज्यं द्विजेभ्यो वसु भूरि चापि संकल्प्य सम्यग्गुरुदक्षिणां च॥
दिनेल्पशेषे सकुमारमन्तःपुरं निकेताय समादिदेश॥ १९॥
नीराजनानहेसि तत्र पुष्पवृष्टिं विधायाऽऽव्रजता नृपेण॥
अकार्यत स्वानुगहस्तिनिष्टजनेन वृष्टी रजतात्मिकापि॥ २०॥
परेद्युराहूप निजऽनिजान्बुधान्पुरोधसाऽर्च्य प्रतिमूर्त्यदिक्षत्॥
द्रम्मं तथान्नादि च पञ्चभोज्यं द्विजान्सहस्त्रं च तदन्वभोजयत्॥ २१॥

दक्षिणा सहित ब्राह्मण भोजन और गुरुदक्षिणा का संकल्प करके थोड़ा सा दिन बाकी रहने पर राजा ने राजकुमार को जनाने में जाने की आज्ञा दी। सांयकाल की आरती के समय में वहाँ (विश्राम घाट) पर राजा ने पुष्पों की वृष्टि करके रजत (चांदी) की वृष्टि भी की। दूसरे दिन अपने और पुरोहित के द्वारा दूसरे पंडितों को बुला कर सबका जुदा जुदा पूजन कर एक एक रुपया दक्षिणा के साथ पाँच पकवान से एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया।

अनुष्टुप्

त्रयोदश्यां दिगद्र्यङ्गों न्मितान्स्त्रीसहितान्द्विजान् ॥
अभोजयच्चातुर्वेदान्सपादद्रम्मदक्षिणाम् ॥२२॥

फिर त्रियोदशी के दिन सवा सवा रुपया दक्षिणा के साथ स्त्रियों सहित छः हजार सात सौ दस चौबे ब्राह्मणों को भोजन कराया।

उपगीतिः

राधारमणो भट्टाचार्योपाख्यव्रजकिशोरः ॥
पुत्रोस्य रामबाबूरेते वृन्दावन निवासाः ॥२३॥

गीतिः

माथुरगंगा रामश्चेतिबुधाः प्रागनागता मुख्याः ॥
आजग्मुर्नृपहूता यमुनातीर्थान्तिकोत्सगतसदसम् ॥ २४॥

वृन्दावन में रहने वाले राधारमण भट्टाचार्य, ब्रजकिशोर, ब्रजकिशोर का पुत्र राम बाबू और मथुरा का गंगाराम ये प्रधान चार पंडित पहिले नहीं आये थे सो राजा के बुलाने पर आये।

इन्द्रवज्रा

सरिर्नरेन्द्रस्य वरेण्य आशानन्दस्तथा मैथिलबापुदेवः ॥
शास्त्रार्थमातेनतुरत्र गंगारामेण सार्धं घटिकोनयामम् ॥२५॥

जिनमें से गंगाराम के साथ राजा के श्रेष्ठ पंडित आशानन्द और मैथिल बापूदेव ने एक घडी कम एक पहर तक शास्त्रार्थ किया।

वसन्ततिलका

ते प्रेषिता निजगृहान्प्रति पंचपंचद्रम्मार्चिता अथ परत्र दिने तु पौरः ॥
सद्रम्मदक्षिणमभोज्यत विप्रवर्गः शिष्टाप्यपूरि सहसत्कृतिदेयमात्रा ॥२६॥

इसके बाद उन चारों पंडितों को पाँच पाँच रुपयों के साथ पूजन करके घर पहुँचायो और दूसरे दिन पुरवासी ब्राह्मणों को एक एक रुपये के साथ भोजन कराया और बाकी रही यात्रा को सत्कार के साथ पूर्ण की।

वैतालीयम्

अथ माधवशुक्लपक्षतावनुवृन्दाविपिनं व्रजन्नृपः ॥
निशि षड्घटिभाजि कालियह्रददेशे शिविरं स्वमाविशत् ॥ २७॥

तत्पश्चात वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को वृन्दावन को जाते हुए राजा ने कालीयद्र प्रांत में लगे हुए अपने डेरों में प्रवेश किया।

वसन्ततिलका

मातामहीसदनमेत्य परेद्युराप सार्द्धासु षट्सु घटिकासु निशि स्ववासम्॥
आचम्य कालियहृदेथ तृतीयतिथ्यां वृंदावनस्य निरियाय परिक्रमाय॥ २८॥

दूसरे दिन नानी के स्थान पर जाकर साढ़े छः घडी रात गये वापस डेरे आया। इसके बाद तीज के दिन कालियद्रह में आचमन करके वृन्दावन की परिक्रमा करने निकला।

इन्द्रवज्रा

गोपालघट्टाद्यमुनाल्पधारापर्यन्ततीर्थानि समेत्य पद्भ्याम्॥
अश्वेन वासं स्वमुपेत्य मातुः पुण्याय राज्ञार्पित गोस्सनिष्का॥ २९॥

गोपाल घाट से लेकर यमुना की अल्प धारा तक पैदल चलकर तीर्थों की परिक्रमा करके घोड़े से अपने डेरे आकर माता के पुण्य के अर्थ राजा ने एक मोहर के साथ एक गाय अर्पण की।

दुतविलम्बितम्

अथ विहारिहरिं शिरसा नतो मदनमोहनमेत्य च संस्तुवन्॥
स्वजननीजननीक्षणकृन्नृपः शिबिरमाप निशि प्रहरे गते॥ ३०॥

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण विहारी को नमस्कार करके स्तुति करता हुआ मदनमोहन को प्राप्त होकर अपनी माता की माता नानी का दर्शन करता हुआ पहर रात गये अपने डेरे पहुँचा।

भुजंगप्रयातम्

चतुर्थ्यां कलिंदात्मजास्वल्पधारास्थलाच्छेषतीर्थानि पद्भ्यामुपेत्य
परेद्युर्हृदे कालियस्याप्लुतस्सन् गजानां जलक्रीडनान्यालुलोचे॥ ३१॥

चौथे दिन यमुना की अल्पधारा के स्थल से लेकर बाकी के सब तीर्थ राजा ने पैदल चलकर किये और दूसरे दिन कालियद्रह में स्नान करके हाथियों की जलक्रीड़ा देखी।

उपजातिः

षष्ठ्यां नृपेणाद्भुतशास्त्रचर्चासभाजिताकारि सभा बुधानाम्॥
भूपः परेण द्युयुगेन सान्तःपुरेण तत्तीर्थपरिक्रमोपि॥ ३२॥

छठ के दिन सभा को जीतनेवाले राजा ने पंडितों की विलक्षण शास्त्र चर्चावाली सभा कराई फिर दो दिन लगा कर जनाना सहित वृन्दावन की प्रदक्षिणा की।

पुष्पिताग्रा

तदनु सदरलैनमङ्गरेजं भरतपुरेड्बलवंतसिंह युक्तम्॥
प्रकटयितुमुदन्तमुर्व्यधीशप्रहित इयाय हमीदखाँ नवम्याम्॥ ३३॥

आगे नवमी के दिन भरतपुर के पति बलवन्तसिंह के साथ सदरलैन अंगरेज को समाचार बताने के अर्थ रावराजा का भेजा हुआ हमीदखां गया।

भुजङ्गप्रयातम्

दशम्यां ययौ राजमाता स्वमातुर्विलोकाय घस्त्रेर्द्धयामावशेषे॥
धरेशस्तु मातामहीं वीक्ष्य नैजं निकेतं पुनः प्राप रात्रौ निशीथे॥ ३४॥

दशमी के दिन राजमाता चार घडी दिन बाकी रहे अपनी माता से मिलने को गई और राजा अपनी नानी से मिल कर अर्द्ध रात्रि को वापस अपने डेरे आया।

मन्दाक्रान्ता

एकादश्यामकृत बहुलस्त्रीजनैर्देवयात्रा-
मध्वन्येवामिलदवनिपस्य प्रसूः स्वप्रसूयुक्॥
नत्वा राधाप्रियतममुखास्तत्र गोविन्दमूर्ती-
रर्वाक् सार्द्धप्रहररजनेराजगाम स्वधाम॥३५॥

एकादशी के दिन बहुत सारी स्त्रियों के साथ देवयात्रा की ओर मार्ग में अपनी नानी से मिलकर राधारमण आदि गोविन्द की मूर्तियों को नमस्कार कर डेढ़ पहर रात्रि से पहिले अपने डेरे आया।

प्रहर्षिणी

द्वादश्यां सदनमुपेत्य मातृमातुः प्रत्यागात्सपरिकरो निशि स्ववेश्म॥
अन्येद्युः सुरसदनेक्षणं भुजिष्यावर्गेणाकृत नृपतेः कनिष्टमाता॥ ३६॥

द्वादशी के दिन नानी के स्थान पर जाकर वापस अपने परिवार के साथ अपने डेरे आया और दूसरे दिन पासवान स्त्रियों के साथ राजा की छोटी माता ने देव मंदिरों के दर्शन किये।

उपजातिः

तोर्त्वा तरीभिर्यमुनां परेद्युः प्रतिस्थलं राजत पंचरूपैः॥
रासस्थलीमानसतीर्थमानविहारिणः सत्कुरुते स्म भूपः॥ ३७॥

संस्थानमायन्नपि वृष्टिरुद्धो मातामहीकेतनमेत्य भूपः॥
संध्यादिकर्माण्यशनं च तत्र विधाय रात्रौ निजवासमाप॥ ३८॥

सेवानिकुञ्जादिषु पंचश्यामुपेत्य राधारमणं विलोक्य॥
द्रम्मान् शतं पंचसुवर्णयुक्तान्दत्वैक्षतान्या अपि देवमूर्तीः॥ ३९॥

दिने तृतीयाशमिते व्यतीते निकेतनं स्वीयमुपेत्य भूपः॥
पितामहस्याथ महासतीना श्राद्धानि चक्रे प्रतिवर्षजानि ॥ ४०॥

दूसरे दिन नावों से यमुना को पारकर राजा ने जगह जगह पाँच पाँच रुपयों से रासथली, मानसथली और मान विहारी का सत्कार किया। चौराहे पर पहुँच गया तो भी वृष्टि से रुककर नानी के मकान पर पहुँच कर वह राजा सन्ध्या आदि सत्कर्म और भोजन वहीं करके रात्रि में अपने निवास स्थान आया। पूर्णिमा के दिन मेवाकुंज आदि स्थानों में राधाकृष्ण के दर्शन करके पाँच मोहर के साथ सौ रुपये देकर और भी देवमूर्तियों के दर्शन किये। और दिन के तृतीयांश (तीसरा भाग) व्यतीत होने पर राजा ने पितामह दादा की पतिव्रत्रा रानियों के वार्षिक श्राद्ध किये।

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेऽनवम राशौ रामसिंहचरित्रे चतुर्दशो मयूखः॥ २४॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

तजि वृंदावन तीज तिथि, रहत घटी चउ सूर।
किय आरुहि बाहन क्रमन, द्विजन दुःख करि दूर॥ १॥

पहर इक्क रजनी नृपति, गोकुल मग्ग बिहाइ।
हुव दाखिल डेरन हरखि, धीरन मोद बढाइ॥ २॥

षट्पात्

भुजगतिथी सु प्रभात प्रथम अंतेउर चल्लिय,
आरुहि प्रभु पुनि अस्व महाबन अप्पहि क्रम किय।

कन्ह चरित जो पुहवि तास प्रभु दरस उहाँ करि,
अंतेउर सह सिबिर होइ दाखिल सु ध्यान धरि।
आप्लवन अत्थ सुद्धान्त सह, किय पुनि जुमनातट क्रमन।
महिपाल जोरि अंचल महिषि, कियउ अप्प मोदित सबन ॥ ३ ॥

तर्पन आदिक तत्थ बहुरि करि नित्यकर्म बलि,
अर्बारुहि किय अटन द्विजन दारिद वृक्षन दलि।
मंदिर गोकुलनाथ जाइ करि दर्स महामति,
प्रनमि प्रभु करि भेट बहुरि किय गमन श्रीजिप्रति।
करि दरस रौप्य दुव सतक, कर पंच निष्क उत्तारन सु।
इत्यादि सदन ईश्वर अखिल चलि इच्छन किय बहुत बसु ॥ ४ ॥

दोहा

सुक्र असित षष्ठी सुरहि, सत्तमि उग्गत सूर।
मुदजुत प्रभुहि मिलानहू, दिय बलदेव हजूर ॥५ ॥
राम राम करिं दरस बलि, पुलि करि सिबिर प्रवेस।
भाविताादि नैवेघहू, भेजिय भोग धरेस ॥६ ॥
करत कुच्च अष्टमि अहन, पुनि चहि दरस जरूर।
तुरगारूहि हाजरि त्वरित, हुव बलदेव हजूर ॥७ ॥

षट्पात्

करि इच्छन सत दम्म पंच निष्क रु कारिनी इक,
उरसुत्ती सिरूपेच जटित हीरक सौवर्णिक।
इम करि भेट सुजान ग्राम मइनाम अटन किय,
तहँ अवरोधन सहित महामति सिबिर प्रवेसिय।
करि कुच्च बहुरि नवमी अहन, खंदोली सु मुकाम किय।
विश्राम बहुरि दशमी दिवस, मिलन अत्थ तहँ लार्ड दिय ॥ ८ ॥

रहि एकादशि तत्थ बहुरि द्वादसि धरनीबर,
तेरसि दिन पुनि रहि रु कुच्च चउदसि किय सत्वर।

चल्लत अकबर नगर तास गव्यूति प्रभू रहि,
चउ इक साहब त्वरित उत सु आये मेलन चहि।
इनकेहु नाम उपपद सहित भिन्न भिन्न इह आनिये।
सम्मुह उदंत आवन सबै छप्पय छंद प्रमानिये॥ ९ ॥

आजम नायब लार्ड सिकत्तर जाके उपपद,
हमलटीम इम नाम प्रथम हुव हाजरि संसद।
दूजो मौलन सोहु किलट्टर पद स मजष्टर,
डीपरसन पुनि राम तिमहि उपपद सु कमिश्नर।
पुनि जंटमजष्टर रेडल सु, डिपटी नेट्ट किलट्टरहि।
जंगी अनीकपति जहँ हुलसि, आयो जनरल मल चहि॥ १० ॥

हरिगीतम्

तजि अब्ब सब्बन गब्ब वे दुतही बिछायत आइकैं॥
जयसिंह ओ तस भ्रात बिजय सु सिंह पुब्ब मिलाइकैं॥
उमराव दुर्जनसल्ल गोकुलसिंह द्वै पुनि त्यौं मिले॥
तिम महासिंह पउत्त दुज्जनसल्ल मेलन कों मिले॥ ११ ॥
पुनि खंधजुट्टि मिलाप आपहि हमलटीन हुतैं कर्‍यो॥
जनरल रू मोलन आदितैं इक हत्थ भाविकपैं धर्‍यो॥
चढि बाह चल्लत चाह साहब बाम दक्खिन व्है चले॥
रहि अप्प मध्य निसेस ज्यों बसुधेस अकबरपुर हले॥ १२ ॥

इम शिबिर अकबरनैर उपवन राम नामक आइकैं॥
चउइक्क साहब नैर चल्लिय सिक्ख सासन पाइकैं॥
तब दुग्ग तैं दस तीन फैरहु नालि कागन के करे॥
अरु अप्प तस प्रासाद आइ रू आन्हिकादिक आचरे॥ १३ ॥

पुनि रहत चउ घटिका दिवापहि अप्प तरनिन आरुहे॥
प्रभु ताजबीबी मुकबरन क्रमि अप्प दिट्ठिन तैं छुहे॥

तस इक्खि उपबन तोप जंत्रन अप तुरगारुह भये ॥
जो जंत्र साहब सिष्टितैं तस किंकरन किय झरमये ॥ १४ ॥

सवितास्त भूधर पैं गये हुव शिबिर दाखिल आइकैं ॥
रवि रहत घटिका नैन नवमी सोमबासर पाइकैं ॥
रथ तुरग आरुहि लार्ड अैलनबरा शिबिरहि आइकैं ॥
तजि यान आवत तास सम्मुह अप्प सत्वर जाइकैं ॥ १५ ॥

करहू परस्पर सीस मात्र उठाइ भावुक त्यों भन्यूं ॥
बलि भीमसिंह कुमार पट्टप लार्ड मेलनहू बन्यूं ॥
जयसिंह विजयसु सिंह सोदर कुमर अर्जुन त्यों मिले ॥
साहब सिकत्तर तास सन मिलि मोद पंकज मन खिले ॥ १६ ॥

तिमही सिकत्तर हमलटीन मिलाप इंडविटहू कर्‌यो ॥
अरु लार्ड बाम अबाम इडविट रहि रु संसद् पद धर्‌यो ॥
खुरसी स्वकीया मध्य राखि रु लार्ड बाम बिराजयो ॥
बलिं हमलटीन सिकत्तरादिक लार्ड बामक बैठयो ॥ १७ ॥

अरू महाराजकुमार पट्टप अप्प दक्खिन ओर मैं ॥
स्वक बंधु जय ओ विजयसिंह सु तास सन्निधि रोर मैं ॥
अध तास अर्जुनसिंह बाबा ताज कुमरन पाल जो ॥
अरु महासिंह पउत्त गोकुलसिंह दुज्जनसाल जो ॥ १८ ॥

नस हेठ दुज्जनसल्ल नाथाउत्त खुरसिन तैं ठयो ॥
इत्यादि भटबर मुख्य राखि घटी दु परिखद मंडयो ॥
लै अतर दुवकर राम पहु पुनि लार्ड अंगहि लाइकैं ॥
दै पान सिक्ख बहोरि पूरब अप्प रीति पुगाइकैं ॥ १९ ॥

दशमी बलाप हिताय अैलनबरा बस्तु समाजयो ॥
तरवारि इक गुजरात संभव मुट्ठि हाटक प्रेसयो ॥
अरु समरपट दल चर्म इक बाधी सु किरण पलूहरी ॥
इक बेणु मथ सिबिका बना तिय टाटबाफिय की करी ॥ २० ॥

तिमही हवद्द सु तार को लालित्य कुंजर प्रेसयो ॥
अरु कुमर पट्टप भीम हित हय साज राजत साजयो ॥
उरसूत्रिका सिरुपेच इक मंदील सिवपुर जो भयो ॥
बाणारसीज दुपट्ट नामक बुट्ठिका सहहू दयो ॥ २१ ॥

दुस्साल इक त्यौं गरमपोसक स्वर्णमय घटिका दई ॥
ताकै हुती इक शृंखली पुनि सो सुबर्णमई नई ॥
दुव नैन मय दुरबीन इक सौवर्णमसि आदान जो ॥
अरु कलमदान ससाज ओ बन्नात रंग दु भोन जो ॥ २२ ॥

इम लार्ड प्रेषित बस्तु जो सब अप्प स्वीकृतहू कर्‌यो ॥
अरु तास मानुष कों पचत्तर भूप रुप्पय बिस्तर्‌यो ॥
भूपाल हरितिथि भरतपुर बलवंत सहर प्र थान भो ॥
तस द्वार जाइ तुरंग उज्झत सोहु सम्मुह आत भो ॥ २३ ॥

करिकैं परस्पर हत्थ मत्थ बहोरि भावुक हूं भयो ॥
अरु तास कर पर अप्प कर करि बाम व्है परिखद गयो ॥
अरु राखि दिक्खन अप्प ओ खुरसी अदक्खिन पैं ठयो
इक नाड़िका तहँ देसकाल उदंत मोदमई भयो ॥ २४ ॥

गहि अतर कर बलवंत हड्डुन इंद अंग लगावनों ॥
बलि सिक्ख दै अति मोद जुत करि पुब्बक्रम पहुँचावनौं ॥

कर उभय उत्तमअंग भो बलवंत स्वक गृह में गयो ॥
चहुवान अब्ज निसापको बलि आन डेरन हू भयो ॥ २५ ॥

गणनाथ तिथि दिन आगरापुर तैं सु कुच्च प्रभू मयो ॥
अजमादपुर बलि विंध्यईस मुकाम बाहिनि कों दयो ॥
तिथि नाग पीरोजा सु बाद बिभावरी पुनि त्यों रहे ॥
तिम षष्टिका विश्राम सक्करबाद जाइ रु उम्महे ॥ २६ ॥

किय सत्तमी बुधबार वास धरोल नामक गाम मैं ॥
तहँ आइ साहब टालबट सँग रहन यात्रा आम मैं ॥
तब उट्ठि गद्दियतैं प्रभू पय च्यारि सम्मुह जाइकैं ॥
पुनि इत्थ दोउन मत्थ मात्र उठाइ भावुक पाइकैं ॥ २७ ॥

कथ टालबट नरपाल तैं पुनि अमा जावन कों कह्यो ॥
चहुवान अब्ज दिवापनैं सुनि एह ओपित हू चह्यो ॥
आदेस जीवनलाल तैं तस संग भोलि सुजान कों ॥
जो कहैं साहब एह मिल्लन सों कथा सब आन कों ॥ २८ ॥

इम अग्ग साहब कों चलाइ रु अष्टमी सु प्रभात ही ॥
करि कुच्च मैनपुरी समीप महीप सत्वर जात ही ॥
पुर तैं सु साहब आइकैं विज्ञप्ति भूपति तैं कही ॥
प्रभु अप्पतैं पुर साहबन मिलनार्थ प्रीति घनी चही ॥ २९ ॥

अरु अप्प सम्मुह आइबे सुहि द्रंग परिसर पैं खरे ॥
तसमात चल्लहु बेगहू ब मिलाप आपहि तैं बरे ॥
इम नालिकिस्थ प्रभू चले विज्ञप्ति साहब पाइकैं ॥
उततैंहु मैनपुरीस्थ साहब भूप सम्मुह आइकैं ॥ ३० ॥

मिलि मत्थ हत्थ लगाइ दोउन ओ अनामय हू करे॥
अरु सत्थ साहब लै महीपति आइ डेरन उत्तरे॥
करि सिक्ख साहब द्वार तै चढि तुरग रथ पुर मैं गयो॥
इत होइ दाखिल तूर्ण ही कटिबंध भूपति उज्झयो॥ ३१ ॥

दिवसेस घटिका इक्क रहत सु शिबिर साहब आत भो॥
तस संग रीवाँनगर के सुभ मनुज संसद पात भो॥
कछवाह भेट गनेससिंहहिँ पंच रुप्प तैं करी॥
अर नयन वर्तुल तैं निछावरि अक्खि सुभ प्रभु आचरी॥ ३२ ॥

भानेज बैठक पैं तिन्हैं प्रभु अग्ग बाम बिठाइकैं॥
अरु धाइभ्राता रत्नलाल सलाम बलि किय आइकैं॥
पुनि देसकाल उदंत साहब अक्खि पुरपति संक्रमे॥
अरु रत्नलाल गनेससिंह स्वईस कथ इम कहि नमे॥ ३३ ॥

प्रभु विश्वनाथ स्वईसहू ब जुहार मालुम हू कर्‌यो॥
विज्ञप्ति सुनि तस भद्र आखि स्वसीस छीबन कर पर्‌यो॥
दै सिक्ख डेरन तास ओ कटिबंध अग्ग निवारयो॥
करि नित्यकर्महि आदि सर्बरिहू मुकाम तहाँ दयो॥ ३४ ॥

कविबार नवमी अर्क्क अग्गत कुच्च सत्वर ओ कर्‌यो॥
प्रभु विवर नामक ग्राम मैं दल पात जामिनि भो पर्‌यो॥
सनिवार दसमी दिवस छपरा मह जाइ रु त्यों रहे,
एकादसी गुर साहिगंज मुकाम राखन उम्महे॥ ३५ ॥

पुनि चंद्रबासर द्वादसी मीरांसरायहि पाइकैं,
अरु व्हाँ फरूक्काबाद तैं मिलनार्थ साहब आइकैं॥

मिलि देसकाल उदंत अक्खि रु सिक्ख साहब कौं दई,
विल्लेर होत मुकाम चउदसि वृष्टि दिव निस क्वाँ भई।। ३६ ।।

पुनि तत्थ पुण्णिम दीह सक्ति प्रसाद मेलन हू रहे,
शिविराजपुर पति सम्मुहागम कोस इक रहि उम्महे।।
तब मेघ बुट्ठिन तैं प्रभू तिनको हू द्रंग प्रयान भो,
आदेस तस सतकार कों बलदेव अत्थहि दान भो।। ३७ ।।

बलदेवहू ब प्रधान सत्वर तास पुर प्रति जाइकैं,
अनुशिष्टि जिम सतकार तस करि सिबिर अप्पन आइकैं
अरु सत्थ साहब तैं महीपति अग्ग जान कहात भो,
बलि मिलन कन्ह पुरत्थ साह--सुनि तहँ पात भो।। ३८ ।।

दोहा

सुचिमास रु पड़िवा असित, तजि बिल्लेर हि तात।
राजपुर, हरि जिम बिभव सुहात।।३९ ।।
सुनि इम सक्तिप्रसाद हू, प्रभु सम्मुह मुद पाइ।
पुर तैं बे गव्यूति पर, अधिप मिलन रहि आइ।। ४० ।।

षट्पात्

सम्मुह सक्तिप्रसाद आइ कर मत्थ लगाइय,
तब प्रभु आनन द्वयस अप्प सय इक्क उठाइय।
कुसल परस्पर कहि रु क्रमिय डेरन दुव सत्वर,
सिक्खहु सक्तिप्रसाद करि रु किय गमन द्रंग पर।
बलि रहत अट्ठ घटिका दिवस महमानी प्रेषित करिय।
प्रभु पंच सतक नाणक बहुरि पंचक मन पक्कान्न दिय।। ४१ ।।

कुच्च दोजि दिन करत सचिव तस आइ शिबिर तहँ,
भूपति भ्रातन माहि नाम जहुवारसिंह जहँ।

कर जोरि रु किय अरज प्रभू प्रासाद पधारहु,
मामक भूपति मिलिरु बहुत दुव प्रीति वढारहु।
मामक भूपति चढि तुरग बलि पुर प्रति सत्वर संक्रमिय।
सिवराजपुरप उततैं सुनि रु महिपति सम्मुह गमन किय॥ ४२॥

दोहा

पुर परिसर नृप पाइ पुनि, मिलि कर मत्थ मिलाइ।
किय अप्प उन जिम सु कर, अरु दुव महलन आइ॥ ४३॥
पहु तहँ सक्तिप्रसाद हू, बैठिय नृप दिस बाम।
स्वभट सर्ब अपसव्व्हू, इम क्रम राखिय आम॥ ४४॥
पुनि भट सक्तिप्रसाद को, उग्रसिंह अभिधान।
अरु जुहारसिंहहिं नजर, किय माखन दीवान॥ ४५॥

षट्पात्

प्रभु कै इक सिरुपाव पंच तखतीमय तिन किय,
असि इक पट्टिस एक स्वर्णमय मुट्ठि समप्पिय।
दंती इक कुथ्थ सहित तास होदन सु कट्ठ मय,
तिम बनात कुथ साजि तुरग किय भेट महारय।
पंचदश अधिक रुप्पय सतक, ये प्रभु नजर निवेदये।
महाराजकुमर अत्थसु बहुगि, सिरुपावादि समप्पये॥ ४६॥

पंचक तखती प्रमित दिय सिरुपाद खड्ग पुनि,
पट्टिस हाटक चोक मुट्ठि किय नजर अच्छ चुनि।
तुपक इक्क तिम तुरग रजत भूखन शृंगारित,
कियउ भेट तिम द्रम्म भूत भूपाल निष्क मित।
इम करत अप्प प्रभु उच्चरिय हमरो अब जाताअटन।
तसमात यहै दसतूर सब भूपति तुम रक्खहु भवन॥ ४७॥

दाहा

पुनि प्रभु सक्तिप्रसाद कों, दृढ़ पय घोटक दिन्न।
राजत भूषन सहित रय, क्रम शिरुपाव हिं किन्न॥ ४८॥

तखती पंचक केर सहु, अरु तोमर सुभ तास।
तस नेउर करि रजत मय, ललित दिय रु हुल्लास॥ ४९॥
करत कुच्च कल्ल्यानपुर, प्रभु कों तब पहुँचान।
महिपति महलन द्वार लग, उमगि कियो उन आन॥ ५०॥

षट्पात

कुसल परस्पर करि रु दुवहि कर मत्थ द्वयस दिय,
करि तस प्रभु सतकार क्रमन कल्ल्याँनपुरहिँ किय।
इम चल्लत पटसदन पंथ उपबन इक दिट्ठो,
प्रभु संध्यादिक कर्म करन तहँ जाइ पइट्ठो।
असनादि कर्म तहँ करि अधिप, रहत घटी दिन संक्रमिय।
सर्वरी पंच घटिका गयैं, अंसुकसदन प्रवेस किय॥ ५१॥

पद्धतिका

किय कुच्च तृतीया दिन दिवान, सुकथा जु एह साहब सुजान॥
जनरल जग आह्वय कहत जाहि, आमय बहु बासर तास आहि॥ ५२॥
तातैं सु मजष्टर कालडीक, अधिपति मिलापैं भेजिय सुहीक॥
पुनि सुनि रु टालबट मोद पात, ए दुवहि मिलि रु तजि पुरहिँ आत॥ ५३॥
कंपू रु कन्हपुर बिच मिलाप, करि तत्थ बिछायत हित अमाप॥
तहँ रहिय अभय साहब हिताय, प्रभु तास बिछायत अप्प पाय॥ ५४॥
जज आदि मजष्टर कालडीक, जानि रु प्रभु आगम अति नजीक॥
तब कालडीक तजि अश्व तात, अति प्रीति बिछायत प्रथम आत॥ ५५॥
तब अप्प टालबट तजि तुरंग, आइ रु बिछात मिलि तहँ उमंग॥
करि कुसल परस्पर हित दिखाय, पुनि उभय प्रीति कर मत्थ पाय॥ ५६॥

जज आदि मजष्टर कहिय एह, जनरलहिँ अप्प शिव चविय नेह॥
प्रतिउत्तर दिय प्रभु पुनि पुनीत, व्यवहार तास तैं हम सुनीत॥ ५७॥
इम अक्खि तुरंगम चढि रु तीन, साहब सह शिबिरहिँ क्रमन कीन॥
इक कोस हुती नाली तुरंग, किय फैर त्रयोदश तिन्ह उमंग॥ ५८॥

कथ कालडीक तैं इम कहाइ, आतप बहु यातैं गेह जाइ॥
इम कहि रु सिक्ख दै तास आप, लैं टालबट हिँ डेरन अचाप॥ ५९ ॥

पुनि क्रमन चउत्थी किय प्रभात, सरसोल आम दिय सन पात॥
कर कुच्च पंचमी दिवस राम, कल्ल्यानपुरै दिय पुनि मुकाम॥ ६० ॥

विश्राम फतैपुर षष्ठिकासु, तहँ रहत घटी दुव दिवस आसु॥
साहब चउ आये मिलन काज, सुनिये तस आह्वय राजराज॥ ६१ ॥

उपपद सु मजष्टर सुहि थरंट, नायब सु मजष्टर आदि जंट॥
पलियम जु पिरासन नाम ताहि, इम रीढ नाम साहब सु आहि॥ ६२ ॥

साहब सु टालबट सत्थ जोहि, मिलि च्यारि सभा आये सु मोहि॥
अरु अस्त्र बिछायत लग उत्ताल, आतहि तब सम्मुह क्रमि नृपाल॥ ६३ ॥

मिलि सबन मत्थ कर तब मिलाइ, आनन तक प्रभु कर जबहि आइ॥
करि कुसल परस्पर हित बढारि, प्रभु बैठि तखत संसद पधारि॥ ६४ ॥

दिस बाम दुलीचन हू बिछाइ, तिहिँ उप्पर साहब सब बिठाइ॥
करि समय वृत्त गहि अतर दान, चवि सिक्ख लगायो चाहुवान॥ ६५ ॥

किय क्रम पुरी साहब पुरत्थ, तत्रेव टालबट रहिय सत्थ॥
इक सिविर अंत तारा स आहि, प्रभु अप्प टालबट दुव उमाहि॥ ६६ ॥

अब बहुरा जीवनलाल आइ, पुनि हुकम हमीयदखाँ सु पाइ॥
किय मंत्र अद्ध घटिका दिवांन, दै सिक्ख ताहिं किय तखत आंन॥ ६७ ॥

बलभद्र हुतो नागोध पट्ट, दिन दिवस सोहु लग्गो कुबट्ट॥
साहब अनाम किय कैद जाहि, रक्खिय प्रयाग निवसथ रसाहि॥ ६८ ॥

तस राघवेंद्रसिंह जु अपत्य, दिय साहब तासहि राजकृत्य॥
सुभ मनुज तिन्हैं भोजिय भुवाल, सोती सु मारफत कृष्णलाल॥ ६९ ॥

पौराणिक कासीना[illegible] पात, अरु पुरोधाहि नंदन उम्हात॥
सो रामरसीले नाम ख्यात, पंडित अनाम मिलि सभा पात॥ ७० ॥

दै आसिख अक्खि रु भद्र भूप, इक तुपक निवेदिय पुनि अनूप॥
टहरी सु जात सौबर्ण अंग, अरु कुंद रजतमय कलि अभंग॥ ७१ ॥

त्यारी सु राजती बहुरि सत्थ, बलि सम्मुह पैठि रु मिसल पत्थ॥
अक्खिय जुहार नृप अस्मदीय, सुभ अक्खिय तिन्ह पुनि तस सुहीय॥७२
प्रभु पूछि राजवृत्तान्त सर्ब, दिय सिक्ख सिविर हित करि अखर्ब॥
पट्टप सु भीम आयउ कुमार, आमय मसूरि सिंधूततार॥ ७३॥

करि नजर निछावरि मिसल लेत, तस पूछि अनामय सिक्ख देत॥
किय कासमहू सप्तिम मुकाम, गीवाँपुर आगम सुनर राम॥ ७४॥
मथुराप्रसाद भूसुर भुवाल, नारायन पाठक तिम उताल॥
संबंध रचन तहँ दुवहि आइ, इनकी सु प्रभू पुनि अरज पाइ॥ ७५॥
अरु बहुरा जीवनलाल थान, आरुहि गज उप्पर कियउ आन॥
ताजि गज रु शिविर प्रविसे सु विप्र, मिलि कुसल अक्खि अरु मंत्र छिप्र॥७६॥
तब बहुरा जीवनलाल तत्थ, अरु अमृतलाल भ्राता सु अत्थ॥
तीजो वकील हम्मीदखाँहि, आचारज आसानंद आँहिं॥ ७७॥
नृप विश्वनाथ हम कथन गेय, मम गेह पुत्रिका तुमहिं देय॥
सुनि मंत्र एह घटिका सु तीन, पुनि जीवनलाल हिं सिक्ख कीन॥ ७८॥

अरु बत्त नाँहिं स्वीकार एह, बलि विप्र गये दुव आसु गेह॥
पुनि नयन सप्तमी दिन प्रभात, प्रभु सरैइ सु किय सेन पात॥ ७९॥
करि कुच्च अष्टमी दिन मुकाम, पहु दियउ कसीया नाम गाम॥
इक कोस हुती गंगा उहां सु, अवरोध सहित किय गमन ह्वां सु॥ ८०॥
करि स्नान धेनु दुव दिय दान, हंकिय निज डेरन चाहुवान॥
इम आइ शिविर सर्बरि वितात, पुनि करिय कुच्च नवमी प्रभात॥ ८१॥
मँगतीपुरा सु प्रभु दिय मिलान, दसमी किय डूमनगंज थान॥
एकादशि बासर सोम पात, अति उमगि प्रयान सु राज आत॥ ८२॥

संमट हलीहर समट नाम, कपतान त्रय हि उपपद सु काम॥
आइउ प्रभु सम्मुह अर्द्ध कोस, जो जनरल साहब कै भरोस॥ ८३॥

मिँलि क्रमन बरब्बर बाम भाग, प्रभु आइ शिविर सन्निधि प्रयाग ॥
तस दुग्ग बरब्बर बाग ताहि, अवनीपति तामैं रहन आहि ॥ ८४ ॥
किय शिविर तत्थ प्रभु हुक्कम पाइ, अवरोध रु भट सब शिविर आइ ॥
प्रभु सिक्ख साहबन पुनि समप्पि, कटिबंध निवारन बहुरि थप्पि ॥ ८५ ॥

दोहा

श्री प्रयाग संज्ञा किते, बदत इलाहाबाद।
किमहु होहु पै पाप गज, गज्जत सिंह निनाद ॥८६ ॥

षट्पात्

चढि तुरंग किय क्रमन अप्प माधवबेनी पहँ,
करि मुंडन पुनि स्नान अस्थि पूजन प्रभु किय तहँ।
प्रनमि भूप उर द्वय समोद सह गमन नीर किय,
पितरन पुनि करि स्तवन अस्थि कर अप्प प्रवेसिय।
आप्लवन करि रु पुनि धेनु इक, उभयमुखी दिय भूसुरन।
बलि महुर पंच दै नित्य करि, किपउ प्रभू डेरन गमन ॥ ८७ ॥

द्वादशि दिन नृप सदन गवरनर जनरल लार्डहु,
नाम अलीनबराहु तास प्रतिहार आइ पहु।
अरज कराइय एह लार्ड पहु मिलन अज्ज चहि,
अरु वकील नरनाह हमिदखाँ वृत्त एह कहि।
सुनि एह अरज प्रतिहार प्रति उत्तर दिय तुम इम चवहु।
अज्ज करि पितर तर्प्पन बहुरि कल्हि मिलन हमरो चहहु ॥ ८८ ॥

इम कहाइ चढि अधिप चलिय गंगा मिलाप तहँ,
सरस्वती जमुना हु इक्क हुव नीर आइ जहँ।
पंचम नामक गुरुहि बहुरि बुधजनन बुलाइय।
शास्त्र उक्त विधि साहेत श्राद्ध तिन प्रभुहिँ कराइय,
दै दान द्विजन पंचम सु मुख, रस घटिका जावत रजनि।
आरुहि सु अर्ब नमि द्विजनन, शिविर प्रवेशिय महीपमनि ॥ ८९ ॥

तेरसि दिन पुनि रहत गमन साहब मिलाप सन,
नाम अलीनबराहु गवरनर जनरल कमरन।
भेजिय सम्मुह त्वरित इस्तरेजी सु सिकत्तर,
सचिव लार्ड को बहुरि नाम नांहि सु साहबबर।
सकटी तुरंग चढि पुनि दुव सु, आइ रु मिलि प्रभू तैं सुमन।
कर सत्य करि रु सुभ लार्ड कृत, अग्ग प्रभू सह किय अटन॥ ९० ॥

दोहा

पहुँचत कमरन अधिप तहँ, चोक अनायत पाइ।
अयमय नालिन के उतसु, तेरह फैर कराइ॥ ९१ ॥

षट्पात्

कमर लार्डसन क्रमत इस्तरेजी पुनि आइ रु,
मैंडक साहब आइ बहुरि अतिमोद बढाइ रु।
करन परस्पर सीस कुसल करि कमर प्रवेसत,
उततैं सम्मुह लार्ड द्वार लग सत्वर आवत।
मिलि खंध जुट्ठ भावुक भनि रु वलि लगाइ दुव मत्थ कर।
संसदहिं पाई साहब सहित खुरसिन उप्पर बैठि बर॥ ९२ ॥

बैठिप नृप दिस बाम अलीनबरा सु लार्ड तहँ॥
मैंडक बैठिप सव्य बहुरि जयसिंह विजय जहँ॥
याके अध भट सचिव तीस प्रभुकेर मुदित मन॥
मध्य विराजिय अप्प समय चवि कृत धाराधन॥
घोटक मतंग भूखन तुपक बस्त्रादिक प्रभु भेट दिय,
इम तुपक तास पुर जात पुनि नाम रफल करि नजर किय॥ ९३ ॥

दोहा

किय अवरोधन सह क्रमन, गंगापट प्रभु ह्नान।
मज्जन करि डेरन गमन, चउदसि दिन चहुवान॥ ९४ ॥
अमा दिवस पुनि गंगतट, अंतउर सह आइ।
किय स्नान आदिक प्रथम, ग्रहन मगम तहँ पाइ॥ ९५ ॥

प्रसू दुव हि किय दान पुनि, रजततुला प्रभु अप्पि।
अंबा अमानकुमरी उमगि, बैठि रु विप्र समप्पि ॥ ९६ ॥

महिषी स्वरूपकुमरी दियउ, द्विजन दान मुद पाइ।
कथन सस्त्रि पुनि अप्प करि, उमड़ित डेरन आइ ॥ ९७ ॥

पड़िवा सित पंचम मुर हिँ, महिप बुलाइ मिलान।
पूजन करि तस प्रीति सह, दिय अप्प कर दान ॥ ९८ ॥

षट्पात

इक मतंग बन्नात सिरी कुथ सहित समप्पिय,
हाटक भूषन तुरग बहुरि बन्नात जीन दिय।
सिरुपाव रु सिरुपेच कटक उरसूत्रिका हि तिम,
धेनू दुव शिविका रु निष्क पंचक रुप्पय जिम।
इखुख सोहु पंचक अरथ, गाम लोहली निष्क दुव।
इम करत बहुरि अवरोध सन, भिन्न भिन्न तहँ दान हुव ॥ ९९ ॥

दोजि दिवस उपवीत लियउ प्रभु ब्रह्मचर्य पुनि,
पंचमि दिन लै अप्प भीम कुमरहि सुभटन चुनि।
शास्त्रउक्त बिधि सद्धि भीम सह सुभट सधाइय,
दियउ दान भू भर्म द्विजन बहु मोद बढाइय।
षष्ठिका दिवस हुव मेघ झर, सप्तमि बुधहिँ मिलान रहि।
अवरोध सहित एकादशिय चलिय गंगतट ह्लान चहि ॥ १०० ॥

मनोहरम्

भूप दशाश्वमेध उप्परि पधारि पुनि,
अप्प कर ह्लाइ भरे दुव घट प्रबाह तैं ॥
तर्प्पन रु नित्यकर्म आइ करि तीर्थ द्विज,
दैकैं गो सनिष्क द्रम्म पंचक उछाह तैं।
पुनि प्रभु अश्वदश मेध के वितर्द पर,
जाइ रु प्रनाम कियो पर्बई के नाह तैं।

निष्क इक नाणक महीपति क्वाँ भेट करि,
भोजन द्विजन देय रुप्पय सलाह तैं॥ १०१॥

शिबिर प्रवेसि पुनि द्वादशी दिवस पात,
भेजिय हमीदखाँ वकील लार्ड घर कों।
ज़ाइ तहँ मैंडक सिकत्तर सों अक्खि इम,
लै चलो डेरन हमारै गरवनर कों।
जाइ तिन लार्ड अलीनबरा तैं एह कही,
चालहू मिलाप आप बुन्दी धराबर कों।
बहुरि हमीदखाँ की अरज यह ही सुनि,
आवत शिबिर प्रभू लैकैं सिकत्तर कों॥ १०२॥

साहब सिकत्तर वजीर नाम डोरन ओ,
कालविल्ल त्योंही हरीसन हलीहर कों।
लार्ड अलीनबरा को अमात्य मखन तोस,
समरढ नाम पैं कुहात सिकत्तर कों।
अंसुकसदन ईस गाइब सुरम सोही,
स्पंदन सदन ईस आयो राम घर कों।
टालबट आयो त्यों उमगि महिपाल पुनि,
जनरल जंगी ईस तजिकैं गुमर कों॥१०३॥

बैठक चउन को तुरंगरथ इक्क तापैं,
लार्ड चढि सिबिर अलीनबरा के सम्मुह कों।
एह सुनि लाई अलीनबरा के सम्मुह कों,
जीवनसहितलाल सचिव पठातभो।
महासिंहउत्त भट घौंकल रु गोकुल त्यों,
सासन भुवाल केतैं त्रिकन जात भो।

जाइ मिलि उक्त लार्ड साहब सहित सब,
सिबिर महीपति के उमंगि सु आत भो॥ १०४॥

शिबिका अरोहि प्रभु सम्मुह बहुरि जाइ,
मिलिकैं परस्पर लगायो सीस कर कों।
कुसल दुहूँ घाँ होइ साहब बहुरि कही,
भूप हम सन्निधि विराजैं बत्त बर कों।
सुनिकैं नृपाल लार्ड साहब के वामभाग,
बैठि रु कुसल कियो भूप सिकत्तर कों।
मोद सह लार्ड भूप मैंडकैं सिकत्तर हू,
बैठिकैं तुरंगरथ आये बस्त्रघर कों॥१०५॥

शिविर प्रवेसि लार्ड साहब सहित आप,
संसद पधारि सब बैठे खुरसिन तैं।
खुरसी स्वकीया मध्य राज तीपैं बैठे अप्प,
मैंडक हू सब्य बैठो.......राम इन तैं।
बामभाग बैठो लार्ड साहब महिपति तैं,
समर जु आदि नव बैठे अध जिन तैं।
जीवन अमात्य हो हमदिखाँ वकील बैठे,
करन कृपान आदि वीर अध तिन तैं॥१०६॥

दोहा

समय देस वृत्तांत चवि, करन मंत्र एकत्त।
शिविर अंत ए लार्ड सह, तिम मैंडक क्रमि तत्त॥ १०७॥
जीवनलाल बुलाइ जहँ, अरु हमीदखां आइ।
करि रहस्य इक नाड़िका, पुनि पहु संसद पाइ॥ १०८॥
अतरपान पुनि अप्पिकैं, ... ।
शिरुपेच रु दुस्साल पुनि, जटिल गिलंगी अप्पि॥ १०९॥

मुत्तिनमय उरसूत्रिका, पट्टिस निज पुर जात॥
चोक स्वर्ण बलदार मय, तुपक इक्क दिय तात॥ ११०॥

षट्पात्

दंती इक बन्नात सिरी कुथ सहित समप्पिय,
तुरंग दोइ सौबर्ण बहुरि राजतखन----दिय।
इत दै सिक्ख सुजान बाह्य डेरन लग आइ रु,
भनि भावुक प्रभु लार्ड मत्थ कर दुहुँन लगाइ रु।
चढि लार्ड तुरगस्यंदन बहुरि मोदित बंगलन गमनकिय।
इकबीस फैर नालिन अधिप करि कटिबंध निवारि दिय॥ १११॥

निश्शाणी

चउदसि दिन झर मेघ तैं डेरन रहि पाया॥
पुनि पुण्णिम नृप ह्वान को गंगातट आया॥
जानि तिथि क्षय जनक की तर्पन उमगाया॥
मज्जन करि बिधि सहित श्राद्ध द्विजदान मिलाया॥ ११२॥
रजनी बित्तत बान बहुरि डेरन पर आया॥
सावन पड़िवा असित तत्थ प्रभु रहन उम्हाया॥
दोजि दिवस नृप दत्त लार्ड शस्त्रादि भिजाया॥
तब नृप सचिवन अक्खिकैं तस मोल कराया॥ ११३॥

च्यारिसहँस सत अट्ठ पंचनभ रौप्य मंगाया॥
दै हमीदिखाँ हत्थ लार्ड बँगलन भिजवाया॥
कियउ नजर तहँ जाइ लार्ड लै मोद बढ़ाया॥
दिन चउत्थ दीवान शिबिर साहब छद आया॥ ११४॥
कग्गर बंचि अमात्यहू सब वृत्त सुनाया॥
उदयपुराधिप रान नाम सिरदार कहाया॥
वृंदावन सेवन करन अग्गैं तहँ आया॥
सो अट्ठारह दिवस रहि रु परलोक पलाया॥ ११५॥

पंचमि दिन पुनि पाइकैं चर एह सुनाया॥
जैपुर गोकुलचंद्रमा जयसिंह थपाया॥
सेवक बल्लभ ताहिको गुस्सांइ कहाया॥
नंदन गिरिधर सहित उमँगि डेरन पहँ आया॥ ११६॥

तब प्रभु सम्मुह तास बाह्य डेरन लग पाया॥
नमन करन करजोरि प्रीति सह सीस नमाया॥
अंसुकसदनहि लाइ बहुरि तिन तखत बिछाया॥
प्रभु को चोका तखत तैं अपसब्य बिछाया॥ ११७॥

बैठि रु चवि वृत्तांत समय दुहुँ सस्त्र दिखाया॥
नजर तीन किय निष्क प्रभू पट्टिस पुनि पाया॥
चोक स्वर्णमय तास समन करि सिक्ख दिवाया॥
बाह्य शिबिर लग बहुरि आइ तिन मुद पहुँचाया॥ ११८॥

बलि प्रभु डेरन प्रविसि कैं कटिबंध विहाया॥
षष्ठी दिन तिम सप्तमी अष्टमि तहँ पाया॥
नवमी साहब मिलन कज्ज बांदापति आया॥
अंत मुहम्मद जुलफकार नव्वाब कहाया॥ ११९॥

आवत डेरन दुग्गतैं नालिन चलवाया॥
पंच अधिक दश फैरहू मालुम करवाया॥
दशमी दिन पुनि शिबिर भूप साहब चर आया॥
मैंडक केर सलामहू मालुम करवाया॥ १२०॥

भावुक सहित सलाम भूपति प्रति दरसाया॥
एकादशि बाराणसी पढि द्विज इक आया॥
गंधी केसवराम के सुत संसद पाया,
आह्वय सह हरबखस जो पढि नृप उमँगाया॥ १२१॥

बैठक ताके गुनन तैं पहु रीझि दिखाया,
द्वादसि दिन बुधवार कौं चढि अश्व चलाया॥
कोटेश्वर सिव दरस काज प्रभु पुनि उमँगाया॥,
करि दरसन मृड केर बहुरि गंगाजल न्हाया॥ १२२॥
नित्यकर्म करि सदर ईस इक निष्क चढाया,
गुन घटिका दिन रहत श्रप डेरन पुनि पाया॥
मक्खनतोस रू टालबट जु जात्रा सँग लाया,
पधरावन प्रभु लार्ड गेह साहब दुव आया॥ १२३॥

दोहा

चढि तुरंग तिन सह चतुर, लार्ड केर लग जात।
आदि सिकत्तर मैंडकहु, अधिपति सम्मुह आत॥ १२४॥

षट्पात्

भनि भावुक प्रभु केर सीस कर मुदित समप्पिय,
प्रभु तब अप्प सु पानि मत्थ रक्खि रु सुभ अप्पिय।
साहब मैंडक सहित लार्ड बँगले सु प्रवेसत,
उमँगि अलीनबराहु प्रभू सम्मुह तहँ आवत।
कर सीस परस्पर कुसल कर, कमरुअंत राजाइ दुव।
खुरसीन बैठि बेला अलप, हाकिम सह एकान्त हुव॥ १२५॥

दोहा

तुच्छ समय एकांत रहि, कुसल जंपि करि सिक्ख।
आये प्रभु डेरन उमँगि, रक्खि हर्ष तहँ तिक्ख॥ १२६॥
चढि तरंड करि कुच्च पुनि, अमा तिथी दिन आप।
झूँसी नामक सहर हू, अंसुक सदन अवाप॥ १२७॥

पद्धतिका

प्राष्ठासित प्रतिपदि सोमवार, सहिदादि बाद रहियत उदार॥
करि बहुरि द्वितीया दिवस कुच्च, विश्राम वरोटहि दियउ उच्च॥ १२८॥
इक रत्त सिविर चंक्रमन राम, अति मुद कासीपुर आ जगाम॥
दिय द्विजन तहाँ करि ह्नांन दांन, इंग्रेजन मेलन करि दिवांन॥ १२९॥

सप्तमी धवल पुनि सुज्जवार, लै क्रमन कियउ कछु भटन लार ॥
उज्जाऽसित अष्टमी जीव आप, मुदसहित गया पत्तन मवाप ॥ १३० ॥
करि सबन श्राद्ध तहँ भूरि दान, दै दंती अश्वादिक दिवान ॥
सह सासित षष्ठी सौम्य बार, करि कुंच रहिय चरखी उदार ॥ १३१ ॥

अधवल सहस्य पुनि दोजि आप, बाराणसि नामक पुर अवाप ॥
अविसद तपस्य सत्तमि स आर, राजातलाव रहि पट अगार ॥ १३२ ॥
इम करत कुच्च प्रभु पुनि विश्राम, नागोध द्रंग व्याहन जगाम ॥
पुनि सुक्ला नवमी लग्न पाइ, व्याहिय निसीथ प्रासाद जाइ ॥ १३३ ॥
सो चंद्रभानु कुमरी स नाम, बामांग अप्प करि राम बाम ॥
अंसुकगृह आइ रु बहुरि आप, जाचकन अत्थ बहु धन ददाप ॥ १३४ ॥
नभ गगन नंद इक लगत साल, किय कुच्च मास मधु बलि कृपाल ॥
विश्राम कुच्च करि करि रसेस, बुंदीपुर सुभ दिन किय प्रवेस ॥ १३५ ॥

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवम राशौ रामसिंह चरित्रे पञ्चदशो मयूखः ॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

अभ्र गगन नव इंदु सक, अनंगतिथि आषाढ।
पक्ख असित बुंदीस पुर, प्रविसे प्रभु गुन गाढ़ ॥१ ॥
तदनंतर भट्टिय प्रथित, जैसलमेरु जनेस।
मूलराज बंधुन समुद, आनिय डोला एस ॥२ ॥

षट्पात्

कन्या राउल विजयकुमरि जीवन गुनगोरिय,
राउल ज्ञान द्वितीय रिद्धिकुमरी तिम आनिय।
पट्टप भीम कुमार केर संबंध दुहुँन भनि,
प्रोषित अक्खि रु तास कियउ सतकार महिप मनि।
केदारनाथ शिव के निकट बुरजसिकार हिंं हित बिजय।
उपवन बहोरि ज्ञानहिं अधिप, रक्खिय रूपविलास रय ॥ ३ ॥

मनोहरम्

ईसतिथी उप्पर कुमार भीम लग्न काल,
व्याहन पठायो पहु बुरज सिकार कों।
राउल विजयसिंह उत्त उपहार ठानि,
कन्या करग्राहन करायो कुमार कों।
अनल परिक्रम ओ सप्तपदी आदि दैकैं,
वेदबिधि आये पुर तिहि बार कों।
नवमी दिवस रूपआदिक विलास जाइ,
ज्ञानसिंह तनया बिबाही गुरुबार कों॥ ४॥

ग्यारह सहस्त्र ऊन लक्ख दुव रुप्पय ओ,
तुरग द्विषष्टि अरु कटक दुसत्त भो।
अप्प प्रभु सभ्य रविमल्ल कवि मास सुचि,
एकादसी हूतैं बिजैदशमी लौं दत्त भो।
सुनिकैं उदंत यह जच्चक विदेश हू के,
आये नैर बुंदी प्रभु द्रव्य अनुरत्त भो।
सुकवि समाज कति मिलिकैं निवाजै आप,
बाजे जस ताजे जेके बजाइ कति पत्त भो ॥ ५॥

पज्झटिका

अरु भ्रात कोटरिन करि उछाह, औ द्वादस वलि आये बिबाह॥
सो नाम सहित सुनिये रसेस, यह भोमसिंह आये ससेस॥ ६॥
सामंतसिंह कापरनि केर, सकुटुम्ब रचिय आगमन फेर॥
देव्यादिसिंह दुर्गापुरीस, सिवसिंह इंद्रगढ कै रईस॥ ७॥
सकुटुंब कुमर सह अवर पाइ, आंत्रद अधीस पुनि राम आइ॥
इत्यादिक आइ रु रहिय एस, आदर तैं रक्खिय सब इलेस॥ ८॥
करि सभा तास सतकार लेय, दै सिक्ख ताहि दिय बस्त देय॥
इमकरि बिबाह-राम आप, मोदित किय कवि बुध भट अमाप॥ ९॥

इहिँ अब्द जोधपुर के नृपाल, किय भाद्रैकादसि मान काल॥
पुण्णिम दिन पैठो तखत पट्ट, थंभिय समस्त मरुराज थट्ट॥ १०॥

इक बिंदू अंक ससि वर्ष माँहिँ, साहब अजंट बर्टन सु आँहिँ॥
साहब सन सम्मुह प्रभु पधारि, हुव महलन दाखिल हित बढारि॥ ११॥
जयवती ताल प्रासाद जाइ, उत्तरि अजंट पुनि प्रीति पाइ॥
तस सिबिर द्वितीयक अहन आप, किय क्रमन महीपालक मिलाप॥ १२॥
उत साहब सम्मुह आ जगाम, करि सीस परस्पर करन राम॥
प्रभु किय उपवेसन तखत पाइ, उपवेसन साहब सव्य आइ॥ १३॥
पुनि लैन दैन किय अतर पान, हुव दाखिल महलन हट्ट भान॥
महलन पुनि साहब हित अमाप, अर्जुन तपस्य षष्टी अवाप॥ १४॥
--अभिमुख पायंदाज जत्थ, मिलि कियउ परस्पर हत्थ मत्थ॥
तदनंतर बैठिय तखत राम, साहब सु दलीचन रहिय बाम॥ १५॥

बेलाल्प राखि करि अतर ताहि, पहुँचावन पायंदाज आहि॥
दै सिक्ख ताहि दिय बस्तु देय, धरनीन्द्र अप्प किय जो बिधेय॥ १६॥
अब सुनहु प्रभू इहिँ अब्द अंत, इंग्रेजन किय जो रन उदंत॥
व्यासा सतलंज रु बीच देस, आक्रमन सिखन करि लिय असेस॥ १७॥
सयगगन निधी अरु इक्क साल, तेरसि तिथि भाद्राऽसित भुवाल॥
महाराजकुमर लघु रंगनाथ, उद्धवन भवन भव सर्व आथ॥ १८॥
लाहोर ईस तिन दिन दिलीप, हुव सिष्टि कंपनी मनु महीप॥
जव करि इंग्रेजन जुद्ध जास, नालिन तस सेना करि रु नास॥ १९॥
बलि करि निरोध भेजिय बिलात, तस जननी चंदा नाम तात॥
नेपालज अटवी रहन कीन, इंग्रेज राज्य तस किय अधीन॥ २०॥

गुन गगन अंक इक अब्द आत, भो तनय भुजिष्या जठर जात॥
अभिधा नारायनसिंह आइ, बय बहुरि बाल्य पंचत्व पाइ॥ २१॥

पहु झल्ल मदनसिंहाभिधान, हायन इहिँ पट्टनि भयउ हान॥
तस बैठिय पृथ्वीसिंह पट्ट, बनि प्रभू चलिय सामान्य बट्ट ॥ २२ ॥

सक बेद सून्य ग्रह इक्क आत, पट्टन दुबंट पहु अप्प पात॥
बलि केसव उच्छव हित बढारि, सित राधमास पट्टनि पधारि॥ २३ ॥

दर्शन करि केसव के दिवान, अक्षयतृतीय दिन पुनि विधान॥
उच्छ्व अरु पूजन करि रु आप, सब करि विधेय सिबिरहि अवाप॥ २४ ॥

करि बहुरि तहाँ प्रभु ह्वांन दांन, बर्टन अजंट बलि कियउ आंन॥
चर्मण्यवति घट्टो परि बिछात, अधिराज प्रथम तहँ अप्प आत॥ २५ ॥

साहब सपुत्र आइउ उहांहि, अप्प सु पहु सम्मुह छ पद आँहिँ॥
करि दु दिस सीस कर भद्र भाखि, गालीचन साहब बाम राखि॥ २६ ॥

बैठिय पहु गद्दी सित अवाम, अल्पहि पुनि बेला रक्खि आम॥
दै अतर पान तस सिक्ख दिन्न, क्रम छ पद तस पहुंचान किन्न॥ २७ ॥

राजेन्द्र राध सित नवमि राम, करि कुंच सु बुन्दी आ जगाम॥
सक बान गगन नव ससि भुवाल, किय कुमर नरायनसिंह काल॥ २८ ॥

तप असित नवमि दिन बहुरि तात, रसरंग सुभद्र सु कुमरि जात॥
इहिँ सांक अधिप परतापपाल, किय नगर करोली भाद्र काल॥ २९ ॥

सुत तास मदनसिंहाभिधान, व्है भूप चार भट कियउ मान॥
रस व्योम अंक भू वर्ष आहि, लाहोर इंग्रेजन लिय उमाहि॥ ३० ॥

हय गगन अंक इक होत साल, दुर्गापुर देवीसिंह काल॥
सुत संभूसिंहसु गिनि अभिन्न, दुर्गापुर सासक अप्प किन्न॥ ३१ ॥

इहिँ सक इंग्रेजन युद्ध किन्न, नृप बर्मा तैं कछु देस लिन्न॥
गज गगन अंक इक आत साल, पट्टनि सु अज्ज प्रविसे भुवाल॥ ३२ ॥

साहब अजंट तहँ मिलन काम, सो जानहु मारीसैंन नाम॥
चर्मण्यवति तरनी उतरि चाहि, आइय बिछात उप्परि उमाहि॥ ३३ ॥

प्रभु अप्प तास अभिमुख पधारि, आइय समाज बहु हित बढारि॥
कछु समय राखि दै सिक्ख तास, पहुँचावन पायंदाज पास॥ ३४ ॥

हुव दाखिल शिबिरहिँ हड्डुभान, दिन द्वितिय कियउ तहँ न्हान दान ।।
कारि कुंच बहुरि प्रभु अप्प राम, बुंदी पुर सत्वर आ जगाम ।। ३५ ।।
तदनंतर बीकानैर राय, पहु रत्नसिंह तज्जिग सु काय ।।
सरदारसिंह तस पट्ट पाइ, जानैं कछु प्रभुतैं हित जनाइ ।। ३६ ।।
ग्रह गगन अंक इक आत साल, कापरिन कियो बलदेव काल ।।
सब मेटि विघ्न कापरनि केर, महाराजा हलधर कियउ फेर ।। ३७ ।।
रागिनि सेखाउति हड्डुराइ, उज्जा सित तिन दिन निधन पाइ ।।
बर्मा उपवर्तन नृप बहोरि, इंग्रेजन लिय इक दुर्ग तोरि ।। ३८ ।।

सक गगन इक्कनव ससि समाप, प्रभु मिलन अत्थ सौधन अवाप ।। ३९ ।।
किय करन दु दिस कछु कुसल कारि, पुनि अप्प तखत उप्परि पधारि ।।
बर्टन गालीचन रक्खि बाम, बेलाल्प रहि रु गय वस्त्रधाम ।। ४० ।।
उष किय अजंट अजमेर जान, अब सुनहु वृत्त इत हुव दिवान ।।
एकादसि आश्विन असित आत, पटरागिनि पहु पंचत्व पात ।। ४१ ।।
तदनंतर जीवाराम तात, ग्वालेरप जनकू नाम ख्यात ।।
कछु रोग पाइ तिहिँ कियउ काल, सुत जीवाराम सु भो भुवाल ।। ४२ ।।
सक भूमि इक्क निधि ससि उदार, शुक्रासित दशमी शुक्रवार ।।
मदनेस झल्ल धीदा उमाह, कुमरार्जुन पट्टनि किय विवाह ।। ४३ ।।

तहँ त्याग अमित पहु राम आप, मोदित दिवाइ किय कवि अमाप ।।
सक इहिँ इंग्रेजन रूस साह, ओस्कंदन जीति रु किय उछाह ।। ४४ ।।
सय भूमि अंक ससि लगत साल, आयउ अजंट मेसन भुवाल ।।
जयवतिय ताल उत्तरन जास, आगत अजंट महलन हुलास ।। ५४ ।।
अभिमुख पहु पायंदाज आइ, करि को परिकर पुनि सय मिलाइ ।।
उपवेसन गद्दी कियउ आप, आसन सु सव्य रहि हित अमाप ।। ४६ ।।
रहि समय तुच्छ तस सिक्खि दिन्न, पहुँचावन आदिक पुब्ब किन्न ।।
तदनंतर जानहु नरनपाल, पट्टप कुमार बंसनबहाल ।। ४७ ।।

उद्वाह करन भेजिय इलाप, सह जन्य कुंच करि तहँ अवाप॥
सह मास एकादशि बुद्धवार, इहिँ लग्न भीम पट्टप कुमार॥ ४८ ॥
राउल सु भवानीसिंह धीय, अभिधा गुलाबकुमारी सुंहीय॥
परनि रु बुंदीपुर आ जगाम, दंपति लिय महलन दिवस बाम॥ ४९ ॥
गुन भूमि अंक मृगअंक साल, किय इंद्रगढप सिवसिंह काल॥
संग्रामसिंह हुव तास पट्ट, बनि चलिय महाराजा कुबट्ट॥ ५० ॥

दोहा

मेसन साहब मेटि अरु, बर्टन आइ बहोरि।
हुव अजंट हड्डोति को, मद अरातिगन मोरि॥५१ ॥
बलानाथ इहिँ सक बहुरि, प्रोष्टासित नरपाल।
रंगनाथ सिंहहिँ कुमर, किय नागोधहि काल॥५२ ॥

॥ इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणेनवम राशौ रामसिंहचरित्रे षोडशो मयूखः ॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

बेदं इंदु नव ससि बरस, तपा मास सित पाइ।
पहु हलधर पंचत्वपन, पुण्णिम दिन प्रकटाइ॥१ ॥
तब कापरनिय तस तनय, रार्जासिंह नरराज।
आइय बनि महाराज इत, गौरवादि सुभ काज॥२ ॥

पादाकुलकम्

प्रसू अप्य जो पहु तदनंतर, उज्जा सित एकादशि बासर॥
जो अमानकुमरी ति जनावत, पन पंचत्व मध्यदिन पावत॥३ ॥
याहि समय सेना इंग्रेजन, अज्जाबत्तज मनुज फिरे मन॥
सत्तर ही पलटन के स्वामी, साहिब रैट कप्तान सुनामी॥४ ॥
सासन गोरन एह सुनायो, टोटन सिर काटन प्रकटायो॥
तामें मेघजीन खल्लासिय, ए उदंत समग्र सु जानिय॥५ ॥

इकदिन आयुधीय तहँ आइय, खल्लसी जातैं दक मांगिय॥
तबहि अदेय आयुधिक अक्खी, जब खल्लसी बात यह भक्खी॥ ६ ॥
भेद मिलित टोटन गो सूकर ,रद छेदन करिहो तब सत्वर॥
जातिहु जबर पुण्प फल पैंहो, दक जब हमहिँ पान कों दैहो॥ ७ ॥

इम सुनि चमू आयुधिक आयो, सब अज्जन वह वृत्त सुनायो॥
तब कप्तान रैट तिन्ह मारि रु, इकदिन सर्व छावनिन जारिरु ॥ ८ ॥
ससुत मैंम साहब बहु मारे, कति भूपन के सरन सिधारे॥
सुनि यह क्वीन दयो तब सासन, बाहिनी जाहु उपद्रब नासन॥ ९ ॥
सेना सहित लार्ड तब आये, कारे जन सब मारि भगाये॥
दिल्ली साहबहादुर सानी, अधिपतिता हिंदुन उर आनी॥ १० ॥
पकरि सोहु तब साहब भेजिय, पिंसन करि रु कैंप मँहँ रक्खिय॥
तदनंतर कोटापुर स्वामी, रामसिंह महाराव जु नामी॥ ११ ॥
कायथ जैदयाल तस किंकर, भो महरापखान अनुचित धर॥
मैंम पुत्र सह बर्टन मार्‍यो, बैभव लूटि सदन तस बार्‍यो॥ १२ ॥
बाहिर कोटा निजबस किन्नौं, दुःख अमित भूपति सिर दिन्नों॥
.... ॥ १३ ॥
सुनि यह वृत्त करोलिय सत्वर, भेजिय मदनपाल दल भूबर॥
पुर अंदर कछु यत्न प्रवेसिय, जैदयाल दारुन कलि मंडिय॥ १४ ॥
कग्गर लिखि अजमेर खिनायो, महाराव अति नम्र दिखायो॥
सु सुनि लार्ड तब .... क्र सजायो, अति अमर्ष कोटापुर आयो॥ १५ ॥
कति दिन दुदिस युद्ध तोपन किय, दुसह ताव साहब तस सिर दिय॥
जैदयाल महरापखान जब, सुभट मराइ तजि रु बैभव सब॥ १६ ॥

भीरुक मनि कोटा तजि भज्जे, बंबि बिजय साहब बल बज्जे॥
मेटि सकल बिग्रह पुर क[illegible] मह, साहब गो अजमेर सेन सह॥ १७ ॥
सक सर भूमि नंद ससि जानहु, पुण्णिम तिथि इस सुक्क प्रमानहु॥
देवीसिंह पुत्ति दुर्गापुर, मृत गोविंदकुमरि अंतेउर॥ १८ ॥

अष्टि नंद इक हायन आवत, मैंनेजन मिलि धाटि मचावत ॥
दुःख पंथ जन बहुरि सु दिन्नों, बुंदिय मुलक धाटि बस किन्नों ॥ १९ ॥
पहु तब तापर चक्क पठायो, रहि बन रोक सु समर रचायो ॥
कतिदिन कलि करि कतिक पलायन, कतिक नयारि चक्क किय आवन ॥ २० ॥

हय भू अंक इक्क मित हायन, फग्गुन असित त्रयादेसि पावन ॥
प्रतिहारी किय महिषि उद्यापन, तापर लिखि रु निमंत्रित भूधन ॥ २१ ॥
कवि रविमल्लहिँ दिपउ कृपा कर, बलि भूदेवहिँ बित्त दिपउ बर ॥
तिनदिन भोमसिंह तदनंतर, लागो चलन कुमग्ग अनय कर ॥ २२ ॥
बिगरन राज्य उपाय सु बलि किय, मीनैं मनुजहिँ सरन अमित दिप ॥
जब प्रभु अप्प इहाँतैं सुभजन, भजिय भोमसिंह समुझावन ॥ २३ ॥
जाइ रु तिन अति नय समुझायो, इक्क न वृत्त तास उर आयो ॥
उत्तमांग बिनु नक्क कहिय इम, कहो बिचारि ललित लग्गैं किम ॥ २४ ॥
इम सुनि सब बुंदीपुर आये, तास उक्त सब वृत्त सुनाये ॥
सुनत गहन मैंनन मारन सन, श्रेजिय चक्क गोठपुर भूधन ॥ २५ ॥

ग्राम घेरि मैंने इन मंगिय, नहि दै कहि रु भोम रन मंडिय ॥
जब कुमार अर्जुन कलि किन्निय, दुसह ताप तोपन तस सिर दिय ॥ २६ ॥
कतिदिन कलह भोम गोलिन किय, भीरुक बनि रजनी बलि भग्गिय ॥
नृप तस ग्राम सकल जब छिन्निय, कुमर सचक्क आगमन किन्निय ॥ २७ ॥
बसु बसुधा निधि इंदु अब्द मित, आवन किय बेलन अजंट इत ॥
पुव्वरीति सम्मेलन पहु किय, दृढ दिखाइ पुनि प्रीति सिक्ख दिय ॥ २८ ॥
तदनंतर इहिँ सक इंग्रेजन, किय अजमेर नन्हजी पकरन ॥
पुनि सु बिठूर भेजि गल अप्पिय, ब्रोय बीज तास फल पक्किय ॥ २९ ॥
बाजेरायज एह बखानिय, मिलि कारन कलि नन्ह प्रमानिय ॥
बलि बड़ोद संग्रहि संन्यासन, सोपुरपति हिँ दयो इंग्रेजन ॥ ३० ॥

सक इहिँ बहुरि उदयपुर सासक, सिंहस्वरूप नामहुवनासक ॥
संभूसिंह पट्ट तस पावत, जे अकस्थन रीति जनावत ॥३१ ॥

दोहा

संवत इक निधि अंक ससि, तेरसि तैस रु स्याम।
श्रीगङ्गोदक क्रम सबन, राजराज किय राम ॥३२ ॥

श्राद्धादिक सब बेद बिधि, पहू अप्प कर कारि।
सुभ मुहूर्त उडुदुर्ग तैं, रहि केदार पधारि ॥३३ ॥

पद्धतिका

सुत सहित---- पडवा पयान, दुबलान प्रवेशन किय दिवान ॥
भौजिष्य भ्रात त्रिक कियउ आन, ... ॥ ३४ ॥

यह बहुरि तृतीया आर वार, सो दिवस भयो प्रभुकोऽवतार ॥
करि पूज नवग्रह आदि केर, पटवास नयनपुर बेसि फेर ॥ ३५ ॥

रहि तहाँ चतुर्थी दिन रसेस, आहूत सभा भटवर असेस ॥
लै लंचा सामाजिक समाप, अंसुकअगार दै सिक्ख आप ॥ ३६ ॥

सितपक्ख पंचमी दिवस आत, पहु दियउ समीधी दल प्रताप ॥
विश्राम करत चोरू बलाप, तहँ सुजन टोंकपति के अवाप ॥ ३७ ॥

दोलांत वजीर सु पहु नबाब, सुभ छद लै आये दुव सिताब ॥
सु अजीटण अबदुल समनखान, विष्णुप्रसाद कायस्थ वान ॥ ३८ ॥

सामाजिक किय दुव रचि समाज, करि नजर अरज किय हड्डुराज ॥
यहु नामकीन अधिराज एह, नाणक रु सहस्त्र नय करि सनेह ॥ ३९ ॥

कंडोल हारहूरादि केर, मिष्टान्न एक शत नियन फेर ॥
महिमानिक लंचा लेहु-लार, धरनीन्द्र अप्प ऊंदद--धार ॥ ४० ॥

उडुनाथ उदित रस घटि अवाप, दै सिक्ख उज्झि पर्यस्ति आप ॥
पुनि दुहुँन सभा बुलवाइ प्रात. सिरुपाव दियउ छदहित दिखात ॥ ४१ ॥

चंक्रमन सप्तमी चाहुवान, आ मिल माधवपुर कियउ आन ॥
तस नाम जवाहरमल्ल तात, अरु नायब बाजूलाल आत ॥ ४२ ॥

तिम नायब जन मनसुख तृतीय, तित मुनसी नारायण तुरीय ॥
ए सम्मुह आये अद्धकोस, सुभ अरज नजर किय गत सतोस ॥ ४३ ॥

हुव दाखिल पटगृह हड्डु भान, पहु किय मिलान अष्टमि पड़ान ॥
नवमी दिनेस पुनि किय पयान, डुंगर मलारनें किय मिलान ॥ ४४ ॥
पद ऊन कोस तँहँ पुनि नृपाल, आइय बिश हाकिम रामलाल ॥
सुभ अक्खि नजर करि तिम सलाम, रहि तहाँ रति धरनीन्द्र राम ॥ ४५ ॥
वाटोदै दशमी दिन सुजात, पुर परिसर पन्नालाल आत ॥
लै लंचा सुभ तस अक्खि आप, अधिराज बहुरि पटगृह अवाप ॥ ४६ ॥
उग्गत एकादशि सौम्यवार, जावत खुसालगढ़ पटअगार ॥
आइउ द्विज आमिल अद्धकोस, सिवदीन सु लंचा किय सतोस ॥ ४७ ॥
अंसुकअगार पुनि अप्प पास, सिवदीन पुत्त नाराय आस ॥
रहि द्वार कराइय अरज जोहि, व्है हुकम सरबरा केर मोहि ॥ ४८ ॥

तापैं पहु अक्खिय तावकीन, है रीति इक्क हम लिपउ तीन ॥
हमरै रु परस्पर एक बत्त, अब जानि यह तुम अप्रमत्त ॥ ४९ ॥
इम सुनि रु कराइय अरज एस, सामग्री किय पुब्बहि असेस ॥
सब पुब्ब माफ करिहे सुसंध, व्है हुकम ततो दैहाँ प्रबंध ॥ ५० ॥
सासन दिय सो सुनि पुनि रसेस, तब दियउ सरबरा दल असेस ॥
आवत अंतेउर गढकुसाल, मच्छीपुर जेमन कियउ काल ॥ ५१ ॥
मच्छीपुराय बलवंत आइ, करि नजर पुहप कंडोल काइ ॥
किय नजर सवित्री अप्प केर, प्राभृतक कियउ महिषी सु फेर ॥ ५२ ॥
बैतनिक बाहुभव जोहि सत्थ, सतच्यारि सग्धि करवाइ तत्थ ॥
अंतेउर बेसिय शिविर आइ, पहु रहिय तहाँ इम रत्ति पाइ ॥ ५३ ॥

करि कुच्च द्वादशी दिन दिवान, पीलोदै पुनि हुव शिबिर आन ॥
तस सार्द्धकोस आमिल सुहात, श्रावक सुहि चुन्नीलाल आत ॥ ५४ ॥

किय बलि वजीरपुर केर आन, आमिल सु उदयचंदाभिधान॥
लै भेट तास दै सिक्ख आप, अंसुकअगार पहु पुनि अवाप॥ ५५॥
हिंडोंनि पात तेरसि अनंद, आमिल बहोरि गुलआबचंद॥
करि पाव कोस लग नजर आइ, तहँ फैर रुद्र तोपन कराइ॥ ५६॥
लै सिक्ख गयो हाकिम सतोस, पहु कियउ शिबिर आगम प्रदोस॥
हिंडोंनि तैंहि सब सेन माँहि, इंधन तृनादि अरु भांड आँहि॥ ५७॥
तहँ रहत चतुर्दसि धरनिकंत, आमाद सलेमा के रहंत॥
नामसु ------------- गोपेश्वरसरण सु देवराव॥५८॥

अधिकारि नरायनदास आइ, रहि द्वार मिलन बिन्नति कराइ॥
तब कहिप अप्प रवि चाहुवान, मान्यो हम पुण्णिम मिलन मान॥ ५९॥
पुण्णिम सर नाड़ी चढ़ि पतंग, अधिराज मिलन हंकिय उमंग॥
पटगृह गोपेश्वरसरण पाइ, अधिराज नमन करि भेट आइ॥ ६०॥
रहि पहर इक्क धरनीन्द्र राम, अंसुक अगार पुनि आ जगाम॥
तप असित द्वितीया दिन दिवान, सूरैट महिप दिय तिम मिलान॥ ६१॥
तिथि तीज बयानें किय मुकाम, हाकिम तस आगत मिलन राम॥
बलदेवसिंह तस नामधेय, इक कोस आइ सम्मुह अजेय॥ ६२॥
मातुल सु भरतपुर महिप केर, तजि तुरग नजर करि गयउ फेर॥
रहि तहाँ चतुर्थी दिन रसेस, नाड़ी इक रहत हि अहन सेस॥ ६३॥

तत्रत्य सुजन पटद्वार पाइ, पक्कान्न द्व्यंक मन भांड लाइ॥
सर सतक बहुरि नाणकन सत्थ, महिमानिक सामग्री समत्थ॥ ६४॥
मुद पाइ पहू यह मामकीन, भेजिय सु अत्र इम अरज कीन॥
रक्खिय सु सर्ब सो सुनि रसाप, इम लंचा लै दै सिक्ख आप॥ ६५॥
तिथि नाग दिवस तहँ मोद पाइ, साहब सु मिठाई मिलन आइ॥
तजि तुरग सभा करतहि प्रवेस सम्मुह द्विपैंड क्रम करि जनेस॥ ६६॥
बलि करत सलाम सु हित बढारि, तब तास तत्र टोपी उतारि॥
सँल्लाप दुदिस हुव सब बहोरि, एकांत करन कहि सुभट ओरि॥ ६७॥

बाहिर उपवेसन करिउ सर्ब, रहि अप्प मंत्र कारन अखर्ब ॥
बलि भीम कुमर पट्टप भुवाल, बहुरा अमात्य जीवन सु लाल ॥ ६८ ॥

करि मंत्र उक्त सबही समेत, दुव याम बजत तिहिं सिक्ख देत ॥
छट्ठी दिन चड्डत एक जाम, बलदेवसिंह पहु दरस काम ॥ ६९ ॥
हाजारि हुव संसद करि सलाम, करि नजर निछावर मिसल बाम ॥
उपवेसन किय अथ सुभट तीन, कुछ समय बत्त शास्त्रोक्त कीन ॥ ७० ॥
तत जाम उपरि बज्जत तृतीय, सिरुपाव सिक्ख दै गनि स्वकीय ॥
बलि आइ करोली जादवेन्द्र, सो मदनपाल मेलन रसेन्द्र ॥ ७१ ॥
बलि होत सप्तमी सोमवार, अधिराज अप्प सम्मद अपार ॥
रवि चढत जाम इक राजराम, किय क्रमन शिविर तस मिलन काम ॥ ७२ ॥
तजि तुरग प्रवेसत तहँ भुवाल, अभिमुख तब आइय मदनपाल ॥
मिलि करि रु परस्पर हत्थ मत्थ, तत मेलन संधा जुट्ट तत्थ ॥ ७३ ॥

मिलि बहुरि महाराज सु कुमार, पूर्वोक्त रीति करि सब अपार ॥
इम दुवहि गद्दिका उपरि आइ, पहु अप्प रहे अपसव्य पाइ ॥ ७४ ॥
आत्मीय सुभट रहि तिस अवाम, पुनि मदनपाल बैठिय सबाम ॥
बामजु तस रक्खिय सुभट सर्ब, दुहुँ ओर भयो इम सभा पर्ब ॥ ७५ ॥
सारीर बत्त समयानुसार, करि क्रमन कियउ पहु मुद अपार ॥
पहुँचावन आइय मदनपाल, डोढी लग पूषा मध्यकाल ॥ ७६ ॥
सय करि रु परस्पर बहुरि सीस, स्वस्थान गयो जादव सुधीस ॥
उपवेसन सिबिका अप्प आत, इस सत्त फैर नालिन करात ॥ ७७ ॥
पहु अप्प सिबिर आइय प्रजेस, नाड़ी इक रहतहि पुनि दिनेस ॥
पहु मिलन सुभट सह मदनपाल, आत्मीय शिबिर आइउ उताल ॥ ७८ ॥

नरयान छोरि पटद्वार पात, सम्मुह तहँ सत्वर अप्प आत ॥
सय दुदिस बहुरि हुव सीस रक्खि, अधिराज दुवहि आमोद अक्खि ॥ ७९ ॥

उपवेसन किय दुव तखत आइ, पहु अप्प रहिय तहँ सव्य पाइ ॥
पट्टप कुमार तहँ भीम तात, अरु कुमर दुवहि भौजिष्य भ्रात ॥ ८० ॥
सुभट जु बलि आत्मक रहि सु बाम, रक्खिय सु महामात्रादि राम ॥
सम्मुह सु सर्ब कवि बुधन ढल्ल, मिश्रन कवीन्द्र तहँ अर्कमल्ल ॥ ८१ ॥
लालित्य यावनी अमृतलाल, नीती सुहु संकर मुकटलाल ॥
इम राखि सर्ब अप्पन भुवाल, अपसव्य रहिय पुनि मदनपाल ॥ ८२ ॥
अपसव्य चार भट तास रक्खि, अरु उचित समय वृत्तांत अक्खि ॥
निस जात घटी त्रय सीख दिन्न, पहुँचावन पूरब रीति किन्न ॥ ८३ ॥

उपवेसन किय नरयान आइ, दससत्त फैर नालिन कराइ ॥
आमोद दुहुँन इम रहि अपार, पहु मदनपाल गत पटअगार ॥ ८४ ॥
उग्गत सु अष्टमी दिन दिवान, किय गाम नभैर शिबिर आन ॥
नवमी सु भासकर बुध मिलंत, किय शिबिर फतैपुर धरनिकंत ॥ ८५ ॥
कायस्थ सु हाकिम गुरुदयाल, इक कोस आइ सम्मुह नृपाल ॥
प्राभृतक निछावर करि सलाम, पहु अप्प सोहु गय उचित धाम ॥ ८६ ॥
दसमी दिन मंडा कर मुकाम, द्वादसि खंदोली बलि विश्राम ॥
पुनि गाम सैदआबाद पाय, हुव शिबिर चउद्दसि हड्डराय ॥ ८७ ॥
करि कुच्च अमावसि सोमवार, हुव दाखिल हतरस पटअगार ॥
सित पड़िवा मंगल दिन दिवाप, बलि काचकेर नगरै आवाप ॥ ८८ ॥

बुधवार द्वितीया दिवस पाइ, किय गाम सिकंदर शिबिर जाइ ॥
मोहनपुर चोथी दिन मुकाम, बलि कासगंज पंचमि विश्राम ॥ ८९ ॥
छठ्ठी दिन सूकरछेत्र पाइ, किय धारा गंगा शिबिर जाइ ॥
आप्लव करि सूकरछेत्र आप, करि भेट छपाधारा मवाप ॥ ९० ॥
करि सबन पूर्णिमा दिन दिवान, नाग रु गो बाजी छिति नृजान ॥
उष्णीष आदि सिरुपेच सत्थ, दिय दान सु गंगागुरु हिं तत्थ ॥ ९१ ॥

दोहा

गंगागुरू गोविंद कों, चाढि रु गज चहुवान।
दै पट संभूनाथ गुरु, आरुहि अस्व बिमान॥९२॥

बस्त्रसदन के द्वार तैं, इम दुव गुरुहि चढाइ।
महिपति राजकुमार सह, पहुँचावन तस पाइ॥९३॥

गुरु नारिन दै वस्त्र गुरु, पित्रस रथ सु बिठाइ।
इक निसान सादी कतिक, दै तस सद्म पुगाइ॥९४॥

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तराणेनवम राशौ रामसिंह चरित्रे सप्तदशो मयूख: ॥१७॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

प्रतिपदि फग्गुन असित पुनि, गंगधार तजि गेय।
मोहनपुरहि मुकाम बलि, सब करि बेद बिधेय॥ १ ॥

मनोहरम्

करत प्रयान श्रीदिवान राम दूजी तिथि,
गाम काचनगर सो सिविर सुहात भो।
बहुरि तृतीया सुक्रबासर बलापतिहू,
सैदाबाद आइ सुभ थूलन तनात भो।
फग्गुन चउत्थि श्याम सहादरै धाम राखि,
अकबरनैर षष्टी दिवस दिखात भो।
साहब अजंट नाम बेलन बुरुक द्वैही,
सम्मुह दिवाप चढैं नाड़ी गुन आत भो॥ २॥

करिकैं सलाम ओ परस्पर भविक भाखि,
साहब सहित डेरन लौं जाइ कैं।
अकबरनैर गये साहब दु सिक्ख लैकैं,
अप्प प्रभु सिविर प्रवेसे हरखाइ कैं।

एकादशी मंदवार जाम जुग बज्जत ही,
हूतीहु पधारे लार्ड साहबको पाइ कैं।
बेलन अजंट ओ सिकत्तर द्वै साहब हू,
सम्मुह दसक अप्प डोरिन लों आइ कैं ॥३ ॥

जातहि समीप लार्डसाहब के बस्त्रधाम,
आये द्वै सिकत्तर न जानें ताके नाम में।
रजीडन्ट आयो पुनि साहब हू लारनस,
लै गये पहू कों लार्ड साहब के धाम में।
दी आनरेबल दी अर्ल आफ अैलजिन,
आयो ऊठि सम्मुह त्रि पैंड मेल काम में।
सीस कर करिकै हू दूदिस संलाप श्रेय,
बैठे पहु संसद जु लार्ड नहि आम में ॥ ४ ॥

समय अतीत तहँ करिकैं कितोक आप,
कालोचित्त बत्त करी राजराज राम नैं ॥
अन[illegible]गाइ पान दैकैं सकुमार लार्ड,
उट्ठि दिय सिक्ख धर्मधारक के धाम नैं ॥
होत अश्ववार लार्ड केर तहँ तोपन के,
सप्तहदस फैरहु कराये नेह नाम नैं।
पाइ इम लार्ड प्रीति अंसुकसदन आइ,
उज्यो कटिबंध यों अतीत जुग जाम नैं ॥५ ॥

आरवार असित चउद्दसि तपस्य दिन,
बेलन अजंट आये पहु पधरान कों।
अरुहि अजंट उक्त अप्प पहु अस्वरथ,
सेना सह त्वरित पधारे लार्ड थान कों।
पट्टप कुमार भीम अर्जुन रु गोबर्द्धन,
जगन्नाथ वावातिक अंतः प्रविसान कों।
जीवन अमृतलाल वीर बलवंत भट्ट।
सत्थ लै दिखायों अपसव्य चहुवान कों ॥ ६ ॥

तखत बितस्ति इक्क उच्चक बिछाइ तापैं,
जातरूप जटित लगाइ खुरसी जहाँ।
बैठिकैं बुलाये लार्ड भूप रजवारे केर,
सव्य अपसव्य हू बिठाये क्रम तैं तहाँ।
बेगम भोपाल की अपसव्य हू बिठाई पुब्ब,
सन्निधि सिकत्तरोपवेसन कर्स्यो वहाँ।
असि तास हेट्ठ ग्वालियर को नरेस जीवा।
आसन अजंट कह्यो अप्प को पहु चहाँ॥७॥

भरतपुरेस भूप अप्प अध बैठो इम,
महाराव कोटा राम तातर बिठायो है।
उत्तर अधीस अलउर को बिठायो तहाँ,
तास अध टोंक के नबाब थान पायो है।
झालाकेर पट्टनि को राजरानाँ पृथ्वीसिंह,
रामपुर नबाब उत्तरोत्तर मायो है।
अेक अधिराज अपसव्य लार्ड बैठो सब,
जानहु जनेस अब सव्य क्रम आयो है॥८॥

जैपुर जनेस राम आसन सु सव्य करि,
रजीडंट लारनस ईस रजवार को।
इतर अजंट ओ सिकत्तर सु संसदाम,
राम नरनाह जानूं सर्ब सुभकार को।
दच्छिन जो सर्ब रजवार भूप पीछैं तास,
आत्मज ओ भ्रात उपबेसन सुढार को।
जाके पिट्ठि सुभट ओ सचिव बलील स्वक।
अैसैं करि आम कह्यो धाम जयधार को॥९॥

राखिकैं कितेक बेर संसद बहुरि लार्ड,
सिरोपाव दत्त भौ सु माला मुकतान की।

अतर मंगाइ लगाइ जु उत्तरोत्तर हू,
उट्ठिकैं दियउ सिक्ख सर्ब निज थान की।
अस्वरथ आरुहि स्वकीय क्रमैं भूप थान,
आरुहि तुरंगगति शिबिर चुहान की।
रहत दिनेस सेस नाड़ी कृत अप्प षहु।
उज्झिय पर्यस्तिका विसेस करि तान की ॥१० ॥

दरस दिनेस सौम्य बासर बहुरि लार्ड,
मध्यदिन शिबिर पहु के आसु गाइ कैं।
अंसुकसदन द्वार उज्झत तुरंग रथ,
सम्मुह क्रमि रु ताहि मोद दरसाइ कैं।
भविक भनाई भनि संसद सलार्ड जाइ,
बैठि कैं सुविष्टर उदंत कछु पाइ कैं।
सिरोपाव स्तंबेरम सम सब लंचा लै रु,
दै लै सिक्ख लार्ड गयो सम्मद जमाइ कैं ॥११ ॥

द्वादसी रहत नाड़ी नयन दिनेस सित,
आगरा किलट्टर बरून मेल आयो है।
जीवन सु अंत लाल आदिक समाजी लोक,
सहित प्रजेस ताहि विष्टर बिठायो है।
समय उदंत आखि रक्खिकैं कितके बेर,
संक्रम चुहान साहब कों दरसायो है।
जामिनी जुगल जात नारीजन नाथ अप्प,
आरुहि क्रमन काज बलन बढायो है ॥१२ ॥

सिबिर बरोदै सावरोध गाम बेसै आइ,
बासर सु तेरसि फतैपुर बितायो है।
चतुर्दसी चंद्रवार नभैरै मुकाम करि,
शिबिर बयानै राका दिवस सुहायो हैं।

पड़िवा अर्जुन अधीस इम मधु श्राम,
गाम सूरैट धाम स्वजन नायो है।
मंदवार दूजी तिथि हड्डुन अधीस इम।
रहत हिंडोनी बल थूल तनवायो है ॥१३॥

करोली मदनपाल भूप के प्रसस्त जन,
सुभट अमात्य आये पहु पधरान कों।
अभिधा ओंकार ओ मलूकपाल दोलसिंह,
मंत्री बलदेव ए बलदेव सभा थान कों।
मुजरा ओ नजर निवेदि लै मिसल कह्यो,
भावुक भनायो भूप जादव के भान कों।
बहुरि कहिय एह अनुकंपा करि ----।
ओमिति करोगे तूर्ण सबलक आन कों ॥१४॥

अंगीकार तास अरज करि तृतीया दिन,
शिविर वरोदा को कृपाल करवायो है।
दिवस चतुर्थी क्रमै अस्व जु सवार इतैं,
भूप मदनेस उतैं अभिमुख आयो है।
कोस इक्क तटिनी करोली तैं उतरि नीर,
आइ अरवाक ठाढो रहि रु जितायो है।
वावा ता कुमार नाम अर्जुन रु गोवर्द्धन।
अगन्नाथ मुस एस भावुक भनायो है ॥१५॥

महाराजकुमार पधारे पुनि भीमसिंह,
अस्ववार अप्प मिले मदन प्रजाप तैं।
दुहुँ ओर मुजरा स्वसीस सय भव्य कारि,
चंक्रम चुहान कर्‍यो सव्यक जु आप तैं।
उतरि नदीज जल उभय बिछात आइ,
गद्दीकोपवेसन ससव्य मुद माप तैं।

आप अपसव्य प्रभु रहिकैं विराज तहाँ।
पट्टप क़ुमार बैठे पच्छिम मिलाप तैं॥ १६ ॥

सुभट स्वकीय बलवंत राष्ट्रकूट पुनि,
जीवनादिलाल द्विक सम्मुह बिठायो है।
बालू दिवान ओ ओंकारपाल अनपसव्य,
सव्य रहिकैं किती बेर मनन मिलायो है।
अस्वसार होइ दुव भूपन क्रमन क्रम,
सुभट समाज ओर पुब्बक्रम पायो है।
नगर करोली के समीप भो शिविर तहाँ।
प्रभु के प्रवेस तैं जु वदन उम्हायो है॥१७॥

सेस दिव तत्व नाड़ी रहत करोली भूप,
बिप्र बलदेव द्वार नायक पठायो है।
पक्क एक अन्न चत्वारिंश हूके भांड पुनि,
पंचशत नाणक सनेह दरसायो है।
नजर निवेदि भव्य भाखिकैं जुहार जिम,
पाइकैं परागत प्रवृत्तपन पायो है।
तीन अग्ग त्रिशत टकेनभर सेर इक्क।
पक्क अन्न सेना सबन प्रति दिवायो है॥१८॥

पंचमी दिनेस सेस रहतहि नाड़ी च्यारि,
महल पधारे अप्प मदन भुवाल के।
महाराजकुमार सु नाम भीमसिंह बलि,
अर्जुनादि भ्रात तीन बाबा ता नृपाल के।
प्रासादन द्वार जात सेन सह हड्डुइंद,
सत्तदस फैर सु कराये अयनाल के।
अंदर जु चोक लग जातहि मदनपाल।
अभिमुख आयो अधसीढिन सुजाल के॥१९॥

करिकै करन सीस दु दिसही भद्र भाखि,
सव्य सातमी पहु थारे संसदाम मैं।
स्वीय सुभटालि सर्ब वामहि बिठाइ राम,
आप अपसव्य राखि बैठो तखंताम मैं।
पट्टपकुमार भीम ओर शिवदान भ्रात,
अप्प दिस बैठे बीच गद्दिका अबाम मैं।
....,
ऐसें आम बाम रची सभा सुख धाम मैं॥ २०॥

करिकैं कितोक काल नरप अतीत तहाँ,
हड्डइदं सिक्ख लै पधारे निज थान कों।
मंजु क्रम तुरग अरोहन अधिप उहाँ,
पुब्बक्रम जादवेन्द्र आयो गहुवान कों।
आरुहि तुरंग द्वार प्रासादन बाहिरात,
सप्तोत्तर दसक कराये फेर जान कों।
जावन गुनक घटी बहुरि नरेन्द्र राम,
नेह करि प्रबल प्रवेसे सिविरान कों॥२१॥

सप्तमी दिनेस पंच रहतहि नाड़ी सेस,
करोली मदन भूप स्वीय शिबिरायो है।
.... ,
.... ।
अंदर के द्वार लग वीरन सहित आत,
हड्डुन अधीस तास सम्मुह सिधायो है।
सोलह सहित इक्क नालिन कराइ फैर,
अप्प दच्छि नासा तख्त उपरि बिठायो है॥२२॥

अनेह अतीत घस्त्र करिकैं सिधायो सिक्ख,
पुब्ब लग द्वार अप्प आयो पहुंचान कों।

बाहिर शिविर द्वार आइ नरयान चढ़ि,
जादवन नेता गयो जेता निज थान कों।
अट्ठ नव फैर स्वीय तोपन कराइ पुनि,
आगत अधीस सभा बिहित बिधान कों।
आदमीय सेना काज महीप जु सब अन्न,
पिष्ट आदिक समस्त बस्तु - दान कों ॥२३॥

ऐसें राखि दशमी निसा लग मदनपाल,
सिक्ख दैन एकादशी थूल स्वक आयो है।
तजिकैं तुरंग द्वार अंदर प्रवेस पात,.
सम्मुह तहाँही अप्प आवन रचायो है।
संसद पधारि सव्य रहिकैं बहुरि आप,
भद्रासन ताहि अपसव्य बिठवायो है।
एम क्रम तास आस सुभट समाज स्वीय,
पाइकैं प्रवृत्ति पहू प्रीतिपन पायो है ॥२४॥

मदन महीप गेह सिक्ख दै स्वकीय गयो,
कुच्च सर जात नारी रति करवायो है।
गाम कुर आइ थूल राखिकैं द्वितीय दिन,
काम तिथि धाम खुसहालगढ पायो है।
अमावसि अनेह संक्रमन चुहान करि,
वाटैदै बलाप चक्र पत्तन करायो है।
पड़िवा बलछ काव्य बासर बहुरि राम,
ग्राम कसलारनैं सु शिविर सुहायो है ॥२५॥

दोहा

बलानाथ अथ पुब्ब सम, करि इम कुच्च मुकाम।
नवमी पुष्प तड़ाग निस, समुचित कियउ स्वधाम॥ २३॥
लीली नामक दूरवा, चउदसि दिन चहुवान।
सिंहअंत सिरदारके, उपबन किय थुल आन॥ २७॥

राध श्राम सित दोजि दिन, बलज उदीचि विसाइ।
मग्गराज छत्तकमहल, हुव दाखिल हरखाइ ॥२८॥

इति श्रीवंशभास्करे महाचम्मपूके उत्तराणेऽष्टम राशौ रामसिंह चरित्रे अष्टादशोमयूखः॥ २१॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सिविर लार्ड आगम सुनत, जीवनलाल जनेस।
सोदर अमृतलाल सह, अभिमुख भेजिय एस॥१॥
सम्मुह जाई रु लार्ड सन, मिलि करि इन मनुहारि।
सिविर द्वार लग तस समुह, प्रभु पुनि अप्प पधारि॥२॥

पद्धतिका

कर सीस परस्पर करि मिलाइ, अधिराज सभा सह लार्ड आइ॥
विष्टर सु लार्ड राजत बिठाइ, उपवेसन बाम सु अप्प पाई॥ ३॥
प्रभु हेट्ठ बैठि पट्टप कुमार, अर्जुन त्रि बंधु बैठे उदार॥
तदनंतर बैठिय सुभट सत्थ, पुनि सम्मुह जीवनलाल पत्थ॥ ४॥
लघु तास सहोदर अमृतलाल, मंत्र रु रहस्य याविनि कमाल॥
तातर वकील सत जानि नात, पहु आस अप्प दिस सर्ब पात॥५॥
अरु काल उचित संलपि उदंत, करटी तुरंग लंचा करंत॥
सिरुपाव पंच तखती समान, बहु प्रीति निवेदिय चाहुवान॥ ६॥

पहु बहुरि समप्पि रु अतर पान, पहुँचान कियउ जिम पुब्ब आन॥
चढितुरग यान साहब चचार, अवनीसन इतरन थुल उदार ॥ ७॥
....।
....॥८॥
....।
....॥९॥

लै सिक्ख प्रभू इम करि मिलाप, अतिप्रीति करोलीपुर अवाप॥
दस दिवस रहि रु चल्लिय दिवान, प्रविसे बुन्दीपुर हड्डुभान ॥ १० ॥
नभ नयन नंद महि साक मान, कन्या सुभद्रकुमरी सुजान॥
जिहिं कहत भुजिष्या जठरजात, अरु ब्रध्नकुमरि भौजिष्य आत॥ ११ ॥

जान साथ दुर्गापुरप जात, करग्रहन दुहुँन इक दिन करात॥
सहमास द्वादसी सोमवार, इहिं लग्न दु बर आइय उदार॥ १२ ॥
रजनी बहोरि इक पहर जात, दुल्लह दुव तोरन उपरि आत॥
करि कसाघात अंदर अवाप, तहँ बेद रीति तनया ददाप॥ १३ ॥
तखतेस जोधपुर ईस पुत्त, सिरदारसिंह सुभ गुनन जुत्त॥
दिय व्रध्नकुमरी ताकों उदार, किय भीम दान कन्या कुमार॥ १४ ॥
हरसोर लाल सुत पुनि प्रताप, कन्या सु भद्रकुमरी ददाप॥
मन्मथ तिथी सु गोरन जिमाई, पुनि रक्खिय कति दिन प्रीति पाइ॥ १५ ॥
दायज सम दुव हित पुनि समप्पि, सोदर जामाता सीख अप्पि॥
करि कुंच जन्य सह मुद अमाप, दुल्लह स्वसद्म मरुधर अवाप॥ १६ ॥

अर्जुन गोबर्द्धन जगन्नाथ, व्याहे सु जोधपुर इक्क साथ॥
तपमास असित षष्ठी रसेस, सद्धिय सु लग्न इन विधि असेस॥ १७ ॥
अधिराज सुनहु पुनि हुव उदंत, फग्गुन सित नवमी बुध मिलंत ॥
मतिमान भीम पट्टप कुमार, महती कुमरानी गद ममार॥ १८ ॥
मधु मास चउद्दसि पुनि वदात, विग्रह स्वरूपलतिका विहात॥
ससि नयन नंदभू लगत साल, आगत अजंट साहब उताल॥ १९ ॥
सो पीलपाट इहिं नाम ख्यात, प्रभु तास रीति मेलन करात॥
करि अतर दान सतकार किन्न, पटगृह पधारि तस सीख दिन्न॥ २० ॥
दुव नयन नंद ससि अब्द आत, सहमास चतुर्थी दिवस पात॥
कासीहु करन जात्रा जनेस, पटगेह प्रीति सह किय प्रवेस॥ २१ ॥

लिय सत्थ भीम पट्टप कुमार, भौजिष्य जगन्नाथहि उदार॥
पटरागिनि लिय पुनि प्रीतिहारि, पुनि बुरजसिकारहिं रहि पधारि॥ २२॥
तैषाऽसित तेरसि दिन दिवान, प्रभु अप्प सबाहिनि करि प्रयान॥
दुबलान द्रंग दिय पहु मुकाम, दुजा सु नयनपुर दिय विश्राम॥ २३॥
विश्राम समीधी तिम तृतीय, किय पुनि मुकाम चोरू तुरीय॥
इम करत मुकामन अधिप आत, प्रतिमुद प्रयाग नगरी अवाप॥ २४॥
अनलांबक अति धृति लगत साल, मनु मास असित स्मरतिथि नृपाल॥
बलि हड्डु भानु आंगिरस बार, उड्डीसपुरी बेसिय उदार ॥ २५॥
निर्वाहि बेदबिधि कियउ ह्वान, दिय इक पंचाशत पुहवि दान॥
नागोध राघवेन्द्रहि समत्थ, किय भीम कुमर सम्बंध तत्थ॥ २६॥

अरु जगन्नाथ भौजिष्य एम, पुनि वीरसिंह कापरिन तेम॥
करि तिलक बहुरि दै नालिकेर, सित सुक्र दसमि दै लग्न फेर॥ २७॥
नागोध गमन किय राघविंद, चंक्रमन कियउ पुनि हड्डुइंद॥
नागोध नवमि पटगृह पधारि, भेजिय उन मेवन हित बढारि॥ २८॥
सित सुक्र दसमि पुनि सुक्रवार, सद्धिय सु लग्न पट्टप कुमार॥
बलि वीरसिंह तस व्याहि साथ, करग्रहन भिन्न किय जगन्नाथ॥२९॥
इन मॉंहिं राघवेन्द्राभिधान, कन्या स्वकीय दुव भीम दान॥
सो सुरजभानु कुमरी गरीय, दिय तेजभानुकुमरी द्वितीय॥ ३०॥
सुचि असित त्रयोदशि आर वार,--तकुन ग्राम ठक्कुर उदार॥
हरवंशराय तनया सु आहि, सुभ नाथकुमरि प्रभु अप्प व्याहि॥ ३१॥

सुचि सुक्ल पंचमी सुक्रवार, करि कुंच सिंहपुर रहि उदार॥
इम चलत मुकामन करत आप, हिंडोन हड्डु अधिपति अत्राप॥ ३२॥
महिपाल करोली मदनपाल, उत्तम जन भेजिय तहँ उताल॥
सो जानि सभा करि लिय बुलाइ, आहूत मलुकपालादि आइ॥ ३३।

गौरव प्रभु मुजरा करत दिन्न, करि नजर निछावरि अरज किन्न ॥
जय मदनमोहन-जन स्वकीय, कहि करहु सदन सुभ अस्मदीय ॥ ३४ ॥
कर उत्तमांग करि अधिप आप, दृढ क्रमन अक्खि सीख सु ददाप ॥
प्रोष्ठाऽर्जुन नवमी करि प्रयान, विश्राम बरोदहि दिय दिवान ॥ ३५ ॥

चंक्रमन करि रु दशमी चुहान, इक --- करोली तें दिवान ॥
अहिफेन बेल रहि लिप नृपाल, प्रभु सम्मुह आगत मदनपाल ॥ ३६ ॥
मिलि करि रु परस्पर हत्थ मत्थ, उत्तरन बहुरि हुव दुवहि तत्थ ॥
मिलि दुवहि बच्छ तैं उर मिलाइ, उपवेसन किय घटि अद्धपाइ ॥ ३७ ॥
अधिराज प्रीति सह पुनि अभिन्न, नालकि उपवेसन इक्क किन्न ॥
अरु मिलि दु से? मुद जुत अमाप, वसनोक करोली दुव अमाप ॥ ३८ ॥
तहँ घटी इक्क रहि पुनि उताल, पुर प्रति किय जावन मदनपाल ॥
रहि दिवस तिथी तहँ हड्डु राम, कुरगाम नाम बलि किय मुकाम ॥ ३९ ॥
इम करत कुच्च प्रभु पुनि मुकाम, जनपति बुन्दीपुर आज गाम ॥
कोटेस राम इहिँ साक माँहिँ, अरु राध चउद्दसि सुक्ल आँहिँ ॥ ४० ॥

महिपाल सोहु कुछ गद ममार, तस पट्ट पंचसिख सुदत धार ॥
सो सत्रुसल्य इहिँ नाम ख्यात, सुभ दिन भद्रासन तिलक पात ॥ ४१ ॥
साहब सुवृहत ईडन सनाम, कोटेस हिँ टीका दैन काम ॥
आगत इह जावत तहँ उताल, किय क्रमन तास अभिमुख कृपाल ॥ ४२ ॥
सल्लाप भव्य सय करि रु सीस, आगमन ससाहब किय अधीस ॥
पुनि सिंहचतुष्पथ प्रीति पाइ, दै सिक्ख तास प्रासाद जाइ ॥ ४३ ॥
आराम रत्न साहब अवाप, अंसुकगृह साहब जाइ आप ॥
उपवेसन खुरसिन किय उजास, ग्गमयाल्प रहि रु दै सिक्ख तास ॥ ४४ ॥
अधिराज कियउ प्रासाद आन, साहब किय कोटा द्रंग जान ॥
माघार्जुन एकादसि मिलंत, मथुरा हुव भ्राता भोम अंत ॥ ४५ ॥

इतिश्रीवंशभास्करे महाचम्पूके उत्तराणेऽष्टम राशौ रामसिंह चरित्रे एकोनविंशो मयूखः॥ १९॥

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा

दोहा

सक बिक्रम जिन नंद ससि, अमा रु चैत्र अनेह।
भोमसिंह भ्रातृज भुवप, आइ विश्वेश्वर एह॥ १॥

काढि दिवस आराम कति, प्रभु के लग्गिय पाय।
तबहि स्वकर सिर फेरि तस, लिन्नों क्रोड़ लगाइ॥ २॥

मनोहरम्

विश्वेश्वरसिंह कों विसासि रु अधिप आप,
प्रत्यह कराये वेद नाणक असन कों।
राखी कछु भिन्न पुब्ब रीति सु महर करि,
पुब्ब जो हवेली सोहु तास दै रहन कों।
व्याकरन आदि शास्त्र अध्यापक मेल्हि बलि,
दिनप्रति दूनी करि बुद्धिहु मनन कों।
बहुरि नागोध द्रंग करिकैं विवाह ताकों,
नयो ग्राम नाम राम बाम दै बसन कों॥३॥

मास नभ धवल चउद्दसि आर वार,
दुर्गापुरी ईस संभूसिंह अवसान भो।
आत्मजहू ताकी ओंकारसिंह पट्टपति व्है,
गोरवादि काज प्रभु राम तंह जान भो।
बिहित बिधान पुब्ब हो जो प्रभु ताको दास,
सो सब ओंकारसिंह को ब प्रश्रुदान भो।
सस्त्र अरु सास्त्र तास अध्ययन सासन दै,
बुन्दीपुर राम को प्रवेसन बिधान भो॥४॥

प्रौष्ठा सित नउमी दिवाकर उदय होत,
लध्वी प्रातिहारी जनी धीटा प्रसव काल।

अंकक दिवस सोहु रहि कैं गतासु भई,
सौवस्तिक ताको कर्म कारक भो नृपाल।
अष्टमी नभस्य सित बहुरि सु व्यवहार,
नाम रसरंग जो भुजिष्या कियउ काल।
साहब जु रूसइस बुन्दिय अजंट आत,
राम प्रभु ताको संमेलन कियउ ताल।।५ ।।

भूत दुव अंक ससि सुचि सुचि मास केर,
एकादशी आर बेद नाड़ी दिवस आत।
मिश्रन कवींद्र रविमल्ल बहु आमय तैं,
बुन्दी द्रंग माँहिं प्रभु निर्जर नैर पात।
सो सुनि अनंत शोक करिकैं नरेंद्र आप,
स्नान करि अनल अंजली दियउ तात।
तास पुत्र अगुन मुरारिदान नामक कों,
अभ्युत्थान आदि दै विसासि हित दिखात।।६ ।।

भाद्र सित षष्ठी सदानंद जो भुजिष्या भूप,
जगन्नाथ जननी पंचत्वपन पात भो।
सहा सित पक्ख दोजि उपरि तृतीया आत,
सोमवार रत्ति सत्त नाडी कों विहात भो।
पट्टप कुमार भीमसिंह हू के स्वर्ग जात,
हाहारव बुन्दी घरघरहि दिखात भो।
ताकों दाहकर्महु पुरोधा तैं कराय पुनि,
....कति अधिक कुमारन करात भो।। ७ ।।

संबत तर्क दुव अतिधृति समय होत,
स्वर्ग नभ भूप गो करोली मदनपाल।
नवमी नभस्य सित बहुरि अमात्य आप,
बहुरा गतासु भयो जीवन अंतलाल।

सो सुनि नरेन्द्र आप चंदन कों खंड इक,
दैकें प्रेतवन कों पठायों चर उताल।
सासनानुसारि प्रभु सोहू तहँ जाइ पुनि,
उज्झिय सकल सो कापालिक क्रियाकाल॥८॥

प्रातिपदि आर वार आश्विन असित आत,
लध्वी प्रतिहारी प्रात होत जन्यो श्रीकुमार।
ताको जातकर्म वेदविधि तैं सधाइ पुनि,
आह्वय ताको रघुवीरसिंह भो उदार।
सार आढ्य रंकान कों करि कैं बहोरि आप,
जाचकन अत्थहु दिवायो बसु अपार।
भूसुर गणप अभिरूपजन हू कों बलि,
स्वापतेय बसन निवाजे तैं धर्मधार॥९॥

मार्गशीर्ष मासहू द्वितीया सित पक्ख होत,
साहब वृहत अजंट सह बुंदी आइ।
वृहत किटिंग इहिं नामक के सम्मुह कों,
गाम जोधसागर के संनिधि प्रभू जाइ।
तुरग बिहाइ रु बिछात के उपरि आत,
सीस करि पानि परस्पर हित दिखाइ।
आरुहि सु अब्ब किय क्रमन बरब्बर तैं,
आइ पुर बुंदी सिंहचत्वर बहुरि पाइ॥१०॥

साहब सिबिर गयो मानिक सुचोक माँहिं,
रांजराज राम अप्प प्रासादन पात भो।
बहुरि तृतीया सोमवासर किटिंग आत,
गोपुर बलवंत रठुऊर भिजात भो।
हत्थीपोल उत्तरि सु अंदर प्रबेस कियो,
अपाश्रय महल छत्र सन्निधि जात भो।

जाइ तहँ सम्मुइ मिलाय कर सीस करि,
मेवर अजंट सह संसद हि आत भो ॥११॥

बेला अल्प राखि दुव अतंर रु पान करि,
सिक्ख दै प्रथम रीति किय पहुंचान कों।
अंसुकसदन तास बहुरि पधारि आप,
सम्मुह किटिंग पद पंच किय आन कों।
अवसर अल्प राखि करिकैं समय वृत्त,
अतर किटिंग पुनि दियउ दिवान कों।
दैकैं सिक्ख ताहि श्वोवसीयस बचन भाखि,
राजराज राम निज धाम किय आन कों ॥१२॥

सत दुव अंक ससि बाहुल अमावसि कों,
गोन अजमेर किय लार्डहि मिलन कों।
करत मुकाम कुच्च दुत अजमेर जाइ,
लार्ड मिलि गोन किय पुष्कर सबन कों।
ह्लाइ तहाँ जाइ बेदबिधि तैं सधाइ पुनि,
भोजन जिमावहु भूसुर जनन कों।
पंचसत नाणक अनेकप दिवाये दान,
आये पुर बुंदी अप्प बंटि बहु धन कों ॥१३॥

अहि दुव अंक इक विक्रम नरेन्द्र सक,
अथवल तपस्य द्वादसी हू सौम्यवार।
सत्त पल अमल निशीथ के उपरि आत,
रानी प्रातिहारी जन्यो लघ्वीं लघु कुमार।
जात नाम कर्म बेदबिधि तैं सधाइ तास,
रंगराजसिंह नाम मंजुल भो उदार।
चारन रु भट्ट आदि दैन सब जाचक कों,
राज राज राम दयो बसु कति हजार ॥१४॥

नंद दुव अंक भू समा रु सुचि मास माँहि,
बीकानेर भूप सरदारसिंह काल भो।
ताके बंधुगन में डुंगरसिंह नाम हुतो,
सोहू पट्ट पंचसिख पाइकैं भुवाल भो।
पुण्णिम दिवस तप जोधपुर भूपतिहू,
स्वर्ग तखतेस जात रानिन विहाल भो।
पट्टप कुमार जसवंतसिंह पूरबहू,
राज करि कज्ज पिता अंतर नृपाल भो ॥१५॥

नभ गुन अंक इक बाहुल असुचि पक्ख,
सप्तमि सु बहुरि दिवाकर वार पात।
साहब वृहत पेली बर्कली अजंटी दुव,
आवत नयर बुंदी द्रुतही सु प्रभात।
सम्मुह गमन आदि मेलन सु पुब्ब जिम,
करि तस गेहपट जाइ हित दिखात।
महलन प्रवेस किय दैकैं सु सिक्ख तास,
साहब वृहत अजंट सह कोटै जात ॥१६॥

बाहुल धवल तिथी हरि हरिवार होत,
पट्टनिपुरी कों प्रभु राम किय पयान।
ग्राम रहि ठिक्करे बहोरि तिथि मार सौम्य,
पट्टनि सिविर को प्रवेसित भो दिवान।
राका उपराग बलि केसव दरश करि,
बिहित बिधान करि बेद सु ह्वान दान।
सार्द्धमास इक्क तहँ रहिकैं बहुरि आप,
राजराज राम नैर बुंदी कियउ आन ॥१७॥

इक्क गुन अंक भू समान सक विक्रम के,
फग्गुन चतुर्थी श्वेत जीव दिन पायो है।

महाराज आदिक कुमार रघुराजसिंह,
रजनी पहर गये उद्धव दिखायो है।
लक्खन लुटाइ द्रव्य भूसुर रु रंकन कों,
जातक-वैदिक विधान बनवायो है।
राम नरनाह सब देसन के जच्चन कों,
इच्छामित स्वापतेय अमित दिखायो है ॥१८ ॥

रस गुन अंक ससि संवत बहुरि होत,
अष्टमी अनेहासित सुक्र अपनायो है।
इक्क पल छप्पन घटी के इष्ट लच्छी अंस,
लक्ष्मणा कुमारि हूको जनन जनायो है।
नव गुन अंक इक हायन नवीन होत,
सावन प्रथम मास विसद सुहायो है।
चढत दिवाप तीन घटिका हू पंच पल,
रघुवरसिंह जन्म चउद्दसि पायो है ॥१९ ॥

उक्त सक ही में जसवंत भूप जोधपुर,
पुत्री तखतेस की स्वभगिनी भनाई है।
असित तृतीया माध काव्य दिन लग्नकाल,
कुमारी सौभाग्य रघुवीरसिंह पाई है।
रंगराजसिंह लघु सोदर बहुरि व्याही,
सूरज कुमरि चौथि जोरावर जाई है।
उक्त तिथि हू मैं सिंहमुहुब्बत पुत्री बल,
दिव्य देवकुमरी रघुराज हित दाई है ॥२० ॥

वावाता कुमार तखतेस को जवानसिंह,
पुत्रिका समर्थ नाम कुमरी कहाई है।
माघाऽसित चोत्थि मंद वासर हू लग्नकाल,
जगन्नाथ पुत्र हरिनाथ हित दाई है।

करि उपयाम तत्थ रहिकैं कितेक दिन,
दुहुँ दिस प्रीति रीति परम दिखाई है।
महारावराजा श्री दिवान रामसिंह बलि,
आइकैं प्रवेसि बुंदी नगर बधाई है॥२१॥

गोपुर चोगान बनायो सत्रुसाल तास,
गोपुर बनायो बाह्य संनिधि अप्प राम
तोरन प्रासाद जोब बज्जत हजारी द्वार,
ताके सन्निकर्ष त्रिद्वारिका बनाई बाम।
तास अग्ग अंदर बनायो इक द्वार गेह,
अंतिक बनाई तास त्रिद्वारि बंब काम।
मोतीकूप निकट बनाई हू तिबारी पुनि,
तामैं विष्णुस्वामीकाति रहत अट्ठ जाम॥२२॥

न्याय मुल्क नामक कचहरी द्वै बनाई पुनि,
मंदुरा सुखम बनाई भीमकुंड पास।
मंदुरा द्वितीय कोंन नैर्ऋत बनाइ प्रभु,
अज्जहु बजन सोनपाइगां नाम तास।
छत्रमहल माँहिं जलजंत्र अरु होद इक्क,
त्रिद्वारी भई पुष्पगो रक्खन वितर्दी जास।
दूदा के महल हू तैं द्वार लग बाह्य दुर्ग,
खुरा किय तातैं मर्त्य जावत अनायास॥२३॥

दोहा

तोरन अरु त्रिद्वारिका, मंगल द्वार समीप।
जीवरखा दूजेहु इक, महल जु कियो महीप॥ २४॥
बज्जत चामुंडा बलज, तास बाह्य त्रिद्वारि।
प्रभु भंडारन सहित पुनि, कमन राम प्रभु कारि॥२५॥
बायुकोंन उड्डुदुर्ग तैं, स्वापतेय सरसाई।
देवी चामुंडा सदन, बलानाथ बनवाई॥ २६॥

कौतुक मृगया कज्ज बलि, तुंग रचिय अति बाम।
बहुरि पुष्पमागर बली, रचिय मल्ल अभिराम॥२७॥
कुंड इक्क ताके निकट, मध्य जु छत्री पाइ।
सागर पुष्पतड़ाग तट, केतक बाटि कराइ॥२८॥
बालागढ किल्लादि बलि, इतर जु थान उदार।
जँहँ जँहँ भ्रंशित भो तहां, किय जीरन उद्धार॥२९॥

इतिश्री वंशभास्करे महाचम्पूके उत्तरायणे नवम राशौ रामसिंह चरित्र विंशोमयूखः॥ २०॥

इति श्रीवंशभास्कर नाम को ग्रन्थः समाप्तः॥